ayurvedaoasis.in

विषयानुक्रमणिका

प्रथम : परिचर्या खण्ड

अध्याय - 1

कौमारभृत का इतिहास एवं परिचय

वैदिक वाङ्मय में कौमारभृत्य 3
संहिता-ग्रन्थों में कौमारभृत्य 4
अन्य स्थलों पर कौमारभृत्य 5
कौमारभृत्य-विषयक ग्रन्थ 5
आधुनिक बाल-चिकित्सा का विकास 7
कौमारभृत्य की निरुक्ति एवं परिभाषा 8
कौमारभृत्य विषय का क्षेत्र 10
कौमारभृत्य विषय का महत्त्व 10
काश्यपसंहिता का परिचय 11
काश्यपसंहिता में आयुर्वेदावतरण 12
काश्यपसंहिता का विकास 13

अध्याय - 2

वय-वर्गीकरण एवं सामान्य चिकित्सा

वय-विवेचन एवं वर्गीकरण 15
आयुर्वेद एवं आयुर्वेदेतर भारतीय शास्त्रों के आधार पर वय-वर्गीकरण 18
वयविषयक कुछ पारिभाषिक शब्द 20
जन्मभार एवं गर्भकाल के आधार पर वर्गीकरण 21
बालरोगों का सामान्य चिकित्सासूत्र 22
औषधि की मात्रा का निर्धारण 25
औषधि, धात्री तथा शिशु सम्बन्ध 30
औषधि-प्रयोग विधि 31
बालकों के लिए पथ्य 31

अध्याय - 3

शिशु-कुमार परीक्षा

कौमारभृत्य विशेषज्ञ का महत्त्व 32
धात्री का महत्त्व 33
शिशु परीक्षण विधा 33
इतिवृत्त 34
सामान्य परीक्षण 35
- नाड़ीगति एवं श्वसनगति 35
- शारीरिक परीक्षण 36
विशिष्ट परीक्षण 38
- विभिन्न शारीरिक माप 38
- तापक्रम 40
- गुदा-परीक्षण 40
- मलमूत्र-परीक्षण 40
नवजात शिशु परीक्षण 41
गर्भावस्था वय का निर्धारण 54
Assessment of gestational age by new Bellard Score 55

Scanned with CamScanner

अध्याय - 4
नवजात शिशु-परिचर्या

नालछेदन 57
नवजात का मुखशोधन 59
प्राणप्रत्यागमन 60
अपगार स्कोर 64
प्राणप्रत्यागमन विधि 65
प्राणप्रत्यागमन - एक दृष्टि में 69
प्राणप्रत्यागमन कार्य - क्या न करें ! 71
गर्भोदक वमन 72
उल्वा परिमार्जन 72
स्नान 73
रक्षाकर्म 73
आहार-विधान 76
कुमारगार 78
प्रसव-कक्ष में शिशु की देखभाल 79
अपरा का परीक्षण 80
नवजात शिशु-परीक्षण 81
जन्मजात विकृति का शीघ्रातिशीघ्र निदान 82
प्रथम दिन शिशु का परीक्षण 82
सामान्य नवजात शिशु परिचर्या 83

अध्याय - 5
शिशु-परिचर्या

आयु-परीक्षण 85
आयुष्मान् या दीर्घायुष्य के लक्षण 86
कुमारधारणीयानि 93
कुमारधारण 95
बालकेन सह सबन्ध: 95
गृहात् निष्क्रासनस्य काल: 96
क्रीड़ाभूमि एवं कीडनक 96
विद्याग्रहण 98
शिशु का विकासक्रम 98
शारीरिक वृद्धि 99
मानसिक वृद्धि 103
व्यक्तित्व का विकास 107
नाडीवह संस्थान की वृद्धि 110
रिफ्लेक्सेज 115
दशविध आतुर परीक्षा 120
वृद्धि एवं विकास की गति में वृद्धि करने वाले कारक 120
सामान्य वृद्धि एवं विकासक्रम को प्रभावित करने वाले कारक 121
वृद्धि एवं विकास की गति को मन्द करने वाले कारक 121

अध्याय - 6
कुमारों में संस्कार

जातकर्म संस्कार 123
नामकरण संस्कार 125
निष्क्रमण संस्कार 126
अन्नप्राशन/फलप्राशन संस्कार 127
चूड़ाकर्म संस्कार 130
कर्णवेधन संस्कार 130
उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार 132

Scanned with CamScanner

अध्याय - 7

दन्तजन्मिकाध्याय

दन्तोद्भेद काल 133
प्रशस्त एवं अप्रशस्त दन्त 133
दन्तोद्भेद : कारण एवं अकारण 134
दन्तघर्षण का कारण 135
दन्तजन्म एवं दन्तपात काल का सिद्धान्त 136
दाँतों के नाम, संख्या एवं भेद 136
दन्तविवर्णता 138
दन्तोत्पत्ति (स्थायी/अस्थायी) एवं गिरने का काल 138
दन्तखटीकरण (Calcification) 139
दातौन 140
दन्तधावन का निषेध 141
दन्तधावन हेतु निषिद्ध वनस्पति, काण्ड 141
दन्तदृढ़ीकारक गण्डूषधारण 142
दन्तरोगों में अपथ्य 142
वृक्षविशेष की दातौन का फल 142
जिह्वानिर्लेखन 143

अध्याय - 8

लेहाध्याय

लेहन कर्म के योग्य 144
लेहन कर्म के अयोग्य 145
लेह घटक एवं प्रयोग 146
काश्यपोक्त लेह 147
विविध घृत 147
वचादि चूर्ण 152
अष्टांगसंग्रहोक्त लेह संग्रह 152
कुमारकल्याणरस एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता 154
रोगप्रतिरोधक क्षमीकरण 154
राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम 157
इण्डियन मेडिकल एसोसियेशन द्वारा प्रमाणित टीकाकरण 157
शीतलारोधी/खसरा मसूरण 159
रोमान्तिका मसूरण 160
कर्णमूलशोथ मसूरण 160
मिश्रित मसूरण (MMR) 161
आन्त्रिक ज्वररोधी मसूरण 160
गर्भवती माता में धनुर्वातरोधी मसूरण 161
पक्षाघात मसूरण 162
Salk & Sabin मसूरण का तुलनात्मक अध्ययन 162
मसूरण का उचित काल 163
ट्रिपल वैक्सीन 163
राजयक्ष्मारोधी मसूरण 164
यक्ष्मा परीक्षण 165
बी.सी.जी. परीक्षण 166
यकृत् शोथ मसूरिका 167
प्रतिश्याय टीकाकरण 167
उल्फुल्लिका मसूरण 168
मस्तिष्क संक्रमण मसूरण 168
चिकेन पाक्स वैक्सीन 169
टीकों का तापक्रम नियन्त्रण 169
मसूरीकरण में सामान्य निषेध 170

अध्याय - 9

पोषण

आहार का महत्त्व 171
आहार के मुख्य घटक 172
जल (Water) 172
शक्ति या कैलोरी (Colories) 173

Scanned with CamScanner

प्रोभूजन (Proteins) 175
शर्करा (Carbohydrates) 176
वसा (Fats) 176
खनिज लवण एवं जीवतिक्तीय 177
चरकोक्त आहारोपयोगि वर्ग 178
द्रवद्रव्य वर्गीकरण 179
अन्नपानविषयक वर्ग 179
ICMR द्वारा निर्धारित आहार वर्ग 180
अष्ट आहार-विधि विशेषायतन 181
विशिष्ट खनिज एवं जीवतिक्तीय की वयानुसार उपयोगिता 182
प्रोभूजन आदि प्राप्ति के स्रोत एवं उनके कार्य एवं मात्रा में कमी या अधिक्य का परिणाम 183
शिशु के लिए सन्तुलित आहार 185
भोजन में पायी जानेवाली ऊर्जा तथा प्रोभूजन 186
भोजन की अन्य विशेषताएँ 187
वयानुसार कुछ सामान्य आहार 188
समयानुसार आहार-विधि 188

अध्याय - 10

स्तन-प्रकरण

स्तनसम्पत् (Ideal breast) 189
स्तनपान के लिए माता की तैयारी 190
नवजात शिशु के स्तनपान में सामान्य समस्याएँ 191
धात्री-प्रकरण 192
धात्री-परीक्षा (गुण-दोष विवेचन) 193
धात्री के कर्म 194
धात्री-चिकित्सा प्रकरण 195
बलातैल-निर्माण एवं प्रयोग 197
मांसतैल 200

अध्याय - 11

स्तन्य-प्रकरण

स्तन्य की उत्पत्ति एवं प्रवृत्ति 201
स्तन्योत्पत्ति की आधुनिक व्याख्या 202
शुद्ध स्तन्य (स्तन्यसम्पत्) 204
स्तन्य के सामान्य गुण 205
नारी-स्तन्य 207
धात्रीस्तन्याभावे अन्यदुग्धस्य पानम् 207
स्तनपान एवं उसके लाभ 209
विभिन्न दुग्धों का रासायनिक संगठन 209
नारीस्तन्य की विभिन्न अवस्थाएँ 211
स्तन्यपान काल 212
स्तनपान के अतिरिक्त आहार 213
कृत्रिम आहारविधि 213
दूध की मात्रा 214
स्तन्यनाश 216
स्तन्य क्षय एवं वृद्धि के लक्षण 218
स्तन्यशोधनादि योग 218
स्तन्यजनन विधान 219
स्तन्य में स्रवित होनेवाले हानिकारक तत्त्व/औषधि 219

अध्याय - 12

वेदनाध्याय

शिशु में होनेवाली वेदना का आयुर्वेद-मनीषियों द्वारा अनुभव 224
काश्ययोक्त शिशु में होनेवाली व्याधियाँ 225

Scanned with CamScanner

द्वितीय : व्याधिखण्ड

अध्याय - 1

व्याधि का सामान्य परिचय

दोष 235
दूष्य 237
मल 237
रोग या व्याधि 237
स्वस्थ 238
व्याधि-वर्गीकरण 239
व्याधि-विनिश्चय 242
व्याधि-चिकित्सा 243

अध्याय - 2

प्रसवपूर्व गर्भव्यापद्

गर्भस्राव एवं गर्भपात 245
गर्भशोष या वाताभिपन्न गर्भ 247
उपविष्टक 248
नागोदर या उपशुष्क गर्भ 248
लीन गर्भ 250
गर्भक्षय 250
गर्भवृद्धि 251
भूतहृत या नैगमेषहृत गर्भ 251
मृतगर्भ 252
- गर्भाशयान्तर मृतगर्भ 252
- मृतजात गर्भ 254
- जातमात्र मृतगर्भ 253

अध्याय - 3

प्रसवकालीन गर्भव्यापद्

मूढगर्भ या असामान्य प्रसवजन्य उपद्रव 256
शस्त्रादि के द्वारा निर्हरण के उपद्रव 257
प्रसवकालीन आघात 257
शिरो-आघात 257
- उपशीर्षक 257
• कैपट सक्सीडेनम 258
• शीर्षरक्त संग्रह 259
• एनसेफैलोसील 260
- त्वग्गत लालिमा, खरोंच तथा त्वचा में रक्तस्राव एवं त्वचा के नीचे वसा का नाश 261
- कपालास्थि भग्न 262
मस्तिष्कगत रक्तस्राव के कारण एवं लक्षण 263
मेरु-आघात 265
नाडीतन्त्र-आघात 265
- Brachial/Erbs paralysis 265
- Klumpke paralysis 266
- Phrenic nerve palsy 267
- Facial nerve palsy 267
वक्षोदर आघात 268
पेशी आघात एवं अस्थिभग्न 268
ओषजन-अल्पताजन्य आघात 269

अध्याय - 4

प्रसवोत्तरकालीन व्यापद्

उल्बक रोग 271
चूषण न्युमोनिया 272
नाभिनाल-कर्तनजन्य व्याधियाँ 273
उपद्रवों की चिकित्सा 275

Scanned with CamScanner

स्थानीय नाभिनाड़ीशोथ-पाक	277	नवजात पेम्फीगस	288
सार्वदैहिक संक्रमण Septicemia	278	राजिका	288
नवजात का हनुस्तम्भ	280	परिदग्ध छवि	289
उत्तुण्डिता	282	अतिरोदन	289
आक्षेपक	283	रक्तस्राव	290
स्तनशोथ एवं योनि से रक्तस्राव	286	जी-6 पी.डी. अल्पता	290
विस्फोट	287	रक्तवर्ग आर-एच फैक्टर-विषमयता	291

अध्याय - 5

नवजात शिशु की विशिष्ट व्याधियाँ

अल्पभार शिशु (शोष)	294	थैलासीमिया Thalassemia	303
समय-पूर्व प्रसवित शिशु	295	औषधिजन्य कामला	303
गर्भाशयन्तर गर्भ की वृद्धि-अल्पता	298	रक्तवर्ग एवं रीसस विषमयता	303
नवजात शिशु का कामला	299	उग्ररूपीय कामला	303
प्राकृतिक शैशवीय कामला	302	विकृतिजन्य शैशवीय कामला	304
स्तन्यजन्य शैशवीय कामला	302	अतिबिलिरुबिनरक्तता की चिकित्सा	307
क्रीटेनिज्म	303	नवजात शिशु का रक्तपित्त	309

अध्याय - 6

जन्मजात व्याधियाँ तथा विकृतियाँ

जन्मजात व्याधियों का वर्गीकरण	311	उदकमेह	334
दोष एवं जन्मबलप्रवृत्त रोगों का सम्बन्ध	314	मधुमेह	335
जन्मजात फिरंग	315	प्रमेहचिकित्सा	335
राजयक्ष्मा	318	Diabets Mellitus	336
स्थान-भेद से राजयक्ष्मा के लक्षण	323	इन्सुलिन-आश्रित मधुमेह	337
शैशवीय एवं युवा राजयक्ष्मा मे अन्तर	325	मधुमेहजन्य मूर्च्छा	338
Kenneth Jone's निदान तालिका	325	मधुमेही मात्रा का शिशु	339
Crofton, Horne & Miler Scoring Method	326	कुष्ठ	340
राजयक्ष्मा में प्रयुक्त प्रमुख औषधि	327	महाकुष्ठ	340
इण्डियन एसोसियेशन ऑफ पीडिया० द्वारा अनुमोदित चिकित्सा व्यवस्था	328	क्षुद्रकुष्ठ	341
आइसोनेक्स का विशिष्ट प्रयोग	330	नवजात का यकृत् शोथ	342
प्रमेह	331	जलशीर्ष Hydrocephalus	343
दोषानुसार प्रमेह के भेद	331	मस्तुलुंग क्षय	346
मधुमेह की व्यापकता	333	पांगुल्य	347
सान्द्रमेह	333	मूकत्व	350
		वामनत्व	352
		ओष्ठ-भेद (खण्डौष्ठ) Cleft lip	354
		तालुविकृति (खण्डतालु) Cleft palate	355

Scanned with CamScanner

अध्याय - 7

कर्णवेधन

वेधन-स्थल 357
अयोग्य स्थान में कर्णवेध से हानि 357
कर्णवेधन के दोष एवं चिकित्सा 259
कर्णपाली विकृति 359
कर्णपाली सन्धान-विधि 361
कर्णपाली के रोग 362
कर्णपाली के उपद्रवस्वरूप रोग एवं चिकित्सा 363

अध्याय - 8

दुष्ट स्तन्यजन्य रोग

स्तन्यदुष्टि के सामान्य हेतु 365
वातदोष से विकृत दुग्ध के लक्षण एवं व्याधियाँ 366
पित्त दूषित दुग्ध के लक्षण एवं व्याधियाँ 366
कफ दूषित स्तन्य के लक्षण एवं व्याधियाँ 367
द्वन्द्वज एवं त्रिदोषज दुष्टस्तन्य के लक्षण एवं व्याधियाँ 368
चरकोक्त अष्टक्षीर दोष-विवेचन 369
स्तन्य-वैगुण्य की सम्प्राप्ति एवं उत्पन्न व्याधि के लक्षण 369
काश्यपोक्त ग्रह तथा वातादि दोष से दूषित स्तन्य 371
दुष्टस्तन्य : लक्षण, परीक्षण एवं परिणाम 373
दुग्ध-दोषों की सामान्य चिकित्सा 375
वातदूषित स्तन्य की चिकित्सा 379
चरकोक्त वातदोष से उत्पन्न तीन स्तन वैगुण्यों की चिकित्सा 380
पित्तदूषित स्तन्य की चिकित्सा 381
चरकोक्त पैत्तिक दुग्ध दोष से उत्पन्न दो वैगुण्यों की चिकित्सा 382
कफदूषित स्तन्य की चिकित्सा 383
चरकोक्त कफज क्षीरदोष से उत्पन्न तीन वैगुण्यों की चिकित्सा 385
द्वन्द्वज एवं सन्निपातिक स्तन्यदोष-चिकित्सा 386

अध्याय - 9

कुपोषणजन्य व्याधि

आहार का महत्त्व 387
कृशता 388
फक्क रोग 391
बालशोष 396
पारिगर्भिक 399
कुपोषण के कारण एवं सम्प्राप्ति 402
विशिष्ट परीक्षण 404
कुपोषण का वर्गीकरण 406
प्रोटीन कैलोरी/एनर्जी मालन्यूट्रीशन 408
क्वाशिआरकर 409
मैरास्मस 410
मैरास्मिक क्वाशिआरकर 412
तीव्र कुपोषण की चिकित्सा व्यवस्था 413
कुपोषण में दिया जानेवाला ORS 415
Re So Mal का निर्माण 415
आहार चिकित्सा 417
कुपोषण से बचाव के उपाय 419
राष्ट्रीय स्तर पर कुपोषण समस्या का निवारण 419
वर्तमान राष्ट्रीय कार्यक्रम 420
भोजन एवं पोषक तत्त्व 421
कुछ प्रचलित खाद्य पदार्थों द्वारा प्राप्त ऊर्जा 422

Scanned with CamScanner

कुपोषण में प्रयोज्य आयुर्वेदिक औषधि योग 423
कुपोषणजन्य विविध व्याधियाँ 424
- विटामिन ए की अल्पताजन्य 425
- विटामिन बी-कॉम्प्लेक्स की अल्पताजन्य 427
- विटामिन डी की अल्पताजन्य 427
रिकेट का वर्गीकरण एवं प्रयोग-शालीय परीक्षण 428
रिकेट के कारण 430
विटामिन डी-निर्भर रिकेट 432
फैन्कोनी सिण्ड्रोम 433

अध्याय - 10

दन्तरोग

दन्तोद्भवकालीन व्याधियाँ 434
रोग-विशेष की चिकित्सा 438
कृमिदन्त 438
कृमिदन्त व्याधि की उत्पत्ति 439
दन्तहर्ष 441
दन्त शब्द 442

अध्याय - 11

अन्नवह स्रोतस् के विकार

मुखपाक 444
अजीर्ण 447
वमन (छर्दि) 449
बालातिसार 451
जलाल्पता 457
खनिज लवणों की मात्रा में अनियमितता 458
जलाल्पता एवं खनिज द्रव्यों के अल्पाधिक्य का कारण तथा प्रभाव (सारणी) 458
औषधियों का विवेचन 459
जलाल्पता की व्यवस्था 463
WHO/UNICEF द्वारा निर्धारित ORS का संगठन 464
जलाल्पता की श्रेणी के अनुसार चिकित्सा-व्यवस्था 463
तृतीय श्रेणी की जलाल्पता की चिकित्सा व्यवस्था 466
क्षीरालसक 468
गाढविट्कता एवं मलावरोध 471

अध्याय - 12

गुदरोग

अर्श 472
अहिपूतना 475
गुदपाक 477
गुदभ्रंश 478
परिकर्तिका रोग 481
पश्चाद्रुज 482
सन्निरुद्ध गुद 482

अध्याय - 13

यकृद् विकार

सामान्य लक्षण 484
कामला 485
यकृद्वृद्धि 485
यकृत्-कार्य - प्रयोगशालीय परीक्षण 486

Scanned with CamScanner

अन्य विशिष्ट परिक्षण 487
भारतीय बच्चों का यकृत् सिरोसिस 488
रे का सिण्ड्रोम 492
विल्सन रोग 492

अध्याय - 14
मृत्तिकाभक्षणजन्य व्याधि

शिशुओं का मृत्तिका भक्षण 493
शिशुओं में उदरकृमि 495
विशिष्ट कृमि चिकित्सा 500
कृमिनाशक अन्य औषधि एवं मात्रा 500

अध्याय - 15
प्राणवह स्रोतस् के विकार

शुष्क कास 502
श्वास-कास चिकित्सा 503
प्रतिश्याय 504
कास 506
तमकश्वास रोग 507
उत्फुल्लिका 510
उत्फुल्लिका की शास्त्रीय चिकित्सा 513
कुक्कुरकास 513

अध्याय - 16
नेत्र-विकार

अभिष्यन्द 517
कुकूणक 518
पोथकी 523
नवजात शिशु का नेत्रशोथ 524
नेत्रश्लैष्मिककलाशोथ 525
कोषीय नेत्रश्लैष्मिककलाशोथ 526
असहिष्णुताजन्य नेत्रश्लेष्ममय कला शोथ 527
पोथकी - आधुनिक दृष्टिकोण 528

अध्याय - 17
वातरोग

पक्षवध 530
शैशवीय पक्षाघात 531
एकांगघात 531
सेरिब्रल पक्षवध 532
अर्दित 533
Bell's palsy 536
वातरोगों का सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त 535
अर्दित एवं पक्षवध की सामान्य चिकित्सा 535

अध्याय - 18
मानसिक विकार

उन्माद 537
अपस्मार 541
मानसिक दौर्बल्य 543
मंगोल बुद्धू 548

Scanned with CamScanner

अध्याय - 19

बालग्रह

ग्रह	550
बालग्रह का पौराणिक महत्त्व	551
ग्रहबाधा के कारण	551
ग्रहबाधा के पूर्वरूप	552
ग्रहबाधा के सामान्य लक्षण	553
ग्रहों की साध्यासाध्यता	554
ग्रहों के नाम, भेद तथा संख्या	556
बालग्रह का विवेचन	559
बालग्रहों की पृथक्-पृथक् आकृति का वर्णन	559
बालग्रहों के पृथक्-पृथक् लक्षणों का विवेचन एवं सम्भावनाओं का विवरण	562
स्कन्दग्रह	563
हतैकपक्ष या बालपक्षाघात	564
पोलियो मस्तिष्कशोथ, निदान, सम्प्राति, लक्षण	565
पक्षाघातयुक्त पोलियो के भेद	567
प्रयोगशालीय परीक्षण	568
एकनेत्रशोफ के कारण	568
कैवरनस साइनस थ्रोम्बोसिस	569
स्कन्दापस्मार या विशाख बालग्रह	569
काश्यपोक्त अरिष्ट लक्षण	570
शैशवीय आक्षेप के कारण	570
अपस्मार (बालापस्मार)	570
अपस्मार एवं योषापस्मार का साक्षेप निदान	572
नैगमेष ग्रह	574
मस्तिष्कावरण शोथ	575
बैक्टीरियाजन्य मस्तिष्कावरण शोथ	575
राजयक्ष्माजन्य मस्तिष्कावरण शोथ	577
शग्रह	579
जलसन्त्रास	580
जलसन्त्रास की प्रतिषेधात्मक चिकित्सा	581
- रैबीज वैक्सीन	582
- हाइपर इम्यून एण्टीरैबीज वैक्सीन	583
पितृग्रह	584
पूतनाग्रह	585
शीतपूतनाग्रह	586
अन्ध(गन्ध)पूतनाग्रह	587
रेवतीग्रह	588
शुष्करेवतीग्रह	590
उदरयक्ष्मा	591
मुखमण्डिकाग्रह	591
शकुनिग्रह	592
इम्पेटाइगो	593
बालग्रह के विशिष्ट लक्षण	594
बालग्रह चिकित्सा (शास्त्रीय पक्ष)	595
विशिष्ट ग्रह चिकित्सा	601
स्कन्दग्रह चिकित्सा	602
स्कन्दापस्मार चिकित्सा	603
नैगमेष चिकित्सा	605
श्वग्रह चिकित्सा	606
पितृग्रह चिकित्सा	607
शकुनीग्रह चिकित्सा	608
पूतनाग्रह चिकित्सा	610
शीतपूतनाग्रह चिकित्सा	612
अन्धपूतनाग्रह चिकित्सा	614
मुखमण्डिकाग्रह चिकित्सा	616
रेवतीग्रह चिकित्सा	617
शुष्करेवतीग्रह चिकित्सा	619

Scanned with CamScanner

अध्याय -20

विविध व्याधि

शैशवीय क्षुद्ररोग	621	शोथ	636
अजगल्लिका	621	वृक्कशोथ	637
परिवर्तिका	622	नेफ्रोटिक सिण्ड्रोम	638
निरुद्धप्रकश/निरुद्धमणि	623	गण्डमाला एवं अपची	641
वृषणकच्छू	624	ज्वर	644
मुखदूषिका	624	हृदय व्याधि	645
व्यंग और नीलिका	626	कंजेस्टिव कॉर्डियक फेल्योर	645
अरिकीलिक	628	जन्मजात हृदय रोग	646
महापद्म	629	लक्षणरहित बालक में मरमर	648
शिशुओं के सामान्य त्वग्गत संक्रमण	630	हृदयगत मरमर ध्वनि के स्तर का निर्धारण	649
चर्मदल	632	पूर्ण हृच्चक्र में मरमर	650
तृष्णा	633	तीव्र सिस्टोलिक मरमर	650
आनाह एवं शूल	633	मृदु सिस्टोलिक मरमर	651
मूत्राघात (मूत्रग्रह)	634	रियुमेटिक ज्वर	653
शय्यामूत्र	634		

अध्याय -21

शैशवीय पञ्चकर्म

पञ्चकर्म का संक्षिप्त प्रारूप	655	प्रधान कर्म	
पूर्वकर्म	657	- वमन कर्म	661
- रूक्षण कर्म	657	- विरेचन कर्म	663
- पाचन कर्म	657	- बस्ति कर्म	664
- स्नेहन	657	- शिरोविरेचन (नस्य)	668
- स्वेदन	660	- रक्तमोक्षण	671

तृतीय : परिशिष्ट खण्ड

1. बालग्रह 675
2. धूपन कर्म 679
3. Normal Investigation Values 687
4. Drug Doses in Children 695

अनुक्रमणिका 706

*

Scanned with CamScanner

चित्र-विवरण

1. कॉर्ड क्लैम्प 59
2. श्लेष्माचूषक यंत्र 61
3. थपथपाने की विधि 64
4. सीधे प्राणवायु देने का विधान 66
5. अम्बु बैग 66
6. मास्क लगाने की सही विधि 66
7. Laryngoscope 67
8. Endotracheal tube 67
9. इण्ट्युबेशन प्रक्रिया 68
10. Nasagastric tube 72
11. स्तनपान का प्रभाव एवं अंगरस 77
12. नवजात शिशु-परीक्षण 81
13. शिशुभार-विधि 100
14. वय-वर्गीकरण एवं व्यक्तित्व का विकास 109
15. Moro Reflex (First) 115
16. Moro Reflex (Second) 116
17. Stepping Reflex 116
18. Rooting Reflex 116
19. Sucking Reflex 117
20. Planter Grasp 117
21. Palmar Grasp 117
22. अस्थायी एवं स्थायी दन्तोत्पत्ति 137
23. टीकों का संग्रहण 170
24. ऊर्जा का प्रतिदिन विभिन्न रूपों में व्यय 174
25. यौवनकाल, गर्भिणी एवं स्तन्योत्पत्ति काल में स्तन पर अंगरस का प्रभाव 203
26. Caput Succidaneum 258
27. Cephalohematoma 259
28. Erb's Palsy 266
29. Exomphalos 282
30. उपनाह कर्म 283
31. Kramer's Criteria 305
32. Phototherapy Unit 307
33. शैशवीय कामला में फोटोथेरैपी तथा रक्ताधान का प्रयोग, सीरम बिलीरुबिन एवं उत्पत्ति 308
34. विवाह एवं जीन्स का सम्बन्ध 312
35. प्राइमरी कॉम्प्लेक्स का परिणाम 324
36. जलशीर्ष (Hydrocephalus) 343
37. C.S.F. परिभ्रमणपथ 344
38. Talipus Equinovarus 347
39. ओष्ठ भेद (Cleft lip) 355
40. खंडतालु एवं ओष्ठभेद (Cleft palete with cleft lip) 356
41. ऑरनाल्ड विधि 405
42. बैंजल विधि 405
43. शकीर टेप विधि 406
44. क्वाशिऑरकर 409
45. मैरास्मस 411
46. बालक के स्वास्थ्य में सुधार के लक्षण 418
47. कुपोषणजन्य रिकेट 430
48. सूर्य का प्रभाव एवं विटामिन डी की क्रियाशीलता 430
49. प्रत्येक मलत्याग के बाद प्रयुक्त ORS/तरलमात्रा 464
50. मुखनाड़ी तथा इसकी शाखायें 533
51. Mosaicism में हाथ-पैरों की स्थिति 549
52. गर्भस्थ शिशु में रक्तपरिभ्रमण 647

*

Scanned with CamScanner

कौमारभृत्य का इतिहास एवं परिचय

विश्व का प्राचीनतम साहित्य वैदिक वाङ्मय माना जाता है। वैदिक वाङ्मय में 'अष्टांग-आयुर्वेद' के विभिन्न अंगों के वर्णन (संदर्भ) तो प्राप्त होते हैं, परन्तु कहीं भी उसका स्पष्ट वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता। विष्णु पुराण में अष्टांग आयुर्वेद के वर्गीकरण का संकेत निम्न प्रकार से प्राप्त होता है—

'भगवता नारायणेन च अतीतसम्भूतावस्मै वरो दत्तः' ।।

'काशिराजगोत्रेऽवतीर्य्य तवमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि, यज्ञभाग् भविष्यसि इति ।। (विष्णु पुराण 4/8/3-4)

अर्थात् पूर्व जन्म में नारायण ने उनको (धन्वन्तरि) वर दिया था, कि तुम काशिराज के गोत्र में उत्पन्न होकर समस्त आयुर्वेद को आठ अङ्गों में विभक्त करोगे। (इतिहासकारों ने इस पुराण का समय 5वीं शताब्दी ई. पूर्व अथवा चतुर्थ शताब्दी तक का माना है।)

द्वापर में अष्टांग-आयुर्वेद का विभाजन 'धन्वन्तरि' के द्वारा हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि वैदिककाल (इन्द्र) के बाद ही यह कार्य हुआ और सर्वप्रथम चरकसंहिता में आयुर्वेद के 8 अंगों का वर्णन प्राप्त हुआ।

'तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ; तद्यथा—कायचिकित्सा, शालाक्यं, शल्यापहर्तृकं, विषगरवैरोधिकप्रशमनं, भूतविद्या, कौमारभृत्यकं, रसायनं, वाजीकरणमिति।' (च.सू. 30:28)

वैदिक वाङ्मय में कौमारभृत्य

यद्यपि आयुर्वेद के मतानुसार कौमारभृत्य में प्रसूति-विज्ञान, स्त्रीचिकित्सा एवं बालचिकित्सा विज्ञान समस्त विषय आते हैं। परन्तु आधुनिक विचारों को ध्यान में रखते हुए कौमारभृत्य से तात्पर्य मात्र 'बाल स्वास्थ्य एवं चिकित्सा' ही होगा।

ऋग्वेद—ई.पू. 4000 या 6000[1] के इस ग्रन्थ में निम्नांकित सन्दर्भ प्राप्त होते हैं—

(1) बधिर नृषद्पुत्र को कर्णदान। (ऋ. 1: 117:8)

1. सभी वेदों का कालनिर्धारण 'आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास' ग्रन्थ से लिया गया है।

Scanned with CamScanner

(2) पशुओं तथा सभी प्राणियों में गर्भ का पालन-पोषण । (ऋ. 1:157:5)
(3) सहदेव-पुत्र सोमक को दीर्घायु बनाना (ऋ. 4:15:9-10)
(4) दुर्बल, दीन, कृश को बल देना (ऋ. 10:39:3)

अथर्ववेद (1500 ई. पू.) में आयुर्वेद विषयक विवेचन अधिक प्राप्त होता है ।

(1) बालकों में कृमिरोग विशेष रूप से मिलता है । अतएव कुमार के कृमियों का विशिष्ट उल्लेख है ।

'कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि' । (5:23:2)

इस सम्बन्ध में 2:31:1-5, 2:32:1-6, 4:37:1-12 एवं 5:23:1-13 मन्त्र भी द्रष्टव्य हैं ।

(2) अंजन का विधान । (7:30:1, 7:36:1 एवं 4:9:1)
(3) रक्षोघ्न द्रव्य (शौ. 5:29:1-5)
(4) मेधाजनन (शौ. 6:108:1-5)

संहिता-ग्रन्थों में कौमारभृत्य

प्राचीन संहिता-ग्रन्थों में चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेलसंहिता, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदय, हारीतसंहिता (इसकी मौलिकता पर आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी ने अपनी 'आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास' पुस्तक में सन्देह किया है) एवं काश्यपसंहिता ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इसमें भेलसंहिता एवं काश्यपसंहिता खण्डित रूप में ही प्राप्त हैं ।

आचार्य चरक ने अष्टांग आयुर्वेद में कौमारभृत्य को छठा स्थान तथा आचार्य सुश्रुत ने पाँचवा स्थान प्रदान किया है ।

'तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ, तद्यथा—कायचिकित्सा, शालाक्यं, शल्यापहर्तृकं, विषगरवैरोधिकप्रशमनं, भूतविद्या, कौमारभृत्यकं, रसायनं, वाजीकरणमिति ।'
(च.सू. 30:28)

'तद्यथा—शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति' । (सु.सू. 1:7)

परन्तु बाद के आचार्य वाग्भट ने कायचिकित्सा के बाद इसे ही स्थान दिया है—

'कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषैः ।
गतमष्टाङ्गतां पुण्यं बुबुधे यं पितामहः' ।। (अ.सं.सू. 1:10)

'कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यद्रंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता' ।। (अ.ह.सू. 1:5)

परन्तु कौमारभृत्य के पितामह आचार्य काश्यप ने इसे प्रथम स्थान देते हुए इसका स्पष्टीकरण भी दिया है—

Scanned with CamScanner

'इति अष्टाङ्गः, तस्य कौमारभृत्यं कायचिकित्सा शल्यापहर्तृकं शालाक्यं विषतन्त्रं भूततन्त्रमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रमिति' ।

'कौमारभृत्यमष्टानां तन्त्राणामाद्यमुच्यते ।
आयुर्वेदस्य महतो देवानामिव हव्यपः ।।
अनेन हि संवर्धितमितरे चिकित्सन्ति' । (का.वि.पृ. 61)

कौमारभृत्य को आठों तन्त्रों में आद्य रूप में कहा गया है, जैसे देवताओं में 'हवि' लेने के कारण 'अग्निदेव' प्रधान हैं, उसी तरह आयुर्वेद में कौमारभृत्य । क्योंकि इसके द्वारा जिसे हम बड़ा करते हैं; दूसरे उसी की चिकित्सा करते हैं अर्थात् कौमारभृत्य विषय के अन्तर्गत वर्णित उपक्रमों द्वारा जिस बालक की सेवा कर उसे बड़ा किया जाता है । आयुर्वेद के अन्य अंगों द्वारा उस बालक (जो युवा होकर व्याधिग्रस्त या अन्य समस्याओं से ग्रसित हो जाता है) की चिकित्सा/उपचार/प्रतिकार किया जाता है ।

अन्य स्थलों पर कौमारभृत्य

वाल्मीकि मुनिकृत रामायण में राम के राज्य में वृद्ध, बाल, प्रसवा आदि हेतु विशेष व्यवस्था थी ।

'न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते' ।
(युद्धका. 128 सर्ग; 99)

'अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः' ।
(उत्तरका. 41 सर्ग; 19)

'जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ ।
भूतघ्नीं चाकरोत् ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ।।
कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
वाल्मिकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम्' ।।
(उत्तरका. 66 सर्ग 3,5-6)

महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में कुमारोत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित किया है ।
(आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास पृ. 535 व 537)

स्कन्द भैषज, जम्भ तथा ग्रहों की चिकित्सा का उल्लेख कौशिकसूत्र (28:1-3) में, नवग्रह का उपचार गृह्यसूत्रों (पा.गृह्य. 1:16:24, आप.गृह्य. 2:7, आप.गृह्य. 7:18:1-4, बौ.गृह्य. 3:7:27) में वर्णित है ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में शिशु-कल्याण पर एक अलग से ही प्रकरण प्रस्तुत किया गया है । (प्र. 11, अ. 16:2)

कौमारभृत्य-विषयक ग्रन्थ

1. काश्यपसंहिता
2. वृद्ध काश्यपसंहिता
3. पर्वतकतन्त्र
4. बन्धकतन्त्र

Scanned with CamScanner

5. हिरण्याक्षतन्त्र
6. रावणकृत कुमारतन्त्र
7. बालतन्त्र
8. कुमारतन्त्र
9. बालचिकित्सामृत (नेपालराजकीय पुस्तकालयस्थ)
10. योगसुधानिधि

काश्यपसंहिता खण्डित रूप में उपलब्ध है। इसके बाद मध्यकाल (8वीं से 10वीं शती के मध्य) की रावण कृत कुमारतन्त्रम्,[1] कल्याण वैद्य विरचित बालतन्त्रम् (सन् 1587-88) उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त 'शिशुरक्षारत्न' नामक ग्रन्थ जो पृथ्वीमल्ल (काल 1400 ई. पूर्व) द्वारा लिखित है भी उल्लिखित है। 20वीं शताब्दी में कौमारभृत्य साहित्य के क्षेत्र में अनेक गम्भीर प्रयास हुए हैं। जिसमें यत्र-तत्र बिखरे हुए सन्दर्भों को संकलित कर व्याख्या के साथ तथा आधुनिक ज्ञान के आलोक में लेखन कार्य किया गया है। यथा—

क्रमांक	ग्रन्थ	लेखक एवं प्रकाशक	वर्ष
1.	कुमारतन्त्र	कविराज यामिनीभूषण, कलकत्ता	1920
2.	कौमारभृत्यम्	डॉ. रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी	1948
3.	बालवेद (आंग्ल भाषा)	डॉ. वी.बी. आठवले, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान (द्वितीय सं. 2000)	1977
4.	कुमारतन्त्र समुच्चय	पं. रमानाथ द्विवेदी एवं अशोककुमार वर्मा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी	1977
5.	अभिनवकौमारभृत्यम्	आचार्य राधाकृष्ण नाथ, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी	1978
6.	कौमारभृत्य	डॉ. अयोध्या प्रसाद अचल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	1986
7.	कौमारभृत्य	डॉ. देवेन्द्र नाथ मिश्र, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी (प्र.सं.)	1990
8.	अभिनव बालतन्त्र	डॉ. चन्दनमल जैन, प्रो. वेदप्रकाश शर्मा चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	1990
9.	कौमारभृत्यम्	डॉ. बलवीरदत्त शास्त्री नाथ पुस्तक भण्डार, रोहतक	1993

1. 'कुमारतन्त्रम्' की आधुनिकतम व्याख्या 1986 में इस पुस्तक के लेखक द्वारा करके, निर्मल आयुर्वेद संस्थान, डी 78 औद्योगिक नगर, अलीगढ़ से प्रकाशित करवायी गयी है।

Scanned with CamScanner

क्रमांक	ग्रन्थ	लेखक एवं प्रकाशक	वर्ष
10.	Child Health Care in Ayurveda	डॉ. अभिमन्यु कुमार, श्री सतगुरु पब्लिकेशन, दिल्ली	1994
11.	Kaumarbhritya in Ayurveda	प्रो. पी.वी. तिवारी चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी	1999
12.	Kaumarbhrityam	डॉ. बी.एल.एन. शास्त्री, रमानी पब्लिकेशन, हैदराबाद	2003

आधुनिक बालचिकित्सा का विकास
(Development of Paediatrics)

पञ्चम शती में आधुनिक चिकित्सा के जन्मदाता हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने लिखा था कि बड़ों से बच्चों के क्रिया-शारीर (Physiological process) एवं विकृति-विज्ञान (Pathological process) में अन्तर होता है। उनका कथन था—

'Then' if diseases be grouped according to different ages, we find that new-born babies suffer from aphthae, vomiting, cough and inflammation of the umbilicus.

यदि व्याधियों का वर्गीकरण वयानुसार किया जाय तो नवजात शिशुओं के वर्ग में मन्दता, वमन, कास एवं नाभिशोथ का वर्णन किया जायेगा। तदुपरान्त दन्तोद्भेदजन्य समस्या, दन्तोलूखल में शोथ, ज्वर, अतिसार एवं आक्षेप भी हो सकते हैं। बाल्यकालीन अपस्मार (Epilepsy) की सम्प्राप्ति (Pathogenesis) का भी वर्णन है; यथा—

Epilepsy, which in those days was termed the sacred disease, was due to phlegm, as the blood vessels are very small, the likehood of brain damage is more[1].

सन् 1553 में प्रथम आंग्लभाषा की पुस्तक 'Boke of Children' (Thomas Phaire) थामस फायर कृत प्रकाशित हुई। जिसमें तत्कालीन इंग्लैण्ड के शिशुओं मे पायी जाने वाली व्याधियों—मुख नासूर (Canker of the mouth), ज्वर, वमन आदि (Scalles of the head, scabbyness and ytche, streytness of wynde, etc) का वर्णन है। जॉन एवं जार्ज आर्मस्ट्रांग (John & George Armstrong) के द्वारा सन् 1769 में एक चिकित्सालय 'For the relief of the infant poor' की स्थापना लन्दन में की गयी जो अर्थाभाव के कारण 30 वर्ष बाद

1. Dr. Indra Amla : 'History of Paediatrics' Journal of the NIMA-volxxl-No I, 1979.

Scanned with CamScanner

बन्द हो गया। परन्तु यही चिकित्सक आधुनिक बालचिकित्सा-विज्ञान के जन्मदाता कहे जाते हैं।

पेरिस में 1892 में डॉ. पेरीवुडिन (Pierre Budin) ने एक चिकित्सालय 'Consultations des Nourrissons' खोला। लगभग उसी समय एडिनवर्ग में डॉ. बैलेण्टाइन (Balantyne) ने गर्भिणी शिशुकेन्द्र खोला। इसी को आधार मान कर समाजसेवी संस्थाओं ने सम्पूर्ण देश में 'Well baby-clinics' की स्थापना कर दी[1]।

जे.एल. डेशपर्ट (1970) के अनुसार 16वीं शती तक बालमनोविज्ञान की दिशा में उपेक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि चिकित्सा की दृष्टि से वयस्कों एवं बालकों में कोई अन्तर नहीं माना गया है। सन् 1887 में इमिंगहास (Hermann Emminghaus) ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक 'Psychic Disturbances of Childhood' में बाल्यकाल के मनोविकारों का क्रमबद्ध वर्णन किया है[2]।

आधुनिक काल के इस शती के अन्त में आधुनिक बालचिकित्साविज्ञान Well Baby Clines, School Medical Services. बालचिकित्सालय, मानसिक एवं शारीरिक रूप से अपङ्ग शिशुओं के लिए चिकित्सालय, नवजात शिशुचिकित्सा केन्द्र आदि रूप में विकसित हो गया है।

'बच्चे ही आदमी के पिता हैं,' 'भावी राष्ट्र के निर्माता हैं'। प्रत्येक कौमारभृत्य-विशेषज्ञ का केवल एक ही ध्येय है कि यदि शिशु स्वस्थ होगा तो मानव जाति, राष्ट्र एवं विश्व भी स्वस्थ होगा।

कौमारभृत्य की निरुक्ति एवं परिभाषा

'तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ, तद्यथा—कायचिकित्सा, शालाक्यं, शल्यापहर्तृकं, विषगरवैरोधिकप्रशमनं, भूतविद्या, कौमारभृत्यकं, रसायनं, वाजीकरणमिति'।

(च.सू. 30:28)

अष्टाङ्ग आयुर्वेद का वर्गीकरण आचार्य चरक ने कर तो दिया, परन्तु प्रत्येक अङ्ग का विवेचन करने का कार्य आचार्य सुश्रुत ने ही किया है। चरकसंहिता के टीकाकार चक्रपाणि ने उपरोक्त सन्दर्भ की व्याख्या में 'कौमारभृत्य' की निरुक्ति इस प्रकार दी है—

'कुमारस्य भरणमधिकृत्य कृतं कौमारभृत्यम्'।

अर्थात् कुमारों के भरण (पोषण) के लिए जो तन्त्र है वही कौमारभृत्य है।

'कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधिनामुपशमनार्थम्'। (सु.सू. 1:7 (5))

1. Disease of Children in the Subtropitc & Tropics, page 26-27.
2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, डी.एन. श्रीवास्तव पृष्ठ 417।

Scanned with CamScanner

जिस तन्त्र में कुमार का भरण-पोषण, धात्री के क्षीरदोषों का संशोधन कर्म, दूषित स्तन्य से उत्पन्न व्याधियों, ग्रहों से उत्पन्न व्याधियों एवं अन्य व्याधियों के संशमन का विवेचन हो, उसे कौमारभृत्य कहेंगे ।

सुश्रुतसंहिता की टीका करते हुए चक्रपाणि ने अपनी पूर्व निरुक्ति में कुछ परिवर्तन किया है—

'कुमाराणां भृतिर्धारणं पोषणं च, तस्येदमिति कौमारभृत्यम्' ।

कुमार की सेवा, धारण, पोषण जिस तन्त्र में वर्णित है, वही कौमारभृत्य है ।

'नवग्रहाकृतिज्ञानं स्कन्दस्य च निषेधनम् ।
अपस्मारशकुन्योश्च रेवत्याश्च पुनः पृथक् ।।
पूतनायास्तथाऽन्धायाः शीतपूतनमण्डिका ।
नैगमेषचिकित्सा च ग्रहोत्पत्तिः सयोनिजा[1] ।।
कुमारतन्त्रमित्येतच्छारीरेषु[2] च कीर्तितम्' । (सु.सू. 3:35-37)

सुश्रुतसंहिता में कौमारभृत्य की प्रथम परिभाषा देने के बाद पुनः उसमें संशोधन किया गया है । नवग्रहों की आकृति का ज्ञान स्कन्द, अपस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मण्डिका एवं नैगमेष का निषेध एवं चिकित्सा तथा योनिव्यापद् प्रतिषेध विषय कौमारभृत्य में समाहित हैं । इसके अतिरिक्त शारीरस्थान में वर्णित (रजःशुद्धि, गर्भावक्रान्ति आदि) विषयों का भी इसमें समावेश है ।

'गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा ।
बालानां रोगशमनी क्रिया बालचिकित्सितम्' ।।
(हा.सं. प्रथमस्थान अ. 2:17)

गर्भ के लिए उपक्रम अथवा गर्भकालीन उपक्रम, सूतिकाकालीन व्यवस्था एवं बालकों के रोगों का संशमन, इन सबका अन्तर्भाव (कौमारभृत्य) बालचिकित्सा में किया जाता है ।

आचार्य रघुबीर प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक विचारों को प्रधानता देते हुए नवीन परिभाषा की है—

'बालस्याप्रसवात् सर्वं पालनं पोषणं तथा ।
धात्रीपरीक्षणञ्चैव स्तन्यविज्ञानमेव च ।।
शिशूनां सर्वरोगाणां ज्ञानं तेषां निवारणम् ।
बालग्रहपरिज्ञानं ह्येतत्कौमारभृत्यकम्' ।। (कौमारभृत्यम्, पृ. 3)

---

1. सयोनिजेति योनिव्यापत् प्रतिषेधाध्यायः; स शब्दः सहार्थः ।
2. शारीरेषु च कीर्तितम् इति । किं तच्छरीरेषूक्तं ? तद्यथा—रजःशुद्धिः, गर्भावक्रान्तिरित्यादि । (डल्हण)

Scanned with CamScanner

प्रसवोपरान्त बालक का पालन-पोषण, धात्री-परीक्षा, स्तन्यविज्ञान, समस्त शिशु-रोगों का ज्ञान एवं उनका परिमार्जन तथा बालग्रहों का ज्ञान कौमारभृत्य के विषय है ।

कौमारभृत्य का क्षेत्र

यद्यपि आचार्य सुश्रुत ने इस विषय में पूर्वोक्त परिभाषा में काफी कुछ कहा है । परन्तु उत्तरतन्त्र मे विषय का वर्णन करने के बाद आचार्य कहते है कि शुक्र एवं आर्तव आदि के दोष, स्तन के रोग, क्लैब्य, मूढ़गर्भ, गर्भिणी के रोग या गर्भिणी की मासा-नुमासिक चिकित्सा, दौहद व्यवस्था, योनिव्यापद, बध्यत्व चिकित्सा एवं उत्तरस्थान में वर्णित सम्बन्धित अंश अथवा प्रसवोपरान्त होने वाली व्याधियों का संशमन कौमारभृत्य का क्षेत्र है ।[1]

परन्तु आधुनिक काल में उपर्युक्त व्यवस्था समाप्त हो गयी है और आचार्य रघुवीर प्रसाद द्विवेदी की परिभाषा ही उपयुक्त प्रतीत होती है ।

कौमारभृत्य विषय का महत्त्व

'कौमारभृत्यमष्टानां तन्त्राणामाद्यमुच्यते ।
आयुर्वेदस्य महतो देवानामिव हव्यपः ।।
अनेन हि संवर्धितमितरे चिकित्सन्ति । बालस्य हृद्यमौषधमन्यत्, प्रमाणमन्य (दन्य) उपक्रमोऽन्ये च विशेषाः' । (का.वि. 1; पृ. 61)

जिस प्रकार सभी देवताओं में अग्नि को श्रेष्ठ माना गया है, उसी प्रकार इस महान् आयुर्वेद के आठ तन्त्रों में कौमारभृत्य श्रेष्ठ माना गया है । इस कौमारभृत्य के द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त हुए की अन्य लोग चिकित्सा करते हैं । सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा बालकों की औषधि अधिक हृद्य (रुचिकर) होनी चाहिए । उसके औषधि की मात्रा, देने की विधि एवं उपक्रम भी भिन्न होता है ।

आधुनिक बालचिकित्सा (Paediatrics) के विशेषज्ञ भी यही कहते हैं कि जिस विज्ञान में बच्चे का अध्ययन गर्भाधान से प्रारम्भ होता है पूरे शैशवकाल में चलता है और युवा होने तक किया जाता है, वह Paediatrics है । [It is a study of the child from very conception through childhood, up to adolescence.]

Paediatric शब्द ग्रीक शब्दों के योग से बना है—

Paediatric = Pedia + iatrike + ics

Pedia : meaning a child or pertaining to a child : शिशु या शिशु विषयक ।

---

1. शुक्रार्तवादयो दोषाः, स्तनरोगाश्च कीर्तिताः । क्लैब्यस्थानानि मूढ़स्य गर्भस्य विधिरेव च ।।
गर्भिणीप्रतिरोगेषु चिकित्सा चाप्युदाहृता । सर्वथा तौ प्रयुञ्जीत योनिव्यापत्सु बुद्धिमान् ।।
अपप्रजाता रोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद्विषक् । (सु.उ. 38:31-32)

Scanned with CamScanner

iatrike : meaning treatment : चिकित्सा ।

ics : meaning a branch of science : विज्ञान की एक शाखा ।

अर्थात् विज्ञान की वह शाखा जिसमे शिशु या शिशु विषयक चिकित्सा का अध्ययन होता है Paediatrics कही जाती है ।

काश्यपसंहिता का परिचय

जिस प्रकार पुनर्वसु आत्रेय द्वारा उपदेशित तथा अग्निवेश द्वारा निबद्ध तन्त्र अग्निवेशतन्त्र के नाम से प्रचलित हुआ उसी प्रकार आज प्राप्त काश्यपसंहिता का नाम वृद्धजीवकतन्त्र होना चाहिए । इसमें महर्षि कश्यप ने उपदेश दिये हैं तथा ऋचीकपुत्र वृद्ध जीवक ने उनके उपदेशों का संकलन किया है । आगे चलकर यह ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गया, तब पुनः तद्वंशीय वात्सय नामक आचार्य ने पुनरुद्धार एवं प्रतिसंस्कार किया । ऐसा विवरण संहिता में प्राप्त है कि वात्सय को अनायास नामक यक्ष से यह संहिता प्राप्त हुई । इसी विवरण में वृद्ध जीवक नाम पड़ने की भी कहानी जुड़ी है ।[1]

आश्चर्य की बात यह है कि इस पूरी संहिता में कहीं भी काश्यप संहिता का नाम नहीं आया है । संहिता के कल्पाध्याय में इसे 'तन्त्र' कहा गया है तथा प्रायः अध्यायों के अन्त में पुष्पिका में विभिन्न नामों का उल्लेख है, यथा—

(इति) वृद्धिजीवकीये कौमारभृत्ये वास्त्यप्रतिसंस्कृते इन्द्रियस्थाने औषधभेषजीयं नामेन्द्रियम् । समाप्तानि चेन्द्रियाणि ।

(इति) वृद्धिजीवकीये कौमारभृत्ये चिकित्सास्थाने·····चिकित्साध्यायः । समाप्तानि च चिकित्सातानि ।

(इति) खिलेषु भोज्यविभागीयो (नाम पञ्चमोऽध्यायः)

(इति) वृद्धकाश्यपीयायां संहितायां कुक्कुणक चिकित्साध्यायस्त्रयोदशः ।

(इति) उत्तरेषु खिलस्थाने भार्गवीयायां संहितायां वैसर्पचिकित्साध्यायश्चतुर्दशः ।

रेखांकित अंश ही पुष्पिकाओं में मिलते हैं पर पुस्तक का नाम उपदेशक के नाम पर है । ऐसा क्यों है ? इसे वृद्धकाश्यपसंहिता या वृद्धजीवकतन्त्र या संहिता कहा जाना चाहिए ।

प्रो. पी.वी. तिवारी ने काश्यप-संहिता की आंग्ल भाषा की टीका के प्रारम्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं—

1. प्राचीनतम काश्यप-संहिता 6ठी शताब्दी ई.पूर्व से द्वितीय शताब्दी ए.डी.
2. वृद्धजीवक द्वारा प्रस्तुत 4थी से 6ठी शताब्दी
3. वात्स्य द्वारा प्रस्तुत 7वीं शताब्दी
4. आज्ञात स्रोत द्वारा प्रस्तुत वर्तमान संहिता का काल 11 से 13वीं शताब्दी होना चाहिए ।

1. का.सं. : संहिताकल्पाध्याय : कल्पस्थान : पृ. 226-227 ।

Scanned with CamScanner

वर्तमान उपलब्ध काश्यपसंहिता चौखम्बा वाराणसी द्वारा प्रकाशित है, जो नेपाल में उपलब्ध पाण्डुलिपि के आधार पर है। यह पाण्डुलिपि ताड़पत्र पर 21½'' x 2¼'' आकार मे है। बीच-बीच में बहुत-से पृष्ठ विलुप्त या खण्डित है। सूत्रस्थान में आदि के 16-17 अध्याय तथा अन्तिम खिलस्थान के 25वें अध्याय के बाद का भाग खण्डित है।

कल्पस्थान के अन्तिम अध्याय में इस संहिता में प्रस्तुत स्थानों एवं अध्यायों का उल्लेख किया गया है जैसा कि प्राय: सभी संहिताओं में मिलता है।

सूत्रस्थान	30	अध्याय	कुल 120 अध्याय एवं खिलस्थान 80 अध्याय
निदानस्थान	8	''	
विमानस्थान	8	''	
शारीरस्थान	8	''	
इन्द्रियस्थान	12	''	
चिकित्सास्थान	30	''	
सिद्धिस्थान	12	''	
कल्पस्थान	12	''	

इस संहिता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कौमारभृत्य है; अत: अष्टाङ्ग आयुर्वेद में प्रथम उसे ही कहा गया है। लेहनकर्म, फक्कचिकित्सा, जातहारिणी विवेचन, फलप्राशन संस्कार धूपकल्प इसकी अपनी मौलिकता है। बालग्रहों की संख्या में वृद्धि (10), दन्तजन्म एवं व्याधि वर्णन, विभिन्न प्रकार के औषधिकल्प, पञ्चविध कषायकल्पना के स्थान पर सप्तविध कषायकल्पना (चूर्ण एवं अभिषव) का वर्णन, 64 प्रकार के सूतिकारोग, कर्णवेध का प्रयोग आदि विषय इनका अपना योगदान है।

इसके काल के विषय में प्रो. प्रियव्रत शर्मा जी ने 'आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास' पुस्तक में लिखा है कि यद्यपि यह ग्रन्थ तीसरी-चौथी शती से पूर्व अवश्य प्रसिद्ध था, क्योंकि 'नवनीतक' में कश्यप एवं जीवक दोनों का उल्लेख है। परन्तु जैसा संहिता में ही लिखा है कि मध्य में विलुप्त होने के बाद वात्स्य ने यक्ष से प्राप्त किया और प्रतिसंस्कार किया, उस आधार पर इसका काल 6ठी-7वीं शती मानना चाहिए।

काश्यपसंहिता में आयुर्वेदावतरण

'कथं चोत्पन्न इति; आह–अथर्ववेदोपनिषत्सु प्रागुत्पन्नः, स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित्, ततो विश्वानि भूतानि। ततस्तं पुण्यमायुर्वेदमनन्तमायुषो वर्धनमाधारमाप्यायनममृतमश्विभ्यां कः प्रददौ, ताविन्द्राय, इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यपवशिष्ठात्रिभृगुभ्यः; ते पुत्रेभ्यः।

(का.सं.वि.; पृ. 61)

आयुर्वेद सर्वप्रथम अथर्ववेदोपनिषद् में उत्पन्न हुआ, सर्वज्ञाता ब्रह्मा ने लोगों को उत्पन्न करने की इच्छा से उनकी रक्षार्थ प्रथम आयुर्वेद को उत्पन्न किया। तदनन्तर

Scanned with CamScanner

प्राणियों की रचना की। फिर आयुर्वेद का ज्ञान अश्विनीकुमारों को दिया। उनसे इन्द्र को, इन्द्र से कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि एवं भृगु को आयुर्वेद का ज्ञान मिला। अन्य संहिताग्रन्थों का तुलनात्मक विवरण तालिका में प्रस्तुत है।

आयुर्वेद-परम्परा

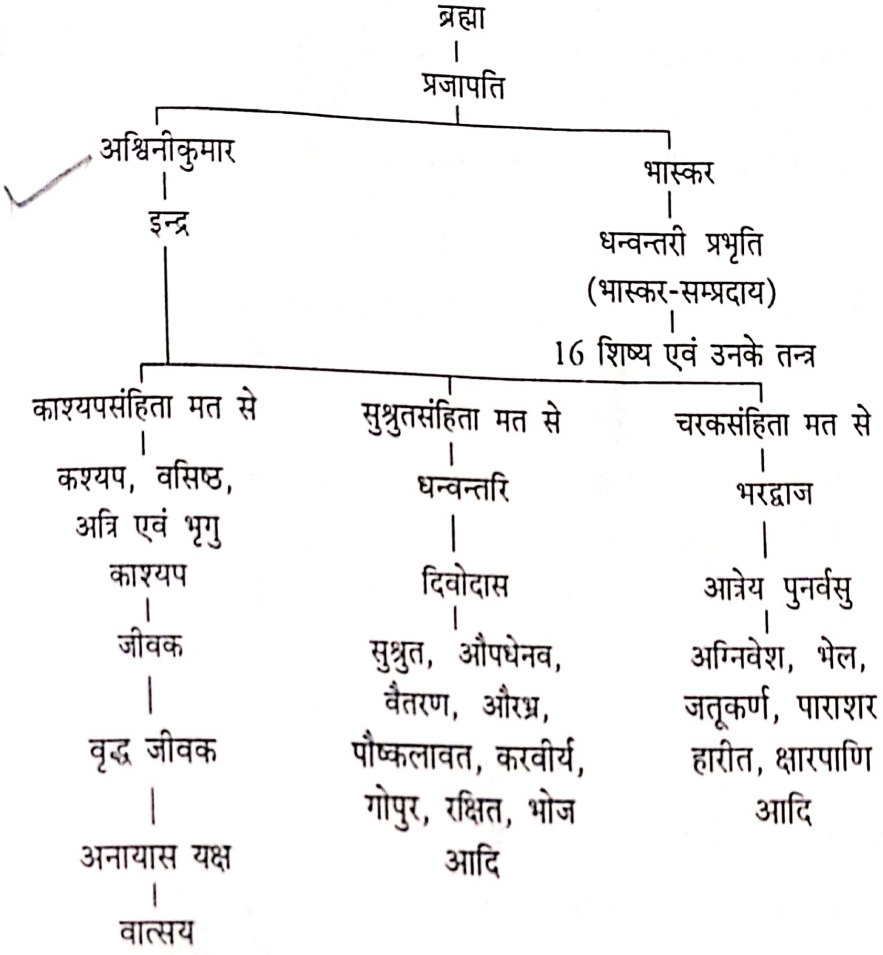

काश्यपसंहिता का विकास

इस प्रकार प्राप्त आयुर्वेद का प्रादुर्भाव कश्यप ने तन्त्र निर्माण करके किया। इन्द्र से उपदेश प्राप्त करने वाले चार शिष्य कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि एवं भृगु थे। इनमें से कश्यप द्वारा दिये गये उपदेशों का संकलन जीवक (वृद्धजीवक) ने किया। तदनन्तर उसे प्रतिसंस्कारित करने का कार्य वात्स्य ने किया। जिसके उपरान्त वर्तमान स्वरूप किसी अन्य आचार्य द्वारा प्रस्तुत किया गया। आचार्यों का परिचय इस प्रकार है—

महर्षि कश्यप

काश्यप संहिता में कश्यप, वृद्धकाश्यप, मारीच काश्यप नाम आये हैं। अन्य स्थानों पर भी कश्यप, काश्यप, मारीच पुत्र, काश्यपवत्सर आदि सन्दर्भ भी मिलते हैं।

कश्यप ही वृद्ध कश्यप हैं ? वृद्ध शब्द उनकी वरिष्ठता का द्योतक है। ऐसा भी कुछ विचारकों का मानना है। कुछ सन्दर्भों के आधार पर इन्हें अलग माना गया है।

Scanned with CamScanner

इसके अतिरिक्त महाभारत के तक्षक-दंशोपाख्यान में, तौत्तिरीयसंहिता, पाणिनी व्याकरण तथा काश्यप संहिता नाम की उमामहेश्वर-संवादरूप चिकित्सा विषयक पुस्तकों में भी काश्यप का उल्लेख मिलता है। परन्तु यह सभी सन्दर्भ कौमारभृत्य विषयक नहीं है।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इस ग्रन्थ का काल दूसरी से चौथी शती पूर्व माना है। अत: उनके मत से कश्यप का काल भी यही है। प्रो. पी.वी. तिवारी ने छठी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी का काल माना है। डॉ. चन्दन मल जैन ने अपनी पुस्तक 'अभिनव बालतन्त्र' में इन्हें वार्योविद का समकालीन माना है।

वृद्ध जीवक

इनके सन्दर्भ में काश्यप संहिता के संहिताकल्पाध्याय का 18 से 24 तक का श्लोक द्रष्टव्य है। इसमें ऋचीक पुत्र जीवक का उल्लेख है। जिन्होंने काश्यप द्वारा निर्मित तन्त्र को संक्षिप्त कर प्रस्तुत किया। इन्हें ही वृद्धजीवक भी बताया गया है।

अत: स्पष्ट है कि वृद्धजीवक या जीवक ऋषि ऋचीक के पुत्र थे। जिनके द्वारा प्रचलित काश्यप संहिता निर्मित की गयी है।

काश्यप संहिता में इनके दो नाम और उल्लिखित मिलते हैं—स्थविरेण (कल्प/लशुन/3) एवं भार्गव (कल्प/विशेषक/12)

प्रो. पी.वी. तिवारी ने इनका काल 4थी से 6ठी शताब्दी का माना है। इस नाम से बौद्ध ग्रन्थों तथा जैन ग्रन्थों के पर्यालोचन में भी आचार्यों का उल्लेख मिलता है। परन्तु बौद्ध जीवक शल्यतन्त्र के ज्ञाता थे एवं जैन धर्म का जीवक भी चिकित्सक नहीं था।

वात्स्य

'वृद्धजीवकवंश्येन ततो वात्स्येन धीमता ।
अनायासं प्रसाद्यथ लब्धं तन्त्रमिदं महत्' ।। (का.कल्प.सं. 26)

वात्स्य वृद्धजीवक के वंश में उत्पन्न हुए थे जिन्होंने अनायास नामक यक्ष को प्रसन्न कर यह तन्त्र प्राप्त किया था। शिवकश्यप, यक्ष आदि को प्रसन्न करके उन्होंने वृद्धजीवक निर्मित तन्त्र का संस्कार कर प्रस्तुत किया। एवं खिलस्थान को भी उन्हीं के द्वारा जोड़ा गया है।

'स्थानेष्वष्टसु शाखायां यद्यन्नोक्तं प्रयोजनम् ।
तत्तद्भूयः प्रवक्ष्यामि खिलेषु निखिलेन त' ।। (का.कल्प.सं. 28)

वृद्ध जीवक भृगुवंशी होने के कारण भार्गव कहलाये। इसी कारण वात्स्य भी भार्गवगोत्रीय कहलाये।

Scanned with CamScanner

अध्याय - 2

वय वर्गीकरण एवं सामान्य चिकित्सा

सभी आचार्यों ने प्रायः सम्पूर्ण वय को बाल, युवा एवं वृद्धावस्था में विभाजित किया है। परन्तु कौमारभृत्य में वय वर्गीकरण का विशेष महत्त्व है। इस दृष्टि से आचार्य कश्यप ने अधिक विस्तृत दृष्टिकोण अपनाया है।

'गर्भबालकुमाराख्यमित्येतत् त्रिविधं वयः।
यौवनं मध्यमं वृद्धमेतच्च त्रिविधं पुनः॥
वर्षावरः क्षीरपः स्याद्यावत् पिबति वा पयः।
वयस्तद्बालमस्माच्च यावत् षोडशवार्षिकः॥
अन्ननादः सर्व एव स्यात् कौमारे वयसि स्थितः।
अतः परं धातुसत्त्वबलवीर्यपराक्रमैः'॥ (का.खि. 3:72-74)

'तद्वयो यथास्थूलभेदेन त्रिविधं—बालं, मध्यं, जीर्णमिति। तत्र बालमपरिपक्व-धातुमजातव्यञ्जनं सुकुमारमक्लेशसहमसम्पूर्णबलं श्लेष्मधातुप्रायमाषोडशवर्षम्'। (च.वि. 8:122)

'वयस्तु त्रिविधं—बाल्यं, मध्यं, वृद्धमिति। तत्रोनषोडशवर्षा बालाः। ते त्रिविधाः—क्षीरपाः, क्षीरान्नादा, अन्नादा इति, तेषु संवत्सरपराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः, परतोऽन्नादा इति'। (सु.सू. 35:29)

'त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः'। (अ.ह.उ. 2:1)
'वयस्त्वाषोडशाद्बालं तत्र धात्विन्द्रियौजसाम्।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं क्षयः॥ (अ.ह.शा. 3:105)

'वयस्त्रिविधं—बालं मध्यं वृद्धं च। तत्राषोडशाद्वर्षाद्वालम्। आ षष्टेर्मध्यम्। ततो वृद्धम्। तेष्वपि स्तन्याहारोभयवृत्त्या बालं त्रिविधम्। अन्ये पुनराहुः—बाल्ये वृद्धिं प्रभामेधात्वक्शुक्राक्षिश्रुतीन्द्रियम्'।

'दशकेषु क्रमाद्यान्ति मनः सर्वेन्द्रियाणि च'॥ (अं.सं.शा. 8:24,25)

गर्भ, बाल एवं कुमार यह तीन प्रकार की आयु होती है। पुनः यौवन, मध्यम एवं वृद्ध तीन में आयु विभाजित है। एक वर्ष की वय (आयु) तक अथवा जब तक वह दूध पीता है यह क्षीरप काल है। यह बालावस्था है। इसके उपरान्त 16 वर्ष तक

Scanned with CamScanner

की वय का काल अन्नाद कहलाता है[1], यह कुमारावस्था है। इसके बाद धातु, सत्त्व, बल, वीर्य एवं पराक्रम के द्वारा बढ़ता हुआ व्यक्ति उत्तर परिणाम के अनुसार 34 वर्ष की अवस्था तक युवा कहलाता है। धातु आदि के स्थिर हो जाने पर 70 वर्ष की अवस्था तक मनुष्य की मध्यमावस्था, तदुपरान्त वृद्धावस्था आती है। (कश्यप)

बाल्यावस्था 16 वर्ष पर्यन्त रहती है। इस अवस्था में शरीर की धातुएँ अपरिपक्व होती हैं, व्यञ्जनादि चिह्न उत्पन्न नहीं होते; शरीर कोमल, क्लेश सहने में असमर्थ, बल-वर्ण की सर्वाङ्गीण वृद्धि से अपूर्ण होता है। श्लेष्मा का प्राधान्य होता है। (चरक)

सुश्रुत ने भी बाल, मध्यम एवं वृद्ध के वर्ग से आयु कहते हुए 16 वर्ष की मर्यादा बाल की मानी है। बाल को क्षीरप (1 वर्ष), क्षीरान्नाद (1 से 2 वर्ष) एवं अन्नाद (2 वर्ष के उपर 16 वर्ष) तक माना है।

चरक के ही मतों का प्रतिपादन प्रायः वाग्भट ने अपने दोनों ग्रन्थों में किया है। अष्टांगसंग्रहकार ने अन्यत्र (शा. 8/25) बालावस्था 10 वर्ष तक ही मानी है। तथा आहार के आधार पर बालक को क्षीराद, क्षीरान्नाद एवं अन्नाद बताया है। (अं.सं.उ. 2:2)

यदि बालावस्था 16 वर्ष को उपरोक्त वर्णन के आधार पर संकलित करें तो निम्नाङ्कित स्वरूप स्पष्ट होता है—

1. गर्भ	9 चान्द्रमास		—
2. बाल-क्षीरप	1 वर्ष की वय		—
3. क्षीरान्नाद	2 वर्ष की वय	कुमार	2 से 16 वर्ष की वय
4. अन्नाद	3 से 16 वर्ष की वय		

उपरोक्त अवस्था का विवेचन सामान्य दृष्टि से स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिए दिया गया है, परन्तु ऐसा देखा जाता है कि स्त्री की प्रजनन शक्ति सम्पूर्ण मध्यमावस्था में नहीं रहती, बल्कि इसी वय में रजोनिवृत्ति भी हो जाती है। स्त्री बालावस्था की अन्तिम सीमा में अर्थात् 16 वर्ष की अवस्था में पूर्ण वीर्य वाली होकर सम्भोग एवं गर्भाधान योग्य हो जाती है।

'पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्'॥ (सु.सू. 35:13)

महर्षि काश्यप ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि आरोग्य एवं आहारादि सामान्य हो तो पूर्णता या गर्भाधान योग्यता की अवस्था इसके पूर्व आ सकती है।

---

1. आचार्य कश्यप ने अन्यत्र क्षीरान्नाद शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु वय वर्गीकरण में उल्लेख नहीं किया है; यथा—'क्षीरान्नादस्य बालस्य प्रायेणाहारसङ्करात्' (का.खिल. 3:83)

Scanned with CamScanner

'अर्वागपि यदाहारविशेषादारोग्याच्च पूर्णे भवत इति परिषत्' ।

(का., शा.जाति पृ. 79)

महर्षि हारीत ने 5 वर्ष तक की कन्या को बाला, आगे 6 वर्ष (अर्थात् 11 वर्ष की वय) तक की कन्या को मुग्धा कहा है । पुनः 12 वर्ष तक बाला एवं आगे 7 वर्ष तक (19 वर्ष) मुग्धा कहा है । उपर्युक्त वर्णन में बाला-मुग्धा का वय वर्गीकरण दो बार किया है, सम्भवतः देश, काल, जाति आदि के कारण यह अन्तर आया है ।

'पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समाविधम् ।
द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम्' ।।

(हा.सं., प्रथम स्थान 5:13)

धर्मशास्त्र की पुस्तक पाराशरस्मृति में बाला की अवस्था को 8 वर्ष तक, गौरी नव वर्ष तक, रोहिणी दस वर्ष तक, कन्या एवं उसके उपरान्त रजस्वला की संज्ञा दी गयी ।

'अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला' ।। (पाराशरस्मृति 7:6)

आयुर्वेद इतर ग्रन्थों में वय-वर्गीकरण को और भी स्पष्ट किया गया है । विभिन्न शब्द कोषों में उसे ही आधार भी बनाया गया है—

'आपञ्चवर्षाद् वाल्यं स्यात्पौगण्डं नव वर्षतः ।
आषोडशाच्च कैशोरं, यौवनं च ततः परम् '।। (अमरकोष)

'कौमारं पञ्चशब्दान्तं, पौगण्डं दशमावधि ।
कैशोरमापञ्चदशात्, यौवनञ्च ततः परम्' ।। (शब्दकल्पद्रुम)

वय-वर्गीकरण	अमरकोष	शब्दकल्पद्रुप
बाल्यावस्था	5 वर्ष तक	—
कौमारावस्था	—	5 वर्ष तक
पौगण्ड	9 वर्ष तक	10 वर्ष तक
किशोरावस्था	16 वर्ष तक	15 वर्ष तक
यौवनावस्था	16 वर्ष के बाद	15 वर्ष के बाद

संक्षेप में बालक एवं कन्या का वय-वर्गीकरण आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों का समन्वय करते हुए निम्न तालिका के अनुसार प्रस्तुत किया जा सकता है ।

Scanned with CamScanner

आयुर्वेद एवं आयुर्वेदेतर भारतीय शास्त्रों के आधार पर वय वर्गीकरण

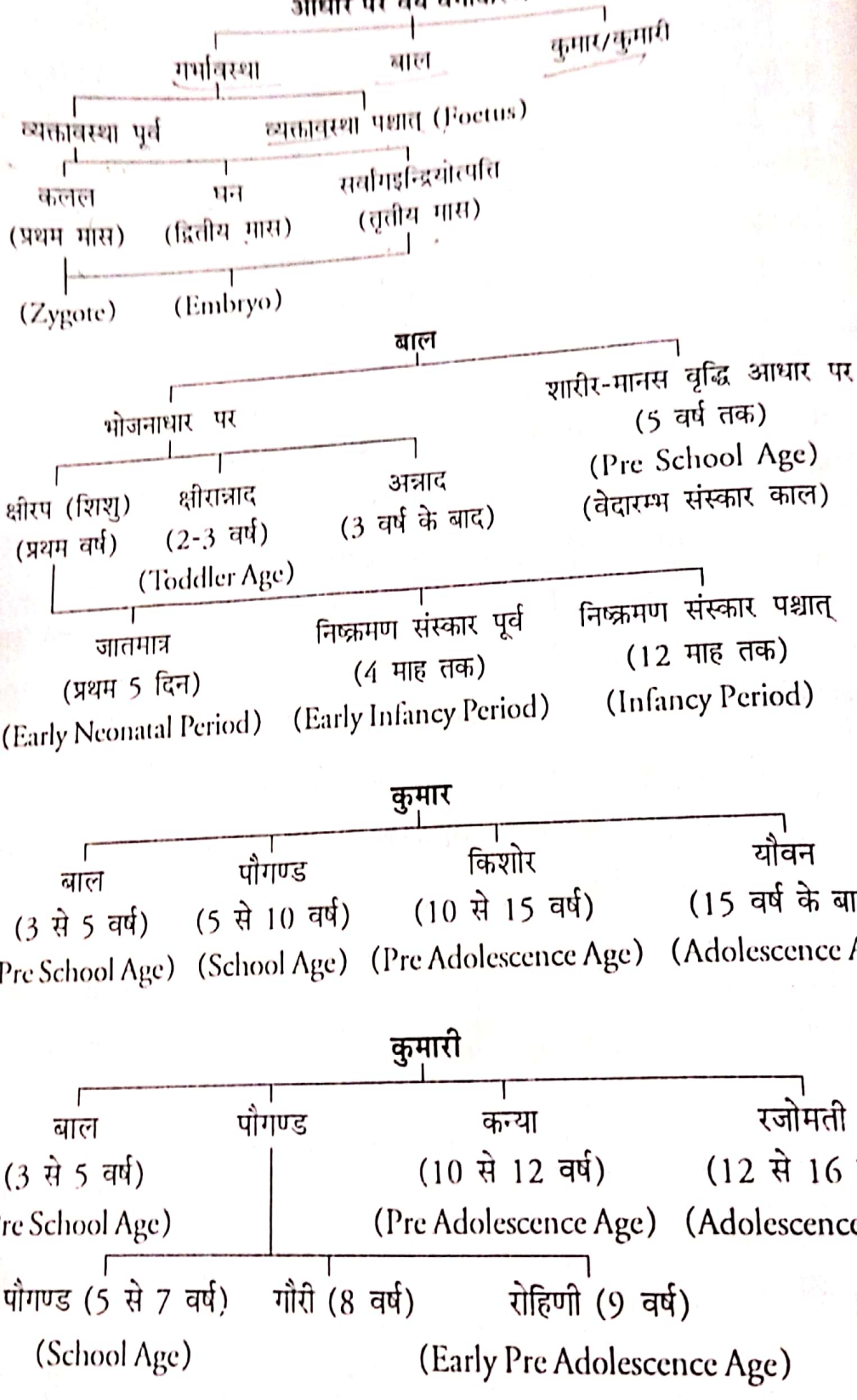

शरीर में त्रिदोष सदैव उपस्थित रहते हैं, उनमें विभिन्न परिस्थितियों में तर-तम का भेद होता है। पूर्व पृष्ठ में वर्णित बालावस्था के समस्त उपवर्गों में स्त्री-शरीर की दृष्टि से दोषों की स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्यम्भावी है, क्योंकि आर्तव के आग्नेय होने

Scanned with CamScanner

से उसके उत्पत्ति-काल में शरीर में तेज महाभूत की वृद्धि होगी, जिसके कारण पुरुष की अपेक्षा स्त्री में पित्त का प्राधान्य कुछ पहले आयेगा। दोषों का सम्भावित निर्देश निम्नांकित है—

बाल्यावस्था के उपवर्ग	आयुसीमा	शारीरिक परिवर्तन	दोषस्थिति
1. बाला (गौरी-रोहिणी-कन्या-बाला आदि)	10 वर्ष	सर्वांगीण शारीरिक विकास	कफोल्बण, पित्त एवं वायु हीन
2. कुमारी (रजोदर्शन पूर्वावस्था या मुग्धा)	10 से 12 वर्ष	स्तन एवं योनि वृद्धि आदि	कफोल्बण, पित्त मध्य एवं वायु हीन
3. रजोमती (रजोदर्शनावस्था या रजस्वला या मुग्धावस्था)	12 से 16 वर्ष	रजोदर्शन प्रारम्भ एवं पूर्ण-रूपेण उपस्थिति, स्त्री गर्भाधान योग्य (अन्तिम चरण में)	कफपित्तोल्बण एवं वायु हीन

आधुनिक चिकित्साविज्ञान में शारीरिक वृद्धि, सहिष्णुता, आवश्यकता आदि को ध्यान में रखकर वर्गीकरण किया है। गर्भावस्था में गर्भस्थ शिशु का जीवन सामान्य रूप से 3 वर्गों में विभक्त है—

(1) Zygote—गर्भाधान के दिन से 2 सप्ताह तक का काल।

(2) Embryo—8 से 12 सप्ताह तक अर्थात् Zygote काल के बाद 8 सप्ताह अथवा गर्भाधान से 12 सप्ताह तक का काल।

(3) Foetus—11वें या 12वें सप्ताह से जन्म तक का काल।

जन्म के उपरान्त वय वर्गीकरण निम्नवत् है—

वर्ग	उपवर्ग	वय
1. नवजातकाल (Neonatal)	—	जीवन का प्रथम माह
	1. प्रारम्भिक नवजात काल	जीवन का प्रथम सप्ताह
	2. विलम्बित नवजात काल	अवशेष 21 दिन
2. बाल्यावस्था (Infant)	—	द्वितीय माह से 12 या 18 माह
	1. प्रारम्भिक बाल्यावस्था	द्वितीय माह से 3 या 4 माह
	2. विलम्बित बाल्यावस्था	3 या 4 माह से 12 या 18 माह-तक

Scanned with CamScanner

वर्ग	उपवर्ग	वय
3. शैशवकाल (Toddler)	—	12 से 36 माह तक
4. कुमारावस्था (School age)	1. पूर्व कुमारावस्था (Pre-school age)	3 वर्ष से 10 वर्ष तक 3-4 वर्ष से 5-7 वर्ष तक
	2. कुमारावस्था (Mid childhood age)	5-7 वर्ष से 8-10 वर्ष तक
5. यौवन पूर्वावस्था (Adolescence)	—	10-12 वर्ष से 16-18 वर्ष तक

बालक एवं कन्या का वय विभाजन काल लगभग कुमारावस्था (Mid childhood age) से अलग हो जाता है। यह काल कन्या में लगभग 10 वर्ष पर एवं लड़कों में 12 वर्ष पर समाप्त होता है। यौवन-पूर्वावस्था कन्याओं में 10 वर्ष से तथा बालकों में 12 वर्ष से प्रारम्भ हो जाती हैं। इस काल की समाप्ति बहुत कुछ बालक या कन्या के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक एवं पारिवारिक अवस्था पर निर्भर करता है। कन्या में यौवन-पूर्वावस्था (Puberty = रजोदर्शन प्रारम्भकाल) कुछ पहले तथा लड़कों में यौवन-पूर्वावस्था कुछ देर से प्रारम्भ होती है। Pubescence (द्वितीयक लिङ्गबोधक लक्षण) एवं Prepubescence (पूर्वावस्था - द्वितीयक लिङ्गबोधक लक्षण) में वर्गीकरण करने का प्रयास अवश्य किया गया है। परन्तु कोई स्पष्ट सीमारेखा नहीं खींची जा सकती है।

वय-विषयक कुछ पारिभाषिक शब्द

1. गर्भावस्था काल—स्त्री के अन्तिम रजोदर्शन काल के प्रथम दिन से गर्भ के जन्म लेने के दिन तक का समय, प्राय: 280 दिन है। ज्ञातव्य है कि गर्भ गर्भाशय में 266 दिन ही सामान्य रूप से रहता है।

2. Perinatal period—गर्भ के 28वें सप्ताह से लेकर (1000 ग्राम शिशुभार से) शिशुजन्म के बाद 7 दिन तक का समय।

3. नवजात शिशु-काल—जीवन के प्रथम 28 दिन। इसमें प्रारम्भिक 7 दिन अति महत्त्वपूर्ण है (Early neonatal period)।

इसके आधार पर नवजात शिशु 3 वर्गों में बाँटे जाते हैं।

(1) समय पूर्व (Preterm or Immature, या Early born or premature अर्थात् 37 सप्ताह से पूर्व के जन्म लिये हुए शिशु (36 सप्ताह तक की वय)।

Scanned with CamScanner

(2) समय पर जन्म—(Term or Full term) जिनकी गर्भावस्था 36 से 41 सप्ताह की हो ।

(3) समयोपरान्त (Post term or Post mature) अर्थात् 42 सप्ताह या इसके बाद का जन्म ।

जन्म-भार—2500 ग्राम तक या इससे कम भार के शिशु को विशेष देख-रेख चाहिए । इन्हें समय पूर्व (Low birth weight LBW., Preterm or Small-for-date) शिशु कहते हैं ।

जन्मभार एवं गर्भकाल के आधार पर वर्गीकरण

(क) समय पूर्व—SFD, Small-for-date or Intrauterine growth retardation या Small-for-gestational age or Light for dates अर्थात् 10 परसेण्टाइल (-2 S.D.) से कम शरीर-भार उस गर्भावस्था के शिशु के लिए ।

(ख) समय पर—SFD (Appropriate-for-date or Gestational age) अर्थात् 10 से 90 परसेण्टाइल के मध्य शरीर-भार उस गर्भावस्था के शिशु के लिए ।

(ग) समयोपरान्त—LFD(Large-for-date or Gestational age) 90 परसेण्टाइल (+ 2 S.D.) से अधिक शरीर-भार उस गर्भावस्था के शिशु के लिए ।

इन सभी वर्गों को मिलाकर यह स्थिति बनती है—

1. समय पूर्व (Preterm)	I SFD
	II AFD
	III LFD
2. समय पर (Term)	I SFD
	II AFD
	III LFD
3. समयोपरान्त (Post term)	I SFD
	II AFD
	III LFD

आयुर्वेद में वय-बोधक अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें यहाँ परिभाषित किया जा रहा है; यथा—

(1) **शिशु**—अत्यधिक शयन करने के कारण इसे शिशु कहते हैं ।
'अतिशय शयनेन इति शिशुः' ।

(2) **बालक**—यह शब्द बल से बना है ।

Scanned with CamScanner

'बल्यते, बलते, वा' । 'बल सञ्चलने' । 'बल प्राणने, बल संवरणे' ।
(अमरकोष 2/6/42, 3/3/205)

अर्थात् वह आयु जिसमें सतत बल का संवरण एवं संचालन हो ।

(3) **कुमार**—इस शब्द की व्याख्या निम्नलिखित है—

'कुमारयति क्रीडति', 'कुमारं क्रीडायाम्', 'कुत्सितो मारोऽस्येति वा' ।
(अमरकोष 1/1/40, 1/7/12)

जिस वय में क्रीडा करना, खेलना मुख्य व्यसन हो और कामेच्छा न जाग्रत् हुई हो वह कुमार है ।

कुमार = कु+मार = मृ या शीघ्र मृत्यु की आशंका
(मोनियर विलियम्स, संस्कृत-इंग्लिश शब्दकोष)

अर्थात् जिस वय में मृत्युदर सर्वाधिक हो वह कुमारावस्था है ।

बालरोगों का सामान्य चिकित्सासूत्र

'यदि त्वातुर्यं किञ्चित् कुमारमागच्छेत् तत् प्रकृतिनिमित्तपूर्वरूपलिङ्गोपशयविशेषैस्तत्त्वतोऽनुबुध्य सर्वविशेषानातुरौषधदेशकालाश्रयानवेक्षमाणश्चिकित्सितुमारभेतैनं मधुरमृदुलघुसुरभिशीतशङ्करं कर्म प्रवर्तयन् । एवंसात्म्या हि कुमारा भवन्ति । तथा ते शर्म लभन्ते चिराय । अरोगे त्वरोगवृत्तमातिष्ठेद्देशकालात्मगुणविपर्ययेण वर्तमानः, क्रमेणासात्म्यानि परिवर्त्योपयुञ्जानः सर्वाण्यहितानि वर्जयेत् । तथा बलवर्णशरीरायुषां सम्पदमवाप्नोतीति' ।। (च.शा. 8:65)

यदि संयोगवश बालक को कोई रोग हो जाय तो बालक की प्रकृति या रोग की प्रकृति, दूष्य, निमित्त, पूर्वरूप, रूप, उपशय इन रोगपरीक्षात्मक विधियों से रोग का निश्चय कर सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए आतुर, औषधि, देश, काल, रोग का आश्रय आदि को देखते हुए चिकित्सा प्रारम्भ करें । बालक की चिकित्सा मधुर, मृदु, लघु, सुरभि (सुगन्धित), शीत एवं आनन्ददायक कर्म से करें । ये विधियाँ शिशु को सात्म्य होती हैं । इस प्रकार के द्रव्यों से चिकित्सा करने पर बहुत शीघ्र ही बालक स्वस्थ हो जाता है । यदि बालक स्वस्थ है तो देश, काल और अपने गुण (प्रकृति) के विपरीत आहार-विहार का सेवन करते हुए स्वस्थवृत्त का पालन करें । यदि मधुरादि द्रव्यों से विपरीत द्रव्य बालक को सात्म्य हो गया है तो भी वह अहितकर होने से असात्म्य कहा जायेगा । इसका क्रमशः त्याग करते हुए सात्म्य द्रव्यों का सेवन करना चाहिए । इस प्रकार की वृत्ति करने पर शिशु बल, वर्ण, शरीर और आयु की श्रेष्ठता को प्राप्त करता है । इन्हीं तथ्यों को पुनः स्पष्ट करते हुए चिकित्सास्थान अ. 30 में चरक पुनः कहते हैं—

'दोषदूष्यमलाश्चैव महतां व्याधयश्च ये ।।
त एव सर्वे बालानां मात्रा त्वल्पतरा मता ।

Scanned with CamScanner

निवृत्तिर्वमनादीनां मृदुत्वं परतन्त्रताम् ॥
वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यं वीक्ष्य बालेषु शास्त्रवित् ।
भेषजं स्वल्पमात्रं तु यथाव्याधि प्रयोजयेत् ।
मधुराणि कषायाणि क्षीरवन्ति मृदूनि च ।
प्रयोजयेद्भिषग्बाले मतिमानप्रमादतः ।
अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लं कटुविपाकि च ।
गुरु चौषधपानान्नमेतद्बालेषु गर्हितम् ॥
समासात् सर्वरोगाणामेतद्बालेषु भेषजम् ।
निर्दिष्टं शास्त्रविद्वैद्यः प्रविविच्य प्रयोजयेत्' ॥ (च.चि. 30:287)

जो युवा या वृद्ध मनुष्यों के शरीर में दोष, दूष्य, मल तथा व्याधि एवं चिकित्सा होती है, वही दोष, दूष्य, मल तथा रोग एवं चिकित्सा सभी बालकों में भी होती है; किन्तु बालकों के शरीर में सभी की मात्रा अल्प होती है (ऐसा ही माधव ने भी कहा है)[1] । शास्त्र का ज्ञाता चिकित्सक शिशु में कोमलता और परतन्त्रता को देखकर वमनादि संशोधन कर्म को छोड़ देवे तथा वचन एवं चेष्टा में सामर्थ्य देखकर रोगानुसार अल्प मात्रा में औषधि का प्रयोग करें ।

बालक अपनी प्रवृत्ति के आनुसार 2 वर्ग में विभाजित होते हैं, (1) स्वतन्त्र वृत्ति, (2) परतन्त्र वृत्ति । परतन्त्र वृत्ति बालक वे हैं जो अपनी इच्छानुसार आहार-विहार न कर सकते हों । वे मात्र दुग्धाहारी होते हैं । उनमें माँगने की या स्वयं आहार करने की शक्ति नहीं होती है । जो बालक कुछ बोल सकते हैं या कह सकते हैं तथा चेष्टाएँ कर सकते हैं, उन्हें तदनुरूप अल्पमात्रा में औषधि दी जानी चाहिए । परतन्त्र वृत्ति बालक के रोगकाल में औषधि माता को देनी चाहिए या स्तन पर लेप करना चाहिए ।

बुद्धिमान् चिकित्सक को चाहिए कि वह प्रमाद रहित होकर मधुर द्रव्यों के क्वाथ में दूध मिलाकर मृदु बनाकर बालकों को दें । अत्यन्त स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, अम्ल तथा जो द्रव्य विपाक में कटु तथा जो औषध, पान और अन्न गुरु हों, बालकों के लिए त्याज्य हैं । इस प्रकार बालकों में होने वाले सभी रोगों की चिकित्सा (सिद्धान्त रूप में) संक्षेप में बता दी गयी है । शास्त्रज्ञ को इनका विचार कर प्रयोग करना चाहिए । चरक के ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन शब्दभेद से आचार्य कश्यप ने किया है—

'न त्वेव बालस्य विशोषणं हितं नैवातिसंशोधनरक्तमोक्षणे ।
स्निग्धैः सुशीतैर्मधुरैरदाहिभिस्तत्रोपचारोऽशनलेपसेचनैः' ॥
(का.सूत्र 27:66)

---

1. ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ।
बालदेहेऽपि ते तद्वद् विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥ (माधवनिदान 68:16)

Scanned with CamScanner

बालक का चिकित्सा कार्य में अधिक शोषण, अधिक रक्तमोक्षण तथा अधिक संशोधन उचित नहीं है। उनका स्निग्ध, शीतल, मधुर तथा दाह न उत्पन्न करने वाले अन्नपान, लेप तथा परिषेक के द्वारा ही उपचार करना चाहिए।

आचार्य वाग्भट ने सभी मतों का प्रतिपादन नाऽति संक्षेप नाऽति विस्तार से किया है—

'रोगांश्चास्य जयेत्सौम्यैर्भेषजैरविषादकैः।
अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेर्विरेकं सुतरां त्यजेत्' ॥
(अ.ह.उ. 1:40; अं.सं.उ. 1:58)

बच्चों के रोगों को सौम्य और कष्ट न देने वाली औषधियों से शान्त करें। बिना किसी आत्ययिक रोग के बच्चे को विरेचन बिल्कुल नहीं देना चाहिए।

'यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम्।
विभज्य देशकालादींस्तत्र योज्यं भिषग्जितम् ॥
त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च यत्।
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी' ॥

दोषानुसार, रोगानुसार, दोष के परिमाण के अनुसार, आशय के अनुसार; देश, काल, सत्त्व एवं सात्म्य आदि का विचार करके औषधि देनी चाहिए। क्योंकि वे ही तो वातादि दोष हैं, वे ही रसादि दूष्य हैं और ज्वरादि रोग भी वही हैं इसलिए पूर्वोक्त (कायचिकित्सा विषय) औषध बच्चों में भी बरतनी चाहिए। केवल मात्रा उनमें कम होनी चाहिए।

'सौकुमार्याल्पकायत्वात् सर्वान्नानुपसेवनात्।
स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात् ॥
सद्यस्तान् वमनं तस्मात् पाययेन्मतिमान् मृदु।
स्तन्यस्य तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीरान्नसेविनम् ॥
पीतवन्तं तनुं पेयामन्नादं घृतसंयुताम्।
बस्तिं साध्ये विरेकेण मर्शेन प्रतिमर्शनम्।
युञ्ज्याद्विरेचनादींस्तु धात्र्या एव यथोदितान्' ॥ (अ.ह.उ. 2:31-34)
(अं.सं.उ. 2:26-29)

सुकुमारता से, स्वल्प शरीर होने से, सब अन्नों के सेवन नहीं करने से, घृत एवं दूध का सेवन करने के कारण बालक सदा स्निग्ध रहते हैं। इसलिए बुद्धिमान् वैद्य इनको तुरन्त कोमल वमन पिलाये। क्षीरपायी, क्षीरान्नपायी बच्चे को दूध से तृप्त करके वमन करायें। विरेचन-साध्य रोगी में बस्ति देवें, मर्श-साध्य रोग में प्रतिमर्श दें। विरेचन-साध्य रोगी शिशु की धात्री को रोगानुसार विरेचन देवें।

Scanned with CamScanner

प्राय: चरक के मतों का प्रतिपादन योगरत्नाकरकार ने भी किया है ।[1]

औषधि मात्रा का निर्धारण

'भेषजं स्वल्पमात्रं तु यथाव्याधि प्रयोजयेत् ।
मधुराणि कषायाणि क्षीरवन्ति मृदूनि च ।।
प्रयोजयेद्भिषग्बाले मतिमानप्रमादतः' ।। (च.चि. 30:284-285)

रोगानुसार अल्पमात्रा में औषधि का प्रयोग करें । बुद्धिमान् चिकित्सक को चाहिए कि वह प्रमाद रहित होकर मधुर द्रव्यों के क्वाथ में दूध मिलाकर, उन्हें मृदु करके बालकों में प्रयोग करें ।

'तत्र मासादूर्ध्वं क्षीरपायाङ्गुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात् । कोलास्थिसम्मितां कल्कमात्रां क्षीरान्नादाय, कोलसम्मितामन्नादायेति' ।

(सु.शा. 10:38)

'तत्रोत्तरोत्तरासु वयोवस्थासूत्तरोत्तरा भेषजमात्राविशेषा भवन्ति, ऋते च परिहाणेः, तत्राद्यापेक्षया प्रतिकुर्वीत' । (सु.सू. 35:30)

एक मास से ऊपर क्षीरपायी बालकों के लिए अङ्गुली के 2 पोरो में (चुटकी भर) जितनी औषधि रह सके, वह देवें । दूध एवं अन्न खाने वाले बालक के लिए बेर की गुठली के समान कल्क एवं अन्नाद के लिए बेर के बराबर औषधि देना चाहिए । यह स्पष्ट ही है कि ज्यों-ज्यों वय बढ़ती जाती है, उसी प्रकार मात्रा भी बढ़ जाती हैं । अगले सन्दर्भ में सुश्रुत ने एक मास के पहले की अवस्था में स्तन पर औषधि का लेप करने का विधान किया है । (सु.शा. 10:39; देखें पृष्ठ 31)

'विल(ड)ङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य देहिनः ।
भेषजं मधुसर्पिर्भ्यां मतिमानुपकल्पयेत् ।।
वर्धमानस्य तु शिशोर्मासे मासे विवर्धयेत् ।
अथामलकमात्रं तु परं विद्वान्न वर्धयेत्' ।। (का.सूत्र.लेहा.पृ. 3)

'ऊनद्वादशवर्षाणां नैकान्तेनावचारयेत् ।
अवचारितमेकान्तेनाहन्यहनि चौषधम् ।।

---

1. भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ।
तदेव कार्यं बालानां किं तु दाहादिकं विना ।
दाहादिकं विना अग्निदाहक्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना ।
महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकान्यपि दद्यात् ।
विरेकबस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात् ।
त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते ।
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी । (यो.र.बालरोगचि. पृ. 438)

Scanned with CamScanner

असमत्वागतप्राणदोषधातुबलौजसाम् ।
अत्यन्तसुकुमाराणां कुमाराणां बलायुषी' ।। (का.खिल. 3:58-59)

नवजात शिशु के लिए मात्रा 1 विडङ्गफल के बराबर कश्यप ने बतायी है । जो मधु तथा घृत से देनी चाहिए । ज्यों-ज्यों शिशु की वृद्धि होती जाय, प्रत्येक मास औषधि की मात्रा भी बढ़ानी चाहिए । परन्तु वह मात्रा आमलक के परिणाम से अधिक नहीं होनी चाहिए । 12 वर्ष से कम वय वालो मे औषधि का एकान्त रूप (निरन्तर) प्रयोग नही करना चाहिए । प्रतिदिन निरन्तर प्रयोग करायी गयी औषधि जिनके शरीर में प्राण, दोष, धातु, बल तथा ओज समरूप में विद्यमान नहीं हैं तथा जो अति सुकुमार हैं, ऐसे बालकों के बल तथा आयु को नष्ट करती है ।

मात्रा के विषय में काश्यपसंहिता में द्रव्य विशेष या कल्पना विशेष को लेकर बृहद् विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जो द्रष्टव्य है—

'जातमात्रस्य मात्रा स्यात् सर्पिष्कोलास्थिसम्मिता ।
पञ्चरात्रं भवेद्यावद्दशाहमधिकं ततः ।।
कोलार्धसम्मितं यावद्विंशद्रात्रमतः परम् ।
कोलमात्रं भवेद्यावन्मासं मासद्वयेऽधिकम् ।।
द्विकोलसम्मितं सर्पिस्तृतीये मासि शस्यते।
शुष्कामलकमात्रं तु चतुर्थे मास्युदाहृतम् ।।
पञ्चमे मासि षष्ठे च ह्यार्द्रामलकसम्मितम् ।
तदेवाभ्यधिकं किञ्चिद्विहितं सप्तमाष्टमे' ।।(का.खिल. 3:78-82)

घृत की मात्रा का जन्म से 8 मास तक के लिए विधान—

वय	मात्रा
1. जातमात्र (1 से 5 दिन)	छोटी बेर की गुठली
2. 5 से 10 दिन तक	कुछ अधिक
3. 11 से 20 दिन तक	1/2 बेर के बराबर
4. 1 माह तक	1 बेर के बराबर
5. 2 माह तक	कुछ अधिक
6. तीसरे माह तक	2 बेर के बराबर
7. चौथे माह तक	शुष्कामलक
8. 5-6 माह तक	आर्द्रामलक
9. 7-8 माह तक	इससे अधिक

Scanned with CamScanner

'क्षीरान्नादस्य बालस्य प्रायेणाहारसङ्करात् ।
भवत्यानियतो वह्निः पक्तौ बह्वनिलात्मनः ।
तस्याऽग्न्यावेक्षिकी तस्मात् स्नेहमात्रा विधीयते ।।
अन्नादस्य तु भूयिष्ठं समो भवति पावकः ।
तस्यामलकमात्रस्य सर्पिषः पानमिष्यते ।।
तदेवाग्निबलं वीक्ष्य वर्धमानस्य वर्धयेत् ।
क्षीरपस्य कुमारस्य क्षीरान्नादस्य चोभयोः' ।। (का.खिल. 3:83-85)

क्षीरान्नाद बालक की जाठराग्नि प्रायः मिश्रित भोजन के खाने से अनिश्चित होती है अतः स्नेह की मात्रा उसकी अग्नि के अनुसार देनी चाहिए। अन्नाद बालक की अग्नि अपेक्षाकृत अधिक सम होती है अतः आमलक प्रमाण में घृत देवें। ज्यों-ज्यों बालक वृद्धि को प्राप्त हो, त्यों-त्यों क्षीरप तथा क्षीरान्नाद दोनों के लिए स्नेह की मात्रा अग्निबलानुरूप बढ़ायें।

'देयं स्नेहचतुर्भागं भेषजस्य यथामयम् ।
घृतेन पाययेद्बालं यावत् स्यादष्टमासिकः ।।
मासादतोऽष्टमाज्जन्तोर्जलपिष्टं प्रदापयेत्' ।। (का.खिल. 3:86-87)

आठ मास की वय तक बालक को रोगानुसार स्नेह का चतुर्थांश औषधि घृत के साथ देनी चाहिए। 8 मास के बाद बालक को जल में घुली औषधि देनी चाहिए।

'मुचटिं वा प्रकुञ्चं वा प्रसृतं वाऽथवाऽञ्जलिम् ।
आतुरस्य प्रमाणेन समेतव्यं चिकित्सिते ।।
अग्रपर्वाङ्गुलिग्राह्या चूर्णमात्रातु पाणिना ।
चूर्णानां दीपनीयानामेषा मात्रा विधीयते ।।
द्विगुणाजीवनीयानां तथा संशमनस्य च ।
उर्ध्वभागे त्वर्धमात्रा तथैव च विरेचने' ।।

चिकित्सा में रोगी के रोग या बलप्रमाण के अनुसार 1 मुष्टि, पल, प्रसृत या अञ्जलि प्रमाण औषधि देनी चाहिए।

चूर्ण	मात्रा
दीपनीय चूर्ण	हस्त अङ्गुली के अगले पर्व के समान
जीवनीय, संशमनीय चूर्ण	द्विगुण मात्रा (उपरोक्त की)
वमन व विरेचन चूर्ण	अर्ध मात्रा (उपरोक्त की)

Scanned with CamScanner

कषाय[1]	मात्रा
दोषनाशक	(शर्करा + मधुयुक्त) चूर्ण - 2 प्रसृत
वामक, विरेचक	1 प्रसृत
दीपनीय, संशमनीय	2 प्रसृत

कल्क[2]	मात्रा
दीपनीय कल्क	1 कर्ष
जीवनीय, संशमनीय	2 कर्ष
वामक, विरेचक	1/2 कर्ष

योगरत्नाकरकार ने इस विषय को अधिक स्पष्ट किया है—

'प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ।।
एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं मासवृद्धिः स्याद्यावत्षोडशवत्सराः ।।
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः ।
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ।
चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता ।।
कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा' ।।

औषधि

(चूर्ण, कल्क अवलेह एवं काष्ठौषधि)

वय	मात्रा
प्रथम मास	1 रत्ती घृत, मधु, दूध, शर्करा से
दूसरे मास से 12वें मास तक	प्रतिमास 1 रत्ती की वृद्धि
एक वर्ष (12 मास)	12 रत्ती
प्रत्येक वर्ष	1 मासा की वृद्धि
16 वर्ष	16 मासा

. वातपित्तकफघ्नानां कषाये तु प्रदापयेत् । द्वौ दापयेत् प्रसृतौ शर्करामधुसंयुतौ ।।
प्रसृतं छर्दनीयस्य निष्क्वाथस्य प्रदापयेत् । तथा वैरेचनीयस्य प्रसृतं नात्र संशयः ।।
द्विगुणां जीवनीयस्य तथा संशमनस्य च ।
दीपनीयस्य कल्कं तु अक्षमात्रं प्रदापयेत् । द्विगुणं जीवनीयस्य तथा संशमनस्य च ।।
अक्षार्धं छर्दनीयस्य तथा वैरेचिकस्य च । (का.खि. 3:91-94)

Scanned with CamScanner

(तदुपरान्त 70 वर्ष तक यही मात्रा स्थिर रखते है फिर क्रमशः घटाते है) क्वाथ में यह मात्रा चतुर्गुण ली जानी चाहिए ।

प्राचीन मान		नवीन मान
1 मुष्टि	1 पल (8 तोला)	96 ग्राम
1 पल	8 तोला	96 ग्राम
1 प्रसृत	16 तोला	192 ग्राम
1 अञ्जलि	32 तोला	384 ग्राम
1 शराव	64 तोला	768 ग्राम
1 कर्ष	2 तोला	24 ग्राम
1 रत्ती	-	125 मिग्रा.
1 मासा	8 रत्ती	1 ग्राम
1 तोला	12 मासा	12 ग्राम ($11\frac{27}{43}$ ग्राम)

आधुनिक परिवेश में उपयुक्त मात्रा विवरण का प्रयोग सम्भव नहीं है । अतः उचित यह है कि सामान्य औषधियों (जिसमें विष या उपविष न हों) का निम्नसूत्र से मात्रा का निर्धारण कर लिया जाय—

सामान्य युवा का भार = 50 किग्रा.

औषधि की सामान्य मात्रा = क

औषधि की मात्रा प्रति किग्रा. शरीर भार हेतु = $\frac{\text{क}}{50}$

उदाहरणार्थ सामान्य रस औषधि की मात्रा 1 से 3 रत्ती अर्थात् औसतन 2 रत्ती =250 मि.ग्रा. होती है ।

रस औषधि की मात्रा/किग्रा. शरीर भार के लिए = $\frac{250}{50}$ = ५ मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार

आधुनिक काल में औषधि की मात्रा निकालने हेतु कुछ सूत्रों का विवेचन किया गया है, यथा—

(1) 2 वर्ष तक के बच्चों के लिए सिद्धान्त (Fried's Rule)

$$\text{औषधि मात्रा} = \frac{\text{सामान्य मात्रा} \times \text{शिशु की आयु माह में}}{150}$$

Scanned with CamScanner

(2) 2 वर्ष के ऊपर के बच्चों के लिए सिद्धान्त (Clark's Rule)

$$\text{औषधि-मात्रा} = \frac{\text{सामान्य मात्रा} \times \text{शरीर भार पौंड में}}{150}$$

(3) सामान्य सिद्धान्त (Young's Formula)

$$\text{शैशवीय औषधि-मात्रा} = \frac{\text{सामान्य मात्रा} \times \text{वय वर्षों में}}{\text{वय (वर्ष में)} + 12}$$

कभी-कभी औषधि की मात्रा शरीर के आकार (Surface area) पर निर्भर करती है। जिसे निम्न सूत्र से निकाल सकते हैं।

$$\text{Surface area (Sq m)} = \frac{4W + 7}{W + 90}$$ (W = शरीर-भार किलोग्राम में)

परन्तु आजकल औषधि मात्रा का निर्धारण प्रति कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार निर्धारित होता है। उसी को मानक मान कर प्रयोग करना चाहिए।

औषधि, धात्री तथा शिशु सम्बन्ध

आचार्य सुश्रुत ने शिशु के वयानुसार केवल धात्री को, धात्री एवं शिशु को तथा केवल शिशु को औषधि देने का विधान दिया है। जिसे योगरत्नाकरकार ने और भी स्पष्ट किया है—

'तेषु यथाऽभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा संयुक्तं विदध्यात्, धात्र्याश्च केवलं, क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च पूर्ववत्, अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्याः' ॥ (सु.शा. 10:37)

'क्षीरपस्य शिशोर्देयमौषधं क्षीरसर्पिषा।
धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा॥
क्षीरादस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः।
अन्नादस्य तु बालस्य योजयेत् कुशलो भिषक्'॥
(यो.र.बालरोगचि.पृ. 440)

दूध पीने वाले बालक को औषधि दूध एवं घृत के साथ देनी चाहिए। किन्तु यदि माता या धाय को देना हो तो केवल औषधि देनी चाहिए, दूध या घृत नहीं देना चाहिए। क्षीराद (क्षीरपायी शिशु) वय के बालक के धाय या माता को ही औषधि देनी चाहिए। क्षीरान्नाद (क्षीर एवं अन्न दोनों ग्रहण करने वाली वय) शिशु को एवं धाय या माता दोनों को तथा अन्नाद शिशु में केवल बच्चे को औषधि देनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

इससे यह स्पष्ट होता है कि माता के स्तन्य में औषधि का स्राव होता है, इसका ज्ञान प्राचीन काल में भी था और इसका प्रयोग शिशु की चिकित्सा में भी किया जाता है।

औषधि प्रयोग-विधि

'येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदङ्कराः ।
तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत शिशुं स्तनौ' ॥ (सु.शा. 10:39)

'व्याधेर्यस्य भैषज्यं स्तनस्तेन प्रलेपितः ।
स्थितो मुहूर्तं धौतोऽनु पीतस्तं तं जयेद् गदम्' ॥
(अ.हृ.उ. 2:77; अ.सं.उ. 2:97)

जिन रोगों के जो व्याधिनिवारक योग कहे जायेंगे, उन रोगों में उन योगों के कल्क से लिप्त किये हुए स्तन बालक को पिलावें। ऐसा आचार्य (सुश्रुत) ने कहा है (वाग्भट) का मत है कि औषधि लेप स्तन पर। मुहूर्त भर रहने देना चाहिए। फिर उसे धोने पर स्तन को पीने से बच्चा उस रोग से मुक्त हो जाता है।

बालकों के लिए पथ्य

आचार्य वागभट के मतानुसार सात्म्य भोजन ही शिशु के लिए सात्म्य पथ्य है यथा—क्षीरपायी के लिए क्षीर, क्षीरान्नपायी के लिए क्षीर एवं अन्न, तथा अन्नाद के लिए अन्न।

'त्रिविधो हि बालः प्रागुक्तस्तत्र क्षीरपस्य क्षीरमदुष्टं प्रयुञ्जीत । अन्नादस्य हितमन्नम् । उभयवृत्तेरुभयम्' । (अ.सं.उ. 2:2)

व्याधिकाल में योगरत्नाकरकार का मत है—

'यत्पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु ।
तत्तद्विधेयमौचिद्बालानां तेषु जानता' ॥ (यो.र.बालरोगचि.पृ. 457)

जो पथ्यापथ्य ज्वरादि रोगों में कहे गये है उन्हीं पथ्यापथ्य को चिकित्सक यथोचित बालकों के लिए भी विचार कर देवे।

Scanned with CamScanner

अध्याय - 3

शिशु-कुमार-परीक्षा

आयुर्वेदशास्त्र में कौमारभृत्य विषय के क्षेत्र को देखते हुए शिशु परीक्षा में अनुभव एवं ज्ञान को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। आचार्य कश्यप ने इस दृष्टि से कौमारभृत्य विशेषज्ञ एवं धात्री (माता) को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है—

कौमारभृत्य विशेषज्ञ का महत्त्व

'वृद्ध जीवक ! लोकेऽस्मिंस्त्रयो दुष्करकारिणः ।
भिषग्धात्री च बालश्च त एव सुखदुःखिताः ।।
परिज्ञानं बिना वाताद्योषधकल्पने शिशोः ।
..... ।।
शास्त्रानुसारचेष्टाभिरिङ्गितैर्नित्यदर्शनैः ।
कर्त्तव्यं भेषजं बाले स कथं नाऽपराधनुयात् ।।
भिषक्कौमारभृत्यस्तैः कारणैर्नित्यदुःखितः ।
दुष्करं चापि कुरुते युञ्जन् साधारणाः क्रियाः ।।
गर्भिण्याः सह गर्भेण धात्र्याः सह सुखेन च ।
.....ज्ञातुमदूषकम्' ।।

(का.सं.चि.धात्रीचि. 58-62)

हे वृद्ध जीवक ! इस संसार में तीन (व्यक्ति) ऐसे हैं जो दुष्कर (कठिन) कार्य को करते हैं, यथा—

1. भिषक् (कौमारभृत्य विशेषज्ञ)
2. धात्री (माता—संतान का पालन करने वाली)
3. बालक ।

ये तीनों ही (समान) सुख एवं दुःख का अनुभव करते हैं ।

शिशुओं के लिए वातादि दोषों का ज्ञान किये बिना ही (भिषक्) को (औषधि) कल्पना करनी पड़ती है। अतः (भिषक् को) सदैव शास्त्रों के अनुसार चेष्टा (कर्म), संकेत (इशारा-अनुभव) एवं दर्शन (परीक्षा-अनुभव) के द्वारा बालक की चिकित्सा करनी चाहिए। ऐसा करने में कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिए ।

कौमारभृत्य (विशेषज्ञ) भिषक् उन-उन कारणों से नित्य दुखी होता है क्योंकि

Scanned with CamScanner

सामान्य चिकित्सा करने के स्थान पर कठिन कार्य करना पड़ता है। उसे गर्भसहित गर्भिणी तथा पुत्र सहित धात्री (माता) के दुष्कर कार्य करने पड़ते हैं।

धात्री का महत्त्व

'धात्री पुत्रशरीरार्थं स्वशरीरोपशोषणम्।
स्नेहात् प्राप्नोति सुबहून् क्लेशांश्चान्यान् सुदारुणान्॥
आशास्नेहकृपाधर्माद्रक्षणार्थं च मातरः।
सहन्ते सर्वदुःखानि मानिनी चात्र कीर्त्यते॥
गर्भात् प्रभृति बालोऽपि.....।
अधिकं पीड्यते दुःखैरकुर्वन्नपि तत् स्वयम्॥
तस्माच्च धात्री सततं शमचेष्टाऽशनस्थितिः।
माता भवति पुत्राणां भुंक्ते पुत्रफलानि च'॥

(का.सं./चि.स्थान/धात्रीचि.)

धात्री (माता) स्नेहवश पुत्र शरीर के लिए स्वशरीर का (स्तनपान के द्वारा) शोषण कराती है तथा अन्य दुःख (कष्टों) को सहन करती है। आशा, स्नेह, कृपा, धर्म तथा बालक की रक्षा के निमित्त माता सभी दुःखों को सहन करती है तथा इसमें वे मान (गौरव) का अनुभव करती हैं।

बालक भी गर्भकाल से लेकर, स्वयं प्रतिकार न कर सकने के कारण अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करता है।

अतः धात्री निरन्तर अपनी शुभ चेष्टा तथा आहार-विहार (आचरण) द्वारा अपने पुत्रों की माता होकर पुत्ररूपी फल का उपभोग करती है।

उपरोक्त सन्दर्भों से स्पष्ट है कि कौमारभृत्य विशेषज्ञ के शास्त्र ज्ञान एवं अनुभव का सर्वाधिक महत्त्व है।

शिशु परीक्षण-विधा

शिशु या कुमार का परीक्षण स्वस्थ या अस्वस्थ काल में करना एक कला है, जो पुस्तकों या अध्यापन के द्वारा नहीं सीखा जा सकता, इसके लिए अनुभव, अभ्यास तथा सतत मनन की आवश्यकता है। युवा या वृद्ध की परीक्षा करने में रोगी से जिस प्रकार का सहयोग प्राप्त हो जाता है, बच्चों से उस सहयोग को प्राप्त करने का यत्न करना पड़ता है। इसके लिए बच्चों की वय के अनुरूप खिलौने आदि देकर उनकी मित्रता प्राप्त करनी पड़ती है। बच्चे अपने कष्ट को बता पाने में, समझा पाने में असमर्थ होते हैं। उसके लिए बच्चों के संरक्षक (माता या पिता) पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वे बच्चे का इतिवृत्त दे पाने में कितना सक्षम हैं, इसका भी निर्णय चिकित्सक करता है।

शिशु-कुमार-परीक्षा के अन्तर्गत प्रायः युवा-वृद्ध परीक्षा का सम्पूर्ण विधि-विधान तो आ ही जाता है, (इसके लिए काय-चिकित्सा की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए)

Scanned with CamScanner

साथ-ही-साथ कुछ विशेषताएँ भी होती है। उन्हीं का वर्णन इस अध्याय में किया जा रहा है। इसे हम निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते है—

1. इतिवृत्त
2. सामान्य परीक्षण
3. विशिष्ट परीक्षण
4. नवजात शिशु-परीक्षण

इतिवृत्त

सामान्य इतिवृत्त पत्र की रूपरेखा में ही कुमार का परीक्षण भी किया जाता है। परन्तु उस क्रम में निम्न तथ्यों का विशेष ध्यान रखते हैं—

(1) रोगी का सामान्य परिचय लिखने के बाद, मुख्य व्यथा लिखने के पूर्व रोगी (कुमार) का इतिवृत्त देने वाले संरक्षक का नाम बच्चे से सम्बन्ध तथा विश्वसनीयता का प्रतिशत अवश्य लिखा जाना चाहिए।

(2) पूर्व व्यथा के इतिवृत्त के उपरान्त कुमार के जन्म का इतिवृत्त (जन्म से पूर्व, जन्म के समय तथा जन्म के पश्चात्) अवश्य लेना चाहिए। जन्मपूर्व इतिवृत्त में माता का स्वास्थ्य कैसा था ? अत: माता के आहार का विवरण अवश्य लें। गर्भावस्था में माता को होने वाली कोई व्याधि यथा—रुबेला, फिरङ्ग रोग, गर्भजन्य विषमयता, मधुमेह, उच्चरक्त चाप, हृदय रोग एवं राजयक्ष्मा आदि का इतिवृत अवश्य लेवें। क्या गर्भधारण काल में माता ने कोई औषधि ली थी ? क्या प्रसव पूर्ण समय पर हुआ ? जन्म के समय बच्चे का भार क्या था ? जन्मकालिक इतिवृत्त में—जन्म का स्थान (घर या चिकित्सालय) प्रसव सामान्य या असामान्य हुआ था तथा किसके द्वारा कराया गया यथा—चिकित्सक, प्रशिक्षित नर्स या परिचारिका या दाई के द्वारा या ग्रामीण (स्थानीय दाई) के द्वारा। जन्म के बाद बच्चे को कोई असामान्य लक्षण यथा—कामला, नीलिमा या आक्षेप हुआ हो तथा उसका स्वास्थ्य कैसा था ? माता के रक्त वर्ग एवं आर-एच. फैक्टर का ज्ञान अवश्य प्राप्त करें। यह बच्चे में कामला का कारण हो सकता है।

जन्मोपरान्त प्राण-प्रत्यागमन की प्रक्रिया अपनायी गयी अथवा नहीं ? अपगार स्कोर क्या रहा ? जन्मजात विकृतियाँ, जन्मकालीन आघात, स्तनपान में कोई समस्या, नाभिनाल कटे भाग की स्थिति, शरीर भार का अत्यधिक कम या अधिक होना आदि का इतिवृत्त लेना आवश्यक है।

(3) इसके पश्चात् शिशु-विकास दर इतिवृत्त देखना चाहिए। इसके निश्चित समय हैं। उससे निर्धारण करना चाहिए (देखिये अध्याय 5)। यथा—बच्चे ने देखकर मुस्कराना कब प्रारम्भ किया ? ग्रीवा पर सिर धारण करना, बैठना, घुटनों पर चलना आदि। दन्तोद्भेद प्रक्रिया का इतिवृत्त, स्वत:मूत्र त्याग, मलत्याग की प्रवृत्ति का विकास का ज्ञान करें। बालक यदि स्कूल वय का है तो शैक्षिक स्तर का ज्ञान अवश्य करें।

Scanned with CamScanner

(4) बच्चे को विभिन्न रोगप्रतिरोधक टीके लगे या नहीं। यदि लगे हैं तो उनका समय, प्रथम टीका, बूस्टर मात्रा आदि का विवरण। यदि किसी टीके का उपद्रव हुआ है तो उसका संज्ञान भी अवश्य लें।

(5) सामान्य की अपेक्षा बच्चे के भोजन का इतिवृत्त आवश्यक होता है। रोगी होने के पूर्व तथा व्याधि के काल में भोजन की मात्रा गुणवत्ता का ज्ञान करना चाहिए एवं उस वय के लिए भोजन से क्या आवश्यक शक्ति प्राप्त होती है या नहीं। शिशु स्तनपायी रहा है अथवा बाह्य दूध कटोरी-चम्मच या बोतल से पीता है। यदि पाउडर का दूध पी रहा है तो उसके निर्माण की विधि एवं मात्रा का इतिवृत्त लेवें। दूध पिलाने में कोई समस्या ? बालक का 'फलप्राशन' व 'अन्नप्राशन' संस्कार कब हुआ ? अर्थात् अर्धतरल एवं ठोस खाद्य पदार्थ किस वय से दिये गये ? उनकी मात्रा एवं गुणवत्ता का ध्यान रखा गया या नहीं ? उसे अतिरिक्त विटामिन्स एवं खनिज तत्त्व देने का इतिवृत्त, वर्तमान भोजन की मात्रा, गुणवत्ता, घटक एवं कैलोरीज की आपूर्ति का इतिवृत्त अवश्य लेना चाहिए।

(6) व्यक्तिगत इतिवृत्त में बच्चे की विभिन्न आदतों का ज्ञान करें; यथा—भोजन, शयन, मल-मूत्र त्यागवृत्ति, भाई-बहन के साथ उसका व्यवहार, स्कूल जाने की प्रवृत्ति, अध्ययन प्रवृत्ति आदि। परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध आदि विवरण।

(7) पारिवारिक इतिवृत्त के अन्तर्गत माता तथा भाई-बहन का इतिवृत्त अत्यावश्यक है। परिवार में कितने बच्चे हैं, उनका लिङ्ग तथा वय क्या है ? क्या गर्भपात या मृत प्रसव या समय पूर्व प्रसव हुए हैं ? यदि हाँ तो उसका कारण ? पारिवारिक सदस्यों में हुई व्याधि का विवरण विशेषकर आनुवंशिक व्याधियों का इतिवृत्त भी आवश्यक है।

(8) अन्य कुछ विशेष विवरण, यथा जाति-धर्म, पारिवारिक आय सम्बन्धित विवरण एकत्र करना चाहिए।

सामान्य परीक्षण

इतिवृत्त लेने के पश्चात् बच्चे से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बना कर ही अच्छा परीक्षण बच्चे का किया जा सकता है। बालक के संरक्षक से इतिवृत्त लेते समय बालक के क्रिया कलाप देखकर बहुत कुछ जाना जा सकता है। बालक की अस्वस्थता का आंकलन किया जा सकता है। क्या वह आस-पास की वस्तुओं से खेलता है ? उसका रोना, चीखना, क्लान्ति, एवं अतिक्रियाशीलता का निरीक्षण कर सकते हैं। बालक की किसी बड़ी जन्मजात विकृति, मानसिक स्थिति, शारीरिक सौष्ठव, संहनन एवं सार आदि परीक्षा इसी समय की जा सकती है।

(1) **नाड़ीगति एवं श्वसनगति**—नवजात शिशु तथा कुछ वय विशेष तक कुमार की नाड़ीगति एवं श्वसनगति में सामान्य से अन्तर होता है। सामान्यरूप से बच्चे की नाड़ी-

Scanned with CamScanner

गति एवं श्वसनगति का अनुपात 3 या 4:1 का होता है। सामान्य के विपरीत श्वसनगति श्वसनतन्त्र या रक्तपरिभ्रमण तन्त्र की व्याधि का द्योतक है। नाड़ीगति छोटे बच्चों में हृदय-गति के द्वारा अथवा बड़े बच्चों में कलाई पर नाड़ीगति से जाना जा सकता है। शयन काल में नाड़ीगति 10 से 20 बार प्रति मिनट कम हो जाती है। नाड़ीगति की सामान्य गणना का क्षेत्र विस्तृत है (देखिये नीचे तालिका) नाड़ीगति में वृद्धि, बच्चे के रोने-चीखने पर, उत्तेजित होने पर, व्यायाम से, ज्वर या कुछ अन्य व्याधि के कारण हो सकती है। परन्तु मन्दता प्राय: हृदयगति में विकृति के कारण होती है। जड्घा नाड़ीगति का परीक्षण भी करना चाहिए जो Coarctation of the aorta नामक जन्मजात व्याधि में नहीं मिलती है।

श्वसनगति, नाड़ीगति एवं रक्तचाप - बाल्यकाल में

वय (वर्षों में)	श्वसनगति प्रति मिनट	नाड़ीगति औसत प्रति मिनट	रक्तचाप मि.मी. आव मरकरी	
			सिस्टोलिक	डायस्टोलिक
नवजात	40	125	80 ± 16	46 ± 16
1	40-30	120	96 ± 30	66 ± 25
2	30•	110	99 ± 25	64 ± 25
4	30-20	100	99 ± 20	65 ± 20
6	20	100	94 ± 14	55 ± 9
8	20	90	102 ± 15	56 ± 8
10	20	90	107 ± 16	57 ± 9
12	20-18	70-80	115 ± 19	59 ± 10
सामान्य	16-18*			

• Rhythmic * Regular

(2) शारीरिक परीक्षण—तदुपरान्त सामान्य परीक्षण की तरह दर्शन, स्पर्शन, ताड़न एवं श्रवण परीक्षा चाहिए। शरीर पर बहुत-से आघात के निशान (1 से 3 वर्ष वय में) Battered Baby Syndrome का लक्षण हो सकता है। सामान्य रूप से पार्श्व तालुरन्ध्र (संख्या 4) जन्म के पूर्व ही बन्द हो जाते हैं। पश्च तालुरन्ध्र जन्म के समय से 3 माह की वय तक सामान्य रूप से बन्द हो जाता है। अग्रतालु (Anterior fontanelle) बच्चों में प्राय: 9 माह से 18 माह के मध्य बन्द होता है। इसमें देरी का कारण सम्भवत: Rickets या Hydrocephalus (जलशीर्ष) हो सकता है। तालु का दबा होना शरीर में जल की कमी एवं उभार का होना मस्तिष्क में दबाव की वृद्धि का संकेत होता है। या बच्चों के चीखने पर भी उभार आ जाता हैं। शिर का आकार असामान्य होना, अस्थियों के सीवन का समय पूर्व जुड़ जाना या गोलाकार जलशीर्ष

Scanned with CamScanner

में होता है। जो बच्चे एक ही करवट बराबर लिटाये जाते हैं उनका सिर एक ओर दबा हो सकता है। नेत्र-परीक्षा अभिष्यन्दि (Conjunctivitis), जन्मजात मोतियाबिन्दु (Cataract) एवं भेंगापन (Squint) हेतु भी करना चाहिए। इसी समय केश परीक्षण भी करें। केश का वर्ण, रूप एवं दृढ़ता से शारीरिक कुपोषण का ज्ञान होता है।

शाखा-परीक्षा में शुष्कता, शोथ, स्पर्श असहिष्णुता एवं सन्धियों को कार्यशील करने में कष्ट होना Pseudo Paralysis का संकेत होता है। अस्थियों के शिरों का चौड़ा होना (कलाई में विशेष रूप से) Ricket में मिलता है तथा अन्य रचनात्मक विकृतियों में जुड़े हुए घुटने Knock-knee, धनुषवत् पैर Bow-leg एवं चपटे पैर Flat feet भी देखने चाहिए। बच्चों में प्राय: लसिका ग्रन्थियाँ स्पर्श करने पर छोटी मिलती ही हैं, परन्तु काफी बड़ी मिलना संक्रमण का संकेत हैं। गले के पास की लसिका ग्रन्थि में वृद्धि गलशुण्डि में संक्रमण या सम्पूर्ण शरीर में होने पर खसरा (Rubella) की भी सम्भावना होती है। जंघा शीर्ष एवं उदर के नीचे की लसिका ग्रन्थियाँ लगभग 1 से.मी. तक की वृद्धिं (आकार में) सामान्य समझी जाती है।

उदर-परीक्षा में ध्यान देना चाहिए कि बच्चों का यकृत् प्राय: 1 या 2 अङ्गुल वक्षास्थियों से बाहर रहता है एवं प्लीहा का हल्का बढ़ा होना प्राय: प्रत्येक संक्रमण में होता है। वृषण उपस्थित हैं या नहीं, अवश्य देखना चाहिए। यह ध्यान रहे कि कभी-कभी स्पर्श करने पर प्रतिक्रियास्वरूप (Cremasteric reflex) वृषण उदरस्थ हो जाते हैं।

वक्ष-परीक्षा में वक्षास्थि पर सामने शोथ रुद्राक्ष मालावत् (Ricket rosary) मिल सकती है। श्वसन में विपरीत गति उत्फुल्लिका (Pneumonia) में हो सकती है। 6-7 वर्ष तक के बच्चों में हृदयगति (Cardiac impulse) चतुर्थ वक्षास्थिमध्यावकाश में मिलती है।

नाड़ीतन्त्र की परीक्षा में बड़े बच्चों में सामान्य विधि ही अपनाते हैं। कुछ स्थानों पर सामान्य परिवर्तन भी कर सकते हैं; यथा—Finger-Nose Test के स्थान पर हाथ में खिलौना लेकर बच्चे की पहुँच से हल्का अलग बैठकर छूने को कहकर के भी (Coordination test) कर सकते हैं। Tendon-reflex देखने के लिए Hammer के स्थान पर चिकित्सक अंगुली का ही प्रयोग कर सकता है। पैर के तलुए की प्रतिक्रिया (Planter reflex) 18 माह की वय तक (Extensor) होती है। परन्तु 2 वर्ष के बाद भी ऐसा होने पर Upper motor neuron की विकृति होती है। बच्चों के नेत्र, नाक, गला एवं कर्ण के परीक्षण साथ न देने के कारण कठिन होते हैं। इसी में चिकित्सक के धैर्य की परीक्षा होती है।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट परीक्षण

(1) विभिन्न शारीरिक माप—इनका विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय 5 में किया गया है। यहाँ पर उसकी तालिकाएँ प्रस्तुत की जा रही है—

	शिशु में	सामान्य औसत	वय शिशु की
शरीर की लम्बाई			
शरीर का भार			
शिर का परिधि			
बाहुमध्य परिधि			
वक्ष परिधि			
त्वक्गत झुर्रियाँ			

(इतिवृत्त लिखने का प्रारूप)

शरीर की लम्बाई एवं भार—वय विशेष का लम्बाई एवं भार का आपस में सम्बन्ध है—

वय भार एवं लम्बाई (5 वर्ष वय तक)[1]

वय	भार (कि.ग्रा.)			लम्बाई (से.मी.)		
माह में	स्तरीय	80%	60%	स्तरीय	80%	60%
जन्मकाल	3.4	2.7	2.0	50		
3	5.7	4.5	3.4	60	48	36.6
6	7.4	5.9	4.5	65.8	52.6	39.5
9	8.9	7.1	5.3	70.7	56.5	42.4
12	9.9	7.9	6.0	74.7	59.8	44.8
15	10.6	8.5	6.4	78.1	62.4	46.8
18	11.3	9.0	6.8	81.4	65.1	48.8
24	12.4	9.9	7.5	87.1	69.6	52.2
30	13.5	10.8	8.1	91.8	73.4	55.1
36	14.5	11.6	8.7	96.0	76.8	57.6
42	15.5	12.4	9.3	99.7	79.7	59.5
48	16.5	13.2	9.9	103.3	82.8	62.0
54	17.4	14.0	10.5	106.8	85.4	64.1
60	18.4	14.7	11.0	109.0	87.1	65.3

1. H.C. Suart & S. Stevenson (Harvard 1959)

Scanned with CamScanner

त्वग्गत झुर्रियाँ एवं मध्य बाहुपेशी परिधि

वय (माह में)	Mid-arm muscle circumference. (से.मी.)	Triceps skin fold (मि.मी.)	Mid upper-arm circumference (से.मी.)
0-5	10.5	8.0	13.0
6-11	12.1	10.0	15.2
12-17	12.6	10.6	16.0
18-23	12.8	10.5	16.1
24-29	13.1	10.0	16.3
30-35	13.3	9.7	16.4
36-47	13.8	9.3	16.7
48-59	14.2	8.9	17.0

पेशी-परिधि निकालने का सूत्र—

सी = सि — π एस

$(C = c - \pi s)$

C सी = पेशी परिधि (से.मी.)

c सि = मध्य बाहु परिधि (से.मी.)

s एस = त्वकझुर्रि की मोटाई (से.मी.)

वय	Biceps skin fold (से.मी.)		Triceps skin fold (मि.मी.)		Mid upper-arm circumference (से.मी.)	
वर्षों में	बालक	कन्या	बालक	कन्या	बालक	कन्या
नवजात	-	-	4.8	5.0	12.2	12.0
1	6.5	6.6	10.0	9.6	12.6	12.5
3	5.8	6.2	9.5	9.9	13.6	13.3
6	4.6	5.6	7.9	8.2	14.9	14.8
9	4.1	4.2	7.4	7.8	16.5	16.5
12	4.2	4.2	8.0	8.1	17.4	18.2
15	3.8	3.8	7.3	7.4	20.3	20.6

त्वग्गत झुर्रियाँ मापने के लिए Lange's skinfold calliper नामक यन्त्र का

Scanned with CamScanner

सिर तथा वक्ष की परिधि का तुलनात्मक विवरण

वय (माह में)	सिरव्यास (से.मी.)	वक्षव्यास (से.मी.)
जन्म के समय	35.0	35
3	40.4	40
6	43.4	44
12	46.5	47
18	48.4	48
24	49.0	50
36	50.0	52
48	50.5	53
60	50.8	55

(2) तापक्रम—बच्चों का शारीरिक तापक्रम लेना परीक्षण का एक आवश्यक भाग नहीं है। शारीरिक परीक्षण के पूर्व या पश्चात् ही आवश्यकता होने पर तापक्रम लेना चाहिए। 6 वर्ष के ऊपर के वय में ही शारीरिक तापक्रम मुख द्वारा लेना चाहिए। 2 से 6 वर्ष तक की वय में थर्मामीटर का प्रयोग कक्षा (Axilla) में तथा 1 वर्ष के बच्चों में गुदा नें प्रयोग करना चाहिए। मुख के तापक्रम से कक्षा का तापक्रम 1^0F (0.5^0C) कम एवं गुदा में 1^0F अधिक होता है। बच्चों का सामान्य तापक्रम भी 1^0F कम या अधिक हो सकता है। शारीरिक तापक्रम का शीघ्रता से 103^0F या 104^0F (39.5^0C-40^0C) होने पर ज्वरजन्य आक्षेप भी बच्चों में आ जाते हैं।

(3) गुदा-परीक्षण—बच्चों में गुदा-परीक्षण भी एक कष्टसाध्य कार्य है, अत: अति आवश्यक होने पर ही छोटी अंगुली से करना चाहिए। Anal fissure बच्चों में पायी जाने वाली सामान्य व्याधि है।

(4) मल-मूत्र-परीक्षण—सामान्य स्तनपायी शिशु में मल ढीला तथा हरा या चिकना और पीला होता है। गोदुग्धपायी बच्चों में मल फटे दूध-सा भी हो सकता है। बड़े बच्चों में भी युवा की अपेक्षा मल में परिवर्तन मिलता है।

मूत्र एकत्र करना, विशेष रूप से उन बच्चों में जो स्वेच्छा से मूत्र त्याग नहीं कर सकते, कुछ कठिन होता है। स्वच्छ, संक्रमणहीन पात्र को लिंग पर चिपकाना अथवा मूत्राशय पर सूचिकावेध से मूत्र को एकत्र करना किसी भी विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

— मूत्र से मूत्र कुछ विशिष्टताएँ बच्चों के परीक्षण में पायी जाती हैं। इनका

Scanned with CamScanner

नवजात शिशु-परीक्षण

नवजात शिशु के जीवन के प्रथम 28 दिन, शारीरिक क्रिया-परिवर्तन के दृष्टिकोण से, जीवन धारण करने की दिशा में, गर्भाशयिक वातावरण से बाहर आकर बाह्य संसार से सामंजस्य स्थापित करने के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। यथा—मातृरक्त परिभ्रमण से सम्बन्ध का टूटना, स्वत: के फुफ्फुसों का क्रियाशील होना, अन्नवह स्रोतसों द्वारा भोज्य का पाचन एवं शोषण, वृक्क का मूत्र बनाना एवं त्याग करना, यकृत् की क्रियाशीलता आदि। नवजात शिशु की बहुत-सी समस्याएँ इन प्राकृतिक परिवर्तनों में बाधा खड़ी कर देती हैं; यथा—समय पूर्व प्रसव, रचनात्मक विकृतियाँ, वातावरण का विपरीत प्रभाव (गर्भाशयगत या प्रसवकाल में या प्रसव के पश्चात्) आदि।

इन परिस्थितियों से बचने के लिए नवजात शिशु का शीघ्र परन्तु पूर्ण परीक्षण आवश्यक है।

(1) इतिवृत्त

इस क्रम में 3 बिन्दु हमारे समक्ष होते हैं—

(1) व्याधि का शीघ्रातिशीघ्र निर्धारण, जिससे वैक्ल्यता या मृत्यु से बचाया जा सके।

(2) स्थिति पर पहले से विचार करना, जिसका बाद में महत्त्व हो।

(3) जिन परिस्थितियों का तुरन्त या बाद में महत्व हो, सम्भावित नैदानिक कारण जो व्याधि की सम्प्राप्ति बनाते हों, का अन्वेषण करना।

अत: प्रत्येक नवजात शिशु का पारिवारिक इतिवृत्त लेना आवश्यक है।

1. पारिवारिक इतिवृत्त।
2. इस शिशु के प्रसवपूर्व एवं प्रसवकाल का इतिवृत्त।
3. पिछले गर्भधारण का प्रसवपूर्व, प्रसवकालीन एवं प्रसवोपरान्त इतिवृत्त।

(2) शारीरिक परीक्षण

प्रत्येक शिशु का शारीरिक परीक्षण कम-से-कम 3 बार अवश्य करना चाहिए।

(1) प्रसव के तुरन्त बाद।

(2) प्रसव के बाद जब माता स्थिर चित्त हो जाय, इस समय शिशु का परीक्षण माँ की उपस्थिति में करते हुए छोटी-छोटी रचनात्मक विकृतियों के विषय में माँ को बता देना चाहिए। चिकित्सक के दृष्टिकोण से भले ही वे महत्त्वपूर्ण न हो, परन्तु बच्चे के अभिभावक मानसिक रूप से चिन्तित रहेंगे।

(3) अन्तिम परीक्षण—चिकित्सालय से मुक्त करने के पूर्व धैर्यपूर्वक पूर्ण परीक्षण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कभी-कभी हृदय की असामान्य ध्वनि (Murmur) प्रसव के तुरन्त बाद नहीं भी सुनायी पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त नाड़ीगति, श्वसनगति, भार,

Scanned with CamScanner

लम्बाई, सिर व वक्ष का व्यास तथा किसी भी रचनात्मक उभरी विकृति की परिधि का माप अवश्य लिख लेना चाहिए।

कुछ महत्त्वपूर्ण परीक्षण के बिन्दु अध्याय 4 तथा 5 में दिये गये हैं। उनका भी अध्ययन आवश्यक है।

इन बच्चों के परीक्षण में सर्वप्रथम या पश्चात् का कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है। समय एवं परिस्थितियों का अवलोकन करके क्रम बदले जा सकते हैं। यदि शिशु शान्त एवं प्रसन्न मुद्रा में हो तो सर्वप्रथम उदर की स्पर्श परीक्षा या हृदय-फुप्फुस की स्रवण परीक्षा कर लेनी चाहिए।

(1) **सामान्य रचनात्मक स्वरूप**—शान्त चित्त मुद्रा में या निद्रा में या व्याधि के कारण या औषधि विशिष्ट के कारण सामान्य गतिविधियाँ शान्त मिल सकती हैं। श्वसन-प्रक्रिया से कष्ट में हाथ-पैर एकदम शान्त मिल सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण शक्ति श्वसन करने में व्यय हो रही है अथवा कष्ट के कारण चीखना, हाथ-पैर पटकना भी मिल सकता है। नवजात शिशु में घुटने का कम्पन युक्त होना या जबड़े का कम्पन एक सामान्य तथ्य है, जब शिशु गतिशील रहता है तभी ऐसा होता है, अथवा आक्षेप के झटकों में ऐसा होता है।

बच्चे की पोषण की स्थिति का पता उसके शारीरिक भार, लम्बाई, झुर्रियों अथवा त्वचा की चिकनाहट से पता चल जाता है। शोथ (Oedema) की अवस्था में भी अच्छे पोषण का भ्रम हो सकता है। जिसका निवारण हाथ-पैर की अंगुलियों एवं अँगूठों के सामान्य झुर्रियों की उपस्थिति (पोषण में) अथवा अनुपस्थिति (शोथ में) से हो जाता है। जन्म के समय ही शोथ समय पूर्व प्रसव का संकेत करता है। शोथ के अन्य कारण प्रोभूजन की अल्पता (Hypoproteinemia), रक्तविकृति (Erythroblastosis fetalis) जन्य हो सकती है। इसे ही Hydrops fetalis कहते हैं। इसके अतिरिक्त जन्मजात वृक्क व्याधि (Nephrosis, Hurler's syndrome) आदि कारण हो सकते हैं। स्थानीय शोथ का कारण लसिकातन्त्र की रचनात्मक विकृति हो सकती है। Turner's Syndrome में कन्या शिशु के एक या एक से अधिक शाखा में शोथ हो सकता है।

(2) **त्वचा**—बच्चे के रोने, चिल्लाने पर त्वचा में लालिमा आना अथवा बैंगनी वर्ण हो जाना स्वाभाविक होता है। शरीर पर धब्बे बनना (Mottling) का होना भी ऐसा ही है। ललाट से त्रिकास्थि तक के भाग में आश्चर्यजनक रूप से आधा शरीर लाल रहना आधा श्वेताभ होना (Harlequin color change) कहलाता है, इसका कारण अस्पष्ट है। स्पष्ट रूप से निलिमा रक्त परिभ्रमण में बाधा का द्योतक है अथवा प्रारम्भिक दिनों में हिमोग्लोबिन के आधिक्य एवं पतली त्वचा के कारण भी निलिमा दिखायी पड़ती है। श्वेताभ (Pallor) त्वचा में ओषोजन अल्पता, पाण्डु, शोथ या आघात (Shock) का संकेत मिलता है। पाण्डु के अति शीघ्रता से निदान से रक्त-विकार (Erythroblas-

Scanned with CamScanner

tosis fetalis) यकृत्-विकार, मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव (Subdural) आदि का संकेत मिल सकता है। प्रसव कालोपरान्त प्रसव (Postmature) की त्वचा अपेक्षाकृत श्वेताभ होती है।

उल्वा (Vernix) से पलकों पर एवं ग्रीवा पर क्षणिक Capillary Hemangiomas बन जाते हैं। गर्भ में ही शिशु के मल त्याग कर देने पर (Intrauterine anoxia के कारण) उल्वा, गर्भनाल एवं गर्भाशय गत द्रव का वर्ण भूरा-पीला (Brownish-yellow) हो जाता है। समयपूर्व प्रसावित शिशु की त्वचा अधिक लाल, पतली एवं कोमल होती है। अति पूर्व प्रसव में आकृति चिपचिपी (Gelatinous), पतली, कोमल त्वचा, अपरिपक्व बाल, विशिष्ट बाल (Lanugo hairs) पाये जाते हैं। इनमें अपूर्ण वृद्धि वाले नाखून मिलते हैं। जब कि प्रसव कालोपरान्त प्रसावित शिशु में नाखून अंगुलियों के अग्रभाग से भी अधिक बड़े होते हैं। इस तरह के शिशुओं में त्वक्गत विशिष्ट लक्षण—छाल व कागजवत् त्वचा (Peeling-Parchment skin) होता है।

(3) सिर—यदि प्रथम प्रसव है तथा सिर के अध: योनि में आकर रुके रहने में अधिक समय लगा है तो उसमें Molding मिल सकती है। सिर की पार्श्व अस्थियाँ (Parital bones) पश्च एवं अग्र अस्थि (Occipital and Frontal) पर चढ़ी मिल सकती हैं। उदर पाटन करने से उत्पन्न शिशु का सिर गोल मिलेगा। अग्र एवं पश्च तालु (Fontanelle) का परीक्षण अवश्य करना चाहिए। तालु का लम्बे समय तक अधिक बड़ा मिलना गलगण्ड (Hypothyroidism) होने का संकेत है। कपालास्थियों का पतला होना (Craniotabes) कभी-कभी पार्श्व कपालास्थि में मिलता है, परन्तु यदि यह अवस्था बनी रहती हैं तो इसके कारणों को खोजना चाहिए। पश्च कपालास्थि में उपस्थित यह लक्षण कुछ व्याधियों का द्योतक है। यथा—अस्थि-निर्माण प्रक्रिया विकार (Irregular calcification and wormian bone formation associated with osteogenesis imperfecta), cleidocranial dystosis, cretinism, Down syndrome.

अँधेरे कमरे में परीक्षण करने पर कपालास्थि में प्रकाश आर-पार दिखायी दे, तो जलशीर्ष (Hydranencephaly या Porencephaly) के लिए भी विचार करना चाहिए।

अग्र तालुरन्ध्र के बड़े होने पर सम्भावित व्याधियाँ

Achondroplasia	Osteogenesis imperfecta
Apert's syndrome	Prematurity
Athyrotic Hypothyroidism	Pyknodysostosis
Cleidocranial dysostosis	Rubella syndrome
Hallerman-streiff syndrome	Russell-silver syndrome
Hydrocephaly	Trisomies 13,18,21

Scanned with CamScanner

Hypophosphatasia Vitamin D deficiency rickets
Intrauterine growth retardation.

(4) मुखाकृति, नेत्र, कर्ण, नासा एवं मुखगुहा—मुखाकृति का परीक्षण जन्मजात विकृति के लिए ध्यान से करें; यथा—नेत्र के अन्त: किनारों पर विचित्र त्वक्-झुर्रियाँ, नेत्रों में असामान्य दूरी तथा सामान्यावस्था से नीचे जुड़े कर्ण, 7वीं क्रेनियल नाड़ी पक्षाघात के कारण चेहरे में असामान्यता, चिबुक की असामान्यता आदि। समय पूर्व प्रसवित शिशु का सिर सामान्य से बड़ा दीखता है। नेत्रतारा प्रतिक्रिया (Pupillary reflexes) 28 सप्ताह के गर्भस्थ शिशु में आ जाती है। यदि नेत्र कृष्णमण्डल (Cornea) का व्यास नवजात में 1 से.मी. से अधिक हो तो जन्मजात अधिमन्थ (Glucoma) की सम्भावना अधिक होती है। बाह्यकर्ण की असामान्यता सुगमता से परिलक्षित होती है। कर्णरन्ध्र के छोटे होने से पर्दा आसानी से दिखायी देता है। नासा-सन्धि (Bridge) एवं मध्यफलक (Septum) की विकृति भी सामान्य रूप से देखी जा सकती है।

मुखगुहा में समयपूर्व या जन्मजात दन्तोत्पत्ति कभी-कभी दिखायी देती हैं, यह विभिन्न व्याधियों की द्योतक है; यथा—Ellis-Van Creveld, Hallermann Strieff या अन्य Syndrome। मुखगुहा, ओष्ठ-तालु विकृति (Cleft Palate, Hare lip) के लिए भी देखिये। कभी-कभी मसूड़ों पर गाँठे (Retention cyst) दिखायी पड़ती हैं जो कुछ सप्ताह में स्वयं समाप्त हो जाती हैं। गुहा में पीतवर्ण के फफोले या व्रण गलशुण्डिका पर अज्ञात कारणों से दीखते हैं, जो किसी चिकित्सा के बिना स्वयं 2-4 दिन में ठीक हो जाते हैं। गाल अन्त: एवं बाह्य रूप से भरे-भरे दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि बच्चे के द्वारा स्तनपान में सर्वाधिक कार्य इन्हें ही करना पड़ता है। स्तनपान काल समाप्त होते-होते यह भरापन भी समाप्त हो जाता है।

(5) ग्रीवा—देखने में अपेक्षाकृत छोटी दिखायी पड़ती है। ग्रीवा की विकृतियाँ कम ही दिखायी पड़ती हैं। गलगण्ड (Goiter) Cystic hygroma, branchial cleft rests तथा ग्रीवा पेशी (Sternocleidomastoid muscle) में कोई विकृति आघातज देखी जानी चाहिए। कन्याओं में त्वचा की ग्रीवा पर अत्यधिक झुर्रियाँ (Redundant skin or webbing) Turner syndrome की सम्भावना व्यक्त करती है। दोनों ग्रीवास्थियों (Clavicles) को भग्न हेतु अवश्य देखना चाहिए।

(6) फुप्फुस-परीक्षण—श्वसन का ध्यान से निरीक्षण करने पर फुप्फुस के विषय में उतना ही ज्ञान किया जा सकता है, जितना ताड़न एवं श्रवण परीक्षा से। श्वसन की गति में, लक्षण में एवं व्यवस्था में परिवर्तन से संकेत मिलता है। श्वसनगति 20 से 100 तक प्रति मिनट हो सकती है, शिशु की शारीरिक गतियों का, जगे रहने पर तथा चिल्लाने पर श्वसन गति में इस प्रकार की अनियमितता मिलती है। अत: बच्चे की शान्त अवस्था में या निद्राकाल में गति की गणना करनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

अवस्था	श्वसनगति लक्षण परिवर्तन
1. सामान्य शिशु	30 से 40/मिनट
2. समय पूर्व प्रसवित शिशु में	सामान्य से अधिक, अनियमित, समयबद्ध श्वसन (Periodic respiration) Cheyne-stokes rhythm
3. श्वसनकेन्द्रगत कारण	अनियमित, हाँफना (Gasping) एवं मुख तथा चिबुक की दर्द युक्त गति(Spasmodic movement)
4. सामान्य श्वसन-लक्षण शिशु में	Diaphragmatic, Bronchovesicular.

(7) हृदय-परीक्षण—वक्षाकृति में सामान्य अन्तर शिशु से शिशु में होने के कारण एकदम सही हृदयाकृति मापन कठिन है। परन्तु हृदय सामान्य स्थल पर है या विपरीत स्थल पर (Dextrocardia) इसे अवश्य देखना चाहिए। कभी-कभी क्षणिक मर-मर (Murmur) भी मिलती है, जो जन्मजात हृदयरोग के कारण हो, यह आवश्यक नहीं है, यदि हृदयगत व्याधि की सम्भावना है तो आवश्यक एक्स-रे परीक्षण करना चाहिए। ऐसी अवस्था में नाड़ीगति शयनकाल में 80-90/मिनट से जाग्रत काल में 180/मिनट तक मिलती है। नवजात शिशु की नाड़ी के लिए बाहु एवं पैर दोनों स्थानों पर परीक्षण करना चाहिए।

(8) रक्तचाप—शिशुओं का रक्तचाप मापन कुछ कठिन कार्य हैं। इसके लिए सामान्य श्रवण-विधि अपनायी जा सकती है। मापन यन्त्र के कपड़े की थैली (Cuff) 5, 7, 12 एवं 18 से.मी. आकृति में आती है। उससे मापन बाहु पर तथा पैरों में बाँधकर करते हैं। सामान्य रक्तचाप इसी अध्याय के प्रथम तालिका में दिया गया है। इनके अतिरिक्त (Doppler method, flush method या Direct method) का भी प्रयोग होता है।

(9) उदर, जननाङ्ग एवं गुदा परीक्षण—सामान्य रूप से लगभग 2 से.मी. यकृत् स्पर्श होता है। दबाकर स्पर्श परीक्षण करके वृक्क को भी देखा जा सकता है। प्राय: सामान्य रूप से प्लीहा का स्पर्श नहीं होता है। संक्रमित (Septic) नवजात में पित्ताशय वृद्धि मिलती है। असामान्य अर्बुद की उपस्थिति पर एक्स-रे परीक्षण करवाना चाहिए। नवजात शिशु में जन्म के समय या कुछ काल बाद उदर का फूला होना आन्त्रिक अवरोध या विदारण का सङ्केत हो सकता है। (Scaphoid) उदर (Diaphragmetic hernia) का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त नाभिगत या परिनाभीय वृद्धि (Hernia) भी दिखायी पड़ सकता है। उदरभित्ति के कमजोर होने के कारण रेक्टाई पेशियों का अलगाव (Diastasis recti) भी दिखायी पड़ सकती हैं।

जननाङ्गों तथा स्तन पर माता के शरीर से आये हुए अङ्गरसों का प्रभाव स्पष्ट कभी-कभी दिखायी पड़ता है; यथा—बालक या बालिका के स्तन का फूला होना (उभार युक्त) एवं उसे दबाने पर हल्का स्राव, बालिका की योनि का हल्का उभरा होना, कभी-कभी रक्तमय श्लैष्मिक स्राव का होना।

Scanned with CamScanner

इन अवस्थाओं में किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है । मात्र इनका ध्यान रखा जाना चाहिए । सामान्य रूप से वृषणकोष कुछ बड़ा होता है परन्तु स्फिग प्रसव या चोट आदि के कारण भी वृषणकोषवृद्धि (Hydrocoele) भी हो सकता है । वृषण की भी कोष में उपस्थिति परीक्षणीय विषय है । बालक के लिंग का परीक्षण सन्निरुद्ध-प्रकश आदि के लिए करें । कभी-कभी लिंग में मूत्रनलिका का मार्ग अग्रभाग पर (Anterior) खुला होता है, यह अवस्था Epispadias कहलाती है । कभी-कभी पश्चभाग पर खुलने वाली अवस्था Hypospadis कहलाती है । यह जन्मजात विकृतियाँ लिंग क्रोमोसोमस की असामान्यता या पुरुषाकृति महिला (भगशिश्निका वृद्धि के साथ) हैं जो सम्भवत: Adrenogenital syndrome का प्रथम लक्षण है ।

कुछ शिशु जन्म बाद प्रथम 12 घण्टे में ही प्रथम बार मल त्याग (Meconium) कर देते हैं । 99% पूर्व प्रसवित एवं 95% समय पूर्व प्रसवित शिशु 48घण्टे में मलत्याग अवश्य कर देते हैं । सन्निरुद्धगुद (Imperforate Anus) के लिए इसके बाद परीक्षण करना चाहिए ।

अन्य सांस्थानिक परीक्षण—सामान्य रूप से बच्चे की शाखाओं का परीक्षण करना चाहिए । नितम्ब सन्धिच्युत का परीक्षण अवश्य करना चाहिए । अन्य अध्यायों में वर्णित सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत शिशु के अन्य तन्त्रों का भी परीक्षण करना चाहिए ।

उपर्युक्त दिशा-निर्देश का तात्पर्य यह है कि नवजात शिशु की परीक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है । इसका महत्त्व किसी रोगी परीक्षा से कम नहीं है । नीचे तालिका में इतिवृत्त एवं परीक्षण के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को संकलित किया गया है, जो सम्भाव्य समस्याओं के निदान में महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकते हैं ।

स्थिति	सम्भावनायें
• **गर्भिणी**	
गर्भिणी की वय 18 वर्ष से कम या 35 वर्ष से अधिक हो ।	समय पूर्व प्रसव, क्रोमोसोमल (Chromosomal) विकृति
गर्भावस्था के प्रथम तीन मास में रेडियेशन (Radiation) एवं औषधि प्रयोग	जन्मजात विकृति
खसरा, टाक्सोप्लाज्मोसिस (Toxoplasmosis), कर्ण मूलशोथ (Mumps) जैसी विषाणु जन्य व्याधियाँ	जन्मजातविकृति, SGA, जलशीर्ष, जन्मजात हृदयरोग, लघुशीर्ष (Microcephaly).
• **गर्भावस्था के अन्तिम त्रयमास में**	
छोटी माता (Chiken pox), तृतीयक ज्वर, उपदंश, राज-यक्ष्मा, एवं यकृतशोथ (Hepatitis B)	नवजात शिशु में भी यह संक्रमण हो सकते हैं ।

Scanned with CamScanner

स्थिति	सम्भावनायें
गर्भिणी को जीर्ण व्याधियाँ यथा—उच्च रक्तचाप, मूत्रवहस्रोतस् के विकार, हृदय रोग आदि हों ।	समय पूर्व प्रसव, SGA
मधुमेह	रक्तशर्करा मे कमी, LGA, जन्मजात विकार आदि ।
पाण्डु (लौह तत्त्व अल्पता जन्य), एवं Megaloblastic पाण्डु	अल्पभार शिशु (LBW)
• गर्भिणी के पूर्व-प्रसव का इतिवृत्ति	
गर्भपात, मृतगर्भ प्रसव, समयपूर्व प्रसव	उपदंश
मृत एवं सड़ा हुआ प्रसव (Hydrops)	आर.एच. फैक्टर विषमयता, गर्भाशयरन्तर संक्रमण, हृदय रोग या मूत्रवह स्रोतस् विकार
कामला (Hyper bilirubinemia)	रक्तवर्ग विषमयता
आक्षेप, वमन, जलाल्पता	जन्मजात चयापचय विकृति, Congenital adrenal hyperplasia)
जन्मोपरान्त मृत्यु	जन्मजात विकृति, जन्मजात चयापचय विकृति, अज्ञात कारण (SIDS)
• गर्भिणी परिचर्या (ANC) नहीं ली गयी है, उस अवस्था में—	
धनुर्वातरोधी टीका नहीं लगा है ।	नवजात धनुर्वात
उपदंश परीक्षण (UDRL) धनात्मक	जन्मजात उपदंश
गर्भवती के द्वारा गर्भिणी परिचर्या (ANC) न करायी गयी हो ।	गम्भीर समस्या (High risk) युक्त प्रसव
प्रथम प्रसवा, बह्वपत्या, मातृभार 40 कि.ग्रा. से कम हो । मातृ लम्बाई 145 सें.मी. से कम हो । दो गर्भ के मध्य अन्तराल 2 वर्ष से कम हो । Hb 8 ग्राम% से कम हो, गर्भावस्था में गर्भिणी भार 5 क्रिग्रा से कम बढ़ा हो ।	
• गर्भावस्था जन्य व्याधियाँ	
गर्भावस्था में रक्तस्राव (APH)	पाण्डु तथा पाण्डु के उपद्रव, समय पूर्व प्रसव, नवजात शिशु का श्वासावरोध
गर्भ-विषमयता	SGA, समयपूर्व प्रसव, नवजात शिशु का श्वासावरोध

Scanned with CamScanner

स्थिति	सम्भावनायें
गर्भोदक की बहुलता (Polyhydramnios)	जन्मजात विकार यथा Tracheo-oeso-phascal fistula, आंत्रावरोध, कामला (Erythroblastosis fetalis), यमल गर्भ, Anencephaly
गर्भोदक की अल्पता (Oligohydromios)	मूत्रवह स्रोतस् विकृति, गर्भाशयान्तर मृत्यु, गर्भोदक बन्ध (Bands)
• **माता द्वारा अपथ्य सेवन**	
धूम्रपान, शराब या नशा पैदा करके वाली औषधि या द्रव्य (Narcotic drugs)	SGA, तथा इन द्रव्यों के न मिलने पर होने वाले लक्षण शिशु में उत्पन्न हो सकते हैं ।
• **प्रसव विषयक इतिवृत्त**	
प्रसव की द्वितीय अवस्था का लम्बा होना यथा—प्रथम प्रसवा में 2 घण्टे से तथा बह्वपत्या में 30 मिनट से अधिक समय का लगना ।	नवजात शिशु श्वासावरोध
योनिमार्ग से लम्बे समय से (12 घंटे से अधिक) गर्भोदक का आना	संक्रमण एवं प्रसव में कठिनाई
गर्भ द्वारा गर्भाशय में मलत्याग	नवजात शिशु श्वासावरोध, (Meconium aspiration)
औषधि प्रयोग, यथा—Narcotics, anticonvulsants and anaesthetics	श्वासावरोध (Respiratory depression)
• **प्रसव विधि**	
शस्त्र द्वारा (Forceps)	गर्भ के उपस्थिति अंग (यथा नाक, नेत्र) पर आघात या अस्थि का भग्न, उपशीर्षक (रक्तस्राव युक्त), मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव
कुक्षिपाटन (LSCS)	श्वसनप्रक्रिया में व्यवधान (Tachypnoea), नवजात शिशु श्वासावरोध, उपस्थित अंग का छेदन-भेदन अथवा अपरा छेदन, शिर के निकालने में कठिनाई एवं अग्रशाखा-स्थि भग्न ।
• **गर्भ की गतियों का प्रभाव**	
स्फिगोदय	जन्मजात श्वासावरोध, उत्फुल्लिका, अस्थिभग्न, शाखास्थि, जत्रु-अस्थि (Clavicle) का भग्न, ग्रीवा भग्न, यकृत्-प्लीहा आघात, स्वर-यन्त्र आघात ।

Scanned with CamScanner

स्थिति	सम्भावनायें
मुखोदय, भ्रू उदय	शोथ, मुख पर रक्तिमा, नेत्र-श्वेतपटल में रक्तस्राव, स्वरयन्त्र आघात ।
अतिशीघ्र (Precipitate) प्रसव	मस्तिष्कगत स्राव (ICH), शिरोआघात, नाभिनाड़ी आघातज रक्तस्राव
यमल गर्भ	समय पूर्व प्रसव, SGA, एक गर्भ से दूसरे में रक्तपरिभ्रमण, द्वितीयगर्भ में श्वासावरोध

प्रसवोपरान्त सद्यःजात शिशु का समय पर परीक्षण करना चाहिए । ध्यानपूर्वक परीक्षण से बहुत-सी व्याधियों का अनुमान हो जाता है ।

परीक्षण	सम्भावित परिणाम
• **आसन**	
समयपूर्व प्रसवित शिशु	ऊपरी शाखायें फैली हुईं (Extended), अधो शाखा संकुचित (Flexed) रहती हैं ।
समय पर प्रसवित शिशु	सभी शाखायें संकुचित ।
• **सक्रियता**	
सभी शाखाओं की अल्प सक्रियता/निष्क्रियता	रुग्णावस्था, श्वासावरोध, मांशपेशी विकृति (Hypotonia)
एक शाखा की अल्प सक्रियता/निष्क्रियता	स्थानीय आघात, अस्थिभग्न, नाडी आघात, एकाङ्ग पक्षवध ।
• **रुदन**	
दबा हुआ	माता द्वारा निद्राजनक या अवसादक औषधि का सेवन, श्वासावरोध ।
तीव्र स्वर में (High pitched)	मस्तिष्क व्याधिजन्य यथा मस्तिष्कशोथ ।
कमजोर स्वर में, लगातार	श्वसन में कठिनाई, रुग्णावस्था
• **वर्ण**	
श्वेताभ (Pallor)— स्थान—नेत्र-श्वेतपटल, जिह्वा, हथेली, तलवा	पाण्डु, मूर्च्छा (Shock), शोफ एवं ओषोजन अल्पता
पीताभ (Yellowish)— स्थान—ललाट, नाक का अग्रभाग, वक्षोदर, हथेली, तलवा	नवजात शिशु कामला

Scanned with CamScanner

परीक्षण	सम्भावित परिणाम
नीलिमा—	जन्म के बाद दोनों शाखाओं पर सामान्य रूप में दिखायी पड़ सकता है, परन्तु श्वसन में कोई समस्या न हो ।
स्थानीय नीलिमा	प्रसवकाल में गर्भाशय मुख पर उपस्थित अंग पर दबाव के कारण दिखाई दे सकता है ।
शाखाश्रित नीलिमा	शरीर का तापक्रम कम होना, हृदयरोग (CCF) संक्रमण, रक्तशर्करा में कमी, प्राणवह स्रोतस् व्याधियाँ, मूर्च्छा (Shock), Polycythemia.
केन्द्रीय नीलिमा	नीलिमायुक्त हृदयरोग, एवं तीव्र स्वरूप की प्राणवह स्रोतस् व्याधि
• **श्वसन गति**	
सामान्य तीव्र श्वसन गति (60 प्रति मिनट से अधिक)	40-60 प्रति मिनट (प्रायः) हृदय रोग, प्राणवह स्रोतस् व्याधि, रक्त में अम्लीयता
अनियमित श्वसन	प्रायः जन्मजात के बाद (सामान्य रूप से) नवजात श्वासावरोध, मस्तिष्कगत रक्तस्राव (ICH), मस्तिष्क में शोफ, माता द्वारा निद्राकारक, निश्चेतक औषधि आदि का प्रयोग किया गया हो ।
• **हृदय गति**	
सामान्य	120-160 प्रति मिनट
तीव्र हृदय गति (160 प्रति मिनट से अधिक)	हृदय रोग (CCF), संक्रमण, चयापचय सम्बन्धित विकार
• **शिर**	
परिधि	33-35 से.मी.
अनियमित आकृति (Moulding)	कपालास्थियों की सीवनीय का एक दूसरे पर चढ़ जाने के कारण । ऐसा योनिमार्ग से होने वाले प्रसव में दबाव के कारण होता है । यह सामान्य प्रक्रिया है ।
शिर की परिधि का सामान्य से कम होना (Microcephaly)	कुलज, संक्रमण या कुछ सिंड्रोम में ।

Scanned with CamScanner

परीक्षण	सम्भावित परिणाम
शिर की परिधि का सामान्य से अधिक होना (Macrocephaly)	जलशीर्ष, शिर का बड़ा होना (Cerebral 'gigantism)
तालु रन्ध्र	संख्या 6 जिसमें पार्श्व ताल रन्ध्र 4 होते है जो प्रसव के पूर्व बन्द हो जाते हैं । पश्च तालु रन्ध्र जन्म से 3 माह की वय में तथा अग्रतालु रन्ध्र 9 से 18 माह की वय में बन्द हो जाता है । अग्रतालु रन्ध्र यदि उभरा हुआ (Full) दिखता है तो, मस्तुलुङ्ग (CSF) के दबाव की वृद्धि का द्योतक है । यथा—मस्तिष्क शोथ, या रक्तस्राव । रन्ध्र जलाल्पता में दबा रहता है ।
उभार	उपशीर्षक, रक्तयुक्त उपशीर्षक (Cephalo-haematoma) तथा उसके उपद्रव यथा—पाण्डु, कामला, संक्रमण
• **सेवनी**	
कपालास्थि मध्य सेवनी यदि अधिक खुली हो	समयपूर्व प्रसव, जलशीर्ष, Congenital hypothyroidism, अस्थिगत व्याधियाँ यथा—Skeletal dysplasia, osteoge-nesis imperfecta
कपालास्थि सेवनी समयपूर्व जुड़ जाय । (Craniostenosis)	शिर की आकृति में विकृति ।
• **केश**	
भारतीय शिशु	Mop of hair
समयपूर्व प्रसवित शिशु	Fuzzy hair
केश की शिर पर Lower line	Turner's syndrome Cornelia de longe
शिर के आर-पार रोशनी अवभासित हो (Transillumination)	जलशीर्ष, Hydraenencephaly
• **नेत्र**	
उर्ध्व दृष्टि	Down's syndrome, बालग्रह
अधोदृष्टि	Treacher-Collins syndrome
उभरे हुए नेत्र (Buphthalmos)	जन्मजात अधिमन्थ Enlarged and cloudy cornea

Scanned with CamScanner

परीक्षण	सम्भावित परिणाम
Brushfields spot	Down's syndrome
लिङ्गनाश	जन्मजात, पारिवारिक, विषाणु संक्रमण जन्य, Down's syndrome, Hypo-parathyrodism)
• **घ्राणेन्द्रिय**	
श्वसन प्रक्रिया में अतिशय प्रयास	Chonal atresia.
पानी जैसा पतला स्राव नाक से (Sero-sanguinous)	जन्मजात उपदंश
• **कर्णेन्द्रिय**	
बाह्य कर्ण का अनुपस्थित होना या धागे के समान होना	प्राय: साथ में मूत्रवहस्रोतस् विकृति होती है ।
• **मुख**	
अत्यधिक लालास्राव	खण्डौष्ठ, खण्डतलु, Tracheoesopha-geal fistula
जन्मकालीन दंतोद्भव	सामान्य
• **ग्रीवा**	
छोटी ग्रीवा (Webbing)	Turner's syndrome
ग्रीवा के अग्रपार्श्व भाग में अर्बुद (Sternomastoid tumour)	यह सामान्य रूप से स्फिगोदय प्रसव या या यन्त्र प्रसव (Forcep) में मिलता है जिसमें ग्रीवा पेशी में रक्त संग्रह (Hae-matoma) बन जाता है ।
गलगण्ड	जन्मजात
ग्रीवा पर ऐसा शोफ जिसमें प्रकाश आर-पार हो जाता है ।	Cystic hygroma
• **वक्ष**	
सामान्यत: पाइप (Barrel) के अकार का, चूचूक का पूर्ण विकसित होना बालक एवं बालिकाओं में होता है ।	कभी-कभी अतिरिक्त चूचक भी मिल सकते हैं ।
फूला हुआ (Emphysematous)	मलमिश्रित गर्भोदक पान (Aspiration)
एकदेशीय फूला हुआ (Bulge)	Pneumothorax

Scanned with CamScanner

परीक्षण	सम्भावित परिणाम
• **उदर**	
सामान्य	हल्का उभारयुक्त (Protuberant)
फूला हुआ	जलोदर, आंत्रावरोध, उदरअर्बुद, Paralytic Ilius, आंत्र में मल
Scaphoid	Diaphragmatic hernia
नाभिनाल	यदि गर्भ ने गर्भाशय में मलत्याग कर दिया हो तो हरित वर्ण
एकधमनी वाली नाभिनाल	हृदय, मूत्रवहस्रोतस् अथवा आंत्र विकृति (रचनात्मक)
नाभिनाल से स्राव	नाभिशोथ एवं संक्रमण (Sepsis)
नाभिस्थल से उदर अंग का बाहर आना	उदरभित्ति की जन्मजात विकृति
• **यकृत्**	
दक्षिण पार्श्व में 2 से 4 से.मी. तक स्पर्शानुभूति (Palpable)	सामान्य
यकृद्वृद्धि/यकृतोदर	जन्मजात हृदयरोग (CCF), यकृत्शोथ (Hepatitis), नवजात श्वासावरोध, अर्बुद आदि ।
यकृत-प्लीहोदर	गर्भाशय कालीन संक्रमण, तृतीयकज्वर, पाण्डु (Haemolytic), संक्रमण (Sepsis)
वृक्क वृद्धि	वृक्क अर्बुद एवं विकार यथा वृक्क शिरा में Thrombosis, Hydronephrosis Polycystic व्याधि ।
• **जननांग**	
निरुद्धप्रकश	नवजात में सामान्य है
अण्डकोष अल्प या अर्ध विकसित	समयपूर्व प्रसव, वृषण का अण्डकोष में न आना
मूत्रमार्ग स्थान	सामान्य से अलग—Hypospadiasis epispadiasis
अस्पष्ट जननाङ्ग	षण्ड/षण्डी, Adrenogenital syndrome
अण्डकोष वृद्धि	Hydrocele, आंत्रवृद्धि

Scanned with CamScanner

• **शाखा**

छोटी शाखा में जन्मजात विकृतियाँ, सन्धिविकृति, भग्न मेरुदण्ड विकृति (Spina-bifida) आदि मिल सकती है ।

• **उल्वा**

32 सप्ताह तक के गर्भावस्था के शिशु में अधिक मिलता है । पूर्णकालिक प्रसव में केवल बलग (Axilla) एवं Groin स्थान पर मिलता है । इसके बाद के समय में प्रसव होने पर नहीं मिलता है ।

• गर्भ पर त्वक् रोग (Lango hair)—यह प्राय: समय पूर्व प्रसवित शिशु में मिलते हैं।

गर्भावस्था वय का निर्धारण

जन्म के तुरन्त बाद गर्भावस्था वय का निर्धारण किया जाना चाहिए जिससे विशिष्ट परिचर्या, प्रबन्धन तथा अरिष्ट ज्ञान (Prognosis) में मदद मिलती है । एतदर्थ शारीरिक लक्षण एवं नाड़ीतन्त्र दोनों के लक्षणों के आधार पर परीक्षण करना चाहिए । जन्म के तुरन्त बाद शारीरिक लक्षणों का तथा नाड़ीतन्त्र की परीक्षा बालक के आराम की एवं जाग्रत् अवस्था में करनी चाहिए ।

वय-निर्धारण

1. अन्तिम मासिक रज:स्राव की तिथि के आधार पर ।

2. स्कोरिंग सिस्टम के आधार पर ।

स्कोरिंग सिस्टम—इसे New Ballard Score के नाम से जाना जाता है । जिसमें आगे प्रस्तुत 2 तालिकाओं का प्रयोग करते हैं—

(1) शारीरिक परिपक्वता स्कोर—इसमें त्वचा, शिशु के शरीर पर उपस्थित गर्भकालीन बाल (Lanugo), करतल, स्तन, नेत्र/कर्ण, पुरुष/स्त्री जननाङ्ग की परिपक्वता के आधार पर वृद्धिक्रम में 1 से 4/5 तक अंक देते हैं ।

(2) नाड़ीतन्त्र परिपक्वता स्कोर—इसमें शरीर की स्थिति एवं विभिन्न शाखाओं के कोणों के आधार पर स्कोर 1 से 4/5 तक देते हैं । जैसा कि आगे प्रस्तुत तालिका में प्रदर्शित है ।

इन दोनों तालिकाओं के संयुक्त स्कोर से प्राप्त अंक के आधार पर गर्भावस्था वय निर्धारित करते हैं । जैसा Maturity Rating में दर्शाया गया है ।

Scanned with CamScanner

(1) Assessment of gestational age by new Ballard Score (Contd.)

Physical maturiry	Score -1	0	1	2	3	4	5
Skin	Sticky, friable. transparent	Gelatinous red, translucent	Smooth, pink, visible veins	Superficial peeling and/or rash, few veins	Cracking, pale areas, rare veins	Parchment deep cracking, no vessels	Leathery, cracked, wrinkled
Lanugo	None	Sparse	Abundant	Thinning	Bald areas	Mostly bald	
Plantar surface	Heel-toe 40-50 mm :-1 <40 mm :-2	<50 mm. no crease	Faint red marks	Anterior transverse crease only	Creases on anterior 2/3rd	Creases over entire sole	
Breast	Imperceptible	Barely perceptible	Flat areola, no bud	Stripped areola, 1-2 mm bud	Raised areola, 3-4 mm bud	Full areola, 5-10 mm bud	
Eyes/ears	Lids fused loosely (-1), tightly (-2)	Lids open, pinna flat, stays folded	Slightly curved pinna; soft, slow recoil	Well-curved pinna, soft but ready recoil	Formed and firm, instant recoil	Thick cartilage, ear stiff	
Genitals male	Scrotum flat, smooth	Scrotum empty, faint rugae	Testes in upper canal, rare rugae	Testes descending, few rugae	Testes down, good rugae	Testes pendulo-us, deep rugae	
Genitals female	Clitoris prominent, labia flat	Prominent clitoris, small labia minora	Prominent clitoris, enlarging labia minora	Majora and minora equally prominent	Majora large, minora small	Majora cover clitoris and minora	

Scanned with CamScanner

Assessment of gestational age by new Ballard Score *(Contd.)*

Maturity rating		Score						
Score	GA (In weeks)	Neuromuscular maturity	-1	0	1	2	3	4 5
-10	20	Posture						
-5	22							
0	24	Square window (wrist)	>9°	90°	60°	45°	30°	0°
5	26							
10	28							
15	30	Arm recoil		180°	140-180°	110-140°	90-110°	<90°
20	32							
25	34							
30	36	Popliteal angle	180°	160°	140°	120°	100°	90° <90°
35	38							
40	40							
45	42	Scarf sign						
50	44							
		Heel to ear						

Adapted from Ballard JL, Khoury JC, Wedig K, Wang L, Eiers-Waslma BL, Lipp R. New Ballard Score, expanded to include extremely premature. J. Pediatr 1991 : 119:417-423

Scanned with CamScanner

अध्याय - 4

नवजात शिशु-परिचर्या

प्राय: सभी आयुर्वेद के महर्षियों ने इसका बृहद् विवेचन किया है। परन्तु परिचर्या के विभिन्न कर्मों को करने का जो क्रम दिया गया है, वह सभी में अलग-अलग वर्णित है; यथा—

चरकसंहिता	सुश्रुतसंहिता	अष्टाङ्गहृदय
उल्वा-परिमार्जन	उल्वा-परिमार्जन	उल्वा-परिमार्जन
प्राणप्रत्यागमन	मुखविशोधन	प्राणप्रत्यागमन
स्नान	पिचुधारण	नालछेदन
मुखविशोधन	नालछेदन	स्नान
गर्भोदक वमन	जातकर्म	पिचुधारण
नालछेदन	स्नान	सुवर्णप्राशन
जातकर्म[1]		गर्भोदक वमन
रक्षाकर्म		जातकर्म

इन सभी का अध्ययन हम आधुनिक काल में किये जा रहे क्रम से करेंगे।

नालछेदन

'तत: कल्पनं नाड्या: । अतस्तस्या: कल्पनविधिमुपदेक्ष्याम:—नाभिबन्धनात् प्रभृत्यष्टाङ्गुलमभिज्ञानं कृत्वा छेदनावकाशस्य द्वयोरन्तरयो: शनैर्गृहीत्वा तीक्ष्णेन रौक्मराजतायसानां छेदनानामन्यतमेनार्धधारेण छेदयेत् । तामग्रे सूत्रेणोपनिबध्य कण्ठे-ऽस्य शिथिलमवसृजेत् । तस्य चेन्नाभि: पच्येत्, तां लोध्रमधुकप्रियङ्गुसुरदारुहरिद्रा-कल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यज्यात्, एषामेव तैलौषधानां चूर्णेनावचूर्णयेत् । इति नाडी-कल्पनविधिरुक्त: सम्यक्' । (च.शा. 8:44)

(आचार्य चरक ने प्राणप्रत्यागमन के उपरान्त ही नाभिनाल-कर्तन का वर्णन किया है।) नाभिनाल के नाभि से 8 अङ्गुल छोड़कर चिह्न लगा दें और जिस स्थान पर छेदन करना हो उसे दोनों ओर पकड़कर तीक्ष्ण स्वर्ण, चाँदी या लोहा किसी एक धातु के बने अर्धधार वाले चाकू से काट दें। कटा हुआ जो भाग नाभि से संलग्न है उसके अग्रभाग में सूत्र बाँधकर बालक के कण्ठ में बाँध देवे। यदि नाभि पकने लगे तो लोध्र, प्रियङ्गु,

1. जातकर्म का विवेचन आगे 'कुमारों में संस्कार' अध्याय में देखिये। ध्यान रखिये कि जातकर्म या नवजात शिशु कर्म तथा जातकर्म संस्कार अलग-अलग हैं। जातकर्म का तात्पर्य नवजात शिशु के साथ किये जाने वाले उपयुक्त कर्म है। संस्कार अलग विधा है।

Scanned with CamScanner

सुरदारु, हरिद्रा कल्क-साधित तैल का अभ्यङ्ग करें। इन्ही द्रव्यों के चूर्ण का पके हुए भाग पर अवचूर्णन करें। यह नाड़ीकल्पन की उचित विधि है।

'ततो नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायस्य सूत्रेण बद्धवा छेदयेत्, तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात्' (सु.शा. 10:12)

(पिचु धारण के बाद) तदोपरान्त (नाभि से) नाभिनाडी 8 अङ्गुल नापकर, सूत्र में बाँधकर, कैची से काट देवे। फिर उस सूत्र के दूसरे सिरे को बालक के गले में बाँधे। (जिससे 8 अङ्गुल लम्बी नाभि लटक कर मल-मूत्र से गन्दी न हो सके।)

'स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरङ्गुलात्।
बद्ध्वोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवसञ्जयेत्।
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्स्नापयेदनु'॥ (अ.हृ.उ. 1:5-6)

'प्रत्यागतप्राणस्य च प्रकृतिभूतस्य नाभिनालं नालाभिबन्धनाच्चतुरङ्गुलस्योर्ध्वं क्षौमसूत्रेण बध्वा तीक्ष्णेन शस्त्रेण वर्धयेत्। ग्रीवायां चैनमासञ्जेत्। नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्'। (अं.सं.उ. 1:5)

'प्रदीप्ताङ्गाररजसा प्रशान्तेनावचूर्णयेत्।
पञ्चमेऽहन्यपतन्नालं लेपयेद्वा गुडाम्भसा॥
सान्द्रेण भूमौ घृष्टेन·····। (अं.सं.उ. 2:85)
नालपातेऽपि चोन्नताम्'।
'नाभिं छागेनं शकृता दग्धेनान्तर्विचूर्णयेत्'। (अं.सं.उ. 2:86)

बच्चे को स्वस्थ होने पर (प्राणप्रत्यागमन के बाद) इसकी नाभिनाल को 4 अङ्गुल ऊपर से बाँधकर काट देवे। इस बचे भाग को सूत्र से गले में लटका दें। कुष्ठतैल का परिषेक नाभि पर करें। लगभग इसी प्रकार की व्याख्या अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी की है। प्रदीप्त अङ्गार के शान्त होने पर उसके रज का अवचूर्णन नाभिनालकर्तन के बाद उस पर करें। नाल पाँच दिन में सूखकर गिर जाती है। तदुपरान्त गुडभास को घिसकर लगाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न आचार्यों ने कुछ काल के बाद ही नाभिनाल काटने की बात की है। आज भी कुछ विद्वानों का मत है कि यदि नाभिनाल में स्पन्दन वन्द होने के बाद काटा जाय तो शिशु में करीब 100 सीसी रक्त अपरा से चला जाता है। परन्तु प्रसवोपरान्त उस स्थल पर शिशु की मुख विशोधन, प्राणप्रत्यागमन आदि करना कठिन होता है अतः कुछ विद्वान् तुरन्त नाभिनाल काटने की बात करते हैं। अतः यदि शिशु स्वस्थ है, तुरन्त श्वसन प्रारम्भ कर दिया है तो मुख-विशोधन कर नाभिनाल-स्पन्दन समाप्त होने पर ही नाभिनाल काटें। अन्यथा प्रसवोपरान्त तुरन्त काट लें। दूसरा प्रश्न आचार्यों ने नाभिनाल काटने के स्थान के विषय में रखा है। कुछ आचार्यों ने नाभि

Scanned with CamScanner

से 8 अङ्गुल पर, कुछ ने 4 अङ्गुल पर काटने का विधान किया है। इतनी लम्बी नाभिनाल होने पर मल-मूत्र से गन्दी होने के भय से गर्दन में बाँध कर लटकाने को कहा है। टीकाकार इन्दु का स्पष्ट रूप से यही मत है—

'छिन्नशिष्टं नाभिनालं बालस्य ग्रीवायां सूत्रेणासज्जयेल्लम्बत्वपरिहाराय'। (इन्दु)

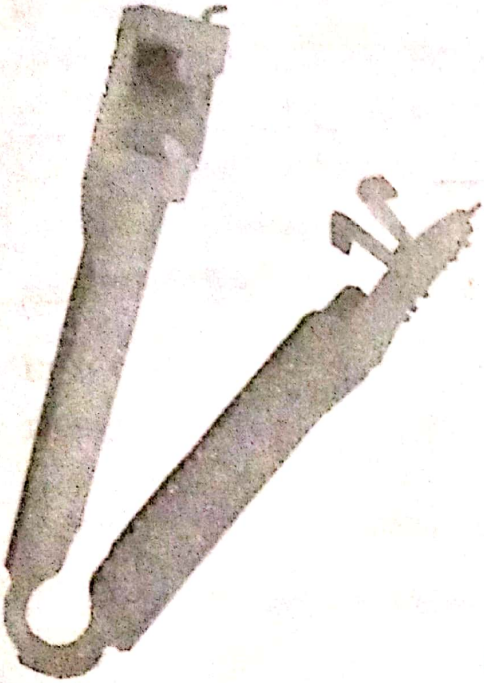

चित्र सं. 1 : कार्ड क्लैम्प

यदि लम्बाई कम कर दी जाय तो गले में बाँधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। आजकल नाभि में $1\frac{1}{2}$''-2'' की दूरी पर दो तरफ से पकड़कर, काट कर संक्रमणविहीन सूत्र से बाँध देते हैं अथवा कार्ड क्लैम्प लगा देते हैं। नाभि-नाल का 2 से 4 घण्टे के मध्य रक्तस्राव हेतु परीक्षण करते हैं, सूत्रबन्धन के ढीला होने से या नाभिनाल के सिकुड़कर ढीला-पन आने से रक्तस्राव हो सकता है। आव-श्यकतानुसार बन्धन कस देते हैं। पाक आदि से बचाने के लिए Triple dye का स्थानीय प्रयोग, संक्रमण से बंचाने हेतु जीवाणुनाशक चूर्ण का प्रयोग, Neo-mycin, Bacitracin and Polymyxin का स्थानीय प्रयोग करते हैं। यदि पाक या संक्रमण नहीं हुआ है तो 5 से 10 दिन में नाभिनाल निकलकर गिर जाती है।

नवजात का मुखशोधन

'अथास्य ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेताङ्गुल्या सुपरिलिखितनखया सुप्र-क्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या। प्रथमं प्रभार्जितास्यस्य चास्य शिरस्तालु कार्पास-पिचुना स्नेहगर्भेण प्रतिसञ्छादयेत्। ततोऽस्यानन्तरं सैन्धवोपहितेन सर्पिषा कार्यं प्रच्छ-र्दनम्'। (च.सं.शा. 8:43)

'अथ जातस्योल्बं मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य, घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्'। (सु.शा. 10:12)

'ततो दक्षिणतर्जन्या तालून्नम्यावगुण्ठयेत्।
शिरसि स्नेहपिचुना.....'॥ (अ.ह.उ. 1:7)

'ततोऽस्य सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपवानया कार्पासपिच्चगुण्ठितया दक्षिणप्रदेशिन्या जिह्वौष्ठकण्ठमनुसुखं प्रमृज्यात्। तालु चोन्नाम्य स्नेहपिचुनोपरिष्टादव-गुण्ठयेत्'। (अ.सं.उ. 1:7)

Scanned with CamScanner

(चरक के मत से प्राणप्रत्यागमन के बाद) अब बालक के तालु, ओष्ठ, कण्ठ, जिह्वा को नख कटे हुए अँगुली के ऊपर स्वच्छ एवं श्वेत रुई को लपेट कर साफ करना प्रारम्भ करे। पहले तालु पर कपास का फाया स्नेह मे भिगोकर रख दें। इसके बाद सैन्धव एवं घृत चटाकर वमन करायें।

(सुश्रुत के मतानुसार) जन्म लिये हुए बालक के जरायु को हटाकर सैन्धव युक्त घी से मुख को विशोधित करके उसके सिर पर घी से भीगा फाया रखें।

वाग्भट (अ.ह.) के अनुसार (नालछेदन के बाद)—दक्षिण हाथ की तर्जनी से तालु को ऊँचा उठाकर तैल के फाहे को शिर पर रखें। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने चरकसंहिता एवं अष्टाङ्गहृदय के मत को मिला दिया है।

आधुनिक काल में नाभिनाल-कर्तन के उपरान्त पहला कार्य यह करते हैं कि मुलायम वस्त्र से शिशु का मुख, गला एवं नाक साफ कर देते है। यदि कफ अधिक हो तो इसे हटाने के लिए श्लेष्माचूसक यन्त्र का प्रयोग करते हैं।

श्लेष्माचूसक (Mucus suction cattheter)—यह यन्त्र कई प्रकार के उपलब्ध हैं। परन्तु कार्य-प्रणाली सभी की समान है। प्राय: एक बार के लिए जो प्रयोज्य श्लेष्माचूसक यन्त्र है; उसके तीन भाग है—

१. स्थूल मापन भाग
२. पतली नलिका (शिशु के मुख में डालने के लिए)
३. पतली नलिका के अग्रभाग पर चूसने हेतु बना होता है। इससे चूषण करते हैं। (चित्र 2 देखिये)

पतली नलिका के भाग से ही नाक के अन्दर का भी भाग साफ कर सकते है। इसके द्वारा मुख एवं गला साफ करने के अतिरिक्त ग्रास नलिका द्वारा आमाशय में डालकर आमाशयिक द्रव को निकाला जा सकता है। आमाशय का धावन कार्य कर सकते हैं। कुछ यन्त्रों में बल्ब में द्रव मापन हेतु निशान लगे होते हैं। जिससे आमाशयस्थ द्रव जो निकाला गया है अथवा आमाशय धावन हेतु डालकर निकाला गया है, उसका मापन हो जाता है। अब तो विद्युत् चलित म्यूकस सक्सन मशीन भी उपलब्ध है। परन्तु इनका प्रयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

प्राणप्रत्यागमन

'तस्यास्तु खल्वपराया: प्रपतनार्थे कर्मणि क्रियमाणे जातमात्रस्यैव कुमारस्य कार्याण्येतानि कर्माणि भवन्ति; तद्यथा—अश्मनो: सङ्घट्टनं कर्णयोर्मूले, शीतोदकेनो-ष्णोदकेन वा मुखपरिषेक: (मुखेन परिषेक:) तथा स क्लेशविहतान् प्राणान् पुनर्लभेत। कृष्णकपालिकाशूर्पेण चैनमभिनिष्पुणीयुर्यद्यचेष्ट: स्याद् यावत् प्राणानां प्रत्यागमनम् (तत्तत् सर्वमेव कार्यम्)'। (च.शा. 8:42)

Scanned with CamScanner

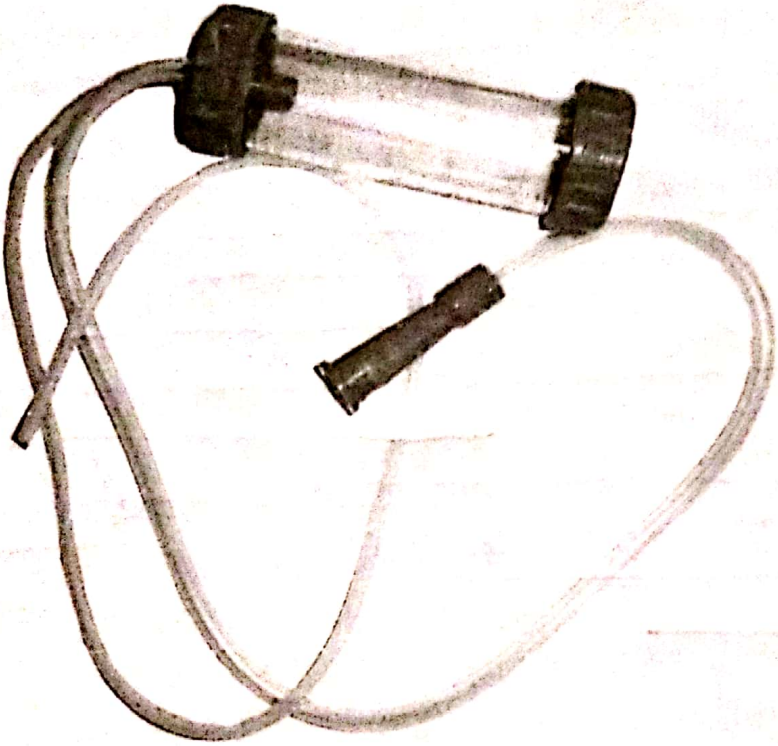

चित्र सं. 2 : श्लेष्माचूषक यन्त्र (Mucous sucker)

'अथ जातस्योल्बमपनीय' । (सु.शा. 10:12)

'जातमात्रं विशोध्योल्बाद्बालं सैन्धवसर्पिषा ।
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् ।।
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।
अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम् ' ।। (अ.ह.उ. 1:1-2)

'अथ खलु जातमात्रमेव बालमुल्बात् सैन्धवसर्पिषा मार्जयेत्' ।
(अ.सं.उ. 1:1)

'अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादभिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदां शतम् ।।
शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि ।
नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाऽभिरक्षतु' ।। (अ.सं. उ. 1:3-4)

'ततोऽस्यातिप्रबलमोहज्वरपरीतसर्वगात्रस्य क्रोशितुमपि रुजानुरूपसमर्थस्यानवस्थिताशेषदेहधातोरसम्भाव्ययौवनाद्यवस्थस्य क्रकचस्पर्शमिव करवसनशयनसंसर्ग मन्यमानस्याविकल्पितमङ्गानि विक्षिप्तः पुनरिव मरणमनुभवतो लीयमानसंज्ञस्यातिसम्बाधयोनिपुटावपीडितप्राणप्रत्यानयनाय बलातैलेन परिषेकं कुर्यात् । कर्ण-मूले चाश्मनोः संघट्टनम्' ।

'यदि वाचेष्ट एव स्यात्ततः कृष्णकपालिकया शूर्पेण चैनमभिनिष्पुनीयात् । दक्षिणकर्णमूले च मन्त्रमस्योच्चारयेत्' । (अ.सं.उ. 1:3-4)

Scanned with CamScanner

चरक का मत है कि प्रसूता स्त्री की अपरा गिराने के लिए कार्य करते हुए उत्पन्न होने के बाद कुमार के लिए निम्नाङ्कित कार्य करने चाहिए—

द्वो पत्थरों के टुकड़े को लेकर बालक के कान के मूल में अर्थात् कान के पास बजाना चाहिए और गरम या शीतल जल से बालक के मुख पर सिंचन करना चाहिए। इन क्रियाओं से प्रसव में उत्पन्न हुए कष्टों से पीडित प्राण पुनः बलिष्ठ हो जाते हैं। यदि बालक के भूमिष्ठ होने पर उसमें चेष्टा का अभाव हो तो सींक से निर्मित सूप के द्वारा तब तक वायु करें जब तक कि श्वास-प्रश्वास एवं अन्य चेष्टाएँ सामान्य न हो जायें। यह सभी कार्य करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने जन्मोपरान्त केवल जरायु हटाने का उल्लेख किया है। अष्टाङ्गहृदयकार ने बालक के उल्वा को सैन्धव एवं घृत से साफ करने को प्रथम कहा है।[1] फिर प्रसवक्लेश से पीड़ित बालक के शरीर पर बला तैल मलें। बालक के कर्णमूल पर पत्थर बजाने एवं उपरोक्त मन्त्र ('अङ्गादङ्गात्·····') कहने की बात कही है। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने प्रायः चरक के ही तथ्यों की पुनरुक्ति की है। तदुपरान्त अति प्रबल मोह (मूर्च्छा) एवं ज्वर के कारण सम्पूर्ण शरीर के पीड़ित होने पर पीड़ा के अनुसार रोने में असमर्थ होने पर, सम्पूर्ण शरीर के धातुओं के अस्थिर होने से, यौवन आदि अवस्थाओं का अनुभव न होने से, हाथ-वस्त्र एवं शय्या के स्पर्श को आरीवत अनुभव करते हुए, सम्पूर्ण अङ्गों को इधर-उधर फेंकते हुए, मानो फिर से मृत्यु के दुःख का अनुभव कर रहा हो तथा प्रसवकाल में योनिभित्तियों के खिंचाव से मूर्च्छित हो जाने के कारण फिर से चेतना-संज्ञा सञ्चार के लिए बला तैल से परिषेक, कर्णमूल पर पत्थरों का बजाना तथा यदि बच्चा चेष्टा रहित हो तो कृष्णकपालिका सूप से हवा करें और दक्षिण कर्ण में उपरोक्त मन्त्र ('अङ्गादङ्गात्·····') कहना चाहिए।

यहाँ दर्शनीय है कि अष्टांगसंग्रहकार ने अत्यन्त संकुचित पथ से गर्भस्थ शिशु के निकलने में हुए कष्ट के कारण विक्षिप्त (मूर्च्छित/Unconscious/asphyxiated) शिशु के लक्षण कहे हैं—

1. अति प्रबल मोह (मूर्च्छा)
2. क्लेशानुरूप रोदन में असमर्थ
3. शरीर की धातुएँ अव्यवस्थित
4. 'करवसनशयनसंसर्गक्रकचस्पर्शमिव' अर्थात् हाथ, वस्त्र एवं शय्या के स्पर्श को भी आरीवत अनुभव होना (सुकुमारता)।
5. 'पुनरिवमरणमनुभवतो लीयमानसंज्ञ·····'। पुनः मृत्यु के कष्ट का अनुभव करना।

इस काल में प्राणप्रत्यागमन विधि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। जिसके लिए शास्त्रों में निम्नलिखित उपाय बताये गये है—

1. 'अश्मनोः सङ्घट्टनं कर्णयोर्मूले'।

1. इतना तथ्य अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी कहा है।

Scanned with CamScanner

2. 'शीतोदकेनोष्णोदकेन वा मुखपरिषेकः'
3. कृष्णकपालिका शूप द्वारा वायु करना ।
4. कर्ण में मन्त्र पढ़ना । [illegible]

जैसे ही शिशु माता के गर्भ से बाहर आता है त्यों ही उसमें कई एक परिवर्तन होते हैं, जिसमें सर्वप्रथम शिशु का स्वतः श्वसन क्रिया का प्रारम्भ करना है । गर्भस्थ शिशु जब तक गर्भ में रहता है तब तक अपरा के द्वारा रक्त-परिभ्रमण से श्वसन कार्य पूरा होता रहता है, किन्तु जैसे ही शिशु बाहर आता है तो यह कार्य उसे स्वयं करना पड़ता है अतः चिकित्सक का सर्वप्रथम ध्यान इसी तरफ आकृष्ट होता है । श्वसन क्रिया के उपक्रम में सर्वप्रथम फुप्फुस का विस्फार होगा—इसके लिए रोना आवश्यक है । रोने के लिए एवं श्वसन क्रिया प्रारम्भ करने के लिए बाह्य उत्तेजनाएँ ही प्रमुख साधन हैं; यथा—कान के पास आवाज करना, शीतोष्ण जल-परिषेक आदि । आज भी इसके लिए यही किया जाता है, बच्चे को थपथपाते हैं । आचार्यों ने कहा है कि यदि बालक निश्चेष्ट एवं मूर्च्छित रहे तो उसकी अच्छी तरह से परीक्षा करें और प्राणप्रत्यागमनार्थ समुचित उपाय करें । जिसके लिए तालु पर पिचु धारण करना एवं कृत्रिम श्वसन (कृष्णकपालिका सूप का प्रयोग) उपाय बताया है । जिसका कृष्ण वर्ण शिशु के नेत्र के लिए हितकर है । अधिक चमकीला वर्ण हानिकर होता है । उपरोक्त समस्त कर्म शिशु में पुनः चेतना लाने हेतु किये जाते हैं । हृदय मन, आत्मा तथा चेतना का स्थान है—

'षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चमम् ।
आत्मा च स गुणश्चेति सर्वं च हृदि संस्थितम्' ॥ (च.सू.30/5)

'हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्' ।

जब ज्ञानेन्द्रियाँ अपने विषय को मन तक पहुँचाती हैं, तभी बुद्धि, चेतना और आत्मा से उनका मिलन होता है । इसी सिद्धान्त पर चेतना के पुनःस्थापना हेतु जन्मोपरान्त कर्ण, त्वचा एवं घ्राणेन्द्रिय का प्रयोग आचार्यों द्वारा किया गया है । शेष इन्द्रियाँ (जिह्वा एवं घ्राण) बन्द होने के कारण सम्भवतः प्राणप्रत्यागमन की विभिन्न प्रक्रियाओं हेतु इनका उपयोग नहीं किया जाता ।

आधुनिक काल में भी शिशु के पैदा होते ही शिशु के जीवन की परिस्थितियों का अवलोकन किया जाता है । जैसे ही शिशु जन्म लेता है नाभिनाल को पकड़कर बाँधकर काट देते हैं । बच्चे को अलग लाकर समतल स्थान पर शिर का भाग कुछ नीचे करके रखते हैं । मुख, गला एवं नाक को तुरन्त साफ करते हैं । श्लेष्माचूषण यन्त्र का भी प्रयोग करते हैं । प्रायः सभी बच्चे इस क्रिया के दौरान रोने लगते हैं । शरीर की शाखाएँ हिलने लगती हैं । आवश्यकतानुसार निम्न चित्र में प्रदर्शित विधि के अनुसार बच्चे को थपथपाने पर बच्चे सामान्य हो जाते हैं ।

Scanned with CamScanner

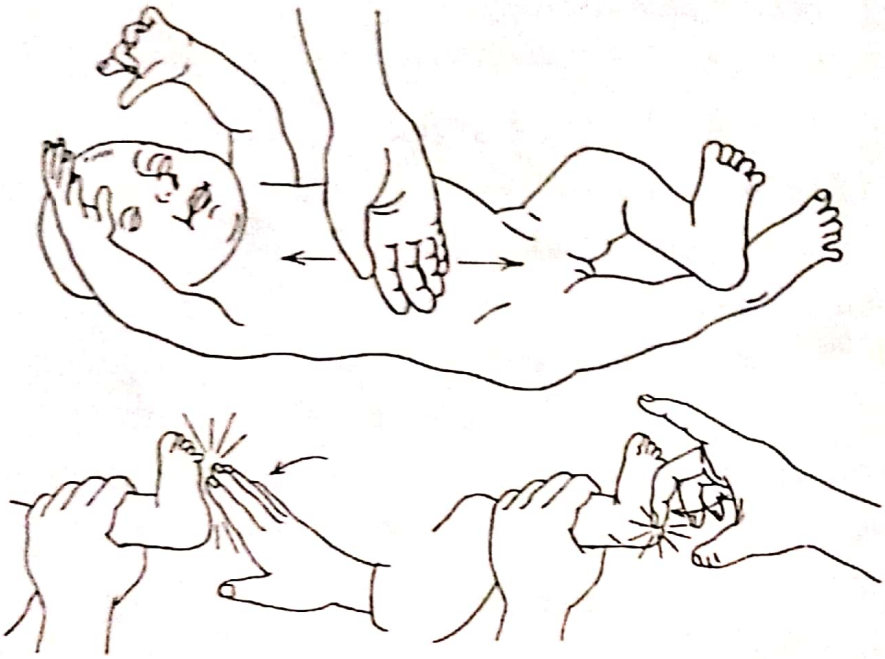

चित्र सं. 3 : थपथपाने की विधि

जो बच्चे नहीं रोते, श्वसन नहीं करते हैं या अनियमित धीमा श्वसन करते हैं, उनका परीक्षण अपगार स्कोर विधि से 1 मिनट के बाद करते हैं—

अपगार स्कोर

	परीक्षण अङ्ग	0	1	2
A	वर्ण (Color or Appearance)	एकदम नीला या श्वेताभ	हाथ-पैर ओष्ठ आदि पर नीलिमा (Peripheral cyanosis)	गुलाबी (pink)
P	नाड़ीगति (Heart rate or Pulse rate)	अनुपस्थित	100/मिनट से कम	100/मिनट से अधिक
G	मांसपेशी स्वभाव (Tone or Grimace)*	एकदम शववत (Completely flaccid)	कुछ कड़ापन (Some flexion)	पूर्णरूपेण हाथ-पैर हिलना
A	प्रतिक्रिया (Reaction or Activity)	शून्य	हल्की	चिल्लाना
R	श्वसनगति (Respiration)	शून्य	हल्की अनियमित	चिल्लाना

* कुछ चिकित्सक Grimace के ज्ञान हेतु नाक में कैथेटर डालकर अथवा पादतल (तलुए) पर नुकीली वस्तु से स्पर्श कराके इसकी प्रतिक्रिया का अध्ययन करते हुए Score का निर्धारण करते हैं।

Scanned with CamScanner

जिन बच्चों में श्वासावरोध रहा हो (Neonatal asphyxia) उनमें 5 एवं 10 मिनट पर अपगार स्कोर पुनः करना चाहिए ।

प्रथम बार 1 मिनट पर किये गये स्कोर का परिणाम एवं तदनुरूप व्यवस्था निम्नवत् की जानी चाहिए—

स्कोर	परिणाम
8-10	सामान्य शिशु
5-7	हल्का श्वासावरोध (+)
3-4	मध्यम श्वासावरोध (++)
0-2	तीव्र श्वासावरोध (+++)

प्राण-प्रत्यागमन विधि

(1) जन्म के तुरन्त बाद शीघ्रता से उसे सुखाकर (पोंछकर) गर्म स्थान पर ले जायें ।

(2) शिशु को पीठ के बल लिटायें । शिर हल्का-सा नीचे हो तथा चिकित्सक की तरफ हो ।

(3) श्लेष्मा-चूसक द्वारा अथवा चूषण यन्त्र (Suction machine) द्वारा आसानी से प्रथम मुख की फिर नाक की सफाई करें । चूषण यन्त्र में दाबमापक (Manometer) अवश्य लगा हो । तथा 10-12 सेकेण्ड से अधिक यन्त्र का प्रयोग न हो । श्लेष्मा निकालने के बीच आक्सीजन अवश्य दें ।

(4) अपगार स्कोर का अध्ययन 1 मिनट पर करें ।

यदि स्कोर 5 से 7 के मध्य है तो मुख मास्क के द्वारा शिशु को आक्सीजन दें ।

यदि स्कोर 3-4 के मध्य है तो—

(क) Laryngoscope का प्रयोग करते हुए गले की सफाई करें ।

(ख) बैग एवं मास्क की सहायता से अथवा मशीन से बच्चे को आक्सीजन दें । यहाँ प्रथम 3 बार श्वसन हेतु दाब 25 से 30 से.मी. ऑफ वाटर होना चाहिए । बाद में घटाकर 15 से 20 से.मी. आफ वाटर कर देना चाहिए । श्वसन गति 20 से 40 बार/मिनट देनी चाहिए । यन्त्राभाव में कृत्रिम श्वसन विधि अपनानी चाहिए । यदि इनसे भी श्वसन नियमित न हो तथा शिशु की माता को Pethidine दी गयी हो तो शिशु को Naloxone 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में सूचीवेध द्वारा दें तथा हृदय गति का भी अवलोकन करें । गति सही हो तो Naloxone 0.01 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शिरागत सूचीवेध से दें । आवश्यकतानुसार इसे 5 मिनट के अन्तराल पर 2-3 बार दिया जा सकता है ।

5 कौ.

Scanned with CamScanner

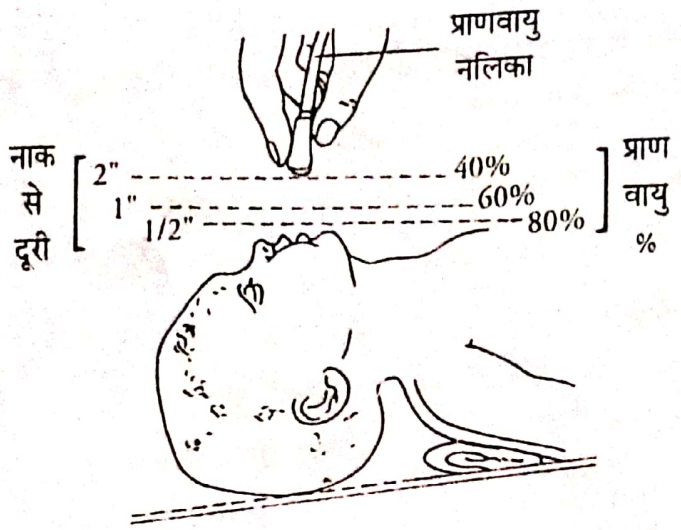

चित्र सं. 4 : सीधे प्राणवायु (ऑक्सीजन) देने का विधान
(मास्क की अनुपस्थिति में)

चित्र सं. 5 : अम्बु बैग (Ambu Bag)

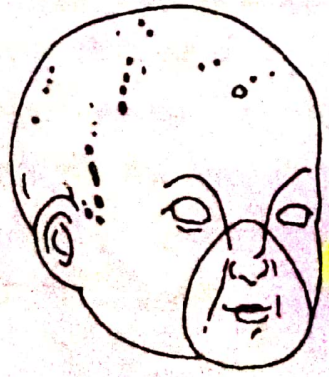

चित्र सं. 6 : मास्क लगाने की सही विधि
(जिसमें नाक एवं मुँह ढँके हों, किन्तु नेत्र खुले हों)

Scanned with CamScanner

चित्र सं. 7 : लैरिंगोस्कोप (Laryngoscope)

चित्र सं. 8 : Endotracheal Tube

यदि स्कोर 0 से 2 के मध्य हो/अथवा उपर्युक्त अवस्था में सुधार न हो रहा हो तथा स्थिति खराब हो रही हो तो बैग एवं मास्क के स्थान पर Intubation* करना चाहिए। इसमें ट्यूब का आकार बच्चे के वजन पर निर्भर करता है। 3 कि.ग्रा. से अधिक वजन के बच्चे में 3.5 मि.मी., 2 से 3 कि.ग्रा., 1 से 2 कि.ग्रा. तथा 1 कि.ग्रा. से कम भार के शिशु में क्रमश 3/2.5/2 मि.मी. आकार की ट्यूब प्रयोग करते हैं।

---

* Intubation—इस विधि को पढ़ा नहीं जा सकता, प्रायोगिक कार्य द्वारा सीखा जा सकता है। समतल स्थल पर पड़े शिशु के कन्धे को कुछ उठाते हैं जिससे ग्रीवा लटक कर कुछ तन जाती है। बायें हाथ से Laryngoscope को पकड़ कर मुख में डालते हैं जब तक उसकी प्लेट गलशुण्डि (Epiglottis) तक न पहुँच जाये, बायें हाथ की छोटी अङ्गुली से Cricoid उपास्थि को दबाते हैं, अब इस भाग को साफ करके मुख द्वारा Endotracheal tube को श्वसननलिका में डालते हैं। इसके द्वारा पतली रबर नलिका डालकर श्वसन-नलिका की सफाई कर लेते हैं। अब उपरोक्त विधि से ओषजन देते हैं। प्रारम्भ में ओषजन का दबाव 40-50 से.मी. आव जल होता है जिससे फुप्फुस कोश (Alveoli) फैल जायें। तदुपरान्त दाब घटाकर 12 से 15 से.मी. आव वाटर कर देते हैं।

Scanned with CamScanner

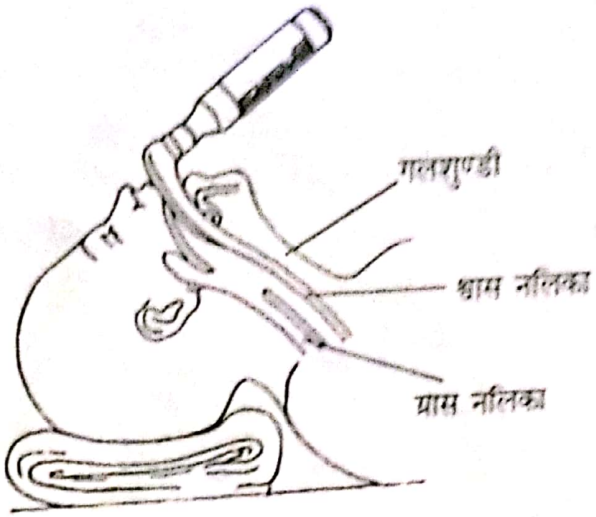

चित्र सं. 9 : इण्ट्युबेशन प्रक्रिया

हृदय अभ्यंग (Massage) यदि स्कोर 0 से 2 हो तथा हृदयगति 60 प्रति मिनट से कम हो अथवा न हो तब तुरन्त हृदय अभ्यंग करें। इस क्रिया में अँगूठा जो वक्ष के मध्य में सामने की ओर चूचुक से नीचे हो, रखकर प्रति मिनट 2 बार दबाव देना चाहिए। दाब ½" से ¾" का देना चाहिए।

औषधि-व्यवस्था

श्वसन व्यवस्था बनाने के बाद ही औषधि व्यवस्था पर जाना चाहिए; यथा—

(क) यदि हृदय गति 60/मि. से कम हो तो Adrenaline 1:10000 की सूई शिरागत (नाभिनाल से) अथवा श्वसन ट्यूब से देवें। हृदय में सीधे देने पर न्यूमोथोरेक्स, एरिदिमिया आदि उपद्रव की सम्भावना रहती है।

(ख) सोडाबाइकार्बोनेट ($NaHCO_3$) 7.5% का घोल 1 से 3 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार से 1:1 का परिस्रुत जल या 10% ग्लूकोज घोल से बनाकर नाभिनाल शिरा से दें। (यदि स्कोर 5 मिनट का 5 से कम हो तथा हृदयगति सामान्य न हो रही हो)

(ग) प्लाज्मावर्धक—यदि शिशु शॉक की अवस्था में हो या नाड़ी गति धीमी हो तो रक्त प्लाज्मा O-ve रक्त, Haemacele या Ringer lactate 10 सी.सी./कि.ग्रा. शिरागत की मात्रा में देवें।

(घ) यदि प्रसव के पूर्व 6 घण्टे में माता को Pethidine दी गयी हो तथा शिशु नीलाभ, अनियमित श्वसन परन्तु हृदयगति सामान्य हो तो Naloxone 0.01 मि.ली./कि.ग्रा. शिरागत सूचीवेध से दें। आवश्यकतानुसार इसे 5 मिनट के अन्तराल पर 2-3 बार दिया जा सकता है।

यदि 5 मिनट के बाद स्कोर 7 या इससे अधिक हो जाता है तो शिशु को माँ के पास रखते हैं। यदि स्कोर कम रहता है तो बच्चे को विशिष्ट परिचर्या कक्ष में रखकर व्यवस्था करते हैं।

Scanned with CamScanner

इन समस्त प्रक्रियाओं के दौरान बच्चे को ढक कर रखना चाहिए । बच्चे का शारीरिक ताप नहीं गिरना चाहिए ।

प्राणप्रत्यागमन : एक दृष्टि में

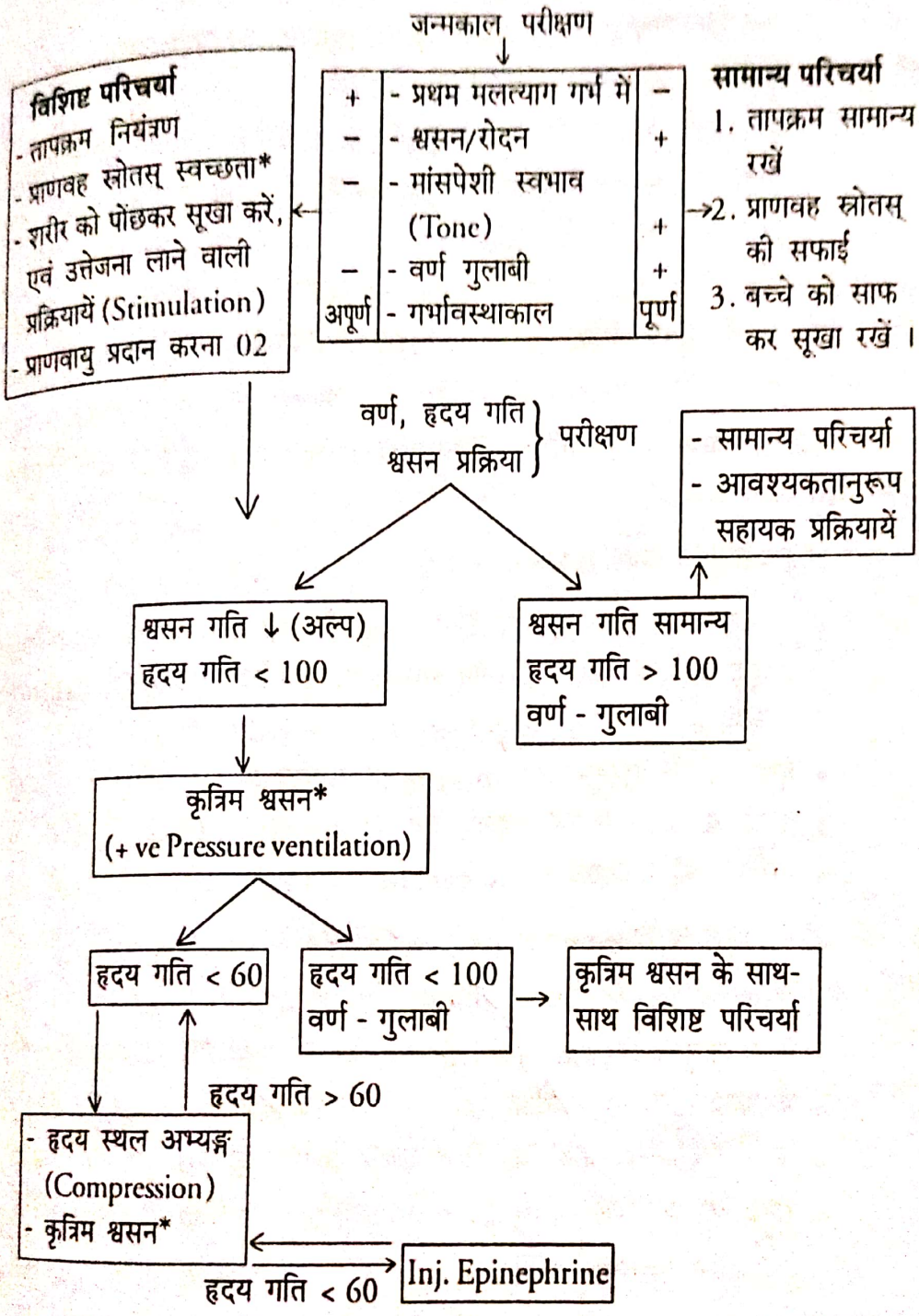

इन समस्त क्रियाओं में भी सुधार न होने पर निम्नाङ्कित कारण सम्भव हैं जिनकी विशिष्ट व्यवस्था करनी चाहिए—

---

* कृत्रिम श्वसन-प्रक्रिया में Intubation भी करते हैं ।

Scanned with CamScanner

1. लम्बे समय तक गर्भ मे श्वासावरोध एवं चयापचय विकृति (Prolonged intrauterine asphyxia with metabolic changes) ।
2. अपरिपक्व सन्तान (Immaturity) ।
3. गर्भोदक एवं मल का ग्रहण (Aspiration) ।
4. शिर में चोट के कारण आन्तरिक रक्तस्राव (Intracranial haemo.) ।
5. वातोरस (Pneumothorax) ।
6. जन्मजात सहज विकार—Diaphragmatic hernia oesophageal atresia with tracheoesophageal fistula, Hypoplasia of lungs आदि ।
7. जलोदर ।

8. अन्य कारण यथा Shock, Hydrops fetalis, Pulmonary haemorrhoge.

नवजात शिशु के श्वासावरोध (Asphyxia) का कारण—इसे निम्न 4 वर्गों में विभाजित करते हैं—

(1) प्रसव विषयक कारण—

- नाभिनाल का प्रसव पूर्व या प्रसव मध्य योनि से बाहर निकल आना तथा/अथवा शरीर में लिपटा (विशेष रूप से गले में) होना । अपरा के कार्यक्षमत्व में कमी ।
- गर्भाशय का असामान्य (Abnormal) संकोच ।
- कन्धों के प्रसव में कठिनाइयाँ, गर्भ का असामान्य प्रसव ।
- गर्भिणी को रक्तस्राव (Antepartum hemorrhage) ।

(2) मातृज कारण—

- माता की वय 35 वर्ष से अधिक हो ।
- अति मातृत्व (Grand multipara) ।
- प्रसवकाल का लम्बा होना ।
- जरायु (membrane) का लम्बे समय से फटा होना ।
- माता की व्याधियाँ—मधुमेह, गर्भविषमयता, रक्तविषमयता (Rhesus isoimmunization) आदि ।

(3) गर्भज कारण—

- गर्भाशय में ही मलत्याग ।
- हृदयगति का बढ़ना (160/मिनट से अधिक) या कम (100/मिनट में कम) हो जाना ।
- यमल सन्तान में विशेष रूप से दूसरे को ।

Scanned with CamScanner

(4) औषधि—प्रसवकाल में माता को दी जाने वाली औषधियाँ ।

प्राणप्रत्यागमन कार्य : क्या न करें !

सावधानियाँ

1. आसन्न प्रसव को अति मात्रा में अवसादी औषधि न दें ।
2. बच्चे का शिर लम्बे समय तक नीचे न करें ।
3. बार-बार लगातार चूषण (Suction) न करें ।
4. शिशु का शरीर तापक्रम कम न हो ।
5. आवश्यकता पड़ने पर Intubation में देर न करें ।
6. बैग एवं मास्क श्वसन में पूरी हथेली का प्रयोग न करें ।
7. जब तक श्वसन स्थिर न हो $NaHCO_3$ का प्रयोग न करें ।
8. श्वसन-उत्तेजक औषधियों का प्रयोग न करें ।

प्राणप्रत्यागमन कर्म हेतु तैयार रहिये, यदि—

(1) गर्भिणी में कारण—

- अपरा की कार्यक्षमता में कमी—गर्भ विषमयता, उच्च रक्तदाब, मधुमेह, 42 सप्ताह से अधिक समय का गर्भ हो ।
- मूढ़ गर्भ, यमल गर्भ
- गर्भ का ठीक से विकास न हुआ हो ।
- Rh. Isoimmunization
- प्रसवपूर्व रक्तस्राव
- माता रोगी हो
- Polyhydramios या Oligohydramnios
- औषधि - Reserpina, Lithium, Magnesium, Adrenergic Blocking drugs आदि ।

(2) प्रसवकालीन कारण—

- गर्भ मोह में हो ।
- समयपूर्व गर्भ-प्रसव ।
- रक्तस्राव ।
- नाभिनाल में गाँठ पड़ी हो ।
- गर्भाशयिक द्रव में मल मिला हो ।
- समय से पूर्व गर्भ झिल्ली फट गयी हो ।
- लम्बे समय तक प्रसव न हो ।
- संज्ञानाश का प्रयोग ।

Scanned with CamScanner

गर्भोदक वमन

'ततोऽस्यानन्तरं सैन्धवोपहितेन सर्पिषा कार्यं प्रच्छर्दनम्' । (च.शा. 8:43)

'गर्भाम्भः सैन्धववता (वचा) सर्पिषा वामयेत्ततः' । (अ.ह.उ. 1:10)

जब बालक गर्भोदक का पान कर लेता है तो उसके लिए सैन्धव-सर्पि चटाकर वमन कराना चाहिए। अष्टांगहृदय के पाठान्तर में सैन्धव, सर्पि के साथ वचा का भी उल्लेख मिलता है। जो वमन के लिए प्रयुक्त होता था। आजकल इसके लिए वमन द्रव्यों का प्रयोग नहीं करके श्लेष्माचूषण यन्त्र का प्रयोग करते हैं और आमाशय का सम्पूर्ण द्रव निकाल लेते हैं। गर्भोदक (Amniotic fluid) का सामान्य रूप से गर्भस्थ शिशु पान करते ही हैं। उसका आन्त्र द्वारा शोषण एवं शरीर में संग्रह होता है। अतिरिक्त मात्रा गर्भस्थ शिशु मूत्र त्याग से निकाल देता है। यह गर्भोदक कभी-कभी स्वयं या गर्भ विषमयता के कारण अपरा के कार्यक्षमत्व में आयी कमी के कारण या (Hypoxia) ओषोजन कमी के अन्य कारण से गर्भस्थ शिशु के मलत्याग के कारण मल-मिश्रित गर्भोदक का पान गर्भस्थ शिशु कर जाता है। उससे नवजात शिशु प्रायः प्रथम दिन आमाशयिक क्षोभ के कारण वमन करते हैं। इससे बचाव हेतु आमाशय का प्रक्षालन नमक के घोल (Normal saline) से करते हैं।

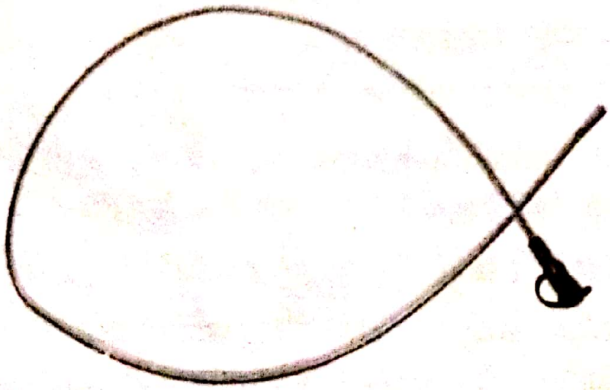

चित्र सं. 10 : Nasogastric Tube

उल्वा-परिमार्जन

'ततो बलातैलेनाभ्यज्य' । (सु.शा. 10:13)

'जातमात्रं विशोध्योल्वाद्बालं सैन्धवसर्पिषा ।
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत्' ।। (अ.ह.उ. 1:1)

उल्वा (Vernix caseosa) हटाने के लिए सैन्धव-घृत का प्रयोग करते हैं। फिर बलातैल का अभ्यङ्ग करते हैं जो उल्वा हटाने के साथ-साथ प्रसवकालीन कष्ट से बच्चे को छुटकारा दिलाता है। आजकल उल्वा हटाने के लिए जैतून का तेल या सरसों का तैल प्रयोग करते हैं।

Scanned with CamScanner

स्नान

'ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्य स्नानोदकग्रहणाभ्यामुपपादयेत्' ।
(च.शा. 8:42)

'क्षीरीवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा रुप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च' ।
(सु.शा. 10:13)

'क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा ।
कोष्णेन तप्तरजततपनीयनिमज्जनैः' ।। (अ.ह.उ. 1:6-7)

'ततः क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा तप्ततपनीयरजतनिर्वापणकवोष्णेन कपित्थपत्रकषायेण वा तद्विधेन स्नापयेत्' । (अ.सं.उ. 1:6)

मन्दोष्ण क्षीरीवृक्षकषाय से, सर्वगन्ध युक्त जल से, प्रतप्त चाँदी एवं स्वर्ण के जल से या कपित्थपत्रकषाय से दोष, काल एवं सामर्थ्यानुरूप बालक को स्नान करायें।

स्थान हेतु प्रयुक्त द्रव्य एवं दोषों पर प्रभाव

नाम	घटक	दोषों पर प्रभाव
1. क्षीरी वृक्ष कषाय	अश्वत्थ, उदुम्बर, पलाश, वट, पीपल	पित्तघ्न
2. सर्वगन्धयुक्त जल	चातुर्जात, कपूर, कंकोल, गुरु, कुङ्कुम, लवङ्ग अथवा एलादिगण की औषधियाँ (सु.सू. 38/24)	वातघ्न
3. कपित्थपत्र कषाय	—	पित्त-कफनाशक

शीतकाल में अल्प उष्ण एवं गर्मी में कुछ शीतल जल का प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक काल में Hexachlorophene lotion एवं औषधियुक्त विभिन्न साबुनों का प्रयोग स्नानार्थ करते हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि चिकित्सालयों में बच्चें को स्नान न कराया जाय। अच्छी तरह सफाई के बाद Chlorhexidine (Hibitone) Cream 5% का लेप कर देना चाहिए।

असावधानी युक्त स्नान एवं बार-बार रगड़ने से त्वचा के छिलने का भी भय रहता है जिससे शोथ युक्त चकत्ते (Erythematous rash) निकल आते हैं इसे Aunty's disease कहते हैं।

रक्षाकर्म

'अथास्य रक्षां विदध्यात्—आदानीखदिरकर्कन्धुपीलुपरूषकशाखाभिरस्या गृहं समन्ततः परिवारयेत् । सर्वतश्च सूतिकागारस्य सर्षपातसीतण्डुलकणकणिकाः

Scanned with CamScanner

प्रकिरेयुः । तथा तण्डुलबलिहोमः सततमुभयकालं ('उभयतः कालम्' इति पाठः) क्रियेतानामकर्मणः (प्राङ्नामकर्मणः इति पाठः) । द्वारे च मुसलं देहलीमनु तिरश्चीनं न्यसेत् । वचाकुष्ठक्षौमकहिङ्गुसर्षपातसीलशुनकणकणिकानां रक्षोघ्नसमाख्यातानां चौषधीनां पोट्टलिकां बद्ध्वा सूतिकागारस्योत्तरदेहल्यामवसृजेत्, तथा सूतिकायाः कण्ठे सपुत्रायाः, स्थाल्युदककुम्भपर्यङ्केष्वपि, तथैव च द्वयोर्द्वारपक्षयोः । कणक-कण्टकेन्धनवानग्निस्तिन्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निः सूतिकागारस्याभ्यन्तरतो नित्यं स्यात् । स्त्रियश्चैनां यथोक्तगुणाः सुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहं द्वादशाहं वा । अनुपरतप्रदान-मङ्गलाशीःस्तुतिगीतवादित्रमन्त्रपानविशदमनुरक्तप्रहृष्टजानसम्पूर्णं च तद्वेश्म कार्यम् । ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित् सततमुभयकालं शान्तिं जुहुयात् स्वस्त्ययनार्थं कुमारस्य तथा सूतिकायाः । इत्येतद्रक्षाविधानमुक्तम्' । (च.शा. 8:47)

'पिलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं परिवीजयेत्, मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचु-मवचारयेत्, धूपयेच्चैनं रक्षाघ्नैर्धूपैः, रक्षोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवास्ववसृजेत्, तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत्, अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत्, व्रणितोपासनीयं चावेक्षेत्' । (सु.शा. 10:23)

'शय्यास्तरणवासांसि रक्षोघ्नैर्धूपितानि च ।।
काको विशस्तः शस्तश्च धूपने त्रिवृताऽन्वितः ।
जीवत्खड्गादिशृङ्गोत्थान् सदा बालः शुभान् मणीन् ।।
धारयेदौषधीः श्रेष्ठा ब्राह्म्यैन्द्रीजीवकादिकाः ।
हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विमेषात्सततं वचाम् ।।
आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थ्यकरीं रक्षोऽभिरक्षिणीम्' ।।

(अ.हृ.उ. 1:25-28)

(जातकर्म के बाद) रक्षाविधान का अनुष्ठान करना चाहिए । आदानी (कड़वी तुरई), खदिर, बैर, पीलू एवं परूषक इन वृक्षों की शाखा लेकर जिस घर में बालक हो, उस घर के चारों ओर लटका देवें । सूतिकागृह के चारों ओर पीली सर्षप, अतीस, तण्डुल के दाने बिखेर दे, और नामकरण के पूर्व[1] लगातार दोनों समय तण्डुलबलि नामक होम करें । द्वार पर चौखठ के ऊपर तिरछा मूसल रखें । वचा, कुष्ठ, क्षौमवस्त्र, हिङ्गु, सर्षप, अतीस, लशुन का दाना एवं चावल के कण एवं भूत-प्रेत को दूर करने वाली अन्य गुग्गुलादि औषधियों की पोटली बनाकर सूतिकागृह के दरवाजे के ऊपर लटका दें तथा इसे ही पुत्र के साथ प्रसूता स्त्री के कण्ठ में भी बाँधे । प्रसूता के व्यवहार में आने वाली स्थाली (पात्र), जल रखने वाले पात्र एवं पलङ्ग में भी इस पोटली को बाँध दें । इसी प्रकार दोनों द्वार के दरवाजों पर इनकी पोटली बाँध दें । सूतिकागृह के भीतर कणक-कण्टक की आग और तिन्दुक की आग सदैव जलती रखें । सूतिकागार में प्रिय बोलने

1. यह 'नामकरण' संस्कार है, जो 10वें दिन होता है; इसे चरकसंहिता में कहा गया है । विशेष उल्लेख आगे 'कुमारों में संस्कार' नामक अध्याय में द्रष्टव्य है ।

Scanned with CamScanner

वाली स्त्रियाँ जो सूतिका की सेवा में लगी है वे और अन्य सूतिका की हितैषी सखियाँ 10 या 12 दिन तक जागती रहे; लगातार दान, मङ्गलपाठ, आशीर्वाद, स्तुतिपाठ, गीतगायन, बाजा बजाना आदि करना चाहिए। इन दिनों सूतिकागार में खान-पान की सभी सामग्री साफ और स्वच्छ रखनी चाहिए। उस समय सूतिकागृह सूतिका से प्रेम करने वाले एवं प्रसन्नचित्त स्त्री-समुदाय से भरा रहे। कुमार एवं सूतिका की कल्याण कामना से अथर्ववेद को जानने वाला ब्राह्मण सायं-प्रातः प्रतिदिन शान्ति के लिए होम करे, शान्तिपाठ करे। इस प्रकार रक्षाकर्म करते है। ऐसा चरक का मत है।

पीलु, बेर, निम्ब, परूषक की शाखा से पंखा करें, उसके सिर पर प्रतिदिन तैल-पिचु रखें, उसे रक्षोघ्न धूप[1] से धूपित करें, उसके हाथ-पैर, सिर एवं ग्रीवा पर रक्षोघ्न द्रव्य बाँधे तथा बालक के आगार में तिल, अतसी, सर्षप बिखेर दें। बालकागार में अग्नि जलावें एवं व्रणितोपासनीय को काम में लावें[2]।

रक्षोघ्न धूप से धूपित करें, वस्त्रादि को धूपित करने के लिए कौए को मारकर त्रिवृत् से मिलाकर धूपित करें। जीवित गैंडे आदि के सींगों में से निकाली हुई शुभ मणियों को शिशु धारण करे। ब्राह्मी, ऐन्द्री, जीवक आदि उत्तम औषधियाँ हाथों में, ग्रीवा या सिर में बाँधी जायें। आयु, मेधा, स्मृति और स्वास्थ्य देने वाली तथा राक्षसों से रक्षा करने वाली वचा को विशेषकर सदा धारण करें। अष्टांगसंग्रहकार ने इन सबको मिलाकर कहा है।[3]

उपरोक्त प्रकरण को देख कर हम कह सकते हैं कि उस समय शिशु को संक्रमण (राक्षस-भूत-प्रेतादि) से बचाने के जो भी सम्भव उपाय हो सकते थे, किये जाते थे।

---

1. रक्षोघ्न धूप— सर्षपारिष्टपत्राभ्यां सर्पिषा लवणेन च।
द्विरह्नः कारयेद् धूपं दशरात्रमतन्द्रितः॥ (सु.सू. 19:28)
घृतं सिद्धार्थको हिङ्गु देवनिर्माल्यमक्षताः।
सर्पत्वग्भिक्षुसङ्घाटी धूपो रक्षोघ्न उच्यते॥
(का. धूपकल्पाध्याय पृ. 170)

2. व्रणितोपासनीय—प्रसूता एवं बालक दोनों ही व्रणित होते हैं। प्रसूता योनिगर्भाशय में और शिशु नाभिनाड़ी एवं नाभि में व्रणयुक्त होता है, अतः व्रणित की भाँति ही इनकी भी परिचर्या करनी चाहिए। व्रणितोपासनीय अध्याय में कही बातें संकेत में दी जा रही है—प्रशस्त और आतपवर्जित कुमारागार, सशस्त्र स्वास्तीर्ण, प्राक्शीर्षशयन आदि। (सु.सू. 19)

3. आदारीविदारीबदरीखदिरनिम्बपीलुपरूषकशाखाभिरेनं वीजयेत्। ताभिश्च समन्ततः सूतिकागारं परिवारयेत्। सर्षपातसीकणकणिकाश्चान्तर्बहिः प्रकिरेत्। सायंप्रातश्च बलिम्। व्रणोक्तैश्च गुग्गुल्वादिभिर्धूपं कुर्वीत तथा ब्राह्मणोऽथर्ववेदविद्दशाहं शान्तिकर्म कुर्यात्। मायूरी महामायूरीमार्यारत्नकेतुधारिणीं चोभयकालं वाचयेत्। हिङ्गुवचातुरुष्करक्षोघ्नैः पोटलिकामुत्तरदेहल्यामासज्जेत्। कुमारस्य च सह मात्रा कण्ठे उच्छीर्षके च। तद्वदार्यापर्णशबरीमार्यामयूराजितां च गोरोचनाभिलिखताम्। द्वारे च देहलीमनुतिर्यङ्मुसलं निधापयेत्। कणकण्डकतिन्दुकेन्धनाग्निं नक्तं दिवं च जागृयात्। तथानुरक्ताः स्त्रियः सुहृदश्च। प्रहृष्टजनसम्पूर्णं च तद्वेश्म कार्यम्। (अ.सं. 1:16-19)

Scanned with CamScanner

सर्षप आदि जमीन पर पड़ा रहने से किसी भी जीव-जन्तु का उसमें चल पाना कठिन होता है। अन्य माङ्गलिक कार्य प्रसन्नता व्यक्त करने की एक विधि हो सकती है।

आहार-विधान (जातकर्म)

बालक का प्रथम दिन से चतुर्थ दिन तक का आहार-विधान इस प्रकार बतलाया गया है—

'मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते यथाम्नायं प्रथमं प्राशितुं दद्यात्। स्तनमत ऊर्ध्वमेतेनैव विधिना दक्षिणं पातुं पुरस्तात् प्रयच्छेत्'। (च.शा. 8:46)

'तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्त('अनन्ता' पा०)मिश्रं मन्त्रपूतं त्रिकालं पाययेत्; द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिः, तृतीये चः ततः प्राङ्निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत्'। (सु.शा. 10:15)

'प्रथमे दिवसे तस्मात्त्रिकालं मधुसर्पिषी।
अनन्तामिश्रिते मन्त्रपाविते प्राशयेच्छिशुम्॥
द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं, ततः।
प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य तत्पाणितलसम्मितम्॥
स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत्'। (अ.ह.उ. 1:12-14)

चरक का कहना है कि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पहले बालक को मधु एवं घृत चटाने को दीजिए। फिर इसी विधि से सर्वप्रथम दक्षिण स्तन का दूध बालक को पिलायें। (अर्थात् दुग्धपान प्रथम दिन से ही प्रारम्भ कर दें।)

सुश्रुत का मत इसके विपरीत है, प्रथम दिन बालक को मन्त्रपूरित अनन्तमिश्रित (सुवर्ण या अनन्ता) मधु-सर्पि दिन भर में 3 बार पिलायें/चटायें, दूसरे एवं तीसरे दिन लक्ष्मणा सिद्ध घृत 3 बार दें। चौथे दिन बालक की हथेली में जितना मधु एवं घृत आ जाय, उतना उसे दो बार पिलाना चाहिए। तदुपरान्त माता का दूध देना चाहिए।

वाग्भट ने अष्टांगहृदय एवं संग्रह में सुश्रुत की ही बात मानी है। अनन्त का अर्थ सुवर्ण है, वाग्भट ने अनन्ता कहा है, इसके विभिन्न अर्थ हैं—दूर्वा (इन्दु टीका), यवासक (अरुणदत्त), सारिवा (हाराणचन्द्र)। चौथे दिन जहाँ सुश्रुत ने मधुसर्पि कहा है, अष्टाङ्गहृदय में नवनीत तथा अष्टाङ्गसंग्रह में घृत कहा गया है। अष्टांगसंग्रहकार का मत यह भी है कि स्तनपान के पूर्व उसे साफ कर, निचोड़कर कुछ दूध निकालकर तब स्तनपान कराना चाहिए।[1]

चरक के मत से प्रथम दिन, सुश्रुत, अष्टाङ्गहृदय एवं अष्टाङ्गसंग्रहकार के मत से चौथे दिन स्तनपान कराना चाहिए। अष्टाङ्गसंग्रहकार के मत से चौथे दिन स्तन से दूध निकाल देने के बाद स्तनपान कराना चाहिए। मधुसर्पि देने का विधान उसकी उच्च

1. प्राङ्निवारितस्तन्यं—प्राक् = पूर्वं निवारितं स्तन्यं यस्य तम्। (अ.सं.उ. 1:27)

Scanned with CamScanner

पोषकक्षमता (Calorie value) एवं प्रोभूजन (Globulin पराग रूप में मधु में) का होना है। स्वर्ण को बुद्धि एवं मेधावर्धक माना गया है।

इसी आधार पर आधुनिक आयुर्वेद वैज्ञानिकों ने 'अनन्त' का अर्थ स्वर्ण किया है। परन्तु मेरे विचार से इन्दु टीका में अनन्ता का अर्थ दूर्वा किया गया है, जो अधिक उपयुक्त है। क्योंकि आधुनिक चिकित्सकों के विचार से 2.5 कि.ग्रा. से कम शरीर भार के प्रत्येक बच्चे को रक्तस्राव होने की सम्भावना से बचाव हेतु विटामिन 'के' का सूचीवेध देना चाहिए। दूर्वा रक्तस्तम्भक है। इसका बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों ही रूप में रक्तस्तम्भन हेतु प्रयोग होता है। अत: आयुर्वेद मनीषियों ने अनन्त या अनन्ता द्वारा दूर्वा का संकेत कर प्रत्येक शिशु को रक्तस्राव से बचाव हेतु इसे देने का विधान किया है।

दूसरा तर्क यह है कि यदि अनन्त का अर्थ स्वर्ण है तो मात्र एक दिन देने से बुद्धि, धी, धृति की वृद्धि कैसे सम्भव है ? जबकि काश्यप ने इसे आगे 6 माह तक देने का विधान किया है। अत: एक दिन देकर रोगप्रतिरोधक क्षमता पैदा करना या बुद्धि की वृद्धि करना सम्भव नहीं है।

चरक के मत का प्रतिपादन आधुनिक वैज्ञानिक भी करते हैं। अन्य आचार्यों ने चतुर्थ दिन स्तनपान कराने को कहा है। परन्तु उसके पूर्व का निषेध नहीं किया है। सम्भवत: अल्पमात्रा में स्तन्य आने के कारण 3-4 दिन हेतु विशेष व्यवस्था की गयी होगी। प्रथम दिन स्तन में स्तन्य आये या न आये पर माता एवं शिशु दोनों उससे लाभान्वित होते हैं—

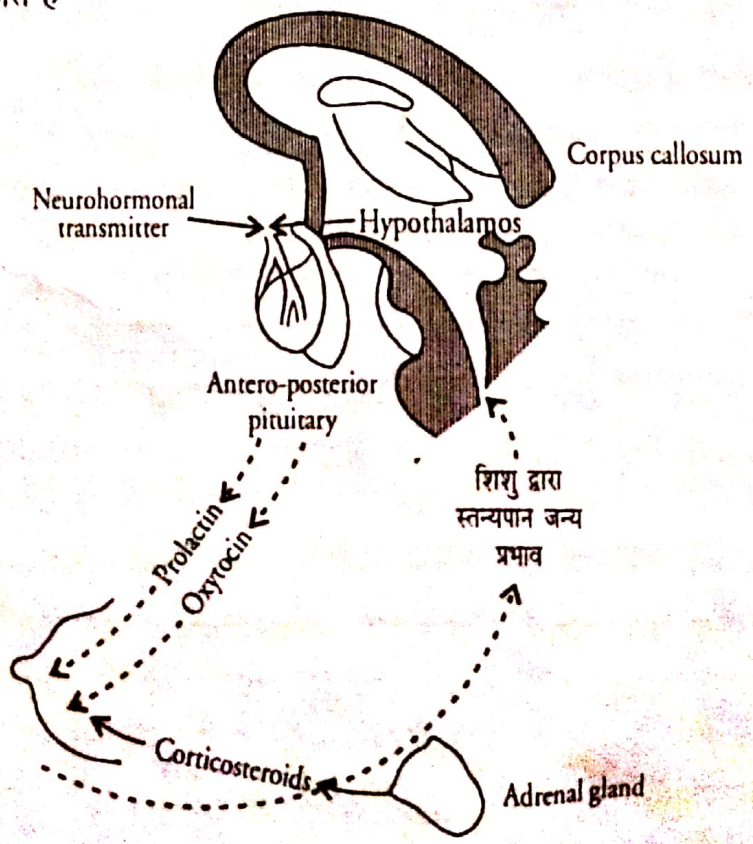

चित्र सं० 11 : स्तनपान का प्रभाव एवं अक्षरस

(Reproduced from WHO 1965)

Scanned with CamScanner

1. बालक की चूषण-क्षमता (Sucking Reflex) का ज्ञान होना है ।

2. स्तन पकड़ने से मस्तिष्क के पिटयूटरी ग्रन्थि को सूचना एवं प्रतिक्रिया स्वरूप Prolactin एवं Oxytocin नामक अङ्गरसों का उत्पादन होता है ।

3. Prolactin द्वारा स्तन्य की उत्पत्ति होती है ।

4. Oxytocin के द्वारा गर्भाशय-सङ्कोच होता है ।

आधुनिक काल के प्रचलन में यथाशीघ्र बच्चे को माता का दूध देना प्रारम्भ कर देते है । कुछ लोगों का मत है कि पहली बार शुद्ध जल या ग्लूकोज का जल देना चाहिए (किन्तु आजकल इसका निषेध है) तदुपरान्त ही माँ का दूध प्रारम्भ करें । इस प्रकार हम देखते हैं कि माँ का प्रथम पियूष (Colostrum) भी बच्चे को देना चाहिए । (दूध एवं पियूष आदि का विशेष विवरण आगे स्तन्य प्रकरण अध्याय में देखें) ।

कुमारागार

'वास्तुविद्याकुशलः प्रशस्तं रम्यमतमस्कं निवातं प्रवातैकदेशं दृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतङ्गं सुविभक्तसलिलोलूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तुशयनासनास्तरणसम्पन्नं कुर्यात्, तथा सुविहितरक्षाविधानबलिमङ्गलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पूर्णम् । इति कुमारागारविधिः' । (च.शा. 8:59)

'प्रशस्तवास्तुशरणं सज्जोपकरणं शुचि ।
निर्वातं च प्रवातं च वृद्धस्त्रीवैद्यसेवितम् ।।
निर्मत्कुणाखुमशकमतमस्कं च शस्यते' । (अं.सं.उ. 1:32)

वास्तुविद्या में कुशल पुरुष श्रेष्ठ, सुन्दर, अन्धकार रहित, तीव्र वायु के प्रवेश से रहित किन्तु हवादार हो, अर्थात् जिसमें सीधी हवा न लगती हो तथा जो दृढ़ हो, साथ ही जहाँ कुत्ता आदि अन्य हिंसक पशु, मच्छर, मूषक, पतङ्ग आदि न जा सके; जहाँ अलग-अलग विभागपूर्वक जल का स्थान हो, ऊखल रखने का स्थान हो, मूत्रालय, शौचालय, स्नानागार एवं रसोईघर अलग-अलग हों; प्रत्येक ऋतु में सुखकारी एवं ऋतु के अनुसार जहाँ शयन, आसन, बिस्तर रखा हो ऐसा स्थान शिशु के रहने हेतु बनाये । उस घर में विधिपूर्वक रक्षाविधान, बलि, मङ्गल, होम, प्रायश्चित्त हो चुका हो; ऐसा कुमारागार पवित्र वैद्य, वृद्ध और प्रेम करने वाले हितैषी व्यक्तियों से भरा हुआ हो ।

बालक के शय्या-वस्त्रादि का वर्णन

'शयनासनास्तरणप्रावरणानि कुमारस्य मृदुलघुशुचिसुगन्धीनि स्युः, स्वेदमलजन्तुमन्ति मूत्रपुरीषोपसृष्टानि च वर्ज्यानि स्युः, असति सम्भवेऽन्येषां तान्येव च सुप्रक्षालितोपधानानि सुधूपितानि शुद्धशुष्काण्युपयोगं गच्छेयुः । धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरणप्रावरणानां च यवसर्षपातसीहिङ्गुगुग्गुलुवचाचोरकवयःस्थागोलोमीजटिलापलङ्कषाशोकरोहिणीसर्पनिर्मोकाणि घृतयुक्तानि स्युः' । (च.शा. 8:60-61)

Scanned with CamScanner

'अथ बालं क्षौमपरिवृतं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत्' ।

(सु.शा. 10:23)

'शुचिधौतोपधानानि निर्वलीनि मृदूनि च ।
शय्यास्तरणवासांसि रक्षोघ्नैर्धूपितानि च ।।
काको विशस्तः शस्तश्च धूपने त्रिवृताऽन्वितः'।। (अ.ह.उ. 1:25-26)

(अ.सं.उ. 1:33-34)

'वचाज्यकुष्ठश्रीवेष्टासर्षपैर्धूपयेत् सदा' । (अ.सं.उ. 1:34)

'यस्ताम्रचूडविहगोभयपार्श्वपक्षपुच्छैर्गवाज्यसहितैः कृतधूपानाङ्गः ।
आरभ्य जन्मदिवसाद्दिनसप्तकं हि बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरस्ति' ।।

(योग.बालरोगचि.पृ. 447)

कुमार की शय्या, आसन, बिस्तर, प्रावरण मृदु, लघु, पवित्र (स्वच्छ) और सुगन्धित होना चाहिए। जिस शय्या, आसन, बिस्तर, प्रावरण आदि में स्वेद सूखा हो, गन्दा एवं मल-मूत्र लगा हो, उसे बालक के प्रयोग में न लायें। ऐसे दूषित गन्दे वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र का प्रयोग करें। यदि नवीन वस्त्र का प्रयोग सम्भव न हो तो उन्हें ठीक से धोकर सुखा लें। धूपन द्रव्यों से धूपन करें। यव, सर्षप, अतीस, हिङ्गु गुग्गुलु, वचा, चोक, वयस्था, गोलोमी, जटामांसी, पलङ्कषा, अशोक, कटुकी, सर्प-केचुल द्रव्य का चूर्ण बनाकर घृत मिलाकर धूपित करें। सुश्रुत ने क्षौमवस्त्र एवं क्षौम बिस्तर का प्रयोग कहा है। वाग्भट ने बिस्तर, ओढ़ना, पहनने के वस्त्र स्वच्छ, धुले, शुष्क, सिकन रहित और कोमल हों तथा रक्षोघ्न धूप[1] द्वारा धूपित हों—कहा है।

प्रसव-कक्ष में शिशु की देखभाल

प्राणप्रत्यागमन आदि हो जाने के बाद सर्वप्रथम बच्चे की सुरक्षा ठंडक से करनी चाहिए। बच्चे का परीक्षण सहज विकारों (Congenital anomalies) एवं जन्म-कालीन आघात के लिए करना चाहिए। नेत्रों को अलग-अलग संक्रमणविहीन कार्पास-पिचु से स्वच्छ करें। अब Gonococcal संक्रमण की कमी के कारण सामान्य रूप में Silver nitrate का प्रयोग नहीं करना चाहिए, अन्यथा उपद्रवस्वरूप रसायनिक अभिष्यन्दि होने की सम्भावना रहती है। जिन शिशुओं का वजन 2.5 कि.ग्रा. से कम हो उन्हें Vitamin K 0.5 से 1.0 मि.ग्रा. की मात्रा में मांसगत सूचीवेध से लगा देना चाहिए। इनके अतिरिक्त आघात लगने वाले प्रसव में (Forceps & vaccum extraction) तथा जिनकी माताओं ने Dicumarol derivative, Salicylates तथा आक्षेपशामक द्रव्य के लिए हों उन्हें Vitamin K देना चाहिए। निम्नाङ्कित अवस्था में नमक-घोल (Normal Saline) से आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए।

1. रक्षोघ्न धूप का वर्णन पीछे रक्षाकर्म में कर चुके हैं।

Scanned with CamScanner

1. कुक्षिपाटन से उत्पन्न शिशु ।
2. अत्यधिक श्वासावरोध (Asphyxia) पीड़ित शिशु ।
3. मल-मिश्रित गर्भोदक ।
4. Polyhydramnios ।
5. नाभिनाल में एक ही धमनी हो ।
6. Low-birth-weight babies (Small-for-date) ।

नीचे के तीन कारणों में आमाशय-प्रक्षालन इसलिए करते हैं कि ग्रासनलिका का खुला होना (Patency), ग्रासनलिका-मुखसङ्कोच (Atresia) एवं आमाशयिक द्रव की मात्रा का ज्ञान (आन्त्र के ऊपर अवरोध की स्थिति) हो जाय । बच्चे का वजन एवं पहचान के लिए चिह्न कक्ष में शिशु कक्ष में भेजने से पूर्व अवश्य लगा दें । निम्नाङ्कित अवस्थाओं में शिशु को विशिष्ट शिशुसेवा कक्ष (Special care nursery) में रखना चाहिए ।

1. शिशु-भार 2 कि.ग्रा. से कम हो ।
2. गर्भावस्था 35 सप्ताह से कम हो ।
3. असामान्य प्रसव (पैरों से, Forceps, कुक्षिपाटन) ।
4. जन्मजात श्वासावरोध ।
5. रक्तविषमयता प्रतिक्रिया (Rhesus iso-immunization) ।
6. विशेष सहज विकृति ।
7. माता को मधुमेह ।
8. शिशु को कोई सांस्थानिक विकार (Respiratory Distress) ।
9. माता अस्वस्थ हो ।

नाभिनाल से शिशु का रक्त परीक्षण के लिए, रक्तविषमयता-प्रतिक्रिया, मातृज मधुमेह, Small-for-date शिशु एवं गर्भाशयान्तर संक्रमण के सन्देहावस्था में अवश्य लिया जाय ।

अपरा का परीक्षण

(1) भार—सामान्य 500 से 600 ग्राम औसतन होता है । यह भार शिशु-भार का 12 से 15% होता है । L B W शिशु में असमान्य रूप से अपरा का भार भी कम होता है (कुपोषण के कारण, Trisomy-17-18, Rubella, खसरा) । अधिक बड़ी अपरा Polyhydramnios, Erythroblastosis, Diabetes mellitus (मधुमेह), Congenital nephrosis, Syphilis (उपदंश), Toxoplasmosis एवं Cytomegalic inclusion व्याधि में होती है ।

(2) वर्ण एवं सतह—धूमिल (Dull) एवं दूधिया शैशवीय सतह की अपरा एवं दुर्गन्धित गर्भोदक जीवाणु संक्रमण में मिलती है । भूसे के वर्ण का पीलापन (Greyish-

Scanned with CamScanner

yellow) अपरा एवं जरायु में गर्भ का गर्भाशय में मलत्याग तथा Erythroblastosis में मिलता है ।

(3) अपरा मध्य रक्तस्राव (Retro-placental haemorrhage) प्राय: शिशु में रक्त के नाश (Blood-loss) का द्योतक है ।

(4) नाभिनाल—Velamentous cord insertion एवं Circumvallate placenta प्राय: प्रसवपूर्व रक्तस्राव (Antepartum haemorrhage), समय पूर्व प्रसव एवं गर्भश्वासावरोध (Fetal hypoxia) से सम्बद्ध होता है । एक धमनी यदि नाभिनाल में हो तो सहज विकृति की सम्भावना रहती है ।

(5) यमल गर्भ परीक्षणार्थ अपरा परीक्षण ।

(6) अपरा-परीक्षण संक्रमण आदि के लिए भी करते हैं ।

नवजात शिशु-परीक्षण

शिशु-कुमार परीक्षा अध्याय में वर्णित नवजात शिशु परीक्षा का ध्यान रखकर परीक्षण करें । यहाँ संकेत रूप में कुछ बिन्दुओं के लिए दिशानिर्देश दिया गया है ।

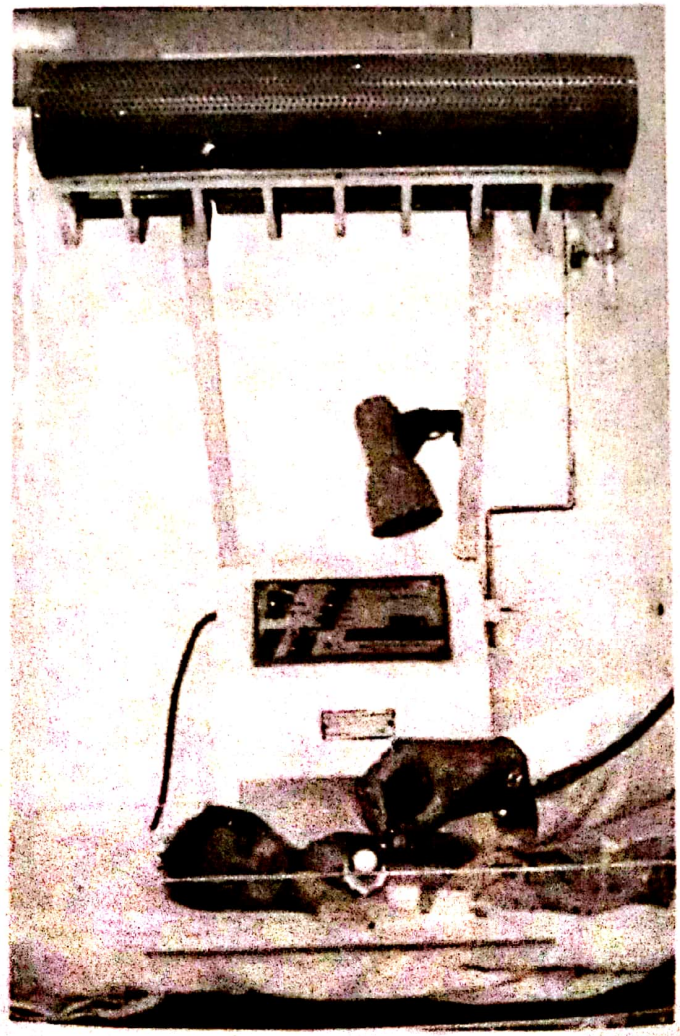

चित्र सं. 12 : नवजात शिशु परीक्षण

Scanned with CamScanner

यह परीक्षण विशेष रूप से तीन कार्यों हेतु करते है—

1. जन्मजात आघात ।
2. जन्मजात विकृति ।
3. फुफ्फुस कार्यक्षमता एवं मार्गावरोध परीक्षण करते है ।

जन्मजात विकृति का शीघ्रातिशीघ्र निदान

इसके लिए माँ का इतिवृत्त, Teratogenic अर्थात् गर्भ में विकृति पैदा करने वाली औषधि लेने यथा Goitrogenic drugs, radiation एवं विषाणु (Viral) संक्रमण गर्भावस्था में होने (प्रथम 3 माह में) के विषय में लेना चाहिए । Polyhydramnios माता में होने पर आन्त्र के ऊपर किसी भाग में अवरोध की सम्भावना रहती है । 25% Oesophageal atresia, 75% पच्यमानाशय अवरोध (Duodenum jejunum) एवं Oligohydramnios प्राय: Bilateral renal agenesis & potter facies से सम्बद्ध होता है । पारिवारिक इतिवृत्त भी सहज विकार के विषय में लेना चाहिए । निम्नाङ्कित विषयों पर शीघ्र परन्तु पूर्ण परीक्षण करना चाहिए—

1. जन्म-भार एवं गर्भावस्था आयु ।
2. नाभिनाल में एक धमनी एवं हथेली में धारियाँ (Palmar crease)
3. छिद्रों की गणना एवं उनका खुला होना (विशेष रूप से अल्पभार शिशु, एक धमनी नाभिनाल, Polyhydramnios एवं अधिक लालास्रावी शिशु में) ।
4. श्वसन में कठिनाई ।
5. पीठ पर या वक्षोदर पर मध्य रेखा में कोई व्रण (Lesion), Spina bifida, Meningomyelocele, Ambiguous genitalia आदि ।
6. सामान्य सांस्थानिक परीक्षण ।

प्रथम दिन शिशु का परीक्षण

आवश्यकता—

1. कुछ प्रमुख मापों का संकलन ।
2. किसी सहज विकृति का न छूटना ।
3. शिशु की चूषक शक्ति का परीक्षण ।
4. कामला ।
5. मुख से झाग या श्लेष्मा आना ।
6. स्तनपान के बाद वमन ।
7. मूत्र एवं मल के त्याग का प्रथम समय ।
8. सामान्य व्यवहार आदि ।

Scanned with CamScanner

प्रमुख माप निम्नलिखित है, जिन्हे देखना चाहिए—

1. शिशु-भार ।
2. शिशु-लम्बाई ।
3. सिर की परिधि (occipito-Frontal head) ।
4. वक्ष की परिधि (चूचुक के पास) ।
5. उदर की परिधि इत्यादि ।

(इन सभी का विशेष विवरण किसी भी अच्छी Neonatology की पुस्तक में देखा जा सकता है । यहाँ 'शिशु परिचर्या' नामक अध्याय 5 में भी विवेचन दिया गया है।)

सामान्य नवजात शिशु-परिचर्या

यह आवश्यक है कि एक सामान्य शिशु को उसकी माँ के साथ रखा जाय । इससे माता एवं शिशु का मानसिक लगाव बढ़ता है । शिशु की परिचर्या में माँ सहायक हो जाती है । चिकित्सालय-जनित संक्रमण (Cross infection) की सम्भावना घटती है । स्तनपान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है । शिशु को स्वच्छ चद्दर या तौलिये में रखें, फ्राक या पीछे खुला हुआ वस्त्र वातावरण के अनुरूप पहनायें । बच्चे का वर्ण, श्वसन, तापक्रम एवं कटी हुई नाभिनाल का परीक्षण कक्ष में लाने से पूर्व करना चाहिए । मलद्वार से दिन में 2 बार तापक्रम लेना चाहिए ।

नेत्रों की नित्य सफाई स्वच्छ कार्पास के नमकघोल (Normal saline) में डूबे पिचु से करनी चाहिए । यदि नेत्र में चिपचिपापन हो तो Sulphacetamide drop 2 से 4 घण्टे पर 2-2 बूँद की मात्रा में डालें ।

किसी भी गम्भीर व्याधि का शीघ्र निदान शिशु की मृत्युदर को घटाता है । इसके लिए विशेष ध्यान निम्न तथ्यों पर देना चाहिए—

1. किसी स्थान से रक्तस्राव ।
2. 24 घंटे के अन्दर कामला की उत्पत्ति ।
3. 24 घंटे के अन्दर मल त्याग (Meconium) न करना ।
4. 48 घंटे के अन्दर मूत्र त्याग न करना ।
5. वमन या अतिसार ।
6. स्तनपान में अरुचि या कम स्तनपान करना ।
7. अति रोदन या अति क्लान्ति ।
8. मुख से अति झाग आना या अति हास्यमुद्रा ।
9. श्वास-प्रक्रिया में कठिनाई या नीलिमा के साथ ।
10. एकाएक शरीर का तापक्रम बढ़ना या घटना ।
11. किसी प्रकार का संक्रमण ।

Scanned with CamScanner

चिकित्सालय से शिशु को छोड़ने के पूर्व क्षयरोगरोधी B.C.G., OPV एवं Hepatitis B का टीका जीवन के प्रथम दिन में अवश्य लगवा देना चाहिए ।

माता के दूध या अन्य दूध पर आश्रित बच्चों को कुछ पूरक तत्त्व देने पड़ते हैं, यथा—विटामिन A, C, D एवं लौह तत्त्व । प्राय: सभी बच्चों को 2 सप्ताह के बाद मल्टीविटामिन ड्रॉप्स प्रतिदिन एवं लौहतत्त्व ड्राप (3 से 4 mg/kg शरीर-भार/दिन) अवश्य देना चाहिए । मुख्य रूप से L.B.W. शिशु, बोतल से दुग्ध लेने वाले शिशु, पाण्डुपीड़ित माता के शिशु को 4 से 6 सप्ताह के बाद अवश्य देना चाहिए ।

बच्चे का पुन: परीक्षण करने हेतु उसके विकास एवं वृद्धि दर को देखने हेतु, टीकों के लिए, पोषण-विमर्श हेतु, किसी विकृति के शीघ्र निदान के लिए एवं संरक्षक को उचित सलाह देने के लिए तथा नित्य प्रति की समस्याओं के समाधान हेतु 15 दिन पर बुलाना चाहिए ।

Scanned with CamScanner

अध्याय - 5

शिशु-परिचर्या

इस अध्याय के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अतः इसे कई वर्गों में विभाजित किया गया है।

आयु-परीक्षण

'वृत्ते च नामकर्मणि कुमारं परीक्षितुमुपक्रमेतायुषः प्रमाणज्ञानहेतोः। तत्रेमान्यायुष्मतां कुमाराणां लक्षणानि भवन्ति। तद्यथा–एकैकजा मृदवोऽल्पाः स्निग्धाः सुबद्धमूलाः कृष्णाः केशाः प्रशस्यन्ते, स्थिरा बहला त्वक्, प्रकृत्याऽतिसम्पन्नमीषत्प्रमाणातिवृत्तमनुरूपमातपत्रोपमं शिरः, व्यूढं दृढं समं सुश्लिष्टाशङ्खसन्ध्यूर्ध्वव्यञ्जनसम्पन्नमुपचितं वलिभमर्धचन्द्राकृति ललाटं, बहलौ विपुलसमपीठौ समौ नीचैर्वृद्धौ पृष्ठतोऽवनतौ सुश्लिष्टकर्णपुत्रकौ महाच्छिद्रौ कर्णौ, ईषत्प्रलम्बिन्यावसङ्गते समे संहते महत्यौ भ्रुवौ, समे समाहितदर्शने व्यक्तभागविभागे बलवती तेजसोपपन्ने स्वङ्गापाङ्गे चक्षुषी, ऋज्वी महोच्छ्वासा वंशसम्पन्नेषदवनताग्रा नासिका, महदृजुसुनिविष्टदन्तमास्यम्, आयामविस्तारोपपन्ना श्लक्ष्णा तन्वी प्रकृतिवर्णयुक्ता जिह्वा, श्लक्ष्णं युक्तोपचयमूष्मोपपन्नं रक्तं तालु, महानदीनः स्निग्धोऽनुनादी गम्भीरसमुत्थो धीरः स्वरः, नातिस्थूलौ नातिकृशौ विस्तारोपपन्नावास्यप्रच्छादनौ रक्तावोष्ठौ, महत्यौ हनू, वृत्ता नातिमहती ग्रीवा, व्यूढमुपचितमुरः, गूढं जत्रु पृष्ठवंशश्च, विप्रकृष्टान्तरौ स्तनौ, असम्पातिनी स्थिरे पार्श्वे, वृत्तपरिपूर्णायतौ बाहू सक्थिनी अङ्गुलयश्च, महदुपचितं पाणिपादं, स्थिरा वृत्ताः स्निग्धास्ताम्रास्तुङ्गाः कूर्माकाराः करजाः, प्रदक्षिणावर्ता सोत्सङ्गा च नाभिः, उरस्त्रिभागहीना समा समुपचितमांसा कटी, वृत्तौ स्थिरोपचितमांसौ नात्युन्नतौ नात्यवनतौ स्फिचौ, अनुपूर्वं वृत्तावुपचययुक्तावूरू, नात्युपचिते नात्यपचिते एणीपदे प्रगूढसिरास्थिसन्धी जङ्घे, नात्युपचितौ नात्यपचितौ गुल्फौ, पूर्वोपदिष्टगुणौ पादौ कूर्माकारौ, प्रकृतियुक्तानि वातमूत्रपुरीषगुह्यानि तथा स्वप्नजागरणायासस्मितरुदितस्तनग्रहणानि, यच्च किञ्चिदन्यदप्यनुक्तमस्ति तदपि सर्वं प्रकृतिसम्पन्नमिष्टं, विपरीतं पुनरनिष्टम्। इति दीर्घायुर्लक्षणानि'।

(च.शा. 8:51)

'इह खलु कुमाराणां वृद्धजीवक !..... गुणाधिकानि प्रशस्यन्त इति'।

(का.सू. 28:6; पृ. 47-14)

(अ.ह.उ. 1:24; शा. 5:14)

'ततः प्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुःपरीक्षणम्।
प्रागुदक्शिरसः कुर्यात् बालस्य ज्ञानवान् भिषक्'॥

(अ.सं.उ. 1:31; शा. 8:32)

Scanned with CamScanner

आयुष्मान् या दीर्घायुष्य के लक्षण

(1) केश—जो एक-एक अलग-अलग निकले हों, मृदु हों, अल्प हों, स्निग्ध हों, जिनके मूल दृढ़ हों एवं काले हों। (स्त्रियों के बाल बहुत अधिक बड़े तथा बहुत छोटे निन्दित माने गये है। केशभूमि स्निग्ध, लोहित, निर्मल तथा व्रण रहित प्रशस्त मानी गयी है[1]।)

(2) त्वचा—स्थिर एवं मोटी अच्छी होती है।

(3) शिर—स्वाभाविक आकृति से युक्त, पर कुछ प्रमाण से बड़ा हो, किन्तु देह के अनुसार ही बड़ा हो और छाता के सदृश उतार-चढ़ाव युक्त हो।

(4) ललाट—चौड़ा, दृढ़, सम सुविभक्त हो, शंखास्थि की सन्धियाँ सुश्लिष्ट, ऊर्ध्व रेखायुक्त, मांसल हो, ललाट में वली हो तथा अर्धचन्द्राकार हो।

(5) भ्रू—कुछ नीचे को लटकी, आपस में दोनों मिली न हों, सम-सुगठित, लम्बायमान हों—उत्तम मानी जाती हैं।

(6) कर्ण—दोनों कान स्थूल, बड़े समतल पृष्ठ वाले, समान रूप से नीचे की ओर बढ़े हुए, पीछे से आगे की ओर झुके हुए, जिसमें कर्णपुत्रिका का बन्धन दृढ़ हो और सटे हुए हों। जिनके कर्णगह्वर का छिद्र बड़ा हो, वे कर्ण उत्तम होते हैं।

(7) नेत्र—दोनों नेत्र समान हों, दृष्टिमण्डल नेत्रगोलक में सम भाव में स्थित हो, नेत्र में कृष्णमण्डल, श्वेतमण्डल, दृष्टिमण्डल का विभाग स्पष्ट रूप से विभक्त हो, बलवान् हो, तेज से युक्त हो, नेत्र के अङ्ग, वर्त्म, पक्ष्म आदि और अपाङ्ग भाग सुन्दर हो तो प्रशस्त माना जाता है।

(8) नाक—नासिका सरल, लम्बे-लम्बे श्वास-प्रश्वास लेने वाली, नासावंश सुन्दर, सम-सुविभक्त, नासावंश का अग्र भाग कुछ झुका हो तो वह नाक उत्तम मानी जाती है।

(9) मुख एवं जिह्वा—मुख बड़ा एवं सीधा हो जिसमें सुन्दरता के साथ दाँत लगे हों, जिह्वा उचित रूप में लम्बी, चौड़ी, चिकनी व पतली हो, अपनी प्रवृत्ति एवं वर्ण से युक्त हो वह उत्तम होती है।

(10) तालु—चिकना, उचित रूप में मांसल, उष्मायुक्त तथा रक्तवर्ण का होना उत्तम है।

(11) स्वर—महान्, दीनतारहित, स्निग्ध, प्रतिध्वनियुक्त, गम्भीर निकलनेवाला एवं धीरतायुक्त स्वर का होना उत्तम है।

(12) ओष्ठ—अधिक मोटा न होना, अधिक पतला न होना, आयाम व विस्तार ओष्ठ का उचित रूप में होना, मुखगह्वर को पूर्ण रूप से आच्छादित करने वाला एवं ओष्ठ का रक्तवर्ण का होना उत्तमता का द्योतक है।

(13) हनु—दोनों हनु का बड़ा होना उत्तम है।

---

1. स्त्रीणां चातिदीर्घाश्चातिह्रस्वाश्च निन्दिता:। केशभूमि: स्निग्धा लोहिता निर्मला निर्व्रणा च प्रशस्यते। (काश्यप, सूत्रस्थान, लक्षणाध्याय)

Scanned with CamScanner

(14) ग्रीवा—ग्रीवा गोल किन्तु बहुत लम्बी न हो ।

(15) उर—विस्तृत एवं मांसपेशियों से भरा होना चाहिए ।

(16) जत्रु एवं पृष्ठवंश—का मांसपेशी से ढका होना उत्तम है । (पृष्ठदेश, सम, ऊपर से विशाल, शिरा, लोम एवं आवर्तों से रहित प्रशस्त होता है । बीच के भाग में निम्न हो तो आयुष्कर, झुका हो तो दुखी, बहुत छोटा हो तो अल्पायु तथा लोमयुक्त हो तो मित्र रहित एवं अल्प सन्तान वाला होता है ।[1])

(17) स्तन—दोनों का दूर-दूर रहना उत्तम है ।

(18) पार्श्व—जिसके दोनों पार्श्व अंशभाग स्थूल मांसल होकर क्रमशः पतले एवं स्थिर होते हैं तो वे श्रेष्ठ हैं ।

(उन्नत कुक्षि प्रशस्त होती है । लोमयुक्त कुक्षि अति भ्रमणशील के लिए, शिराओं से युक्त कुत्सित भोजन वालों के लिए, नीचे दबी हुई दरिद्रों के लिए, सम आकार वाली मध्यम बालकों के एवं दक्षिण कुक्षि उभरी हो तो पुत्र जन्म के लिए, वाम कुक्षि उभरी हो तो कन्या के लिए होती है ।[2])

(19) बाहु, पाद एवं अङ्गुलियाँ—जिसके दोनों हाथ-पैर एवं अङ्गुलियाँ गोल मांस से परिपूर्ण एवं लम्बी हों श्रेष्ठ हैं । कूर्माकार पैर के उपरिभाग का होना श्रेयस्कर है ।

बाहु जो क्रमशः उपचित हो, जिसमें अरलि (कोहनी) दृढ़ हो । जो दीर्घ घुटनों को स्पर्श करने वाली हों । शिराओं से युक्त बाहु आयुष्यमान् बालकों के, पक्षयुक्त सन्तान वालों के, शिराओं से रहित सन्तान-शून्य व्यक्तियों के, तिर्यक् शिराएँ कृच्छ्रजीवियों के, तिलयुक्त बाहु भ्रमणशील के तथा मशक से युक्त बाहु कलहप्रिय के होते हैं ।[3]

पाद मोटे, अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित तथा ऊपर की ओर रेखाओं वाले हों तो आयुष्यमान्, धनवान् तथा अधिपति होता है । स्वस्तिक, लाङ्गल, कमल, शंख, घोड़ा, हाथी, रथ आदि मङ्गलकारी प्रहरणों से चिह्नित हो तो वह बालक राजा, ताम्रवर्ण एवं चिकने हों तो ऐश्वर्यशाली, यदि पैर मुड़े हों तो मध्यम-धन एवं आयु, श्वेत हो तो निर्धन, रेखाओं से युक्त हों तो दूसरों का काम करने वाले, अति रेखायुक्त हों तो रोगी, गोल एवं चिकनी एड़ी वाले हों तो वे सर्वगुणसम्पन्न, छोटी एड़ी वाले अल्पायु, सन्तानरहित एड़ी खुरदरी, परुष, तनु, विषम, फटी हुई, मलिन अप्रशस्त है । पैर चपटे हों तो वे दूसरे की स्त्रियों को भगाने वाले या उनसे प्रेम करने वाले होते हैं । अङ्गुलियाँ, नाखून तथा

---

1. पृष्ठं सममुपरिविशालमसिरमलोमकमनावर्तकं प्रशस्यते, मध्ये निम्नमायुष्मतां, निर्भुग्नं दुःखभागिनां, संक्षिप्तमनायुषां, लोमशममैत्राणामल्पापत्यानां च । (काश्यप)
2. कुक्षी समुन्नतौ प्रशस्येते, लोमशौ प्रव्रज्यायै, सिरालौ कुभोजनाय, निम्नौ दारिद्र्याय, समौ मध्यत्वाय, दक्षिणोन्नतौ पुत्रजन्मने, वामोन्नतौ विपरीतौ । (काश्यप)
3. तथा बाहू अनुपूर्व्योपचितौ गूढारत्नी दीर्घौ जानुस्पृशौ प्रशस्येते, सिराततावायुष्मतां, पक्ष्म(क्ष)वन्तौ प्रजावताम्, असिरावप्रजानां, तिर्यक्सिरौ कृच्छ्रजीविनां, तिलवन्तौ प्रवाजयतः, मशकलक्षणवन्तौ कलहाय । (काश्यप)

Scanned with CamScanner

पैर दीर्घ या ह्रस्व हों तो आयु भी दीर्घ या अल्पायु होती है। उत्तर पाद उन्नत, शिराओं से रहित प्रशस्त होते हैं। इसके विपरीत हों तो बालक चोर होता है।[1]

अङ्गुलियाँ मजबूत हों तो भाग्यवान्, पर्व खूब गूढ़ हों तो भोगी, स्थूल हों तो आचार्य, लोमश हों तो निर्धन होता है।[2]

(20) नख—स्थिर, गोलाकार, चिकने, ताम्रवर्ण के लाल, ऊँचे उठे हुए और कछुए की खोपड़ी की तरह चढ़ाव युक्त उत्तम हैं। (स्निग्धतनु चिकने ताम्रवर्ण के हों तो बालक अधिपति, स्थूल हो तो आचार्य, रेखायुक्त हों तो आयुष्मान्, नख नीचे झुके हों, सीप तथा तुषाकृति हों तो दरिद्र, रूक्ष हों तो दुखी, पुष्पित हो तो लुण्ठित, श्वेतवर्ण-मण्डलाकार हों तो कम आयु वाला, स्फुटित हों तो पराधीन, विवर्ण हों तो व्यसनी; उन्नत, किनारे पर मुड़े या गोल तथा छोटे हों तो सुखी होता हैं। नख विपुल हों तो मध्य श्रेणी का होता है। स्थूल, श्वेत तथा विषम हों तो भ्रमणशील होता हैं।[3])

(21) नाभि—दक्षिण पार्श्व से आवर्त बना हो और उत्सङ्ग हो तो वह नाभि उत्तम है। (नाभि गहरी दक्षिण की ओर घूमी, गोल उठे किनारों वाली, लोम, शिरा, आवर्त रहित प्रशस्त है। गर्ताकार तथा अनुन्नत नाभि सुख तथा दुःख देने वाली है। विषमरूप से उभरी नाभि अनायुष्यकर, स्वल्पाकृति, अनपत्यकर, स्वस्थानच्युत, भ्रमणशील, बड़ी, गम्भीर एवं उन्नतनाभि अधिपति की होती है[4]।)

(22) कटि—वक्ष की अपेक्षा कटिभाग तृतीयांश कम हो, समतल हो, उचित रूप से मांसपेशियों से आच्छादित हो वह कटिप्रदेश उत्तम है।

---

1. पादैः पीनैः सुप्रतिष्ठितैरूर्ध्वलेखैरायुष्मन्तो धनवन्तोऽधिपतयः, स्वस्तिकलाङ्गलकमल-शङ्खचक्रहयगजरथप्रहरणमङ्गलाङ्कितै राजानः, ताम्रैः स्निग्धैः सुभगाः, उत्कु(त्क)टकैर्म-ध्यधनायुषः श्वेतैरधनाः, अलेखैः परकर्मकराः, बहुलेखै रोगिणः, सुवृत्तश्लक्ष्णपार्ष्णिभिः सर्वगुणोपपन्ना भवन्ति, हीनपार्ष्णिभिरनायुषः प्रजाहीनाः, (खरपरुषतनु विषमस्फुटित-मलिनापार्ष्णिरप्रशस्ता), चिपिटाः पारदारिकाः। अङ्गुलीनखपादैर्दीर्घैर्दीर्घायुषो ह्रस्वै-र्ह्रस्वायुषः। ···उत्तरपादमुन्नतमसिरमलोमकं प्रशस्यते, विषमं विपरीत च तस्कराणाम्। (काश्यप.)
2. अङ्गुलीभिर्घनाभिर्भाग्यवन्तो, गूढपर्वाभिर्भोगिनः, स्थूलपर्वाभिराचार्याः, लोमशाभिरधनाः। (काश्यप.)
3. स्निग्धतनुश्लक्ष्णताम्रा नखा आधिपत्याय भवन्ति, स्थूला आचार्याणां, राजीमन्तश्च दीर्घाश्चायुष्मतां, निम्नशुक्तितुषाकृतयो दरिद्राणां, रूक्षा दुःखभागिनां, पुष्पिता लुण्ठानां, श्वेता मण्डला अनायुषां, स्फुटिता अस्वतन्त्राणां, विवर्णा व्यसनिनां, समुन्नता निपिण्डान्ता अल्पाः सुखभागिनां, विपुलैर्नखैर्मध्यत्वमाह, स्थूलाः श्वेता विषमाश्च प्रव्राजयन्ति। (का.)
4. नाभिः गम्भीरा प्रदक्षिणा वृत्तोत्सङ्गिनी लोमसिरावर्तवर्जिता प्रशस्यते, गर्ताकृतिरनुन्नता सुख-दुःखकरी, विषमोन्नताऽनायुष्या, स्वल्पाकृतिरनपत्या, विदेशस्था प्रव्राजयति, बृहती गम्भीरोन्नताऽऽधिपत्याय। (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

(23) स्फिच—दोनों नितम्ब गोल, स्थिर, मांसपेशी परिपूर्ण एवं न अति उन्नत या अति धँसा हुआ प्रशस्त है। (निर्वृत्त, जो लम्बे न हो, व्रण तथा लोमरहित तथा अविषम प्रशस्त हैं। शुष्क नितम्ब सन्तान रहित के, लम्बे प्रधानता नष्ट होने वालों के, बड़े नितम्ब दुश्चरित्रा के, छोटे शीलवान् के होते हैं।[1])

(24) ऊरु—क्रमशः गोल एवं मांसल हों। (मांस युक्त, गहरी तथा चिकनी प्रशस्त होती हैं।[2])

(25) जङ्घा—हरिण के पैर के समान हों, न मांसपेशियों से अधिक आच्छादित हों जिससे अधिक स्थूल हो गया हो, न हल्की मांसपेशी से आच्छादित हो जिससे कृश प्रतीत होता हो और जिस जङ्घा में सिरा, अस्थि एवं सन्धियाँ गूढ़ हों वह प्रशस्त हैं। (कसी हुई तथा शिरा और लोम से रहित प्रशस्त हैं। अतिशुष्क, अतिस्थूल, शिरा एवं लोमयुक्त अप्रशस्त हैं; ये नारियों के लिए वैधव्य करने वाली होती हैं।[3])

(26) गुल्फ—न मांसपेशी से अधिक भरा, न कम पेशियों से आच्छादित हो जिससे कृश न हों। (मजबूत, छोटे, लोम एवं शिराओं से रहित प्रशस्त, इसके विपरीत बहुत उभरे हों तो धननाश, विशाल हों तो क्लेश के कारण होते हैं।[4])

(27) अन्य—वात, मूत्र, पुरीष, शयन, जागरण, परिश्रम, मुस्कराना, रोना, स्तन से दूध पीना आदि जिस बालक के स्वाभाविक अवस्था में होते हैं वह बालक उत्तम होता है। जो कुछ अन्य भाव यहाँ नहीं कहे गये हैं, वे बालक के लिए स्वाभाविक रूप से हितकारी हैं। जो विपरीत हैं वह सभी वस्तु अनिष्ट हैं। (कश्यप ने सामान्य रूप में निम्न लक्षण कहे हैं—मस्त हाथी, बैल, सिंह, चीते तथा हंस की गतियों वाले अधिपति होते हैं। मन्द गति वाले प्रशस्त हैं। चञ्चल गतिवाले व्यक्ति चञ्चलतापूर्वक सुख तथा दुःख प्राप्त करते हैं। तिर्यक् गतिवाले अप्रशस्त हैं। स्खलन गतिवाले तथा जिनके अङ्ग फटे हों वे अप्रशस्त हैं। अतिगौर, अतिकृष्ण, अतिदीर्घ, अतिह्रस्व, अतिकृश, अति-स्थूल, अतिलोम और अलोम [चरक द्वारा वर्णित अष्टौनिन्दितपुरुष च.सू.—21:3], अतिमृदु एवं अतिकठिन शरीर अप्रशस्त हैं। बालकों का आक्रोशपूर्ण रुदन, सोना, जागरण, क्रोध, हर्ष, विसर्ग, आदान, पक्ति, स्थिरता एवं गम्भीरता आदि लक्षण युक्तियुक्त एवं प्रशस्त माने गये हैं। मूत्र जो कष्ट से न आता हो, अति पतला न हो, मात्रा में अति अल्प न हो, सरलतापूर्वक वेग प्रशस्त, इसके विपरीत अतिगन्ध-वेदना-

---

1. स्फिचौ निर्वृत्तावलम्बौ·····निर्व्रणावलोमशावविषमौ प्रशस्येते, शुष्कावनपत्यानां, लम्बौ प्रधाननाशाय, महान्तौ पौंश्चाल्याय, अल्पकौशीलवताम्। (काश्यप.)
2. ऊरू मांसोपचितौ गूढसिरौ श्लक्ष्णौ प्रशस्येते। (काश्यप.)
3. जङ्घे चानुद्वद्धे असिरम् अलोमिके प्रशस्येते, शुष्कस्थूलसिरालोमशे विपरीते, वैधव्यकर्यौ तु नारीणाम्। (काश्यप.)
4. गुल्फौ गूढावल्पावलोमसिरौ प्रशस्येते, धननाशायोल्बणौ, विपुलौ परिक्लेशाय। (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

उष्णता विवर्णतायुक्त, अनिश्चित समय पर आनेवाला अप्रशस्त है । कन्या या दोनों के लिए स्फालित मूत्र अनपत्यकर हैं । नाभि के द्वारा ही वायु का भी व्याख्यान समझें ।[1]

उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त कुछ विवरण भी काश्यपसंहिता में उपलब्ध हैं ।

(28) कुकुन्दर—गम्भीर लोमरहित, विभक्त हुए तथा समान आकार वाले प्रशस्त होते हैं । लोमयुक्त कुकुन्दर भ्रमणशील स्त्री के होते हैं । दक्षिण की ओर जिसमें आवर्त हो वें प्रशस्त हैं । बड़े दीर्घायु वाले के, श्लिष्ट अल्पायु के हैं ।[2]

(29) जघन—कुछ लोगों का कहना है कि कूल्हे छाती के समान परिणाम वाले प्रशस्त हैं । बालकों की छाती विशाल होती है । बालिकाओं के कूल्हे विशाल होते हैं । यह दोनों मध्यम आकार वाले प्रशस्त नहीं होते हैं ।[3]

(30) वृषण—गौरवर्ण वाले बालक के वृषण लम्बे, बड़े, कृष्णवर्णवाले के कृष्ण तथा रक्तवर्ण वाले के गौर तथा श्याम वर्ण वाले के श्याम होते हैं । रक्तवर्ण-लोमयुक्तवृषण मध्यम श्रेणी के, मोटे वृषण प्रशस्त, इसके विपरीत पुंसत्व एवं सन्तान नाशक छोटे वृषण अल्पायु एव दु:ख के कारण होते हैं । गौ, गदहा, घोड़ा, बकरी एवं भेड़ाकृति वृषण सौभाग्यशाली एवं आयुष्मान् के होते हैं ।[4]

(31) प्रजनन—कोमल, दीर्घ, उच्छ्रित, बड़ी, ताम्रवर्ण की तथा गोल मणियुक्त महान् कोश एवं स्रोत वाला प्रशस्त है तथा तनु, अतिह्रस्व या दीर्घ, कोशरहित, श्वेत या कृष्ण स्राव वाला, वाम पार्श्व में आवृत्त वाला प्रजनन अप्रशस्त है ।[5]

---

1. मत्तगजवृषभसिंहशार्दूलहंसगतयोऽधिपतय:, स्तिमितगतयो धन्या:, चपलगतयश्चपल-सुखदु:खलाभिन:, तिर्यग्गतयस्त्वधन्या: स्खलनाश्चाङ्गविस्फोटिनश्चाप्रशस्ता: । तथा, अतिगौरमतिकृष्णमतिदीर्घमतिह्रस्वमतिकृशमतिस्थूलमतिलोमशमलोमशमतिमृद्वतिकठिनं च शरीरेष्व(रम)प्रशस्तमुच्यते । तथा बालानां रुषितरुदितस्वप्नप्रजागरक्रोधहर्षविसर्गा-दानपंक्तिस्थैर्यगाम्भीर्याणि युक्तानि गुणाधिकानि प्रशस्यन्त इति । (काश्यप.)
मूत्रमनाविद्धमतनुकमनल्पमृजुवेगं प्रशस्यते, तद्विपरीतमतिगन्धिसंवेदनमत्युष्णं विवर्ण-मनिमित्तकालमशब्दमप्रशस्तं, कन्यकानां च स्फालितमूत्रत्वमुभयोर्वाऽनपत्यकरम् । (का.)
नाभ्या पायुर्व्याख्यात: । (काश्यप.)
2. कुकुन्दरौ गम्भीरावलोमशौ प्रविभक्तौ समौ प्रशस्येते, लोमशौ प्रव्रज्यायै, प्रदक्षिणावर्तौ तु धन्यौ, विपुलौ दीर्घायुषां, श्लिष्टावनायुषाम् । (काश्यप.)
3. जघनमुरसा तुल्यं प्रशस्यत इत्येके । कुमाराणामुरस्तु विशालतरं, जघनं तु कुमारीणां, न तु मध्याय कल्पते । (काश्यप.)
4. वृषणौ प्रलम्बौ बृहतौ गौरस्य, कृष्णौ कृष्णस्य, गौरौ रक्तस्य, श्यामौ श्यामस्य, रक्तौ लोमशौ मध्यौ स्मृतौ, पीनौ प्रशस्येते, विपरीतौ दौभाग्यपुंस्त्वप्रजाहानिकरौ, स्वल्पा-वनायुषां, दु:खाय चैके, गोखरहयाजाविकाकृति तु सुभगानामायुष्यमतां च विज्ञेयौ । (का.)
5. प्रजननं मृदु दीर्घमुच्छ्रितं बृहत्ताम्रनिवृत्तमणि महाकोशं महास्रोत: प्रशस्यते, तनु ह्रस्वं लम्बि विकोशं श्वेतश्यावविसृतं वामावृत्तमप्रशस्तम् । (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

(32) योनि—शकटाकार योनि सन्तानोत्पत्ति के लिए, स्थूल सौभाग्य के लिए, गोल व्यभिचार के लिए, लम्बी अपत्यवध के लिए, उत्क्षिप्त अनपत्य के लिए, सूचीमुखाकार दुर्भाग्य के लिए, अतिविस्तृत या सङ्कुचित, शुष्क, लम्बी, विषम तथा लिङ्ग रहित योनि क्लेश के लिए, मध्यम रूप से भिंची हुई योनि कन्योत्पत्ति के लिए और उन्नत, रमणीय, मांसयुक्त पुत्रोत्पत्ति के लिए होती है । व्यञ्जन युक्त योनि प्रशस्त, अतिलोमश वैधव्य, व्यञ्जन रहित अप्रशस्त तथा मांसाङ्कुर एवं वसायुक्त योनि व्यभिचार के लिए होती हैं । दोनों ओर बालों की पंक्ति वाली मध्यम, जो अति घनी न हो वह योनि प्रशस्त, अति स्थूल, वैधव्य, घने बालों वाली कुलटा, नीचे झुकी दुर्भाग्य के लिए, नाभि से भी ऊपर पहुँची हुई मध्यम श्रेणी की होती हैं ।[1]

(33) उदर—ईषत उन्नत, अतिशिथिल, कोमल तथा बहुत बड़ा न होना प्रशस्त है । शुष्कोदर दरिद्र, बड़ा उदर भोगी, विशाल-विषम उदर विषम स्वभाव एवं भोगी का, अतिशुष्क अनपत्यकर, स्त्रियों का उदर नीचे से अधिक बड़ा, शिरा रहित वलियों से रहित अनायुष्य होता है । नाभि से ऊपर दबा होना भी अनायुष्य है । पेट पर 1 वलि प्रशस्त, 2 वलि बुद्धि, 3 वलि सौभाग्य, 4 वलि सन्तान एवं आयु, बहुवलि अनायुष्यकर एवं अप्रशस्त है ।[2]

(34) स्कन्ध—कन्धों पर बाल वणिक, भार उठाने वालों, जुआरियों तथा रङ्गरेजों के होते हैं । शुष्क स्कन्ध दरिद्र के, यह दोनों कभी-कभी दीर्घायु के, भ्रमणशील के, स्निग्ध अंस कर्षण करने वालों, मोटे कन्धोंवाला गुणी, कठिन स्कन्ध शूरवीर, शिथिल कन्धों वाला अशक्त, उन्नत कन्धों वाला प्रशस्त, झुके कन्धों वाली कन्या प्रशस्त होती है । इसके विपरीत अप्रशस्त हैं ।[3]

---

1. योनिः शकटाकृतिरपत्यलाभाय, पीना सौभाग्याय, लम्बाऽपत्यवधाय, मण्डला व्यभिचरणाय, उत्क्षिप्ताऽनपत्यत्वाय, सूचीमुखी दौर्भाग्याय, भृशविवृतसंवृतशुष्का लम्बा विषमा विलिङ्गा क्लेशलाभाय, मध्यनिबिडा कन्याप्रजननाय, उन्नता रमणीया मांसला पुत्रजन्मने, व्यञ्जनवती च धन्या, अतिलोमशा वैधव्यकरी, व्यञ्जनहीना त्वयशसे, पिप्लुमद्वसावती व्यभिचारप्रव्रज्यायै । तथैव लोमराज्युभयतो मध्यमागता नातिघना प्रशस्यते, वैधव्यायातिस्थूला अतिस्थूलघनलोमा पौंश्चल्याय, अधोजाता दौर्भाग्याय, नाभिमतिवृत्ता मध्यत्वाय । (काश्यप.)
2. ईषदुन्नतमुदरमशिथिलमकठिनमविपुलं प्रशस्यते, दारिद्र्याय शुष्कम्, उन्नतं भोगाय, विशालविषमं विषमशीलभोगाय कल्पते, भृशशुष्कमनपत्यं, स्त्रियाश्चाधस्तादुपचितमसिरमतिविपुलमवलिकमनायुषे, मध्यं नाभेरुपरिष्टादनायुषे, एकवलिकं धन्यं, द्विवलिकं बुद्धिलाभाय, त्रिवलिकं सौभाग्याय, चतुर्वलिकं प्रजायुषे, बहुवलिकमधन्यमनायुषे भवत्युदरम् । (काश्यप.)
3. लोमस्कन्धोवणिग्भारजीवी कितवो रङ्गजीवी वा, शुष्कांसो दरिद्रः; तावुभौ दीर्घायुषौ कदाचित् प्रव्रजेतामपि, स्निग्धांसः कर्षकः, पीनांस आढ्यः, कठिनांसः शूरः, शिथिलांसोऽस(श)क्तः, उन्नतांसः पुमान् प्रशस्यते, भ्रष्टांसा कन्या, विपरीते तद्गुणहानिः । (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

(32) योनि—शकटाकार योनि सन्तानोत्पत्ति के लिए, स्थूल सौभाग्य के लिए, गोल व्यभिचार के लिए, लम्बी अपत्यवध के लिए, उत्क्षिप्त अनपत्य के लिए, सूचीमुखाकार दुर्भाग्य के लिए, अतिविस्तृत या सङ्कुचित, शुष्क, लम्बी, विषम तथा लिङ्ग रहित योनि क्लेश के लिए, मध्यम रूप से भिची हुई योनि कन्योत्पत्ति के लिए और उन्नत, रमणीय, मांसयुक्त पुत्रोत्पत्ति के लिए होती है। व्यञ्जन युक्त योनि प्रशस्त, अतिलोमश वैधव्य, व्यञ्जन रहित अप्रशस्त तथा मांसाङ्कुर एवं वसायुक्त योनि व्यभिचार के लिए होती हैं। दोनों ओर बालों की पंक्ति वाली मध्यम, जो अति घनी न हो वह योनि प्रशस्त, अति स्थूल, वैधव्य, घने बालों वाली कुलटा, नीचे झुकी दुर्भाग्य के लिए, नाभि से भी ऊपर पहुँची हुई मध्यम श्रेणी की होती हैं।[1]

(33) उदर—ईषत उन्नत, अतिशिथिल, कोमल तथा बहुत बड़ा न होना प्रशस्त है। शुष्कोदर दरिद्र, बड़ा उदर भोगी, विशाल-विषम उदर विषम स्वभाव एवं भोगी का, अतिशुष्क अनपत्यकर, स्त्रियों का उदर नीचे से अधिक बड़ा, शिरा रहित वलियों से रहित अनायुष्य होता है। नाभि से ऊपर दबा होना भी अनायुष्य है। पेट पर 1 वलि प्रशस्त, 2 वलि बुद्धि, 3 वलि सौभाग्य, 4 वलि सन्तान एवं आयु, बहुवलि अनायुष्यकर एवं अप्रशस्त है।[2]

(34) स्कन्ध—कन्धों पर बाल वणिक, भार उठाने वालों, जुआरियों तथा रङ्गरेजों के होते हैं। शुष्क स्कन्ध दरिद्र के, यह दोनों कभी-कभी दीर्घायु के, भ्रमणशील के, स्निग्ध अंस कर्षण करने वालों, मोटे कन्धोंवाला गुणी, कठिन स्कन्ध शूरवीर, शिथिल कन्धों वाला अशक्त, उन्नत कन्धों वाला प्रशस्त, झुके कन्धों वाली कन्या प्रशस्त होती है। इसके विपरीत अप्रशस्त हैं।[3]

---

1. योनिः शकटाकृतिरपत्यलाभाय, पीना सौभाग्याय, लम्बाऽपत्यवधाय, मण्डला व्यभिचरणाय, उत्क्षिप्ताऽनपत्यत्वाय, सूचीमुखी दौर्भाग्याय, भृशविवृतसंवृतशुष्का लम्बा विषमा विलिङ्गा क्लेशलाभाय, मध्यनिबिडा कन्याप्रजननाय, उन्नता रमणीया मांसला पुत्रजन्मने, व्यञ्जनवती च धन्या, अतिलोमशा वैधव्यकरी, व्यञ्जनहीना त्वयशसे, पिप्लुमद्वसावती व्यभिचारप्रव्रज्यायै। तथैव लोमराज्युभयतो मध्यमागता नातिघना प्रशस्यते, वैधव्यायातिस्थूला अतिस्थूलघनलोमा पौंश्चल्याय, अधोजाता दौर्भाग्याय, नाभिमतिवृत्ता मध्यत्वाय। (काश्यप.)
2. ईषदुन्नतमुदरमशिथिलमकठिनमविपुलं प्रशस्यते, दारिद्र्याय शुष्कम्, उन्नतं भोगाय, विशालविषमं विषमशीलभोगाय कल्पते, भृशशुष्कमनपत्यं, स्त्रियाश्चाधस्तादुपचितमसिरमतिविपुलमवलिकमनायुषे, मध्यं नाभेरुपरिष्टादनायुषे, एकवलिकं धन्यं, द्विवलिकं बुद्धिलाभाय, त्रिवलिकं सौभाग्याय, चतुर्वलिकं प्रजायुषे, बहुवलिकमधन्यमनायुषे भवत्युदरम्। (काश्यप.)
3. लोमस्कन्धोवणिग्भारजीवी कितवो रङ्गजीवी वा, शुष्कांसो दरिद्रः; तावुभौ दीर्घायुषौ कदाचित् प्रव्रजेतामपि, स्निग्धांसः कर्षकः, पीनांस आढ्यः, कठिनांसः शूरः, शिथिलांसोऽस(श)क्तः, उन्नतांसः पुमान् प्रशस्यते, भ्रष्टांसा कन्या, विपरीते तद्गुणहानिः। (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

(35) कक्ष—उन्नत, विशाल, मोटे एवं सुस्पष्ट प्रशस्त, इसके विपरीत अप्रशस्त हैं। स्त्रियों के अतिलोमयुक्त अप्रशस्त हैं।[1]

(36) मणिबन्ध—पुरुषों की मोटी, स्त्रियों की पतली प्रशस्त हैं। दोनों की तीनों यवपंक्तियाँ अविच्छिन्न हैं तो प्रशस्त हैं। प्रथम ऐश्वर्य, द्वितीय मुख्य, तृतीय प्रजा एवं आयु की द्योतक है। तीनों पंक्तियाँ अविच्छिन्न, स्निग्ध, स्पष्ट, गहरी चिह्नित हों तो बालक अधिपति, 4 पंक्तियाँ राजर्षि में, 5 या 6 पंक्तियाँ अविच्छिन्न हों तो 100 पुत्र होते हैं। 7 पंक्तियाँ अविच्छिन्न देवनिकायों की होती हैं। एक भी पंक्ति अविच्छिन्न एवं स्पष्ट हो तो व्यक्ति सुखी होते हैं।[2]

उपरोक्त आयुष्य-लक्षण विवरण में दो प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है—

1. स्वस्थ शरीर या रोगी शरीर।

2. व्यक्ति-बाल-स्त्री के स्वभाव आदि विषय ज्योतिष तन्त्र से सम्बद्ध है। स्वस्थ शरीर या रोगी शरीर आज भी हम सामान्य परीक्षण (General examination) के रूप में करते हैं। सहज विकृतियों, व्याधियों को मात्र शारीरिक लक्षणों से भी ज्ञात किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से शिशु के शारीरिक परीक्षण के आधार पर उसके आयु, वर्ग, स्थिति आदि के ज्ञान का विवेचन किया गया है। इनमें से आयु की दृष्टि से कुछ महत्त्व-पूर्ण अंशों का संकलन यहाँ दिया जा रहा है; यथा—

1. नख	• रूक्ष	- रोगी
	• रेखायुक्त	- आयुष्यमान
	• श्वेतवर्ण तथा मण्डलाकार	- अल्पायु
2. बाहु	• शिरायुक्त बाहु	- आयुष्यमान
	• तिर्यक् शिरायें	- कृच्छ्रजीवियों में
3. पाद	• अतिरेखायुक्त	- रोगी में
	• छोटी एड़ी	- अल्पायु
4. अँगुली, पाद एवं नाखून	• दीर्घ हो	- दीर्घायु
	• ह्रस्व हो	- अल्पायु

1. कक्षावुन्नतौ पृथुलौ पीनौ सुव्यञ्जनौ प्रशस्येते, विपरीतावधन्यौ, भृशलोमशौ च नारीणाम्। (काश्यप.)

2. मणिबन्धने स्थूले पुंसः प्रशस्येते, तनू स्त्रियाः। उभयोरेव तिस्रो यवपंक्तयोऽविच्छिन्नाः, प्रशस्यन्ते, प्रथमा धन्या, द्वितीया मुख्या, तृतीया प्रजायुषे, सर्वाश्चेदविच्छिन्नाः स्निग्धा व्यक्तगम्भीरलिखिता आधिपत्याय, चतस्रो राजर्षेः, पञ्च षट् शतपुत्रस्य, सप्त देवनिकायानाम्, एकाऽपि चेदविच्छिन्ना व्यक्ता सुखायोपपद्यते। (काश्यप.)

Scanned with CamScanner

5. जत्रु एवं पृष्ठवंश	• मध्य में निम्न हो • छोटे हों तो • झुका हो तो	- आयुष्यकर - अल्पायु - रोगी
6. नाभि	• विषम रूप से उभरी हुई	- अनायुष्यकर
7. गुल्फ	• विशाल	- क्लेश का कारण
8. कुकुन्दर	• बड़े • श्लिष्ट	- दीर्घायु - अल्पायु
9. वृषण	• छोटे	- अल्पायु
10. उदर	• स्त्रियों में नीचे से अधिक बड़ा, शिरा एवं वली रहित • नाभि से ऊपर दबा • पुरुषों में बहु वलीयुक्त	- अनायुष्यकर - अनायुष्यकर - अनायुष्यकर

प्राचीन परम्परा में चिकित्सक गृहस्थ आश्रम के हर विषय का अध्ययन करता था, विचार देता था। अतः ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान लाभकारी था। अब यह तन्त्र लगभग आयुर्वेद से अलग किया जा चुका है।

कुमारधारणीयानि

'मणयश्च धारणीयाः कुमारस्य खड्गरुरुगवयवृषभाणां जीवतामेव दक्षिणेभ्यो विषाणेभ्योऽग्राणि गृहीतानि स्युः, ऐन्द्र्याद्याश्चौषधयो जीवकर्षभकौ च, यानि चान्या-न्यपि ब्राह्मणाः, प्रशंसेयुरथर्ववेदविदः'। (च.शा. 8:62)

'जीवत्खड्गादिशृङ्गोत्थान् सदा बालः शुभान् मणीन्'।

(अ.ह.उ. 1:26)

'जीवत्खड्कादिशृङ्गेषुसमासक्ताञ्छुभान् मणीन्।
धारयद्देश चैन्द्र्यादीञ्जीवकर्षभकावपि ॥
हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विशेषात् सततं वचाम्।
आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थ्यकरीं रक्षोभिरक्षणीम्' ॥ (अं.सं.उ. 1:37)

बालकों को मणि धारण करना चाहिए। जीवित गेंडा, हरिण, नीलगाय, साँड— इनमें किसी एक का भी सभी के दाहिने शृङ्ग के अग्रभाग को बालक धारण करे तथा ऐन्द्री आदि औषधियाँ, जीवक, ऋषभक धारण करना चाहिए। अथर्ववेद के ज्ञाता ब्राह्मण इनके अतिरिक्त जिन औषधियों को कहे उसे धारण करें। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने वचा (आयु, मेधा, स्मृति, स्वास्थ्य, रक्षोघ्न कहकर) धारण करने को कहा है। हाथ में ग्रीवा में या शिर पर धारण करें।

Scanned with CamScanner

प्रथम मास परिचर्या

'अथ खलु शिशोर्जातस्य तत्कर्मण्यभिनिर्वृत्ते प्रथम एव मासि कृतरक्षा होम-मङ्गलस्वस्त्ययनस्य सूर्योदयदर्शनोपस्थानं, प्रदोषे चन्द्रमसः' । (का.खि. 12:3)

अब शिशु की उत्पत्ति के बाद उस उत्पत्तिकर्म के निवृत्त हो जाने पर प्रथम मास में ही उनकी रक्षा होम, मङ्गल तथा स्वस्तिवचन कराकर सूर्योदय का दर्शन एवं पूजन तथा रात्रि में चन्द्रदर्शन करना चाहिए ।

चतुर्थ मास परिचर्या

वाग्भट एवं कश्यप ने इस मास में निष्क्रमण संस्कार का विधान किया है । इसकी चर्चा आगे 'कुमारों में संस्कार' अध्याय में करेंगे ।

पञ्चम मास परिचर्या

वाग्भट ने पञ्चम मास में भूमि उपविष्ठन का वर्णन किया है—

'पञ्चमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत् ।
द्विकिष्कुमात्रं लिप्तायां बलिं दत्वा चतुर्दिशम्' ।। (अ.सं.उ. 1:41)
'साश्रयं सावलम्बं च कट्यादीन् मर्दयेदनु' । (अ.सं.उ. 1:42)

पाँचवें मास में बच्चे को भूमि पर बैठाना सिखायें । भूमि को हाथ भर गोबर से लीप कर चारों दिशाओं में पूजा करके बच्चे को बिठायें । बच्चे को आश्रय, अवलम्बन सहारे से बिठाये, जिससे गिरे नहीं । पीछे से बच्चे के कटि, पीठ, पैरो को मलना चाहिए ।

आचार्य कश्यप ने छठे माह में भूमि पर बैठाने का विधान किया है । इसका वर्णन इसी अध्याय में 'क्रीड़ा-भूमि-खिलौना' प्रकरण में किया गया है ।

षष्ठ मास परिचर्या

इस मास में सभी आचार्यों ने अन्नप्राशन एवं कश्यप ने फलप्राशन का विवेचन किया है । अन्नप्राशन का विवेचन कश्यप ने 10वें माह में किया है (पूर्ण विवरण 'कुमारों में संस्कार' नामक अध्याय में देखिये) ।

शिशोः उद्वर्तनं स्नानादिकम्—
'अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानं प्रत्यहं च समाचरेत् ।
सहदेवास्थिराकौन्तीकुमुदोत्पलचन्दनैः ।।
बृहतीफलतक्कारीसर्षपाकुष्ठसैन्धवैः ।
अश्वगन्धावलैरण्डतिलापामार्गतण्डुलैः ।।
सात्मगुप्ताफलैस्तैलं साजक्षीरं विपाचितम् ।
रक्षोघ्नः पुष्टिदोऽभ्यङ्गस्तद्वदुद्वर्तनं च तैः ।।
दधिमाक्षिकसंयुक्तैस्त्रिगुणीकृतचिक्कसैः ।
मूर्वामूलद्विरजनीयवैश्चोद्वर्तनं हितम् ।।

Scanned with CamScanner

कुलत्थचूर्णमेकं वा वाजिगन्धारजोऽपि वा ।
स्नाने सर्वौषधीकल्को जीवनीयाम्बु चेष्यते' ।। (अ.सं.उ. 1:62-63)

बालकों को प्रतिदिन अभ्यङ्ग, उद्वर्त्तन और भली-भाँति स्नान करायें । अभ्यङ्गार्थ तैल—सहदेवा, स्थिरा, कौन्ती, कुमुद, उत्पल, चन्दन, बृहतीफल, तरकारी, सर्षप, कुष्ठ, सैन्धव, अश्वगन्धा, बला, एरण्ड, तिल, अपामार्ग के तण्डुल, साल एवं गुप्तफल (क्रौंचबीज) एवं अजादुग्ध इनसे तैल सिद्ध करें । इसका अभ्यङ्ग करें तथा उन्हीं द्रव्यों का उबटन भी प्रयोग करें । इस उबटन में 3 गुना चिक्कस (हलके भुने जौ का आटा) दही एवं मधु मिला होना चाहिए । या मूर्वामूल, हल्दी, दारुहरिद्रा एवं यव—इनका उबटन करें । या कुलत्थ को आटे से या अश्वगन्धा के चूर्ण का उबटन करें । स्नानार्थ सर्वौषधिकल्क पानी में घोलकर या जीवनीयगण की औषधियों का कल्क पानी में घोलकर स्नान करायें ।

कुमारधारण

'अभियुक्तः सदाचारो नातिस्थूलो न लोलुपः ।
कुमारधारः कर्तव्यस्तत्राद्यो बालचित्तवित् ।।
अधार्मिकं दुराचारः स्थूलो विकटगामिनम् ।
करोति लोलुपो बालं घस्मरत्वेन रोगिणम्' ।। (अ.सं.उ. 1:57)

कुमार को धारण करने वाला व्यक्ति सदाचारी और न अतिस्थूल, न लोलुप होना चाहिए । बालक के चित्त आदि को जानने वाला हो; अधार्मिक, दुराचारी, स्थूल, दुष्कर्मी कुमारधार बालक को लोलुप तथा रोगी बना देते हैं ।

बालकेन सह सम्बन्धः

'न ह्यस्य वित्रासनं साधु । तस्मात्तस्मिन् रुदत्यभुञ्जाने वाऽन्यत्र विधेयता-मगच्छति राक्षसपिशाचपूतनाद्यानां नामान्याह्वयता कुमारस्य वित्रासनार्थं नामग्रहणं न कार्यं स्यात्' । (च.शा. 8:64)

बालकों में भय उत्पन्न करना ठीक नहीं है । यदि बालक रोता हो या भोजन न करे या आज्ञा का पालन न करे तो राक्षस, पिशाच, पूतना आदि ग्रहों का नाम लेकर डराना नहीं चाहिए । (अन्यथा डर के प्रादुर्भाव से बड़े होने पर बच्चे के व्यक्तित्व (Personality) को बढ़ने का पूर्ण अवसर नहीं मिलता है ।

'बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयात्, न चैनं तर्जयेत्, सहसा न प्रतिबोधयेद्वित्रासभयात्, सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा वातादिविघातभयात्, नोपवेशयेत् कौब्ज्यभयात्, नित्यं चैनमनुवर्तेत प्रियशतैरजिघांसुः, एवमविहतमना ह्यभिवर्धते नित्यमुदग्रसत्त्वसम्पन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति । वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थान-ग्रहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बालं रक्षेत्' ।

Scanned with CamScanner

'नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमे न च ।
नोष्ममारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च' ।। (सु.शा. 10:46-47)
'त्रासयेन्नाविधेयं च त्रस्तं गृह्णन्ति हि ग्रहाः ।
वस्त्रपातात् परस्पर्शात् पालयेल्लङ्घनाच्च तम्' ।
(अ.ह.उ. 1:41, अ.सं.उ. 1:59)

'बोधयेत् सहसा सुप्तं नो न चैनं समुत्क्षिपेत् ।
तथा ह्यस्य समुत्रासो वेगरोधश्च जायते' ।। (अ.सं.उ. 1:35)

बालक को हमेशा जिस तरह से सुख हो उसी तरह उठायें, उनको झिड़के नहीं, डर उत्पन्न होने के डर से उसे अचानक न जगायें । वातादि दोषों का प्रकोप होने के डर से उसे अचानक (दूसरे के पास से) न खींच ले या ऊँचा भी न उछालें । कुबड़ा होने के भय से उसे (शीघ्र) न बैठायें और (शिशु-स्वास्थ्य का) नाश की इच्छा न करने वाला प्रतिदिन सैकड़ों प्रिय बातों से उसको प्रसन्न करें । इस प्रकार वह अप्रतिहतचित्त रहकर दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है और उत्कृष्ट सत्त्वसम्पन्न, स्वस्थ तथा प्रसन्न मन भी रहता है ।

बालक को तीव्र बढ़ने वाली वायु, धूप, बिजली की चमक, वृक्ष, लता, शून्यगृह, गहरे स्थान, ग्रहछाया तथा दुष्ट ग्रहों से बचायें । बालक को मैली जगह पर, आकाश में, ऊँची-नीची जगह पर; धूप, आँधी, वर्षा, धूल, धुआँ एवं जल में न छोड़े ।

असावधान अवस्था में बच्चे को बिलकुल न डरायें, क्योंकि डरे बच्चे पर ग्रह आक्रमण करते हैं । वस्त्र की वायु से, दूसरों के स्पर्श से और लाङ्घने आदि से बच्चे को बचायें । सोये हुए बालक को सहसा उठाने से बालक डर जाता है एवं वेगावरोध भी हो सकता है ।

गृहात् निष्कासनस्य कालः

'वर्षं स्ववसतेर्बाह्यं कुमारस्य न दर्शयेत् ।
दीपमातपमग्निं च रूपमन्यच्च भासुरम्' ।। (अ.सं.उ. 52)

एक वर्ष तक कुमार को अपने घर से बाहर न ले जायें । दीपक (तीव्र रोशनी), धूप, अग्नि और अन्य कोई भी चमकता या तैजस प्रकाश उसे न दिखायें ।

क्रीडाभूमि एवं क्रीडनक

'क्रीडाभूमिः समाकार्या निश्शस्त्रोपलशर्करा ।
वेल्लोषणकणाम्भोभिः सिक्ता निम्बोदकेन वा ।।
जातुषं घोषवच्चित्रमत्रासं रमणं वृहत् ।
अतीक्ष्णाग्रं गवाश्वादिमाङ्गल्यमथ वा फलम्' ।। (अ.सं.उ. 1:60)

Scanned with CamScanner

बच्चे के खेलने का स्थान समतल हो जिसमें लौहशस्त्र, कील-काँटे आदि पत्थर के टुकड़े, मिट्टी, बालू-धूल आदि घातक चीजें न हों। उस सुखद समान भूमि पर विडङ्ग, काली मिर्च आदि (कृमिहर) उचित द्रव्यों को पानी में घोलकर छिड़के या निम्बपत्र-जल का सिञ्चन करें। लाख के बजने वाले, चित्रवाले, आराम देने वाले तथा बड़े आकार के सुन्दर खिलौने दें। वे घातक खोंचदार कदापि न हो। खिलौनों की आकृति एवं रूप-रंग गाय-अश्व या किन्हीं मङ्गलदायक प्राणियों की या शिक्षाप्रद फल-फूलों की हों।

'क्रीडनकानि खलु कुमारस्य विचित्राणि घोषवन्त्यभिरामाणि चागुरूणि चातीक्ष्णाग्राणि चानास्यप्रवेशीनि चाप्राणहराणि चाविस्रासनानि स्युः'। (च.शा. 8:63)

शिशु के खिलौने अनेक प्रकार के हों। कुछ शब्द करने वाले, देखने में मनोहर, हल्के, जिसका अग्रभाग तेज न हो, जो मुख में प्रवेश न कर सकें। ऐसे खिलौने न हों जो मृत्यु का कारण बने, भय पैदा करे।

आचार्य कश्यप ने खिलौनों के आधार पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का यत्न भी किया है[1]। उनका कहना है कि—छठे माह में किसी शुभ दिन देवपूजन करके, ब्राह्मणों को भोजदक्षिणा देकर, स्वस्तिवाचन करके, घर या वस्तु के मध्य में पवित्र स्थान पर गोबर तथा जल द्वारा चार हाथ प्रमाण की गोल या चौकोर वेदी लीपकर बनायें। उस वेदी के पास वैद्य सुन्दर तथा ऐश्वर्य युक्त, सोना, चाँदी, ताँबा, कांसा, सीसा एवं लौह की सब प्रकार की मणियाँ एवं मुक्ता, प्रवाल आदि; सम्पूर्ण व्रीहि आदि धान्य; सर्वसतालेष्टक[2], दूध, दही, घृत, मधु, गोबर, गोमूत्र, कर्पास आदि तथा पिष्टी युक्त निम्नाकृति के खिलौने, गौ, हाथी, सूअर, शरभ आदि जानवर; विभिन्न पक्षी, शिला, गृह, रथ, यान, स्यन्दन, शल्लिका, झञ्झर, खैरिका, ईशीका, तुम्बी, दुष्प्रवाह, भद्र, सञ्चोल्ल, पीठप, ननद, कन्या, कुमार, गेंद आदि आकार वाले तथा अन्य स्त्री को प्रिय खिलौने रख कर निम्न मन्त्र द्वारा पृथ्वी को अर्घ्य देवे—

'त्वग्रजा त्वं प्रभवाऽव्यया च लोकस्य धात्री सचराचरस्य।
त्वमीज्यसे त्वं यजसे महीह मात्रेऽव नः (पा)हि कुमारमेनम्'॥
(का.खि. 12:7)

---

1. षष्ठे मासि·····मन्त्रेण ॥6॥
ततस्तं मण्डलमध्ये तथैव स्नातमलङ्कृतमहतवाससं कुमारं प्राङ्मुखमुपवेशयेन्मुहूर्तं, मुहूर्तमुपविश्य यद्धस्ताभ्यां प्रथमं गृह्णीत परिमृशेद्वा कृष्याद्वा तद्भागी भविष्यतीति हृदि निमित्तं कृत्वोत्थाप्योत्तरकालमवहितया धात्र्याऽन्वितः कुमारेण वा एतैरेव क्रीडनकैस्तैजसैरितरैश्च लघुभिरखरैरतीक्ष्णैरवक्रङ्गमैरनवोपस्करैराकर्षणाहरणशक्तै रुचिभिर्घोषवद्भिर्विनोद्यमानः सोपाश्रयास्तरणोपेतायां भूमौ प्रतिदिनमभ्यासार्थं सकृदुपविशेदिति।
(का.खि. 12:8)

2. काश्यप संहिता की आंग्ल भाषा में व्याख्या करते समय प्रो. पी.वी. तिवारी ने इस शब्द को अस्पष्ट मानते हुए पाठ इस प्रकार दिया है—'सर्वशालिषष्टिकाः' अर्थात् शालि एवं षष्टि अन्न द्वारा निर्मित।

Scanned with CamScanner

इसके बाद उस बालक को उसी प्रकार स्नान, अलङ्कार तथा नवीन वस्त्राभूषण से सजा कर मण्डल के मध्य में पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठायें। थोड़ी देर बैठने के बाद वह शिशु अपने हाथों के द्वारा जिस पदार्थ का सर्वप्रथम ग्रहण, स्पर्श या कर्षण करेगा—वह उसी का भागी होगा। ऐसा मन में सोच लें। उसके बाद उस शिशु को उठा कर प्रमाद रहित धात्री या दूसरे बालक के साथ उपर्युक्त या अन्य तेजयुक्त, लघु, जो खर न हो, जो बहुत तेज न हो, जो बहुर वक्र न हो, जो बिलकुल नवीन न हो, जो खींचकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकें या रुचिकारक एवं शब्द युक्त खिलौनों से विनोद करता हुआ, प्रतिदिन किसी के सहारे तथा विस्तरयुक्त भूमि पर अपने खेल आदि के अभ्यास करने दें।

विद्याग्रहण

'शक्तिमन्तं चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत्'। (सु.शा. 10:52)
'शक्तिमन्तं यथावर्णं विद्यामध्यापयेत्ततः।
अनुशिष्यात् सदा चैनं धर्माय विनयाय च।
यथा नेन्द्रियदुष्टाश्वैर्हियते यौवनागमे'॥ (अं.सं.उ. 1:61)

बालक को शक्तिमान् समझकर वर्ण के अनुसार विद्या पढ़ायें। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बालक की रुचि का ध्यान रखकर पढ़ाना चाहिए। वाग्भट के मत से जब बालक विद्या ग्रहण के लिए योग्य हो जाय तो बच्चे का विद्याध्ययन प्रारम्भ कराना चाहिए। धर्म व विनय की शिक्षा दें, जिससे बालक यौवन काल में इन्द्रियों के वश में न हो जाय।

शिशु का विकासक्रम
(Growth and Development)

विकास क्रम के ज्ञानार्थ दो शब्द प्रयुक्त होते हैं—

(१) वृद्धि (Growth) शारीरिक धातुओं की आकृति में वृद्धि को अंकित करता है।

(२) विकास (Development) शरीर में होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं की परिपक्वता को इंगित करता है।

भ्रूणावस्था से ही गर्भस्थ शिशु का शारीरिक, मानसिक एवं नाड़ीजन्य विकास प्रारम्भ हो जाता है। यह क्रम उत्पत्ति के बाद भी लगातार यौवनावस्था तक चलता रहता है। प्रत्येक बालरोग-विशेषज्ञ को भली-भाँति इस वृद्धि एवं विकास क्रम को जानना चाहिए। विकासक्रम जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है जो शिशु तथा युवा में अन्तर करता है। विकासक्रम लगातार क्रमशः चलने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक जीव का विकासक्रम कुछ न कुछ अलग होता है। एक प्रकार से यह क्रम शारीरिक विकास की माप (Mile stone) समझे जा सकते हैं। यहाँ प्रस्तुत सन्दर्भ में उत्पत्ति के बाद अर्थात्

Scanned with CamScanner

नवजात शिशु से लेकर यौवनावस्था तक विभिन्न वृद्धि एवं विकास क्रम का विवेचन कर रहे हैं। इसको हम 3 भागों में विभक्त कर सकते हैं—

1. शारीरिक वृद्धि ।
2. मानसिक वृद्धि ।
3. नाड़ीवहसंस्थान की वृद्धि ।

महत्त्व

(1) जनस्वास्य संरक्षण ।

(2) समुदाय के पोषण एवं स्वास्थ्य का संकेत है ।

(3) सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रम निर्माण में सहायक है ।

(4) शारीरिक (कुपोषण, संक्रमण एवं कृमिरोग आदि) एवं मानसिक स्वास्थ्य के स्तर का संकेत भी प्रदान करता है ।

(5) विकासक्रम में अनेक प्रक्रियायें समाविष्ट हैं यथा—

- धातु निर्माण प्रक्रिया ।
- शिर, वक्षोदर एवं शाखाओं की वृद्धि ।
- सामाजिक सम्बन्ध, विचार एवं भाषा का विकास ।
- व्यक्तित्व का विकास ।

शारीरिक वृद्धि

सर्वप्रथम शारीरिक वृद्धि पर विचार कर रहे हैं। इससे शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, भार, अङ्ग विशेष की माप का वृद्धिक्रम बताया गया है ।

(1) लम्बाई (Height)—उत्पत्ति के समय शिशु की प्राय: लम्बाई औसतन 50 से.मी. होती है और वर्ष के अन्त में 25 से 30 से.मी. की वृद्धि हो जाती है। द्वितीय वर्ष के अन्त में 12 से.मी. की लगभग और वृद्धि (83 से 87 से.मी.) हो जाती है। 3 से 5 वर्ष तक की वय में प्रतिवर्ष 6 से 8 से.मी. की वृद्धि, 6 से 12 वर्ष की वय में प्रतिवर्ष 5-6 से.मी. की दर से वृद्धि होती है। बालिकाओं में 10 वर्ष की वय तक यह क्रम रहता है। 10 से 12 वर्ष के उपरान्त कोई निश्चित क्रम नहीं है। क्योंकि 12 वर्ष तक ही लम्बाई का अत्यधिक भाग बालक प्राप्त कर लेता है। शेष भाग विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल प्रत्येक बालक में विभिन्न क्रम से 12 से 18 वर्ष के वय के अन्दर लम्बाई की वृद्धि होती है। इसके बाद प्राय: यह क्रम रुक जाता है।

प्राय: लम्बाई की माप के लिए सर्वमान्य सिद्धान्त नीचे दिया जा रहा है—.

- जन्म के समय लम्बाई—50 से.मी.
- एक वर्ष के पूर्ण होने पर लम्बाई—75 से.मी.

Scanned with CamScanner

औसत लम्बाई में वृद्धि एवं वय का सम्बन्ध

वय	औसत लम्बाई में वृद्धि
जन्म से 3 माह	3.5 से.मी./प्रति माह
3 से 6 माह	2.0 से.मी./प्रति माह
6 से 9 माह	1.5 से.मी./प्रति माह
9 से 12 माह	1.2 से.मी./प्रति माह
1 से 3 वर्ष	1.0 से.मी./प्रति माह
4 से 6 वर्ष	3 से.मी./प्रति वर्ष

औसत लम्बाई निकालने का सूत्र

वय	औसत लम्बाई
जन्म के समय	50 से.मी.
प्रथम वर्ष पर	75 से.मी.
2 से 12 वर्ष तक	वय (वर्षों में) X 6+77

(2) भार (Weight)—नवजात शिशु का भार प्राय: 2.5 कि.ग्रा. से 3 कि.ग्रा. के लगभग होता है । जन्म के 3 दिन बाद शरीर के जलीयांश की कमी के

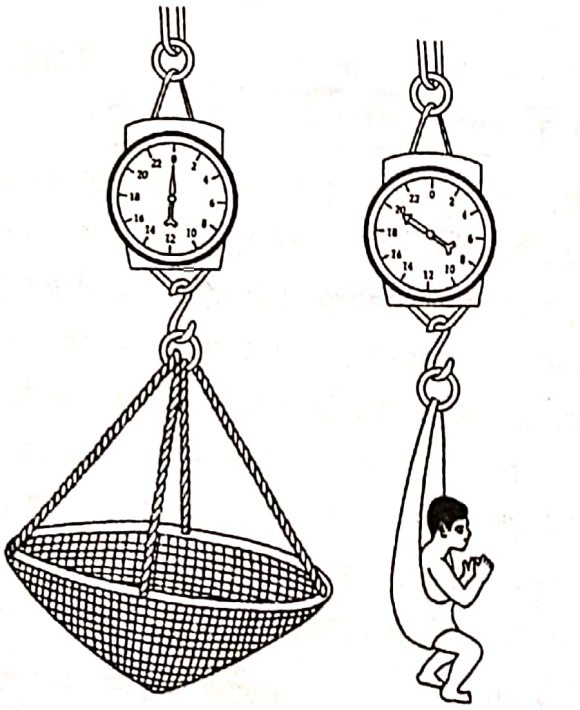

साल्टर माप
(Salter Scale)

स्लिंग मेड माप
(Sling made from a sac)

चित्र संख्या 13 : शिशुभार-विधि

Scanned with CamScanner

कारण भार कुछ घटता है। जो 3 दिन बाद पुन: बढ़ता है और लगभग 10वें दिन पुन: जन्म के समय का भार प्राप्त कर लेता है। इसके बाद 5 माह तक औसतन प्रतिदिन 20 ग्राम, तदुपरान्त छठे मास से वर्ष पर्यन्त 15 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से भार में वृद्धि होती है। इस तरह 5 माह बाद वजन लगभग दो गुना एवं वर्ष पर जन्म-भार की 3 गुना वृद्धि, लगभग 9 से 10 किलोग्राम भार हो जाता है। द्वितीय वर्ष में वृद्धि लगभग $2\frac{1}{2}$ कि.ग्रा., 3 से 5 वर्ष वय में प्राय: 2 कि.ग्रा. प्रति वर्ष वृद्धि होती है। लड़कों में 6 से 12 वर्ष तथा लड़कियों में 10 वर्ष तक की वय तक लगभग 3 कि.ग्रा. प्रति वर्ष की वृद्धि होती है। भार के लिए सर्वमान्य सिद्धान्त नीचे दिया जा रहा है—

- जन्म के समय औसत भार = 3 कि.ग्रा.
- जीवन के प्रथम 7 दिवसों में लगभग 10% भार कम होता है।
- तदुपरान्त 3 दिन में शिशु जन्म के समय के भार को प्राप्त कर लेता है।

औसत भार में वृद्धि एवं वय में सम्बन्ध

वय	प्रतिदिन भार में औसत वृद्धि
जन्म से 3 माह	30 ग्राम
4-6 माह	20 ग्राम
7-9 माह	15 ग्राम
10-12 माह	12 ग्राम
1-3 वर्ष	8 ग्राम
4-6 वर्ष	6 ग्राम

औसत भार वृद्धि एवं वय सम्बन्धी सूत्र

वय	भार (कि.ग्रा. में)
1. जन्म के समय	3 से 3.25
2. 3 से 12 माह	$\frac{\text{वय (माह में)} + 9}{2}$
3. 1 से 6 वर्ष	वय (वर्ष में) x 2+8
4. 7 से 12 वर्ष	$\frac{\text{वय (वर्ष में)} \times 7-5}{2}$

(3) सिर की परिधि (Head circumference)—सिर के आकार में वृद्धि मस्तिष्क के आकार की वृद्धि को प्रस्तुत करती है। जन्म के समय सिर की परिधि 33 से 35 से.मी. के मध्य होती है। 6 माह की वय पर 40 से.मी., 1 वर्ष पर 45 से.मी., आगामी 2 वर्षों में 2 से 3 से.मी. की वृद्धि होती हैं। 3 वर्ष के उपरान्त प्रति वर्ष 7वें,

Scanned with CamScanner

8वें वर्ष तक 5 से.मी. प्रति वर्ष की वृद्धि होती है। इस समय तक सिर की परिधि 50 से.मी. हो जाती है। तदुपरान्त 10 से 12 वर्ष तक में 52 या 52.5 से.मी. परिधि हो जाती है जो लगभग युवावस्था की भी परिधि है।

- जन्म के समय सिर की परिधि औसतन 35 से.मी. होती है।
- प्रथम वर्ष के अन्त में औसत सिर की परिधि 45 से.मी. हो जाती है।

औसत सिर की परिधि में वृद्धि एवं वय का सम्बन्ध

वय	औसत शिर की परिधि में वृद्धि
जन्म से 3 माह	2.00 से.मी./प्रति माह
4 से 6 माह	1.00 से.मी./प्रति माह
7 से 9 माह	0.50 से.मी./प्रति माह
10 से 12 माह	0.50 से.मी./प्रति माह
1 से 3 वर्ष	0.25 से.मी./प्रति माह
4 से 6 वर्ष	1.00 से.मी./प्रति वर्ष

सिर की परिधि मापने की विधि—रबड़ टेप बच्चे के सिर के चारों ओर (पीछे-पश्चात् कपाल occiput और आगे नेत्रगोलक ऊभार के ऊपर (Just above the supraorbital ridges) रख कर नापते हैं।

(4) सिर एवं वक्ष परिधि का अनुपात—जन्म के समय सिर की परिधि वक्ष की परिधि से अधिक होती है। यह अन्तर लगभग 2.5 से.मी. का होता है। 6 से 12 माह की वय में दोनों की परिधि बराबर हो जाती है। 1 वर्ष की वय के बाद वक्ष की परिधि 2.5 से.मी. अधिक हो जाती है। 5 वर्ष की वय तक यह अन्तर 5 से.मी. के लगभग हो जाता है।

सिर एवं वक्ष परिधि में सम्बन्ध

वय	सिर एवं वक्ष परिधि सम्बन्ध
जन्म के समय	सिर परिधि > वक्ष परिधि
1 वर्ष पर	सिर परिधि = वक्ष परिधि
1 वर्ष के बाद	सिर परिधि < वक्ष परिधि

वक्ष की परिधि मापने के लिए दोनों चूचुक का स्तर लेते हैं तथा माप मध्य श्वसन में ली जाती है।

(5) लम्बाई एवं शरीर का सम्बन्ध—शरीर के उर्ध्व एवं अधोभाग की लम्बाई में एक अनुपात होता है। जिससे शारीरिक विकास का ज्ञान किया जाता है।

Scanned with CamScanner

- जन्म के समय—
  ऊर्ध्व भाग/अधो भाग = 1.7:1
- 8 वर्ष की वय पर—
  ऊर्ध्वभाग/अधो भाग = 1:1
- युवावस्था में—
  ऊर्ध्व भाग/अधो भाग = 0.9:1

ऊर्ध्वभाग एवं अधोभाग का निर्धारण—जघन संधानक (Symphysis pubis) के ऊर्ध्व स्तर से करते हैं। इसके ऊपर का अंश ऊर्ध्वभाग और नीचे का अंश अधोभाग है।

(6) **दन्तोद्भेद**—इस क्रम का ज्ञान भी बालक की वृद्धि एवं विकासक्रम के ज्ञान में सहायक होता है। इस विषय पर आगे सम्पूर्ण अध्याय दिया गया है। सिद्धान्ततः द्विज दन्त (प्रारम्भिक दन्त) निकलने का समय 6 माह से 2½ वर्ष का है। तथा सकृज्जात दन्त (एकबार उत्पन्न होनेवाले) 6 वर्ष से 13 वर्ष के मध्य निकलते हैं। तृतीय हानव्य दन्त 20 वर्ष की वय के बाद निकलता है।

मानसिक वृद्धि

बच्चों की मानसिक वृद्धि कुछ ही वर्षों में पूर्ण हो जाती हैं। जब कि शारीरिक वृद्धि उसके बाद भी होती रहती है। बालक स्वभावतः अत्यन्त कोमल होने के कारण मानसिक आघातों से अतिशीघ्र प्रभावित होता है। अतः इसके परिणामों को जानना अत्यावश्यक है। मानसिक वृद्धि को जानने के लिए इसके कुछ मूलभूत पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। प्रस्तुत प्रकरण में मात्र संकेत ही दिया जा रहा है। इसके लिए पूर्ण आवश्यक सामग्री किसी भी 'बालमनोविज्ञान' विषयक ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

(1) **उपचेतन तत्त्व** (The Id)—हाल एवं लिंडजे के मत से इड व्यक्तित्व का अत्यन्त अस्पष्ट, अगम्य एवं अव्यवस्थित भाग है (The Id is the obscure, inaccessible and unorgainsed part of personality) जन्म के समय शरीर की संरचना में जो कुछ भी निहित होता है, वह पूर्णतः इड है। दूसरे शब्दों में जन्म के समय मानव शिशु का मन पूर्णतया इड है, अतः इड जन्मजात एवं वंशानुगत (Congenital inherited reservoir) है। इसे फ्रॉयड ने असंख्य पूर्वजों के स्मृति अवशेष का भण्डार माना हैं। तात्कालिक सन्तुष्टि की इच्छाएँ और विचार ही इड की प्रमुख विषय-सामग्री है। इड का नैतिकता, तार्किकता, समय, स्थान एवं मूल्यों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति इड का मुख्य कार्य है। इड किसी भी प्रकार के तनाव से तात्कालिक छुटकारा पाना चाहता है, यही सुखवाद नियम (Pleasure pain principle) कहा गया है। इसके अन्तर्गत सहज क्रियाएँ (Reflex actions) यथा—छींकना, पलक झपकाना भी आता है तथा प्राथमिक क्रिया (Primary processes) में तनाव दूर करने हेतु प्राथमिक प्रतिक्रिया व्यक्ति के सामने पदार्थ

Scanned with CamScanner

की प्रतिमा का उत्पादन है । इड का एक मात्र मनोवैज्ञानिक कार्य इच्छा उत्पन्न करना है। (The sole psychological function with which the Id is endowed is that of generating wishes.[1])

(2) **अहं** (Ego)—फ्रायड का इगो से तात्पर्य आत्म (Self) या चेतन बुद्धि (Conscious Intelligence) है । अहं का सम्बन्ध एक ओर बाह्य वास्तविकता से होता है तथा दूसरी ओर इड से होता है । यह इड की इच्छाओं तथा भौतिक जगत की वास्वविकताओं के मध्य समायोजन करता है । (It is the adjustor between the wishes of the Id & the demands of physical reality.)[2]

शिशु की आयु बढ़ने के साथ-साथ वह वातावरण की वास्तविकताओं की ओर उन्मुख होने लगता है । आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें 'मेरा' और 'मुझे' जैसे प्रत्ययों का अर्थ स्पष्ट होने लगता है । इगो इड का एक विशिष्ट अंश है जो बाह्य वातावरण के प्रभाव के कारण विकसित होता है, चूँकि इड वंशानुगत होता है । अत: वंशानुगत पदार्थों पर वातावरण के प्रभाव स्वरूप इगो का विकास होता है । बाह्य वातावरण का एकंत्रित ज्ञान ही इगो की विषय-सामग्री है । 'इगो' तर्कसङ्गत (Logical) होता है तथा इगो दिक्काल (Space-time) के सम्बन्ध को जानता है । अत: इसका मुख्य कार्य बाह्य वातावरण के खतरों से जीवन की रक्षा करना है । यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति वास्वविकता के नियम (Reality principle) के आधार पर करता है । प्रारम्भिक प्रक्रिया इड में होती है । द्वितीयक प्रक्रिया 'इगो' द्वारा होती है । क्योंकि यह व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष है अत: यह तात्कालिक तृप्ति के लिए उपयुक्त परिस्थिति को खोजने या उत्पन्न करने का कार्य करता है । संक्षेप में 'अहं' (Ego) के कुछ प्रमुख कार्य निम्न प्रकार से हैं—

- शरीर की पोषण सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति ।
- शरीर की सुरक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति करना ।
- बाह्य वातावरण की वास्तविकताओं के अनुसार इड के आवेगों की अभिव्यक्ति करना ।
- इड ओर 'सुपर इगो' की विरोधी इच्छाओं का समायोजन करना ।
- बाधा या चिन्ता उत्पन्न होने पर व्यक्तित्व की उपयुक्तता की रक्षा करना ।
- नींद की अवस्था में भी यह स्वप्नों पर सेन्शरशिप बनाये रखता हैं ।

(3) **अति-अहम्** (Super Ego)—व्यक्ति का यह अंश सबसे बाद में विकसित होता है । यह व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है । यह वह शक्ति है जो व्यक्ति का समाजीकरण करती है । निर्णायक बुद्धि का विकास हो जाता है । विस्काफ के शब्दों में—

---

1. Hall C. S., & Lindzy. G : Theories of Personality. John Wiley & Sonsine. 1972.
2. Brown, J. F. : Psychodynamics of Abnormal Behaviour, New Yark, McGarw Hill, 1940.

Scanned with CamScanner

"The super Ego is the ethical moral arm of the personality. It makes the decisions whether an activity is good or bad according to the standard of society which is accepted. Societal laws mean nothing to it has accepted them and internalized them.[1]"

शिशु की आयु जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे उसका समाजीकरण होता जाता है। धीरे-धीरे वह भले-बुरे में अन्तर समझने लगता है। इस समाजीकरण प्रक्रिया में ही बालक के अन्दर 'सुपर इगो' का विकास 'इगो' से होता है। संक्षेप में 'सुपर इगो' 'इगो' का ही एक विशिष्ट विकसित रूप हैं। सुपर इगो के विकास में तादात्म्य (Identification) और अन्तर्निवेश (Introjection) को मानसिक मनोरचनाएँ सहायक होती हैं। 'सुपर इगो' के दो पक्ष हैं—

- आदर्श अहम् (Ego Ideal)—यह सुपर इगो का धनात्मक पक्ष है, जिसमें समाज तथा संरक्षक से सीखी गयी बातें या गुण सम्मिलित होते हैं। आदर्श अहं से व्यक्ति यह सीखता है कि समाज में क्या उचित है।
- अन्तरात्मा (Conscience)—यह सुपरइगो का ऋणात्मक पक्ष है, जिसमें संरक्षक या समाज जिन बातों को बुरा समझते हैं वह अवगुण सम्मिलित हैं। अन्तरात्मा द्वारा व्यक्ति यह सीखता है कि समाज में क्या अनुचित है, उसके संरक्षक किन बातों को अनुचित समझते हैं।

जब कोई बालक सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के प्रतिकूल कार्य करता है, तो अन्तरात्मा के कारण उसमें चिन्ता और अपराध-भावना (Guilt feeling) उत्पन्न हो सकती हैं।

संक्षेप में 'सुपर इगो' 'इगो' का ही विकसित किन्तु विभेदित रूप है जो सामाजिकता एवं नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है। इसके मुख्य कार्य निम्न हैं—

- इड के अनैतिक, असामाजिक एवं कामुक आवेगों पर रोक लगाना।
- इगो के आवेगों को नैतिक एवं सामाजिक लक्ष्यों की ओर ले जाने का प्रयास करना।
- पूर्ण सामाजिक और आदर्श प्राणी बनने हेतु प्रयास करना।

(4) **जैविक परिपूर्णता** (Biological maturation)—प्रत्येक गुण बुद्धि में पहले से ही निश्चित होते हैं और जब वे दृश्य होते हैं तो वह अवस्था जैविक परिपूर्णता कहलाती है।[2]

---

1. Bischof, L. J. : Interpreting Personality Theories, New York, Harper Row, 1964.
2. Biological Maturation - Each stage is characterized by the appearence of certain physical & mental abilities, which are innately predetermined. Biological maturation and psychologic development should optimally progress hand in hand and complement each other.

Scanned with CamScanner

(5) **इच्छा** (Libido)—जितनी भी शक्ति की गति होती है वह दो भागों में विभक्त होती है—

- प्रेरणा (Aggresive drive) ।
- कामेच्छा (Sexual drive) ।

जब जैविक परिपूर्णता हो जाती है तो उससे जो शक्ति प्राप्त होती है वही Libido है ।[1]

(6) **सांस्कृतिक एवं शारीरिक उत्तेजना** (Biological and cultural challanges)—शिशु जैविक परिपूर्णता के बाद सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शारीरिक कठिनाइयों के ऊपर अधिकार प्राप्त करना चाहता है और परिस्थितियों के अनुकूल अपने को परिणित करता है ।[2]

(7) **अग्रापकारी** (Aggression)—सामान्य परिस्थितियों में जो चुनौतियाँ बालक के सामने आती हैं उनका सामना करता है । उसमें दक्षता प्राप्त करना चाहता है ।[3]

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक क्रियायें बालक में प्रारम्भ से ही उपस्थित रहती हैं, किन्तु वातावरण, समय एवं परिस्थितियों से इसका विकास होता है । बालक स्वयं इन परिस्थियों से निपटने का यत्न करता रहता है । जब कि तनाव (Frustration), क्रोध इत्यादि बराबर होता रहता है । फिर भी बालक इन परिस्थितियों को पार कर उस विषय में अपनी दक्षता प्राप्त कर ही लेता है ।

माता-पिता या निकटस्थ सम्बन्धी (धात्री या कुमाराधार) को भी यह प्रयत्न करना चाहिए कि बालक को अत्यधिक मानसिक दबाव न झेलना पड़े, किन्तु अल्प मात्रा में इस प्रकार का मानसिक दबाव का होना भी बालक के विकास हेतु आवश्यक है । जिससे शिशु कठिन परिस्थितियों में भी अपने को सन्तुलित रख सके ।

---

1. Libido - As the predetermind abilities mature, their proper functioning requires that they become invested with psychic energy.
2. Biological and cultural challanges - Each new capacity arising out of Biological maturation presents the child with a challange requiring mastery. concorrently, certain cultural and familial attitudes insist that he give up early forms of gratification and assume gradually increasing responsibility. As he responds to and masters these challanges, his unique physical and psychological development takes place, and he becomes a social being able to function in his particular culture or subculture.
3. Aggression - Under normal circumstances aggression arises and is expressed in response to the challanges and insistences on renunciation of gratification and as an aid in facing and mastering them.

Scanned with CamScanner

व्यक्तित्व का विकास

सुलीवन (Sulliven) ने व्यक्तित्व-विकास को छः महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं के आधार पर समझाया है। अपने व्यक्तित्व के विकास में लिङ्ग के स्थान पर मानव सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। ये सभी अवस्थाएँ एक-दूसरे को आच्छादित (overlap) करती हुई होती हैं।

(1) **शैशवावस्था** (Infancy)—यह जन्म से 18 माह तक की अवस्था है। लगभग 18 माह का बालक कुछ शब्द बोलने लग जाता है। अतः कहा जा सकता है कि यह जन्म से भाषा प्रगट होने तक की अवस्था है। इस अवस्था के शिशु में वातावरण और शिशु के बीच अन्तःक्रियाओं का केन्द्र मौखिक क्षेत्र है। यह वातावरण में अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित उद्दीपकों का ही प्रत्यक्षीकरण करता है। जैसे पहले बताया जा चुका है कि उसके अनुभव अविन्यासी (Prototaxic) प्रकार के होते हैं। इस अवस्था का शिशु जिन लोगों पर आश्रित होता है उनके सम्पर्क में आकर वह अनेक प्रकार के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सीखने लग जाता है। उसके आत्मतन्त्र (Self system) का उद्विकास प्रारम्भ ही हुआ होता है। इस अवस्था के शिशु के प्रमुख अन्तर्वैयक्तिक अनुभवों में कुछ प्रमुख अनुभव हैं—(1) माँ के स्तनों से या बोतल से बालक का पोषण, (2) अच्छी या बुरी माँ से भय, (3) कभी-कभी माँ से स्वतन्त्र रह कर भी सफलता की प्राप्ति, (4) माँ और संरक्षकों पर पूर्णतः आश्रित बालक आदि।

नवजात शिशु प्रारम्भ से ही माँ पर आश्रित होता है। सर्वप्रथम अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध माँ से ही स्थापित होते हैं। माँ से ही जीवन का सर्वप्रथम व्यक्तित्वारोपण (personification) सम्बन्धित होता है। इस अवस्था में दो प्रकार के व्यक्तित्वारोपण विकसित हो सकते हैं—(1) अच्छी माँ उसकी मौलिक तथा अन्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है। (2) बुरी माँ उसके चिन्ता का कारण होती है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तित्वारोपण का मिला-जुला रूप भी बालक में विकसित हो सकता है।

(2) **बाल्यावस्था** (Childhood)—यह 18 या 20 माह से लेकर 4 या 5 वर्ष तक की वय है। इस अवस्था में बालक के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध संरक्षकों के अतिरिक्त अन्य लोगों से भी हो जाते हैं। इस अवस्था में बालकों का चिन्तन एवं अनुभव अवविन्यासी से अपविन्यासी (Parataxic) की ओर अग्रसर होता है। इस अवस्था में बालक लिङ्ग (Sex) सम्बन्धी रोल को पहचानने लगता है। उसका चिन्तन अपविन्यासी से सहविन्यासी (Syntaxic) की ओर अग्रसर होता है। इस अवस्था के कुछ प्रमुख अन्तर्वैयक्तिक अनुभव हैं।

1. व्यक्तित्वारोपण (Personification)।
2. बालक विभिन्न प्रकार के नाटक या रोल करता है। इस नाटक में वयस्क की भूमिका अदा करता है।
3. आश्रितता से सम्बन्धित अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।

Scanned with CamScanner

इस अवस्था का बालक यदि परिवार एवं समाज की मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करता है तो स्नेह देकर अनुमोदन प्रदान करते हैं, इसके विपरीत व्यवहार करने पर स्नेह से वंचित कर दण्ड दिया जाता है। इस अवस्था के अन्त तक बालक घर से बाहर जाकर अन्य बच्चों के साथ खेलता है। इस प्रकार उसके अन्त:सम्बन्धों का विकास होता है जिससे भाषा के साथ-साथ नये-नये व्यक्तित्वारोपण भी होते हैं। कभी-कभी शिशु यह भी सोचता है कि वह शत्रुओं के मध्य रह रहा है तब वह दूसरों के स्नेह को ठुकरा देता है, इस भावना को द्वेषपूर्ण रूपान्तर (Malevolent transformation) कहते हैं।

(3) **लड़कपन** (Juvenile era)—यह वय 5 या 6 वर्ष से लेकर 11 वर्ष तक की है, जब वह प्राइमरी स्कूल का छात्र होता है। इस वय का लड़का घर से बाहर अपनी बराबर आयु के बालकों के साथ खेलना पसन्द करता है। इस काल में उसका चिन्तन अपविन्यासी से सहविन्यासी प्रकार का हो जाता है। वह विभिन्न प्रकार से नियन्त्रित रहना, अपनी आलोचना करना सीखता है। इस काल के कुछ अन्तर्वैयक्तिक अनुभव निम्न प्रकार से हैं—

1. समाजीकरण, सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा से सम्बन्धित अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।
2. आश्रितता से सम्बन्धित अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।
3. विभिन्न नियन्त्रणों को सीखने से सम्बन्धित अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।

(4) **पूर्व किशोरावस्था** (Pre-adolescence)—यह 11 से 13 वर्ष तक का काल है, जब वह जूनियर हाईस्कूल का छात्र होता है। अन्य विकास काल की अपेक्षा इसमें समय कम होता है। इस अवस्था में कामुकता (दूसरों से प्रेम करने की क्षमता) का सर्वप्रथम उदय होता है, परन्तु यह कामुकता प्रौढ़ावस्था से भिन्न होती है। इस प्रकार की कामुकता के आधार पर भी किशोर मानव सम्बन्ध स्थापित करता है। पूर्णत: सहविन्यासी अनुभव इस वय में होते हैं। इस काल के कुछ प्रमुख अन्तर्वैयक्तिक अनुभव निम्न हैं—

- समलिङ्गी साथी की बहुत अधिक आवश्यकता।
- उचित मानव सम्बन्धों का शुभारम्भ।
- स्वतन्त्रता का शुभारम्भ (अस्पष्ट)।

(5) **प्रारम्भिक किशोरावस्था** (Early adolescence)—यह अवस्था 12 से 17 वर्ष की है। जब छात्र हाईस्कूल का छात्र होता है। इस काल में किशोर में बहुत-से शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस काल में किशोरों का आत्मतन्त्र (Self system) सम्भ्रान्तिपूर्ण (Confused) होता है। लेकिन वय-वृद्धि के साथ स्थिर हो जाता है। पूर्णत: सहविन्यासी अनुभव होते हैं, वे लिङ्ग प्रधान होते हैं। किशोर की कामुकता विपरीत लिङ्ग के व्यक्ति से सम्बद्ध होती है। लेकिन आत्मीय सम्बन्ध समान लिङ्ग के व्यक्ति से

Scanned with CamScanner

ही स्थापित होते हैं। जब वह इन दो प्रकार के सम्बन्धों में विभेदीकरण नहीं कर पाता है तो समलिङ्गी कामुकता (Homosexuality) की ओर बढ़ता है। इस अवस्था के कुछ प्रमुख अन्तर्वैयक्तिक अनुभव हैं—

1. पूर्णतः स्वतन्त्र।

2. दोहरी सामाजिक आवश्यकताएँ अर्थात् एक ओर विपरीत लिङ्ग के व्यक्ति से कामुक सम्बन्ध रखता है, तो दूसरी ओर वह समलिङ्गी व्यक्ति से आत्मीय सम्बन्ध रखता है।

3. इस अवस्था के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध वासनापूर्ण या कामुकतापूर्ण होते हैं।

(6) उत्तर किशोरावस्था (Late adolescence)—यह अवस्था 17 से 20 की है, जब छात्र कालेज का होता है। इसका आत्मतन्त्र (Self system) पूर्णतः समन्वित होता है, अनुभव पूर्णतः सहविन्यासी होते हैं। किशोर अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्व को समझने लगता है। उसका जीवन आयु बढ़ने के साथ-साथ प्रौढ़ व्यक्ति के समान होता जाता है। इस अवस्था के कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर्वैयक्तिक अनुभव हैं—

(1) चिन्ता के प्रति पूर्ण सुरक्षात्मक व्यवहार।
(2) पूर्णतः स्वतन्त्र व्यवहार।
(3) सामाजिक समूह का पूर्ण सदस्य बन जाता है।

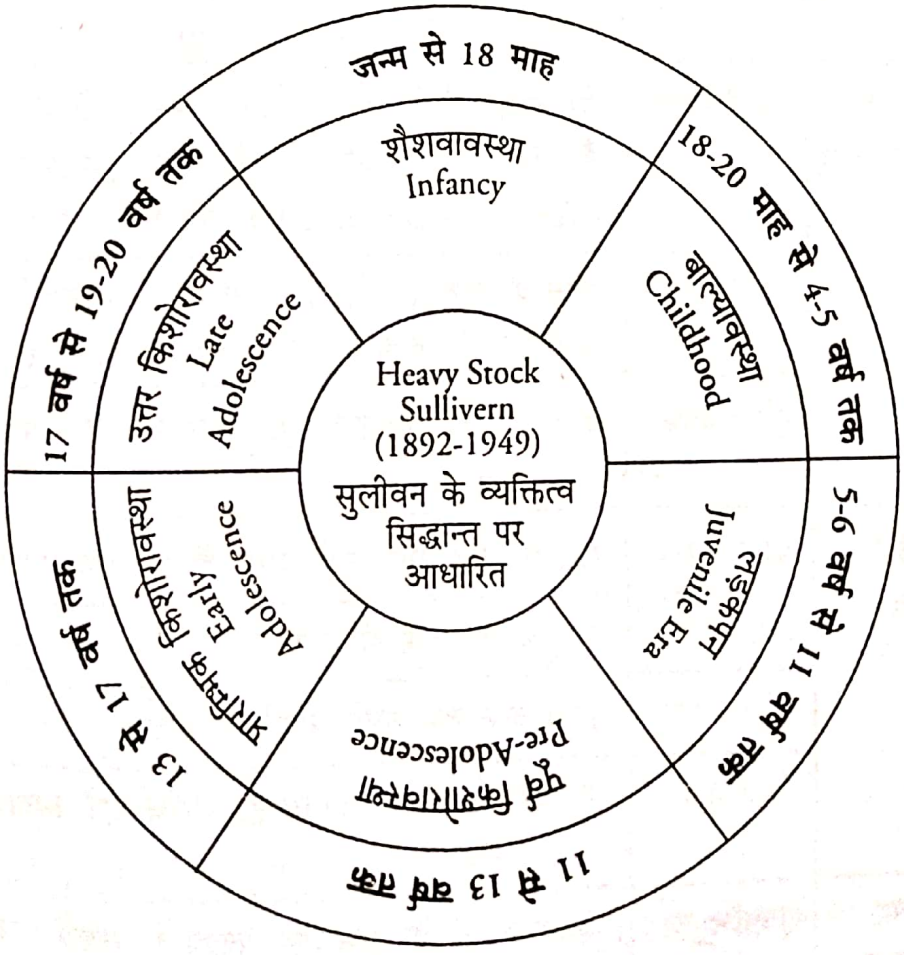

चित्र 14 : वय-वर्गीकरण एवं व्यक्तित्व का विकास

Scanned with CamScanner

नाड़ीवह संस्थान की वृद्धि
(Neurological Development)

उपर्युक्त शारीरिक एवं मानसिक विकास क्रम जानने के बाद नाड़ीवह संस्थान की वृद्धि एवं विकास का ज्ञान भी आवश्यक है । प्राय: बच्चे की अधिकतम विकृतियों का ज्ञान इससे हो जाता है । विस्तृत विवरण तालिका बद्ध कर प्रस्तुत किया गया है ।

नाड़ीवह संस्थान की वृद्धि

वय	लक्षण	विवरण
प्रथम 28 दिन तक	पृष्ठाभिमुख (Prone)	इस वय में अपनी शाखाओं को सङ्कुचितावस्था में रखता है । अपने सिर को इधर-उधर घुमा लेता है । सिर को सीधा नहीं रख सकता ।
	उत्तानशयन (Supine) दृष्टिविषयक	प्राय: सङ्कुचित (Flexed) एवं शाखाएँ कड़ी (Stiff), प्रकाश की ओर एक नजर देखता है, शरीर को घुमाने पर उसकी दृष्टि भी स्वत: गुड़ियों की तरह घुम जाती हैं (Doll's eye movement) ।
	रिफ्लेक्सेज	Moro, Stepping, Placing, Grasp reflex उपस्थित रहता है (विवरण तालिका के अन्त में) ।
प्रथम 28 दिनों के बाद	पृष्ठाभिमुख	पैर अधिक फैले रहते हैं, अपने चिबुक को सँभाल लेता है । सिर को घुमा लेता है । सिर को शरीर के समानान्तर (Ventral suspension) रख लेता है ।
	उत्तानशयन	गर्दन को कड़ी (Tonic) स्थिति में रख सकता है । कभी-कभी मुड़ भी जाता है । बैठने का यत्न करता है ।
	दृष्टिविषयक	आदमियों को देखता है, कुछ अंश घूमनेवाले पदार्थ को देख सकता है ।
2 माह के उपरान्त	पृष्ठाभिमुख	सिर को कुछ उठा लेना, शरीर के स्तर तक उठाना ।
	उत्तानशयन	उपर्युक्त स्तर तक ही रहता है ।
	दृष्टिविषयक	180 अंश तक घूमते पदार्थ को देखना ।
	सामाजिक	परिचित को देखकर हँसता है, परिचित की आवाज को पहचानता है ।
तीन माह के उपरान्त	पृष्ठाभिमुख	सिर एवं वक्ष को कुछ उठा सकता है, भुजाएँ फैलाता है, सिर को शरीर के स्तर से ऊपर उठा लेता है ।

Scanned with CamScanner

वय	लक्षण	विवरण
	उत्तानशयन	गर्दन को कड़ा रखना, खिलौनों की ओर बढ़ने का यत्न करना, खिलौने को दूसरी तरफ हटा देने पर उसी ओर घूम जाना ।
	बैठने पर	सिर पैर की तरफ झुक जाता है । सिर को कुछ स्थिर रखता है, हिलाता है । पृष्ठ भाग अर्धचन्द्राकार हो जाता है ।
	रिफ्लेक्स	Moro reflex समाप्त, कोई वस्तु लेने पर उसकी प्रति-क्रिया होती है ।
	सामाजिक	परिचितों से सम्बन्ध बढ़ाता है, उनका गाना सुनता है; अह, हूँ, गूँ शब्द करता है ।
4 माह के उपरान्त	पृष्ठाभिमुख	सिर एवं वक्ष को उठा लेना, सिर को 90 अंश तक उठाना, पैर फैले रहना ।
	उत्तानशयन	सामान्य स्थिति में सिर को मध्य रेखा में रखना, किसी भी वस्तु तक पहुँचकर, पकड़ कर मुख में डालने का यत्न करना ।
	बैठने पर	सीधे बैठना, सिर स्थिर रखना, सिर कुछ सामने की ओर रहता है, पृष्ठभाग को सहारा देकर बैठाने पर प्रसन्न होता है ।
	खड़े होने पर	सीधा खड़े करने पर पैर आगे रहते हैं ।
	अनुकूलन (Adaptive)	गोटियों को देखता है, लेकिन उसकी तरफ बढ़ता नहीं है ।
	सामाजिक	जोर से हँसना, परिचितों से सम्बन्ध टूटने पर नाराज होना, भोजन देखने पर उत्तेजित होना ।
7 माह के उपरान्त (28 सप्ताह)	पृष्ठाभिमुख	किसी भी वस्तु को देखकर उस पर झपटने का यत्न करता है । बिस्तर पर उलट जाता है ।
	उत्तानशयन	सिर को सीधे उठा लेता है, बिस्तर पर उलट जाता है, चारों ओर घूम सकता है ।
	बैठने पर	सहारे से थोड़ी देर बैठता है, आगे हाथ से सहारा देता है, पीछे के भाग में गोलाई रहती है ।
	खड़ा होना	सहारे से पैरों पर खड़ा होता है, आगे बढ़ने का यत्न करता है ।

Scanned with CamScanner

वय	लक्षण	विवरण
	अनुकूलन	बड़ी चीजों के पास पहुँच कर पकड़ता है, एक हाथ से दूसरे हाथ में पदार्थ को बदल लेता है, कनिष्ठा अँगुली की ओर से हस्ततल से वस्तु पकड़ता है ।
	उच्चारण	कई अक्षर के शब्द बोलता है—पापा, नाना, मामा आदि ।
	सामाजिक	माँ को अधिक चाहता है, दर्पण देखकर प्रसन्न होता है । सामाजिक सम्बन्धों को मानसिक सम्बन्ध (Emotional) से जोड़ता है ।
10 माह के उपरान्त (40 सप्ताह)	बैठने पर	कमर सीधी कर बिना सहारे के लम्बे समय तक बैठना ।
	खड़ा होना	खड़ा होकर चलने का यत्न करना ।
	आज्ञावाही संस्थान (Motor system)	घुटने के बल चलता है ।
	अनुकूल	अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी से बड़ी वस्तु पकड़ना, तर्जनी अँगुली से वस्तु को धक्का देना, गोटियों को चुन सकता है । छिपाये खिलौनों को खोजना, गिरी वस्तु उठाने का यत्न करना, दूसरों से छीनने का यत्न करना ।
	उच्चारण	मामा, दादा, पापा का बार-बार उच्चारण ।
	सामाजिक	पुकारने पर ध्यान देना, टा-टा, बाई-बाई करना ।
12 माह	आज्ञावाही संस्थान	ऊँगली पकड़कर चलता है, कुर्सी-मेज पकड़कर घूम सकता है ।
	अनुकूलन	तर्जनी व अङ्गुष्ठ से अस्थिर गति से छोटी वस्तु को भी उठाना, माँगने पर दे देना ।
	उच्चारण	मामा, दादा के अतिरिक्त भी 2 शब्द बोल लेना ।
	सामाजिक	गेंद को साधारण रूप से खेलना, अपने को सजाते समय शरीर को अनुकूल कर देना ।
15 माह पर	आज्ञावाही सं.	अकेले घूमना, घुटनों से सीढ़ी पर चढ़ाना ।
	अनुकूलन	दो गोटियों को एक-दूसरे पर रख लेना, रेखा खींच लेना, गोलियों को बोतल में डालना । (विशिष्ट विवरण आगे देखें)
	उच्चारण	कई शब्द साथ बोलना, परिचित वस्तुओं के उच्चारण में कष्ट नहीं होता ।

Scanned with CamScanner

वय	लक्षण	विवरण
18 माह पर	सामाजिक	अपनी इच्छा को इंगित करना ।
	आज्ञावाही संस्थान	कठिनाई से दौड़ना, छोटी कुर्सी पर बैठे जाना, एक हाथ पकड़कर सीढ़ी चढ़ जाना, आलमारी खोल लेना, खाली डोलची उठा लेना ।
	अनुकूलन	3 गुटके ऊपर-नीचे रख लेना, नकल करना, बोतल से गोली निकाल लेना ।
	उच्चारण	तस्वीरें बताना, 10 शब्द लगातार बोल लेना ।
	सामाजिक	स्वयं खाना, परेशानी में होने पर आवाज देना, मूत्र या विष्ठा करने पर कहना ।
24 माह पर	आज्ञावाही संस्थान	अच्छी तरह दौड़ना, सीढ़ी पर चढ़-उतर सकता है । एक समय में एक कदम रखता है, दरवाजा खोल लेता है, कुर्सियों पर चढ़ लेता है ।
	अनुकूलन	6 गुटके ऊपर-नीचे रख लेना, गोला खींच लेना, जमीन से समानान्तर ठोंक लेना, कागज को मोड़ना ।
	उच्चारण	3 शब्द एक साथ कह लेना ।
	सामाजिक	चम्मच पकड़ना, प्रायः तुरन्त के अनुमान कहना, अपने वस्त्र उतार लेना, तस्वीर को कहानी के साथ कहना ।
30 माह पर	आज्ञावाही सं.	कूदना ।
	अनुकूलन	8 गुटके ऊपर-नीचे रखना, हाथ जोड़ना, गोलाकार वृत्त में ठोकना आदि ।
	उच्चारण	स्वयं को कहना, अपना नाम बताना ।
	सामाजिक	सामान उठाना, रख आना ।
36 माह पर (3 वर्ष)	आज्ञावाही संस्थान	एक पैर पर खड़ा होना, ट्राइसायकिल चलाना, एक-एक कदम ऊपर रखकर सीढ़ी चढ़ना ।
	अनुकूलन	9 गुटके का टावर बनाना, 3 टुकड़ों का पुल बनाना, गोला खींचना, क्रास बनाना ।
	उच्चारण	वय एवं लिंगबोध, 3 वस्तुएँ गिन लेना, 3 बातें दोहराना ।
	सामाजिक	साधारण खेल खेलना, अन्य बच्चों के साथ खेलना, हाथ धोना, कपड़े के बटन खोलना, जूता उतारना ।

Scanned with CamScanner

वय	लक्षण	विवरण
48 माह पर	आज्ञावाही संस्थान	एक पैर पर कूदना, हाथ के ऊपर गेंद फेकना, कैंची से तस्वीर काट लेना, सीढ़ी पर ठीक से चढ़ना ।
	अनुकूलन	माडल की नकल करना, 5 टुकड़ों से गेट बनाना, क्रास एवं वर्ग नकल कर बना लेना; सिर, हाथ, पैर के साथ मानव चित्र बना लेना ।
	उच्चारण	कहानी कहना, 4-5 तक पैसे ठीक गिन देना ।
	सामाजिक	अकेले मल त्याग को जाना, बच्चों के साथ खेलना ।
5 वर्ष पर	आज्ञावाही सं.	फिसलना ।
	अनुकूलन	नकल कर त्रिभुज बना लेना, वजन बताना ।
	उच्चारण	4 वर्णों का उल्लेख कर लेना, 10 शब्द के वाक्य कह लेना, 10 तक गिनना ।
	सामाजिक	वस्त्र पहनना, उतारना, शब्दार्थ पूछना, घरेलू कार्य करना ।

पाँच वर्ष के बाद के वय के लिए Stanform-Binet तथा Wechsler-Bellevue Scale का प्रयोग किया जाता है । जिसका प्रयोग अतिशय विशेषज्ञ ही करते हैं ।

मानसिक स्तर के विकास हेतु कुछ परीक्षण भी किये जाते हैं । इनकी चर्चा ऊपर तालिका में की गयी है । ज्ञानार्थ उन्हें क्रमबद्ध रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

आधुनिक काल में बालक के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के स्तर के अनुरूप कुछ खिलौने मिलते हैं जिन्हें जोड़कर विभिन्न प्रारूप तैयार होते हैं । उन्हीं में एक खिलौना आयताकार टुकड़ों का होता है । इन टुकड़ों से विभिन्न आकृतियों का निर्माण वयानुसार बालक कर लेता है । यथा—

वय	प्रारूप
1½ वर्ष	3 टुकड़े
2 वर्ष	6 से 8 टुकड़े
3 वर्ष	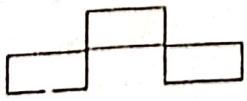 पुल की आकृति

Scanned with CamScanner

$3\frac{1}{2}$ वर्ष 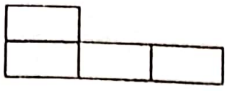 लारी की आकृति

4 वर्ष 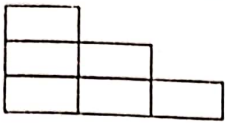 सीढ़ी की आकृति

इसी तरह शिशु में नकल कर सीखने की प्रवृत्ति विकसित होती है—

वय		नकल करना
$1\frac{1}{2}$ वर्ष	-	। खड़ी रेखा
2 वर्ष	-	— सीधी रेखा
3 वर्ष	-	O गोल आकृति
4 वर्ष	-	+ आकृति
5 वर्ष	-	□ वर्ग
6 वर्ष	-	△ त्रिभुज
7 वर्ष	-	✡ ताराकृति

रिफ्लेक्सेज

• Moro Reflex—जब चिकित्सक बच्चे की शय्या पर थपकी कस कर देता है तो पहले बच्चे के हाथ का प्रसारण (Extension), फिर आङ्कुचन (Flexion) एवं अभिवर्तन (Adduction) होता है । (अभिवर्तन अर्थात् शरीर के मध्य रेखा की ओर खींचना[1] ।)

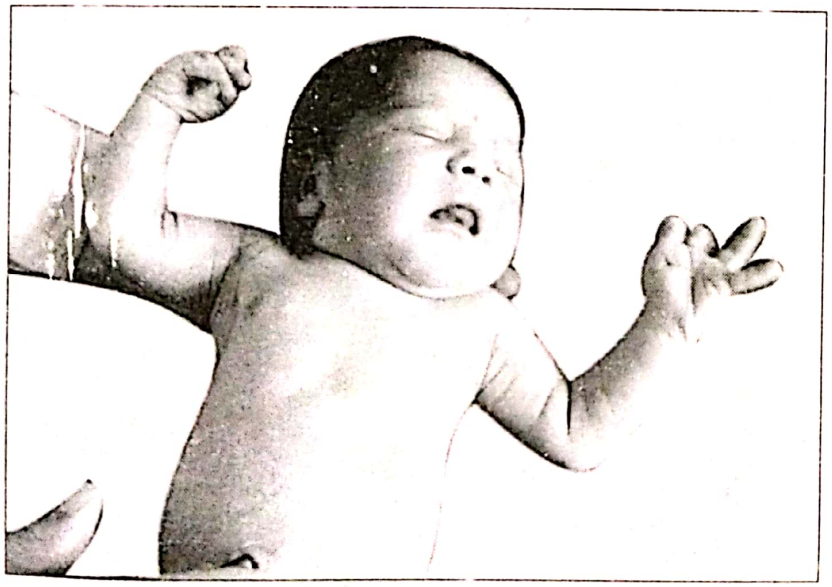

चित्र सं. 15 : Moro Reflex (प्रथम)

1. Moro reflex - When the examiner bang the table or the bed, there is extension of arms followed by flexion and adduction. The baby seems to be attempting to embrace.

Scanned with CamScanner

चित्र सं. 16 : Moro Reflex (द्वितीय)

चित्र सं. 17 : Stepping Reflex

चित्र सं. 18 : Rooting Reflex

Scanned with CamScanner

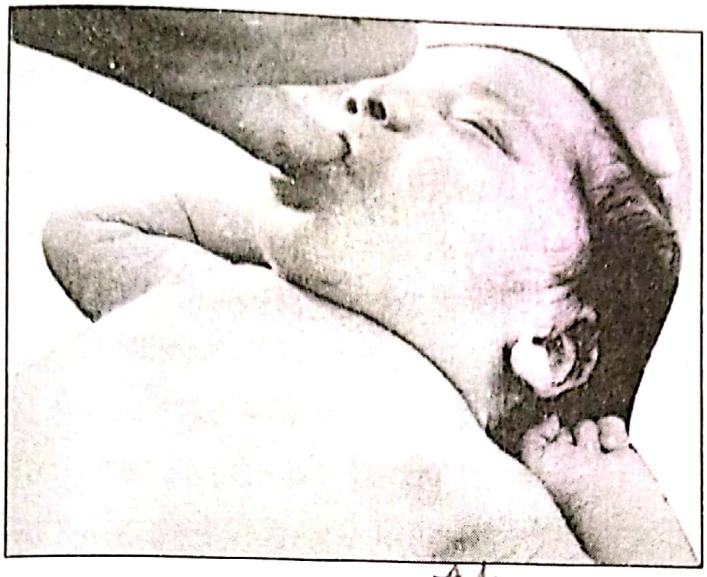

चित्र सं. 19 : Sucking Reflex

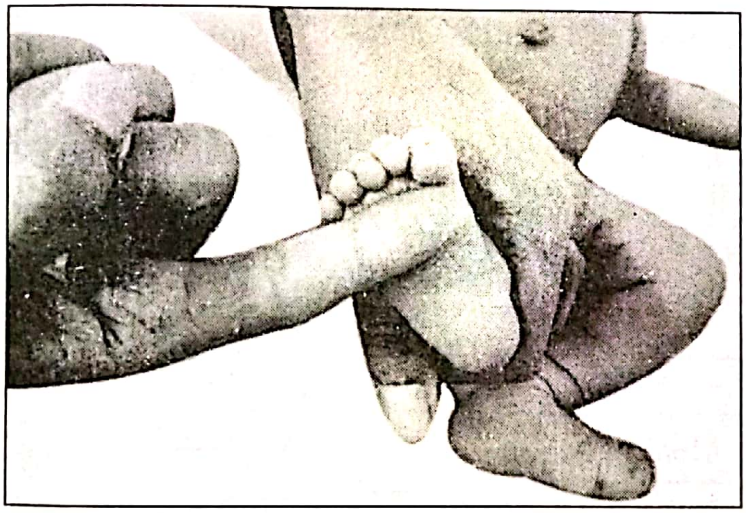

चित्र सं. 20 : Planter Grasp

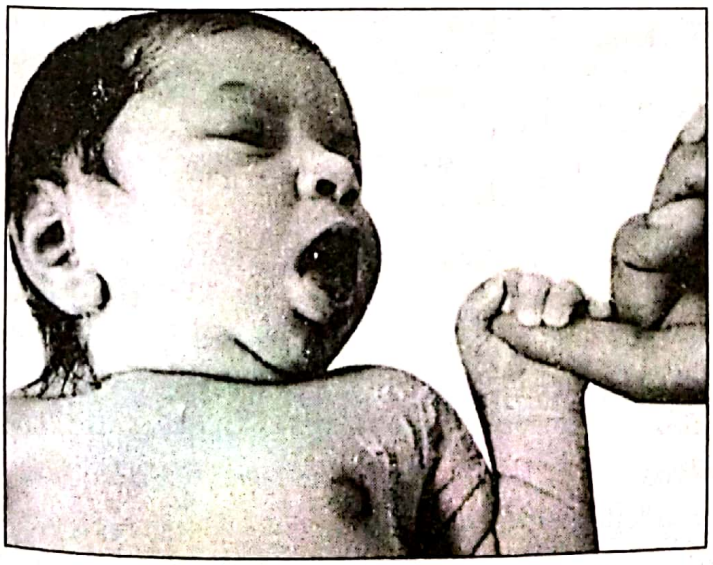

चित्र सं. 21 : Palmar Grasp

Scanned with CamScanner

- Stepping Reflex—जब शिशु को सीधा खड़ा करते हैं, उसके तलवे बराबर जमीन पर रहते हैं तो वह आगे को झुका रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि धड़ भाग आगे बढ़ रहा हो[1]।
- Placing Reflex—जब शिशु को तना हुआ मेज के किनारे पर खड़ा रखते हैं तथा पृष्ठ भाग से शिशु का एक पैर मेज के नीचे करते हैं तो उत्तेजना स्वरूप पहले सङ्कोच फिर उसके बाद पैर का फैलाव होता है[2]।
- Grasp Reflex—इसके लिए करतल पर या तलवे पर हल्का दबाव डाल कर देखते है[3]।

उपरोक्त रिफ्लेक्सेज नवजात शिशुओं में एक निश्चित समय तक रहते हैं। उसमें किसी तरह का परिवर्तन व्याधि को इङ्गित करता है।

यथा—रिफ्लेक्सेज का अनुपस्थित होना केन्द्रीय या Peripheral motor function में कमी (Depression) को इंगित करता है। रिफ्लेक्सेज में अनियमितता, Focal motor lesion को तथा रिफ्लेक्सेज का लम्बे समय तक उपस्थित रहना central motor lesion को इङ्गित करता है। बढ़ा हुआ Moro Reflex जहाँ Cerebral irritability को इंगित करता है वही इसमें कभी Cerebral depression को इंगित करता है। इसी तरह Palmar Grasp यदि बना रहे तो यह Cerebral palsy का संकेतक है।

नवजात शिशु के रिफ्लेक्स

नाम	प्रारम्भ	कब तक
Moro	जन्म से	3 माह वय तक
Stepping	जन्म से	6 सप्ताह वय तक
Placing	जन्म से	6 सप्ताह वय तक
Sucking	जन्म से	4 माह वय तक
Palmar grasp	जन्म से	6 माह वय तक
Plantar grasp	जन्म से	10 माह वय तक

1. **Stepping reflex** - Consists of movements of walking which are elicited when the infant is held upright and inclined forward with soles of feet touching a flat surface.
2. **Placing reflex** - The infant is held erect, and the dorsum of one foot is drawn along the under edge of a table top. The response consists of flexion followed by extension of the leg that is stimulated.
3. **Grasp reflex** - Grasp reflex are elicited by light pressure on the palms or on the soles of the feet.

Scanned with CamScanner

आयुर्वेद में मानसिक प्रकृतियों का बहुत विशद विवेचन मिलता है (चरकसंहिता-शारीरस्थान, अध्याय 4; सुश्रुतसंहिता-शारीरस्थान, चतुर्थ अध्याय; काश्यप-संहिता-सूत्रस्थान, अध्याय 28)। इसकी तुलना में शारीरिक एवं नाड़ीवह संस्थान के विकास का वर्णन सूत्ररूप में मिलता है। यद्यपि प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का उसमें समावेश परिलक्षित होता है।

शरीर के विभिन्न अङ्ग का प्रमाण आचार्यों ने दिया है (चरकसंहिता-विमानस्थान 8:117) यथा चरक ने स्व-अङ्गुल से शरीर की लम्बाई 84 अङ्गुलि पर्व माना है। सिर की परिधि गोलाई में 32 अङ्गुल माना है। वक्ष 24 अङ्गुल कहा है। आचार्य वाग्भट ने संक्षेप में कहा है—

'स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्द्धं वपुः पात्रं सुखायुषोः।
न च यद्युक्तमुद्रिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः' ॥ (अ.ह.शा. 3:106)

प्रत्येक मनुष्य का अपने-अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ प्रमाण का शरीर होता है, जो सुख एवं आयु का पात्र होता है। किन्तु वह शरीर अधिक निमित्तजन्य, अप्रशस्त एवं सहज अष्टौनिन्दित दोषयुक्त न हो।

इसके अतिरिक्त पूर्व में आयु-परीक्षण में वर्णित लक्षण (काश्यपोक्त लक्षणाध्याय) में काफी कुछ शारीरिक चिह्नों का वर्णन किया है।

इसी तरह से अनेक संस्कारों का वर्णन किया गया है। जो आधुनिक Mile stones के वर्णन के काफी कुछ सन्निकट हैं। यथा—

'चतुर्थे सूतिकागारादग्निस्कन्दपुरोगमान्।
मासे निष्क्रामयेद्देवान् नमस्कर्तुं स्वलङ्कृतान्' ॥ (अ.सं.उ. 1:40)
'पञ्चमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत्'। (अ.सं.उ. 1:41)
'साश्रयं सावलम्बं च कटयादीन् मर्दयेदनु' ॥ (अ.सं.उ. 1:42)
'संवत्सरादूर्ध्वं प्रतितिष्ठति, वाचं च विसृजति'। (का.शा. पृ. 66)
'बालः संवत्सरा(पन्नः) पादाभ्यां यो न गच्छति'।
(का.चि. फक्कचि. 3)

'(षष्ठे मासि पुण्याहेऽभ्यर्च्य.....
.....।6।..... ।7। ततस्तं मण्डलमध्ये तथैव स्नातमलङ्कृतमहतवाससं कुमारं प्राङ्मुखमुपवेशयेन्मुहूर्तं.....'।8।

'उपलिप्ते शुचौ देशे शस्त्रतोयाग्निवर्जिते।
उपविष्टं सकृच्चैनं चिरात् स्थापयेद् बुधः' ॥९॥ (का.खि. 12:6-9)

'चतुर्थे मासि स्नातालङ्कृतस्याहतवाससा संवीतस्य ससिद्धार्थकमधुसर्पिषा रोचनया चान्वालब्धस्य धात्र्या सहान्तर्गृहान्निष्क्रमणं देवतागारप्रवेशनं च। तत्राग्निं प्रज्वलन्तं घृताक्षतैरभ्यर्च्य ब्रह्माणमीश्वरं विष्णुं स्कन्दं मातृश्चान्यानि च कुलदैवतानि

Scanned with CamScanner

गन्धपुष्पधूपमाल्योपहारैर्भक्ष्यैश्च बहुभिर्बहुविधैः सम्पूज्य, ततो ब्राह्मणवाचनं कृत्वा, तेषामाशिषो गृहीत्वाऽभिवाद्य च गुरून् पुनः स्वमागारं प्रविशेत् ! प्रविष्टं चैनमनेन मन्त्रेणाभ्युक्ष्य भिषग्वर्तेत्' ।।

'शरच्छतं जीव शिशो ! त्व देवैरभिरक्षितः । द्विजैरप्याशिषा पूतो गुरुभिश्चाभिनन्दितः' इति ।। (का.सं.खि. 12:4-5)

उपरोक्त सन्दर्भों में वर्णित विषय यथा चतुर्थ मास में सूतिकागार से निष्कासन (नेत्रों को एक स्थान पर नियन्त्रित करने की क्षमता विकसित होने के बाद बाहर लाना, शारीरिक पुष्टि की दृष्टि से) सूर्यदर्शन, छठे माह में बैठाना, खिलौनों की ओर खिसकना, 1 वर्ष का होने पर चलना आदि विवरण उस काल के ज्ञान को इङ्गित करता है ।

मनुष्य की दशविध परीक्षा (चरकसंहिता-विमानस्थान 8:94) यह ज्वलन्त उदाहरण है कि प्रत्येक वय के लोगों के शारीरिक एवं मानसिक विकास की अच्छी तरह परीक्षा की जाय । यही परीक्षा जब बड़ों (युवा, वृद्ध) की क्षय या वृद्धि के लिए की जाती है तो बालकों में वृद्धि या विकास के Mile stone के रूप में ग्रहण की जा सकती है।

दशविध आतुर-परीक्षा

तस्मादातुरं परीक्षेत प्रकृतितश्च, विकृतितश्च, सारतश्च, संहननतश्च, प्रमाणतश्च, सात्म्यतश्च, सत्त्वतश्च, आहारशक्तितश्च, व्यायामशक्तितश्च, वयस्तश्चेति, बल प्रमाण-विशेषग्रहणहेतोः ।

1. प्रकृति
2. विकृति
3. सार
4. संहनन
5. प्रमाण
6. सात्म्य
7. सत्त्व
8. आहारशक्ति
9. व्यायामशक्ति
10. वय

(1) वृद्धि एवं विकास की गति में वृद्धि करने वाले कारक—

गर्भावस्था में—

- हार्मोन्स—मधुमेही माता में उच्च रक्त शर्करा के कारण गर्भ की भी रक्त शर्करा बढ़ती है, जिससे गर्भस्थ शिशु के पैंक्रियाज में Islet कोशिकाओं की वृद्धि

Scanned with CamScanner

(Hyperplasia) होती है । इन्सुलिन का अधिक स्राव होता है परिणामस्वरूप बड़ा शिशु (Macromia) उत्पन्न होता है ।

- पोषण

जन्म के उपरान्त—

- पोषण
- सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता
- वातावरण—बच्चे को मनोनुकूल वातावरण यदि मिलता है तो उसकी वृद्धि एवं विकास की गति अच्छी होती है ।

(2) सामान्य वृद्धि एवं विकास क्रम को प्रभावित करने वाले कारक—

- आनुवंशिक (Genetic)
- पारिवारिक (कुलज)
- क्षेत्र
- लिंग
- वातावरण
- हार्मोन्स का प्रभाव—विशेषकर शारीरिक वृद्धि (Growth) हार्मोन
- पोषण
- उच्च सामाजिक एवं आर्थिक स्तर
- ऋतुकाल का प्रभाव—वसन्त ऋतु में विकास की गति अधिक एवं ग्रीष्म ऋतु में अल्प होती है ।
- भावात्मक कारण—घर एवं वातावरणजन्य भावात्मक स्थिति भी शिशु में सीधे प्रभाव डालती है ।

(3) वृद्धि एवं विकास की गति को मन्द करने वाले कारक—

- आनुवांशिक (Genetic and Chromosomal)
  यथा—Turner syndrome, Down syndrome.
- गर्भावस्था के कारण
  1. पोषण—पाण्डु, विशेषकर लौह तत्त्व अल्पता जन्य, गर्भस्थ शिशु की वृद्धि को प्रभावित करता है । माता द्वारा धूम्रपान एवं सुरापान भी गर्भ की वृद्धि को कम करता है ।
  2. प्रसव विषयक—गर्भावस्था जन्य उच्च रक्तचाप, गर्भ विषमयता, बह्वपत्यावस्था, जीर्ण स्वरूप के मूत्रवह स्रोतस् विकार एवं हृदयरोग भी कारण है ।
  3. गर्भ में विकृति उत्पन्न करनेवाली औषधियों का प्रयोग ।
  4. रतिज रोग—यथा उपदंश, HIV, हिपेटाइटिस-बी एवं विषाणु जन्य रोग भी वृद्धि को प्रभावित करते हैं अथवा विकृति उत्पन्न करते हैं ।

Scanned with CamScanner

5. हार्मोन—थायरायड हार्मोन की कमी अस्थिकंकाल की परिपक्वता पर प्रभाव डालता है ।

- जन्म के उपरान्त के कारण
  1. पोषण
  2. संक्रमण
  3. कृमिरोग
  4. आघात—विशेषकर अस्थिभंग
  5. सामाजिक कारण—आर्थिक एवं सामाजिक विपन्नता एवं घर में आस-पास तनाव पैदा करनेवाली स्थिति ।

●

Scanned with CamScanner

अध्याय - 6
कुमारों में संस्कार

हिन्दू धर्मग्रन्थों में हिन्दू जीवन के प्रारम्भ से और मृत्यु के उपरान्त तक होने वाले कुछ विशिष्ट कर्मों को संस्कार कहा गया है। 'संस्कारो हि गुणान्तराधानम्' यह व्युत्पत्ति इस स्थल पर भी सटीक बैठती है। धार्मिक दृष्टिकोण से 16 से 40 संस्कारों का उल्लेख मिलता है, जिसमें 16 विशिष्ट हैं। उन्हें मानव जीवन के दृष्टिकोण से 3 भागों में बाँटा सकते हैं।

गर्भस्थ जीवन	बाल्यकाल	युवा एवं प्रौढ़
1. गर्भाधान	4. जातकर्म	12. समावर्तन
2. पुंसवन	5. नामकरण	13. विवाह
3. सीमन्तोन्नयन	6. निष्क्रमण	14. वानप्रस्थ
	7. अन्नप्राशन	15. संन्यास
	8. चूड़ाकर्म	16. अन्त्येष्टि
	9. कर्णवेधन	
	10. उपनयन	
	11. वेदारम्भ	

प्रथम 3 संस्कारों का प्रयोग गर्भधारण से प्रसवपूर्व के काल में होता है। इनमें से प्रथम 2 का ही उल्लेख आयुर्वेद-संहिताग्रन्थों में मिलता है। जो चिकित्सक के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इनका वर्णन 'प्रसूतितन्त्र' विषयक ग्रन्थों में देखना चाहिए।

तदुपरान्त 8 संस्कार कौमारभृत्य के क्षेत्र में आते हैं। जिसमें प्रथम 6 का वर्णन चिकित्सा के दृष्टिकोण से आयुर्वेद-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। शेष युवा एवं प्रौढ़ वर्ग के 5 संस्कारों में विवाह का ही महत्त्व चिकित्सक के लिए है, जिसका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थों में हैं। 'प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग' के ग्रन्थों में इसका वर्णन देखना चाहिए।

कुमारों में संस्कार

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस वर्ग में 8 संस्कारों का उल्लेख है।

जातकर्म

'अतोऽनन्तरं जातकर्म कुमारस्य कार्यम्। तद्यथा–मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते

Scanned with CamScanner

यथाम्नायं प्रथमं प्राशितुं दद्यात् । स्तनमत ऊर्ध्वमेतेनैव विधिना दक्षिणं पातुं पुरस्तात् प्रयच्छेत् । अथातः शीर्षतः स्थापयेदुदकुम्भं मन्त्रोपमन्त्रितम्' । (च.शा. 8:46)

'अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्तचूर्णमङ्गुल्या-ऽनामिकया लेहयेत्' । (सु.शा. 10:13)

'प्राजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत्' । (अ.ह.उ. 1:11)

'अथ अस्य जातकर्म प्राजापत्येन विधिना कुर्यात्' । (अ.सं.उ. 1:10)

हिन्दू धर्म के 16 संस्कारों में जन्म के उपरान्त जो पहला संस्कार होता है, उसे जातकर्म कहते हैं । संस्कार शब्द का अर्थ है—'संस्कारो ही गुणान्तराधानम्' अर्थात् किसी भी व्यक्ति या वस्तु के गुणों में तदनुरूप परिवर्तन करना । जिससे वह जगत् में अच्छी तरह से अपना अस्तित्व स्थिर कर सके या उस परिस्थिति एवं समाज के लिए पूर्ण ग्राह्य हो ।

जातकर्म शब्द द्योतित करता है कि शिशु माता के गर्भ से बाह्य जगत् में आने के बाद इस संस्कार के द्वारा इस जगत में अच्छी तरह अपना जीवन सुरक्षित रख सके । यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि किसी भी जीव को जीवित रखने के लिए पोषण की नितान्त आवश्यकता है । गर्भस्थ शिशु माता से ही अपना पोषण लेता है । किन्तु इस जगत् में आने के बाद उसको तुरन्त पोषण की आवश्यकता होती है, अतः इस संस्कार द्वारा बच्चे को पोषण लेने योग्य बनाया जाता है । क्योंकि पाचन संस्थान को यह कार्य प्रारम्भ करना होता है । अतः आचार्यों ने सर्वप्रथम घी, मधु एवं स्वर्ण का प्रयोग इस कार्य के लिए किया है ।

चरक—(जिस वर्ण-जाति का जो शास्त्र है, वेद है) उन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके पहले बालक को मधु एवं घृत चटायें तदुपरान्त इसी विधि से दक्षिण स्तन का दूध बालक को पिलायें । इसके बाद कलश में रखे हुए जल को मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर शिर से स्नान करायें ।

सुश्रुत—अब बालक को शीतल जल से आश्वासित करके जातकर्म करने पर मधु एवं घृत के साथ सुवर्णचूर्ण अनामिका अङ्गुली से चटायें ।

वाग्भट—प्राजापत्य विधि से बच्चे का जातकर्म करें ।

डल्हण—'जातमात्रस्य वेदोक्तं कर्म' ।

उपरोक्त उदाहरण देखने से स्पष्ट होता है कि चरक ने प्राजापत्य विधि का संक्षिप्तीकरण करके चिकित्सा क्षेत्र में उसे अपना लिया है । उसके लिए वेद के अध्ययन की आवश्यकता मात्र मन्त्र देखने तक रखी है ।

आचार्य चरक ने प्रथम दिन ही एक बार मधु एवं घृत चटाने के बाद स्तनपान कराने का विधान दिया है । परन्तु अन्य आचार्यों ने प्रथम दिन मधु, घृत एवं अनन्त (या अनन्ता—देखिए 'नवजात शिशु-परिचर्या' अध्याय, बालक का प्रथम दिन से चतुर्थ

Scanned with CamScanner

दिन पर्यन्त आहार-विधान पृ. 59), तदुपरान्त द्वितीय एवं तृतीय दिन विशिष्ट व्यवस्था, फिर चौथे दिन स्तनपान कराया है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो कुछ दिन पूर्व तक विद्वत् जन सुश्रुत एवं अष्टाङ्गसंग्रह के मतों को मानते थे। परन्तु अब चरक के दृष्टिकोण को महत्त्व देते हुए प्रथम दिन से ही स्तनपान कराना प्रारम्भ कर पियूष (Colostrum) देना उपयुक्त कहने लगे हैं।

नामकरण-संस्कार

'दशमे त्वहनि सपुत्रा स्त्री सर्वगन्धौषधैर्गौरसर्षपलोध्रैश्च स्नाता लघ्वहतशुचिवस्त्रं परिधाय पवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवती च संस्पृश्य मङ्गलान्युचितामर्चयित्वा च देवतां शिखिनः शुक्लवाससोऽव्यङ्गांश्च ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा कुमारमहतानां च वाससां सञ्चये प्राक्शिरसमुदक्शिरसं वा संवेश्य देवतापूर्वं द्विजातिभ्यः प्रणमतीत्युक्त्वा कुमारस्य पिता द्वे नामनी कारयेन्नाक्षत्रिकं नामाभिप्रायिकं च। तत्राभिप्रायिकं घोषवदाद्यन्तस्थान्तमूष्मान्तं वाऽवृद्धं त्रिपुरुषानूकमनवप्रतिष्ठितं, नाक्षत्रिकं तु नक्षत्र-देवतासमानाख्यं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा'। (च.शा. 8:50)

'ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमङ्गलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा'। (सु.शा. 10:24)

'दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः।
कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चार्चितम्॥
बिभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्लालरोचनाऽगुरुचन्दनम्।
नक्षत्रदेवतायुक्तं बान्धवं वा समाक्षरम्'॥ (अं.ह.उ. 1:22-23)

'दशमे द्वादशे वाऽह्नि गोत्राचारैः शुभैः शुभे।
सूतास्नानोत्सवं कुर्यात् पितापत्यस्य नाम च॥
दिने शततमे वाख्यां पूर्णे संवत्सरेऽथवा।
बिभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्लालरोचनागरुचन्दनम्॥
पूज्यं त्रिपुरुषानूकमादौ घोषवदक्षरम्।
अवृद्धं कृतमूष्मान्तमनरातिप्रतिष्ठितम्॥
नक्षत्रदेवतायुक्तं तदेव तु न केवलम्।
मङ्गल्यमन्तरन्तस्थं न दुष्टं न च तद्धितम्॥
पुंसो विसर्जनीयान्तं समवर्णां स्त्रियां पुनः।
विषमाक्षरमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोरमम्॥
सुखोच्चं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादभिधानवत्'। (अ.सं.उ. 1:27-30)

जन्म से दसवें दिन पुत्र के साथ प्रसूता स्त्री सर्वगन्धौषध, श्वेत सर्षप एवं लोध्र से संस्कारित जल से स्नान कर हल्के, जो फटे न हों एवं पवित्र वस्त्र धारण कर मनोनुकूल,

Scanned with CamScanner

लघु, नाना प्रकार के आभूषणों को धारण कर, माङ्गलिक वस्तुओं का स्पर्श कर, उचित देवता की पूजा कर (नक्षत्रानुरूप या कुलदेवता) शिखाधारी, श्वेतवस्त्रधारी, अव्यङ्ग ब्राह्मणों की पूजा कर, स्वस्तिवाचन कहला कर; नूतन, पवित्र, बिना फटे हुए वस्त्र से कुमार को आच्छादित कर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा में शिर कर शयन कराके प्रथम देवता को, बाद में द्विजातीयों को प्रणाम करता है, ऐसा कह कर बालक का पिता बालक के दो नाम रखे । एक नाक्षत्रिक नाम (नक्षत्र एवं चरण के अनुरूप अक्षर से) दूसरा आभिप्रायिक नाम रखे ।

आभिप्रायिक नाम रखने में आदि, मध्य, अन्त अक्षर विशिष्ट क्रम से होने चाहिए। यथा—

1. आदि में घोष वर्ण अक्षर—घोष वर्ण का तात्पर्य घोष प्रत्यय से है । 'हश: संवारा नादा घोषाश्च' । हश् प्रत्याहार—ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द ।

2. मध्य में अन्त:स्थ वर्ण अक्षर—'यणोऽन्तस्था:' । यण् प्रत्याहार में य, व, र, ल वर्ण हैं ।

3. अन्त में उष्मा वर्ण अक्षर—'शषसहा उष्माण:' । श, स, ष, ह अक्षर नाम के अन्त में हों ।

4. पर वह नाम वृद्ध रहित हो—'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्' । जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदि अ, च वृद्धिसंज्ञक (आ ऐ औ) हों उसे वृद्ध कहा जाता है, तब नाम का प्रारम्भ आ, ए, ओ, से नहीं होना चाहिए ।

तीन पुस्त का अनुकरण करने वाला नाम हो । नाक्षत्रिक नाम जिस नक्षत्र में जन्म हो उस नक्षत्र के देवता के समान अर्थ का बोधक चरण के अनुकूल दो या चार अक्षर का होना चाहिए ।

आचार्य सुश्रुत ने भी 10वें दिन नामकरण कहा है । अष्टाङ्गहृदयकार ने दस दिन पूर्ण हो जाने पर अपने कुल की आचार-विधि से सूतिकोत्थान तथा नामकरण कहा है। दसवें या बारहवें दिन नामकरण कहते हुए चरक की ही विधियों का उल्लेख प्राय: अष्टाङ्गहृदयकार ने भी किया है ।

निष्क्रमण-संस्कार

'चतुर्थे सूतिकागाराग्निस्कन्दपुरोगमान् ।
मासे निष्क्रामयेद्देवान् नमस्कर्तुं स्वलङ्कृतान्' ।। (अं.सं.उ. 1:40)

चतुर्थे मासि स्नातालङ्कृतस्याहतवाससा संवीतस्य ससिद्धार्थकमधुसर्पिषा रोचनया चान्वालब्धस्य धात्र्या सहान्तर्गृहान्निष्क्रमणं देवतागारप्रवेशनं च । तत्राग्निं प्रज्वलन्तं घृताक्षतैरभ्यर्च्य ब्रह्माणमीश्वरं विष्णुं स्कन्दं मातृश्चान्यानि च कुलदैवतानि

Scanned with CamScanner

गन्धपुष्पधूपमाल्योपहारैर्भक्ष्यैश्च बहुभिर्बहुविधैः सम्पूज्य, ततो ब्राह्मणवाचनं कृत्वा, तेषामाशिषो गृहीत्वाऽभिवाद्य च गुरून् पुनः स्वमागारं प्रविशेत् । प्रविष्टं चैनमनेन मन्त्रेणाभ्युक्ष्य भिषग्वर्तेत' ।

'शरच्छतं जीव शिशो ! त्वं देवैरभिरक्षितः ।
द्विजैरप्याशिषा पूतो गुरुभिश्चाभिनन्दितः' ।। (का.खि. 12:4-5)

चौथे मास के बच्चे को सूतिकागार से बाहर लाना चाहिए । बच्चे को अच्छी प्रकार अलङ्कृत करके अच्छे वस्त्र पहनाकर देवताओं को नमस्कार करने के लिए बाहर लायें, उसके आगे अग्नि एवं स्कन्द को लेकर चलें ।

चतुर्थ मास में उस शिशु को स्नान तथा अलङ्कार से युक्त करके नये वस्त्र पहनाकर तथा सिद्धार्थक, मधु तथा घृत से या गोरोचन से युक्त करके धात्री के साथ उसे प्रथम बार घर से बाहर निकाला जाता है तथा मन्दिर में प्रवेश कराया जाता है । वहाँ मन्दिर में प्रज्वलित अग्नि की घृत एवं अक्षत के द्वारा अभ्यर्चन करके ब्राह्मण, भगवान् विष्णु, स्कन्द, मातृकाओं तथा अन्य भी कुल देवताओं की गन्ध, पुष्प, धूप एवं माला आदि के उपहारों तथा नाना प्रकार के भक्ष्य पदार्थों द्वारा अनेकविध पूजा करके, ब्राह्मण को नमस्कार करके तथा उनसे आशीर्वाद लेकर तथा गुरुओं को अभिवादन करके पुनः लौटकर अपने घर में प्रवेश करें । घर में प्रविष्ट होने पर वैद्य उपरोक्त मन्त्र के द्वारा उसकी अभ्यर्थना करे ।

अधुना ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखने से स्पष्ट होता है कि धीरे-धीरे 4 माह में शिशु बाह्य वातावरण के दबाव आदि को सहन करने योग्य हो जाता है । उसके नेत्र वस्तु-विशेष पर स्थिर हो सकने की क्षमता रखने वाले, सूर्य की रोशनी की सह सकने वाले हो जाते हैं । शरीर विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता का विकास कर लेता है । अतः आचार्यों ने चतुर्थ मास में सूतिकागार से शिशु को निकालने का विधान कहा है ।

अन्नप्राशन एवं फलप्राशन संस्कार

'षण्मासात् चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च' । (सु.शा. 10:49)

'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत्' । (अ.ह.उ. 1:27)

'चिरान्निषेवमाणोऽन्नं बालो नातुर्यमश्नुते ।
भजेद्यथा यथा चान्नं स्तन्यं त्याज्यं तथा तथा' ।। (अ.सं.उ. 1:43)

'तस्मिन्नेव मासि विविधानां फलानां प्राशनं भिषगनुतिष्ठेत् । तद्धि दन्तजात-स्यान्नप्राशनं दशमे वा मासि प्रशस्तेऽहनि प्राजापत्ये नक्षत्रेऽभ्यर्च्य देवतां ब्राह्मणांश्च समांसेनान्नेन दक्षिणावता स्वस्ति वाच्य गोमयोपलिप्ते स्थण्डिले दर्भानास्तीर्य सुमन-सोऽवकीर्य चतुर्षु स्थानेषु गन्धमाल्यालङ्कृतान् पूर्णकलशान् स्वस्तिकांश्च स्थाप्य क्रीडनकविहितानि पूर्ववदुपकरणानि सर्वाण्येवोपकल्प्य लावककपिञ्जलतित्तिरचरणा-

Scanned with CamScanner

युधानामन्यतमस्य मांसेनान्यैश्च विचित्रसुसंस्कृतकामिकैर्व्यञ्जनैः समुदितमन्नपानं मध्ये निधाय ततो भिषक् सुतमलङ्कृतमहतवस्त्रपरिहितमनुष्ठितरक्षाविधानं कुमारं प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुखमुपवेश्याग्निं प्रज्वाल्यान्नं सर्वव्यञ्जनोपेतं गृहीत्वाऽनेन मन्त्रेण जुहुयात्'—

'यथा सुराणाममृतं नागेन्द्राणां यथा सुधा ।
तथाऽन्नं प्राणिनां प्राणा अन्नं चाहुः प्रजापतिम् ।।
तदुद्भवस्त्रिवर्गश्च लोकाश्चैव यथा ह्यमी ।
जुहोमि तस्मात्त्वय्यन्नमग्नेऽमृतसुखोपगम् ।।
प्रजापतिरनुमन्यतां स्वाहा' ।

हुतशेषस्याङ्गुष्ठमात्रं सुमृदितं कृत्वाऽऽलभ्य बालं ततोऽस्य मुखे दद्यात् त्रीणि पञ्च वा वारान् प्राश्योपस्पृशेच्चैनम्; उत्थाप्योर्ध्वं द्वादशमासिकस्यान्नमभिलषतोऽल्पशश्चेमानि दद्यादिति' । (का.खि. 12:15-18)

शास्त्रों में बच्चे को अन्न या फलरस सेवन कराने के लिए 'प्राशन' शब्द आया है अर्थात् बच्चे का प्राथमिक आहार तरल, लघु, मुलायम एवं सहज ही निगल सकने योग्य होना चाहिए ।

प्रायः सभी आचार्यों सुश्रुत एवं वाग्भट ने छठे माह में सुपाच्य, हितकारी अन्न सेवन कराने का विधान किया है । फिर धीरे-धीरे अन्न की मात्रा बढ़ाते जायें और दूध की मात्रा कम करते जायें । बालक को अग्निबलानुसार देर से अन्न देने पर बालक रोगग्रस्त नहीं होता । परन्तु आचार्य कश्यप ने इस काल में फलप्राशन कहा है—'छठे माह में बालक को विविध प्रकार के फलों का रस चटाना चाहिए । उसके बाद दन्तोत्पत्ति हो जाने पर दसवें माह में प्राजापत्य नक्षत्र के समय किसी शुभ दिन में देव तथा द्विज की अर्चना करके मांसयुक्त अन्न की दक्षिणा सहित स्वस्तिवचन करके गोबर से लिपी हुई वेदी पर दर्भ डाल कर तथा उसपर चमेली पुष्प बिखेर कर चारों ओर गन्धद्रव्य एवं मालाओं से अलंकृत किये हुए जलपूर्ण घड़े तथा स्वस्तिक आदि के चिह्नों को स्थापित करके और खिलौनों की विधि के समय बनाये सम्पूर्ण उपकरणों को पूर्ववत् तैयार करके लावा, गौरय्या, तीतर, कुक्कुट आदि में से किसी एक का मांस तथा अन्य भी नाना प्रकार के सुसंस्कृत तथा मन को प्रसन्न करनेवाले व्यञ्जनों से सिद्ध किया हुआ अन्न-पान मध्य में रखें । तदनन्तर वैद्य को चाहिए कि वह पूर्व दिशा की ओर मुख करके आभूषणों से अलंकृत, नवीन वस्त्र पहने हुए तथा जिसका रक्षाविधान किया जा चुका हो ऐसे बालक को पश्चिम दिशा में मुख करके बिठा दें । फिर अग्नि जलाकर उसमें सम्पूर्ण व्यञ्जनों की पूर्णाहुति उपरोक्त मन्त्र से दें ।

आहुति देने से बचे हुए यज्ञशेष अन्न में से थोड़ा-सा अन्न लेकर अच्छी प्रकार नरम करके बालक के मुख में 3 या 5 बार दें तथा अन्न खिलाने के बाद उसे जल का

Scanned with CamScanner

आचमन करायें । तदनन्तर 12 मास का होने पर अन्न की इच्छा करने पर उसे निम्न खाद्य पदार्थ थोड़ा-थोड़ा खाने को दें ।

'शालीनां षष्टिकानां वा पुराणानां विशेषतः ।
तण्डुलैर्निस्तुषैर्भृष्टैः क्षालितैः साधिता द्रवाः ।।
सस्नेहलवणा लेह्या बालानां पुष्टिवर्धनाः ।
गोधूमानां तथा चूर्णं यवानां वाऽपि सात्म्यतः ।।
विडङ्गलवणस्नेहैः पक्वोष्णं लेहनं हितम् ।
भृशं भिन्नपुरीषस्य कोद्रवानां(णां) निधापयेत् ।।
मृद्वीकामधुसर्पींषि दद्यात् पित्तात्मनः सदा ।
मातुलुङ्गरसोपेतं वाते सलवणाशनम् ।।
एकान्तरं द्व्यन्तरं वा देशाग्निबलकालवित् ।
यदा वा क्षुधितं पश्येत्तदैनं सात्म्यमाशयेत्' ।।

(का.सं.खि. 12:19-23)

पुराना, छिलका रहित, भुने हुए शालि एवं षष्टिक चावलों को धोकर सिद्ध किये हुए द्रव में स्नेह तथा लवण मिलाकर अवलेह बनायें । यह पुष्टिवर्धक योग है तथा सात्म्य के अनुसार गेहूँ तथा यव चूर्ण भी दें ।

विडङ्ग, लवण एवं घृत आदि स्नेह मिलाकर पकाकर बनाया हुआ उष्ण लेह हितकर होता है । मलभेद होने की अवस्था में कोदो मिलाकर देना चाहिए । पित्ताधिक्य में मुनक्का, मधु एवं घृत; वाताधिक्य में बिजौरा नीबू के रस के साथ लवणयुक्त भोजन दें ।

देश, अग्नि, बालक के शारीरिक बल तथा काल को जानने वाले व्यक्ति को चाहिए कि एक समय या दो समय छोड़कर या जब भी शिशु को भूख लगे तो उसे सात्म्य भोजन दें ।

प्रत्येक प्राणी के जीवन के लिए और वृद्धि के लिए सन्तुलित आहार की नितान्त आवश्यकता है । इसके साथ ही आहार को उपयोगी एवं ग्रहण में सुविधाजनक तथा स्वादु होना भी आवश्यक है । इस तथ्य को इङ्गित करने के लिए अन्नप्राशन का विधान किया गया है । इस विषय के स्पष्टीकरण के लिए इसे 2 भाग में बाँट सकते हैं—

(1) आहार ।

(2) आहारविधि ।

इस प्रकरण की व्याख्या इस अध्याय के अन्त में आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में दे रहे हैं ।

Scanned with CamScanner

चूड़ाकर्म-संस्कार

काश्यपसंहिता-सूत्रस्थान अध्याय 21 'चूड़ाकरणीय' अध्याय है । आचार्य कश्यप ने ही इस संस्कार का समावेश आयुर्वेद में किया है । अध्याय खण्डित होने से इसका विवरण प्राप्त नहीं होता है । चूड़ाकर्म या चूड़ाकरण से अभिप्राय प्रथम बार बालक के सिर के बालों को कटवाने से है जिसे केशच्छेदन या मुण्डन संस्कार भी कहते हैं। आश्वलायनगृह्यसूत्रा (1:17:1) के अनुसार तृतीय वर्ष में, पारस्करगृह्यसूत्र (2:1:1) के अनुसार प्रथम वर्ष में करते है ।

कर्णबेधन संस्कार

रक्षाभूषणनिमित्तं (कर्णव्यधे कृते बालो न ग्रहैरभिभूयते) बालस्य कर्णौ विध्येते ।

(सु.सू. 16:3)

रक्षा (बालग्रह से रक्षा हेतु) एवं भूषण के धारण हेतु कर्णवेधन करते हैं ।

'कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुः श्रीविवृद्धये' । (ज्योतिर्निबन्ध)
'कर्णव्यधे कृते बालो न ग्रहैरभिभूयते ।
भूष्यते तु मुखं यस्मात् कार्यस्तत् कर्णयोर्व्यधः' ।। (चक्र.)

'तौ षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनं धात्र्यङ्के कुमारधराङ्के वा कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलोभ्याभिसान्त्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे आदित्यकरावभासिते शनैः शनैर्दक्षिणहस्तेनर्जु विध्येत् । प्रतनुकं सूच्या, बहलमारया; पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य, वामं कुमार्याः; ततः पिचुवर्तिं प्रवेशयेत्' ।

(सु.सू. 16:3)

षट्सप्ताष्टममासेषु नीरुजस्य शुभेऽहनि ।
कर्णौ हिमागमे विध्येद्धात्र्यङ्कस्थस्य सान्त्वयन् ।।
प्राग्दक्षिणं कुमारस्य भिषग्वामं तु योषितः ।
दक्षिणेन दधत्सूचीं पालिमन्येन पाणिना ।।
मध्यतः कर्णपीठस्य किञ्चिन्द्गण्डाश्रयं प्रति ।
जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।।
धृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते ।
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जु लाघवात् ।
नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाधः शिरास्तत्र हि संश्रिताः' ।।

(अ.ह.उ. 1:28-32, अ.सं.उ.1:44-45)

'कदा वेध्यं कथं वेध्यं कुत्र वेध्यं कथं व्यधः' । (अपूर्ण अध्याय)

(का.सं.सू. 21, पृ. 15)

Scanned with CamScanner

कर्णवेधन का समय—आचार्य सुश्रुत ने छठे या सातवें मास में, शुक्ल पक्ष में, प्रशस्त तिथि में मुहूर्त-नक्षत्र देख कर कर्णवेधन करने को कहा है। वाग्भट ने छठे, सातवें एवं आठवें माह में शुभकाल का विधान किया है। धर्मग्रन्थों में (कात्यायनगृह्यसूत्र) तीसरा एवं चतुर्थ मास कहा गया है। दूसरा मत 6,7, 8 एवं 12वें माह का (धर्मशास्त्र) भी है। कुमारों में प्रथम दक्षिण कर्ण एवं बालिकाओं में प्रथम वाम कर्ण से कर्णवेधन करना चाहिए।

विधि—धात्री या कुमाराधार की गोदी में बैठाकर खेलते हुए बालक को प्रलोभन, आश्वासन देकर चिकित्सक अपने बायें हाथ से कर्णपाली को दायें हाथ से सूची पकड़ कर स्थान-विशेष पर एक बार में त्वरित रूप से कर्णवेध करें।

स्थल—कनपटी के मध्य में गण्डकपोल के सामानान्तर जहाँ पर बहुत बारीक त्वचा हो, सूर्य की किरणें जहाँ से आती हों उस स्थल पर महावर से सङ्केत बनाकर वेधन करें।

कर्णवेधन के अयोग्य स्थिति⇒

'नाजीर्णे न मलोद्रेके न चात्युष्णे अपि वर्धयेत्'। (अ.सं.उ. 1:48)

अजीर्णे में, मल का वेग उपस्थित होने पर एवं उष्ण काल में कर्णवेध न करें।

स्त्रीषु कर्णवेधः—

'भिन्द्यादवृद्धौ स्त्रीणान्तु पालीमन्तरपाङ्गतः।
नैव चापाङ्गयोर्बाह्यां व्यापदः स्युस्ततो ध्रुवाः'॥ (अ.सं.उ. 1:49)

स्त्रियों की पाली में यदि वेधन नहीं होता तो अन्तः अपाङ्ग में वेधन करना चाहिए। अपाङ्ग में बाह्य की तरफ छेद न करें। ऐसा करने पर रोग अवश्य ही होते हैं।

बिशेष—आचार्यों ने कर्णवेधन मुख्य रूप में 2 कार्यों हेतु बनाया है। सौन्दर्य-वर्धन एवं रक्षानिमित्त। कर्णवेधन से राक्षस-भूत-प्रेतादि से रक्षा का तात्पर्य यह हो सकता है कि कर्णवेधन में हुए आघात को सहने के लिए शरीर के रक्षार्थ कार्यकारी तत्त्वों का निर्माण होता हो। जैसा आज भी मानते हैं। शरीर इस प्रकार के छोटे आघातों से सहिष्णुता की वृद्धि करता है या भय आदि के रूप में मानसिक स्थिति पर प्रभाव डालता है। पारम्परिक चिकित्सा में श्वासरोग की चिकित्सा कुछ चिकित्सक कर्णवेधन से करते हैं और लाभ भी दर्शाते हैं। हो सकता है कि यह कर्णवेधन इस प्रकार की व्याधियों से रोगप्रतिरोधक क्षमता का भी विकास करता हो।

छिद्रवर्धन—इसके लिए पिचुवर्ति का प्रवेश कराते हैं या अपामार्ग, निम्ब एवं कार्पास के काष्ठ या सीसक आदि से बनाये हुए धतूर की पुष्पाकृति इसमें डालते हैं—

'अपामार्गं निम्बकर्पासादीनां काष्ठानामन्यतमस्य अथवा सीसकादिघटितां धत्तूर-पुष्पाकृतिं कुर्यात्'। (डल्हण)

Scanned with CamScanner

उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार

उपनयन संस्कार की धार्मिक मान्यता है। आयुर्वेद-ग्रन्थों ने इसे ग्रहण नहीं किया है। वेदारम्भ का तात्पर्य विद्याध्ययन से है। जिसकी वय धार्मिक ग्रन्थों में 5 वर्ष की आयु से कही गयी है। जिसकी आज भी मान्यता है।

संस्कारों के महत्त्व पर प्रकाश डाला जा चुका है। परन्तु इन संस्कारों का समय चिकित्सक के लिए महत्त्वपूर्ण है। जिसका संकेत नीचे तालिका में किया जा रहा है—

संस्कार	काल	विशिष्टता
1. जातकर्म संस्कार	प्रथम दिन	• प्राशन के द्वारा Sucking, Rooting एवं Swallowing reflex का परीक्षण हो जाता है।
2. नामकरण संस्कार	10वाँ दिन	• जातमात्र काल (Early neonatal age) समाप्त • शिशु का प्रथम परीक्षण काल • जन्म के समय का भार पुनः प्राप्त करना। • नाभिनाल का शुष्क होकर गिर जाना • उपशीर्षक समाप्ति की ओर। • प्राकृतिक कामला का कम होना।
3. निष्क्रमण संस्कार	चतुर्थ मास	• Moro reflex समाप्त • Sucking reflex समाप्त • गूँ, गाँ, अह शब्द करना • आवाज पर प्रतिक्रिया देना
4. फल प्राशन/अन्न प्राशन संस्कार	षष्ठ मास	• बैठना • बिस्तर पर उलटना • पापा, मामा जैसे शब्द बोलना • कनिष्ठा अंगुली एवं करतल से वस्तु पकड़ना
5. कर्णवेधन संस्कार	6-7-8 मास	• भोजन के स्वभाव में परिवर्तन • दंतोद्भेद प्रक्रिया • घुटनों के बल चलना • सामाजिक सम्बन्ध बनाना • क्रीडनक के प्रति आकर्षण
6. चूड़ाकर्म संस्कार	1 वर्ष या 3 वर्ष	• फक्क रोग निदान • बालक का चलना, बोलना, • क्षीरान्नाद अवस्था से अन्नाद में परिवर्तन • अन्नाद अवस्था • मानसिक स्थिति में वृद्धि • दूसरों के प्रति व्यवहार
7. उपनयन 8. वेदारम्भ	5 वर्ष	• सामाजिक नियमों का ज्ञान कराना • अध्ययन की योग्यता • कुमारावस्था प्रारम्भ

*

Scanned with CamScanner

दन्तजन्मिकाध्याय

आचार्य कश्यप ने दन्तजन्म प्रकरण के महत्त्व को देखते हुए इसी नाम से पूर्ण अध्याय वर्णित किया है ।

दन्तोद्भेद काल

'स दीर्घायुषोऽष्टमान्मासात् परतो वा प्रवर्तते । इतरेषां तु चतुर्थात्, ते ह्यतिबाल्ये दन्तोत्पादवेदनयातिपीडिता न सम्यक्सम्पूर्णधातुबला भवन्ति' । (अं.सं.उ.2:20)

दीर्घायुष्य बालकों में आठवें या उससे भी अधिक मास में दाँत निकलते हैं । दूसरे (मध्यमायु या हीनायु) बच्चों में दाँत चौथे मास में निकलते हैं । यदि बहुत अल्पवय में दाँत निकल आयें तो दन्तजन्म की असह्य पीड़ा से वह शिशु ठीक प्रकार से सम्पूर्ण धातु-बल वाला नहीं बन पाता ।

'चतुर्थे तु मासि दन्ता निषिक्ता दुर्बला भवन्त्याशुक्षयिणश्चामयबहुलाश्च, पञ्चमे स्यन्दनाश्च प्रहर्षिणश्चामयबहुलाश्च, षष्ठे प्रतीपाश्च मलग्राहिणश्च विवर्णाश्च घुणदन्ताश्च भवन्ति, सप्तमे द्विपुटाः स्फोटिनश्च राजिमन्तश्च खण्डाश्च रूक्षाश्च विषमाश्चोन्नताश्च भवन्ति, तथाऽष्टमे मासि सर्वगुणसम्पन्ना भवन्ति' । (का.सू. 20:8)

वाग्भट के समान ही आचार्य कश्यप ने दन्तजन्म 4 से 8 माह के मध्य माना है । परन्तु प्रत्येक मास के जन्म की कुछ विशेषताएँ बतायी हैं; यथा—

(1) चतुर्थ मास—दन्त दुर्बल, शीघ्र गिरने वाले, बहुत-से रोगों से युक्त होते हैं ।

(2) पंचम मास—दन्त हिलनेवाले, हर्ष आदि अन्य रोगों से युक्त होते हैं ।

(3) षष्ठ मास—दन्त प्रतीप (टेढ़े), मैले, विवर्ण तथा कृमि से खाये हुए होते हैं ।

(4) सप्तम मास—दन्त दो पुट जड़ वाले (एक साथ 2 दाँत निकलना), चटकनेवाले, रेखायुक्त, टूटे हुए, रूक्ष, विषम तथा आगे उभरे हुए होते हैं ।

(5) अष्टम मास—सर्वगुण सम्पन्न होते हैं ।

प्रशस्त एवं अप्रशस्त दन्त

'पूर्णता समता घनता शुक्लता स्निग्धता श्लक्ष्णता निर्मलता निरामयता किञ्चिदुत्तरोन्नतता, दन्तबन्धनानां च समता रक्तता स्निग्धता बृहद्घनस्थिरमूलता चेति दन्तसम्पदुच्यते' ।

Scanned with CamScanner

(4) **प्रशस्त दन्त या दन्तसम्पत्**—पूर्णता, समता, घनता, स्निग्धता, श्लक्ष्णता, निर्मलता, निरामयता, दुग्धदंत का कुछ उन्नत, बड़ा होना एवं दन्तबन्धन (मसूड़ों) का समान, रक्तवर्ण, स्निग्ध, बृहत्, घन, स्थिर मूलवाला होना चाहिए।

'हीनोल्बणसितासिताऽप्रविभक्तदन्तबन्धनत्वमप्रशस्तमृषयो वदन्ति'। (का.सू. 20:8)

(5) **अप्रशस्त दन्त**—दाँतो का हीन, उल्बण (अधिक), सित (एकदम श्वेत), असित एवं मसूड़ों का अलग-अलग न होना अप्रशस्त माना गया है।

दन्तोद्भेद का कारण एवं अकारण

'तत्र कुमारीणामाशुतरमल्पाबाधकरं च दन्तजन्म, सुषिरत्वाद्दंशानां मृदुस्वभावाच्च, प्रकृष्टकालमाबाधाबहुलं तु कुमाराणामाचक्षते, घनत्वाद्दंशानां स्थिरस्वभावाच्च। दन्तानां निषेकमूर्तित्वाद्भेदवृद्धिपतनपुनर्भावनिवृत्तिस्थितिपरिक्षयचलनपतनदृढदुर्बलता जातिविशेषान्निषेकात् स्वभावान्मातापित्रोरनुकरणात् स्वकर्मविशेषाच्चेत्याचक्षते महर्षयः, तथाऽन्येऽपि शरीरवृद्धिह्रासगुणदोषप्रादुर्भावाः'। (का.सू. 20:5)

कन्याओं के दाँत जल्दी निकलते हैं तथा कष्ट भी कम होता है, क्योंकि उनके दन्त सुषिर (सच्छिद्र) एवं मृदु होते हैं (प्रत्यक्ष में ऐसा नहीं है)। लड़कों के दन्त देर में निकलते हैं तथा कष्ट भी अधिक होता है, क्योंकि उनके दन्त घन एवं स्थिर होते हैं (शोध का विषय है)। दन्तनिषेक, मूर्त रूप होना, प्रकट होना, वृद्धि एवं पतन, गिरकर फिर न निकलना, स्थिर एवं क्षीण होना, हिलना, गिरना एवं दृढ़ता एवं दुर्बलता इन तथ्यों में जाति की विशेषता, निषेक, स्वभाव, माता-पिता का अनुकरण (वंश-परम्परा) तथा अपने कर्मों की अपेक्षा होती है। ऐसा प्राचीन महर्षियों का कथन है। तथा अन्य भी शरीर की वृद्धि-ह्रास, गुण-दोष उत्पन्न होते हैं।

'तत्रास्थिमज्जानौ दन्तोत्पत्तिहेतू। तदा च तयोरसम्पूर्णवीर्यत्वात् पुनः कालान्तरेण दन्तानां पतनमापूर्यमाणधातुत्वाच्च पुनरुत्थानमत एव च वृद्धानां न पुनर्दन्तोत्पत्तिः'। (अ.सं.उ. 2:21)

अष्टांगसंग्रहकार का कथन है कि दन्तोत्पत्ति का मूल कारण अस्थि एवं मज्जा है। इनके पूर्णतः पुष्ट न होने के कारण फिर से कालान्तर में दाँतों का गिरना होता है, तथा धातुओं के पुष्ट एवं अपरिपक्व होने पर फिर से दाँत का निकलना होता है। यही कारण है कि वृद्धावस्था वाले व्यक्तियों के दाँत फिर से नहीं निकलते।

'बलान्निपतितानां तु सहसा तदधिष्ठानगतधातुबीजभ्रंशात् सन्ततिव्युच्छेदाच्छोणितातिप्रवृत्त्याभिघाताच्च निस्सारितत्वात्। सिराणां पुनरनुत्पादः एतेन रोगच्युता अपि प्रायशो व्याख्याताः'। (अ.सं.उ. 2:22)

बलपूर्वक गिरे हुए दाँत (चोट आदि से) फिर उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि दाँतों के आश्रयस्थान का धातुबीज सहसा नष्ट हो जाता है। दन्त पोषण करनेवाली शिरादि में

Scanned with CamScanner

इनका सतत प्रवाह टूट जाता है । रक्तातिस्राव से शिराएँ आदि निःसार हो जाती हैं । इसीलिए चोट से गिरे दाँत फिर नहीं निकलते, शिराएँ फिर नहीं उत्पन्न होतीं । इसी तरह रोग के कारण नष्ट दाँत फिर नहीं निकलते ।

'तौ तु धातू कालक्रमेण पच्यमानौ यदा दन्ताशयमनुप्रपद्येते तदास्य किञ्चिदुत्सेधेनोर्ध्वाधोदन्तमांससङ्घट्टनादङ्गहर्षो जायते । तद्गतेन च श्लेष्मणा कण्डूत्या चुचूकं दश्यते । यद्यदालभते तत्तदास्यमानयति । मारुतश्चास्य दन्तमूलेषु मूर्च्छति । ततः स कफानुविद्धोऽस्थिमज्जास्थितः सर्वतो विसरन् सह पित्तेन धातून् मलांश्च दूषयन् विविधान्यथोदितानुपद्रवानभिनिर्वर्तयति । यदा पुनर्दन्तमांसाश्रयी केवलो विकृतः प्रबलोऽनिलः सपित्तो वास्थिमज्जानौ शोषयति तदा द्विजानामसम्भव एवेति' ।
(अ.सं.उ. 2:23-24)

अस्थि-मज्जा यह दोनों धातु कालक्रम से जब पक जाते हैं तो दन्ताशय में पहुँचते हैं । दन्तस्थल पर कुछ उभार होने से ऊपर एवं नीचे मसूड़ों के फूलने से अङ्गहर्ष होता है । मसूड़ों के श्लेष्मा के कारण कण्डु होने से बालक चूचुक को काटता है । जो भी उसे मिलता है उसे मुख में डाल लेना चाहता है, कुण्ठित वायु मसूड़ों को उभारती है । फिर अस्थि-मज्जा में स्थित वायु कुमार्गी बन कर सब तरफ फैलता हुआ, पित्त को कुपित कर साथ-साथ धातुओं को तथा मलों को दूषित कर देता है, जिससे नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं । जब दन्तमांस के आश्रय में रहने वाले इस वायु का अतिशय प्रकोप होता है तो पित्त उसके साथ सम्बद्ध होता है । उस समय दाँतों के बीजभूत अस्थि-मज्जा धातु शुष्क हो जाते हैं एवं उनकी दन्तोत्पादन शक्ति नष्ट होने के कारण बालक के दाँत नहीं निकलते हैं ।

'पृष्ठभङ्गे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे ।
दन्तोद्भेदे च बालानां न हि किञ्चिन्न दूयते' ।।
(अ.सं.उ. 2:25 एवं अ.ह.उ. 2:28)

'हनुमूलगतो वायुर्दन्तदेशास्थिगोचरः ।
यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः' ।। (अ.ह.उ. 2:62)

जब बिल्लियों की पीठ टूट जाती है, जब मोरों की शिखा निकलने का समय होता है और जिस समय बच्चों के प्रथम दाँत निकलना आरम्भ होता है, उस समय ऐसा कोई दोष या धातु नहीं होता जो दूषित न हो जाय ।

जब हनुमूल में स्थित वायु प्रकुपित होकर दन्त के स्थान की अस्थि में आ जाती है तो बच्चे के दाँत शीघ्र नहीं निकलते हैं ।

दन्तघर्षण का कारण

'रूक्षाशिनो वातिकस्य चालयत्यनिलः शिराः ।
हन्वाश्रयः प्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः' ।। (अ.ह.उ. 2:61-62)

Scanned with CamScanner

रूक्षभोजी, वातप्रकृति शिशु के शिराओं को हनु में आश्रित वायु चलाती है अत: बच्चा सोते हुए भी दाँत कटकटाता है ।[1]

दन्तजन्म एवं दन्तपात काल का सिद्धान्त

'यावन्मासस्य यो जातस्तावद्वर्षस्य सद्विजः ।
पतति प्रायशोऽष्टानां तेषां पूर्वेषु सम्भवः' ।। (अ.सं.उ. 2:24)

'यावत्स्वेव च मासेषु जातस्य सत उद्भिद्यन्ते तावत्स्वेव च वर्षेषु पतिताः पुनरुद्भिद्यन्ते' । (का.सू. 20:4)

जितने मास में दाँतों का निषेचन (गर्भ में) होता है उतने ही मास में वे फूट कर बाहर आ जाते हैं और बच्चे को जन्म के जितने मास बाद दाँत निकलते हैं उतने ही वर्षों में गिरकर वे पुनः निकल आते हैं । यह सिद्धान्त मूलरूप में आज भी यथावत् ग्राह्य है।

दाँतों के नाम, संख्या एवं भेद

'इह खलु नृणां द्वात्रिंशद्दन्ताः, तत्राष्टौ सकृज्जाताः, स्वरूढदन्ता भवन्ति, अतः शेषा द्विजाः । तत्र मध्ये द्वावुत्तरौ राजदन्तसंज्ञौ भवतः तौ पवित्रौ, तस्मात्ताभ्यां खण्डे न श्राद्धमर्हति अपवित्रो हि सः । तयोरुभयतः पार्श्वयोरपि बस्तौ, तयोरपि दंष्ट्रे, शेषाः स्वरूढा हानव्या इति चोच्यन्ते, तथाऽधस्तात्' । (का.सू. 20:4)

मनुष्यों के 32 दाँत होते हैं । इनमें 8 सकृज्जात (केवल एक बार जन्मने वाले) तथा उसी अपने स्वरूप में ही बढ़ने वाले होते हैं । शेष 24 द्विज (द्विर्जायन्ते—दो बार पैदा होने वाले) होते हैं । ऊपर की पंक्ति में बीच में 2 दाँतों का नाम राजदन्त (Central incisors) है । इन्हें पवित्र माना गया है । इनके खण्डित होने पर श्राद्ध आदि कर्म नहीं करते हैं । उन दोनों के पार्श्व में दोनों ओर बस्त (Lateral incisors) तथा इनके दोनों ओर दंष्ट्रा (Canine) होते हैं । शेष स्वरूढ़ हानव्य (Molars) होते हैं (इनकी संख्या एक जबड़े में 10 होती है ।)

'चतुर्विधं तु दन्तजन्माचक्षते सामुद्गं, संवृतं, विवृतं, दन्तसम्पदिति । तत्र सामुद्गं क्षयि, नित्यसम्पातात्, संवृतमधन्यं मलिष्ठं, विवृतं वीतमनित्यलालोपहतमसञ्छन्नदन्तत्वादाशुदन्तवैवर्ण्यकरमासन्नाबाधमिति' । (का.सू. 20:6)

चार प्रकार के दाँतों की उत्पत्ति बतायी गयी है ।

(1) सामुद्ग—बच्चों के दन्तक्षय की अवस्था में होते हैं क्योंकि उनके दाँत सदैव गिरते रहते हैं ।

(2) संवृत्—यह अप्रशस्त है । इसमें दाँत मैले होते हैं ।

(3) विवृत्—जिसमें नित्य लालास्राव होता रहता है तथा ओष्ठ द्वारा पूरे ढके न जाने के कारण मैले होते हैं एवं उनमें सदा रोग होते रहते हैं ।

(4) दन्तसम्पत्—श्रेष्ठ होते हैं । लक्षण प्रशस्त दन्त में वर्णित हैं ।

1. आजकल बच्चों का दाँत कटकटाना उदरकृमि का संकेत समझा जाता है ।

Scanned with CamScanner

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में त्रिदोष सिद्धान्त का स्थान नहीं है; उनका प्रत्येक वर्णन प्रायः प्रत्यक्ष प्रमाण पर निर्भर हैं। उनके मत से दन्तोत्पत्ति का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं—

गर्भ में ही जब जबड़ों का विकास होता है तो उसमें अधिच्छद स्तर (Epithelial Cells) की एक पट्टी सम्बद्ध हो जाती है जो दन्तोलूखल में दन्त के जन्म का कारण बनती है। मुख के अधिच्छदस्तर से एक पट्टी उत्तरहनु तथा अधोहनु के खटीकरण (Calcification) के पूर्व ही उनकी योज्यूतिकर (Mesenchyme) में स्थापित हो जाती है। गर्भ के 12वें सप्ताह में इन दन्तफलक (Dental lamina) की निर्माण-प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, तदुपरान्त दन्तफलक में 5 क्षेत्र शीघ्र बढ़ने वाले, गोल, गड्ढर जैसे बन जाते हैं। इनको योज्यूतिकर प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग मिल कर दन्तोत्पत्ति का प्रारम्भिक स्वरूप बना देते हैं। यह 5 क्षेत्र उत्तरहनु एवं अधोहनु दोनों में दोनों तरफ बनते हैं अर्थात् कुछ संख्या 20 होती हैं जो प्रारम्भिक दन्तोत्पत्ति करते हैं।

स्थायी दन्त-निर्माण की प्रक्रिया 2 वर्गों में होती है। प्रारम्भिक या अस्थायी दन्त की निर्माण-प्रक्रिया के बाद दन्तफलक से एक बन्ध-विस्तार (Band-like extension) दोनों दिशाओं में दन्तोत्पत्ति निमित्त होता है जिससे स्थायी राजदन्त (Incisors), हानव्य (Cuspid) एवं अग्रचर्वण (Premolar) को उत्पत्ति प्रायः ठीक उसी स्थल पर होती है जहाँ अस्थायी दन्त रहते हैं। इनका समय इस प्रकार है—

मध्य राजदन्त—गर्भकालीन 5वाँ मास।

द्वितीय हानव्य—10वाँ माह।

यह प्रक्रिया दन्तफलक के अग्र-विस्तारण से होती है। स्थायी चर्वण दन्त का निर्माण दन्तफलक के पश्च-विस्तारण (Backward extension) से होती है जिसका स्थान द्वितीय अस्थायी चर्वण दन्त हैं। इसके 3 क्षेत्र (Bundles) विभिन्न वय पर बनते हैं। गर्भावस्था के चतुर्थ माह में, 1 वर्ष वय पर एवं 4 तथा 5 वर्ष पर क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय चर्वणं दन्त के लिए निर्माण होता है।

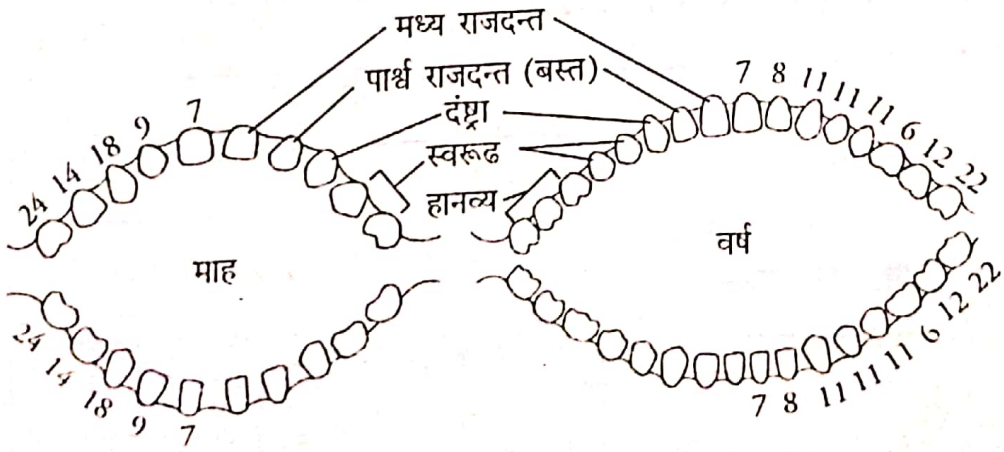

चित्र सं. 22 : अस्थायी एवं स्थायी दन्तोत्पत्ति

Scanned with CamScanner

आधुनिक चिकित्साविज्ञान में दन्तोत्पत्ति-विकृति सम्बन्धित कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

(1) Anodontia (दाँत न निकलना)—जब दन्तकलिकाएँ ही नहीं बनती हैं।

(2) Total anodontia—यह अवस्था Ectodermal dysplasia के साथ होती है ।

(3) Partial anodontia—जब दाँत निकलने का सामान्य स्थान ही गड़बड़ हो जाय या कुछ दाँत न निकलें ।

(4) Supernumary teeth—अगर Dental lamina सामान्य से अधिक दन्तकलिकाएँ बनाती हैं तो अतिरिक्त दाँत आ जाते हैं ।

(5) Natal teeth—जन्म से या जन्म के कुछ ही दिनों बाद निकलने वाले दाँत होते हैं ।

दन्त-विवर्णता

Enamel के विकास के समय उसमें बाह्य तत्त्व के मिल जाने से दन्तविवर्णता हो सकती है । रक्तक्षयता (Hemolysis accompaning erythroblastosis fetalis) के कारण कभी-कभी अस्थायी दन्त नीले या कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं तथा स्थायी प्रथम चर्वण (Molars) दन्त का अग्रभाग भी प्रभावित होता है । टेट्रासाइक्लिन के अतिशय उपयोग के कारण दन्त कुरूप, भूरे या पीत वर्ण के हो सकते हैं तथा Enamel के विकास के समय प्रयोग करने से Hypoplasia हो सकती है । यह समय गर्भकाल के चतुर्थ मास से जीवन के प्रारम्भिक 10 माह तक अस्थायी दन्त के लिए होते हैं । सभी दाँतों का एनामिल 8 वर्ष की वय तक बन जाता है या प्रारम्भ हो जाता है। 8वें वर्ष में या उसके अन्त में अन्तिम (तृतीय) चर्वण दन्त के एनामिल का बनना प्रारम्भ होता है ।

दन्तोत्पत्ति एवं गिरने का काल

अस्थायी दन्तोत्पत्ति काल

नाम	दन्तोत्पत्ति (वय माह में)		दन्त का गिरना (वय वर्षों में)	
	अधो	ऊर्ध्व	अधो	ऊर्ध्व
मध्यराजदन्त (Central incisors)	5-7	6-8	6-7	7-8
पार्श्वराजदन्त या बस्त (Lateral incisors)	7-10	8-11	7-8	8-9
दंष्ट्रा (Cuspid)	16-20	16-20	9-11	11-12
प्रथम चर्वण (Molar)	10-16	10-16	10-12	10-11
द्वितीय चर्वण (Molar)	20-30	20-30	11-13	10-12

Scanned with CamScanner

स्थायी दन्तोत्पत्ति काल

नाम	(वय वर्षों में)	
	अधो	ऊर्ध्व
मध्य राजदन्त	6-7	7-8
पार्श्व राजदन्त या बस्त	7-8	8-9
दंष्ट्रा	9-11	11-12
प्रथम (अग्र) स्वरूढ़	10-12	10-11
द्वितीय (पश्च) स्वरूढ़	11-13	10-12
प्रथम चर्वण या हानव्य	6-7	6-7
द्वितीय चर्वण या हानव्य	12-13	12-13
तृतीय चर्वण या हानव्य	17-21	17-21

दन्त-खटीकरण

(Calcification)

नाम	अस्थायी दन्त		स्थायी दन्त	
	प्रारम्भ	अन्त	प्रारम्भ	अन्त
	वय गर्भावस्था माह	वय जन्म के बाद माह	वय माह में	वय माह में
मध्य राजदन्त	5	18-24	3-4	9-10
बस्त	5	18-24	ऊर्ध्व 10-12 अधो 3-4	10-11
दंष्ट्रा	6	30-36	4-5	12-15
प्रथम स्वरूढ़	-	-	18-21	12-13
द्वितीय स्वरूढ़	-	-	24-30	12-14
प्रथम हानव्य	5	24-30	जन्म	9-10
द्वितीय हानव्य	6	36	30-36	14-16
तृतीय हानव्य	-	-	ऊर्ध्व 7-9 वर्ष अधो 8-10 वर्ष	18-25

दन्त-खटीकरण की प्रक्रिया गर्भ में तृतीय-चतुर्थ मास से प्रारम्भ हो जाती है। कुपोषण जन्य विकार, लम्बे समय की अस्वस्थता, बाल्यकाल में दोनों ही प्रकार के दन्तों

Scanned with CamScanner

के खटीकरण की प्रक्रिया में प्रभाव डालते हैं। भोजन या आहारद्रव्य में उचित मात्रा में प्रोभूजन, कैल्शियम, फास्फेट, जीवतिक्तिय, विशेष रूप से सी एवं डी तथा (Thyroid hormone) चुल्लिकाग्रन्थि अङ्गरस की उचित पूर्ति से प्रशस्त दन्त निर्माण होता है। दन्तोत्पत्ति में देरी का कारण Hypothyroidism, पोषण एवं वृद्धि के भावों में विकृति भी होती है। परन्तु दन्तोत्पत्ति के काल में काफी कुछ अन्तर होने से व्यक्ति-विशेष का सामान्य भाव, पारिवारिक प्रवृत्ति भी कारण होता है। इनके अतिरिक्त निम्न कारण भी होते हैं—Hypopituitarism, Cleidocranial dysostosis, Rickets. इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय कारण भी हैं; यथा—दन्त की स्थानविच्युति, अतिरिक्त दन्त, गाँठ (Cysts or retained Primary teeth)

विशिष्टता—अधोहनु दन्त, अपने सामने के ऊर्ध्वहनु दन्त से प्रायः पहले निकलते हैं। प्रायः लड़कियों में शीघ्रता से आते हैं। दन्तोत्पत्ति के समय कभी-कभी शोथ एवं स्पर्श असहिष्णुता हो जाती है। शिशु उद्विग्न हो जाता है। लालास्राव बढ़ जाता है। दन्तोत्पत्ति के समय मसूड़ों में बने विवर द्वितीय संक्रमण के कारण कभी-कभी कुछ अन्य लक्षण भी पैदा करते हैं। हल्का ज्वर, मुख पर दाने (Rashes) एवं हल्का अतिसार भी हो सकता है। इस काल में धार रहित कुछ कड़ी वस्तुएँ काटने के लिए शिशु को देना चाहिए।

अस्थायी दाँत के गिरने में कभी-कभी देरी भी सम्भव है। स्थायी दाँत निकलने लगे तो अस्थायी दाँत उखाड़ देना चाहिए।

दातौन

'एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन च।
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमासान्यबाधयन्॥
तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायतम्।
कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रन्थितमव्रणम्।
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम्।
अवेक्ष्यर्तुं च दोषं च रसं वीर्यं च योजयेत्॥
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः॥
तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति।
वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यं करोति च'॥ (सु.चि. 24:4-9)

दातौन की कोमल कूँची से दन्तशोधन चूर्ण के द्वारा एक-एक दाँत को पृथक्-पृथक् मसूड़ों की रक्षा करते हुए रगड़ना चाहिए। प्रथम प्रातःकाल शय्या त्याग कर 12 अङ्गुल लम्बी कनिष्ठिका अङ्गुली के समान मोटी, सीधी, बिना गाँठ वाली, व्रण तथा 2 गाँठों से रहित उत्तम भूमि में उत्पन्न, ऋतु एवं दोषानुकूल, रस-वीर्य से पूर्ण, कषाय, मधुर, तिक्त एवं कटु रस युक्त दातौन का प्रयोग करें।

Scanned with CamScanner

दन्तशोधन चूर्ण के प्रयोग से मुख-दुर्गन्धि, दाँतों का मैल एवं कफ का नाश होता है तथा निर्मलता, अन्न में रुचि एवं प्रसन्नता पैदा होती है ।

ऋतु-दोष एवं रसानुसार दातौन

ऋतु	दोषप्रकोप	रस-प्रधान दातौन	दोष	मुख का स्वाद
वर्षा	वात	मधुर - मधुक	वात	कषाय
शरद	पित्त	तिक्त - निम्ब कषाय - खदिर	पित्त	कटु
हेमन्त	कफ	कषाय - खदिर कटु - करञ्ज तिक्त - निम्ब	कफ	मधुर

दन्तशोधन चूर्ण—त्रिकटु, त्रिसुगन्धि, मधु, तैल, सैन्धव तथा तेजबल का चूर्ण उपयुक्त है । यह 10 औषधियों का संग्रह सुश्रुत ने कहा है ।

'क्षौद्रव्योषत्रिवर्गाक्तं सतैलं सैन्धवेन च ।
चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत्' ।। (सु.चि. 24:7)

दन्तधावन का निषेध

'न खादेद्गलताल्वोष्ठजिह्वारोगसमुद्भवे ।
अथास्यपाके श्वासे च कासहिक्कावमीषु च ।।
दुर्बलोऽजीर्णभक्तश्च मूर्च्छार्तो मदपीडितः ।
शिरोरुजार्तस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ।।
अर्दिती कर्णशूली च दन्तरोगी च मानवः' । (सु.चि. 24:10-12)

गला, तालु, ओष्ठ एवं जिह्वा के रोग, मुखपाक, श्वास, कास, हिक्का एवं वमन से ग्रसित, दुर्बल, अजीर्णावस्था में भोजन किये, मूर्च्छा एवं मद से पीड़ित, शिरःशूल से दुःखी, प्यासे, थके, मद्यपानी, अर्दित, कर्णशूल एवं दन्तरोगी को दातौन नहीं करनी चाहिए ।

दन्तधावन हेतु निषिद्ध वनस्पति, काण्ड

'नैव श्लेष्मातकारिष्टबिभीतधवधन्वजान् ।
बिल्वञ्जुलनिर्गुण्डीशिग्रुतिल्वकतिन्दुकान् ।।
कोविदारशमीपीलुपिप्पलेङ्गुदगुग्गुलून् ।
पारिभद्रकमम्लीका मोचक्यौ शाल्मलीं शणम् ।।
स्वाद्वम्ललवणं शुष्कं सुषिरं पूतिपिच्छिलम्' । (अ.सं.सू. 3:20-22)

Scanned with CamScanner

श्लेष्मातक, अरिष्ट (रीठा), विभीतक, धव, करीर, बिल्व, वेंत, निर्गुण्डी, शिग्रु, तिल्वक, तेंदू, कोविदार, शमी, पीलू, पीपल, हिंगोट, गुग्गुलु, पारिभद्र, इमली, सेम्हल, शाल्मली तथा शण इन वृक्षों के काष्ठ का तथा जिन वृक्षों का रस मधुर-अम्ल-लवण हों, शुष्क, नीरस एवं भीतर से पोला तथा नितान्त चिकना हो उनका प्रयोग न करें।

दन्त-दृढीकारक गण्डूषधारण

'खदिरायोवरापार्थमदयन्त्यहिमारकैः ।
गण्डूषोऽम्बुशृतैर्धार्यो दुर्बलद्विजशान्तये' ।। (अ.ह.उ. 22:107)
'दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्चं समश्नतां शीतजलानुपानम् ।
पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो दृढीभवन्त्यामरणाच्च दन्ताः' ।।
(अं.ह.उ. 39:158)

निर्बल दाँतों की शक्ति के लिए खैर, लौहभस्म, त्रिफला, अर्जुन, मेंहदी तथा विट् खैर क्वाथ का गण्डूष धारण कराये। प्रतिदिन कृष्ण तिल की 1 पल मात्रा को शीतल जल के अनुपान से लेने पर शरीर का पोषण होता है। मृत्यु पर्यन्त दाँत दृढ़ रहते हैं।

दन्तरोगों में अपथ्य

'फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् ।
तथाऽतिकठिनं भक्ष्यं दन्तरोगी विवर्जयेत्' ।। (यो.र.उ., पृ. 303)

अम्ल रस, शीतल जल, रूक्षान्न, दन्तधावन तथा अति कठिन कड़ा पदार्थ दन्त-रोगी त्याग दे।

वृक्ष-विशेष की दातौन करने का फल

'अर्के वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् ।
प्लक्षे चैवार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुरो ध्वनिः ।।
खदिरे मुखसौगन्ध्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् ।
उदुम्बरे तु वाक्सिद्धिस्त्वाम्रे त्वारोग्यमेव च ।।
कदम्बे च धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक् श्रुतिः ।
शिरीषे कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ।
अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्तिस्तथा ध्वनिः ।
दाडिभ्यां सुन्दराकारः कुकुभे कुटजे तथा ।।
जातीतगरमन्दारैर्दुःस्वप्नश्च विनश्यति' । (यो.र.पू., पृ. 56)

वृक्ष-विशेष की दातौन		फल
आम्र	-	आरोग्यता
वट	-	तेजवृद्धि
करञ्ज	-	विजय

Scanned with CamScanner

प्लक्ष	-	अर्थ, सम्पत्ति
बदरी (बैर)	-	मधुर ध्वनि
खदिर	-	मुखसुगन्धि
बेल	-	विपुल सम्पत्ति
उदुम्बर	-	वचन-सिद्धि
कदम्ब	-	धैर्य-धारण शक्ति
अर्क	-	वीर्यवृद्धि
चम्पा	-	वचन व शास्त्र में दृढता
अपामार्ग	-	धैर्य, धारण शक्ति, ध्वनि
अनार	-	आकार सौन्दर्य
अर्जुन एवं कुटज	-	आकार सौन्दर्य
चमेली, तगर, मन्दार	-	दु:स्वप्न-नाश

जिह्वानिर्लेखन

'जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च ।
तन्मलापहरं शस्तं मृदु श्लक्ष्णं दशाङ्गुलम् ।।
मुखवैरस्यदौर्गन्ध्यशोफजाड्यहरं सुखम्' । (सु.चि. 24:13)

'जिह्वानिर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा ।।
पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा ।
दशाङ्गुलं मृदुस्निग्धं तेन जिह्वा लिखेत्सुखम् ।।
तेनाऽस्यमलवैरस्यगन्धजिह्वाऽऽस्यदन्तजाः ।
नश्यन्ति रुचिवैशद्यं लघुता च भवन्ति हि' ।। (यो.र.पू., पृ. 57)

जिह्वानिर्लेखनी चाँदी, स्वर्ण या वृक्ष की टहनी से निर्मल कोमल 10 अङ्गुल लम्बी श्रेष्ठ होती है । दन्तधावन प्रकरण में कहे गये वृक्ष की टहनी ली जा सकती है । धातु में ताम्र का भी प्रयोग कर सकते हैं ।

इसके प्रयोग से मुखवैरस्य, दुर्गन्ध, शोथ एवं जाड्यता का नाश होता है । मुख, दन्त एवं जिह्वा के रोग नष्ट होते हैं । भोजन में रुचि, मुख की स्वच्छता एवं शरीर की लघुता होती है ।

आधुनिक काल की दातौन 'Tooth brush' का जन्म चीन में 1498 में हुआ । दातौन करने से जहाँ दाँतों की कसरत हो जाती है वहाँ Tooth Brush में यह कार्य नहीं हो पाता है । यह ध्यान देने योग्य तथ्य है ।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 8

लेहाध्याय

आयुर्वेद की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं । आज सम्पूर्ण विश्व संक्रामक व्याधियों की विभीषिका से जूझ रहा है । उनसे बचने के प्रयास किये जा रहे हैं । उसी प्रयास में आधुनिक टीकों का प्राविधान (Vaccination) भी किया गया है । इस स्थान पर आधुनिक सिद्धान्त से आयुर्वेद के सिद्धान्तों में टकराहट होती है ।

आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुरूप व्याधियों का प्रमुख उत्पादक कारण जीवाणु या विषाणु है । अत: वे उसके प्रतिरोधक शक्ति पैदा करने के लिए विभिन्न प्रकार के टीके लगाते हैं ।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि दोष-वैषम्य होने पर ही रोग उत्पन्न होते हैं, अत: दोषों को साम्यावस्था में रखना एवं शरीर की सामान्य रोगप्रतिरोधक क्षमता का विकास करना ही बचाव का उत्तम साधन है । इसके लिए शिशुओं में लेहन कर्म का विधान किया गया है । रोगप्रतिरोधक क्षमता जो कृत्रिम रूप से विकसित की जाती है, वह दो प्रकार की होती है—

(1) **विशिष्ट**—यह व्याधि विशेष के लिए प्रयोग होती है । यथा—पोलियो, टिटनेस, मिजिल्स आदि ।

(2) **सामान्य**—यह किसी रोग विशेष के लिए न होकर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है । लेहन कर्म एवं रसायन कर्म इसी श्रेणी में आते हैं ।

'सुख(खं)दु:खं हि बालानां दृश्यते लेहनाश्रयम्' । (का.सू.पृ. ।)

आचार्य कश्यप का कहना है कि बच्चे के सुख एवं दु:ख (सुख - आरोग्य, दु:ख - रोगावस्था) लेहन पर ही आश्रित हैं ।

लेहन कर्म के योग्य

उन बालकों का लेहन कर्म करें जिनकी माता को दूध न होता हो अथवा कम दूध होता हो या दूषित दुग्ध हो अथवा प्रसूत हो । दुष्प्रजाता (ठीक से प्रसव न हुआ हो, कष्ट सहित, शल्य-कर्मादि युक्त) या गम्भीर रूप से रोगपीड़ित माता का शिशु हो, जिनमें वात एवं पित्त दोष की प्रधानता परन्तु कफ दोषरहित हो, स्तनपान करने के बाद भी शिशु तृप्त न होता हो, दूध पीकर भी लगातार रोता हो, रात में भी न सोता हो, अधिक भोजन

Scanned with CamScanner

करता हो, जिन्हें मल-मूत्र कम आता हो; दीप्त अग्नि वाले, रोग रहित होने पर भी तनु (दुर्बल), मृदु (कमजोर) अंगों वाले तथा कृश हों, जो तीन-तीन दिन तक मल त्याग न करते हों ऐसे बालकों का लेहन कर्म करना चाहिये।

'अक्षीरा जननी येषामल्पक्षीराऽपि वा भवेत् ।
दुष्टक्षीरा प्रसूता या धात्री वा यस्य तादृशी ।।
दुष्प्रजाता भृशव्याधिपीडितायाश्च ये सुताः ।
वातिकाः पैत्तिका ये च ये च स्युः कफवर्जिताः ।।
स्तन्येन ये न तृप्यन्ति पीत्वा पीत्वा रुदन्ति च ।
अनिद्रा निशि ये च स्युर्ये च बाला महाशनाः ।।
अल्पमूत्रपुरीषाश्च बाला दीप्ताग्नयश्च ये ।
निरामयाश्च तनवो मृद्वङ्गा ये च कर्शिताः ।।
वर्चःकर्म न कुर्वन्ति बाला ये च त्र्यहात् परम् ।
एवंविधाञ्छिशूनाह लेहयेदिति कश्यपः' ।। (का.सू.पृ. 3-4)

लेहन कर्म के अयोग्य contra-indications

'.....च मन्दाग्निजठरो जनः ।
निद्रालुर्बहुविण्मूत्रः स्वल्पो यो दृढगात्रकः ।।
कल्याणमातृकोऽजीर्णी गुरुस्तन्योपसेविता(तः) ।
सुतः सर्वरसाशिन्या ऊर्ध्वजत्रुरुजान्वितः ।।
आमे ज्वरेऽतिसारे च कामलाशोथपाण्डुषु ।
हृद्रोगश्वासकासेषु गुदबस्त्युदरामये ।।
आनाहे गण्डवैसर्पे छर्द्यरोचकयो(र्बले) ।
.....हे सर्वग्रहेषु च ।।
न लेहयेदलसके नाहन्यहनि नाशितम् ।
दुर्दिनपुरोवाते नासात्म्यं नातिमात्रया' ।। (का.सू.पृ. 4)

(काश्यपसंहिता का यह अंश अपूर्ण है) मन्दाग्नि वाले, निद्रालु, बहुत मल-मूत्र का त्याग करने वाले, स्वल्प एवं दृढ़ शरीर वाले, कल्याण मातृक (सम्भवतः मातृका व्याधि से पीड़ित), अजीर्ण रोगी, गुरुस्तन्य का सेवन करने वाले, सब रसों या आहार रसों का सेवन करने वाली स्त्री के पुत्रों, ऊर्ध्वजत्रु रोगों से युक्त, आमरोग, ज्वर एवं अतिसार में या आमातिसार, ज्वरातिसार में, कामला, शोथ, पाण्डु, हृद्रोग, श्वास, कास, गुदारोग, उदररोग, आनाह, गण्ड, विसर्प, छर्दि, अरुचि.....सभी प्रकार के ग्रह रोगों में तथा अलसक में बालकों का लेहन न करें। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन भोजन करने के उपरान्त, दुर्दिन में तथा सामने से तेज जलवायु चलती हो तब भी लेहन न करायें। असात्म्य वस्तु का लेहन तथा अधिक मात्रा में लेहन न करायें।

Scanned with CamScanner

लेहन कर्म के योग्य-अयोग्य

अवस्था	योग्य	अयोग्य
1. स्तन्य	- मातृस्तन्य अभाव - अल्प स्तन्य - स्तन्यपान के बाद भी तृप्ति न होती हो ।	- गुरुस्तन्य
2. माता	- दुष्प्रजाता - गम्भीर रोग से पीड़ित मात्रा	- सर्वरस (आहार-सेवी) माता
3. अग्नि	- दीप्त अग्नि	- मन्दाग्नि, आनाह - अजीर्ण रोगी, अरुचि
4. निद्रा	- रात में भी न सोता हो ।	- निद्रालु
5. मल	- गाढ़विट्कता	- अतिसार, छर्दि
6. दोष एवं रोग	- वात-पित्त प्रधान एवं कफ दोष रहित	- ज्वर, श्वास, कास, - कामला, पाण्डु, शोथ - हृद्रोग, उदररोग, अलसक - गण्ड, विसर्प आदि - बालगृह

लेह घटक एवं प्रयोग

क्षीराहाराय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीपयस्याऽपामार्गशतावरीसारिवा-ब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धं, क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफला-सिद्धम्, अन्नादाय द्विपञ्चमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुकविडङ्गद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धं, तेनारोग्यबलमेधाऽऽयूंषि शिशोर्भवन्ति' ।

'सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ।
मत्स्याक्षकः शङ्खपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्चनम् ।।
अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कनकं वचा ।
हेमचूर्णानि कैडर्यः श्वेता दूर्वा धृतं मधु ।।
चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्धेषु चतुर्ष्वपि ।
कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्धनाः' ।।

(सु.शा. 10:45 68-70)

दूध पीने वाले बालक को सिद्धार्थक, वचा, जटामांसी, अपामार्ग, शतावरी, सारिवा, ब्राह्मी, पिप्पली, हरिद्रा, कुष्ठ एवं सैन्धव से सिद्ध किये घृत को पिलायें । क्षीरान्नाद शिशु को मधुक, वचा, पिप्पली, चित्रक एवं त्रिफला से सिद्ध तथा अन्नाद वय

Scanned with CamScanner

में दोनों पञ्चमूल, क्षीर, तगर, भद्रदारु, मरिच, मधुक, विडङ्ग, द्राक्षा, दो प्रकार की ब्राह्मी से साधित घृत का पान कराने से आरोग्यता, बल, मेधा एवं आयु की वृद्धि होती है।

अच्छी तरह से तैयार किया सुवर्ण चूर्ण, कुष्ठ, मधु, घृत एवं वचा; **अथवा**—मत्स्याक्षक, शंखपुष्पी, मधु, घृत एवं सुवर्ण; **अथवा**—अर्कपुष्पी, मधु, घृत, सुवर्ण एवं वचा; **अथवा**—सुवर्ण चूर्ण, कैडर्य, श्वेतदूर्वा और घी से लेहन करने पर ये शिशु के शरीर, मेधा, शक्ति एवं बुद्धि को बढ़ाने वाले हैं। (इनमें से किसी एक योग का प्रयोग करना चाहिए।)

काश्यपोक्त लेह

'द्रव्याणां लेहनीयानां विधिश्चैवोपदेक्ष्यते।
विघृष्य धौते दृषदि प्राङ्मुखी लघुनाऽम्बुना॥
आमथ्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेत् कनकं शिशुम्।
सुवर्णप्राशनं ह्येतन्मेधाग्निबलवर्धनम्॥
आयुष्यं मङ्गलं पुण्यं वृष्यं वर्ण्यं ग्रहापहम्।
मासात् परममेधावी व्याधिभिर्न च धृष्यते॥
षड्भिर्मासैः श्रुतधरः सुवर्णप्राशनाद्भवेत्'। (का.सू.पृ. 4-5)

पूर्व दिशा में मुँह करके धोये हुए पत्थर पर थोड़ा पानी के साथ स्वर्ण को घिस कर उसमें मधु एवं घृत मिलाकर चटायें। यह स्वर्णप्राशन कहलाता है, जो कि मेधा, अग्नि एवं बल को बढ़ाने वाला है। यह आयु को देने वाला, कल्याणकारक, पुण्यकारक, वृष्य, वर्ण्य तथा ग्रहबाधानाशक है। सुवर्णप्राशन से बालक एक मास के अन्दर मेधा युक्त हो जाता है, व्याधियों से आक्रान्त नहीं होता, 6 माह में श्रुतधर हो जाता है (सुनकर याद कर लेने वाला हो जाना—श्रुतधर कहलाता है)।

'ब्राह्मी मण्डूकपर्णी च त्रिफला चित्रको वचा।
शतपुष्पाशतावर्यौ दन्ती नागबला त्रिवृत्॥
एकैकं मधुसर्पिर्भ्यां मेधाजननमभ्यसेत्।
कल्याणकं पञ्चगव्यं मेध्यं ब्राह्मीघृतं तथा'॥ (का.सू.पृ. 5)

ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, त्रिफला, चित्रक, वचा, शतपुष्पा, शतावरी, दन्ती, नागबला एवं त्रिवृत् इनको पृथक्-पृथक् मधु एवं घृत के साथ मेधावृद्धि के लिए प्रयोग करें तथा मेधावर्धनार्थ कल्याणकघृत, पञ्चगव्यघृत एवं ब्राह्मीघृत से भी लेहन कराना चाहिए। इन घृतयोगों के विषय में ज्ञान अन्य संहिताओं से होता है। क्योंकि काश्यपसंहिता का बहुत-सा अंश खंडित है।

कल्याणक घृत

चरकसंहिता के उन्माद-चिकित्सा में कल्याणकघृत का पाठ इस प्रकार है—

Scanned with CamScanner

'विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरा नतं रजन्यौ द्वे सारिवे द्वे प्रियङ्गुकमा ।।
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेशरम् ।
तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ।।
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ।।
चतुर्गुणे जले सम्यग्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्देऽनले क्षये ।।
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ।।
कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगदेषु च ।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ।।
शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहविनाशनम् ।।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च' ।
इति कल्याणकं घृतम् ।। (च.चि. 9:35-41)

विशाला, त्रिफला, कौन्ती (कान्ता-मेउड़ी बीज), देवदारु, एलुआ, स्थिरा, तगर, हरिद्रा, सारिवा दोनों, प्रियङ्गु, नीला कमल, एला, मञ्जिष्ठा, दन्ती, दाड़िम, केशर, तालीशपत्र, बृहती, मालती का नूतन पुष्प, विडङ्ग, पृश्निपर्णी, कुष्ठ, चन्दन और पद्मक—इन द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष लेकर उसका कल्क बनायें। एक प्रस्थ गोघृत, चतुर्गुण जल देकर विधिपूर्वक घृतपान करायें।

प्रयोग—अपस्मार, ज्वर, कास, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर, छर्दि, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, कण्डू, पाण्डु, आमदोष, उन्माद, विषविकार, प्रमेह, भूतोन्माद, गद्गद वाणी, मानसिक दौर्बल्य आदि रोगों में तथा स्त्रीवन्ध्यत्व में लाभकर है। आयु एवं बलवर्धक है। अलक्ष्मी, पापरोग, भूत प्रेतबाधा नाशक, सर्वग्रहबाधा नाशक है। पुंसवन कर्म में भी श्रेष्ठ है।

अष्टाङ्गहृदयकार द्वारा वर्णित शिशुकल्याणक घृत (अ.हृ.उ. 1:42), अष्टाङ्ग-संग्रहकार द्वारा वर्णित ब्राह्मीघृत (अ.सं.उ. 1:69) प्रयोग वर्णन सहित दोनों एक ही योग हैं। काश्यप ने इन्हीं घटकों से अभय घृत तथा योगरत्नाकर ने इन्हीं घटकों से अष्टमङ्गल घृत (वा.रो.पृ. 448) वर्णित किया है।

घटक—'ब्राह्मीसिद्धार्थकवचासारिवाकुष्ठसैन्धवैः ।
सकणैः साधितं पीतं.....' ।। (अ.हृ.उ. 1:42)

ब्राह्मी, सर्षप, वचा, सारिवा, कुष्ठ, सैन्धव, पिप्पली एवं घृत सिद्ध करें।

Scanned with CamScanner

प्रयोग—

'वाङ्मेधास्मृतिकृद् घृतम् ।
आयुष्यं पाप्मरक्षोघ्नं भूतोन्मादनिबर्हणम्' ।। (अ.ह.उ. 1:42)

'न पिशाचा न रक्षांसि न यक्षा न च मातरः ।
प्रबाधन्ते कुमारं तं यः प्राश्नीयादिदं घृतम्' ।। (का.लेहा.सू.पृ. 5)

'सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत् प्रातर्दिने दिने ।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ।।
न पिशाचा न रक्षांसि न भूतो न च मातरः ।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामाष्टमङ्गलम् ।।
बलिशान्तीष्टिकर्माणि कार्याणि गृहशान्तये' । (यो.वा.रो.चि.पृ. 448)

'मेध्यं घृतमिदं सिद्धपातव्यञ्च दिने दिने ।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ।।
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम्' ।। (चक्र.वा.रो.चि. 74:76)

यह घृत बुद्धि, मेधा, स्मृति बढ़ाने वाला, आयुष्य, पापनाशक, रक्षोघ्न एवं भूतोन्माद नाशक है । पिशाच, राक्षस, यक्ष एवं मातृकाओं से रक्षा करता है ।

पञ्चगव्य घृत

'गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं पिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम्' ।। (च.चि. 10:17)

गाय के गोबर का रस, दधि, दुग्ध, मूत्र एवं घृत इन सभी को समभाग लेकर विधिपूर्वक पका कर घृत का सेवन कराने से अपस्मार, कामला तथा ज्वर का नाश होता है ।

ब्राह्मी घृत

इसी प्रकरण में चरक ने इसका भी उल्लेख किया है । अष्टांगसंग्रहकार का मत ऊपर कहा जा चुका है ।

'ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पाभिरेव च ।
पुराणं घृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित्' ।। (च.चि. 10:23)

ब्राह्मीस्वरस, वचा, कुष्ठ, शङ्खपुष्पी इन प्रत्येक के कल्क के साथ पुराने गोघृत का विधिपूर्वक पाक करें । सिद्ध घृत उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार तथा पापजन्य रोग नाशक है ।

'समङ्गा त्रिफला ब्राह्मी द्वे बले चित्रकस्तथा ।
मधु सर्पिरिति प्राश्यं मेधायुर्बलवृद्धये' ।। (का.सू.लेहा.पृ. 5)

Scanned with CamScanner

मेधा, आयु तथा बल वृद्धि के लिए समङ्गा, त्रिफला, ब्राह्मी, बला (दो प्रकार की) तथा चित्रक को समभाग लेकर मधु तथा घृत से चटाना चाहिए ।

'कुष्ठं वटाङ्कुरा गौरी पिप्पल्यस्त्रिफला वचा ।
ससैन्धवैर्घृतं पक्वं मेधाजननमुत्तमम्' ।। (का.सू.लेहा.पृ. 5)

कुष्ठ, वटांकुर, गौर सर्षप, पिप्पली, त्रिफला, वचा एवं सैंधव सिद्ध घृत उत्तम मेधाजनक हैं ।

संवर्धन घृत

'खदिरः पृश्निपर्णी च स्यतृ(न्दनः) सैन्धवं बले ।
केवुकेति कषायः स्यात् पादशिष्टो जलाढके ।।
अर्धप्रस्थं पचेदत्र तुल्यक्षीरं घृतस्य तु ।
घृतं संवर्धनं नाम लेह्यं मधुयुतं सदा ।।
निर्व्याधिर्वर्धते शीघ्रं संसर्पत्याशु गच्छति ।
पङ्गुमूकाश्रुतिजडा युज्यन्ते चाशु कर्मभिः' ।। (का.सू.लेहा.पृ. 6)

खदिर, पृश्निपर्णी, स्यन्दन, सैन्धव, बला एवं केबुक—इनका एक आढ़क जल में कषाय बनायें । इसमें समभाग दुग्ध, ½ प्रस्थ घृत डालें तथा घृतपाक विधि से पकायें । मधु मिलाकर इस घृत से लेहन करे । इस संवर्धन घृत के सेवन से शिशु निरोग रहकर वृद्धि को प्राप्त होता है, शीघ्र चलने लगता है; पङ्गु, मूक, अश्रुति एवं जड़ बालक शीघ्र ही उन क्रियाओं को करने लगता है ।

ब्राह्मी घृत

सम्भवतः यही नाम होना चाहिए । क्योंकि सर्वप्रथम मात्रा में यही घटक है । श्लोक एवं अध्याय यहीं से अपूर्ण तथा खण्डित है, अतः मात्र उद्धरण के लिए श्लोक दिया जा रहा है—

'स्वरसस्याढके ब्राह्म्या घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
स(वत्सा)ऽजागोपयसामाढकाढकमावपेत् ।।
त्रिफलांऽशुमती द्राक्षा वचा कुष्ठं हरेणवः ।
पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।।
त्वक्पत्रबालकोशीरचन्दनोत्पलपद्मकम् ।
शतावरी नागबला दन्ती पाठा प्रियङ्गुका ।।
देवदारु हरिद्रे द्वे जीवनीयश्च यो गणः ।
विडङ्गो गुग्गुलुर्जातिः·····।।
·····।।
·····'। (का.सू.लेहा.पृ. 6)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्ग घृत

'वचेन्दुलेखामण्डूकीशङ्खपुष्पीशतावरीः ।
ब्रह्मसोमामृताब्राह्मीः कल्कीकृत्य पलांशिकाः ।।
अष्टाङ्गं विपचेत्सर्पिः प्रस्थं क्षीरचतुर्गुणम् ।
तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत्' ।। (अ.ह.उ. 1:43-44)

वचा, बाकुची, मण्डूकपर्णी, शतावरी, ब्राह्मी, सोम, अमृता और ब्राह्मी—यह प्रत्येक 1-1 पल लेकर कल्क बनाकर चौगुने दुग्ध में तथा एक प्रस्थ घृत में पकायें। यह अष्टाङ्ग घृत पीने पर धन्य, आयुष्य, वाणी, मेधा, स्मृति एवं बुद्धि कारक है।

सारस्वत घृत

'अजाक्षीराभयाव्योषपाठोग्राशिग्रुसैन्धवैः ।
सिद्धं सारस्वतं सर्पिर्वाङ्मेधास्मृतिवह्निकृत्' ।। (अ.ह.उ. 1:45)

अभया, व्योष (त्रिकटु), पाठा, शिग्रु, सैन्धव से सिद्ध अजादुग्ध में घृतपाक कर बनाया गया घृत वाणी, मेधा, स्मृति एवं अग्नि को बढ़ाता है। इसका नाम सारस्वत घृत है। अष्टाङ्गसंग्रह में भी इस घृत का वर्णन है। परन्तु घटक आदि भिन्न हैं—

'त्रिफला लक्ष्मणाऽनन्ता समङ्गा शारिवा वचा ।
ब्राह्मी पाठा द्विबृहती द्विस्थिरा द्विपुनर्नवम् ।।
सहदेवा खेर्वल्ली पयस्या गिरिकर्णिका ।
तोयकुम्भे पचेदेतत् पलाशं पादशेषितम् ।।
तेन कौन्तीवचाकुष्ठकृष्णासर्षपसैंधवः ।
नीरुक्सरूपवत्सायाः संयुक्तं पयसा च गोः ।।
पुष्ययोगे घृतप्रस्थं सहेमशकलं शृतम् ।
पानाभ्यञ्जनतो मेधास्मृत्यायुःपुष्टिबुद्धिदम् ।।
रक्षोघ्नं च विषघ्नं च सारस्वतमिदं घृतम्' । (अ.सं.उ. 1:70)

त्रिफला, लक्ष्मणा, अनन्ता (दूर्वा), समंगा, सारिवा, वचा, ब्राह्मी, पाठा, बृहती-द्वय, स्थिराद्वय, पुनर्नवाद्वय, सहदेवी, वल्ली, पयस्या और गिरिकर्णिका—इनको 1-1 पल (4-4 तोला) लेकर 1 कुम्भ जल (1024 तोला) में पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में कौन्ती, वचा, कुष्ठ, कृष्णा, सर्षप तथा सैन्धव का कल्क तथा निरोग बछड़े के सदृश रङ्गवाली गाय का दूध तथा स्वर्ण(भस्म ?) मिलाकर पुष्य नक्षत्र में 1 प्रस्थ घृत में पकायें। इसके पान व अभ्यङ्ग से मेधा, स्मृति, आयु की वृद्धि तथा पुष्टिकारक है। रक्षोघ्न तथा विषनाशक यह सारस्वत घृत है।

वचादि घृत

'वचाऽमृताशटीपथ्याशङ्खिनीवेल्लनागरैः ।
अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद् गुणैः' ।। (अ.ह.उ. 1:46)

Scanned with CamScanner

वचा, अमृता, शटी, पथ्या, शंखिनी, विडङ्ग, नागर एवं अपामार्ग से सिद्ध घृत भी सारस्वत घृत के समान गुणकारी है ।

वचादि चूर्ण

'वचायष्ट्याह्वसिन्धूत्थपथ्यानागरदीप्यकैः ।
शुद्ध्यते वाग्घविर्लीढैः सकुष्ठकणजीरकैः' ।। (अ.ह.उ. 1:49)

वचा, यष्टीमधु, सैन्धव, पथ्या, शुण्ठी, दीप्यक (यमानी,) कुष्ठ, पिप्पली तथा जीरक का चूर्ण भी चाटने से वाणी निर्मल हो जाती है ।

'हेम श्वेतवचा कुष्ठमर्कपुष्पी सकाञ्चना ।
हेम मत्स्याक्षकः शङ्खः कैडर्यः कनकं वचा ।।
चत्वार एते पादोक्ताः प्राशा मधुघृतप्लुताः ।
वर्षं लीढा वपुर्मेधाबलवर्णकराः शुभाः' ।। (अ.ह.उ. 1:47-48)

वाग्भट के मतानुसार 4 योग जो स्वर्णयुक्त होते हैं, इनका वर्ष पर्यन्त लेहन कराने से शरीर, मेधा, बल एवं वर्ण की वृद्धि होती हैं; यथा—

1. स्वर्ण, श्वेत वच एवं कूठ ।
2. स्वर्ण एवं अर्कपुष्पी ।
3. स्वर्ण, मत्स्याक्षक एवं शंखपुष्पी ।
4. स्वर्ण, कैडर्य (पर्वतीय निम्ब) एवं वचा ।

इन चारों में से कोई भी एक घृत एवं मधु से मिलाकर वर्ष भर लेहन कराना चाहिए ।

अष्टाङ्गसंग्रहोक्त लेह-संग्रह

'आरग्वधादिनिर्यूहे शृतं शीतवसन्तयोः ।
वत्सकादिप्रतीवापं कुमारं प्राशयेत् घृतम् ।।
ग्रीष्मे वातातपस्वेदैर्बालः क्लाम्यत्यतो हिमम् ।
प्रातरेव पिबेद्दुग्धं जीवनीयगणैः शृतम् ।।
सीता घृताढ्यान् सक्तूंश्च लिह्यान्न त्वेव पीतकम् ।।
नात्याम्बुपायी लिह्याद्वा घृतं सात्म्यीघृतं शृतम् ।
काकोलीशर्करामेदातुकायष्ट्याह्वजीवकैः ।।
कुटन्नटेन मूर्धानं लिम्पेदन्यैश्च शीतलैः ।।
रास्ना सरलवर्षाभूहिङ्गुसैन्धवदारुभिः ।
सर्पिर्विदार्यादि जले साधितं लेहयेच्छिशुम् ।।
प्रपौण्डरीकं मधुकं सूप्यपर्ण्यौ दुरालभा ।
प्रियालमज्जाकाकोलीविदारीकट्फलामृताः ।।
द्राक्षाजशृङ्गी दुग्धीका क्षीरशुक्ला हयाह्वया ।।

Scanned with CamScanner

शृङ्गीमधूककुसुममेदर्षभकजीवकम् ।
एभिः क्षीरघृतं सिद्धं लिह्यात् बालो घनात्यये' ।।

(अ.सं.उ. 1:64-68)

उपरोक्त लेहों का वर्णन आचार्य वाग्भट ने ऋतुओं के दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर किया है ।

(1) शीतकाल व वसन्त ऋतु में उपयोगी—आरग्वधादि गण के क्वाथ में वत्सकादि गण की औषधि का कल्क मिलाकर, घृत सिद्ध कर कुमार का प्राशन करें ।

(2) ग्रीष्म ऋतु में—इस काल में शिशु वात, धूप तथा स्वेद से पीड़ित रहता है अत: प्रात:काल ही जीवनीयगणौषधि से सिद्ध शीतल दूध पिलायें अथवा प्रचुर मात्रा में चीनी एवं घृत में सत्तू दे । परन्तु सत्तू का मन्थ नहीं दें ।

(3) विशेष अवस्था—जो बालक अधिक जल पीता हो उसे घृत न चटायें । जिसे घृत सात्म्य हो उसे काकोली, शर्करा, मेदा, वंशलोचन, मधुयष्टी तथा जीवक सिद्ध घृत दीजिए । ग्रीष्मकाल में शिशु के सिर पर केवड़ा, मोथा आदि अन्य शीतल द्रव्यों का लेप करें ।

विदार्यादिगण के क्वाथ में रास्ना, सरल, वर्षाभू, हिंगु, सैन्धव तथा देवदारु के कल्क के द्वारा सिद्ध घृत बच्चे को चटायें ।

(4) शरद्ऋतु में—पुण्डरीक, मधुक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, धमासा, चिरौंजी, काकोली, विदारी, कट्फल, अमृता, द्राक्षा, अजशृंगी, दुग्धिका, क्षीरशुक्ला, अश्वगन्धा, शृङ्गी, मधूक, कुसुम, मेदा, ऋषभक एवं जीवक—इनसे क्षीरघृत सिद्धकर बालक का लेहन करे ।

अष्टाङ्गसंग्रहोक्त ब्राह्मीघृत तथा सारस्वत घृत का वर्णन इसी अध्याय में पहले ही किया जा चुका है ।

'लीढ्वा सघृतक्षौद्रं वचाहेमरजोऽल्पशः ।
संवत्सरं परं मेध्यं रक्षोघ्नं वाग्निवर्धनम्' ।। (अ.सं.उ. 1:71)

एक वर्ष तक वच तथा स्वर्णभस्म को अल्प मात्रा में घृत तथा शहद के साथ चटाने से मेधा एवं वाणी बढ़ती है, राक्षसों से रक्षा होती है ।

'वयस्था पिप्पली कुष्ठं हरिद्रा शारिवा वचा ।
मांसी कैडर्यमित्येतच्चूर्णं बाह्मीरजः समम् ।।
लीढ्वाऽऽज्येन शिशुर्वर्षं भवत्यपलितोऽव्ययः ।
बलवान् श्रुतसम्पन्नः शतायुः स्थिरयौवनः ।।
प्रातः प्रातरिमं लेहं धात्रीं चास्यावलेहयेत् ।
ब्राह्मीवद्योजयेद्दूर्वां मूर्वां ब्रह्मसुवर्चलाम् ।।

Scanned with CamScanner

लक्ष्मणां श्वेततक्कारीमव्यण्डां गौरसर्षपाम् ।
सहस्रवीर्यां फलिनीं पक्वं च बृहतीफलम् ।।
रोहिषं चेत्यमी प्राशाः पृथग्द्वादश कीर्तिताः ।
महताप्युपयोक्तव्या नरेण नियतात्मना' ।। (अ.सं.उ. 1:71-73)

हरीतकी, पिप्पली, कूठ, हरिद्रा, सारिवा, वचा, जटामांसी तथा कैडर्य का चूर्ण—इनको समान भाग में लेकर घृत के साथ एक वर्ष तक बच्चे को चटायें । इससे शिशु बलवान्, श्रुतसम्पन्न, शतायु, स्थिर यौवन वाला तथा निरोग रहता है । इस अवलेह में से ब्राह्मी के स्थान पर निम्न 11 औषधियों में से किसी 1 का चूर्ण औषधियों के बराबर मिलाकर घृत के साथ चटाने से जितेन्द्रिय रहकर यौवन काल में लाभ कराता है । इस प्रकार यह 12 अवलेह हैं । दूर्वा, मूर्वा, ब्रह्मसुवर्चला, लक्ष्मणा, श्वेत कण्टकारी, अव्यण्डा, श्वेत सर्षप, सहस्रवीर्या, फलिनी, बड़ी कटेरी का पका फल तथा रोहिष ।

कुमारकल्याण रस एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता

सिन्दूरं मौक्तिकं हैम व्योमायो हेममाक्षिकम् ।
कन्यारसेन सम्मर्द्य कुर्यान्मुद्गमिता वरी ।। (भै.र. 71:116)

घटक द्रव्य—1. रससिन्दूर, 2. मुक्तापिष्टी, 3. स्वर्णभस्म, 4. अभ्रक भस्म, 5. लौह भस्म तथा 6. स्वर्णमाक्षिक भस्म—उपरोक्त सभी द्रव्य समभाग लेकर घृतकुमारी स्वरस के साथ मर्दन कर वटी का निर्माण करें ।

शास्त्रों में ज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, सर्वग्रहरोग, स्तन्य द्वेष, कामला, अतिसार, दौर्बल्य एवं पाचकाग्नि की विकृति में लाभप्रद बताया गया है ।

अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिन बच्चों को बराबर ज्वर कास, अतिसार, प्रतिश्याय जैसी व्याधियाँ होती हैं और जिसका शरीर दुर्बल रहता है, उन्हें 2 माह तक कुमारकल्याणरस देने से इस तरह की व्याधियाँ पुनः नहीं होती । बी.सी.जी. वैक्सीन के कारण कक्षा में, लसिका ग्रन्थि के शोथ, परिपाक एवं स्राव होने की दशा में सितोपलादि के साथ इसको देने से निश्चय लाभ होता है । श्वसनक ज्वर (Pneumonia) में किसी भी एण्टीबायोटिक की अपेक्षा श्रेष्ठ परिणाम मिलता है । उपरोक्त अनुभव लेखक के द्वारा किये गये हैं ।

मात्रा निर्धारण—रस औषधि होने के कारण इसकी मात्रा पर अत्यधिक ध्यान देना चाहिए । 3 से 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में प्रयोग करें ।

रोगप्रतिरोधक क्षमीकरण

जैसा कि हम पूर्व में चर्चा कर चुके हैं कि आयुर्वेदसंहिताकारों ने शिशुओं में रोग से बचाव हेतु शरीर में रोगप्रतिरोधक क्षमता पैदा करने के लिए लेहन कर्म का विधान

Scanned with CamScanner

किया है। आधुनिक काल में इस कर्म के लिए विभिन्न प्रकार के मसूरण (Vaccination) किये जाते हैं। जिसके अन्तर्गत चिकित्सकीय विधि से नियन्त्रण में रखकर शरीर में व्याधि लक्षण उत्पन्न करके रोगप्रतिरोधक क्षमता का विकास करते हैं। आधुनिक भाषा में इसे "Immunity" कहते हैं। तात्पर्य यह है कि रोगप्रतिरोधक क्षमता का विकास किसी भी विधि से करना "Immunity" के अन्तर्गत आता है। प्रसङ्गवश "Immunity" का वर्णन यहाँ संक्षेप में दे देना उचित प्रतीत होता है।

रोगप्रतिरोधक क्षमता (Immunity) को उसके उत्पन्न होने की प्रक्रिया के आधार पर कई भागों में बाँट सकते हैं—

(1) **सहज या प्राकृतिक** (Innate or Natural)—यह वंशानुगत परम्परा से ही पैदा हो जाती है। विशिष्ट योनि, जाति, कुल या व्यक्ति में स्वयम्भू होती है; यथा—

1. जातिगत—विभिन्न जातियों में विशिष्ट व्याधि से स्वयमेव होने वाली रोग-प्रतिरोधक क्षमता; यथा—पशुमहामारी Rinderpest नामक व्याधि से मानव प्रभावित नहीं होता, परन्तु चौपाये प्रभावित होते हैं। Salmonella typhi (अन्नविषाणु) एवं Vibrio cholerae (विसूचिकाविषाणु) से पशु प्रभावित नहीं होते हैं।

2. कुलज (Racial)—यह भी विशिष्ट कुलों में एक ही जाति में पायी जाती है; यथा—यहूदी कुल में राजयक्ष्मा के लिए रोगप्रतिरोधक क्षमता होती है, वहीं पर निग्रो कुल में इस व्याधि को ग्रहण कर लेने की विशिष्ट क्षमता होती है।

3. व्यक्तिगत—यह एक व्यक्ति एवं दूसरे व्यक्ति में विभिन्नता रखती है। विभिन्न संक्रमणों से Lysozyme (कीटाणुनाशक किण्व जैसे आँसू में) आमाशयिक द्रव, शरीर से होने वाले विभिन्न स्राव एवं स्वस्थ त्वचा बचाती है। अच्छा स्वास्थ्य भी विभिन्न संक्रमणों से रक्षा करता है। जबकि कुपोषण, क्लान्ति, सुरा, जीवतिक्तिय 'सी' की कमी आदि से शरीर की सहिष्णुता कम होती है।

(2) **कृत्रिम या प्राप्त की गयी रोगप्रतिरोधक क्षमता**—अर्थात् वह शक्ति जो जीवन ग्रहण करने के बाद मानव प्राप्त करता है।

1. क्रियाशील (Active)—इस विधि के अन्तर्गत सूक्ष्म जीवाणु अथवा विष (Toxins) को शरीर में प्रवेश कराते हैं जिससे शरीर की कोशिका उसके विरुद्ध प्रतिद्रव्य (Antibodies) पैदा करती हैं जो उस व्यक्ति की उस रोग से रक्षा करता है। यथा—चेचक, आंत्रिक ज्वर के लिए रक्षात्मक मसूरण।

2. मन्द रोगप्रतिरोधक क्षमता (Passive)—इस विधि के अन्तर्गत पहले से ही तैयार किये गये प्रतिद्रव्य "Antibodies" को शरीर में डाला जाता है। शरीर की कोशिका इस प्रकार की सहिष्णुता पैदा करने में कोई विशेष क्रियाशीलता नहीं दिखाती है; यथा—धनुर्वात (Antitetanus serum), रोहिणी (Antidiptheric serum)।

Scanned with CamScanner

इन दोनों प्रकार की Immunity को पुन: प्राकृतिक एवं कृत्रिम के भेद से वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(1) प्राकृतिक क्रियाशील (Natural active immunity)—जब किसी व्याधि के शरीर में हो जाने के बाद शरीर में रोगप्रतिरोधक क्षमता का विकास हो जाता है; यथा—चेचक ।

(2) कृत्रिम क्रियाशील (Artificial active immunity)—इस विधि में कृत्रिम रूप से रोग- प्रतिरोधक क्षमता जीवाणु या उनके प्रतिजन (Antigen) अथवा विषाणु (Viruses) या उनके उत्पन्न द्रव (Products) जीवित या मृत या विष (Toxins) को शरीर में प्रवेश कराके प्राप्त करते हैं । यथा—बी.सी.जी., आंत्रिक ज्वर, धनुर्वात आदि।

(3) प्राकृतिक मन्द रोगप्रतिरोधक क्षमता (Natural passive immunity)—नवजात शिशु इस प्रकार की शक्ति अपनी माँ के द्वारा प्राप्त करता है। प्रतिद्रव्य (Antibodies) माता से बच्चे में अपरा के द्वारा अथवा माता के दूध, पियूष (Colostrum) के द्वारा पहुँचता है । इस प्रकार के प्रतिद्रव्य सधर्मी (Homologous) होते हैं तथा लगभग तीन माह में नष्ट हो जाते हैं ।

(4) कृत्रिम मन्द रोगप्रतिरोधकक्षमत्व (Artificial Passive Immunity)—इस विधि में जन्तु रक्तद्रव को सूचिकाभरण (Injection of Serum of an animal) से लगा करके मानव-शरीर में मन्द गति से रोगप्रतिरोधक क्षमता पैदा करते हैं । वह द्रव विषरोधी (Antitoxins), जीवाणुरोधी (Antibacterial) या विषाणुरोधी (Antiviral) होते हैं । यह विधि रोगप्रतिरोध हेतु सुरक्षात्मक उपाय है ।

इस सामान्य संक्षिप्त परिचय के बाद यह देखने का यत्न करेंगे कि शिशु, बालक एवं गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ किन-किन मसूरण (vaccination) का प्रयोग हम करते हैं। उनकी मात्रा, रख-रखाव एवं कभी प्रतिक्रिया होने पर व्यवस्था तथा देने की विधि एवं विधान क्या है ।

प्रतिवर्ष विकासशील देशों में 80 लाख बच्चों का जन्म होता है और उनमें से 5 लाख शिशु प्रतिवर्ष संक्रामक रोगों से मर जाया करते हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि 10% से भी कम बच्चों का मसूरीकरण होना । विकसित देशों में प्रथम जन्मोत्सव मनाने के पूर्व ही शिशुओं की रोग से बचाव की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है । इसके अतिरिक्त (जिनकी मृत्यु हो जाती है) बहुत-से बच्चे मानसिक आघात, पक्षाघात, फुप्फुसीय व्याधियाँ, अन्धापन एवं बहरापन से तथा कुकुरकास, खसरा आदि के कारण एवं कुपोषण से पीड़ित होकर राष्ट्र के लिए भार बन जाते हैं । अत: प्रत्येक सुरक्षात्मक उपाय अपनाने चाहिए ।

Scanned with CamScanner

राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम

वय	टीकाकरण
जन्म से 7 दिन में	राजयक्ष्मा रोधी (B.C.G.) तथा बालपक्षाघात रोधी (OPV)
6 सप्ताह पर	तीन व्याधि रोधी (D.P.T.) तथा बालपक्षाघात रोधी (OPV)
10 सप्ताह पर	तीन व्याधि रोधी (D.P.T.) तथा बालपक्षाघात रोधी (OPV)
14 सप्ताह पर	तीन व्याधि रोधी (D.P.T.) तथा बालपक्षाघात रोधी (OPV)
9 माह पर	रोमान्तिका रोधी (Measles vaccine)
18 माह पर	बालपक्षाघात रोधी (OPV) तथा तीन व्याधिरोधी (D.P.T.) टीकाकरण (Booster dose)
5 वर्ष पर	D.T. Vaccine (D-रोहिणी, T-धनुर्वात)
10 वर्ष पर	धनुर्वात रोधी (T.T.)
16 वर्ष पर	धनुर्वात रोधी (T.T.)

सूचना—राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम में सरकार समय-समय पर परिवर्तन करती रहती है । अत: यह तालिका परिवर्तनशील है ।

इण्डियन मेडिकल एसोशियेशन द्वारा प्रमाणित टीकाकरण विधान

क्र. सं.	वय	व्याधि	मसूरण	विशेष
1.	जन्म के समय	यकृत् शोथ (Hepatitis B)	HEP-B Vaccine (I)	
2.	जन्म के समय	बालपक्षाघात	OPV (0)	
3.	जन्म से 6 सप्ताह में	राजयक्ष्मा	BCG	
4.	4 से 6 सप्ताह	यकृत् शोथ	HEP-B Vaccine (II)	
5.	6 सप्ताह	रोहिणी, कुक्कुर-कास, धनुर्वात, बालपक्षाघात	DPT (I) OPV (I)	
6.	10 सप्ताह	उपर्युक्त तथा यकृत् शोथ	OPT (II) OPV (II) HEP B Vaccine (II)	दिल्ली सरकार द्वारा अनुमोदित

Scanned with CamScanner

क्र. सं.	वय	व्याधि	मसूरण	विशेष
7.	14 सप्ताह	उपर्युक्त	DPT (III) OPV (III) HEP B Vaccine (IV)	दिल्ली सरकार द्वारा अनुमोदित
8.	24 सप्ताह	यकृत् शोथ	HEP B Vaccine (III)	इण्डियन एसोशिये-शन आफ पीडिया-ट्रिक्स द्वारा अनुमोदित
9.	9-12 माह	बालपक्षाघात रोमान्तिका	OPV (IV) Measles Vaccine	
10.	15-18 माह	रोमान्तिका कर्णमूलशोथ (Mumps) खसरा (Rubella)	M.M.R.	
11.	18 माह	रोहिणी, कुक्कुर-कास, धनुर्वात, बालपक्षाघात	DPT (Booster) (I) OPV (V)	दिल्ली सरकार एवं आई.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
12.	24 माह	आंत्रिक ज्वर	Typhoid Vaccine	आई.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
13.	4-5 वर्ष	रोहिणी, कुक्कुर-कास, धनुर्वात, बालपक्षाघात	DPT (Booster) (II) OPV (VI)	
14.	5 वर्ष पर	आंत्रिक ज्वर	Typhoid Vaccine	प्रत्येक तीसरे वर्ष पर
15.	5 वर्ष पर	मस्तिष्क संक्रमण ए एवं सी	Meningococcal vaccine	उपर्युक्त
16.	10 वर्ष पर	धनुर्वात	T.T.	प्रत्येक पाँच वर्ष पर
17.	राष्ट्रीयप्रतिरोधी कार्यक्रम	बालपक्षाघात	Pulse Polio	भारत सरकार के निर्देशानुसार
		अन्य उपलब्ध मसूरण		
18.	6 सप्ताह	प्रतिश्याय (H-Influenza B)	Hib	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
19.	10 सप्ताह	प्रतिश्याय (H-Influenza B)	Hib	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित

Scanned with CamScanner

क्र. सं.	वय	व्याधि	मसूरण	विशेष
20.	14 सप्ताह	प्रतिश्याय (H-Influenza B)	Hib	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
21.	18 माह	प्रतिश्याय (H-Influenza B)	Hib	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
22.	24 माह	यकृत् शोथ A	HA Vaccine (I)	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
23.	30 माह	यकृत् शोथ A	HA Vaccine (II)	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
24.	12 माह	चिकेन पाक्स (Chicken Pox)	Varicella Vaccine	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
25.	24 माह	मस्तिष्क संक्रमण A & C	Meningococcal Vaccine	आइ.ए.पी. द्वारा अनुमोदित
26.	12 माह	उत्फुल्लिका	Pneumococcal Vaccine	विशेष परिस्थिति में
27.	12 माह	प्रतिश्याय	Influenza Vaccine	विशेष परिस्थिति में

नोट—

(1) कोई भी मसूरण 100% प्रभावकारी नहीं है । प्रयोग करने से पूर्व प्रत्येक मसूरण के प्रभाव के विषय में जानकारी अवश्य प्राप्त करें ।

(2) उर्ध्वश्वसन तन्त्र के हल्के संक्रमण में भी टीकाकरण का निषेध नहीं है ।

(3) Live vaccine एक बार में शरीर के विभिन्न स्थान पर दी जा सकती है । अथवा एक माह में प्रयोग कर सकते हैं ।

(4) प्रत्येक राष्ट्र अपनी आवश्यकतानुरूप कार्यक्रम में परिवर्तन करता है ।

उपरोक्त तालिका में विभिन्न ग्रन्थों से पूर्ण सङ्कलन दिया गया है । इसमें काफी मत-भिन्नता मिलती है । इनके ज्ञान के उपरान्त स्थानीय संक्रामकता, उपलब्धता एवं मूल्यों को ध्यान में रखकर परिवर्तन कर सकते हैं ।

शीतलारोधी/खसरा मसूरण
(Rubella Vaccine)

इस टीकाकरण का सामान्य रूप से उल्लेख ऊपर कर चुके हैं । यह टीका अकेले अथवा MMR में सम्मिलित रूप में उपलब्ध है । कन्याओं में यदि बाल्यकाल में यह टीका न दिया गया हो तो उन्हें 11 वर्ष से 13 तक की वय में Rubella Vaccine

Scanned with CamScanner

देने का सर्वोत्तम समय है । यदि गर्भ धारण के पूर्व स्त्री को शीतला का प्रकोप न हुआ हो (Natural immunity) अथवा मसूरण न किया गया हो तो मासिक रज:स्राव के समय देना श्रेयस्कर होता है । यह Live, attenuated Vaccine है अत: गर्भिणी को कभी नहीं देना चाहिए । महिला को मसूरण करने पर आगामी 2 माह तक गर्भधारण नहीं करना चाहिए । इसे 0.5 सी.सी. की मात्रा में सूचिकाभरण द्वारा त्वचान्तर्गत (Subcutaneous injection) Deltoid पेशी पर अथवा ऊरु के अग्र पार्श्व भाग पर देना चाहिये । यदि गर्भ धारण के प्रथम त्रैमासिक में संक्रमण होता है तो गर्भपात करा देना श्रेयस्कर है । यदि संक्रमण 3 माह के बाद हो तो गर्भ धारण रखा जा सकता है तथा Immune serum globulin 20 से 30 सी.सी. की मात्रा में मांसगत सूचीभरण से दे देना चाहिये तथा महिला को चिकित्सक की देख-रेख में रहना चाहिये । गर्भिणी महिला को Live attenuated vaccine नहीं देना चाहिए । इसे अतिरिक्त Immune deficiency State, तीव्र स्वरूप की व्याधियों, मसूरण असहिष्णुता एवं Steroid आदि औषधि के प्रयोग काल में नहीं देना चाहिए ।

रोमान्तिका मसूरण
(Measles Vaccination)

0.5 से 1.0 सी.सी. की मात्रा में सूचीवेध से त्वग्गत या मांसगत live attenuated measles Vaccine को देने से 95 से 100% तक लाभ मिलता है। केवल 1 मात्रा ही लम्बे समय तक प्रभावकारी होती है ।

निषेध—6 माह से कम की वय में, Immuno-suppressive औषधि-सेवन काल में, त्वक्-विकार (Allergy or eczema) तीव्र स्वरूप के व्याधिकाल में, Leukemia, राजयक्ष्मा, कुपोषण, गर्भिणी, कुछ समय पूर्व यदि Gammaglobulin दिया गया हो, बच्चे को या पारिवारिक इतिवृत्त आक्षेप का हो ।

उपद्रव—प्राय: इसके सेवन से कोई उपद्रव नहीं होता । कभी-कभी बच्चों में 101 से 103^0 फा. तक ज्वर हो जाता है ।

कर्णमूलशोथ मसूरण
(Mumps Vaccine)

यह भी रोमान्तिका मसूरण के समान ही Live, attenuated vaccine है । इसके द्वारा भी 95% तक लाभ प्राप्त होता है तथा एक बार देने पर लम्बे समय तक इसका प्रभाव रहता है । इसी मात्रा 5000 TCID (Tissue culture Infective dose) अकेले अथवा MMR में सम्मिलित रूप से दी जा सकती है, जो त्वग्गत या Jet gun से दी जाती है । 5000 TCID मात्रा 0.5 मि.ली. सूचीवेध से मिल जाती है ।

Scanned with CamScanner

मिश्रित मसूरण
(MMR)

मसूरिका, कर्णमूलशोथ एवं शीतला के लिए मिश्रित मसूरण M.M.R. Vaccine उपलब्ध है, जो मूल्य में कम तथा मसूरण की दृष्टि से सुलभ एवं आसान है। प्राय: उपर्युक्त तीनों टीकों का अलग-अलग प्रयोग न करके MMR का ही प्रयोग करते है। 0.5 मि.ली. की एक मात्रा का प्रयोग Subcutaneous root से करते हैं।

आंत्रिकज्वर रोधी मसूरण
(Typhoid Vaccination)

यह तीन प्रकार का उपलब्ध है—

(1) Monovalent Typhoid Vaccine

इसे Parenteral killed whole cell typhoid vaccine भी कहते हैं। यह भी 2 प्रकार की होती है—

(i) Heat killed phenolized vaccine—यह द्रव रूप में होती है तथा 53 से 60% प्रभावी है।

(ii) Acetone killed—यह freeze dried होती है तथा 60 से 65% प्रभावी है। 10 वर्ष से पूर्व की वय में 0.25 मि.ली. तथा 10 वर्ष के बाद की वय में 0.5 मि.ली. Sub-cutaneous root से Deltoid पेशी में देते हैं। दूसरी मात्रा 4 सप्ताह के अन्तराल पर देते हैं। Booster मात्रा 0.1 मि.ली. Intradermal root से प्रत्येक 3 वर्ष पर देते हैं।

(2) Polysaccharide Typhoid Vaccine

यह Lyophilized injectable Vaccine है। इसमें VI Antigen का प्रयोग होता है। यह 2 वर्ष की वय के बाद तथा 64-72% तक प्रभावी है। 0.5 मि.ली. का एक सूचीवेध मांसगत Deltoid पेशी में देते हैं। प्रत्येक 3 वर्ष पर Booster मात्रा दी जाती है।

(3) Oral Typhoid Vaccine

यह Live attenuated Vaccine है तथा Enteric coated capsule के रूप में उपलब्ध है। यह Ty-21 नाम से भी जानी जाती है। 64-72% प्रभावी हैं। एक-एक दिन के अन्तर से 3 मात्रा दी जाती है। प्रत्येक 3 वर्ष पर एक कैप्सूल की Booster मात्रा देते हैं। इसका प्रयोग प्राय: 5-6 वर्ष के बाद ही करते हैं।

गर्भवती माता में धनुर्वातरोधी मसूरण

प्राय: हमारे देश में माता एवं शिशु की मृत्यु धनुर्वात के कारण सर्वाधिक होती है। गर्भवती के चिकित्सा हेतु आने पर प्राय: मसूरण का इतिवृत्त नहीं मिलता है। अत: Alum precipitated Toxoid के 3 सूचीवेध प्राय: 1-1 माह के अन्तर से गर्भवती

Scanned with CamScanner

को शीघ्रातिशीघ्र दे देना चाहिए। मात्रा प्राय: 1 सी.सी. की होती है। यदि गर्भवती महिला को 1 माह पूर्व भी 1 सूचिकावेध Toxoid का हो जाता है तो शिशु एवं माता की रक्षा प्रसव काल में धनुर्वात से हो सकती है।

Toxoid को अकेले या Antitoxin के साथ भी प्रयोग कर सकते हैं। बच्चों में Triple Antigen में मिश्रित रहता है। सामान्य रूप से इसे निम्नाङ्कित रूप से देते हैं—

1. प्रथम 3 सूचीवेध 1-1 माह के अन्तर से।
2. 1 वर्ष के बाद एक सूचीवेध।
3. 4-5 वर्ष के बाद पुन: एक मात्रा (Booster dose)।

इस तालिका से यह भी सिद्ध होता है कि 3 सूचीवेध के बाद एक वर्ष व्यतीत होने पर भी 1 सूचीवेध आवश्यक है।

पक्षाघात मसूरण
(Polio Vaccine)

शैशवीय पक्षाघात से सुरक्षा हेतु मुख से देनेवाली तथा सूचीकावेध से देने वाले 2 तरह का मसूरण पोलियों हेतु उपलब्ध है।

(1) Sabin vaccine—यह मसूरण मुख से दिया जाने वाला Live attenuated virus संकलित है। इसमें विषाणु 3 प्रकार (अब 5 प्रकार) से संकलित होते हैं; यथा—Type I - Prototype Brunhild strain, Type 2 - Prototype Lansing strain, Type 3 - Prototype Leon strain. इन तीन के अतिरिक्त Strains से भी संक्रमण की सम्भावनाएँ देखकर अब 2 Strain इसमें बढ़ा दिये गये हैं।

(2) Salk vaccine—इसमें मृत Polio viruses होते हैं तथा सूचीवेध द्वारा देय होता है। इसके द्वारा व्यक्तिगत रोगक्षमत्व पैदा होता है।

Salk तथा Sabin मसूरण का तुलनात्मक अध्ययन

Salk Vaccine	Sabin Vaccine
1. मृत तथा सुरक्षित (Formalized)	1. जीवित तथा तनुकृत
2. अधिक मूल्य का	2. अपेक्षाकृत सस्ता
3. सूचीवेध द्वारा त्वग्गत या मांसगत देय है।	3. मुख द्वारा देय होने से रोगी एवं कार्यकर्ता दोनों के लिए सरल है।
4. रोगप्रतिरोधक क्षमत्व कम समय के लिए।	4. काफी लम्बे समय के लिए।
5. क्योंकि प्रतिद्रव्य Antibodies रक्त में बनते हैं अत: स्थानीय आन्त्र में रोगप्रतिरोधी क्षमता नहीं विकसित होती है।	5. इसके द्वारा स्थानीय एवं सार्वदैहिक दोनों ही प्रकार का रोगप्रतिरोधी क्षमत्व का विकास होता है।

Scanned with CamScanner

6. Wild Polio virus से पुनः संक्रमण सम्भव है परन्तु इससे पक्षाघात नहीं होने पाता ।	6. इससे पुनः संक्रमण एवं पक्षाघात दोनों से बचाव रहता है ।
7. व्यक्तिगत रोगप्रतिरोधक क्षमता का ही विकास होता है ।	7. दूसरे को संक्रमण (Cross infection) से भी रक्षा करता है ।
8. जनपद संक्रमण से सुरक्षा करने में कोई योगदान नहीं है ।	8. पूर्ण योगदान है ।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि Sabin Vaccine का उपयोग ही उचित है ।

मसूरण का उचित काल—शिशु के जन्म के 3 या 4 माह बाद उचित मसूरण काल है, क्योंकि मातृज प्रतिद्रव्य इस मसूरण के प्रभाव को कुछ कम करते हैं, इसके बाद 1 से 2 माह के अन्तर पर 3 से 5 मात्राएँ दी जाती हैं । तदुपरान्त $1\frac{1}{2}$ से 2 वर्ष पर और फिर 5 वर्ष की वय पर पुनः मात्रायें (Booster dose) देते हैं । इसके बाद 7 वर्ष की वय पर भी क्षेत्रीयता के आधार पर दे सकते हैं । प्रायः 8 वर्ष की वय के बाद प्राकृतिक रोगप्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि हो जाने के कारण मसूरण नहीं करते हैं । स्वच्छ शीशे की सूचिका द्वारा इस मीठे मसूरण को मुख में देते हैं । दवा पिलाने के पूर्व तथा पश्चात् कम-से-कम 1 घंटे तक बच्चे को स्तनपान आदि न करायें । मात्रा 1 से 2 बूँद की होती है । यह सीरप आन्त्र में जाकर स्थानीय तथा शोषणोपरान्त दैहिक immunity पैदा करता है । इसके द्वारा प्रतिद्रव्य IgG, IgM तथा IgA बनते हैं । IgA स्थानीय Immunity पैदा करता है, शेष दोनों Polio virus के केन्द्रीय नाड़ी-तन्त्र तक के फैलाव को रोकते हैं तथा पक्षाघात से बचाव करते हैं ।

निषेध—जब शिशु को अतिसार अथवा कोई तीव्र स्वरूप की व्याधि हो । यह भी यत्न करना चाहिए कि अन्य किसी Live vaccine (यथा चेचक, मसूरिका, राजयक्ष्मा) के देने के 1 मास के बाद ही इसे दिया जाय ।

उपद्रव—उपद्रव रहित मसूरण है ।

ट्रिपल वैक्सीन
(Triple Vaccine)

इसके द्वारा कुक्कुर कास, रोहिणी तथा धनुर्वात व्याधि से एक साथ सुरक्षा मिलती है । इसी कारण इसे D (Diphtheria रोहिणी), P (Pertusis कुक्कुरकास), T (Tetanus धनुर्वात) Vaccine भी कहते हैं । 0.25 से 0.5 सी.सी. की मात्रा में मांसगत, गहराई में जङ्घा में देना श्रेयस्कर है ।

Scanned with CamScanner

निषेध—ज्वर एवं ज्वरजन्य क्लान्ति, अपस्मार या अन्य आक्षेपवाली व्याधियाँ, पोलियो के जनपदीय संक्रमण में प्रमुख रूप से जब कि बालक को पोलियो का मसूरण न किया गया हो ।

उपद्रव—ज्वर एवं ज्वरजन्य आक्षेप, स्थानीय सूचीकाभेदजन्य विद्रधि, त्वक् पर सहिष्णुताजन्य चकत्ते, मस्तिष्क-उपद्रव (Encephalitis), कभी-कभी मूर्च्छा (Collapse) 1 से 3 घण्टे में सूचिकाभेद के उपरान्त (पीताभवर्ण, स्वेद आना तथा नाड़ी-गति का मन्द हो जाना) 1-2 घण्टे में यह उपद्रव शान्त भी हो जाता है ।

राजयक्ष्मारोधी मसूरण
(B.C.G. Vaccination)

20वीं शती के प्रारम्भ में पेरिस के Pasteur Institute के दो वैज्ञानिकों Calmettee तथा Guerin ने इस मसूरण का विकास किया, उन्हीं के नाम पर इसका नाम Bacillus Calmettee-Guerin पड़ा । इसे गोजातीय (bovine Strain) के Tubercle bacilli से प्राप्त कर live attenuated vaccine बनायी जाती है । यह राजयक्ष्मा के प्रारम्भिक संक्रमण से रक्षा करता है । इस तथ्य के भी प्रमाण मिले हैं कि इससे कुष्ठ Leprosy तथा श्वेतरक्तता (Leukemia) से भी कुछ सुरक्षा मिलती है।

मसूरण काल—इसका सर्वाधिक उत्तम समय नवजात शिशुकाल अर्थात् प्रथम मास है । तदुपरान्त 5 वर्ष पर और 10 वर्ष पर (Entering & leaving primary school) देना चाहिए । प्रथम माह में B.C.G. vaccination देने के बाद 9वें माह में Tuberculin test करते हैं । यदि धनात्मक आता है तो ठीक है, अन्यथा पुनः BCG Vaccination कर देते हैं ।

BCG Vaccine दो तरह की Freeze-dried उपलब्ध हैं । एक तो वह जो त्वक्गत (Intradermally) दी जाती है । इसमें विशेष Tuberculin syringe का प्रयोग होता है । इसी का प्रयोग अब किया जाता है । 0.05 मि.ली. नवजात में तथा 0.1 मि.ली. अन्य वय में प्रयोग करते हैं । दूसरी Multiple puncture के द्वारा Heaf gun से देते हैं । इसमें 20 सूचिकाएँ होती हैं तथा दो बार इससे लगाते हैं।

मसूरण-प्रतिक्रिया—मसूरण के 2-3 सप्ताह के बाद एक Papule बन जाता है । चतुर्थ सप्ताह तक आकृति में वृद्धि होती है । तदुपरान्त यह शान्त हो जाता है अथवा हल्का गहरा व्रण बन जाता है । 8वें सप्ताह में व्रण भी शान्त हो जाता है । यदि कभी Tuberculin test धनात्मक रहने पर मसूरण कर दिया जाय तो वृद्ध स्वरूप (Accelerated response-koch's phenomenon) दिखायी पड़ता है । साथ में 2 या 3 दिन में सूचीवेध स्थान पर Papule का निर्माण, लालवर्ण का तीव्र स्वरूप का व्रण बन जाता है । जो तीसरे सप्ताह में शान्त होता है, कुछ विद्वानों के मत से इस तथ्य को राजयक्ष्मा के निदान में प्रयोग कर सकते हैं ।

निषेध—Tuberculin Test धनात्मक अवस्था ।

Scanned with CamScanner

उपद्रव—कभी-कभी वृद्धस्वरूप, गहरे व्रण और उनमें संक्रमण, कभी स्थानीय लसिकाग्रन्थियों की वृद्धि, उनका पक्व हो जाना एवं विद्रधि का बन जाना, इसे B C Gosis या B C G Adenititis कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि इसे छोड़ देने से स्वयं शान्त हो जाता है। कुछ लोग इन शोथ को निकाल देने को कहते हैं। इस अवस्था में वक्ष का एक्स किरण परीक्षण कराके राजयक्ष्मा का प्रारम्भिक स्वरूप (Primary Complex)मिलने पर पूर्ण-चिकित्सा तथा एक्सकिरण-परीक्षण में कुछ न भी मिलने पर Isonex 10 मि. ग्रा./कि. ग्रा./दिन 6 से 12 माह तक देना चाहिए।

यक्ष्मा-परीक्षण
(Tuberculin Test)

यह परीक्षण कई प्रकार से किया जाता है। यथा त्वक्गत सूची (Intradermal), जेट सूचिकावेध (Jet injection) और त्वक्छिद्र (Multiple puncture), परन्तु इसमें सर्वाधिक लोकप्रिय प्रथम परीक्षण है जिसे Mantoux test भी कहते हैं। इसमें प्राय: PPD (Purified protein derivative) की 0.1 सी.सी. की मात्रा दी जाती है। इसके लिए अग्र बाहु के सामने का भाग अच्छा होता है।

इसके लिए सूचिका छोटी, तेज तथा प्लेटिनम या स्टील की बनी (माप—प्लेटिनम 26 गेज, स्टील 27 गेज) हुई ट्यूबरकुलीन सिरिंज युक्त प्रयोग होती है। त्वचा में PPD देने पर श्वेताभ (pale) उभार 6 से 10 मि.मि. व्यास का उठ आना चाहिए; यथा मच्छर ने काटा हो। इसकी मानक मात्रा 5 TU (Tuberculin unit) है। सूचीवेध के बाद 48 घण्टे से 72 घण्टे के पश्चात् उस स्थान पर पड़े चकत्ते का व्यास (Induration) मापकर उसका अर्थ निकालते हैं। रक्तिया (erythema) का मापन नहीं करते हैं।

	व्यास	परिणाम
प्रथम विधि	5 मि.मी. से कम	ऋणात्मक
	5 से 10 मि.मी. व्यास	अनिश्चयात्मक परिणाम
	10 से 20 मि.मी. व्यास	धनात्मक +
	20 से 30 मि.मी. व्यास	अतिधनात्मक + +
	30 से 40 मि.मी. व्यास	तीव्रस्वरूप + + +
द्वितीय विधि	5 मि.मी. से कम	ऋणात्मक (-)
	6 से 9 मि.मी. व्यास	अनिश्चयात्मक (±)
	10 से 14 मि.मी. व्यास	(+)1
	15 से 20 मि.मी. व्यास	(+ +)2
	21 से 30 मि.मी. व्यास	(+ + +)3
	30 मि.मी. से अधिक या मृत ऊतक	(+ + + +)4

Scanned with CamScanner

सम्भावनाएँ

10 मि.मी. से अधिक व्यास होने पर निम्न स्थितियों पर भी विचार करना चाहिए—

1. B.C.G. दिया जा चुका हो ।

2. राजयक्ष्मा के रोगी से घातक जीवाणु (Virulent Bacilli) का संक्रमण हुआ हो जो निम्नाङ्कित परिस्थितियों में राजयक्ष्मा का संकेत करती है—

- 2 वर्ष से कम वय,
- 6 वर्ष से कम वय, यक्ष्मा रोगी से सम्बद्धता,
- शीघ्र ही वह शिशु ऋणात्मक से धनात्मक हुआ हो ।

तीव्र स्वरूप की प्रतिक्रिया राजयक्ष्मा का स्पष्ट लक्षण होता है ।

मिथ्या ऋणात्मक परिणाम—निम्न कारण हो सकते हैं—

1. गलत विधि का प्रयोग ।
2. समय ।
3. तीव्रस्वरूप का कुपोषण (PEM) ।
4. तीव्रस्वरूप (Advanced) का राजयक्ष्मा (Miliary, मस्तिष्कगत) ।
5. कुक्कुर कास, मसूरिका आदि व्याधियाँ ।
6. Steroid औषधिसेवन काल ।

बी.सी.जी. परीक्षण

उपर्युक्त परीक्षण (Mantoux test) की भाँति 'अत्यसहिष्णुता' (Hypersensitivity) के आधार पर ही B.C.G. Vaccine से निदानार्थक परीक्षण का कार्य लेते हैं तथा परीक्षणों के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि BCG Test, Mantoux Test की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है । समस्त प्रतिक्रियाएँ उसी तरह हैं जैसा Vaccination में कहा गया है; अन्तर यह है कि यक्ष्मा के रोगी में 48 घण्टे के अन्दर ही टीकाकरण स्थल पर चकत्ते का निर्माण हो जाता है, जबकि टीकाकरण में प्रक्रिया 14 से 19 दिन के बाद होती है । परिणाम का निराकरण निम्न विधि से करते हैं—

व्यास	परिणाम
5 से 10 मि.मी.	+ हल्का धनात्मक (Mild)
10 से 20 मि.मी.	+ + धनात्मक (Moderate)
20 मि.मी. से अधिक	+ + + अतिधनात्मक (Strong)

बी.सी.जी. परीक्षण का लाभदायक प्रभाव

1. यह सूक्ष्मग्राही (Sensitive) एवं विश्वसनीय परीक्षण है ।

Scanned with CamScanner

2. सामान्यतया Miliary tuberculosis मस्तिष्क यक्ष्मा एवं अतिकुपोषण जैसी अवस्था में धनात्मक परिणाम देता है । जबकि (Man toux test) मिथ्या ऋणात्मक परिणाम यक्ष्मा की उपस्थिति में दे जाता है ।

3. परिणाम 24 घण्टे से 48 घण्टे में प्राप्त हो जाता है ।

4. यह सस्ता पड़ता है तथा व्याधि से सुरक्षा भी प्रदान करता है ।

यकृत् शोथ मसूरिका

(1) **Hepatitis A Vaccine**—यह Inactivated hepatitis A Vaccine है । यह 95% प्रभावी है । इसे 0, 1, 6 माह के अन्तर पर देते हैं । कुछ देशों में Hepatitis-B vaccine के साथ संयुक्त रूप से भी उपलब्ध है । नये अन्वेषण में Formalin Inactivated Purified Hepatitis A vaccine भी उपलब्ध करायी गयी है । जिसकी एक मात्रा मांसगत सूचीवेध से दी जाती है जो प्रभावकारी सिद्ध हुई है । आगे कार्य प्रगति पर है ।

(2) **Hepatitis B Vaccine**—Plasma derived vaccine है, जो Hepatitis carrier व्यक्ति के प्लाज्मा से प्राप्त कर निर्मित की जाती है । यह 95% प्रभावी है । इसकी 0.5 मि.ली. की तीन मात्रायें मांसगत सूचीवेध से दी जाती है । 10 वर्ष से पूर्व की अवस्था में 10 माइक्रो ग्राम तथा उसके बाद की वय में 20 माइक्रो ग्राम की मात्रा देते हैं । इसकी तीन मात्रायें 0, 1, 6 माह पर देते हैं ।

(3) **Recombinant Vaccine**—यह Hbs Ag DNA Vaccine है । यह वैक्सीन अत्यधिक रोग प्रतिरोधक क्षमता पैदा करनेवाली है । मात्रा का निर्धारण निर्माता के अनुसार होता है । भारतवर्ष में उपलब्ध वैक्सीन की मात्रा 10 वर्ष से कम वय के बच्चों में 10 माइक्रोग्राम तथा अधिक वय में 20 माइक्रोग्राम की मात्रा का मांसगत सूचीवेध है । इसकी तीन मात्रा 0, 1 तथा 6 अथवा 0, 1, 2, एवं 12 माह के अन्तराल पर देते हैं ।

प्रतिश्याय टीकाकरण

Hemophilus Influenza-B Vaccine

यह Conjugated Polyribosyl Ribitol Phosphate (CPRP) Vaccine है । यह 4 प्रकार की उपलब्ध है—

क्र. सं.	नाम	प्रभाव	मात्रा	समय	बूस्टर मात्रा
1.	PRP + Diptheria Toxin* (PRP-D)	97%		-	-

Scanned with CamScanner

क्र. सं.	नाम	प्रभाव	मात्रा	समय	बूस्टर मात्रा
2.	PRP + CRM	97%	1M	-2,3,4 माह पर -2, 4, 6 माह पर -6,10,14 सप्ताह पर DPT के साथ	चतुर्थ मात्रा 12 से 15 माह पर
3.	PRP + OMP (Outer membrane protein of meningococcus)	97%	2	-2 माह के अन्तराल पर	12 से 15 माह पर
4.	PRP + T (Tetanus Toxid)	100%	मात्रा आदि PRP+CRM के समान		

* 1 वर्ष की वय के पूर्व प्रभावी नहीं है । अत: प्रारम्भिक टीकाकरण कार्यक्रम में समाविष्ट नहीं है ।

उत्फुल्लिका मसूरण
(Pneumococcal Vaccine)

इस हेतु 23 Valent Capsular Polysaccharide Vaccine उपलब्ध है । 2 वर्ष से अधिक वय के बच्चों में प्रयोग करते हैं । इसकी एक मात्रा 0.5 मि.ली. की Subcutaneous अथवा मांसगत सूचीवेध द्वारा दी जाती है ।

मस्तिष्क संक्रमण मसूरण
(Meningococcal Vaccine)

यह Capsular Polysaccharide Meningococcal Vaccine है । यह तीन प्रकार की उपलब्ध है—

- Monovalent group A or C
- Bivalent group A and C
- Tetravalent group A, C, Y and W-135

यह वैक्सीन एक बार दी जाती है । इसका जनपदोद्ध्वंस काल में ही प्रयोग करते हैं । एक मात्रा 0.5 मि.ली. (50 माइक्रोग्राम) की होती है । इसे Subcutaneous मार्ग से सूचीवेध द्वारा देते हैं । इसका प्रयोग 2 वर्ष की वय के बाद ही करते हैं ।

Chicken Pox Vaccine
(Varicella Vaccine)

यह Live Attennuated Vaccine है । यह 95 से 100% तक प्रभावी है ।

Scanned with CamScanner

इसकी मात्रा 0.5 मि.ली. की Subcutaneous या मांसगत सूचीवेध से एक बार एकवर्ष के ऊपर की वय के बालक में ही देते हैं ।

टीकों (Vaccines) का तापक्रम नियन्त्रण

विभिन्न प्रकार के टीके (Vaccines) प्रभावी हों, इसके लिए उन्हें निश्चित तापक्रम में रखा जाना चाहिए । इस हेतु स्थान विशेष में विशिष्ट व्यवस्था क्रम बनाया गया है; यथा—

टीका निर्माता निर्माणशाला

↓ ←यातायात सुविधा (जिसमें 2^0-8^0 सें. तापक्रम में टीके रहते हैं ।)

अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे

↓ ←यातायात सुविधा (जिसमें 2^0-8^0 सें. तापक्रम में टीके रहते हैं ।)

राष्ट्रीय हवाई अड्डे

↓ ←यातायात सुविधा (जिसमें 2^0-8^0 सें. तापक्रम में टीके रहते हैं ।)

प्रथम टीका भण्डार

↓ ←तापक्रम नियन्त्रित कक्ष (15^0-25^0 सें.) के अन्दर शीतकक्ष (2^0 सें.-8^0 सें.)

द्वितीय (क) टीका भण्डार

↓ ← तापक्रम नियन्त्रित कक्ष (15^0-25^0 सें.) के अन्दर शीतकक्ष (2^0-8^0 सें.)

द्वितीय (ख) टीका भण्डार

↓ ← तापक्रम नियन्त्रित कक्ष (15^0-25^0 सें.) के अन्दर फ्रिज (2^0-8^0 सें.)

स्वास्थ्य केन्द्र

↓ ← फ्रिज (2^0-8^0 सें.) तथा शीत बाक्स

स्वास्थ्य उपकेन्द्र

↓ ← फ्रिज (2^0-8^0 सें.) तथा शीत बाक्स

स्वास्थ्य उपकेन्द्रों से टीके शीत बाक्स/थर्मस (Vaccine carrier) में रखकर ले जाये जाते हैं ।

ध्यान रखिये

1. प्राय: सभी टीके 2^0-8^0 सें. (35^0-46^0 फा.) के तापक्रम में रखे जाते हैं ।
2. फ्रिज में रखने का स्थान चित्र में प्रदर्शित है ।
3. DPT, Hep B, तथा T.T. जमने पर (Freezing) नष्ट हो जाती है ।
4. Live Attenuated Influenza Vaccine तथा Varicella Vaccine 15^0 सें. पर रखी जाती हैं ।

---

* सौजन्य से—विश्व स्वास्थ्य संगठन, Vaccines, Immunization and Biologicals. The Cold Chain, Nov 26, 2002.

Scanned with CamScanner

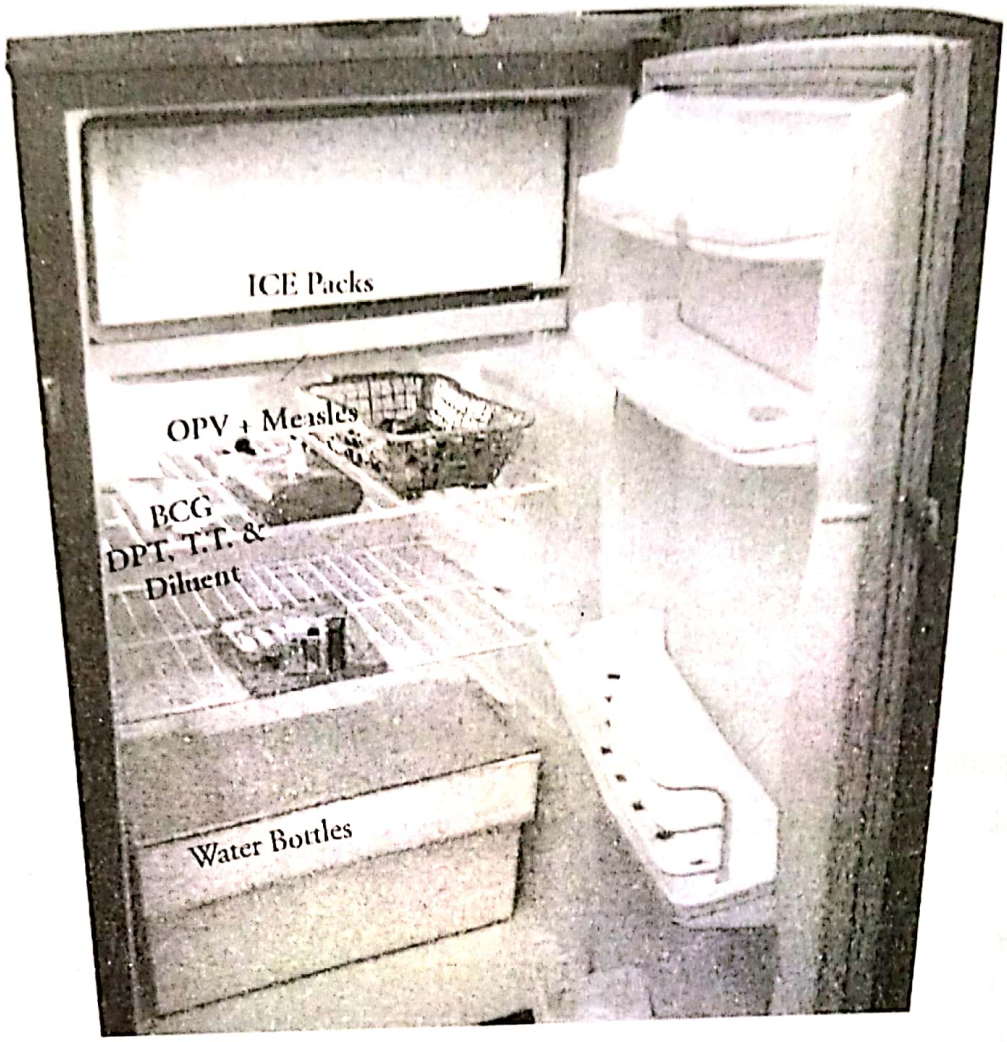

चित्र सं. 23 : टीकों का संग्रहण

मसूरीकरण (टीकाकरण) में सामान्य निषेध

(1) जन्मजात अथवा कृत्रिम रूप से रोगप्रतिरोधक क्षमता में कमी (Immuno-deficiency states) की अवस्था में Live Vaccine नहीं देनी चाहिए ।

(2) पूर्व में दिये गये टीका के कारण यदि कोई गम्भीर उपद्रव (Reaction) हुआ है, यथा—मूर्च्छा (Collapse), ज्वर (40.5^0 सें.) या इससे अधिक ।

(3) गम्भीर व्याधि अवस्था, यथा—ज्वर अतिसार आदि ।

विशेष—कुपोषण, समयपूर्व प्रसव, प्राणवह स्रोतस् संक्रमण, सामान्य अतिसार जैसी अवस्थायें प्राय: निषिद्ध अवस्था नहीं है ।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 9

पोषण

आहार का महत्त्व

शरीर के पोषण एवं स्वास्थ्य-रक्षाणार्थ आहार एक प्रमुख घटक है। आहार से ही शरीर की समस्त धातुओं का पोषण होता है। यदि उचित पोषण प्राप्त न हो तो फक्करोग, बालशोष, पारिगर्भिक, कृशता एवं विभिन्न धातुओं के क्षय जनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आहार की अधिक मात्रा का सेवन स्थूलता, प्रमेह, हृदय रोग आदि उत्पन्न करते हैं। दूषित आहार से उदरशूल, कृमिरोग, बालातिसार आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

स्वस्थ रहने के लिए आहार के सन्दर्भ में अनेक नियम एवं उपनियम आयुर्वेद मनीषियों ने बताये हैं। यहाँ पर बच्चों के सन्दर्भ में कुछ नियमों का संकलन दिया जा रहा है, यथा—

(1) मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पहले बालक को मधु एवं घृत चटायें। फिर इसी विधि से सर्वप्रथम बालक को दक्षिण स्तन से दूध पिलायें। (च.शा. 8:46)

(2) भोजन के आधार पर बालक को तीन वर्गों में बाँटा गया है—एक वर्ष तक की वय का बालक क्षीरप, दूसरे वर्ष तक वय का बालक क्षीरान्नाद, तदुपरान्त अन्नाद कहलाता है। अर्थात् इस वय में इस प्रकार का मुख्य भोजन है। (सु.सू. 35/29)

(3) फलप्राशन संस्कार की वय 6 माह है। इसमें क्या-क्या आहारोपयोगी है। इसका विवेचन आचार्य काश्यप ने किया है। (का.खि. 12:15-16)

(4) अन्नप्राशन संस्कार की वय 10 माह है। पुन: यहाँ आहार का वर्णन शिशु की दृष्टि से दिया गया है। (का.खि. 12:17-18)

(5) माता के स्तन्य के अभाव में धात्री अथवा गोदुग्ध या अजादुग्ध का प्रयोग करना चाहिए। (सु.शा. 10:48; अ.ह.उ. 1:20)

(6) दूध के महत्त्व को आचार्य चरक ने 'क्षीरं जीवनीयानां' कहा है। (च.सू. 25:40)

(7) यदि मधुरादि द्रव्यों से विपरीत आहार (द्रव्य) बालक को सात्म्य हो गया है तो वह अहितकर होने से असात्म्य कहा जायेगा। इसका क्रमश: त्याग करते हुए सात्म्य द्रव्यों का सेवन करायें। (च.शा. 8/65)

(8) शिशु का भोजन (आहार) स्निग्ध, शीतल, मधुर तथा दाह न उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। (का.सूत्र. 27:66)

Scanned with CamScanner

इस प्रकार के अनेकानेक सूत्र आयुर्वेद ग्रन्थों में प्राप्त होते है। शैशवीय अवस्था में दुग्धाहार के पश्चात् अन्न, फल एवं सब्जियाँ मुख्य भोजन है। जिसका वर्गीकरण आयुर्वेद मनीषियों ने किया है।

आहार के मुख्य घटक

आधुनिक मतानुसार प्राणी चाहे जो भी भोज्य पदार्थ जिस रूप में ग्रहण करता हो किन्तु शरीर के अन्तर्गत रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा मुख्य रूप से 5 भागों में बँट जाता है और वही स्वरूप शरीर के काम आता है—

1. शर्करा (Carbohydrate) । 1%
2. प्रोभूजन (Protein) । 17%
3. वसा (Fats) । 12%
4. जल । (water) 63%
5. खनिज एवं जीवतिक्तिय (Minerals and Vitamins) । 7%

जगत् के सम्पूर्ण भोज्य पदार्थों का इन्हीं 5 भागों में विभजन किया जाता है और शरीर के लिए प्रत्येक व्यक्ति या प्राणी को कितना आवश्यक है, इसका एक निश्चित मापदण्ड तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया को ही पोषण (Nutrition) कहते हैं।

प्राचीन चिकित्साशास्त्रज्ञों ने आहार, आहारविधि, पथ्य एवं अपथ्य के रूप में इसका विशद विवेचन किया है और यथासम्भव कितने सन्तुलित आहार की आवश्यकता है इसको भी बताने का यत्न किया है। आधुनिक वर्गीकरण और आवश्यकतानुरूप इसके उपयोग का विवेचन भी आयुर्वेद ग्रन्थों में शब्द भेद से उपलब्ध है। अत: विषय के गाम्भीर्य को समझने के लिए सर्वप्रथम आधुनिक प्रचलित आहार के विषय में विस्तृत वर्णन आवश्यक है।

उपर्युक्त 5 भोजन तत्त्व शरीर में विभिन्न प्रतिशत में होते हैं। जल 63%, प्रोभूजन 17%, वसा 12%, शर्करा 1 प्रतिशत एवं खनिज तथा जीवतिक्तिय 7 प्रतिशत। शरीर को प्रत्येक कार्य के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। जो उसे प्रोभूजन, शर्करा एवं वसा से प्राप्त होती है। अत: 'शक्ति' की आवश्यकतानुरूप भोजन के मानक Calories के रूप में प्राप्त ऊर्जा का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

जल
(Water)

जीवन के लिए वायु के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व जल है। यदि वायु के बिना जीवन मात्र कुछ क्षण चलता है तो जल के बिना कुछ दिन का ही मेहमान रह जाता है। युवा से शिशु में जलीयांश की मात्रा अधिक होती है (युवा 60 से 65 प्रतिशत, शिशु 70 से 75 प्रतिशत)। शरीर के इस 70 प्रतिशत जल में—5 प्रतिशत रक्तरस

Scanned with CamScanner

(Plasma), 15 प्रतिशत कोशिकाबाह्य द्रव (Interstitial fluid) एवं 50% कोशिकामध्य द्रव (Intra cellular fluid) होता है। जल की आवश्यकता Caloric (शक्ति) उपयोग एवं मूत्र के आपेक्षिक घनत्व पर आधारित होती है। प्रायः प्रतिदिन जल की आवश्यकता एक स्वस्थ शिशु को 10 से 15 प्रतिशत शरीर-भार के अनुरूप होती है। जबकि युवा में शरीर-भार का 2 से 4 प्रतिशत ही जल आवश्यक होता है। बच्चों का भोजन भी इसी कारण अधिक जलीयांश वाला होता है।

जल की आवश्यकता

वय	औसत शरीर-भार (कि.ग्रा.)	कुल आवश्यकता/दिन (सी.सी.)	जल की आवश्यकता/ कि.ग्रा. शरीर-भार/दिन (सी.सी.)
3 दिन	3.0	250-300	80-100
10 दिन	3.2	400-500	125-150
3 माह	5.4	750-850	140-160
6 माह	7.3	950-1100	130-155
9 माह	8.6	1100-1250	125-145
1 वर्ष	9.5	1150-1300	120-135
2 वर्ष	11.8	1350-1500	115-125
4 वर्ष	16.2	1600-1800	100-110
6 वर्ष	20.0	1800-2000	90-100
10 वर्ष	28.7	2000-2500	70-85
14 वर्ष	45.0	2200-2700	50-60
18 वर्ष	54.0	2200-2700	40-50

शक्ति या कैलोरी
(Calories)

शरीर के चयापचय (Metabolism) में प्रयुक्त उष्मा की ईकाई Large Calorie (Cal) या Kilocalorie (Kcal) कहलाती है। सामान्य रूप से 1 Cal = 1 Kcal होता है। एक किलो कैलोरी का तात्पर्य है कि 1 किलोग्राम जल का तापक्रम 14.5 से 15.5 डिग्री सेण्टीग्रेड बढ़ा देने की क्षमता।

विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न वय में शिशु द्वारा इच्छित ऊर्जा या शक्ति अलग-अलग होती है। सामान्य रूप से व्यय होने वाली शक्ति या ऊर्जा 6 से 12 वर्ष के वय के लिए निम्न रूप में होती है—आधार चयापचय (Basal Metabolism) हेतु 50 प्रतिशत, भोजन को विशिष्ट स्वरूप तक लाने के लिए (Specific dynamic action

Scanned with CamScanner

of food) 5%, विकास (Growth) हेतु 12 प्रतिशत, शारीरिक क्रियाशीलता (Physical activity) हेतु 25 प्रतिशत एवं मल से ऊर्जानाश विशेष रूप से अवशेष वसा के रूप में 8 प्रतिशत ।

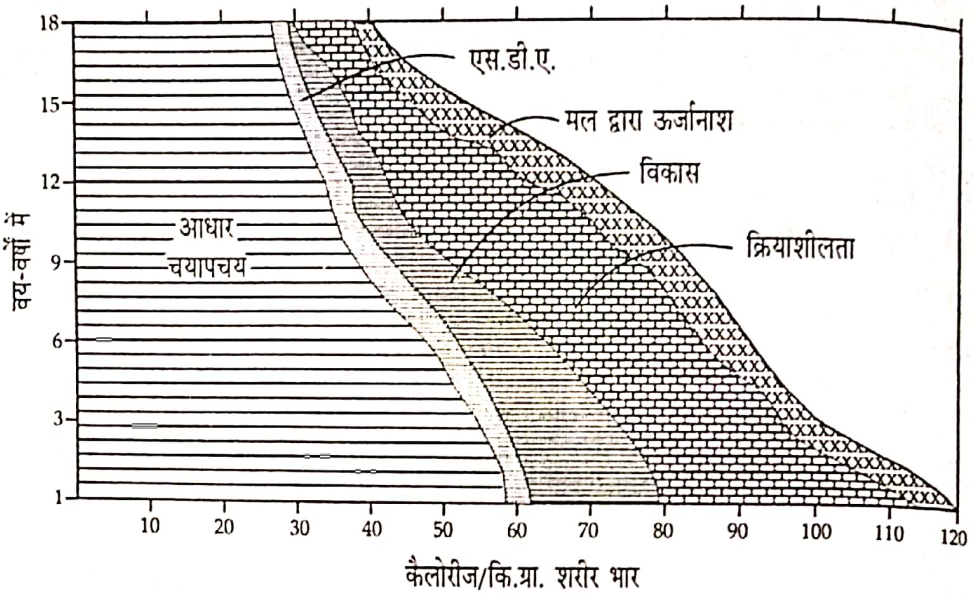

चित्र सं. 24 : ऊर्जा का प्रतिदिन विभिन्न रूपों में व्यय

हमारे भोजन से आवश्यकतानुरूप प्राप्त कैलोरी प्राय: निम्न रूप से प्राप्त होती है । शर्करा से 50 प्रतिशत, वसा से 35 प्रतिशत एवं प्रोभूजन से 15 प्रतिशत कैलोरी प्राप्त होती है । 1 ग्राम प्रोटीन से एवं शर्करा से 4 कैलोरी तथा 1 ग्राम वसा से 9 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है । नित्यप्रति आवश्यकता से अधिक या कम कैलोरी लेने का प्रभाव शरीर की वसा पर पड़ता है । अर्थात् वह बढ़ती या घटती है । यदि प्रतिदिन 500 कैलोरी कम ली जाय तो प्रति सप्ताह 1 पौण्ड शरीर का भार कम होता है ।

प्रतिदिन के लिए आवश्यक कैलोरी, प्रोभूजन एवं जल वयानुसार

वय (वर्षों में)	कैलोरी (कि.ग्रा.)	प्रोभूजन (ग्राम/कि.ग्रा.)	जल (सी.सी./कि.ग्रा.)
प्रथम वर्ष	110	3.5-2.6	150
1-3	100	2.5-2.0	125
4-6	90	3.0	100
7-9	80	2.8	75
10-12	70	2.0	75
13-15	60	1.7	50
16-19	50	1.5	50
युवा	40	1.0-0.8	50

Scanned with CamScanner

प्रथम वर्ष के प्रथम माह में 500 कैलोरी, दूसरे माह में 600, चौथे माह में 700, 5वें माह में 800, 9वें माह में 900, तदुपरान्त 1000 कैलोरी देनी चाहिए।

प्रोभूजन
(Proteins)

प्रोभूजन शरीर की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संरचना है जो युवा-शरीर का 20% भार बनाता है। कोशिका प्ररस (Protoplasm) के निर्माण में विशेष तिक्तिरस (Essential amino acid) आवश्यक होता है। सैद्धान्तिक रूप में प्रोभूजन मांसपेशी, तन्त्रिकातन्त्र (Nervous System), आशय (Viscera) एवं ग्रन्थिऊतक (Glandular tissues) में पाया जाता है। प्राय: शरीर के प्रत्येक द्रव एवं स्राव में प्रोभूजन होता है।

24 Essential amino acids में से 9 Amino acids शैशवकाल (Infants) के लिए आवश्यक है।

1.Threonine	4.Isoleucine	7.Phenylalanine
2.Valine	5.Lysine	8.Methionine
3.Leucine	6.Tryptophan	9.Histidine

यह विशिष्ट तिक्तिरस भोजन में प्राय: एक साथ उपस्थित रहते हैं। यदि एक भी विशिष्ट तिक्तिरस की कमी शरीर में हो जाय तो परिणामस्वरूप क्षय (Negative nitrogen balance) हो जाता है। प्रत्येक तिक्तिरस की आवश्यकता 5 वर्ष के शिशु की अपेक्षा प्रथम वर्ष के शिशु को अधिक होती है।

पाचन, शोषण एवं चयापचय के दौरान जहाँ प्रोभूजन तिक्तिरस में परिवर्तित होकर शरीर के विभिन्न ऊतकों में पहुँच कर चयापचय होता है, वहीं पर कुछ विशिष्ट प्रोभूजन (Immunological) बिना किसी परिवर्तन के शोषित होते हैं।

प्लाज्मा प्रोभूजन (Plasma protein) एक स्वस्थ शिशु में 6 से 7.5 ग्राम/100 सी.सी. होता है। शुक्लि (Albumin) तथा आवर्तुलि (Globulin) का अनुपात 2:1 का होता है। तन्त्विजन (Fibrinogen) की मात्रा रक्त में 0.1 से 0.4 ग्राम/100 सी.सी. होती है।

प्रोभूजन के चयापचय में विकृति के परिणामस्वरूप जन्मजातीय कुछ व्याधियाँ होती हैं, जिन्हें "Inborn errors of metabolism" संवर्ग कहते हैं। यथा—

(1) Phenylketonuria—यह Autosomal recessive disease है, जो यकृत् में Phenylalanine hydroxylase की कमी दर्शाता है एवं मस्तिष्क-अपूर्णता (Mental abnormality) के लक्षण होते हैं।

(2) Leucine induced hypoglycemia—ल्यूसिन (Leucine) नामक तिक्तिरस के द्वारा इन्सुलिन का अधिक मात्रा में स्राव हो जाता है और रक्त में शर्करा की

Scanned with CamScanner

कमी हो जाती है । Beta-cell adenoma, Islet-cell hyperplasia आदि के रोगी बच्चों में Leucin की छोटी-सी मात्रा इस तरह का प्रभाव दिखाती है ।

(3) Maple syrup urine disease—यह भी Recessive disease है, (कुट्टिमदारु) Maple syrup जैसी गन्ध आती है; केन्द्रीय तन्त्रिकातन्त्र विकार प्रथम सात दिन में होता है । नवजात शिशुकाल में बच्चे को पिलाने में कठिनाई होती है, तन्त्रिकातन्त्र एवं मानसिक विकृति बढ़ती जाती है एवं कुछ माह में मृत्यु सम्भव है। Valine, Leucine तथा Isoleucine की मात्रा का बढ़ना ही इसका कारण है ।

(4) Histidinemia—यह भी सम्भवतः वंशानुगत व्याधि है । यकृत् में Histidine को Histidase enzyme, urocanic acid में बदल देता है । इस विकृति में Histidine की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप वाक्शक्ति एवं विकास में शिशु के दुष्प्रभाव पड़ता है ।

इस प्रकार की बहुत-सी व्याधियाँ 'Inborn Errors of Metabolism' शीर्षक अध्याय में Amino acid के चयापचय विकृति शीर्षक में देखी जा सकती है ।

शर्करा
(Carbohydrates)

भोजन के मात्रा की वृद्धि तथा आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति इसी के द्वारा होती है। शरीर में इसका संग्रह यकृत् एवं मांसपेशियों में ग्लाइकोजन के रूप में होता है, परन्तु इसकी मात्रा शरीर-भार का 1% ही होती है । बच्चों में यह मात्रा और भी कम होती है (लगभग 1:26) । यकृत्-भार का लगभग 15 प्रतिशत तथा मांसपेशी-भार का लगभग 3 प्रतिशत भाग ग्लाइकोजन के रूप में होता है । कुछ ग्लूकोज का जारण (Oxidation) सीधे मस्तिष्क में और हृदय में भी होता है । संग्रह के रूप में एकत्रित ग्लाइकोजन तथा जारण से बची हुई शर्करा शरीर में ही वसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है । इसमें Acetyl coenzyme A का प्रमुख भाग होता है । (विशेष विवरण क्रियाशारीर की पुस्तकों में देखिए) ।

इसके चयापचय सम्बन्धी विकारों में मधुमेह प्रमुख है । इसके अतिरिक्त Glycogen storage diseases वर्ग में बहुत-सी व्याधियाँ हैं । इसके अतिरिक्त ग्लूकोज असहिष्णुता (Glucose intolerance) तथा शर्करा पाचक रसों का आन्त्र में अभाव (Lactase, invertase, maltase) अतिसार एवं भोजन के ठीक से शोषण न होने के रूप में पड़ता है । (देखिए—Defects of carbohydrate metabolism)

वसा
(Fats)

जहाँ शर्करा शक्ति या ऊर्जा को तुरन्त प्रदान करने वाला पदार्थ है वहाँ वसा सान्द्र शक्तिदायक पदार्थ है । 35 प्रतिशत ऊर्जा शरीर को वसा से मिलनी चाहिए । वहीं पर उसमें 1-2 प्रतिशत Linolic Acid के रूप में भी होना चाहिए । इसकी कमी से बच्चे

Scanned with CamScanner

में शुष्कता, त्वचा का मोटा पड़ना, खुरण्ट बनना एवं जरा-सा भी घर्षण होने पर फफोले पड़ जाना (Intertrigo) आदि लक्षण हो जाते हैं।

वसा शरीर में जाकर वसाम्ल एवं ग्लिसराल (Fatty acid & Glycerol) के रूप में शोषित होकर चयापचय के बाद विभिन्न स्वरूपों में परिवर्तित होते हैं; यथा— पैत्तव (Cholesterol), प्रलवण (Esters), मधुरीमस्वीय (Glycerophosphate), विमेदेय (Lipids) आदि शेष भाग शरीर में संग्रह (Adepose tissue) हो जाता है। जो आवश्यकतानुसार ऊर्जा प्रदान करता है।

खनिज लवण एवं जीवतिक्तिय
(Minerals & Vitamines)

प्रत्येक खनिज एवं जीवतिक्तिय का शरीर के अन्तर्गत एक विशेष कार्य होता है। उसकी कमी से विभिन्न प्रकार के लक्षण तथा रोग पैदा हो जाया करते हैं। सभी का वर्णन यहाँ कर पाना कठिन है। आगे तालिका में सूक्ष्म रूप में आवश्यक मात्रा दे रहे हैं।

कुछ सामान्य आवश्यकताएँ

(1) खनिज लवण

पोटेशियम (Potassium)	1.5mEq/Kg.
सोडियम (Sodium)	2.0mEq/Kg.
जिंक (Zinc)	0.3 या अधिक mg /Kg.
आयोडीन (Iodine)	0.2mg.
ताँबा (copper)	0.05 से 0.1 मिग्रा./कि.ग्रा.
फ्लूरीन (Fluorine)	0.5 से 1 मिग्रा.
मैग्नेशियम (magnesium)	नवजात-40 से 70 मिग्रा. 1-3 वर्ष 100 से 150 मिग्रा. 3-12 वर्ष-200 से 300 मिग्रा. 12 से ऊपर 350 मिग्रा.

(2) जीवतिक्तीय

जीवतिक्तीय (Vitamins)	दैनिक आवश्यक मात्रा
A	1500-5000 IU
B_1	0.5-1.5 mg
B_2	0.5-2.5 mg
Niacin	8-24 mg

Scanned with CamScanner

जीवतिक्तीय (Vitamins)	दैनिक आवश्यक मात्रा
B_6	0.4-1.4 mg
B_{12}	1-1.5 mcg
Folic Acid	25-100 mcg
C	30-50 mg
D	400 IU
E	4-5 IU

यहाँ पर स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या इन 5 भोज तत्त्वों का ज्ञान आयुर्वेद के आचार्यों को था। मेरी स्पष्ट धारणा है कि पूर्ण ज्ञान था। उसका उन्होंने स्पष्ट विवेचन सूत्र रूप में दिया है। केवल आधुनिक तकनीकी भाषा में उसके प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता है। यहाँ वृद्धचाणक्य का एक सूत्र उद्धरित किया जा रहा है—

'अन्नं दशगुणं पिष्टं, पिष्टं दशगुणं पयः।
पयः अष्टगुणं मांसं, मासं दशगुणं घृतम्' ।।

अर्थात् अन्न (चावल, गेहूँ आदि) से दस गुना ऊर्जावान पिष्ट (दाल की पिष्टी), दाल की पिष्टी से दश गुना दूध, दुध से आठ गुना मांस एवं मांस से दश गुना ऊर्जावान घृत होता है।

आधुनिक तकनीकी शब्दों में इसका तात्पर्य है कि क्रमशः अन्न (शर्करा (HO), पिष्ट (प्रोभूजन), दुग्ध (संतुलित आहार), मांस (प्रथम श्रेणी प्रोभूजन) एवं घृत (Fat) अधिक ऊर्जावान होते हैं।

चरकसंहिता-सूत्रस्थान का अध्याय 26 एवं सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान के अध्याय 45 एवं 46 आहारोपयोगी द्रव्यों के वर्गीकरण से परिपूर्ण है। विस्तारभय से उसका सम्पूर्ण विवरण न देकर उसमें वर्णित वर्गों का यहाँ संकेत मात्र दिया जा रहा है—

चरकोक्त आहारोपयोगि वर्ग

1. शूकधान्य वर्ग - Carbohydrate, Polysaccharide
2. शमीधान्य वर्ग - Vegetable proteins
3. मांस वर्ग - First class proteins
4. शाक वर्ग - Minerals
5. फल वर्ग - Vitamines
6. हरित वर्ग - Food adjuvant
7. जल वर्ग - Water

Scanned with CamScanner

8. मद्य वर्ग - Alcohol + Carbohydrate - Monosaccharide
9. गोरस वर्ग - Balance diet
10. इक्षु वर्ग - Carbohydrate - Disaccharide
11. कृतान्न वर्ग - Prepared food
12. आहारयोनि वर्ग - Fat, oil & others

नोट—उपरोक्त आहारोपयोगी वर्ग के सामने प्रस्तुत आधुनिक तकनीकी शब्द विविध पदार्थों के महत्त्वपूर्ण संग्राहक हैं।

इसी प्रकार सुश्रुत ने सूत्रस्थान अध्याय 45 में द्रवद्रव्य का तथा अध्याय 46 में अन्नपान उपयोगी वर्ग का विवेचन किया है।

द्रवद्रव्य वर्गीकरण

1. जल वर्ग (Water)
2. क्षीर वर्ग (Milk)
3. दधि वर्ग (Curd)
4. तक्र वर्ग (Liquid curd)
5. घृत वर्ग (Ghee)
6. तैल वर्ग (Oil)
7. मधु वर्ग (Honey)
8. इक्षु वर्ग (Cane sugar)
9. मद्य वर्ग (Alcohol + Carbohydrate)
10. मूत्र वर्ग (Urine)

अन्नपान विषयक वर्ग (सुश्रुत)

1. शालिवर्ग - Carbohydrate
2. कुधान्य वर्ग - Carbohydrate + Fibrous
3. मुद्गादि वर्ग - Vegetable protein
4. मांस वर्ग - First class protein
5. फल वर्ग - Vitamins
6. शाक वर्ग - Minerals
7. पुष्प वर्ग -
8. लवण वर्ग - Salt
9. कन्द वर्ग - Carbohydrate
10. कृतान्न वर्ग - (Prepared food)
11. भक्ष्य वर्ग - (Edible)
12. अनुपान वर्ग - (Vehicle)

Scanned with CamScanner

नोट—सुश्रुतोक्त आहारोपयोगी वर्ग के सामने प्रस्तुत आधुनिक तकनीकी शब्द विविध पदार्थों/तत्त्वों के संग्राहक हैं ।

उपरोक्त वर्गों का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि आधुनिक तकनीकी शब्दों का प्रयोग न करते हुए भी भोज्य पदार्थों का इसी दृष्टि से आधुनिक वर्गीकरण की अपेक्षा आचार्यों ने श्रेयस्कर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है ।

आधुनिक काल में भी प्रोभूजन, शर्करा आदि स्वरूप में विस्तृत विवरण देने के बाद भी जब आहार-व्यवस्था की मर्यादा का उल्लेख होता है तो आयुर्वेद मनीषियों द्वारा वर्णित वर्गों का ही समावेश किया जाता है ।

ICMR नयी दिल्ली की विशेष रिपोर्ट सीरिज नं. 41 में आहार-व्यवस्था निर्धारित की गयी है । उसको यहाँ प्रस्तुत करने का तात्पर्य यह है कि वह मात्र आयुर्वेद में वर्णित आहार वर्ग की अनुकृति है ।

आहार वर्ग

आहार वर्ग	आहार द्रव्य (ICMR)	आयुर्वेद में वर्णित वर्ग
1.	Milk (Milk, Curds, Butter milk, Paneer, Milk powder) Pulses (Dals, Grams, Dried Peas & Beans) Meat etc. (Mutton, Beef, Poultry, Fish, Egg etc.)	**गोरस/क्षीर वर्ग** गोदुग्ध, स्त्रीदुग्ध, दधि, मन्थक, मठ्ठा आदि । **शमीधान्य/मुद्गादि वर्ग** मूँग, उड़द, चणक, मटर, सेम, केवांच राजमाष आदि **मांसवर्ग** बकरा, भेड़, मुर्गा, कबूतर, गोमांस, मत्स्य आदि
2.	Fruit (Papaya, Orange, Tomato, Lime, Mango, Apple etc.) Green leafy vegetable (Sag, Cabbage, Spinach etc.)	**फल वर्ग** सेव, आम, अनार, नीबू, नाशपाती, नारंगी, जामुन, बिल्व आदि । **शाक वर्ग** चौलाई, पोई, मेथी, बथुआ, पालक, बैंगन आदि ।
3.	Other Vegetable (Onion, Chillies, Brinjal, Radish, Ginger etc.)	**शाक वर्ग एवं हरित वर्ग** अदरख, जम्बीरी, मूली, धनिया, पलाण्डु लशुन, गाजर आदि ।
4.	Cereals (Rice, Wheat, Barly, Jowar, Bazra etc.)	**शूकधान्य/शालिवर्ग/कुधान्यवर्ग** शाली चावल, षष्ठी चावल, गोधूम, यव, ज्वार, बाजरा, कोदो आदि ।

Scanned with CamScanner

आहार वर्ग	आहार द्रव्य (ICMR)	आयुर्वेद में वर्णित वर्ग
	Starchy Vegetable (Potato, Jackfruit, Raw banana etc.)	**कन्दवर्ग** सिंघाड़ा, जिमीकन्द, वाराहीकन्द आदि
5.	Fats & Oils (Vegetable oil, Butter, Ghee etc.) Sugar (Jaggery, Cane sugar)	**आहारयोनिवर्ग/घृतवर्ग/तैलवर्ग** सर्षप तैल, वसा, मज्जा आदि । **इक्षुवर्ग** गुण, चीनी, मधु

उपरोक्त प्रस्तुतीकरण से स्पष्ट है कि आयुर्वेद के वर्गों का रूपान्तर ही आज भी प्रयोग किया जाता है । आधुनिक वैज्ञानिक जहाँ भोज्य पदार्थों के रासायनिक संगठन का ध्यान रखकर भोजन का निर्धारण करते हैं वहीं आयुर्वेद मनीषियों ने रासायनिक संगठन के साथ-साथ औषधीय गुणों को भी ध्यान में रखा है । तथा प्रकृति के अनुसार प्रत्येक वर्ग में विभिन्न प्रकृति एवं दोषों पर प्रभावी आहारोपयोगी द्रव्यों को रखा है । इसी कारण समान कैलोरी मात्रा रखते हुए भी शर्करा से प्रोटीन को 10 गुना ऊर्जावान माना है । यह स्कोर आज भी शोध का विषय है ।

उपरोक्त विवरण के साथ-साथ आहार विषयक गहन चिन्तन आचार्यों ने प्रस्तुत किया है । यथा—शाली चावल, षष्ठी चावल, मूँग, सैंधव, आँवला, यव, जल, दुग्ध, घृत एवं मधु स्वास्थ्य की दृष्टि से नित्य सेवनीय है । वहीं दही, उड़द, मछली, मांस एवं दुग्ध विकार का सेवन कभी-कभी करना चाहिए अन्यथा ये रोगोत्पादक हो जाते हैं ।

आहार निर्धारण में कुछ नियमों का पालन आवश्यक है । जिसे अष्ट आहार विधि विशेषायतन की संज्ञा दी गयी है; यथा—

क्रमांक	विशेषायतन	स्पष्टीकरण
1.	प्रकृति	उपभोक्ता एवं आहार द्रव्य की स्वभाव एवं प्रकृति
2.	करण	जल, अग्नि आदि के संस्कार द्वारा विशिष्ट गुणों का आधान (परिवर्तन)
3.	संयोग	दो विभिन्न द्रव्यों के संयोग द्वारा गुणों में परिवर्तन
4.	राशि	मात्रा (आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्गों का समावेश)
5.	देश	आहार द्रव्यों की उत्पत्ति का देश एवं उसके स्वभाव का चिन्तन
6.	काल	आहार द्रव्यों के ग्रहण के समय का विचार (ऋतु, दिन-रात)
7.	उपयोगसंस्था	उपयोग के नियम, कब ?, कितना ?, एवं मात्रा आदि
8.	उपयोक्ता	उपभोक्ता

Scanned with CamScanner

विशिष्ट खनिज एवं जीवतिक्तिय की वयानुसार उपयोगिता

वय	खनिज			जीवतिक्तिय						
	कैल्सीयम Ca (gm.)	फास्फोरस P (gm.)	लौह (Iron) Fe (mg.)	A (IU.)	B_1 Thiamine (mg.)	B_2 Riboflavin (mg.)	B_6 (mg.)	Niacin (mg.)	C (Ascorbic acid) (mg.)	D (IU.)
नवजात	0.6	0.5	15*	1500	0.5	0.6	0.4	8	35	400
1 से 3 वर्ष	0.8	0.8	15	2000	0.6	0.7	0.8	8	40	400
4 से 6 वर्ष	0.8	0.8	10	2500	0.8	0.8	0.8	11	40	400
7 से 8 वर्ष	1.0	1.0	10	3500	1.1	1.1	1.0	15	40	400
10 से 12 वर्ष	1.2	1.2	10	4000	1.3	1.3	1.2	17	40	400
13 से 15 वर्ष	1.4	1.4	18	5000	1.5	15	1.4	20	55	400
16 से 19 वर्ष	1.4	1.4	18	5000	1.5	1.5	1.4	20	60	400

*या 1 मि.ग्रा./कि.ग्रा.

Scanned with CamScanner

जल, प्रोभूजन, शर्करा एवं वसा प्राप्ति-स्त्रोत, कार्य एवं मात्रा में कमी या आधिक्य का परिणाम

पदार्थ	कार्य	अल्पता	आधिक्य	प्राप्ति-स्त्रोत
जल	कोशिका-संरचना, घोलनेवाला, Ions के लिए माध्यम, पोषक तत्त्वों एवं मल पदार्थों को ढोना, शरीर के तापक्रम का स्थिरीकरण ।	तृषा, जिह्वाशुष्कता, जलाल्पता, मूत्र का आपेक्षिक घनत्व बढ़ जाना, वृक्क के कार्यों में अवरोध ।	पेट फूलना, शिर:शूल, लवण रहित जल से ऐंठन, आक्षेप, शोथ एवं रक्त-परिभ्रमण स्तम्भ (Failure)।	जल स्वयं एवं प्राय: सभी भोजन ।
प्रोभूजन	ऊतक वृद्धि एवं टूट-फूट निर्माण हेतु तिक्तिरस का प्रदान करना, अम्लीय साम्यता (Acid base balance) में ions प्रक्रिया, Hemoglobin. Nucleoproteins Glycoprotein एवं Lipoprotein का निर्माण, पाचक रस, अङ्गरस, Antibodies का निर्माण, नख एवं बाल का निर्माण, ऊर्जास्रोत ।	पेट का बढ़ना, शोथ, फक्करोग, बालशोष (Kwasiorkor) (Marasmus protein calorie malnutrition)।	कोई विशेष नहीं Aminoacids एवं प्रोभूजन के चयापचय विकृति में दुष्प्रभाव पड़ता है ।	दूध, अण्डा, मांस, मछली, घरेलू मुर्गी, बत्तख, चूजे, सोयाबीन, दाले, अन्न,कड़े छिल्के के फल, मसूर आदि ।
शर्करा	ऊर्जा का आकस्मिक स्त्रोत, Antiketogenic, कोशिका-निर्माण, Antibodies ऊर्जास्त्रोत संग्रह, वसा में बदलना, resynthesis of aminoacids।	उपवास में अथवा आवश्यक कैलोरी की 15% से कम मात्रा में प्रोटीन ली जाती है तो Ketosis होना, शरीर का भार कम होना (यदि कुल कैलोरी कम हैं) ।	शरीर-भार में वृद्धि एवं विभिन्न व्याधियाँ यदि Inborn disease of Sugar Metabolism है।	दूध, अन्न, फल, शर्बत, शर्करा (Starch) एवं सब्जियाँ ।

Scanned with CamScanner

पदार्थ	कार्य	अल्पता	आधिक्य	प्राप्ति-साधन
वसा	ऊर्जा का घनीभूत स्रोत, रक्तवाहिनी, नाड़ी, आशय, आदि की सुरक्षा इसकी उपस्थिति से, शरीर के तापक्रम को ठीक रखना, जीवतिक्तिय रस A. D. E. K. के शोषण में सहायक (Vehicle), आमाशय देर में खाली होता है। अतिरिक्त प्रोमूजन, जीवतिक्तिय A, Thiamine, linoleic acid का उपक्रम भी है।	भोजन की सुरुचिता में कमी, शरीर-भार में कमी, त्वचा में परिवर्तन (यदि Linolelic acid की मात्रा कम है)।	शरीर-भार में वृद्धि, पारिवारिक Hyperlipidemia में उदर लक्षण, कुछ लोगों में अधिक Calories लेने से कष्ट होता है।	दूध, मक्खन, अण्डा, (Yolk) मांस, मछली, पनीर, छेना, वानस्पतिक तैल, कड़े फल, माता के दूध में 4 से 5% Linolic acid होता है। वानस्पतिक तैल यथा— सूर्यमुखी, मक्का, सोयाबीन में।

शिशु के लिए संतुलित आहार

	1 से 3 वर्ष		4 से 6 वर्ष		7 से 9 वर्ष		10 से 12 वर्ष	
आहार	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज (चावल-गेहूँ)	150	150	200	200	250	250	320	320
दाल	50	40	60	50	70	60	70	60
हरी पत्ते वाली सब्जी	50	50	75	75	75	75	100	100
अन्य सब्जियाँ	30	30	50	50	50	50	75	75
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
दूध	300	200	250	200	250	200	250	200
वसा एवं तैल	20	20	25	25	30	30	35	35
मांस, मछली, अण्डा	-	30	-	30	-	30	-	30
शक्कर एवं गुड़	30	30	40	40	50	50	50	50

Scanned with CamScanner

भोजन में पायी जाने वाली ऊर्जा तथा प्रोभूजन

भोजन-सामग्री (प्रति 100 ग्राम)	कैलोरी	प्रोभूजन (ग्राम)	भोजन-सामग्री (प्रति 100 ग्राम)	कैलोरी	प्रोभूजन (ग्राम)
गेहूँ	346	11.8	काजू	594	21.2
चावल	346	6.5	मूँगफली	549	26.7
गेहूँ आटा	348	11.0	सेब	55	0.3
मक्का	125	4.7	अनन्नास	46	0.4
सोयाबीन	432	43.2	सन्तरा	53	0.3
हरा चना	348	24.5	अमरूद	51	0.9
चने की दाल	347	24.0	टमाटर	20	0.9
अरहर की दाल	360	17.1	अनार	65	1.6
अरहर	372	20.8	आम	51	0.6
मटर (सूखी)	315	19.7	खूबानी	53	1.0
प्याज का साग	61	4.7	नीबू	57	1.0
सरसों का साग	34	4.0	लीची	61	1.1
पात गोभी	66	5.9	अण्डा	173	13.5
सोया, पालक	26	2.0	बकरी का मांस	118	21.4
बन्द गोभी	27	1.8	बकरे का मांस	194	18.5
प्याज	49	1.4	गाय का दूध	67	3.2
गाजर	48	0.9	भैंस का दूध	117	4.3
आलू	97	1.6	माता का दूध	95	1.1
शलजम	29	0.5	रोटी (Bread)	245	7.8
आँवला	58	0.5	साबूदाना	351	0.2
गोभी	30	2.6	शक्कर	398	0.1
कद्दू, लौकी	25	1.4	गुड़	383	0.4
French beans	48	3.8	घी या तेल	900	0.0
नारियल	662	6.8			

Scanned with CamScanner

भोजन की अन्य विशेषताएँ

(1) **मात्रा-वृद्धि** (Roughage)—भोजन की सब्जियों आदि में कुछ ऐसे भी रेशे (तत्त्व) होते हैं जिसका पाचन, शोषण आदि नहीं हो पाता। यह भोजन की मात्रा बढ़ाते हैं। यह मात्रा 170 से 300 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन तक हो सकती है। सामान्य सन्तुलित भोजन लेने वाले को यह मात्रा स्वयं मिल ही जाती है।

(2) **पाचन शक्ति**—भोजन का उचित रूप में पाक करके देना भी आवश्यक है। क्योंकि भोजन में दिया गया 92% प्रोभूजन, 95% वसा एवं 97% शर्करा अपक्व होती है। बनाकर देने से आसानी से पचने वाली हो जाती है। पाक में कुछ जीवतिक्तिय यथा C का नाश हो जाता है।

(3) **परितृप्ति या अतिभोजन** (Satiety)—भोजन को ग्रहण करने पर एक सन्तुष्टि महसूस होती है। दूध, मक्खन, अण्डा एवं वसा युक्त भोजन परितृप्ति गुण रखते हैं। शर्करा (Sugar) लेने पर आमाशयिक द्रवों का स्राव बढ़ता है, आमाशय देर से खाली होता है। रोटी, आलू आदि अपेक्षाकृत कम इस गुण के धारक हैं।

(4) **सुलभता**—चिकित्सक को स्थान-विशेष के उत्पादन, परिवार-विशेष की आमदनी, सात्म्यता आदि का ध्यान रखना भी आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त Bacterial synthesis, Antimicrobial agent, Endocrine factors, Radioactivity तथा मानसिकता आदि पर भी ध्यान दिया जाता है। यथा—एक बार Bacterial flora के आन्त्र में बन जाने पर जीतिक्तिय K सदैव शरीर में उपलब्ध रहता है। Neomycin जैसी औषधि बड़ों में कुपोषण पैदा करती है। कुछ खाद्य यथा—सोयाबीन, बन्द गोभी आदि Cobalt युक्त खाद्य शरीर में आयोडीन की माँग बढ़ा देते हैं। I - 131 दूध में, Cesium-137 मांस में एवं Strontium-90 गोदुग्ध में आदि भी पाये जाते हैं।

अन्नप्राशन एवं फलप्राशन संस्कार आदि के रूप में आचार्य सुश्रुत, वाग्भट एवं कश्यप के मत तो आहार के विषय में प्राप्त होते हैं; आश्चर्य की बात है कि महर्षि चरक पूर्णरूपेण इस विषय पर मौन ही रहे हैं। यह सम्भव है कि उस काल में बालकों के लिए अलग से विशेषज्ञ रहे हों या करीब-करीब आज की प्रथा के अनुरूप प्रारम्भ से ही सात्म्य, लघु, मधुर, सुसाधित अन्न एवं अन्य वस्तुएँ प्रयोग में माता-पिता के विवेक और प्रत्येक बालक के ग्रहण करने की अभिरुचि पर छोड़ दिया गया हो।

'ततः अनन्तरं यथेष्टम् पाययेत्'।

'.....मधुरमृदुलघुसुरभिशीतशङ्करं कर्म प्रवर्तयन्। एवं सात्म्या हि कुमारा भवन्ति। तथा ते शर्म लभन्ते चिराय। अरोगे.....। सम्पदमवाप्नोतीति'।

(च.शा. 8:64)

वैसे दुग्ध को पूर्णाहार सभी आचार्यों ने माना है तथा उचित मात्रा में प्रोभूजन, ऊर्जा, वसा आदि का समावेश इसमें सन्निहित है। यह भी सत्य है कि पाचनसंस्थान के

Scanned with CamScanner

अनेक पाचक रस कुछ वय-विशेष तक अनुपस्थित रहते हैं; यथा—Amylase आदि जो कि भोजन के जटिल तत्त्वों के पाचन के लिए आवश्यक हैं। अतः छठे मास से ही इन जटिल तत्त्वों का प्रयोग उचित है।

इसके बाद छोटी अवस्था के बालकों के लिए कोई अलग आहारविधि आयुर्वेद ग्रन्थों में नहीं मिलती है। मात्र कुछ सामान्य सिद्धान्त ही मिलते हैं। आहार मधुर, स्निग्ध, सौम्य, अतीक्ष्ण, सुपाच्य एवं बलकारक हो ऐसा विधान है। कुछ स्थानों पर विभिन्न ऋतुओं में आहार की विधि, आहार की मात्रा, रोगों में या शारीरिक संगठन के अनुकूल लङ्घन, बृहंण आहार का सेवन आदि मात्र मिलता है। इन सिद्धान्तों का संकेत अध्याय के प्रारम्भ में किया गया है।

वयानुसार कुछ सामान्य आहार

तृतीय-चतुर्थ मास—गौ या भैंस का दूध, फलों का रस, हरी सब्जी को उबाल कर उसमें नमक मिलाकर उसका पानी, अरहर या मूँग के दाल का पानी।

छठे मास के बाद—दूध, सादा उबला हुआ चावल, दाल डालकर खिचड़ी जिसमें सब्जी भी पड़ी हो, मूँग की खिचड़ी, खीर, आँटे या सूजी का हल्वा (घी कम), दलिया, दाल में रोटी, सत्तू, भूनी मूँगफली और गुड़ का लड्डू—इनमें से कोई भी एक या दो योग।

आलू, लौकी, परवर, तरोई, पालक पकाकर नमकयुक्त। केला, अमरूद, आम, पपीता, सेव आदि मीस कर दें।

सोयाबीन भिगोकर छिल्का उतार दीजिये, उसकी दाल बनाकर, सुखाकर, भूनकर आटा बनाकर आटे का प्रयोग करें; यथा—

एक कटोरी गेहूँ का आटा + 1/4 कटोरी सोयाबीन आटा का लड्डू या खीर बनाकर इसका प्रयोग 7 से 15 दिन पर करना चाहिए।

7-8 माह के शिशु को अरहर की दाल, दही (मीठी), छाछ, छेना, फटे दूध का पानी, अण्डा आदि भी दे सकते हैं।

समयानुसार आहारविधि

प्रातः 6-7 बजे	- दूध।
प्रातः 10 बजे	- पका चावल, दाल या खिचड़ी या सब्जी का सूप।
मध्याह्न	- केला, चीनी।
सायं 3 बजे	- दूध।
सायं 6 बजे	- फलाहार।
रात्रि 8 बजे	- उपरोक्त विधि से अन्न।
रात में सोते समय	- दूध।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 10

स्तन-प्रकरण

इस प्रकरण के अन्तर्गत दो विषय आते हैं, स्तन तथा धात्री या माता ।

स्तनसम्पत्

'तत्रेयं स्तनसम्पत्—नात्यूर्ध्वौ नातिलम्बावनतिकृशावनतिपीनौ युक्तपिप्पलकौ सुखप्रपानौ चेति (स्तनसम्पत्)' । (च.शा. 8:53)

'तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्यात्, लम्बस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत्'।। (सु.शा. 10:25)

'अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्सुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः । तस्मादेवंविधं स्तन्यं न पाययेत्' । (सु.शा. 10:29)

'अलम्बोर्ध्वचूचुकातिपीनहीनस्तनदोषमुक्तायुक्तचूचुकाधात्री' । (अ.सं.उ. 1:20)

'पीनोऽतिकन्धरास्तम्भं कुर्यादूर्ध्वाक्षमूर्ध्वगः ।
उच्छ्वासरोधान् लम्बोऽतिस्तनो जीवितसंशयम् ।।
न गर्भिण्याः पिबेत्स्तन्यं पारिगर्भिकवृद्धि तत्' ।। (अ.सं.उं. 1:38)

'नानास्तन्यस्य ह्यसात्म्यत्वान्नानाविधा व्यापदो भवन्ति' ।

'अपरिस्रुते चातिस्तन्यपूर्णस्तनपाणेनोत्स्नेहनात् कासश्वासज्वरच्छर्दिषां सम्भवः' । (अ.सं.उं. 1:23)

स्तन का अति ऊर्ध्व न होना, अति लम्बा न होना, अधिक कृश न होना, अधिक मोटा न होना तथा स्तन में स्तनचूचुक उचित रूप से कुछ ऊचाँ उठा हुआ हो तथा चूचुक ऐसा हो कि बालक अपने मुख से लगाकर सुखपूर्वक दूध पी सके । ऐसा स्तन उत्तमता का प्रतीक है ।

आचार्य चरक मात्र दोषों को बताकर मौन हो गये हैं परन्तु आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट ने दोषों से होने वाले परिणाम भी बताये हैं ।

ऊर्ध्वस्तन के कारण करालता (सु.) या ऊर्ध्वदृष्टि (अ.सं.) (स्तन ऊँचे होने के कारण दूध पीते समय बालक को ऊँचा देखना पड़ता है और अभ्यास बन जाने से उसकी दृष्टि वैसी ही रह जाती है ।) लम्बस्तनी होने से दूध पीते समय शिशु के नाक व मुख

Scanned with CamScanner

दोनों ही दब जाते हैं जिससे श्वासावरोध के कारण मृत्यु की सम्भावना रहती है। अतिस्थूल स्तन के कारण दबाव से ग्रीवाभंग की सम्भावना होती है।

गर्भिणी धात्री के स्तनपान कराने से पारिगर्भिक रोग एवं/या गर्भज फक्क रोग हो जाता है। बार-बार दूध बदलने से असात्म्य होने से बच्चों को नाना प्रकार के रोग होते हैं। दूध पिलाने से पूर्व थोड़ा-सा दूध निकाल देने से स्तनों के भरे रहने पर एकदम से दूध आने के कारण बच्चे को होने वाले कास-श्वास-ज्वर की सम्भावना नहीं रहती है।

हमारा शिशु जन्म के तुरन्त बाद पूर्णरूपेण सन्तुलित बने-बनाये आहार के लिए माँ के दूध पर ही निर्भर हो जाता है। जो प्रकृति ने उसी के लिए बनाया है। स्तनपान कराने से माता एवं शिशु दोनों को ही पूर्णरूपेण मानसिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। प्रथम बार गर्भिणी माता को स्तनपान कराने के लिए तैयार करना भी चिकित्सक का कर्तव्य है। साथ-ही-साथ कुछ ऐसी अवस्थाएँ भी हैं जिसमें स्तनपान निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त भी कुछ समस्याएँ हैं जो स्तनपान में आती हैं, उनकी व्याख्या नीचे दी जा रही है—

स्तनपान कराने के लिए माँ की तैयारी—गर्भिणी परिचर्या काल से ही विशेषतया प्रथम बार गर्भवती माता को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्तनपान हेतु तैयार करना चाहिए। स्तन चूचुक की सफाई, यदि वे दबे हुए हों तो उनको उठाना, यदि चूचुक में विदार हो तो उसकी चिकित्सा कर देनी चाहिए। मात्र इतनी व्यवस्था कर देने से ही प्रायः स्तन्य का न आना या कम आना जैसी समस्याओं का निदान तथा माता एवं शिशु के मधुर सम्बन्ध बन जाते हैं।

स्तनपान का निषेध—हमारे आचार्यों ने स्तनसम्पत् में जिन लक्षणों का उल्लेख किया है, वे शारीरिक संरचना पर आधारित हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ समस्याएँ हैं। यथा—

न च क्षुधितशोकार्त्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्त-विरुद्धाहारतर्पिताया: स्तन्यं पाययेत्; नाजीर्णौषधं च बालं, दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात्। भवन्ति चात्र—

'धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा।
दोषा देहे प्रकुप्यन्ति तत: स्तन्यं प्रदुष्यति॥
मिथ्याऽऽहारविहारिण्या दुष्टा वातादय: स्त्रिया:।
दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधय: शिशो:।
भवन्ति कुशलस्तांश्च भिषक् सम्यग्विभावयेत्'॥

(सु.शा. 10:34-36)

'न तु क्षुधितशोकार्तश्रान्तक्रुद्धप्रदुष्टधातुगर्भिणीविरुद्धाहारभुक्तानां स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधं च बालमिति। भवति चात्र। (अ.सं.उ. 1:25)

Scanned with CamScanner

भूख लगी हुई, शोक से पीड़ित, थकी हुई, जिसकी धातुएँ दुष्ट हो गयी हों, गर्भिणी, ज्वर, अतिक्षीण, अतिस्थूल, विदाहजनक एवं विरुद्ध आहारसेवी धात्री का स्तन-पान निषिद्ध है। दोष, औषधि, खाये हुए द्रव्य की तीव्र वेगोत्पत्ति के डर से, औषधि का पाचन (Metabolism) जब तक न हो जाय स्तनपान न करायें।

(1) गरिष्ठ, विषम, दोषोत्पादक आहार
↓
धात्रीशरीर दोष का प्रकोप - - → दुग्ध का दूषित होना
↓
(2) मिथ्या आहार-विहार - - - - - → शिशु को शारीरिक व्याधियाँ
↓ ↑
वातादि दोषप्रकोप ——→ दुग्ध का दूषित होना

(1) रोगिणी माता— राजयक्ष्मा, प्रसवोपरान्त पागलपन (Puerperal insanity), चेचक आदि संक्रामक व्याधियों में स्तनपान निषिद्ध है। तीव्र स्वरूप के संक्रामक फुफ्फुससंक्रमण (Pneumonia), विषमज्वर (Enteric fever), विसूचिका, प्रसवोपरान्त संक्रमण (Puerperal sepsis) आदि अवस्थाओं में माता का स्वास्थ्य ही स्तन-पान कराने के लायक नहीं होता है। तीव्र स्वरूप का पाण्डु, अपस्मार तथा हृदय की व्याधियाँ आदि अवस्थाओं में माता-विशेष में स्तनपान निषिद्ध है।

(2) मातृज विकृति—स्तनविद्रधि, स्तनविदार (Fissures) एवं दबी हुई चूचुक।

(3) शिशु में विकृति—समय-पूर्व प्रसव (Prematurity), प्रसवकालीन आघात तथा विकृतियाँ; यथा Hare lip with cleft palate, जन्मजात हृदयरोग, Oesophageal fistula आदि।

उपर्युक्त अवस्थाओं में जहाँ कुछ काल के बाद स्तनपान कराना सम्भव हो, हाथ या स्तनचूषण पम्प (Breast pump) से दूध निकालते रहना चाहिए। जिससे दूध का बनना बन्द न होने पाये। अवस्था-विशेष, माता-विशेष एवं शिशु की अवस्था पर प्रत्येक रोगी के अनुसार विचार आवश्यक है।

नवजात शिशु के स्तनपान में सामान्य समस्याएँ

(1) प्रथम प्रसवा माता—प्रथम बार गर्भिणी होने वाली माता की कुछ मानसिक समस्याएँ होती हैं; यथा—तनाव, कष्ट का भय, विश्वास की कमी आदि। प्रथम कुछ दिनों तक दूध का कम होना भी एक समस्या होती है। इन अवस्थाओं में चिकित्सक द्वारा स्त्री में आत्मविश्वास जागृत करना, स्तनपान का लाभ आदि बताना हितकर होता है।

(2) रचनात्मक विकृति—जिनकी गणना ऊपर की जा चुकी है, गर्भिणी परिचर्या के दौरान उचित देख-रेख काफी हद तक इस समस्या को सुलझा देती है। माता को

Scanned with CamScanner

हाथ से प्रथम कुछ दिन तक दबाकर दूध पिलाना, चूचुक को बाहर खींचना आदि सिखा देना चाहिए।

(3) **वमन** (Regurgitation)—कभी-कभी स्वस्थ शिशु स्तनपान के प्रारम्भ या अन्त में कुछ वमन कर देते हैं किन्तु उनका भार सामान्य रूप से बढ़ता रहता है। ऐसा दूध पीते समय वायु का भी पान कर लेने से होता है। दूध पिलाने की उचित विधि, दूध पिलाने के बाद माँ द्वारा कन्धे पर बच्चे को लिटाकर थपथपाना एवं दायीं करवट लिटाने से यह समस्या हल हो जाती है।

(4) **पाचनतन्त्र विषयक**—स्तनपायी शिशु लघुस्थूल (Semi solid) सुनहरे पीले वर्ण का चिपचिपा मल त्याग करते हैं। यह आहार में Lactose के मात्राधिक्य के कारण होता है। गो-दुग्धपायी शिशु में मलबन्ध Casein-curd के कारण हो जाया करता है। जिसे मात्र Glucose-water एवं अतिरिक्त शर्करा देकर ठीक कर सकते हैं।

(5) **स्तनपान एवं मात्रा**—अधिक मात्रा की समस्या तो प्रायः कम आती है। परन्तु मात्रा में अल्पता कम दूध होने से हो जाया करती है। इसके लिए ऊपर से दूध देना पड़ सकता है। कभी-कभी उसमें जल मिला देने से यद्यपि पेट तो भरता है पर शिशु के विकास पर प्रभाव पड़ता है। यह समस्याएँ भी आसानी से हल हो जाती है।

धात्री-प्रकरण

नित्य संशोधन में लगी हुई धात्री प्रशस्त मानी जाती है। अर्थात् दूध पिलाने वाली धात्री का नित्य संशोधन होने से उसके दूध का भी शोधन हो जायेगा और बालक रोग-ग्रस्त नहीं होंगे।

'तस्मात् संशोधनपरा नित्यं धात्री प्रशस्यते'। (का.सू. 19 पृ. 6)

'धात्री पुत्रशरीरार्थं स्वशरीरोपशोषणम्।
स्नेहात् प्राप्नोति सुबहून् क्लेशांश्चान्यान् सुदारुणान्॥
आशास्नेहकृपाधर्माद्रक्षणार्थं च मातरः।
सहन्ते सर्वदुःखानि मानिनी चात्र कीर्त्यते॥
गर्भात् प्रभृति बालोऽपि·····।
अधिकं पीड्यते दुःखैरकुर्वन्नपि तत् स्वयम्॥
तस्माच्च धात्री सततं शुभचेष्टाऽशनस्थितिः।
माता भवति पुत्राणां भुंक्ते पुत्रफलानि च'॥

(का.चि.धात्रीचि. पृ. 145)

धात्री स्नेहवश पुत्र-शरीर के लिए अपने शरीर का शोषण करती है तथा अन्य अनेक दारुण कष्ट सहती हैं। आशा, स्नेह, कृपा, धर्म तथा बालक की रक्षार्थ माताएँ सभी दुःख वहन करती हैं तथा इसमें वे अपना मान अनुभव करती हैं। गर्भ से लेकर बालक भी स्वयं प्रतिकार न कर सकने के कारण अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित होता

Scanned with CamScanner

है। अतः धात्री निरन्तर अपनी शुभ चेष्टा एवं आहार-विहार के द्वारा अपने पुत्रों की माता होकर पुत्ररूपी फल का उपभोग करती है।

धात्री-परीक्षा
(गुण-दोष विवेचन)

'अतो धात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः। अथ ब्रूयात्—धात्रीमानय समानवर्णां यौवनस्थां निभृतामनातुरामव्यङ्गामव्यसनामविरूपामजुगुप्सितां देशजातीयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातां वत्सलामरोगां जीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामनुच्चारशायिनीमनन्त्या-वसायिनीं कुशलोपचारां शुचिमशुचिद्वेषिणीं स्तनस्तन्यसम्पदुपेतामिति'। (च.शा. 8:52)

जो धात्री बालक के समान वर्ण (जाती) की हो, युवती हो, विश्वासपात्र एवं नीरोग हो, हीन या अधिकांगी न हो, दुर्व्यसन-विहीन हो; कुरूप, निन्दित स्वभाव व वेश वाली न हो, जिस देश का बालक हो उसी देश की हो, क्षुद्र एवं क्षुद्रकार्य करने वाली न हो। उत्तम कुल की, बालक से स्नेह रखने वाली, जीवित पुत्र वाली, पुँ-सन्तान वाली, दूधा-धिक्य वाली हो, मतवाली, अतिशयन करनेवाली न हो, बालक के मल-मूत्र पर सो सके, सफाई रखने वाली हो, धर्म व आचरण से पतित न हो, सेवा-कुशल, पवित्र, अस्वच्छता से द्वेष रखने वाली, स्तन एवं स्तन्यसम्पत् युक्त हो—ऐसी धात्री श्रेष्ठ है।

आचार्य सुश्रुत ने कुछ भिन्न लक्षण कहे हैं; यथा—वर्ण की, मध्यम शरीर व आयु की, नीरोग, सुशील, शान्त स्वभाव की हो। लोभी, अतिकृश या स्थूल, लम्बे ओष्ठ, स्तनदोष युक्त न हो। प्रसन्न दूध वाली, अव्यङ्ग, व्यसन रहित, जीवितवत्सा, बहुदुग्धा, प्यार करने वाली, नीच कर्म न करने वाली, उत्तम कुल की हो। अतः अनेक उत्तम गुणों से युक्त तथा श्यामा धात्री को बालक के आरोग्य और बल वृद्धि के लिए रखना चाहिए।[1] सुश्रुत टीकाकार डल्हण का कहना है कि श्यामवर्ण की धात्री प्रचुर दूध वाली होती है।[2]

वाग्भट ने संक्षेप में लक्षण कहें हैं—

'मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तद्धयलं देहवृद्धये।
स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये तदसम्पदि वत्सले॥
अव्यङ्गे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः समे।
नीरुजे मध्यवयसी जीवद्वत्से न लोलुपे॥
हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्च ते'॥ (अ.ह.उ. 1:15-16)

---

1. ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयस्का(सा)मरोगां शीलवतीमचपलाम-लोलु ामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलम्बौष्ठीमलम्बोर्ध्वस्तनीमव्यङ्गामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य। (सु.शा. 10:25)
2. श्यामा हि प्रायशः प्रचुरक्षीरा भवति। (डल्हण)

Scanned with CamScanner

'अथास्य समानवर्णा मध्यमवयाः शुचिरलोलुपानिभृतानातुरा जीवद्वत्सा वत्सला दक्षिणा ब्रह्मचारिण्यव्यङ्गा बहुक्षीरा शुक्लाम्बराचारा दीर्घह्रस्वादिदेहदोषाष्टकरहिता' । (अं.सं.उ. 1:20)

'बच्चे को माँ का ही दूध पीना चाहिए, क्योंकि यह शरीर की वृद्धि के लिए पर्याप्त है, माता का दूध न होने पर दो धात्रियों को दूध के लिए रखना चाहिए । ये दोनों प्रेमवाली, व्यङ्ग रहित अर्थात् पूर्ण अङ्गवाली, ब्रह्मचारिणी, समान वर्ण-प्रकृति वाली, निरोगी, मध्यमवय की, जिसके बच्चे जीवित हों, लालची न हो, और हितकर आहार-विहार करने वाली धात्री श्रेष्ठ है ।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने इन मतों का संकलन कर कहा है—समान वर्ण की, मध्यमवय की, स्वच्छ हो, लोलुप न हो, शान्त, नीरोग, जीवित पुत्र वाली, बालक की प्रेमी, कुशल, ब्रह्मचारी, अव्यङ्ग, अति दूध वाली, श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली, अष्टनिन्दित दोष रहित होनी चाहिए ।

उपरोक्त बताये गये सभी गुण-अवगुण को देख कर हम कह सकते हैं कि धात्री के गुण-दोषों का विवेचन निम्न आधार पर किया गया है—

1. मानसिक स्थिति—सात्त्विक ।
2. शारीरिक पूर्णता—स्वास्थ्य ।
3. कुलीन वर्ण की या समान वर्ण की धात्री ।

धात्री के कर्म

'धात्री तु यदा स्वादुबहुलशुद्धदुग्धा स्यात्तदा स्नातानुलिप्ता शुक्लवस्त्रं परिधायैन्द्रीं ब्राह्मीं शतवीर्यां सहस्रवीर्याममोघामव्यथां शिवामरिष्टां वाट्यपुष्पीं विष्वक्सेनकान्तां वा बिभ्रत्योषधिं कुमारं प्राङ्मुखं प्रथमं दक्षिणं स्तनं पाययेत् । इति धात्रीकर्म' । (च.शा. 8:58)

'ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातमहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीं चोपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत्' ।

'चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिनः ।
भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये ।।
पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा' ।। (सु.शा. 10:25-27)

'अथ धात्री स्नातानुलिप्तानित्यमहतवासाः सुमनाः प्रजास्थापनौषधीः शिरसा बिभ्राणा प्राङ्मुखी स्तनं प्राग्दक्षिणं धौतमीषत्परिस्रुतं पाययेत्' ।। (अ.सं.उ. 1:22)

जब धात्री अधिक मधुर एवं शुद्ध दूधवाली मिल जाय तो दूध पिलाने के पूर्व स्नान कर ले । अपने शरीर एवं स्तनमण्डल पर चन्दन का लेप कर ले और सफेद धुला हुआ

Scanned with CamScanner

वस्त्र धारण कर ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या, अमोघा, अव्यथा, शिवा, अरिष्टा, वाट्यपुष्पी (महाबला) तथा विश्वक्सेनकान्ता (वाराहीकन्द) इन 10 औषधियों को या जो उपलब्ध हो सकें उनको धारण कर पूर्वमुख बैठकर बालक को प्रथम दक्षिण स्तनपान कराने का विधान चरक ने किया है। आचार्य सुश्रुत ने मन्त्रकर्म को महत्त्व दिया है। औषधियों का विवेचन नहीं किया है (मन्त्र ऊपर द्रष्टव्य है)। अष्टांगसंग्रहकार ने कहा है कि धात्री स्नान करके शरीर पर सुगन्धित द्रव्य धारण कर (चरकोक्त ऐन्द्री, मूर्वा आदि) प्रजास्थापन द्रव्य शिर पर धारण कर, प्रसन्न मन से, पूर्वाभिमुख होकर पहले दक्षिण स्तन-पान कराये। स्तनपान के पूर्व स्तन को धो लें तथा दूध निकाल दें।

धात्रीचिकित्सा-प्रकरण

आचार्य कश्यप ने धात्री की चिकित्सा पर एक पूरा अध्याय ही वर्णित किया है। यद्यपि अध्याय अपूर्ण है, परन्तु विषय का महत्त्व प्रदर्शित करता है।

(का.सं.चि. धात्रीचि. अध्याय)

'सुखं दुःखं हि बालानां धात्रीमूलमसंशयम्'।

बालकों के सभी दुःख व सुख धात्री पर आश्रित करते हैं।

'.....।
तीक्ष्णस्य बृंहणं नित्यं मन्दाग्नेर्दीपनक्रिया ।।
पथ्याशनं तु सततं विषमाग्नेः सुखावहम्।
कल्याणकं षट्पलं वा प्रयोगेनोपयुज्यते ।।
यथाबलं यथायोगं पञ्चक.....।
.....। ..... ति यथाविधि' ।।

तीक्ष्णाग्नि वाले का बृंहण, मन्दाग्नि का दीपन एवं विषमाग्नि को सदा पथ्य का सेवन सुखकर है। इसमें कल्याणक घृत या षट्पल घृत का प्रयोग करना चाहिए एवं आवश्यकतानुसार पञ्चकर्म का प्रयोग करें। (कल्याणक घृत का वर्णन पृष्ठ 147 पर देखिए।)

षट्पलघृत—सैंधव, यवक्षार, पिप्पली, गजपिप्पली, शुण्ठी एवं चित्रक इनको पृथक्-पृथक् समभाग लेकर (कुल 6 पल) दूध 1 प्रस्थ तथा घृत 1 प्रस्थ लेकर यथाविधि पाक करें। यह षट्पल घृत है जो सर्व गुल्मनाशक हैं।

'सैन्धवं यावशूकश्च पिप्पली हस्तिपिप्पली।
शुण्ठी चित्रक इत्येषां षड्भागाः पलिका पृथक् ।।
तुल्यक्षीरं घृतं प्रस्थं पक्वं षट्पलमुच्यते।
षट्पलं सर्वगुल्मेषु वैद्याः प्राहुर्यथाऽमृतम्' ।।

(का.चि.गुल्मचि. 25:26)

Scanned with CamScanner

'म्रक्षणोद्वर्तनस्नानं शुक्लाम्बरनिषेवणम् ।
मृष्टमन्नं सुखा ..... । .....।
..... (ध)र्मरतिर्धात्रीणां सुखहेतवः ।
मेदस्विनीनां धात्रीणां सिराकर्म प्रशस्यते ।।
स्नेहस्वेदोपपन्नानामूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
ततः सा मेदसि क्षीणे स्रोतःसु विवृतेषु च ।
..... । ..... यो रसः ।
कृशां च नष्टपुष्पां च बृहंयेत्तेन सिद्ध्यति' ।।

धात्री की मालिश, उबटन, स्नान, शुभ्रवस्त्र धारण, पवित्र अन्न का ग्रहण करना .....ये धात्री के धर्म, रति एवं सुख के कारण हैं । स्थूल (मेदस्वी) धात्री का सिरावेध, स्नेहन-स्वेदन कराकर धात्री का ऊर्ध्व एवं अधो शोधन करना चाहिए । इससे मेद के क्षीण होने से स्रोतसों के खुल जाने से धात्री स्वस्थ हो जाती हैं । कृश एवं नष्टपुष्पा धात्री का बृंहण करना चाहिए ।

'न तूपयोजयेत् क्षारं क्षारप्रायौषधानि वा ।
प्रजाविनाशनः क्षारो धात्रीणां स न शस्यते' ।।

धात्री में क्षार-प्रधान औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए । क्षार सन्तान का नाश करने वाला होने से धात्री के लिए प्रशस्त नहीं है ।

'अजीर्णं चापि धात्रीणां नित्यमेव न शस्यते ।
अजीर्णदूषि(ता दोषा धात्रीणां जनयन्ति हि) ।।
.....(ऽ) रुचिग्लानिमदमोहविचर्चिकाः ।
पामाकुष्ठालजीगुल्महृद्रोगश्वासकासकाः ।।
हिक्कातन्द्राश्रमश्वासच्छर्द्यपस्मारविग्रहाः ।
रक्तपित्तभ्रमोन्मादशूलशोषगलग्रहाः ।
ऊरुस्तम्भः ससंन्यासस्तथाऽन्ये च महागदाः' ।।

धात्री को कभी अजीर्ण नहीं होना चाहिए । अजीर्ण से दूषित हुए दोष धात्री में अरुचि ग्लानि, मद, मोह, विचर्चिका, पामा, कुष्ठ, अलजी, गुल्म, हृद्रोग, श्वास, कास, हिक्का, तन्द्रा, श्रम-श्वास, छर्दी, अपस्मार, ग्रहरोग, रक्तपित्त, भ्रम, उन्माद, शूल, शोष, गलग्रह, ऊरुस्तम्भ, संन्यास तथा अन्य भी बहुत-से भयङ्कर रोग पैदा करते हैं ।

सामान्य चिकित्सा

'स्नेहपानात् प्रसूतानां षष्टिमल्लकभक्षणात् ।
अतिमात्राशनाच्चैव विरुद्धाजीर्णभोजनात् ।।
षष्ठिग्रहः कुमाराणां जायते देहनाशनः ।

Scanned with CamScanner

असाध्यश्चानुष(ङ्गी च)·····।।
·····(मिता)हारा धर्मशीला तपस्विनी ।
जीर्णाशिनी च सततं षष्ठीमतितरत्यसौ ।।
प्राप्तायां वञ्चनायां च पञ्चकर्माणि कारयेत् ।
अथवा तपसोग्रेण शिवं स्कन्दं च तोषयेत्' ।।

प्रसूता स्त्रियों के स्नेहपान, साठी चावल और मल्लक (मत्स्य) के खाने, अधिक मात्रा में खाने, विरुद्ध भोजन तथा अजीर्ण भोजन से देह को नष्ट करने वाला बालकों को षष्ठीग्रहरोग उत्पन्न होता है । यह असाध्य अनुषङ्गी रोग है । इसमें मिताहारी, धार्मिक स्वभाव वाली, तपस्विनी तथा पूर्व भोजन के जीर्ण हो जाने पर अगला भोजन करने वाली धात्री षष्ठी नामक ग्रहरोग से मुक्त हो जाती है । इन उपर्युक्त उपचारों से ठीक न होने पर पञ्चकर्म करना चाहिए । या तीव्र तपस्या द्वारा भगवान् शिव एवं स्कन्द को तुष्ट करना चाहिए ।

बलातैल निर्माण एवं प्रयोग

'बलामूलतुला धौता दशमूलं शतावरी ।
गुडूची रोहिषं रास्ना वृश्चिकाली पुनर्नवा ।।
वृषः सहचरोशीरसारिवामूर्वच··· ! ··· ! ···
····· काकजङ्घांऽशुमत्यपि ।।
अश्वगन्धा मृगैर्वारुः कालाऽथ नवमालिका ।
अतिमुक्तकशार्ङ्गेष्टाकपित्थं त्रिफलेति च ।।
दशमूलात् प्रभृत्येते भागा दशपलाः स्मृताः ।
यवाः कुलत्था माषाश्च····· ! ····· ! ····· ।।
·····(जल)द्रोणे चतुर्भागावशेषिते ।
तं कषायं परिस्राव्य पुनरग्नावधिश्रयेत् ।।
अथेमान्यौषधान्यत्र पलिकानि निधापयेत् ।
द्वे मेदे द्वे हरिद्रे च काकोल्यौ वृषजीवकौ ।।
माषपर्णी ····· ! ····· !!
त्वक्पत्रचन्दनोशीरं द्वे बले लवणद्वयम् ।।
मूर्वा श्वदंष्ट्रा शार्ङ्गेष्टा श्यामा द्राक्षा सुरोहिणी ।
मधुकं हस्तिपिप्पल्यः कुष्ठं व्याघ्रनखं वचा ।।
सूक्ष्मैलागुरुकाश्मर्यः शतपुष्पा परूषकम् ।···।··· नि च ।
शङ्खपुष्पी विशल्या च वृश्चिकाली मधूलिका ।।
दाडिमानि चाम्लानि गुग्गुल्वादि सुगन्धि च ।
अक्षोटं पनसं भव्यं प्राचीनामलकानि च ।।

Scanned with CamScanner

शतावरी विदारी च मधुपर्णी विषाणिका ।
..... ! ..... (क)षायार्धाढकं भवेत् ।।
लवङ्गपुष्पं कर्पूरं स्पृक्काऽथ कटुकाफलम् ।
आढकं तिलतैलस्य क्षीरद्रोणं च पाचयेत् ।।
तत् सिद्धं प्रतिसंहृत्य बलातैलं निधापयेत् ।
घृतभाण्डे दृढे दान्ते..... ! ..... ! ..... ।
..... सां म्रक्षणेषु (प्र)शस्यते ।।
शाखागतं कोष्ठगतमस्थिमज्जसिरागतम् ।
बहिराभ्यन्तरायामं हनुस्तम्भं शिरोभ्रमम् ।।
एकपक्षवधं शोषम्लानकार्दितगुल्मिनम् ।
बधिरं वेप(मानं च)..... ! ..... !
..... (ऽ)पस्मारमुन्मादं कटपूतनाम् ।।
कर्णशूलं शिरःशूलं ब्रध्नं मारुतकुण्डलम् ।
अशीतिं वातिकान् रोगान् योनिदोषांश्च विंशतिम् ।।
रेतोदोषान् ग्रहान् सर्वान् बलातैलमपोहति ।
वृद्ध्यां..... ! ..... ! ....ज्वरे जीर्णे तृतीयकचतुर्थके ।।
नारीणां दुष्प्रजातानां योनिशूले श्रमेषु च ।
नानातिसारज्वरयोः कफरोगेषु सर्वशः ।
नाजीर्णकृशमूर्च्छासु न च्छर्द्यां च प्रयोजयेत्' ।।

धोकर शुद्ध की हुई बलामूल 1 तुला तथा दशमूल, शतावरी, गिलोय, रोहिषतृण, रास्ना, वृश्चिकाली, पुनर्नवा, बांसा (वृषः), सहचर, खस, सारिवा, मूर्वा.....काकजङ्घा, अंशुमती, अश्वगन्धा, मृगैर्वारु, काला (निशोथ), नवमालिका, अतिमुक्तक, शाङ्गेष्टा, कपित्थ, त्रिफला, दशमूल—प्रत्येक 10 पल; यव, कुलथी एवं माष..... । जल 1 द्रोण। इन्हें पकाकर 1/4 भाग रहने पर उस कषाय को छानकर पुनः आग पर रखकर निम्न औषधियाँ 1-1 पल की मात्रा में डालें—मेदा, महामेदा, हरिद्रा, काकोली क्षीरकाकोली, वासा, जीवक, माषपर्णी.....', दालचीनी, तेजपत्र, चन्दन, खस, बला, अतिबला, लवण-द्वय, मूर्वा, गोक्षुर, शाङ्गेष्टा, श्यामा, द्राक्षा, कुटकी, मुलहठी, गजपिप्पली, कुष्ठ, व्याघ्रनख, वच, छोटी एला, अगर, गम्भारी, सौंफ, परूषक, शंखपुष्पी, विशल्या, वृश्चिकाली, मधूलिका, अनार आदि अम्ल पदार्थ, गुग्गलु आदि सुगन्ध द्रव्य, अखरोट, कटहल, भव्य (ओट), पुराना आँवला, शतावरी, विदारीकन्द, मधुपर्णी, विषाणिका, लवङ्गपुष्प, कपूर, स्पृक्का, कटुकाफल—इनका कषाय 1/2 आढक। तिलतैल 1 आढ़क, दूध 1 द्रोण—इन सबको मिला कर पकायें। सिद्ध होने पर इस बलातैल को एक दृढ़ एवं हाथीदाँत के बने घृतयुक्त बर्तन में रखें। अभ्यंग हेतु प्रशस्त है।

Scanned with CamScanner

शाखा, कोष्ठ, अस्थि, मज्जा एवं सिरागत रोग, बाह्यायाम तथा अन्तरायाम, हनुस्तम्भ, शिरोभ्रम, एकाङ्गवध, पक्षवध, शोष, म्लानक, अर्दित, गुल्म, बधिरता, कम्प, अपस्मार, उन्माद, कटपूतना, कर्णशूल, शिरःशूल, ब्रध्न, वातकुण्डलिका, 80 वातरोग, 20 योनिरोग, वीर्यदोष, सम्पूर्ण ग्रहरोग को नष्ट करता है । इनके अतिरिक्त वृद्धि·····जीर्ण-ज्वर, तृतीयक, चतुर्थक ज्वर, दुष्प्रजाता, नारियों के योनिशूल, श्रम एवं अनेक प्रकार के अतिसार एवं ज्वर तथा सम्पूर्ण कफज रोगों में प्रयोग करना चाहिए परन्तु अजीर्ण, कृशता, मूर्च्छा एवं छर्दि में प्रयोग निषिद्ध है ।

विशेष—काश्यपोक्त इस तैल के वर्णन का काफी भाग विनष्ट होने से योग पूर्ण नहीं है । इस हेतु चरकसंहिता-चिकित्सास्थान के अध्याय 28 वातव्याधिचिकित्सा का बलातैल (सूत्र 148-156) तथा अध्याय 29 का शत या सहस्रपाक बलातैल (वातशोणितचिकित्सा-अध्याय का सूत्र 119-127) द्रष्टव्य है । अथवा—अष्टाङ्गहृदय-शारीरस्थान अ. 2 'गर्भव्यापत्शारीराध्याय' का बलातैल (सूत्र 47-52) या चिकित्सास्थान अ. 21 'वातव्याधिचिकित्सा' का बलातैल (सूत्र 73-82) द्रष्टव्य है । शतपाकी सा सहस्रपाकी बलातैल का वर्णन भी है । (अ.ह.चि. 45-46)

काश्यप ने उपरोक्त विधि से निम्नाङ्कित द्रव्यों का भी तैल बनाने का विधान किया है—

'एतेनैव विधानेन रास्नातैलं विपाचयेत् ।
निहन्ति रोगान् भूयिष्ठं य एते परिकीर्तिताः ।।
शतावर्या बदर्याश्च गुडूच्या मधुकस्य च ।
पुनर्नवाया द्राक्षायाः पीलोः सहचरस्य च ।।
वृषस्य नागवीर्याया अनन्ताशतपुष्पयोः ।
स्वनामपाकतैलानामेष एव (विधिः स्मृतः) ।।
·····लं पक्वं तैले सहाचरे ।
दद्यान्निर्मथ्य सततमेतदत्र विशेषणम् ।।
श्योनाकतैलस्य विधिः स एव परिकीर्तितः ।
कषाये मधुमांसस्य दद्यात् त्रिंशत्पलानि तु ।।
कपित्थतैलस्य विधिः स एव परिकीर्तितः ।
कपित्थानां तु पक्वानां तुलां दद्यात्·····।।
·····देव प्रकीर्तितम् ।
केवलं स्वरसस्यात्र दद्यात्तैलाच्चतुर्गुणम्' ।।

बलातैल की ही भाँति रास्नातैल, शतावरी, बदरी, गिलोय, मधुक, पुनर्नवा, द्राक्षा, पीलू, सहचर, वृष (बाँसा), नागवीर्या, अनन्ता, शतपुष्पा, सहचर, श्योनाक एवं कपित्थ तैल का निर्माण होता है । रास्नातैल का भी बलातैलवत् प्रभाव है । सहचरतैल

Scanned with CamScanner

निर्माण में पानी में मथ कर तैल डालते हैं, श्योनाकतैल में 30 पल मधु एवं मांस, डालते हैं । कपित्थतैल में पका कपित्थ 1 तुला (100 पल) लेते हैं ।

इसी प्रकार इस श्लोक में किसी अन्य औषधि के तेल का निर्माण दिया है । जो उपर्युक्त विधान के साथ बनता है । अन्तर यह है कि स्वरस की मात्रा तैल से चतुर्गुण है । आम्ररसतैल निर्माण का भी विधान है—

'सहकाररसेनापि तद्वत्तैलं प्रशस्यते ।
विविधानां च तैलानां हृद्या····· ! ·····
·····न्धानां च निषेवणम्' ।।

मांसतैल

'मीनतैलं च मीनानां कषायेण रसेन च ।
पक्वं बलातैलमिव वातव्याधिषु शस्यते ।।
बलाकाहंसवल्गूनां क्रौञ्चसारसयोरपि ।
आटीशकुनकानां च तैलान्याहुः स्वनामभिः' ।।

मत्स्य कषाय तथा रस के द्वारा पकाकर मीनतैल बनता है । इसका भी बलातैल के समान वातव्याधि में प्रयोग करना चाहिए । इसी प्रकार अपने-अपने नाम के अनुसार बलाका, हंस, वल्गु, क्रौञ्च, सारस, आटी (दलदलीय पक्षी) पक्षियों के द्वारा तैल का निर्माण होता है ।

'·····(दौर्ग)न्ध्यनाशनम् ।
विधानां कीर्तितं पुण्यं षण्ढबन्ध्याप्रजाकरम् ।।
योनिनासामुखश्रोत्रदौर्गन्ध्ये पिच्छिलेषु च ।
कपित्थतैलं पिचुभिर्धारयेयुः सदा स्त्रियः' ।

·····दौर्गन्ध्यनाशक, नपुंसक तथा वन्ध्या स्त्री के पुत्रोत्पत्ति के लिए इनका विधान दिया गया है । योनि, नासा, मुख-श्रोत्रदुर्गन्धि एवं पिच्छिलता में स्त्रियों को सदा पिचु द्वारा कपित्थ तैल धारण करना चाहिए ।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 11

स्तन्य-प्रकरण

आधुनिक काल में दूध की उत्पत्ति के मूल कारणों में अङ्गरस को एक प्रमुख स्थान दिया जाता है । आयुर्वेद-महर्षियों ने भी इस विषय पर प्रकाश डाला है ।

स्तन्य की उत्पत्ति एवं प्रवृत्ति

'स च सर्वरसवानाहारः । स्त्रिया ह्यापन्नगर्भायास्त्रिधा रसः प्रतिपद्यते—स्व-शरीरपुष्टये, स्तन्याय, गर्भवृद्धये च' । (च.शा. 6:23)

'यदन्नपानं प्रायेण गर्भिणी स्त्री निषेवते ।
रसो निर्वर्तते तादृक् त्रिधा चास्याः प्रवर्तते ।।
मातृपुष्ट्यर्थमेकांशो द्वितीयो गर्भपुष्टये ।
तृतीयः स्तनपुष्ट्यर्थं, नार्या गर्भस्तु पुष्यति' ।। (का.सू.लेहा.पृ. 2)
'रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः ।
कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते' ।।
(सु.नि. 10:18; यो.र.स्त्रीरो.चि.पृ. 432)
'गर्भमङ्गे भावयति, किञ्चित् स्तन्याय कल्पते ।
पत्तये शोणिताद्य(दे)स्तु शेषः कायं समिन्धति' । (का.खि. 9:20)
'द्वावञ्जली तु स्तन्यस्य' । (अ.ह.शा. 3:81)
'स्त्रीणां रजसोऽञ्जलयश्चत्वारः । स्तन्यस्य द्वौ' । (अ.सं.शा. 5:98)

आचार्य चरक एवं कश्यप का कहना है कि सभी रसों से युक्त आहार गर्भिणी स्त्री के शरीर में 3 भागों में बँट जाता है—1. गर्भिणी स्त्री के स्वशरीर की पुष्टि के लिए, 2. स्तन्य निर्माण हेतु एवं 3. गर्भशरीर की पुष्टि व वृद्धि के लिए ।

आचार्य सुश्रुत का कहना है भोजन के पाक से उत्पन्न रस का मधुर प्रसाद भाग जो सम्पूर्ण शरीर से स्तनों में आ जाता है उसे स्तन्य कहते हैं । वाग्भट ने इसकी मात्रा 2 अञ्जली बतायी है ।

अन्यत्र कश्यप ने कहा है कि स्त्री के शरीर के रक्त (अङ्गरस) का कुछ भाग गर्भ को पुष्ट करता है, कुछ स्तन्य का निर्माण करता है तथा कुछ रक्त से शरीर में पाचन होता है । शेष—इन सबसे बचा हुआ—रक्त शरीर में ईन्धन का कार्य करता है ।

'धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ।
चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते' ।। (सु.शा. 10:14)

'विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ।
सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ।।

Scanned with CamScanner

तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात् स्मरणादपि ।
शब्दसंश्रवणात् स्पर्शात् संहर्षाच्च प्रवर्त्तते ।।
सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ।
आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ।।
तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात् स्मरणादपि ।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् सम्प्रवर्त्तते ।।
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते' । (सु.नि. 10:19-22)

'सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात् प्रसूतितः ।
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते' ।।
(अ.सं.उ. 1:11; अ.हृ.उ. 1:11-12)

'गर्भिण्यस्मीति तत्प्रीतिप्रेमसङ्कल्पसम्भृतः ।
प्रस्नुतो जायते नार्यास्तेन स्तन्यं प्रवर्तते' ।। (का.खि. 9:45)

'तथैव गर्भः सूतायाः सद्यः स्तन्याय कल्पते ।
शेषं तु रुधिरीभूतं कायं योनिं च सर्पति' ।। (का.खि. 9:21)

हृदयप्रदेश में स्थित धमनियों के विस्फुट होने के कारण प्रसवोपरान्त तीसरे या चौथे दिन से स्तन्य आता है । समस्त शरीर के भीतर प्रवेश करके देखने पर भी शुक्र (वीर्य) अङ्ग में देखा या पाया नहीं जाता । किन्तु इच्छित रमणी के दर्शन से, स्मरण से, शब्दश्रवण से, स्पर्श तथा आनन्दोल्लास से मन अति प्रसन्न होने पर जैसे युवा पुरुष-शरीर में शुक्र का प्रादुर्भाव हो जाता है, उसी प्रकार बच्चे के स्पर्श से, दर्शन से, स्मरण से, ग्रहण आदि आलम्बनों से माता के सर्वदेह-व्यापी अन्नरस का उद्दीपन होकर माता के स्तन में दूध बनकर प्रकट होता है । ऐसा सुश्रुत का मत है ।

आचार्य कश्यप का मत अधुना अङ्गरस सिद्धान्त के काफी समीपस्थ है—इसी प्रकार गर्भ का कुछ अंश प्रसवोपरान्त शीघ्र ही दुग्ध का निर्माण करने लगता है । शेष रक्त के रूप में शरीर तथा योनि में फैलता है । रक्तगुल्म की अवस्था में गर्भ के धोखे में प्रीति एवं प्रेम-सङ्कल्प के कारण नारीस्तन में स्रावों की उत्पत्ति हो जाती है । शिशु का प्रेम ही इसका प्रमुख कारण है ।

स्तन्योत्पत्ति की आधुनिक व्याख्या

इस प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

1. स्तन का विकास एवं स्तन्योत्पत्ति की तैयारी ।
2. स्तन्योत्पत्ति प्रक्रिया ।

स्तन-विकास का पूर्ण विवरण हम किसी भी 'प्रसूतितन्त्र' की पुस्तक में देख सकते हैं, संक्षिप्त स्वरूप यहाँ दे रहे हैं । स्तन के विकास में प्रमुख योगदान Oestrogen तथा Progesteron का ही है, जब कि उत्पत्ति में Prolactin का ।

यौवन काल का प्रारम्भ होने पर Oestrogen, Growth hormone, Adrenal corticoids की उपस्थिति में स्तन का विकास, दुग्धनलिका वृद्धि (Proliferation of mammary ducts) के द्वारा होता है ।

Scanned with CamScanner

गर्भिणी होने पर स्तन का विकास स्तन्यदुग्धप्रणालिका एवं कोष (Lobules and alveoli) की वृद्धि के कारण होता है। यह वृद्धि कई अङ्गरसों की सम्मिलित प्रक्रिया है; यथा—Oestrogen, Progesterone, Growth hormone, Adrenal corticoid एवं Placental growth hormone - Prolactin। गर्भावस्था में Oestrogen का प्रमुख स्रोत अपरा हुआ करता है। आयुर्वेद का यह सिद्धान्त कि गर्भ धारण के बाद मुख बन्द हो जाने से वही रक्त ऊपर जाकर गर्भ का पोषण, वृद्धि (Corpus luteum से निकलने वाला Progesterone/गर्भ को धारण करना) करता है, शेष भाग स्तन की पुष्टि (Progesterone - Corpus luteum से प्राप्त भाग) करता है।

स्तन्य-प्रवृत्ति की प्रक्रिया प्रसव के बाद एवं अपरापातन के बाद प्रारम्भ होती है। इससे प्रमाणित होता है कि अपरा Prolactin (Anterior pituitary) के कार्य में बाधा पैदा करता है। यह अपरा द्वारा बनने वाले अधिक मात्रा के Oestrogen एवं Progesterone के कारण सम्भव है जो दूध वाले स्तन से स्राव की मात्रा को घटाते हैं। जब अपरा हट जाती है तब यह प्रक्रिया रुकने से दूध बनने लगता है। प्रसवोपरान्त अपरापातन के बाद Oestrogen का घटा हुआ स्तर Anterior pituitary के Prolactin का स्राव प्रारम्भ कराता है। परन्तु इसके साथ-साथ Growth hormone तथा Adrenal corticoids भी देना चाहिए।

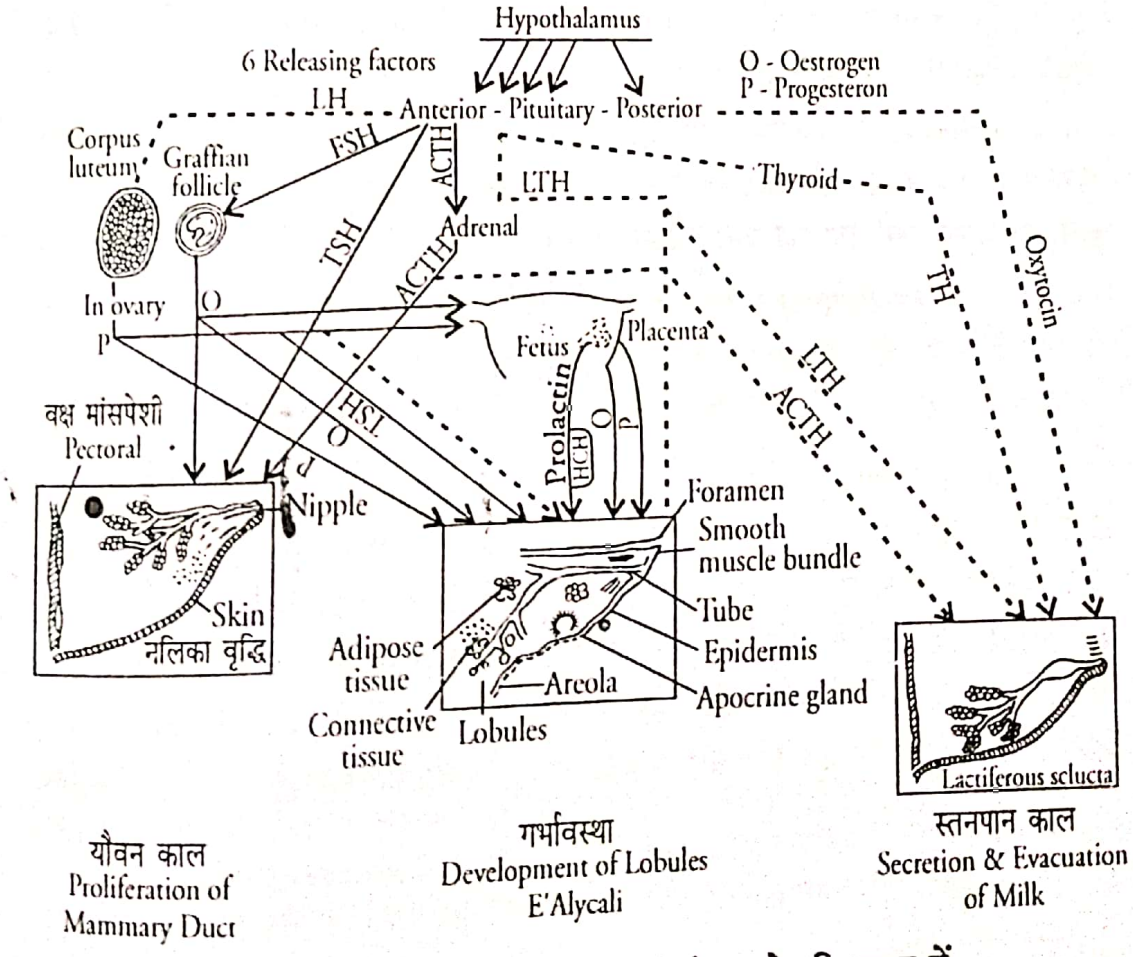

चित्र सं. 25 : यौवनकाल, गर्भिणी एवं स्तन्योत्पत्ति काल में स्तन पर अङ्गरस का प्रभाव

Scanned with CamScanner

स्तन्य-निर्माण प्रक्रिया चलती रहे इसके लिए सन्तानोत्पत्ति के बाद आवश्यक अङ्गरस Prolactin के साथ-साथ ACTH, Growth hormone एवं TSH (Anterior pituitary के द्वारा स्रवित) हैं। इसके साथ-साथ शिशु का स्तन्यपान (Sucking) भी आवश्यक है। क्योंकि इसके कारण Prolactin एवं Oxytocin दोनों से ही अङ्गरस का स्राव होने की उत्तेजना प्राप्त होती है। Prolactin यदि दुग्ध निर्माण प्रक्रिया में सहायक है तो Oxytocin दूध के निकलने में सहायता देता है। दूध के निकलने में चूषण (Sucking) दो विधि से कार्य करता है—स्थानीय यान्त्रिक—दुग्ध के बाहर निकलने से दूध एकत्रण हेतु स्थान का रिक्त करना तथा प्रक्रिया (Reflex)—जो Anterior pituitary को उत्तेजित कर अधिक Prolactin स्रवित कराता है (देखिये 'नवजात शिशु परिचर्या' नामक अध्याय पृ. 75)।

शुद्ध स्तन्य (स्तन्यसम्पत्)

'स्तन्यसम्पत्तु प्रकृतिवर्णगन्धरसस्पर्शम्, उदपात्रे च दुह्यमानमुदकं व्येति प्रकृतिभूतत्वात्; तत् पुष्टिकरमारोग्यकरं चेति'। (च.शा. 8:54)

जिस दूध का वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श प्रकृति रूप में हो; जो दुग्ध जलयुक्त पात्र में दुहे जाने पर, जल में मिल जाय, वह उत्तम होने के कारण पुष्टिकर एवं आरोग्य-कर होने से सम्पत् कहलाता है। ऐसा ही अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी कहा है।[1] सुश्रुत ने कुछ विशिष्ट व्याख्या इस प्रकार दी है—

'अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत, तच्चेच्छीतलममलं तनु शङ्खावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवतेऽवसीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्, तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति'। (सु.शा. 10:33)

'यत्क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्।
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद्विनिर्दिशेत्'॥
(सु.नि. 10:25; मा.नि. 65:4)

दूध की परीक्षा जल में करनी चाहिये। यदि वह ठण्डा, निर्मल, पतला, शङ्ख के समान (श्वेत) वर्ण का हो, जल में डालने पर एक हो जाय, फेनरहित, तन्तुरहित, जल में न तैरे या न डूबे तो उसको शुद्ध समझना चाहिए। इससे बालक का आरोग्य, शरीर-वृद्धि एवं बलवृद्धि होती है। चरक की परीक्षण विधि को सुश्रुत ने दुष्ट दुग्ध से विभेद हेतु कहा है। जो दूध दूषित नहीं होता है वह जल में डालने पर शीघ्र ही मिल जाता है वर्ण में पाण्डु, स्वाद में मधुर रस वाला एवं प्रसन्नतादायक होता है। अष्टाङ्गहृदय में भी यही कहा गया है[2]।

---

1. 'तच्चोदकपात्रे दुह्यमानमेकतां यदुदकेन सह गच्छति वक्ष्यमाणदोषरहितं च तच्छुद्धमारोग्य-बलजननम्'। (अ.सं.उ. 1:21)
2. यदद्भिरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम्।
तद्विशुद्धं पयः ..... ॥ (अ.ह.उ. 2:2)

Scanned with CamScanner

स्तन्य के सामान्य गुण

आचार्य चरक ने एक ही शब्द में दुग्ध के गुणों को कह दिया है—'क्षीरं जीवनीयानां' (च.सू. 25:40)। विशद व्याख्या तो सभी आचार्यों ने की है। आधुनिक काल में दूध को सम्पूर्ण संतुलित आहार की संज्ञा दी गयी है[1]।

'जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः ।
नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम्' ।। (च.सू. 27:224)

'नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम् ।
नस्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम्' ।। (सु.सू. 45:57)

'तत्त्वनेकौषधिरसप्रसादं प्राणदं गुरु ।
मधुरं पिच्छिलं शीतं स्निग्धं श्लक्ष्णं सरं मृदु
सर्वप्राणभृतां तस्मात् सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते ।

तत्र सर्वमेव क्षीरं प्राणिनामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यात्, वातपित्तशोणितमानसेष्वपि विकारेष्वविरुद्धं, जीर्णज्वरकासश्वासशोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममददाहपिपासा-हृद्बस्तिदोषपाण्डुरोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भास्रावरक्तपित्त-श्रमक्लमहरं, पाप्मापहं बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं वमनविरेचनास्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्द्धनं बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्यय-वायव्यायामकर्शितानां च पथ्यतमम्' । (सु.सू. 45:48-49)

'अव्याहतबलाङ्गायुररोगो वर्धते सुखम् ।
शिशुधात्र्योरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम्' ।।
(का.सं.सू. 19, पृ. 9)

'क्षीरं सात्म्यं हि बालानां क्षीरं जीवनमुच्यते ।
क्षीरं पुष्टिकरं वृद्धिकरं बलविवर्धनम् ।।
क्षीरमोजस्करं पुंसां क्षीरं प्राणगुणावहम् ।
गर्भधानकरं क्षीरं वन्ध्यानामपि योषिताम् ।।
क्षीणानां च कृशानां च शोफिनां राजयक्ष्मणाम् ।
व्यायामश्रमनित्यानां स्त्रीनित्यानां च देहिनाम् ।।

---

1. The role of milk in nature is to nourish and provide immunological protection for the mammalian young. Milk and honey are the only articles of diet whose sole function in nature is food. It is not surprising, therefore, that the nutritional value of milk is high.
(Source - Webb, BH, AH Johnson and J.A. Alford 1974, Fundamental of Diary Chemistry, IInd Edition, AVI Publishing Co., Westport C.T. Chap. I)

Scanned with CamScanner

संक्षीणरेतसां चापि गर्भस्रावे च दारुणे ।
रक्तपित्तामयेऽर्शस्सु मदक्षीणे ज्वरे तथा ।।
गर्भशोषे च वातानां क्षीरं परममुच्यते' ।।

(का.खि.क्षीरगुण वि. 22, पृ. 355)

'मानुषं वातपित्तासृगभिघाताक्षिरोगजित् । तर्पणाश्चोतनैर्नस्यैः' ।

(अ.ह.सू. 5:26, अ.सं.सू. 6:59)

'स्वादुपाकरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ।
प्रायः पयः.....' ।

(अ.ह.सू. 5:20-21, अ.सं.सू. 6:53)

'नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित् ।
चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्हितम् ।।
प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहयुक्ते तृषान्विते दोषसमूहमूर्तौ ।
पयोऽङ्गानानां पिबतां नराणां प्रागेव जूर्तिः प्रशमं प्रयाति' ।।
स्तन्यं रुद्राक्षसंयुक्तमाहारार्थं प्रयोजयेत्' । (यो.र. दुग्धगुण. पृ. 98)

प्रत्येक नवजात एवं प्राणी का स्वाभाविक आहार दूध है । यह दूध अनेक औषधियों का सार भाग है । इसका रस मधुर, अनुरस कषाय तथा वीर्य शीत होता है। कुछ आचार्य त्रिदोषघ्न एवं कुछ ने वात-पित्तनाशक एवं कफवर्धक माना है । गुणों में स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, शीत, श्लक्ष्ण, सर एवं मृदु है ।

चिकित्सकीय गुण—जीवनीय, बृंहणीय, प्राणदायक, पुष्टिकारक, बलवर्धक, ओजस्कर, धातुवर्धक, प्रजास्थापक, वृष्य, वाजीकर, रसायन, मेधावर्धक, चक्षुष्य, स्थिरतादायक, आयुष्य और क्षुधावर्धक होता है । यह वमनोपग, विरेचक एवं निरूह बस्ति में भी प्रयोज्य है । नित्य मैथुन करने वाले, व्यायाम करने वाले, त्रिदोषज एवं मानस व्याधि से पीड़ित में भी प्रयोज्य है तथा सात्म्य है ।

व्याधि एवं प्रयोग—शोफ, जीर्णज्वर, कास-श्वास, शोष, क्षय, क्षतक्षीण, गुल्म, उन्माद, उदररोग, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, मदात्यय या मद, दाह, तृषा, हृद्रोग, मूत्ररोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, अर्श, शूल, उदावर्त, अतिसार, प्रवाहिका, योनिरोग, गर्भस्राव, गर्भपात, गर्भशोष, वीर्यक्षय, वीर्यनाश, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम, पापनाशक, भग्नअस्थि को जोड़ने वाला, नेत्ररोगों में हितकर होता है । नेत्रशूल में तर्पण, रक्तपित्त में नस्य का विधान है ।

योगरत्नाकर में रुद्राक्ष से युक्त दूध पीने का विधान है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः आचार्यों ने दूध को सर्वगुणसम्पन्न बतलाया है ।

Scanned with CamScanner

'यथा सर्वौषधीसारं क्षीरोदे मथिते पुरा ।
सम्भूतममृतं दिव्यममरा येन देवताः ।।
तथा सर्वौषधीसारं गवादीनां तु कुक्षिषु ।
क्षीरमुत्पद्यते तस्मात् कारणादमृतोपमम्' ।। (का.खि. 22, पृ. 355)

उपरोक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त च.चि. 24:31, का.स. । भोजनकल्पाध्याय 79 से 95 तक भी विचारणीय एवं द्रष्टव्य है ।

नारी-स्तन्य

'जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः ।
नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम्' ।। (च.सू. 27:224)

'नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम् ।
नास्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम्' ।। (सु.सू. 45:57)

मानुषं वातपित्तासृगभिघाताक्षिरोगजित् ।
तर्पणाश्चोतनैर्नस्यैः·····' ।। (अ.ह.सू. 5:26)

'नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित् ।
चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्चोतनयोर्हितम्' ।।
(भा.प्र.पूर्वख.दुग्धवर्गप्र. 5:23)

नारीस्तन्य रस में मधुर, अनुरस में कषाय, वीर्य में शीत होता है । गुणों में शीत, स्निग्ध, स्थैर्यकर एवं लघु होता है । वात पित्त एवं रक्तदोष हरण करने वाला, जीवनीय, बृंहणीय, सात्म्य, चक्षुष्य, बलवर्धक एवं दीपन होता है । रक्तपित्त में नस्योपयोगी, नेत्र-रोगों में आश्च्योतन योग्य एवं अभिघातजन्य रोगों में स्वभाव से ही हितकर होता है ।

धात्रीस्तन्याभावे अन्यदुग्धस्य पानम्

'क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि च ।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया' ।। (सु.शा. 10:48)

'स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
ह्रस्वेन पञ्चमूलेन स्थिराभ्यां वा सितायुतम्' ।। (अ.ह.उ. 1:20)

आचार्यों का मत है कि नारीस्तन्य के अभाव में अजादुग्ध या गाय का दूध देना चाहिए । अथवा दूध को लघुपञ्चमूल या शालपर्णी, पृश्निपर्णी से सिद्ध कर शर्करा मिलाकर दें ।

लघुपञ्चमूल में शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारीद्वय एवं गोक्षुर—ये द्रव्य होते हैं ।

Scanned with CamScanner

विभिन्न आचार्यों द्वारा वर्णित नारी, गाय, अजा एवं भैंस के दूध के गुणों का तुलनात्मक विवरण नीचे तालिका में दिया जा रहा है ।

नारी	मधुर (सु.); कषाय अनुरस (सु.); हिम (सु.); स्निग्ध (सु., च.); स्थैर्यकर (सु.); शीत (सु.); जीवनीय (च.); बृंहणीय (च.); सात्म्य (च.); चक्षुष्य (सु.,वा.); बल्य (सु.); रक्तपित्त में नस्य (च.); अक्षिशूल में आश्योतन (च.);
गाय[1]	स्वादु (च.); मधुरपाकी (सु.); गुरु (सु.च.); स्निग्ध (सु.च.); शीत (सु.च.); बहल (च.); श्लक्ष्ण (च.); पिच्छिल (च.); मन्द (च.); प्रसन्न (च.); ओज-स्कर (च.); रसायन (सु.वा.); वात-पित्तनाशक (सु.); रक्तपित्तनाशक (सु.वा.); बल्य, मेध्य (वा.); मृदुरेचक (वा.); अभिष्यन्दिकारक (सु.); आयुष्य (सु.); श्रमादिनाशक (वा.);
अजा[2]	गो दुग्ध के समान (सु.); लघु (सु.च.वा.); कषाय-मधुर (च.); शीत (च.); रक्तपित्त (च.वा.); अतिसार (च.वा.); क्षय (च.वा.); श्वास-कास (च.वा.); ज्वर (च.); दीपन (सु.); ग्राही (सु.); सर्वव्याधिहर दुग्ध (सु.);
भैंस[3]	मधुर (सु.); गुरुपाकी (वा.); अतिगुरु (च.सु.); अतिस्निग्ध (च.सु.); अति-शीत (च.सु.वा.); निद्राकारक (च.सु.वा.); अग्निशामक (च.सु.वा.); महा-अभिष्यन्दिकारक (सु.); जीर्णज्वर (वा.); मूत्रकृच्छ्र (वा.); रक्तपित्त में (वा.);

नोट—(च.—चरकसंहिता, सु.—सुश्रुतसंहिता, वा.—अष्टांगहृदय)

1.(क) 'स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम् ।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः' ॥ (च.सू. 27:217)

(ख) 'अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम् ।
रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः ।
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्' (सु.सू. 45:50)

(ग) 'प्रायः पयोऽत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ।
क्षत-क्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् ।
श्रमभ्रममदालक्ष्मीश्वासकासातितृट्क्षुधः ।
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत्' ॥ (अ.ह.सू. 5:21-22)

2.(क) 'छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु ।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षय-कास-ज्वरापहम्' ॥ (च.सू. 27:222)

(ख) 'गव्यतुल्यगुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम् ।
दीपनं लघु संग्राहि श्वास-कासास्रपित्तनुत् ।
अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवणात् ।
नात्यम्बुपानात् व्यायामात् सर्वव्याधिहरं पयः' ॥ (सु.सू. 45:51-52)

(ग) 'अल्पाम्बुपानव्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित्' ॥ (अ.ह.सू. 5:24)

3.(क) 'महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः ।
स्नेहान्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत्' । (च.सू. 27:219)

Scanned with CamScanner

उपरोक्त प्रकरण को देखने से स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद-संहिताकारों ने गुण-प्रधान दुग्ध का विवेचन किया है और तदनुरूप ही परीक्षण सामान्य एवं विशिष्ट गुणों को वर्णित किया गया है। आधुनिक काल में यह परीक्षण संघटन की दृष्टि से किया जाता है। गुण तो अब भी वही हैं, परन्तु परीक्षण में उनका भौतिक एवं रासायनिक सङ्गठन देखा जाता है।

यह तो सत्य है कि नवजात शिशु का प्रारम्भिक आहार दूध है। सर्वश्रेष्ठ, प्राकृतिक, सुरक्षित, आसान एवं सुलभ उपाय स्तनपान है। कृत्रिम भोजन विधियों में दूध नलिका से, चम्मच से, पीपेट से अथवा बोतल से दिया जाता है।

स्तनपान

नारीदुग्ध ही सर्वश्रेष्ठ दूध है। प्रथम 3 माह तक तो शिशु को स्तनपान पर ही रहना चाहिए और सम्भव हो तो 6 माह तक। यदि यह महसूस होता है कि ऊपर से उपयुक्त भोजन शिशु को नहीं मिलेगा तो यह समय 2 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। प्राय: औसतन प्रथम वर्ष में भारतीय माताएँ लगभग 700 सी.सी. दूध प्रतिदिन बच्चे को दे पाती हैं।

स्तनपान का लाभ

(1) नारीस्तन्य का रासायनिक सङ्गठन नवजात शिशु के लिए सर्वश्रेष्ठ सङ्गठन होता है। नीचे की विभिन्न तालिकाएँ इस तथ्य को अवलोकित कराती हैं।

विभिन्न दुग्धों का रासायनिक संगठन

घटक	नारी	गाय	भैंस
प्रोभूजन (ग्रा.%)	1.2	3.5	4.2
वसा (ग्रा.%)	3.8	3.7	8.0
शक्ति (calories) प्रति 100 सी.सी.	66	66	80 से 120
जल (%)	88	87	83
शर्करा (Lactose) (%)	7.0	4.5	4.8
लौहतत्त्व (मि.ग्रा. %)	0.1	0.2	0.2
जीवतिक्तिय A (IU/100 सी.सी.)	170 से 670	140 से 280	80
जीवतिक्तिय C (मि.ग्रा.)%	2 से 6	1 से 4	1 से 4

अजादुग्ध में वसा 4 ग्राम प्रति 100 सी.सी., शर्करा 4.5 एवं प्रोभूजन 4.0 ग्राम प्रति 100 सी.सी. एवं खनिज 0.7 ग्राम प्रति 100 सी.सी. होता है।

(ख) 'महाभिष्यन्दिमधुरं माहिषं वह्निनाशनम्।
निद्राकरं शीततरं गव्यात् स्निग्धतरं गुरु'॥ (सु.सू. 45:55)

(ग) 'हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमम्'। (अ.ह.सू. 5:23)

Scanned with CamScanner

उपर्युक्त संगठन से स्पष्ट दिखायी देता है कि नारीस्तन्य में प्रोभूजन की मात्रा कम है। नीचे की तालिका उसका तात्पर्य स्पष्ट करती है कि मानव-शरीर के विकास हेतु यही मात्रा उचित है। खरगोश के शिशु का वजन 7 दिन में दुगना होना प्राकृतिक नियम है, अत: प्रोभूजन की मात्रा भी 104 ग्राम/100 सी.सी. होती है।

दूध	जन्म के बाद शरीर भार दुगना होने में लगा समय (दिन)	प्रोभूजन (ग्राम./100 सी.सी.)	कैल्शियम आक्साइड (ग्राम/100 सी.सी.)
नारी-शिशु	180	1.5	0.04
गाय-बछड़ा	47	3.5	0.15
भेंड़-मेमना	10	6.5	0.27
खरगोश-बच्चा	7	10.4	0.89

(2) यह उचित तापक्रम पर ताजा, शुद्ध, बना-बनाया, मिलावट विहीन एवं संक्रमणविहीन होता है। इसी कारण बोतल से दूध पीने वाले बच्चों की अपेक्षा संक्रमण कम होता है।

संक्रमण	संक्रमण का औसत	
	स्तनपायी	बोतलपायी
श्वसनतन्त्र संक्रमण	28%	37%
पाचनतन्त्र संक्रमण	5%	16%

(3) नारी स्तनपान से असहिष्णुता की सम्भावना बहुत ही कम होती है एवं कुछ बीमारियों से भी रक्षा होती है। इसके अन्दर उपस्थित तत्त्व Lactoferrine, E. coli संक्रमण की वृद्धि को रोकता है। इसके अतिरिक्त शर्करा पाचन में सहायक Lactobacillus bifidus को आन्त्र में स्थापित करता है। श्वसनतन्त्र की व्याधियों से सुरक्षा में सहायक एवं Staphylococcus जीवाणुरोधी तत्त्व धारक होता है।

(4) सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निर्मूल्यता।

(5) माता एवं शिशु में स्नेह, मानसिक सन्तुष्टि एवं प्रेम की वृद्धि करता है।

(6) गर्भधारण के दौरान एकत्रित वसा को बाहर निकालने, गर्भाशय को सामान्यावस्था में लाने एवं स्तन-कैंसर से सुरक्षा का भी दृष्टिकोण है। जीवन के प्रौढ़ काल में सम्भवत: धमनीकाठिन्य व्याधियों (Arteriosclerotic disease) से रक्षा भी होती है।

(7) आन्त्रशोथ (Ulcerative colitis) से सुरक्षा, जलाल्पता (Hypernatremic dehydration) से रक्षा एवं स्तनपायी व्यक्तियों मे कम मोटापा होता है। इसके अतिरिक्त शैशवीय आक्षेप, दंतकृमि एवं आकस्मिक मृत्यु (Sudden Infant death Syndrome-Cot death) की भी सम्भावना कम हो जाती है।

Scanned with CamScanner

नारीस्तन्य की विभिन्न अवस्थाएँ

यह हम पहले विचार कर चुके हैं कि नारीस्तन्य पान प्रथम दिन से ही कराना चाहिए। अर्थात् पीयूष (Colostrum) देना चाहिए। अत: यहाँ पर नारीस्तन्य की विभिन्न अवस्थाओं का तुलनात्मक विवरण देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। साथ में गाय के दूध का भी विस्तृत विवरण दिया जा रहा है[1]।

घटक	नारीस्तन्य			गोदुग्ध (पेय)
	पीयूष (1से5 दिन)	मिश्रित (6से10 दिन)	परिपक्व (तदुपरान्त)	
जल (ग्राम/100 सी.सी.)	87	86	88	87
शक्ति (कैलोरी/100 सी.सी.)	58	74	71	69
सम्पूर्ण ठोस पदार्थ (ग्राम/100 सी.सी.)	12.8	13.6	12.4	12.7
वसा (ग्राम/100 सी.सी.)	2.9	3.6	3.8	3.7
शर्करा (ग्राम/100 सी.सी.)	5.3	6.6	7.0	4.8
कैल्शियम (मिग्रा./100 सी.सी.)	31	34	33	125
फास्फोरस (मिग्रा./100 सी.सी.)	14	17	16	96
पोटेशियम (मिग्रा./100 सी.सी.)	74	64	55	138
सोडियम (मिग्रा./100 सी.सी.)	48	29	15	58
लौहतत्त्व (मिग्रा./100 सी.सी.)	0.09	0.04	0.15	0.10
प्रोभूजन की मात्रा (मिग्रा./100 सी.सी.)	2.7	1.6	1.2	3.3
Casein	1.2	0.7	0.4	2.8
Lactalbumin	-	0.8	0.3	0.4
Lactoglobulin	-	0.5	0.2	0.2
आवश्यक जीवतिक्तीय रस (Essential Amino Acids) (मिग्रा./100 सी.सी.) Arginine	126	64	51	124

1. From the composition of milks, Publication 254 1953) Academy of Sciences, National Research Council, Washington D.C.

Scanned with CamScanner

घटक	मानवीस्तन्य			गोदुग्ध (पेय)
	पीयूष (1से5 दिन)	मिश्रित (6से10 दिन)	परिपक्व (तदुपरान्त)	
Histidine	57	38	23	80
Isoleucine/Leucine	121/221	97/151	86/161	212/356
Lysine	163	113	79	257
Methionine	33	24	23	87
Phenylalanine	105	63	64	173
Theonine	148	79	62	152
Tryptophan	52	28	22	50
Valine	169	105	90	228
जीवतिक्तिय /100 सी.सी. A (मा.मि.ग्रा.)	89	88	53	34
D (units)	-	-	0.42	2.36
C (मि.ग्रा.)	4.4	5.4	4.3	1.6
Folic Acid (मा.मि.ग्राम)	0.05	0.02	0.18	0.28
Niacin (मा.मि.ग्राम)	75	175	172	85
Pyridoxine (मा.मि.ग्राम)	-	-	11	48
Riboflavin (मा.मि.ग्राम)	29.6	33.2	42.6	157
Thiamine (मा.मि.ग्राम)	15	6	16	42
जीवतिक्तिय B_{12} (मा.मि.ग्राम)	0.045	0.036	अल्प	0.56

स्तन्यपान-काल

इसका कोई भी नियम बना पाना कठिन है। इसके लिए माता दो विधियों में से एक को चुन सकती है। (1) आवश्यकता पड़ने पर स्तनपान कराना—यथा जब शिशु रोने लगे, (2) समय बद्ध नियम से। परन्तु यह आवश्यक है कि शिशु स्तन- पान के समय भूखा हो, तथा स्तनपान के बाद शिशु सन्तुष्ट हो जाये। स्तनपान के द्वारा पोषित शिशु को पूर्ण एवं उचित स्तन्य मिल रहा है, इसका ज्ञान निम्नाङ्कित संकेतों से होता है—

1. स्तनपान के बाद 2 से 4 घण्टे शिशु का शयन करना।
2. उचितरूप से उसके भार में वृद्धि होनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

3. स्तनपान का काल 5 मिनट से प्रारम्भ कर 15 से 20 मिनट तक का होना चाहिए।

यदि शिशु ने प्रथम 3 माह के किसी भी सप्ताह में 500 ग्राम से कम भारवृद्धि की हो, दूसरे 3 माह के किसी भी सप्ताह में 200 ग्राम से कम भारवृद्धि की हो तो कुपोषण की सम्भावना होती है।

स्तनपान के अतिरिक्त आहार

हम स्पष्ट रूप से आयुर्वेद-संहिताओं में इसका निर्देश छठे माह से 10वें माह के लिए अन्नप्राशन एवं फलप्राशन संस्कार के रूप में पाते हैं। जिसका वर्णन पहले कर चुके हैं। परन्तु आधुनिक विज्ञान में इसका विरोधाभास है। इनके मत से फलों का रस तो प्रथम माह में (15 दिन के बाद) एवं द्रव आहार 3 माह पर देना प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसकी प्रक्रिया 9 से 12वें माह के मध्य पूर्ण कर लेनी चाहिए। आज बाजारों में पूर्व पचित इस प्रकार के विभिन्न आहार उपस्थित हैं।[1]

कृत्रिम आहारविधि

यदि किसी चिकित्सकीय कारण से स्तनपान निषिद्ध हो तभी यह व्यवस्था करनी चाहिए। आज इस फैशन-परस्त विश्व में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के कारण, कुछ अंधविश्वासों एवं विभिन्न प्रचार माध्यमों की चकाचौंध में सामान्य अवस्था में भी लोग कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने लगे हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि कृत्रिम साधन मूल्यवान् पड़ता है। प्राय: एक 4 माह के शिशु को 5 पौण्ड दूध-पाउडर प्रति माह चाहिए। साथ में विभिन्न कुपोषण की समस्याएँ (पतला दूध बनना, कम पिलाना, संक्रमण आदि) भी बढ़ जाती हैं। लम्बे अन्तराल पर उपद्रवों में शर्करा-असहिष्णुता (lactose intolerance), स्थूलता, धमनी-काठिन्य (Atherosclerosis) एवं परिवार-वृद्धि की समस्याएँ आ जाती हैं। नारीस्तन्य के बाद गोदुग्ध ही श्रेष्ठ है।

स्वच्छता के दृष्टिकोण से यदि ठीक विधि का प्रयोग कर सकें तो चम्मच एवं प्याली से दूध पिलाना उचित है। चौड़े मुख की बोतल आसानी से स्वच्छ हो जाती है। चौड़े धरातल की रबरचूचुक श्रेष्ठ होती है। गर्म सूई से उसमें जो छिद्र किया जाय, उससे 12 से 15 बूँद/मिनट दूध गिरना चाहिए।

---

1. Farex - संतुलित आहार—प्रोभूजन, जीवतिक्तिय एवं खनिज, साथ में शर्करा। बच्चों द्वारा आसानी से पचा सकने योग्य।
   Cerelac - यव-दुग्धान्न।
   Nestum - चावल पूर्वपचित स्वरूप।
   Banalona - केला का सांद्रित योग, जिसमें 87% शर्करा के साथ प्रोभूजन, खनिज एवं लौहतत्त्व होता है।

Scanned with CamScanner

दूध की मात्रा

इसके निर्धारण की उचित विधि तो यह है कि प्रतिदिन प्रारम्भ में जो मात्रा शिशु की दी जाय, यदि वह सम्पूर्ण मात्रा पी लेता है तो अगली बार लगभग 5 से 10 सी.सी. की मात्रा बढ़ा दें। यदि वह कुछ दूध छोड़ देता है तो अगली बार से उतनी मात्रा घटा कर दूध देना चाहिए। ऐसा प्रतिदिन करना चाहिए। औसत मात्रा एवं संख्या नीचे की तालिका में दी जा रही है।

वय	मात्रा (सी.सी.) (1 बार में)	वय	संख्या
प्रथम 15 दिन	60 से 90	प्रथम 7 दिन	5 से 10
16वें दिन से 60 दिन	120 से 150	8वें दिन से 30वें दिन	6 से 8
2 से 3 माह	150 से 180	1 से 3 माह	5 से 6
3 से 4 माह	180 से 210	3 से 7 माह	4 से 5
5 से 12 माह	210 से 240	4 से 9 माह	3 से 4
-	-	8 से 12 माह	3

इसके लिए कुछ अन्य सिद्धान्त भी निर्धारित करने का यत्न किया गया है।

(1) प्राय: एक शिशु (infant) को दूध की मात्रा 150 सी.सी./किलो शरीर-भार/दिन के दृष्टिकोण से देना चाहिए।

(2) 30 मि.ली./कि.ग्रा. शरीरभार/बार, परन्तु मात्रा 240 सी.सी./बार से अधिक न बढ़े।

(3) 1 चम्मच शक्कर प्रति 100-120 सी.सी. दूध में मिलानी चाहिए। यदि मलबंध की शिकायत हो तो शक्कर की मात्रा 2 चम्मच तक बढ़ायी जा सकती है।

(4) जीवतिक्तिय C, D एवं खनिज तत्त्व, लौह की अतिरिक्त मात्रा देनी चाहिए।

(5) कुछ विद्वान् प्रोभूजन की आवश्यक मात्रा पर दूध की मात्रा का निर्धारण करते हैं। यथा—एक 3 माह के शिशु का भार 5 किलो ग्राम है। उसके लिए आवश्यक प्रोभूजन की मात्रा (3.5 ग्रा./किग्रा. शरीरभार से) 17.5 ग्राम तथा कैलौरी (110 कै./कि.ग्रा. शरीरभार से) 550 चाहिए। 100 ग्राम दूध (गाय का) 3.2 ग्राम प्रोभूजन एवं 67 कैलोरी देगा। अत: 17.5 ग्राम प्रोभूजन के लिए 550 ग्राम (सी.सी.) दूध चाहिए। जो 368.5 कैलोरी भी देगा। शेष कैलोरी की पूर्णता के लिए लगभग 9 चम्मच चीनी (45 ग्राम) मिलानी पड़ेगी।

आधुनिक डेरी से प्राप्त दूधों पर कुछ विशेष लेख मिलता है। उनका ज्ञान भी आवश्यक है।

Scanned with CamScanner

(1) Certified milk—सरकारी नियमानुसार निर्धारित समय पर पशु का परीक्षण पशुचिकित्सक द्वारा किया गया हो, वर्ष में 1 बार Tuberculin test किया गया हो तथा दूध निकालने के बाद 50^0 फा. पर रखा गया हो; उसे Certified Milk कहते हैं । इसमें 30,000 जीवाणु/सी.सी. से अधिक नहीं होते हैं । Coliform bacilli in $^1/_{10}$ of a ml. इसके अतिरिक्त 3% मक्खन तथा 8.5% अन्य ठोस तत्त्व होना चाहिए । यह दूध डेरी में ही बोतल में बन्द कर दिया जाता है ।

(2) Tuberculin tested milk—उपरोक्त अवस्था में ही 60^0F तक एकदम से तापक्रम गिरा कर, उचित दूध बर्तन या बोतल में रखा जाय । उस पात्र पर 'Tuberculin Tested' लिखा हो रासायनिक संगठन में समान होते हुए भी जीवाणु 200,000/सी.सी. तथा Coliform bacilli 1/100 of a ml. नहीं होना चाहिए ।

(3) Pasteurised milk—इस तरह के दूध में उसका तापक्रम एक बार 145-150^0F तक ले जाकर 30 मिनट तक अथवा 161^0F (173^0F से कभी भी अधिक नहीं) 15 सेकेण्ड रख कर एकदम से 50^0F तक ठण्डा कर देते हैं । रासायनिक संगठन उपरोक्त ही रहता है । इसका एक phosphatase test करते हैं जो 2.3 Lovibond blue units से अधिक न हो तथा coliform bacilli 1/100 of a ml. से अधिक न हो ।

(4) Sterlized milk—इसमें एक बार 30 मिनट के लिए दूध का तापक्रम 212^0F (अधिकतम 235^0F) पर ले जाते हैं । इसका Turbidity test करते हैं । संगठन समान ही होता है ।

(5) Powder milk (Dried milk)—इसके बनाने की 2 विधियाँ हैं—

- Spray Process—एक गर्म कमरे में महीन फुब्बारे से दूध फेंका जाता है, जो चूर्ण के रूप में संग्रहित हो जाता है । यह कुछ महँगी विधि है । इसमें पुनः दुग्ध निर्माण में वसाकण दूध पर नहीं दिखते हैं ।
- Roller Process—इस प्रक्रिया में दूध को गर्म Rollers पर गिराते हैं । जब वह पतली Film बन जाती हैं तो रोलर के घुमने से चूर्ण का निर्माण हो जाता है । इससे पुनः दुग्धनिर्माण में वसाकण दूध पर दीखने लगते हैं ।

(6) Whole milk—इस प्रकार का नामकरण द्रव या पाउडर दोनों प्रकार के दूध में देखने को मिलता है । पाउडर दूध का 1 चम्मच (tea spoon) पाउडर 1 औंस पानी में मिलाकर तैयार किया गया दूध सामान्य दूध से हर प्रकार समान होता है ।

(7) Skimmed milk—इस प्रकार के दूध से सम्पूर्ण वसा भाग निकाल दिया जाता है ।

Scanned with CamScanner

(8) Toned milk—इस प्रकार के दूध में से ½ भाग वसा निकाल देते है। Skimmed तथा Toned milk का प्रयोग ग्रहणीरोग (Malabsorption syndrome), वसा-असहिष्णुता, अतिसार एवं समयपूर्ण प्रसवित शिशु-पोषण में करते है।

(9) Humanised milk—सम्पूर्ण दूध को स्तन्य के समान करने के लिए उसका प्रोभूजन अंश (जल मिलाकर) कम करते हैं तथा शर्करा की मात्रा बढ़ाते है एवं गर्म करते हैं। इसके लिए रासायनिक संगठन की जानकारी आवश्यक है।

दूध (घटक)	नारी	गाय	भैंस	वसा रहित (Skimmed)	½ वसा रहित (Toned)
प्रोभूजन ग्रा.%	1.2	3.5	4	4	4
वसा %	4	4	7	-	2
शर्करा %	7	4	4	4	4
कैलोरी %	20	20	33	13	15

(10) Condensed milk—इसे evaporated दुग्ध भी कहते हैं। यह मीठा या मीठारहित स्वरूप में मिलता है। आवश्यकतानुरूप इसे पतला करके प्रयोग करते हैं। रासायनिक संगठन निम्नवत् है।

Condensed milk	वसा%	शर्करा%	प्रोभूजन%	कैलोरी/औंस
Unsweetened	9	12	9	50
Sweetened	10	54	9	100

unsweetened दूध 1 भाग को 2 भाग जल से मिलाने पर लगभग गाय के दूध के समान हो जाता है। शर्करा बाद में सामान्य सिद्धान्त से मिलाते हैं। Sweetened दूध से कम मात्रा में अधिक कैलोरी दी जा सकती है। 1 भाग दूध 4 भाग जल में मिलाकर भी 25 कैलोरी प्राप्त करते हैं परन्तु प्रोभूजन एवं वसा की मात्रा कम होती है।

स्तन्यनाश

स्तन्य-नाश के प्राय: समस्त महत्त्वपूर्ण कारणों को निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया है।

Scanned with CamScanner

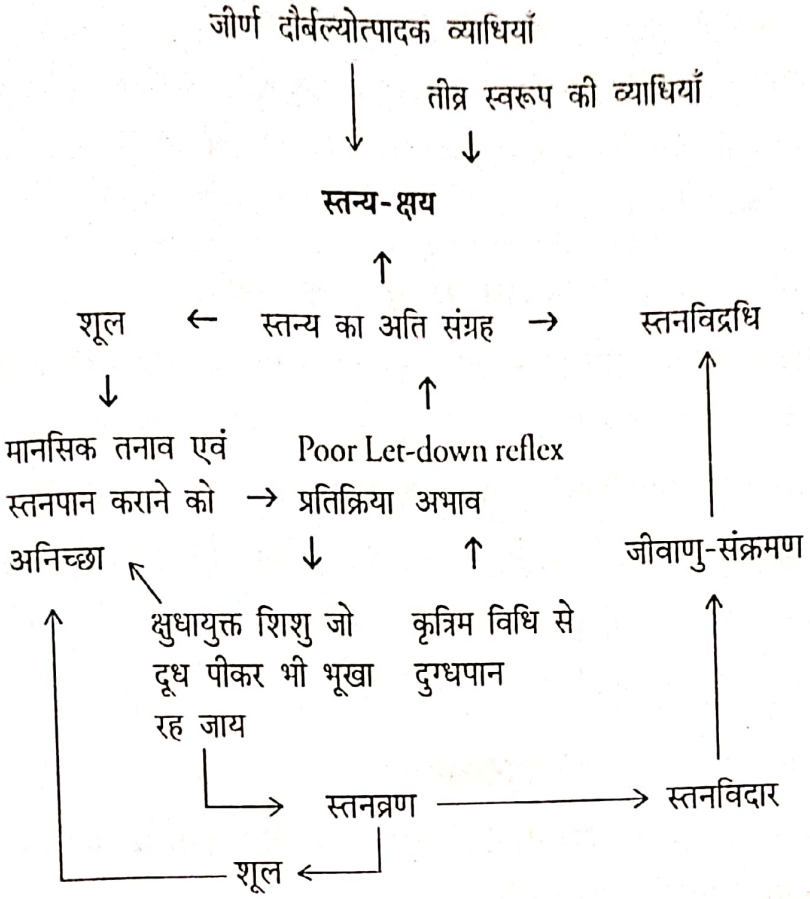

कारण—आचार्य सुश्रुत ने मानसिक कारणों की प्रधानता में क्रोध, शोक एवं वात्सल्य की कमी कही है ।[1] वाग्भट ने कारणों में शोक, क्रोध, अधिक श्रम, लङ्घन, रूक्षान्नपान, कामपिपासा भी कहा है ।[2]

चिकित्सा—

'अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरा-सौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृङ्गाटकबिसविदारिकन्दमधुकशतावरी-नालिकाऽलाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात्' ।। (सु.शा. 10:30)

'स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः ।
क्षीरं क्षीरिण्य ओषध्यः शोकादेश्चविपर्ययः' ।। (अ.ह.उ. 1:18)

स्तन्यजननानि तु मद्यानि शीधुवर्ज्यान्यानुपमांसानि द्रवाः स्वाद्वम्ललवणप्राय-श्चाहाराः क्षीरिण्यश्चौषधयः क्षीरपानमनायासः सौमनस्यं च' ।। (अ.सं.उ. 1:24)

आहार— यव, गोधूम, शालि, षष्टिक, मांसरस (आनूप), सुरा, सौवीर, मत्स्य, क्षीर एवं स्वादु, अम्ल, लवण आहार ग्रहण करना चाहिए ।

विहार— शोकादिनाशक स्थल पर रहना, मानसिक सौम्यता पैदा करना ।

---

1. क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियाः स्तन्यनाशो भवति । (सु.शा. 10:30)
2. (ख) शुक्क्रोधलङ्घनायासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः । (अ.ह.उ. 1:17)
   (ख) रूक्षान्नपानकर्शनक्रोधशोककामादिभिः स्तन्यनाशः । (अ.सं.उ. 1:24)

Scanned with CamScanner

निषेध— मद्य में सीधु को छोड़कर सभी का निषेध है ।

औषधिद्रव्य—क्षीरवर्धक औषधियाँ, तिलकल्क, लहशुन, कशेरुक, शृंगाटक, कमल-कन्द, विदारीकन्द, मधुक, शतावरी, नालिका, अलाबू एवं काला शाक आदि का प्रयोग करें ।

स्तन्यक्षय एवं वृद्धि के लक्षण

'स्तनक्षये स्तनयोर्म्लानता स्तन्यासम्भवोऽल्पता वा; तत्र श्लेष्मवर्धनद्रव्यो-पयोगः' । (सु.सू. 15:12)

'स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवर्त्तिं तोदं च' । (सु.सू. 15:16)

स्तन्यक्षय में स्तन का सङ्कोच, दुग्धोत्पत्ति की हानि या अल्पता होती है । इसमें कफवर्धक आहार देना चाहिए । स्तन्य वृद्धि में स्तनस्थूलता तथा बार-बार दूध के स्राव की प्रवृत्ति से स्तन में तनाव या पीड़ा हो जाती है ।

स्तन्यशोधनादि योग

'पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तककटुरोहिणीसारिवा इति दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति' । (च.सू. 4:12)

'(स्तन्यशोधनगण)····· सारिवाकषायाणां च पानं प्रशस्यते, तथाऽन्येषां तिक्तकषायकटुकमधुराणां द्रव्याणां प्रयोगः, क्षीरविकारविशेषानभिसमीक्ष्य मात्रां कालं च । इति क्षीरविशोधनानि' ।। (च.शा. 8:56)

'पाठा महौषधं दारुमूर्वामुस्तकवत्सकाः ।
सारिवारिष्टकटुकाः कैरातं त्रिफला वचा ।।
गुडूची मधुकं द्राक्षा दशमूलं सदापनम् ।
रक्षोघ्नश्च पटोलश्च गणः क्षीरविशोधनः ।।
लाभतः क्वथितस्तेषां कषायः स तु सेवितः ।
क्षीरं शोधयति क्षिप्रं चिरव्यापन्नमप्युत' ।। (का.सू. 19, पृ. 7)

चरकोक्त स्तन्यशोधन गण—

1. पाठा	3. देवदारु	5. मूर्वा	7. इन्द्रयव	9. कुटकी
2. शुण्ठी	4. मोथा	6. गुडूची	8. चिरायता	10. सारिवा

स्तन्य के शोधन के लिए चरकोक्त स्तन्यशोधन गण में कषाय, कटु, मधुर एवं कषायद्रव्यों का वर्णन है । कश्यप ने चरकोक्त गण के साथ-साथ अरिष्ट (नीम), त्रिफला, वचा, मधुक, द्राक्षा, दशमूल, दीपनीय द्रव्य, रक्षोघ्न एवं पटोलादि गण की औषधियों का प्रयोग कहा है । इनमें से प्राप्त द्रव्यों का कषाय प्रयोग करें ।

Scanned with CamScanner

पटोलादि गण—

'पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी चेति' ।

'सक्षौद्रः कफसंसृष्टे सघृतः शेषयोर्भवेत् । (सु.सू. 38:33)
नेत्येके श्लेष्मणः स्थानात् क्षीरं हि कणसम्भवम्'।।

(का.सू. 19, पृ. 7)

कफदोष दुष्ट काल में उपरोक्त कषाय मधूक के साथ, अन्य में घृत के साथ देना चाहिए। कुछ विद्वान् घृत का निषेध करते हैं, क्योंकि घृत कफ का स्थान है एवं दूध कफ से उत्पन्न है ।

'मसूराः षष्टिका मुद्गाः कुलत्थाः शालयो घृतम् ।
गव्यमाजं पयःकाले लवणं चाप्यनौद्भिदम् ।
आहारविधिरुद्दिष्टः स्तन्यशोधनकालिकः ।
गुर्वन्नस्नेहमांसानि दिवास्वप्नं च वर्जयेत्' ।। (का.सू. 19, पृ. 7-8)

दुग्धशोधन काल में मसूर, षष्टिक, मूँग, कुलथी, शालि, घृत, गोदुग्ध, अजादुग्ध एवं अनौद्भिदलवण (सौवर्चल) आदि आहार का सेवन करें। गुरु, स्निग्ध अन्न, मांस एवं दिवास्वप्न का त्याग करें ।

स्तन्यजनन विधान

स्तन्यशोधन योग्य नारी

'शोधनाद्वा स्वभावाद्वा यस्याः क्षीरं विशुष्यति ।
तस्याः क्षीरप्रजनने प्रयतेत विचक्षणः' ।। (का.सू. 19, पृ. 8)

विद्वान् चिकित्सक को चाहिए कि उपर्युक्त शोधनों द्वारा या स्वभाव से ही जिस स्त्री का दूध सूख जाता है उसके क्षीरजनन का यत्न करें ।

स्तन्यजनन गण

'वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति' । (च.सू. 4:12)

'क्षीरजननानि तु मद्यानि सीधुवर्ज्यानि, ग्राम्यनूपौदकानि च शाकधान्यमांसानि, द्रवमधुराम्ललवणभूयिष्ठाश्चाहाराः, क्षीरण्यश्चौषधयः, क्षीरपानमनायासश्च, वीरणाषष्टिक-शालीक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटमूलकषायाणां च पानमिति' । (च.शा. 8:57)

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदामहामेदाच्छिन्नरुहाकर्कट-शृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकं चेति' ।

'काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ।
जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा' ।। (सु.सू. 38:35-36)

Scanned with CamScanner

'नाडिका सगुणा सिद्धा हिङ्गुजातिसुसंस्कृता ।
क्षीरं मांसरसो मद्यं क्षीरवर्धनमुत्तमम् ।।
वाजीकरणसिद्धं वा क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ।
घृततैलोपसेवा च बस्तयश्च पयस्कराः' ।। (का.सू. 19, पृ. 7)

'मधुराण्यन्नपानानि द्रवाणि लवणानि च ।
मद्यानि सीधुवर्ज्यानि शाकं सिद्धार्थकादृते ।।
वराहमहिषादूर्ध्वं मांसानां च रसो हितः ।
लशुनानां पलाण्डूनां सेवनं शयनं सुखम् ।।
(क्रोधाध्व)भयशोकानामायासानां च वर्जनम् ।
अ·····या भवति वत्स इति क्षीरविवर्धनम् ।।
वटादीनां च वृक्षाणां क्षीरिकायाश्च वल्कलम् ।
पाक्यः कषायः क्वथितः क्षीरं तेन पुनः श्रृतम् ।।
पाक्यं गुडविडोपेतं सघृतं शालिमाशयेत् ।
अपि शुष्कस्तनीनां तत् क्षीरोपजननं परम् ।।
शालिषष्टिकदर्भाणां कुशगुन्द्रेत्कटस्य च ।
सारिवा वीरणेक्षूणां मूलानि कुशकाशयोः ।।
पेयानि पूर्वकल्पेन श्रेष्ठं क्षीरविवर्धनम् ।
स्वभावनष्टे शुष्के वा दुष्टे साध्वीक्षिते हितम्' ।। (का.सू. 19, पृ. 8)

'भूमिकूष्माण्डमूलस्य क्षीरपिष्टस्य यो रसम् ।
पिबेत् सशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ।।
शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धिनी ।
कवोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ।।
वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा ।
विदारिकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम्' । (यो.र. क्षीरदोष चि., पृ. 633)

वज्रकाञ्जिकम्

'पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका ।
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ।।
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ।
तद्यथाग्निबलं पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ।।
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वातनाशनम् ।
तद्वज्रकाञ्जिकं नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ।
मक्कलशूलशमनं परं क्षीरविवर्धनम्' ।।
(यो.र.क्षीरदोषचि., पृ. 433-434)

Scanned with CamScanner

चरकोक्त स्तन्यजनन गण की 10 औषधियाँ इस प्रकार हैं—

1. वीरण (खस)
2. शालि
3. षष्टिक
4. इक्षु
5. वालिका
6. दर्भ
7. कुश
8. कास
9. गुन्द्रा
10. इत्कटमूल

इनके अतिरिक्त सीधु को छोड़कर सभी मद्य, ग्राम्य, आनूप, औदक, शाक, धान्य एवं मांस, द्रव, मधुर, अम्ल, लवण रसयुक्त द्रव्य, भूयिष्ठ आहार, क्षीरी औषधियाँ तथा क्षीरपान स्तन्यजनन कहे जाते हैं ।

आचार्य सुश्रुत ने काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, छिन्नरुहा, कर्कटशृंगी, वंशलोचन, पद्मक, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि-वृद्धि, मृद्वीका, जीवन्ती एवं मधुक का वर्णन स्तन्यवर्धक के रूप में किया है । यह काकोल्यादि गण है जो रक्त एवं वात नाशक, जीवनीय, बृंहणीय एवं वृष्य है तथा दुग्ध एवं अल्प कफ वर्धक है ।[1]

आचार्य कश्यप ने विस्तृत विवेचन दिया है । मधुर अन्नपान, द्रवपदार्थ, लवण, सीधुरहित मद्य, सिद्धार्थक से भिन्न शाक, सूअर एवं भैंसे के अतिरिक्त मांस, रसोन, प्याज सुखशयन करना आदि क्षीरवर्धक है । क्रोध, मार्गगमन, भय, शोक तथा परिश्रम वाले कार्यों का स्त्री को परित्याग करना चाहिए ।

कश्यपोक्त क्षीरजनन योग—वटादि वृक्षों के त्वक् का क्वाथ बनाकर उसमें यवक्षार डालें । अब इसका क्षीरपाक करें । इसमें पाक्य (पांशुलवण या सौवर्चल), गुड़,

1. काकोल्यादि गण में अष्टवर्ग की औषधियों का उल्लेख है । जिसके प्रायः सन्दिग्ध होने के कारण प्रतिनिधिद्रव्य प्रयुक्त होते हैं । इसके लिए 2 मतों का प्रयोग है, जिसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है ।

प्रतिनिधि द्रव्य

अष्ट वर्ग	सुश्रुतसंहिता के टीकाकार अम्बिकादत्त शास्त्री के मत से	भावप्रकाश
जीवक ऋषभक	गुडूची वंशलोचन	विदारीकन्द
मेदा महामेदा	अश्वगन्धा सारिवा	वरी
काकोली क्षीरकाकोली	शतावरी	अश्वगन्धा
ऋद्धि वृद्धि	बला महाबला	वाराहीकन्द

Scanned with CamScanner

विडलवण एवं घृत मिलाकर शाली चावल के साथ सेवन करने से शुष्कस्तनी के भी दुध आ जाता है ।

काश्यप ने भी चरकोक्त स्तन्यजनन गण के साथ क्षीरपाक या क्वाथ को श्रेष्ठ दुग्धवर्धक माना है । उपर्युक्त प्रयोग स्वभाव से नष्ट दूध, शुष्क या दृष्टिदोष (नजर लगने से) दूषित दुग्ध के प्राप्ति का साधन है । योगरत्नाकरकार ने स्तन्यवर्धक कुछ योगों का वर्णन किया है—

1. विदारीकन्द को गौ के दूध के साथ पीसकर उसका रस निकाल कर उसमें शर्करा मिलाकर पिलाना चाहिए ।
2. शतावरी को गोदुग्ध में पीस कर पान कराना चाहिए ।
3. किंचित् उष्ण दुग्ध में पिप्पलीचूर्ण मिला कर पान कराना चाहिए ।
4. वनकार्पास एवं इक्षुमूल को काँजी में पीसकर पान कराना चाहिए ।
5. विदारीकन्द चूर्ण को सुरा के साथ देने पर क्षीरवृद्धि होती है ।
6. वज्रकाञ्जिक—चित्रक रहित पञ्चकोल, यवानी, जीरकद्वय, हरिद्रा एवं लवण (विड और सौवर्चल) समभाग लेकर कूट-पीसकर कांजी सिद्ध कर लें । यह उत्तम क्षीर-वर्धक, दीपन, आमवातहर, वृष्य, कफघ्न एवं मक्कलशूल नाशक है ।

आधुनिक चिकित्साशास्त्री Placental extract, Pituitary extract (Pro-lactin) तथा Urea को दुग्धवर्धक मानते हैं । वस्तुत: स्तन्य-प्रवृत्ति का मूल कारण मानसिक है । यदि माता या धात्री का लगाव शिशु से नहीं है तो सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध होंगे । इसीलिए सुश्रुत ने कहा है—

सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ।
आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रिया: ।।
तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात् स्मरणादपि ।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् सम्प्रवर्त्तते ।।
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ।। (सु.नि. 10-21:23)

अच्छी प्रकार प्रसन्न मन ही मनुष्य के प्रहर्ष होने में कारण होता है । इसी तरह आहाररस से उत्पन्न होने के कारण स्त्रियों को दुग्ध भी सन्तान के स्पर्श करने से, देखने से, स्मरण करने से तथा बच्चे को गोद में लेने से या बच्चे के हाथ द्वारा स्तन को पकड़ने से शुक्र की तरह उस स्त्री के सारे शरीर से दुग्ध के स्राव होने में माता का बच्चे में निरन्तर स्नेह ही कारण होता है ।

विभिन्न औषधियाँ प्राय: दूध के द्वारा भी स्रवित होती हैं, जिनका कोई विशेष प्रभाव शिशु पर प्राय: नहीं होता । परन्तु कुछ अपवाद भी हैं जिनका ज्ञान आवश्यक है ।

Scanned with CamScanner

स्तन्य में स्रवित होने वाले हानिकारक तत्त्व/औषधि

(1) एल्कोहल—शिशु के मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव डालता है। दूध में अच्छी मात्रा में स्रावित होता है। अत: प्रथम 6 माह में कम-से-कम मात्रा ली जानी चाहिए।

(2) जीवाणुरोधी द्रव्य—प्राय: इनका दूध में स्राव अल्प मात्रा में होता है। परन्तु सहिष्णुता (Sensitivity) विकसित होने की सम्भावना रहती है विशेष रूप से पेनिसीलीन से। यदि माता के वृक्क अपना कार्य पूर्णरूपेण नहीं कर पा रहे हैं तो दूध में Streptomycin, Nalidixic acid की मात्रा बढ़ जाती है। Tetracyclines प्राय: बच्चों के दाँतों पर दुष्प्रभाव डालते हैं। कुष्ठ की चिकित्सा में प्रयुक्त Sulphones का स्राव दुग्ध में चिकित्सकीय मात्रा में होता है।

(3) रक्तस्रावरोधी द्रव्य (Anticoagulants) बच्चे में रक्तस्राव करा सकते हैं।

(4) आक्षेपशामक—Primidone।

(5) चुल्लिकारोधी—(Antithyroid drugs)—Thiouracil तथा Radio-active iodine.

(6) अर्बुदरोधी (Anti Tumour drugs)।

(7) शूलनाशक—Aspirin कभी-कभी त्वचा पर दाने (Rashes) पैदा करते हैं।

(8) मधुमेह रोधी (Hypoglycemic drugs - Oral)।

(9) रेचक द्रव्य।

(10) Lithium के कारण पेशीशैथिल्य (Episodic hypotonia) तापक्रम में कमी एवं नीलिमा होती है।

(11) Propranolol के कारण बच्चे में Bronchospasm, श्वसन गति में कमी, रक्तचाप की कमी, Congestive cardiac failure तथा रक्तशर्करा की कमी हो सकती है।

(12) धूम्रपान—20 से 30 सिगरेट एक दिन में पीने से दूध में कमी तथा अन्न-वह स्रोतस् में विकार हो सकते हैं।

(13) Steroids.

(14) काष्ठौषधि योग—विशेष रूप से जिसमें ममीरा (Coptis teeta) पड़ा हो, इसके कारण कामला (Haemolytic jaundice) हो सकता है।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 12

वेदनाध्याय

शैशवकाल की वह अवस्था जब शिशु बोल नहीं सकता, अपने कष्ट कह नहीं सकता उस काल में शिशुओं में होने वाले कष्टों को जानने के लिए आयुर्वेद-मनीषियों ने जो अनुभव किये, उनका संकलन इस अध्याय में है। इसमें सर्वप्रमुख योगदान आचार्य कश्यप का रहा है, जिन्होंने इस विषय पर एक स्वतन्त्र अध्याय (सूत्रस्थान 25) ही प्रस्तुत किया है। सूक्ष्मरूपेण इसकी चर्चा अन्य आचार्यों ने भी की है।

'अङ्गप्रत्यङ्गदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते।
मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदिति॥
निमीलिताक्षो मूर्धस्थे शिरो रोगे न धारयेत्।
बस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति॥
विण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यच्छर्द्याध्मानान्त्रकूजनैः।
कोष्ठे दोषान् विजानीयात् सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः'॥ (सु.शा. 10:34-36)

बालक के जिस अङ्ग-प्रत्यङ्ग में पीड़ा होती है, उसे बार बार छूता है, उसे स्पर्श करने पर रोता है। शिरोरोग में नेत्र बन्द रखता है, शिर को धारण नहीं करता है। बस्ति में पीड़ा के कारण मूत्र रुक जाता है, तृषा होती है, मूर्च्छित हो जाता है। मलावरोध, मूत्रावरोध, विवर्णता, वमन, आध्मान, आन्त्रकूजन—इनमें कोष्ठ में दोष है; ऐसा समझना चाहिए। रोने से सर्वत्र विकृति जानिए।

'स यं प्रदेशमभीक्ष्णं स्पृशति स्पर्शं च न क्षमते तत्र रुजमुपलक्षयेत्। निमीलिताक्षतया मूर्ध्नि रुजम्। जिह्वोष्ठदंशश्वासमुष्टिबन्धोर्ध्वेक्षणैर्हृदये। विण्मूत्रच्छर्द्याध्मानान्त्रकूजनस्तनदंशवेष्ठनपृष्ठविनमनजठरोन्नमनैर्जठरे। मूत्रसङ्गतृण्मूर्च्छोत्रासदिग्वीक्षणखल्लीहस्तपादस्तम्भकुब्जीभवनकेशलुञ्चनैर्बस्तौ गुह्ये च सर्वत्र स्वभावातिरिक्तरोदने न मुखविकूणनेन च'। (अ.सं.उं. 2:8-9)

स्वभावतः बालक शरीर के जिस-जिस स्थान को बार-बार छूता हो या स्पर्श करने से बालक को सहज न हो सके, वह उस स्पर्श के कारण रोता हो, उस स्थान में विशेष प्रकार की वेदना (Tenderness) है, ऐसा समझना चाहिए। शिरःशूल में नेत्र बन्द रखता है। हृदय में व्यथा रहने पर जीभ तथा ओष्ठ चबाता है, श्वास फूलती है तो मुट्ठी भीचता है, नेत्र घुमाता है। उदरव्यथा में मल, मूत्र, वमन, आध्मान आन्त्र में गुड़गुड़ाहट आदि लक्षण प्रकट होते हैं। बार-बार अंगड़ाई आना, पीठ का मध्य से नमना,

Scanned with CamScanner

स्तनदंश, पेट ऊपर उठाना आदि लक्षण होते हैं। मूत्र रुकने पर तृषा, मूर्च्छा, भय होता है। बस्ति एवं गुह्य में वेदना होने पर बालक इधर-उधर देखता है, हाथ-पैर में ऐंठन, केश नोचना तथा अङ्गों में ऐंठन होती है। किसी भी विकार में बालक बहुत रोता है, अपनी मुखमुद्रा टेढ़ी करता है।

'शिशोस्तीक्ष्णमभीक्ष्णं च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्।
स यं स्पृशेद् भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः॥
तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात्।
हृदि जिह्वौष्ठदशनश्वासमुष्टिनिपीडनैः॥
कोष्ठे विबन्धवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनै।
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि॥
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसङ्गोत्रासदिगीक्षणैः'। (अ.हृ.उ. 2:5-8)

बच्चे के बार-बार एवं जोर-जोर से रोने पर उसे पीड़ित समझना चाहिए। शरीर में जिस स्थान को (चिकित्सक) स्पर्श करे और वह सह न सके (Tenderness) वहाँ कष्ट समझें। नेत्र बन्द रखने पर शिरोरुजा; ओष्ठ-जिह्वादंश, श्वास एवं मुट्ठी भींचने पर हृदय-रुजा समझें। मल-मूत्रावरोध, वमन, स्तनदंश, आन्त्रकूजन, आध्मान, पीठ मोड़ना, पेट उठाना आदि से कोष्ठपीड़ा समझें। मल-मूत्रावरोध एवं डरे हुए की भाँति चौंकने या चारों ओर देखने से बस्ति एवं गुह्य भाग में पीड़ा समझें।

'शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्'। (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 435)

काश्ययोक्त शिशु में होनेवाली व्याधि

काश्यपसंहिता में इस विषय पर एक स्वतन्त्र 'वेदनाध्याय' प्रस्तुत है। उसमें 30 व्याधियों या लक्षणों का संकलन है जिसे यहाँ पर सुविधा की दृष्टि से अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है—

(1) **अतिसार**—शरीर विवर्ण, अरति, मुखग्लानि हो जाती है; निद्रा नहीं आती है, वायुकर्म की निवृत्ति हो जाती है। ये अतिसार के पूर्व लक्षण हैं।

'देहवैवर्ण्यमरतिर्मुखग्लानिरनिद्रता।
वातकर्मनिवृत्तिश्चेत्यतीसाराग्रवेदनाः' ॥14॥

(2) **अपस्मार**—सहसा जोर से अट्टहास करना, प्रलाप, अरति एवं वैचित्त्य हो जाता है।

'अकस्मादट्टहसनमपस्माराय कल्पते।
प्रलापारतिवैचित्त्यैरुन्मादं चोपलक्षयेत्' ॥20॥

(3) **अधिजिह्विका**—लालास्राव, अरुचि, ग्लानि, कपोल पर शोथ एवं पीड़ा होती है; मुख खुला रहता है।

Scanned with CamScanner

'लालास्रावोऽरुचिर्ग्लानिः कपोले श्वयथुर्व्यथा ।
मुखस्य विवृतत्वं च जानीयादधिजिह्विकाम्' ।।10।।

(4) **अर्श**—मल बधा, पक्व, सरक्त होगा, कमजोर होगा, गुदा में वेदना, कण्डू तथा तोद होगी ।

'बद्धपक्वपुरीषत्वं सरक्तं वा कृशात्मनः ।
गुदनिष्पीडनं कण्डूं तोदं चार्शसि लक्षयेत्' ।।23।।

(5) **अलसक**—शिशु थोड़ी देर भी सिर को ठीक से धारण नहीं कर पाता है। शरीर का भेदन होता है, बार-बार जृम्भा, अधिक स्तनपान न करना, ग्रथित वमन करना एवं विषाद, आध्मान तथा अरुचि लक्षण होते हैं । विसूचिका एवं अलसक रोग के लक्षण एवं औषधि के भेद का ज्ञान कठिनता से होता है ।

'शिरो न धारयति यो भिद्यते जृम्भते मुहुः ।
स्तनं पिबति नात्यर्थं ग्रथितं छर्दयत्यपि ।।27।।
विषादाध्मानारुचिभिर्विद्यादलसकं शिशोः ।
विसूचिकालसकयोर्दुर्ज्ञाने लक्षणौषधे' ।।28।।

(6) **अश्मरी**—शर्करा युक्त मूत्र हो, मात्रा में अधिक हो, मूत्र त्याग के समय वेदना हो, सदैव रोता रहता हो एवं रोगी अति दुर्बल हो ।

'सशर्करातिमूत्रत्वं मूत्रकाले च वेदना ।
प्रततं रोदिति क्षामस्तं ब्रूयादश्मरीगदम्' ।।24।।

(7) **आनाह**—विशाल, स्तब्ध नेत्र, पर्वभेद, अरति, क्लम एवं मल-मूत्र-वातावरोधयुक्त हो, उसमें आनाह समझें ।

'विशालस्तब्धनयनः पर्वभेदारतिक्लमी ।
संरुद्धमूत्रानिलविट् शिशुरानाहवेदनी' ।।19।।

(8) **आमदोष**—स्तिमितता, अरुचि, निद्रा, पाण्डु एवं अरति होती है । शिशु को क्रीड़ा, भोजन, शयन, धात्री से निरन्तर द्वेष रहता है । यदि स्नान नहीं किया है तो भी स्नान किये-सा प्रतीत होता है या इसके विपरीत अनुभूति अर्थात् स्नान किया है तो स्नान न करने की अनुभूति । इन लक्षणों के आधार पर आमदोष की कल्पना कर सकते हैं।

'स्तैमित्यमरुचिर्निद्रा गात्रपाण्डुकताऽरतिः ।
रमणाशनशय्यादीन् धात्रीं च द्वेष्टि नित्यशः ।।32।।
अस्नातः स्नातरूपश्च स्नातश्चास्नातदर्शनः ।
आमस्यैतानि रूपाणि विद्याद्वैद्यो भविष्यतः' ।।33।।

(9) **कण्ठशोथ**—ज्वर, अरुचि, शिरःशूल के साथ कण्ठ में शोथ होता है ।

कण्डू(ण्ठ)के श्वयथुः कण्ठे ज्वरारुचिशिरोरुजः ।।11।।

Scanned with CamScanner

(10) **कण्डू**—इस रोग में बालक रात्रि को सोते समय अङ्गों का घर्षण करता है। रोता है, शरीर-मर्दन करता है। यह शुष्क कण्डू है। शुष्क के बाद आर्द्रकण्डू होती है, इसमें शिशु रगड़ने पर सुख अनुभव करता है। रगड़ने पर बढ़ती है। बढ़ने पर उसमें स्राव होता है। शूल तथा दाह भी होता है।

'घर्षत्यङ्गानि शयने रोदितीच्छति मर्दनम्।
शुष्ककण्ड्वऽर्दितं विद्यात्ततश्चार्द्रा प्रवर्तते ।।30।।
सुखायते मृद्यमानं मृद्यमानं च शूयते।
शूनं स्रवति सस्योढा(?)मार्द्रायां शूलदाहवत्' ।।31।।

(11) **कामला**—इसका विवरण पाण्डु के साथ 20वें क्रम पर देखिये।

(12) **गलग्रह**—ज्वर, अरुचि, मुख से लालास्राव एवं श्वास में कष्ट होता है।

'ज्वरारुचिमुखस्रावा निष्टनेच्च गलग्रहे' ।।11।।

(13) **ग्रहरोग**—जब लालन करने वाली सुखी तथा सब वस्तुओं का भोग करनेवाली धात्री लगातार बुरे स्वप्न देखे, स्तनों में स्वयमेव दूध प्रवृत्त हो, उसे बालक का स्मरण न रहे या शिशु को अपस्मार रोग हो जाय, बालक सहसा गोद से गिर पड़े, दुष्ट पुरुषों के साथ संसर्ग एवं भोजन करती हो, जिनके पुत्रों की मृत्यु हो जाती हो, अवकीर्णी हों तथा जो दूसरों की वृद्धि को न सहन कर सकती हो। ऐसी धात्री भयङ्कर अमङ्गलों को देखती है, वैसा ही आचरण करती है एवं विपरीत भावों का सेवन करती है, तो उस बालक के मृत्यु की सम्भावना रहती है। बालक के साये होने पर भयंकर आकृति के पक्षी वहाँ घोंसला बना लेते हैं। बिडाल उसे लाँघ जाता है पर धूम को सूँघता है, वह दूसरे की उतारी बलि चाटता है तथा इसका लङ्घन करता है, शिशु-शरीर एवं मुख से दुर्गन्धि आती है, नासिकाग्र भाग मे मलोत्पत्ति हो जाती है, माता एवं पुत्र दोनों अशुभ रक्त वर्ण के माले धारण करते हैं; भस्म, अङ्गार एवं तुष के ढेर पर बैठते हैं। सहसा रोदन, भय, छाया एवं स्वभाव में परिवर्तन होता है। कम खाता है। मल-मूत्र कभी अधिक कभी कम होता है। बालक अपने शिर को धारण नहीं कर पाता, अंग इधर-उधर फेंकता है। दौर्बल्य, श्वासरोग एवं आध्मान प्रतीत होता है। बचने की सम्भावना नहीं लगती। बालक विनोद पसन्द नहीं करता। प्यास, प्रमीलक रोग, निद्रा से पीड़ित होता है। कबूतर की तरह शब्द करता है। यह सब ग्रहरोगों के प्रारम्भिक लक्षण हैं।

'यदा तु लालिता धात्री सुखिनी सर्वभोगिनी।
पश्यत्यभीक्ष्णं दुःस्वप्नं स्वयं क्षीरं प्रवर्तते ।।
बालो वि(ऽप)स्मरते चास्याः सहसाऽङ्कात् पतत्यपि।
असज्जनेन संसर्गं याति साम्भोजनं तथा ।।
मृतापत्यावकीर्णीभिः परवृद्ध्यसहिष्णुभिः।

नोट—उरोघात के लक्षण क्रम 21 पर पीनस के साथ देखिये।

Scanned with CamScanner

अमङ्गलानि घोराणि पश्यत्याचरतेऽपि च ।।
सेवते विपरीतानि मृत्युं चोदयते शिशोः ।
सुप्ते शिशौ नीलीयन्ते पक्षिणो दारुणोदयाः ।।
बिडालो लङ्घयत्येनं परधूमं च जिघ्रति ।
परावतारणबलिं प्रेक्षेते लङ्घयत्यपि ।।
दुर्गन्धदेहवक्त्रत्वं नासिकाग्रे मलोद्भवः ।
अहृद्यरक्तमाल्यानां मातापुत्रनिषेवणम् ।।
भस्माङ्गारतुषादीनामधिरोहणसेवनम् ।
रोदित्यकरमात्त्रसति छायाशीलविपर्ययः ।।
अल्पाशितोऽतिविण्मूत्रस्त्वविण्मूत्रो विपर्यये ।
भविष्यतां निमित्तानि ग्रहाणां वेदनाश्च ताः ।।
न यः शिरो धारयति क्षिपन्त्यङ्गानि दुर्बलः ।
श्वासाध्मानपरीताभ्यामन्तवच्चोपलक्ष्यते ।।
विनोद्यमानो बहुधा विनोदं नाभिनन्दति ।
तृट्प्रमीलकनिद्रार्तः कूजत्यपि कपोतवत्' ।।40-49।।

(14) **चक्षुरोग**—दृष्टि-व्याकुलता, चक्षु में तोद, शोथ, शूल, अश्रु का अधिक आना तथा लालिमा होती है । सोने पर दोनों नेत्र चिपचिपा जाते हैं ।

'दृष्टिव्याकुलता तोदशोथशूलाश्ररक्तताः ।
सुप्तस्य चोपलिप्यन्ते चक्षुषी चक्षुरामये' ।।29।।

(15) **छर्दिरोग**—बिना किसी कारण के बार-बार उद्‌गार होना, निद्रा एवं जृम्भा आ रही हो तो वमन की सम्भावना रहती है ।

'अनिमित्तमभीक्ष्णं च यस्योद्‌गारः प्रवर्तते ।
निद्राजृम्भापरीतस्य छर्दिस्तस्योपजायते' ।।16।।

(16) **जन्तुदंश**—स्वस्थ बालक यदि रात में न सोये, उसके किसी अङ्ग पर लाल वर्ण के बिन्दु दिखायी दें तो यह समझना चाहिए कि किसी जन्तु ने काटा है।

'स्वस्थवृत्तपरो बालो न शेते तु यदा निशि ।
रक्तबिन्दुचिताङ्गश्च विद्यात्तं जन्तुकार्दितम्' ।।39।।

(17) **ज्वर**—बार-बार शरीर का मोड़ना, जृम्भा, बार-बार कास होती है। सहसा धात्री से चिपक जाता है, स्तन या दूध की विशेष इच्छा नहीं रहती, लालास्राव, शरीर उष्ण तथा विवर्ण, ललाट गर्म, अरुचि तथा पैर ठण्डे रहना ज्वर के पूर्व लक्षण हैं।

'मुहुर्नमयतेऽङ्गानि जृम्भते कासते मुहुः ।
धात्रीमालीयतेऽकस्मात् स्तनं (न्यं) नात्यभिनन्दति ।।12।।

Scanned with CamScanner

प्रस्रावोष्णत्ववैवर्ण्ये ललाटस्यातितप्तता ।
अरुचिः पादयोः शैत्यं ज्वरे स्युः पूर्ववेदनाः' ।।13।।

(18) **तृष्णा**—अति स्तनपानोपरान्त भी यदि तृप्ति न हो, रोता हो, ओष्ठ एवं तालु शुष्क हों, यदि जल का इच्छुक हो तो तृषा युक्त समझना चाहिए ।

'स्तनं पिबति चात्यर्थं न च तृषि(ष्य)ति रोदिति ।
शुष्कौष्ठतालुस्तोयेप्सुर्दुर्बलस्तृष्णयाऽर्दितः' ।।18।।

(19) **प्रमेह**—शरीर भारी, बँधा हुआ, जड़, अकस्मात् मूत्र हो जाना, उस पर मक्खी बैठना, मूत्रवर्ण श्वेत एवं घन होता है ।

'गौरवं बद्धता जाड्यमकस्मान्मूत्रनिर्गमः ।
प्रमेहे मक्षिकाका(क्रा)न्तं मूत्रं श्वेतं घनं तथा' ।।22।।

(20) **पाण्डु**— नाभि के चारों ओर शोथ, नेत्र, नख, मुखश्वेतता, अग्निमान्द्य, नेत्र के चारों ओर शोथ हो जाता है । कामला में नेत्र, नाखून, मल, मूत्र पीत वर्ण के हो जाते हैं । उभय रोग में शिशु उत्साहशून्य, जाठराग्नि का नष्ट होना तथा रुधिर के प्रति आकांक्षा होती है ।

'नाभ्यां समन्ततः शोथः श्वेताक्षिनखवक्रता ।
पाण्डुरोगेऽग्निसादश्च श्वयथुश्चाक्षिकूटयोः ।।34।।
पीतचक्षुर्नखमुखविण्मूत्रः कामलार्दितः ।
उभयत्र निरुत्साहो नष्टाग्निरुधिरस्पृहः' ।।5।।

(21) **पीनस**—जो शिशु स्तनपान करते हुए बार-बार नासिका से श्वास लेता है, जिसकी नासिका से बार-बार स्राव होता है, ललाट लाल रहता है, स्रोतों को बार-बार स्पर्श करता है, छींकता एवं कास करता है, उसे पीनस रोग से आक्रान्त जाने । उरोघात में इन लक्षणों के साथ-साथ गरम-गरम श्वास आती है ।

'मुहुर्मुखेनोच्छ्वसिति पीत्वा पीत्वा स्तनं तु यः ।
स्रवतो नासिके चास्य ललाटं चाभितप्यते ।।37।।
स्रोतांस्यभीक्ष्णं स्पृशति पीनसे क्ष्वौति कासते ।
उरोघाते तथैव स्यान्निष्टनत्युरसाऽधिकम्' ।।38।।

(22) **मदात्यय**—मूर्च्छा, जागरण, वमन, धात्रीद्वेष, अरति, भ्रम, वित्रास, उद्वेग एवं तृष्णा के लक्षणों से मदात्यय समझे ।

'मूर्च्छाप्रजागरच्छर्दिधात्रीद्वेषारतिभ्रमैः ।
वित्रासोद्वेगतृष्णाभिर्विद्याद्बाले मदात्ययम्' ।।36।।

विमर्श—बालक में मदात्यय होना असामान्य तथ्य है और वह भी धात्री द्वारा जो पोष्य हो अर्थात् जीवन के प्रथम 5-6 वर्ष में । ऐसा तभी सम्भव है जब धोखे से शिशु

Scanned with CamScanner

कहीं रखी मद्य को उठाकर पी गया हो अथवा चिकित्सक की गलती के कारण आवश्यकता से अधिक मद्य शिशु को दिया गया हो ।

(23) **मुखरोग**—लालास्रावाधिक्य, दुग्ध-द्वेष, ग्लानि, पीड़ा, पीये दूध को उगल देना तथा नाक से श्वास लेना मुखरोग के लक्षण है ।

'लालास्रवणमत्यर्थं स्तनद्वेषारतिव्यथाः ।
पीतमुद्गिरति क्षीरं नासाश्वासो मुखामये' ।।8।।

(24) **मूत्रकृच्छ्र**—इसमें बालक को रोमहर्ष, अंगहर्ष, मूत्र त्याग के समय वेदना, ओष्ठदंश एवं हाथ से बस्तिदेश छूना लक्षण हैं ।

'रोमहर्षोऽङ्गहर्षश्च मूत्रकाले च वेदना ।
मूत्रकृच्छ्रे दशत्योष्ठौ बस्तिं स्पृशति पाणिना' ।।21।।

(25) **विसर्प**—शरीर पर रक्त वर्ण के मण्डल बन जाना, तृषा, दाह, ज्वर, अरति होना तथा मधुर-शीत द्रव्यों की इच्छा का होना ।

'रक्तमण्डलकोत्पत्तिस्तृष्णा दाहो ज्वरोऽरतिः ।
स्वादुशीतोपशायित्वं विसर्पस्याग्रवेदनाः' ।।25।।

(26) **विसूचिका**—अंगों में दाह, सूचीभेदवत् शूल, श्वसन में कष्ट तथा हृत् शूल होता है ।

'दह्यन्तेऽङ्गानि सूच्यन्ते भज्यन्ते निष्टनत्यति ।
विसूचिकायां बालानां हृदि शूलं च वर्धते' ।।26।।

(27) **श्वासरोग**—इसमें उर से अति गरम श्वास का आना ही प्रमुख लक्षण है।

'निष्टनत्युरसाऽत्युष्णं श्वासस्तस्योपजायते' ।।17-1।।

[पीनस रोग के लक्षण जब श्वास रोग लक्षण से मिल जाते हैं तो उरोघात के लक्षण हो जाते हैं । ऐसा इस वर्णन से प्रतीत होता है ।]

(28) **हिक्का**—कृश शिशु में अकस्मात् वायु के उद्गार का होना हिक्का की सम्भावना व्यक्त करता है ।

'अकस्मान्मारुतोद्गारः कृशे हिक्का प्रवर्तते' ।।17-2।।

(29) **शूल**—आचार्य ने कुछ विशिष्ट स्थान के शूलों का वर्णन किया है; यथा—उदर, कण्ठ, कर्ण एवं शिर । इनके लक्षण आगे संकलित हैं—

'स्तनं व्युदस्यते रौति चोत्तानश्चावभज्यते ।
उदरस्तब्धता शैत्यं मुखस्वेदश्च शूलिनः ।।15।।
पीतमुद्गिरति स्तन्यं विष्टम्भि श्लेष्मसेवनम् ।
ईषज्ज्वरोऽरुचिर्ग्लानिः कण्ठवेदनयाऽर्दिते ।।9।।

Scanned with CamScanner

कर्णौ स्पृशति हस्ताभ्यां शिरो भ्रमयते भृशम् ।
अरत्यरोचकास्वप्नैर्जानीयात् कर्णवेदनाम् ।।7।।
भृशं शिरः स्पन्दयति निमीलयति चक्षुषी ।
अवकूजत्यरतिमानस्वप्नश्च शिरोरुजि' ।।6।।

स्तनपान करना छोड़ देना, रोना, उत्तान लेटना, उदर में स्तब्धता, शीत लगना तथा मुख पर पसीना आना उदरशूल के लक्षण हैं। गले की वेदना में बालक पीये हुए दूध को उलट देता है। श्लेष्मवर्धक पदार्थ सेवन से विष्टम्भ हो जाता है। ईषत् ज्वर, अरुचि एवं ग्लानि होती है। कर्णशूल में बालक हाथों से कर्ण स्पर्श करता है। सिर बहुत हिलाता है। ग्लानि एवं अरुचि होती है, अनिद्रा रहती है। शिर:शूल में सिर का अधिक हिलाना, नेत्र बन्द रखना, रात्रि में सोते-सोते चिल्लाना तथा आहार में ग्लानि होती है। उसे नींद नहीं आती है।

इस प्रकार आचार्य काश्यप ने विस्तृत रूप में लगभग 30 व्याधियों के पूर्वरूपों का वर्णन किया है।

*

Scanned with CamScanner

द्वितीय खण्ड

व्याधि खण्ड

Scanned with CamScanner

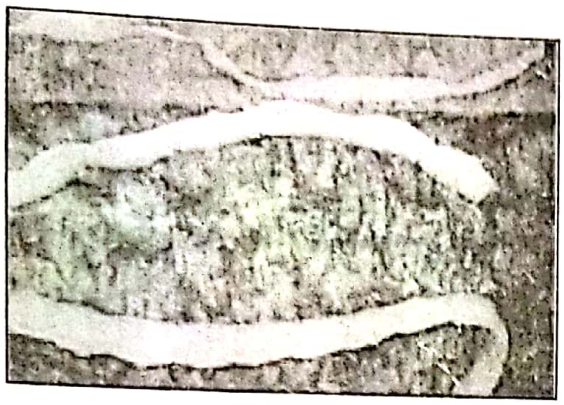

पृथु मुण्डा
(Tape worm)

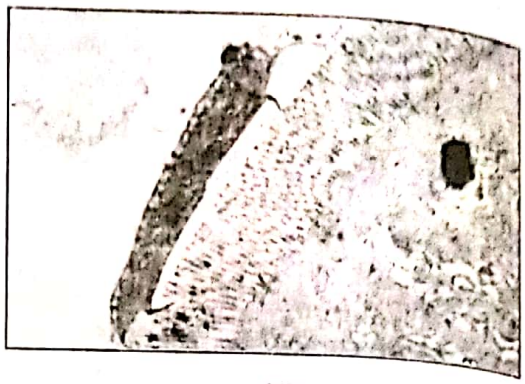

अणु
(Giardia)

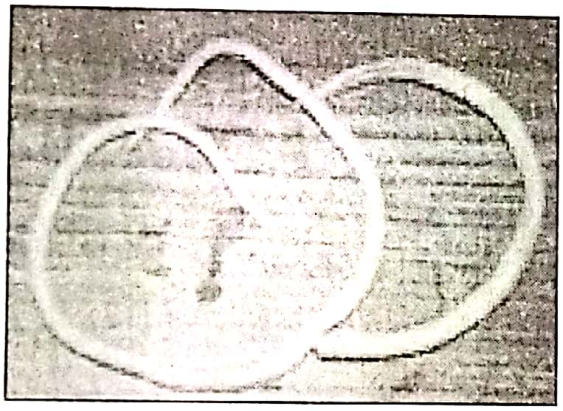

कंचुकसन्निभा
(Ascaris)

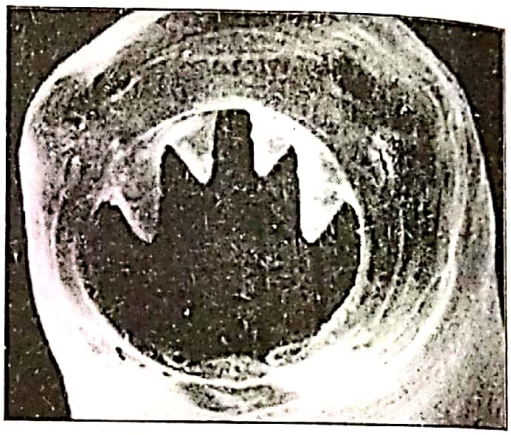

सूक्ष्म
(Hook worm)

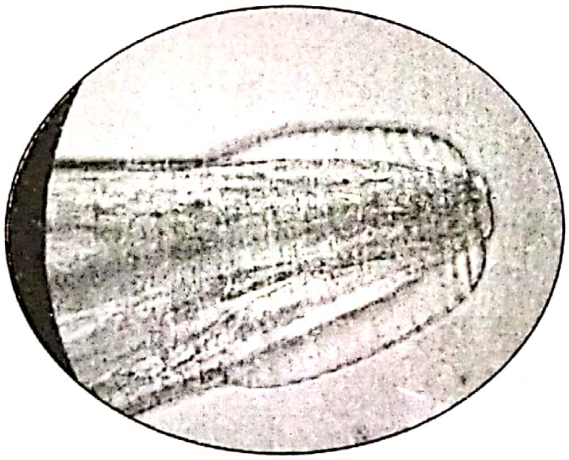

धान्याङ्कुरनिभा
(Thread worm)

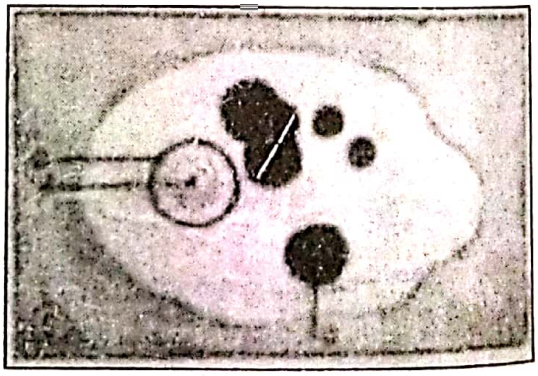

सूची मुख
(Entamoeba histolytica)

आन्त्र कृमि (Intestinal Worms)

Scanned with CamScanner

अध्याय - 1

व्याधि का सामान्य परिचय

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में वर्णित विषयकर को आचार्य चरक एवं माधव दोनों ने ही कौमारभृत्य विषय के दृष्टिकोण से महत्त्व दिया है। इनके मत से व्याधि एवं दोष-दूष्य आदि वयस्कों के ही समान होता है—

'दोषदूष्यमलाश्चैव महतां व्याधयश्च ये।
त एव सर्वे बालानां मात्रा त्वल्पतरा मता' ॥ (च.चि. 30:282)

'ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः।
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा' ॥ (मा.नि. 68:16)

भेद केवल इतना ही है कि इनमें दोष-दूष्य-मल आदि की मात्रा कम होती है।

उपरोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यह कहना उचित होगा कि प्रत्येक कौमारभृत्य-विशेषज्ञ को इस विषय के ज्ञान के साथ-साथ कायचिकित्सा, शल्य एवं शालाक्य विषय का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इस पुस्तक के इस खण्ड में बालक की मात्र उन व्याधियों का सङ्कलन है जो प्रायः बालकों में होती है। परन्तु अन्य व्याधियों के ज्ञानार्थ अन्य विषयों का अध्ययन भी आवश्यक है।

उपरोक्त सन्दर्भ में दोष-दूष्यादि को उद्धरित किया गया है। उनका अध्ययन शरीर एवं निदान आदि विषयों में कराया गया होगा। यहाँ पर मात्र उनका संक्षिप्त विवरण स्मरण मात्र के लिए दिया जा रहा है।

दोष

'दूष्यन्ति अनेन इति दोषः'।

शरीर की रस, रक्त आदि धातुओं को दूषित करने से वातादि दोष कहलाते हैं। यथोचित स्थान, परिमाण, गुण तथा कर्मों से युक्त वात आदि आरोग्य के हेतु हैं। इस प्रकार स्वस्थ अवस्था में इनकी अन्वर्थ यौगिक संज्ञा धातु है। दोष शारीरिक एवं मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं। शारीरिक दोषों की संख्या वात, पित्त एवं कफ 3 कही गयी है। मानसिक दोष 2 हैं—रज तथा तम। ये दोष ही रोगोत्पत्ति का कारण बनते हैं—

'नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः'।

पञ्चमहाभूत का दोषों से अति निकट का सम्बन्ध है। साथ ही रसों का भी सम्बन्ध है। यह दोनों ही चिकित्सा में सहायक हैं।

Scanned with CamScanner

पञ्चमहाभूत	दोष	प्रकोपक रस	शामक रस
आकाश + वायु	वात	कटु, तिक्त, कषाय	मधुर, अम्ल, लवण
अग्नि	पित्त	अम्ल, लवण, कटु	कषाय, तिक्त, मधुर
जल एवं पृथ्वी	कफ	मधुर, अम्ल, लवण	कटु, तिक्त, कषाय

इन दोषों का शरीर में विशिष्ट स्थान एवं कर्म हैं तथा प्रत्येक के 5-5 भेद हैं।

दोष	स्थान (सामान्य)	गुण	कर्म	भेद	स्थान
वात	पक्वाशय	रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल आदि ।	उत्साह, श्वासोच्छ्वास, विविध चेष्टाएँ, वेगप्रवर्तन, इन्द्रियों की विषयग्रहण शक्ति आदि ।	1. प्राण	शिर, कण्ठ, उरस्
				2. उदान	उरस्
				3. समान	अग्नि, कोष्ठ
				4. व्यान	हृदय
				5. अपान	पक्वाशय एवं गुदा
पित्त	हृदय व नाभि के मध्य	उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव आदि ।	पचन, क्षुधा, तृषा, क्रोध, शौर्य, भय, हर्ष, मन, प्रसादन, बुद्धि, मेधादि, रुचि, दर्शन आदि ।	1. पाचक	नाभि
				2. रञ्जक	रक्त
				3. साधक	हृदय
				4. आलोचक	नेत्र
				5. भ्राजक	त्वचा
कफ	उरस्, अमाशय	गुरु, स्निग्ध, शीत, श्लक्ष्ण, मन्द, पिच्छिल, स्थिर, सान्द्र आदि ।	शरीर में दृढ़ता, उत्साह, विषयों का सम्यक् ज्ञान, शक्ति आदि ।	1. क्लेदक	आमाशय
				2. बोधक	मुख
				3. अवलम्बक	उर
				4. श्लेषक	सन्धियाँ
				5. तर्पक	शिर

सभी दोषों में वात का महत्त्व सर्वाधिक है, इसीलिए स्पष्ट निर्देश मिलता है कि—

'पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्' ।।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण दोषों के सामान्य ज्ञानार्थ है । विशिष्ट विवरण संहिताओं में देखना चाहिए ।

Scanned with CamScanner

दूष्य

वातादि दोषों द्वारा दुष्ट होने पर रसादि धातुओं को दूष्य की संज्ञा प्राप्त होती है। इन धातुओं की संख्या सात हैं। इनकी उपधातुएँ भी हैं; यथा—

धातु	उपधातु	मल
रस	स्तन्य, रज (आर्तव)	कफ
रक्त	कण्डरा, सिरा	पित्त
मांस	वसा एवं छः त्वचाएँ	नासिका, कर्णादि छिद्रों का मल
मेद	स्नायु एवं सन्धि	स्वेद
अस्थि	दन्त	नख, रोम
मज्जा	केश	नेत्र, त्वचा एवं पुरीषाश्रित स्नेह
शुक्र	ओज	ओज

मल

जो द्रव्य शरीर को मलिन करते हैं वे मल कहलाते हैं—'मलिनीकरणात् मलः'।

सामान्यतया पुरीष, मूत्र एवं स्वेद को मल कहा जाता है। लेकिन शरीर को धारण करने वाले पुरीष, मूत्र एवं स्वेद को मल नहीं कहना चाहिए। क्योंकि मूत्र-पुरीष से वात-पित्त-कफ इन मलों का पोषण होता है। वाग्भट ने प्रत्येक धातुओं के अलग-अलग मल कहे हैं, जिन्हें ऊपर तालिका में दर्शाया गया है।

दोष धातुओं को दूषित करके व्याधि की उत्पत्ति करते हैं। व्याधि या रोग शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं।

रोग या व्याधि

रोग शब्द 'रुज' धातु से निष्पन्न है। रुज का अर्थ है जो पीड़ा पहुँचाये, कष्ट दे वह रोग है। 'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता'। दोषों की विषमावस्था ही रोग है। इन रोगों के दो अधिष्ठान हैं—शरीर एवं मन।

'तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा'। (अ.ह.सू. 1:21)

शरीर एवं मन के आश्रयभूत व्याधियों की उत्पत्ति होने में काल, बुद्धि, इन्द्रियों के विषयों का मिथ्या योग, अयोग एवं अतियोग कारण होता है।

'कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च।' (च.सू. 1:54)

व्याधि, आमय, गद, आतङ्क, ज्वर, विकार एवं रोग यह सभी शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। व्याधि का तात्पर्य है—'विविधं दुःखमादधाति इति व्याधिः'।

इसके विपरीत अवस्था स्वस्थ कही गई है।

Scanned with CamScanner

स्वस्थ

'समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते' ।। (सु.सू. 15:48)

दोषों का समप्रमाण में रहना, अग्नि का सम रहना, धातु एवं मल क्रिया का प्राकृत रूप में रहना तथा आत्मा, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न होना यह स्वस्थ के लक्षण हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या कश्यप ने की है—

'अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च ।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम् ।।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम् ।
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता ।।
विद्यादारोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्' । (का.खिल. 5:6-8)

अन्न में रुचि, खाये हुए अन्न का सुखपूर्वक परिपाक हो जाना, मल-मूत्र एवं वायु का निकलना, शरीर में लघुता, इन्द्रिय की प्रसन्नता, सुखपूर्वक शयन एवं जागरण, बल-वर्ण एवं आयु की प्राप्ति, मन की प्रसन्नता तथा अग्नि की समता—ये आरोग्य के लक्षण जानने चाहिए। इनके विपरीत अवस्था अनारोग्य की होती है।

दोषों की वृद्धि ही व्याधि उत्पत्ति के लिए हेतुभूत होती है—

'वृद्धा एव दोषा रोगजनकाः, इति पालकाप्यः ।

दोष शरीर में सदैव के लिए रहते हैं। सञ्चयादि अवस्थाओं के ऊपर जब भी मिथ्याहारादि नैमित्तिक हेतुओं का आक्रमण होता है तभी व्याधि उत्पन्न होती है। यह षड्विध क्रियाकाल है।

दोष + निमित्त = विकृति उत्पादक दोष
↓
सञ्चय
↓
प्रकोप
↓
प्रसर
↓
स्थानसंश्रय
↓
व्यक्ति
↓
भेद

Scanned with CamScanner

दोष शरीर में रहकर व्याधि उत्पन्न करेंगे, ऐसा कोई नियम नहीं है। वय, दिन, रात्रि एवं भोजन काल में दोषों में जो सञ्चयादि परिवर्तन दिखायी देते हैं, वे परिवर्तन नित्य होते हुए भी व्याधि-उत्पादक हेतु नहीं होते है। जब भी स्वास्थ्यदर्शक दोष तथा हेतुओं का परस्पर सम्बन्ध होता है तभी व्याधि उत्पन्न होती है।

व्याधि-वर्गीकरण

रुजाकर होने के कारण सामान्यतः रोगों का एकत्व प्रतिपादन होने पर भी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से व्याधि के भेद आयुर्वेद ग्रन्थ में मिलते हैं।

एकत्व—दुःखसामान्यात् अथवा रुक्सामान्यात्।

दो वर्गों में—(विभिन्न रूप में)

प्रभाव भेद से	बल भेद से	अधिष्ठान भेद से	निमित्त भेद से	आशय भेद से
1. साध्य	मृदु	मनोधिष्ठान	स्वधातुवैषम्य	आमाशयसमुत्थ
2. असाध्य	दारुण	शरीराधिष्ठान	आगन्तुनिमित्त	पक्वाशयसमुत्थ

इनके अतिरिक्त सामान्यज तथा नानात्मज भेद से, सन्तर्पणज तथा अपतर्पणज, रसप्रदोषज एवं रक्तप्रदोषज आदि भी वर्ग हैं।

व्याधि के 3 वर्ग

कारण भेद से	मार्ग भेद से	दोष भेद से	सुश्रुतोक्त
1. निज	शाखानुसारी	आग्नेय	आध्यात्मिक
2. आगन्तुज	मध्यमार्गानुसारी	सौम्य	आधिभौतिक
3. मानस	कोष्ठानुसारी	वायव्य	आधिदैविक

व्याधि के 4 वर्ग

दोषानुसार	हेतु अनुसार
1. वातज	आगन्तुज (अभिघातादि)
2. पित्तज	अन्नपानमूलक (दोषविषमता आदि)
3. कफज	मानस (क्रोध, शोक, भय आदि)
4. आगन्तुज	स्वाभाविक (क्षुधा, पिपासा, जरा आदि)

सुश्रुत ने अपने वर्गीकरण को विस्तृत किया है तथा वाग्भट ने भी लगभग उसी प्रकार वर्णन किया है। कौमारभृत्य के पाठ्यक्रम में भी इसी वर्गीकरण को अपनाया गया है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

उपरोक्त दोनों प्रकार के वर्गीकरण में मात्र शब्दभेद ही है। अन्यथा आदिबल-प्रवृत्त-सहज, जन्मबलप्रवृत्त-गर्भज आदि सभी एक समान वर्ग हैं। कौमारभृत्य के पाठ्यक्रम में निम्न वर्गों का उल्लेख है।

(1) **सङ्घातबलप्रवृत्त**—दुर्बल व्यक्तियों के बलवान् के साथ लड़ाई करते समय चोट लगने से जो आगन्तुज विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें सङ्घातबलप्रवृत्त व्याधि कहते हैं। यह शस्त्रों से उत्पन्न तथा व्याल आदि के काटने से उत्पन्न दो प्रकार से होते हैं।

'सङ्घातबलप्रवृत्ता य आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्। तेऽपि द्विविधाः-शस्त्रकृता व्यालकृताश्च'। (सु.सू. 24:7)

इन्हें आधिभौतिक भी कहा गया है। आधि अर्थात् मानसिक कष्ट शापादि। भौतिक का तात्पर्य पञ्चमहाभूत से है। अर्थात् शरीर पर बाह्य भौतिक या प्राकृतिक शक्तियों के आक्रमण से उत्पन्न व्याधियाँ इस वर्ग में आती हैं।

पाठ्यक्रम में इस शीर्षक से 4 व्याधियों का उल्लेख है। जिसमें गर्भोपद्रव या गर्भव्यापद् तथा गर्भशोष को अध्याय 2 प्रसवपूर्व गर्भव्यापत् अध्याय में तथा कामला व रक्तपित्त को नवजात शिशु विशिष्टरोगाध्याय में वर्णित किया गया है।

(2) **आदिबलप्रवृत्त**—पिता के शुक्र या माता के आर्तव दोष से उत्पन्न होने वाले कुष्ठ, अर्श आदि रोग आदिबलप्रवृत्त कहे जाते हैं। यह मातृज एवं पितृज भेद से 2 प्रकार के होते हैं।

'तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयः, तेऽपि द्विविधाः-मातृजा पितृजाश्च'। (सु.सू. 24:6)

इस शीर्षक में वर्णित रोग प्रायः Hereditary होते हैं। पाठ्यक्रम में इसके अन्तर्गत दिये गये व्याधियों का विवेचन 'जन्मजात व्याधियाँ एवं विकृतियाँ' अध्याय 6 में किया गया है। अर्श का वर्णन 'गुदरोगाध्याय' अध्याय 12 में किया गया है।

(3) **दैवबलप्रवृत्त**—आधिदैविक वर्ग का एक उपवर्ग है। इसमें देवतादि के साथ अभिद्रोह या अभिशाप से उत्पन्न या अथर्ववेद प्रणीत आभिचारिक मन्त्रों के प्रयोग से उत्पन्न या संक्रामक ज्वर आदि का समावेश है। इनके संसर्गज एवं आकस्मिक ऐसे दो भेद कहे गये हैं। दूसरा वर्गीकरण विद्युदशनि एवं पिशाचादि कृत ऐसा किया गया है।

'दैवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वणकृता उपसर्गजाश्च। तेऽपि द्विविधाः—विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च। पुनश्च द्विविधाः—संसर्गजा आकस्मिकाश्च'। (सु.सू. 24:8)

इस वर्ग का तात्पर्य उन व्याधियों से है जिसके कारण अज्ञात (Idiopathic) हैं। पाठ्यक्रम में इस वर्ग की वर्णित प्रायः सभी व्याधियों का वर्णन अध्याय 6 में ही किया गया है।

Scanned with CamScanner

वस्तुत: पाठ्यक्रम में आचार्य कश्यप के वय-वर्गीकरण को महत्त्व देते हुए ही व्याधियों का वर्णीकरण किया गया है—

(अ) गर्भ— प्रसवपूर्व गर्भव्यापद्
प्रसवकालीन गर्भव्यापद्
प्रसवोपरान्त शिशुव्यापद्
(ब) बाल— क्षीरपकालीन व्याधियाँ
(स) कुमार—क्षीरान्नादकालीन व्याधियाँ
अन्नादकालीन व्याधियाँ

विचार करने पर यह वर्गीकरण अति उपयोगी सिद्ध होता है। इसमें प्राय: सभी प्रकार के व्याधिभेदों का समावेश हो जाता है। आगे के अध्यायों में इस वर्गीकरण को महत्त्व दिया गया है। बाल एवं कुमार वय की व्याधियों को विभिन्न संस्थानों या स्रोतसों के दृष्टिकोण से सुविधा के लिए वर्गीकृत किया गया है।

व्याधि-विनिश्चय

निदानपञ्चक अर्थात् निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय एवं सम्प्राप्ति—ये पाँच पृथक् तथा मिलाकर भी व्याधि का ज्ञान कराते हैं। इनमें से एक के द्वारा रोग का ज्ञान हो जाने पर भी रोग के पूर्ण ज्ञानार्थ पाँचों साधन आवश्यक हैं।

(1) **निदान**—'निदानं रोगोत्पादको हेतु:' अर्थात् रोगों को उत्पन्न करने वाला हेतु निदान कहा जाता है। निदान से वर्तमान एवं भावी रोग का भी ज्ञान होता है। यथा मृत्तिकाभक्षण से वर्तमान पाण्डु एवं आगे मृत्तिकाभक्षण जन्य होने वाले विकारों का भी बोध होता है। निदान से व्याधि के साध्यासाध्यता का ज्ञान होता है। चिकित्सार्थ भी निदान का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि निदानपरिवर्जन चिकित्सा का प्रमुख सूत्र है।

(2) **पूर्वरूप**—कुपित दोष स्थान संश्रय करके भावी व्याधि के बोधक जिन लक्षणों को उत्पन्न करते हैं वे पूर्वरूप कहलाते हैं। यह सामान्य एवं विशिष्ट दो प्रकार के होते हैं।

पूर्वरूप का ज्ञान रोग के सापेक्ष निदान में सहायक है। साध्यासाध्यता का ज्ञान भी पूर्वरूप कराता है। 'अल्प' पूर्वरूप साध्यता का द्योतक है, 'पूर्ण' पूर्वरूप असाध्यता का। पूर्वरूप चिकित्सा में भी सहायक है; यथा—ज्वर के पूर्वरूप में अपतर्पण या लघु भोजन का विधान है।

(3) **रूप**—पूर्वरूप के अव्यक्त लक्षण व्यक्त होकर रूप बन जाते हैं। यह भी सामान्य एवं विशेष दो प्रकार के होते हैं। रूप ही रोग का स्वरूप है। अत: यह रोग का ज्ञान कराता है। साध्यासाध्यता एवं चिकित्सा करने में भी सहायक है। रूप के ज्ञान के बिना रोग का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा तो फिर चिकित्सा किसकी करेंगे। व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा रूप के अनुसार ही की जाती है।

Scanned with CamScanner

(4) **उपशय**—उपशय का अर्थ है सात्म्य, स्वानुकूल। किसी रोग में औषधि अन्न व विहार का परिणाम में लाभकर उपभोग उपशय एवं हानिकर प्रयोग अनुपशय कहा जाता है। सङ्कीर्ण लक्षण एवं अनभिव्यक्त लक्षण रोगों के विशिष्ट ज्ञान के लिए उपशय ज्ञान आवश्यक है। जैसे स्नेह से व्याधि शान्त हो तो सन्धिवात, बढ़ जाय तो आमवात है। उपशय से चिकित्सा की दिशा भी प्रकाशित होती है।

(5) **सम्प्राप्ति**—अर्थात् रोग की सम्यक् प्राप्ति। सम्यक् प्राप्ति शब्द से निदान-सेवन से लेकर रोग की पूर्णावस्था प्राप्त होने तक शरीरस्थ दोष-धातु-मलों में तथा अङ्ग-प्रत्यङ्गों में होने वाले विकृत्यात्मक सभी परिवर्तनों का षड्विध क्रियाकाल का ग्रहण हो जाता है। इन सबको सम्प्राप्ति कहते हैं। सफल चिकित्सार्थ एवं साध्यासाध्यता ज्ञानार्थ सम्प्राप्ति का ज्ञान आवश्यक है।

चिकित्सा

जिस क्रिया के द्वारा शरीर में त्रिदोष को साम्यावस्था में लाया जाता है, वह चिकित्सा कहलाता है। चिकित्सा के 3 भेद हैं—

(1) **दैवव्यपाश्रय**—मन्त्र, जप, यज्ञ, होम आदि के द्वारा व्याधियों का शमन इस वर्ग में किया जाता है।

(2) **युक्तिव्यपाश्रय**—अर्थात् व्याधि की युक्ति से चिकित्सा करना। इसके 2 भेद हैं—

(अ) द्रव्यभूत—इसमें किसी औषधि या पथ्य के प्रयोग के धातुसाम्य का यत्न करते हैं। प्रयुक्त होने वाले द्रव्य की प्रकृति, गुण, प्रभाव आदि का औषधिकल्पना, मात्रा-व्यवहार का सम्यक् ज्ञान कर लेना चाहिए।

(ब) अद्रव्यभूत—इसमें किसी द्रव्य का उपयोग नहीं होता। युक्तिपूर्वक सदुपदेश, विस्मय, विस्मृति, भय, क्षोभ, निद्रा आदि से किसी प्रकार से रोगी को अपने व्यक्तित्व के प्रभाव में लाकर धातुसाम्य का यत्न करते हैं।

चरक ने इसके 3, सुश्रुत ने 4 उपवर्ग किये हैं।

चरकोक्त उपवर्ग—

(क) अन्तः परिमार्जन— 1. संशोधन चिकित्सा।
2. संशमन चिकित्सा।

(ख) बहिः परिमार्जन—शरीर के बाहर स्पर्श द्वारा अभ्यङ्ग, स्वेद, लेप, परिषेक से धातुसाम्य करते हैं।

(ग) शस्त्रप्रणिधान—अर्थात शस्त्र, क्षार, अग्नि, जलौका आदि द्वारा चिकित्सा करते हैं।

Scanned with CamScanner

सुश्रुत ने आचार, आहार, संशोधन एवं संशमन—ये चार वर्ग किये हैं।

(3) **सत्त्वावजय**—इसमें रोगी स्वयं या चिकित्सक के उपदेश से ज्ञान, धैर्य आदि की सहायता से यम-नियमादि का पालन करते हुए मनोनिग्रह करके अहित पदार्थों से दूर रहता है। यह निदान-परिवर्जन का एक रूप है।

चिकित्सा का एक दूसरा वर्गीकरण रसचिकित्सा प्रसार काल में हुआ।

1. दैवी चिकित्सा—अर्थात् दैवव्यापाश्रय चिकित्सा।
2. मानुषी चिकित्सा—क्वाथ, चूर्ण, वटी आदि का प्रयोग।
3. आसुरी चिकित्सा—अर्थात् शस्त्रप्रणिधान।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 2

प्रसवपूर्व गर्भव्यापद्

जैसा कि हम जानते है कि 'कौमारभृत्य' विषय के अन्तर्गत स्त्रीरोग, प्रसूतिविज्ञान एवं बाल स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का सम्पूर्ण विवेचन समाहित हमारे आचार्यों ने किया था। आज विकास के क्रम में स्त्रीरोगविज्ञान, प्रसूतिविज्ञान एवं बाल स्वास्थ्य तथा चिकित्सा अलग-अलग अङ्ग के रूप में विकसित हो गये हैं। प्रसवपूर्व गर्भव्यापद् प्रकरण आधुनिक दृष्टिकोण से प्रसूतिविज्ञान का विषय है एवं उन्हीं ग्रन्थों में देखा जाना चाहिए।

आयुर्वेद संहिताओं में निम्न गर्भव्यापदों का उल्लेख मिलता है—

1. गर्भस्राव एवं गर्भपात।
2. गर्भशोष या वाताभिपन्न गर्भ।
3. उपविष्टक।
4. नागोदर या उपशुष्क गर्भ।
5. लीन गर्भ।
6. गर्भक्षय।
7. गर्भवृद्धि।
8. भूतहत या नैगमेषहत गर्भ।
9. मृत गर्भ।
10. गर्भाशयान्तर मृत गर्भ आदि।

इनके अतिरिक्त भी कुछ अवस्थाएँ आधुनिक प्रसूतिविज्ञान के ग्रन्थों में देखने को मिलती हैं[1]।

गर्भस्राव एवं गर्भपात (Abortion)

'आचतुर्थात् ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भविच्युतिः।
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः'॥ (सु.नि. 8:7)

चतुर्थ मास तक गर्भ-विच्युति (स्वस्थान से अलग होकर गिरना) होने पर स्राव होता है, क्योंकि इस समय तक गर्भ द्रव-रूप होता है तथा पाँचवें एवं छठे माह में शरीर

1. प्रायः इन सभी अवस्थाओं का वर्णन प्रसूतितन्त्र के ग्रन्थों में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। अतः यहाँ पर संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्तिम दो गर्भोपद्रव कौमारभृत्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, अतः उनका विस्तृत विवेचन किया गया है।

Scanned with CamScanner

हो जाने पर उसका पात होता है। भोज ने गर्भस्राव का समय 3 माह तक माना है[1] जो कि उचित प्रतीत होता है, क्योंकि तीसरे मास तक अपरा एवं गर्भोदक के पूर्ण निर्माण न होने से स्राव में अधिकांशत: अपूर्णता रहती है तथा गर्भ क्रमश: थोड़े-थोड़े अंश के रूप में निकलता है।

गर्भस्राव एवं गर्भपात के बहुत से कारण अब भी अज्ञात हैं। अन्य कारणों को 2 भागों में बाँट सकते हैं—(1) गर्भ से सम्बन्धित कारण तथा (2) माता से सम्बन्धित कारण।

(1) गर्भ से सम्बन्धित कारण प्राय: जिनेटिक या क्रोमोसोम से सम्बन्ध रखते हैं तथा गर्भस्राव के ही प्रमुख कारण बनते हैं। इसके अतिरिक्त औपसर्गिक व्याधियाँ, कृमिज विकार एवं अन्य विकार भी कारण होते हैं।

(2) माता से सम्बन्धित कारणों में जननाङ्गों की रचनात्मक विकृति, गर्भाशयपेशियों की अधिक क्रियाशीलता, स्त्री-अङ्गरसों के उपद्रव, आघात, मानसिक कारण, पोषण-वैषम्य, सार्वदैहिक व्याधियाँ, स्त्री की वय एवं विभिन्न औषधियाँ कारण होती हैं।

योनि से रक्तदर्शन तथा कटि, वंक्षण एवं बस्ति प्रदेश में शूल होता है।

चिकित्सा—संहिताओं में गर्भपात होने के पूर्व एवं गर्भपात होने के बाद की चिकित्सा का अलग-अलग उल्लेख किया है।

चिकित्सा से समय स्त्री को मृदु, सुखकारी एवं शीतल बिस्तर पर सिर को थोड़ा नीचे की ओर करके शयन करने को कहना चाहिए।

सिद्धान्त रूप में गर्भपात होने से पूर्व रूक्ष एवं शीत द्रव्यों का प्रयोग करे। गर्भ स्थापन एवं जीवनीय गण की औषधियों का प्रयोग करें। कटिप्रदेश पर शीतल जल का अवगाहन कराना चाहिए। क्षीरपान पथ्य है।

गर्भपात होने के बाद गर्भकोष्ठ-शुद्धि के लिए तथा वेदना-शमनार्थ मद्यपान, लघु-पञ्चमूलसिद्ध रूक्ष पेय देना चाहिए। लघु, स्नेह एवं लवण रहित दीपनीय द्रव्य युक्त पेय देना चाहिए।

गर्भ के व्यवस्थित हो जाने पर गूलर के कच्चे फल से सिद्ध क्षीर का पान माता को कराना चाहिए।

संहिताग्रन्थों में गर्भस्राव या गर्भपात की मासानुमासिक चिकित्सा का एवं प्रजावरण बन्ध का भी विधान है।

---

1. आतृतीयात्ततो मासाद्गर्भ: स्रवति शोणितम्।
ऊर्ध्वं सञ्जातभतस्तु गर्भ: पतति योषिताम्॥ (मा.नि. 64:2 की मधुकोष व्याख्या)

Scanned with CamScanner

गर्भशोष या वाताभिपन्न गर्भ
(Under-weight Fetus)

'गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि' । (भा.प्र.चि. 70:97)

वात से गर्भ शुष्क होने के कारण उदर का पूरण नही करता । सुश्रुत ने इसमें मन्द-मन्द स्पन्दन की बात भी कही है—

'वाताभिपन्न एव शुष्यति गर्भः, स मातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पन्दते च' ।
(सु.शा. 10:57)

वाग्भट ने सम्प्राप्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जब उन्मार्गगामी वायु गर्भ के रसवाही स्रोतसों को सुखा देता है तो वह गर्भ वातरोगी तथा हीन हो जाता है बहुत दिनों तक उदर में रहता है ।

'यदा तून्मार्गगो वातो गर्भस्य रसवाहीनि स्रोतांसि शोषयति तदा वातरोगी हीनो जायते । बहूनि वा वर्षाण्युदरे तिष्ठति' । (अ.सं.शा. 2:37)

आचार्य चरक ने यही अवस्था गर्भशोष के नाम से वर्णित की है—

'आहारमाप्नोति यदा न गर्भः शोषं समाप्नोति परिस्रुतिं वा ।
तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात्' ।।
(च.शा. 2:15)

जब गर्भ को उचित आहार प्राप्त नहीं होता या बराबर योनि से रक्तस्राव होते रहने के कारण गर्भ का शोष हो जाता है उस वर्षों के बाद भी पुष्ट हुए गर्भ को स्त्री लम्बे समय के बाद प्रस्रवित करती है ।

उपरोक्त वर्णन स्पष्ट करता है कि गर्भ को सामान्य पोषण न मिलने के कारण उत्पन्न अति दौर्बल्य की स्थिति का वर्णन गर्भशोष या वाताभिपन्न गर्भ शीर्षक से किया गया है । इस स्थिति की तुलना Under weight fetus से कर सकते हैं, क्योंकि चिकित्सा में भी बृंहण औषधियों का प्रयोग बताया गया है ।

चिकित्सा—माता को रूक्ष पदार्थ न दें । बृहंणीय औषधि, दुग्ध एवं मांसरस का प्रयोग करायें ।

मधुयष्टी, काश्मरीफल, सारिवा एवं शर्करा संशृत दूध का पान कराना चाहिए ।

आगे लीन गर्भ में वर्णित चिकित्सा भी करना चाहिए, ऐसा डल्हण ने कहा है—

'मांसरसैश्चेति चकाराल्लीनप्रतिकारसमुच्चयः' ।
(सु.शा. 10:57 पर डल्हण)

आज भी अच्छा प्रोभूजन आहार (दूध, मांस, अण्डा आदि), कैल्शियम, लौह-तत्त्वों का प्रयोग माता एवं गर्भ के पोषणार्थ किया जाता है ।

Scanned with CamScanner

उपविष्टक (I.U.D)

निदान—जब बड़े एवं सञ्जातसार गर्भ हो जाने के बाद गर्भिणी द्वारा उष्ण, तीक्ष्ण आदि द्रव्यों का सेवन करने से पुष्पदर्शन या अन्य किसी भी प्रकार का स्राव होने लगता है[1] अथवा निरन्तर थोड़ा-सा रक्तस्राव होता है ।[2]

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने निदान के साथ सम्प्राप्ति भी स्पष्ट की है । उपविष्टक एवं उपशुष्क दोनों के ही सामान्य कारणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जब स्त्री गर्भ के जातसार होने के बाद भी परित्याज्य को न छोड़ने के कारण पीड़ित होती है तो योनि से पुष्पदर्शन या अन्य प्रकार का स्राव होता है । इन स्रावों के कारण स्त्री का प्रकुपित वात पित्त एवं कफ को लेकर गर्भ की रसवहा नाड़ी का प्रतिपीड़न करता है । इससे नाड़ी के दोष के कारण ठीक उसी तरह गर्भ वृद्धि को नहीं प्राप्त होता; जैसे तृणपत्रादि के कारण आच्छादित कुल्या (नाली) में बहता जल ठीक से न बहने के कारण खेत की सिंचाई नहीं कर पाता । परिणामस्वरूप उपविष्टक या उपशुष्क हो जाता है ।[3] इस अवस्था को गर्भ-कालीन द्वितीय त्रैमास में गर्भाशयान्तर मृतगर्भ (IUD) कह सकते हैं ।

लक्षण[4]— 1. गर्भ की अवृद्धि, कालातीत स्थिति ।
2. कुक्षि की अवृद्धि ।
3. गर्भ के अपरिहीयमान होते हुए स्फुरण ।
4. अन्य दोषों के लक्षण (वात-पित्त या कफ के अधिक होने पर) ।
5. प्रसव काल—वर्षगण या अतिकाल के पश्चात् ।

नागोदर या उपशुष्क गर्भ (IUD or Missed Abortion)

निदान—उपवास, व्रत-परायण, कुत्सित भोजन करने वाली, स्नेह द्रव्य न लेने वाली तथा अन्य वातप्रकोपक आहार ग्रहण करना—ये कारण चरक ने कहे हैं ।[5]

---

1. यस्याः पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्या महति सञ्जातसारे गर्भे पुष्पदर्शनं स्यादन्यो वा योनिस्रावस्तया गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति·····। (च.शा. 8:26)
2. तत्र यस्याः कदाचित्कार्त्तवपरिस्रावादल्पौ च दृश्यते सततं च गर्भः । (अ.सं.शा. 4:12)
3. यस्याः पुनर्महति जातसारे गर्भे वर्ज्यनामवर्जनात्पुष्पदर्शनं स्यादन्याद्वा योनिस्रवणम् । तस्यास्तन्निमित्तं वायुः प्रकुपितः पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्य गर्भस्य रसवहां नाडीं प्रतिपीडयावतिष्ठते । ततो नाड्यां दोषैः कुल्यायामिव तृणपत्रादिभिः प्रतिच्छन्नायां रसस्यासम्यग्वहनाद् गर्भो वृद्धिमनाप्नुवन्नुपविशत्युपशुष्यति वा । (अ.सं.शा. 4:11)
4. (क) स कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रं, तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित् । (च.शा. 8:26)
(ख) प्राप्तात्परिमाणादपरिहीयमान एव स्फुरति न च कुक्षिर्विवर्धते तमुपविष्टकमित्याचक्षते । (अ.सं.शा. 4:12)
5. उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदाहारायाः स्नेहद्वेषिण्या वातप्रकोपणोक्तान्यासेवमानया गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति परिशुष्कत्वात्; स चापि कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रम्, अस्पन्दनश्च भवति, तं तु नागोदरमित्याचक्षते । (च.शा. 8:26)

Scanned with CamScanner

सुश्रुत ने गर्भ की अत्यधिक प्रारम्भिक अवस्था में वातप्रकोप कारण माना है ।[1]

अष्टाङ्गसंग्रह में उपविष्टक के साथ सामान्य कारणों का वर्णन करते हुए विशेष कारण भी कहे हैं—गर्भवती में आर्तव प्रतिमाह या प्रतिदिन अधिक मात्रा में स्रवित होता है तो उपशुष्क या नागोदर होता है ।[2]

लक्षण—(1) गर्भ की अवृद्धि एवं अस्पन्दन एवं कालातीत प्रसव ।

(2) गर्भ का प्रलीयमान या छोटा हो जाना या नैगमेष द्वारा हरण कर लिया जाना ।

(3) गर्भ एवं कुक्षि की वृद्धि का ह्रास एवं किंचित् स्फुरण एवं प्रसवकाल-वर्षगण तथा विभिन्न दोषिक लक्षण । (अ.सं.शा. 4:13)

(4) गर्भ का कृश तथा शुष्क होना ।

'वाते क्रुद्धे कृशः कृष्येद्गर्भो नागोदरं तु तम्' । (अ.ह.शा. 2:15)

चिकित्सा—आचार्य सुश्रुत ने इसकी चिकित्सा लीन गर्भ के समान कही है । भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर कार धान्यकुट्टन ही इसकी मुख्य चिकित्सा कहते हैं ।

उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ की सामान्य चिकित्सा—

1. भूताधिकार में वर्णित घृतों का प्रयोग—महापैशाचिक घृत, वचाघृत ।
2. जीवनीय, बृंहणीय, मधुर औषधि साधित घृत का प्रयोग ।
3. वातहर औषधि का प्रयोग ।
4. भोजनादि से तृप्त होकर बार-बार यान-वाहन आदि का प्रयोग क्षोभण, मार्जन तथा जृम्भण आदि का प्रयोग ।
5. दोषानुसार चिकित्सा ।

उपरोक्त विवरण देखने से स्पष्ट होता है कि सुश्रुत ने उपविष्टक का वर्णन नहीं किया है तथा मुख्य लक्षणों में सञ्जातसार गर्भ में योनि से रक्त या अन्य स्राव तथा कुक्षि का न बढ़ना, स्पन्दन होना बताया गया है । यह अवस्था देखने से प्रतीत होता है कि चौथे से छठे माह में गर्भ की गर्भाशय में मृत्यु का वर्णन है ।

उपशुष्क गर्भ के वर्णन में आचार्यों में काफी मतभेद हैं । सुश्रुत इसे गर्भावस्था के अति प्रारम्भिक अवस्था की स्थिति मानते हैं तथा उन्होंने भूतहत भी कहा है । अतः गर्भ का भ्रम अथवा प्रथम त्रैमास में गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु का वर्णन हो सकता है । अन्य आचार्यों ने सञ्जातसार कहा है । अतः उनके मत से अधिक काल तक स्थिति गर्भाशयान्तरमृतगर्भ (Missed abortion) की भी अवस्था हो सकती है ।

---

1. शुक्रशोणितं वायुनाऽभिप्रपन्नमवक्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरम्, तं कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेषापहृतमिति भाषन्ते । तमेव कदाचित् प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुः । (सु.शा. 10:57)

2. अ.सं.शा. 4:13 ।

Scanned with CamScanner

लीन गर्भ

'वातोपद्रवगृहीतत्वात् स्रोतसां लीयते गर्भः । सोऽतिकालमवतिष्ठमानो व्यापद्यते' । (सु.शा. 10:57)

स्रोतों के वात के उपद्रवों से पीड़ित होने के कारण गर्भ लीन हो जाता है । वह गर्भाशय में अधिक काल तक रहता हुआ कष्ट को प्राप्त होता है ।

उपरोक्त लक्षणों के साथ-साथ गर्भ का सो जाना अर्थात् अक्रियाशील होना, स्पन्दन न होना लक्षण अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है ।

'यस्याः पुनर्वातोपसृष्टस्रोतसि संलीनो गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते तं लीनमित्याहुः' । (अ.सं.शा. 4:23)

चरक ने ऐसी ही अवस्था का वर्णन किया है परन्तु उसका नामोल्लेख नहीं किया है ।

'यस्याः पुनर्गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते' । (च.शा. 8:28)

अष्टाङ्गहृदयकार ने प्रसव के विषय में लिखा है कि या तो पुष्ट होकर सामान्य समय पर या वर्षों के बाद अत्यधिक कष्ट से पैदा होता है या नहीं भी उत्पन्न होता है।

'पुष्टोऽन्यथा वर्षगणैः कृच्छ्राज्जायेत, नैव वा' । (अ.हृ.शा. 2:21)

चिकित्सा—मृदु स्नेहादि क्रम से उपचार करें । मांसरस, घृत या माषयूष आदि देना चाहिए । माष, तिल, बिल्व-शलाटु से साधित चना (उबला) दें । माध्वीक 7 रात दें । उपविष्टक एवं उपशुष्क की बतायी चिकित्सा करें । स्त्री को प्रसन्न रखें । उपरोक्त चिकित्सा प्रायः वातशामक है, इसके करने के बाद ईषत् उष्ण तैल से उदर बस्ति, कटि-प्रदेश में अभ्यङ्ग करें । कालातीत गर्भ में धान्ययुक्त उदूखल को मूसल से कूटें या विषमयान आसन का प्रयोग करें ।

निस्पन्दन-प्रसुप्तावस्था-प्रगल्भित या चिरकाल-स्थायी गर्भ (Mature or Post mature) के मृत्यु की ओर ही इङ्गित करता है ।

गर्भक्षय (L.B.W.)

'गर्भक्षये गर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिता च' । (सु.सू. 15:12)

गर्भक्षय में गर्भ का स्पन्दन न होना तथा कुक्षि का नीचा या पिचका होना आदि लक्षण होते हैं ।

चिकित्सा में अष्टम मास में क्षीरबस्ति एवं मेध्य अन्न का प्रयोग कराने को कहा है । भावमिश्र ने गर्भिणी द्वारा इच्छित भोज्य पदार्थ देने का विधान किया है ।

आठवें मास में पुष्टिकारक व्यवस्था गर्भ के अपुष्ट (Under weight) की ओर इङ्गित करता है ।

Scanned with CamScanner

गर्भवृद्धि
(Over-weight Fetus)

'गर्भो जठराभिवृद्धिं शोथञ्च' । (सु.सू. 15:16)

गर्भवृद्धि (अतिवृद्धि) में उदर की अतिवृद्धि तथा शोथ के लक्षण मिलते हैं ।

सामान्य रूप से वृद्धि में यथायोग्य सात्म्य, संशोधन तथा संशमन आहार-विहार द्वारा चिकित्सा करें । परन्तु ध्यान रहे कि चिकित्सा क्षय के अविरुद्ध हो ।

यह वर्णन स्पष्ट रूप से अधिक वजन के शिशु (Over weight fetus) का वर्णन है । इसके द्वारा कुछ व्याधियों का संकेत मिलता है । यथा—सहज मधुमेह, प्रगल्भित गर्भ (Post maturity), बच्चे का सिर बड़ा होना (Hydrocephalus, Hydrops fetalis) आदि ।

भूतहृत या नैगमेषहृत गर्भ
(Pseudocyesis)

महर्षि सुश्रुत, योगरत्नाकरकार ने नागोदर के साथ ही नैगमेषहृत गर्भ का वर्णन किया है, जैसा कि हम पहले लिख भी आये हैं । परन्तु चरक एवं वाग्भट ने इसका वर्णन अलग किया है ।

'असृङ्निरुद्धं पवनेन नार्या गर्भं व्यवस्यन्त्यबुधः कदाचित् ।
गर्भस्य रूपं हि करोति तस्यास्तदसृगस्रावि विवर्धमानम् ।।
तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवा प्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वाऽसृगेकं न च गर्भसंज्ञं केचिन्नरा भूतहृतं वदन्ति' ।।

(च.शा. 2:8-9)

वात के द्वारा रुके या बाँधे आर्तव को देखकर कभी-कभी अज्ञानी लोग उसे गर्भ हो गया है—ऐसा मान लेते हैं । वह रुका आर्तव गर्भाशय में बढ़कर गर्भ के लक्षण पैदा कर देता है । वह रुका आर्तव अग्नि (ताप), सूर्य (ताप), श्रम-शोकादि एवं उष्ण अन्नपान से प्रवृत्त हो जाता है । केवल रक्त को देखकर एवं गर्भ को उसमें न देखकर कुछ लोग 'भूतहृत' कहते हैं । लगभग इसी तरह की अवस्था का वर्णन वाग्भट ने भी किया है—

'अवस्थितं लोहितमङ्गनाया वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः ।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ।
गर्भं जडा भूतहृतं वदन्ति मूर्तेर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः' ।।

(अ.ह.शा. 2:61-62)

सुश्रुत, भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार का मानना है कि शुक्र-शोणित जीवात्मा की अवक्रान्ति होने के बाद वायु से पीड़ित होने के कारण उदर का आध्मान होता है । वह कदाचित् स्वयमेव शान्त हो जाने पर नैगमेषापहृत कहलाता है ।

Scanned with CamScanner

सुश्रुत ने इसकी चिकित्सा लीनगर्भवत् तथा भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने धान्य-कुट्टन कहा है ।

यह अवस्था स्पष्ट रूप से गर्भभ्रम या मिथ्यागर्भ (Pseudocyesis) की है ।

मृतगर्भ
(Still Birth)

'मृतगर्भ' शब्द के द्वारा हम 3 अवस्थाओं को इङ्गित कर सकते हैं ।

1. गर्भाशय के अन्दर ही गर्भ की मृत्यु—गर्भाशयान्तर मृतगर्भ ।
2. प्रसव काल में गर्भ की मृत्यु—मृतजात गर्भ ।
3. प्रसवोपरान्त प्रथम दिवस में ही नवजात की मृत्यु—जातमात्र मृतगर्भ ।

(1) गर्भाशयान्तर मृतगर्भ
(IUD)

'गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोऽपि वा ।
मृतेऽन्तरुदरं·····' ।। (अ.ह.शा. 2:22-23)

'मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः' ।। (सु.नि. 8:13)

स्त्री में दोषों के अत्यधिक उपचित हो जाने, व्यवाय आदि पूर्वोक्त कारणों से, माता या गर्भ के पूर्वजन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप वृन्त से टूटे हुए फल की भाँति गर्भ बन्धनों से मुक्त हो जाता है । सुश्रुत ने संक्षेप में माता के मानसिक या आगन्तुक उपताप से पीड़ित होने या व्याधियों से पीड़ित होने से गर्भ की कुक्षि में मृत्यु होना कहा है ।

चरक ने प्रायः गर्भिणी के आहार-विहार की विषमता ही कारण माना है ।

समस्त कारण संक्षेप में इस प्रकार लिपिबद्ध किया जा सकता है—

1. आहारवैषम्य, उपवास आदि । (Malnutrition)
2. दोषों का उपचय या शारीरिक उपताप । (Maternal physical disorder)
3. विहारवैषम्य, विषमाशनादि[1] ।
4. मानसिक उपताप । (Psychological causes)
5. दैवयोग या पूर्वजन्मकृत कर्म या अज्ञात कारण । (Idiopathic)
6. गर्भ की व्याधियाँ । (Congenital or Acquired abnormalities)

इनके अतिरिक्त कश्यप ने कुछ जातहारिणियों का वर्णन भी किया है जिसमें गर्भ की मृत्यु गर्भाशय में हो जाती है—

1. इन कारणों से उदरस्थ गर्भाशय पर दाब पड़ता है, जिससे सम्भव है कि अपरा का स्थान च्युत हो अथवा रक्तसंवहन प्रभावित हो तथा गर्भ की मृत्यु हो जाय ।

Scanned with CamScanner

(i) **कालरात्री**—जब जातहारिणी सम्पूर्ण अङ्गों वाले अर्थात् 7 माह या इसके बाद के गर्भ का हरण कर लेती है। इसमें स्त्री बड़े कष्ट से जीवित रहती है—

'सम्पूर्णाङ्गं यदा गर्भं हरते जातहारिणी।
कालरात्रीति सा प्रोक्ता दुःखात् स्त्री तत्र जीवति'॥

(का.वा.रेवतीक. : 38)

(ii) **स्तम्भनी**—जिसका गर्भ स्पन्दन नहीं करता, उसे स्तम्भनी कहते हैं।

'यस्या न स्पन्दते गर्भः स्तम्भनी नाम सा स्मृता'।

(का.क.रेवतीक. : 40)

आज भी हम गर्भाशयान्तर मृतगर्भ के इन्हीं कारणों को प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं।

गर्भाशयान्तर मृतगर्भ के कारण

गर्भधारणजन्य	मातृज	गर्भज
गर्भविषम्यता, प्रसवपूर्व रक्तस्राव।	जीर्ण उच्च रक्तचाप, जीर्ण वृक्कशोथ (Nephritis), तीव्र स्वरूप का पाण्डु, फिरङ्ग, उग्र मातृज रोग—ज्वर-अतिसार, मलेरिया, विषम-ज्वर, रक्तचाप अल्पता आदि, मधुमेह, औषधि प्रभाव—Quinine, Frusemide etc.	प्रगल्भ गर्भ (Post maturity), जन्मजात रचनात्मक विकार (Erythroblastosis), अज्ञात कारण।

लक्षण—इसका विस्तृत वर्णन प्रायः सभी आचार्यों ने किया है।[1]

'गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता।
भवत्युच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ'॥ (सु.नि. 8:12)
'मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम्।
गर्भास्पन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः॥
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः'॥ (अ.हृ.शा. 2:23-24)

गर्भ के स्पन्दन एवं आवी का नाश हो जाता है। श्यावता या पाण्डुता, उच्छ्वास में पूतिगन्धि तथा शूल आदि लक्षण होते हैं। उदर शीत, स्तब्ध एवं फूला हुआ होता है। अत्यधिक कष्ट होता है। भ्रम, तृष्णा, श्वासकष्ट, क्लम, अरति, खड़े होने, बैठने-सोने में चित्त की अस्थिरता, स्रस्तनेत्रता आदि प्रसवकालीन वेदनाओं की अनुत्पत्ति लक्षण होते हैं।

संक्षेप में एवं अधुना परिप्रेक्ष्य में लक्षणों को इस प्रकार कह सकते हैं—

1. गर्भ में स्पन्दन न होना।
2. गँदला भूरा स्राव योनि से आना।

1. च.शा. 8:30; अ.सं.शा. 4:28।

Scanned with CamScanner

3. गर्भाशय की ऊँचाई का अनार्तव काल के सापेक्ष कम होना ।
4. गर्भाशय एवं गर्भ-शिशु का मृदु (Flaccid) होना ।
5. गर्भ हृदय ध्वनि का सुनायी न देना ।

परीक्षण—

(1) USG—मृत्यु के तत्काल बाद USG के गर्भ के हृदय का स्पन्दन दिखायी नहीं देता । विलम्बित USG में गर्भ के शिर में कपालास्थि एक-दूसरे पर चढ़ी हुई दिखती हैं ।

(2) अधो उदर एक्स-रे - Spalding's sign
- Moulding of fetal head
- Hyperflexion of fetal spine, rarely Hyperextension
- Gas shadow

चिकित्सा-सिद्धान्त—

1. जरायुपातनार्थ वर्णित कर्म ।
2. संशमन कर्म ।
3. शल्यहर्ता द्वारा आहरण ।

(2) मृतजात गर्भ
(Fresh Still birth, Perinatal death)

प्रसव काल में किसी व्यवधान के कारण जब गर्भ की मृत्यु हो जाती है तो उसे मृतजात गर्भ कहते हैं । आचार्य कश्यप ने ऐसी ही एक अवस्था का वर्णन 'नाकिनी' जातहारिणी के नाम से किया है—

'जायते तु मृतं नित्यं यस्या नार्याः सवे सवे ।
नाकिनीमिति तां विद्याद्दारुणां जातहारिणीम्' ।। (का.क.रेवतीक. 42)

जब स्त्री के गर्भ से नित्य मृत गर्भ उत्पन्न होते हैं अर्थात् वे कारण जो प्रायः प्रत्येक बार जन्म के समय शिशु की मृत्यु के कारण हुआ करते हैं ।

मृतजात गर्भ के कारण—

(1) मातृज कारण—पाण्डु (उग्र स्वरूप) एवं उच्च रक्तचाप प्रसव के समय अपरा के कार्यक्षमत्व पर प्रभाव डालता है तथा गर्भ की मृत्यु का कारण होता है । माता का कुपोषण भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है । शूलघ्न औषधि, संज्ञाहरण औषधि भी कारण हो सकती है ।

(2) अपराजन्य कारण—विभिन्न कारणों से अपरा के कार्य का प्रभावित होना; यथा—समयपूर्व अपरापात, प्रसवपूर्व गर्भस्राव एवं गर्भाशय-क्रियाशीलता में अनियमितता आदि ।

Scanned with CamScanner

(3) नाभिनालजन्य कारण—प्रसव के समय नाभिनाल का पहले बाहर आ जाना, दबाव पड़ना, शिशु के गले में लिपटा होना, नाभिनाल में गाँठ पड़ना आदि ।

(4) गर्भज कारण—ओषजन की कमी एवं प्रसवकालीन आघात, जन्मजात विकृति, अल्पभार शिशु, मूढ़ गर्भ ।

(3) जातमात्र मृतगर्भ

प्रसवोपरान्त जब शीघ्र ही (प्रथम दिवस) नवजात शिशु की मृत्यु हो जाती है । ऐसी दो जातहारिणियों का वर्णन कश्यप ने किया है—

1. पिशाची—

'जातं जातमपत्यं तु यस्याः सद्यो विनश्यति ।
पिशाची नाम सा घोरा मांसादी जातहारिणी' ।।

2. पुण्यजनी—

'जातं जातमपत्यं तु यस्याश्च म्रियते स्त्रियाः ।
घोरा पुण्यजनी नाम साऽसाध्या जातहारिणी' ।।

(का.क.रेवतीक. 43,51)

जिस स्त्री की सन्तान पैदा होते ही नष्ट हो जाती है, उस मांसभक्षी जातहारिणी को पिशाची कहते हैं । यह याप्य होती है । जिस स्त्री की सन्तान उत्पन्न होते ही मर जाती है उस भयंकर असाध्य जातहारिणी को पुण्यजनी कहते हैं ।

यह दोनों अवस्थाएँ आधुनिक दृष्टि से Perinatal death के अन्दर आ जाती हैं ।

जातमात्र मृत गर्भ के कारण—

प्रायः मृतजात गर्भ के लिए कहे गये कारण ही शिशु के जन्म के तुरन्त बाद भी मृत्यु का कारण होते हैं । प्रमुख कारणों में समयपूर्व प्रसव (Premature), श्वासावरोध, आघात, संक्रमण, जन्मजात रचनात्मक विकार, नवजात शिशु को रक्तस्राव, Respiratory distress syndrome, Atelectasis, Haemolytic disease आदि हैं ।

सुरक्षात्मक उपाय—प्रायः उपरोक्त कारणों को अच्छी चिकित्सा सेवा द्वारा दूर करके मृत्युदर को घटाया जा सकता है । यथा—

1. गर्भिणी के स्वास्थ्य में सुधार—अच्छा भोजन, समय-समय पर परीक्षण आदि ।
2. योग्य चिकित्सकों की अधिकाधिक उपलब्धि ।
3. गर्भिणी माता की उचित देखभाल ।
4. अच्छे चिकित्सालय तथा बालचिकित्सकों की सेवाएँ ।

इन सभी सेवाओं का कुशल निर्देशन मृत्युदर को घटा सकता है ।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 3

प्रसवकालीन गर्भव्यापद्

'प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत्' । (अ.ह.उ. 1:1)

प्रसव के कष्ट से पीड़ित बालक को बलातैल से अभ्यङ्ग करें । अर्थात् प्रसव काल में शिशु को कष्ट होता ही है । वस्तुत: गर्भाशय से प्रसव हेतु शिशु को चलने पर संकीर्ण अपत्यपथ से गुजरना पड़ता है । अत: दबाव आदि कारणों से कष्ट होता है । परन्तु असामान्य प्रसव में यथा—मूढ़गर्भ, गर्भसङ्ग आदि में जहाँ यत्नपूर्वक प्रसव या शस्त्रकर्म से प्रसव या शल्यकर्म से प्रसव कराना पड़ता है, वहाँ पर तो और भी उपद्रवों की सम्भावना रहती है । इन्हीं उपद्रवों का विवेचन आगे वर्णित है—

(1) मूढ़गर्भ या असामान्य प्रसवजन्य

'तं तु गर्भं कदाचित् सम्यगपत्यपथमनेकधा प्रतिपन्नं विगुणेन वायुना पीडितं मोहितं च मूढगर्भमित्याहुः' । (अ.सं.शा. 4:29)

वही गर्भ जब कभी असम्यक्-अपत्यपथ में अनेक रूप में प्रतिपन्न होकर विगुण वायु के द्वारा पीड़ित या मोहित हो जाता है तो मूढ़गर्भ कहा जाता है । इस मूढ़गर्भ की विभिन्न गतियाँ हैं । वह प्रसवार्थ शरीर के विभिन्न अङ्गों से उपस्थित होकर कठिनाइयाँ पैदा करता है । परिणामस्वरूप प्रसव कराने के विशिष्ट यत्न करने पड़ते हैं जिसमें बच्चे को विभिन्न प्रकार के आघात लगने की सम्भावना रहती है । उदाहरणार्थ—

(1) विकृत शीर्षोदय (Occipito-posterior position of vertex) में बच्चे को श्वासावरोध (Asphyxia), आघात और मृत्यु सम्भव है । इस वर्ग में बच्चों की मृत्युदर लगभग 10% है ।

(2) अवाङ्मुख (Face presentation) में नाभिनाल का पूर्व में ही बाहर आ जाना, जरायु का बहुत पहले फटना आदि उपद्रवों के दुष्परिणाम गर्भ पर होते हैं ।

(3) स्फिगोदय (Breech presentation) में शिशुओं की मृत्युदर 10 से 30% है । इसके मुख्य दुष्परिणामों में मस्तिष्क के अन्दर आघात (Intracranial injury), श्वासावरोध, शाखाओं में अस्थिभग्न या सन्धिभग्न एवं समयपूर्व प्रसव आदि ।

(4) अनुप्रस्थ आसन (Transverse lie) में भी उपरोक्त उपद्रवों की सम्भावना रहती है ।

Scanned with CamScanner

असामान्य प्रसव कराने में उपरोक्त गतियों के अतिरिक्त गर्भाशय-सङ्ग, योनिसंवरण आदि भी कारण होते हैं। इसके भी दुष्परिणाम शिशुओं में श्वासावरोध, Aspiration pneumonia या मृत्यु के रूप में मिलते हैं।

(2) शस्त्रादि के द्वारा निर्हरण के उपद्रव

संदंश-प्रयोग (Forceps) या दबाव-प्रयोग (Vaccum extractor) अथवा कुक्षिपाटन (Caesarean section) में भी बच्चों पर कुछ आघात पहुँचते हैं।

सन्दंश-प्रयोग के कारण बच्चों में श्वासावरोध (Asphyxia), लगातार लम्बे दबाव के कारण मस्तिष्क के अन्दर आघात, अर्दित (Facial Paralysis) या अस्थिभग्न सामान्य उपद्रव हैं। लगभग इसी प्रकार के उपद्रव दबाव प्रयोग (Vacuum extactor) में भी होते हैं। व्रण हो जाना, शीर्ष रक्तसंग्रह (Cephalohematoma), मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव, गञ्जापन आदि हो जाता है। इन उपद्रवों का संकेत 'शिशु-कुमार परीक्षा' नामक अध्याय में किया गया है।

कुक्षिपाटन में संज्ञानाश हेतु प्रयुक्त औषधि का प्रभाव शिशु पर पड़ता है, अत: ओषोजन-अल्पता, श्वसन में कठिनाई (Respiratory distress syndrome) हो सकती है। मस्तिष्क के अन्दर आघात भी पहुँच सकता है।

शिशुओं में होने वाले कुछ प्रमुख उपद्रवों का विवेचन आगे प्रस्तुत है—

प्रसवकालीन आघात
(Birth Injury)

प्रसव काल में नवजात शिशु को लगने वाला बाह्य या आभ्यन्तर, छोटा या बड़ा आघात सभी इसी शीर्षक के अन्तर्गत हैं; यथा—शस्त्रादि से आघात, ओषजन-अल्पता से आघात आदि।

शिरो-आघात
(Cranial Injury)

(1) **उपशीर्षक**—इस विकृति का वर्णन सर्वप्रथम आचार्य वाग्भट ने फिर शार्ङ्गधर ने किया है। इस व्याधि की गणना 9 प्रकार की कपालव्याधियों में की गयी है। परन्तु लक्षण शिशुव्याधि के कहे गये हैं—

'कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्यापि जायते।
सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम्'॥ (अ.ह.उ. 23:21)

अर्थात् गर्भस्थ बालक के कपाल में वात के दूषित होने पर त्वक् वर्ण का शूल रहित शोफ होता है। वही उपशीर्षक है। अर्थात् प्रसव काल में शिशु के सिर में शूल रहित जो उत्सेध होता है तथा उससे आभास होता है कि मानो दूसरा सिर हो। इसीलिए उपशीर्षक कहा गया है। इसकी चिकित्सा में कहा गया है—

Scanned with CamScanner

'पक्वे कर्म विद्रधि चोदितम्' ।

पाक होने पर विद्रधि के समान चिकित्सा करें ।

नवजात शिशु में जन्म के पश्चात् सद्यः अथवा कुछ विलम्ब से निम्न प्रकार के उत्सेध दिखायी पड़ सकते हैं—

(क) कैपट सक्सीडेनम

(ख) शीर्षरक्तसंग्रह

(ग) एनसेफैलोसील

(क) कैपट सक्सीडेनम (Caput succedaneum)—जब शिशु अपत्यपथ में शीर्षोदय से आता है तो उस समय कपाल (Scalp) पर के मृदु अवयवों (त्वचा एवं पेशियाँ) में किंचित् फैला हुआ कभी-कभी रक्तस्राव युक्त शोफयुक्त उत्सेध हो जाता है। शीर्ष की उपस्थिति अपत्यपथ में जिस दिशा में होती है । (दक्षिण या वाम या मध्य) इसका स्थान भी उसी दिशा में होता है । जीवन के प्रथम सप्ताह में ही प्रायः यह उत्सेध समाप्त हो जाया करता है । इसे ही संहिताकारों ने 'उपशीर्षक' की संज्ञा दी है ।

ऐसा ही सादृश्य शोफ, विवर्णता, मुख-विकृति उस समय दिखायी देती है जब गर्भ अपत्यपथ में मुखोदय में आता है ।

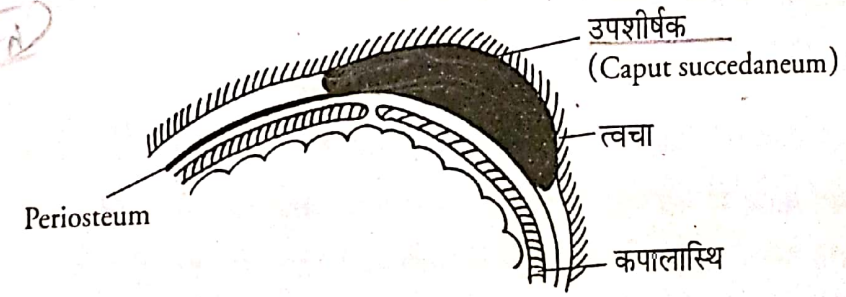

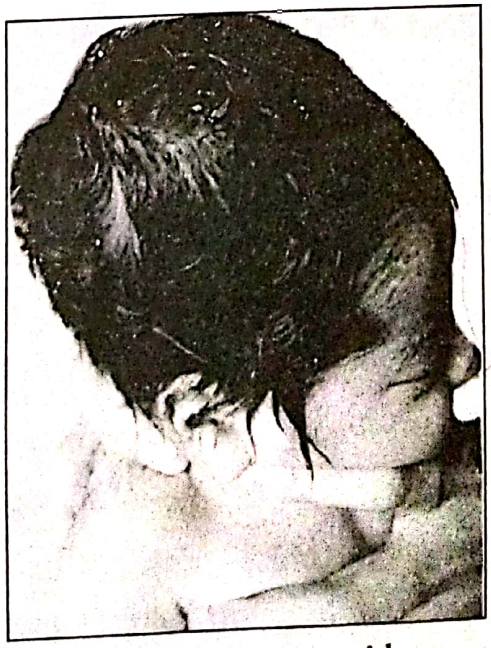

चित्र सं. 26 : Caput succidaneum

Scanned with CamScanner

सिर का मोड़ना एवं अस्थियों का एक-दूसरे पर चढ़ जाना प्राय: ही इसके साथ होता है। यह भी प्राय: प्रथम सप्ताह में बिना किसी चिकित्सा के ठीक हो जाता है।

(ख) शीर्षरक्तसंग्रह (Cephalohematoma)—इस विकृति में सिर की अस्थियों में रक्तस्राव (Subperiosteal hemorrhage) होता है। इसमें कोई विवर्णता नहीं होती है। शोफ का उद्भव शिशु जन्म के कुछ घण्टों बाद होता है, क्योंकि कपालास्थियों के अन्दर रक्तस्राव एक धीमी प्रक्रिया है। कभी-कभी कपालास्थियों में हल्की दरार जैसी भग्नता (Linear fracture) भी होता है।

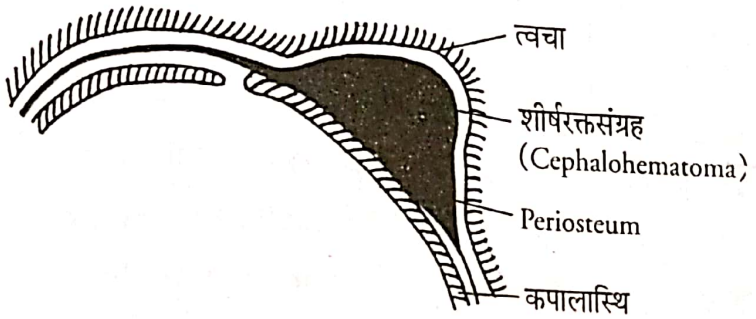

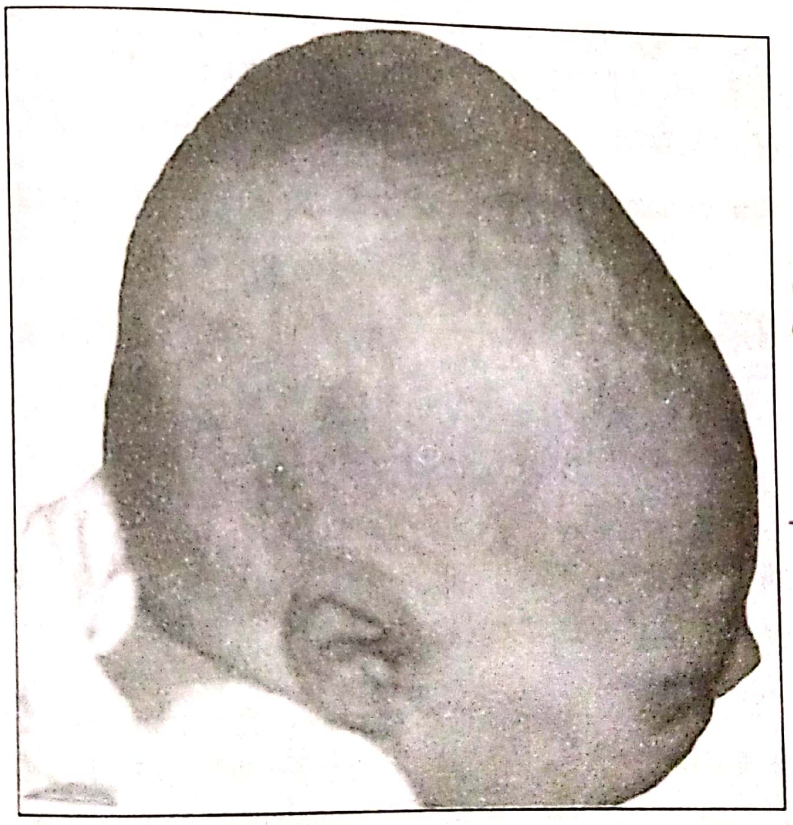

चित्र सं. 27 : शीर्षरक्तसंग्रह (Cephalohematoma)

चिकित्सा—आचार्य वाग्भट ने दोनों अवस्थाओं का सङ्कलन एक ही शीर्षक के अन्तर्गत किया है—

'नवे जन्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके।
वातव्याधिक्रियां, पक्वे कर्म विद्रधिचोदितम्' ॥ (अ.ह.उ. 24:19)

Scanned with CamScanner

'उपशीर्षके जन्मोत्तरकालजातोत्थिते वातव्याधिविहितं स्नेहं पाननाव-नाभ्यज्जनेषु योजयेत् । अभ्यक्तं च स्वेदयित्वोपनाहयेद् यथा विदाहो न भवति । विदाहे विद्रधिवत्कर्म' । (अ.सं.उ. 28:64-66)

नूतन एवं जन्म के बाद उत्पन्न उपशीर्षक में वातव्याधि की बतायी गयी चिकित्सा करनी चाहिए । पक जाने पर विद्रधि-प्रकरण में बतायी गयी चिकित्सा करें । वातव्याधि चिकित्सा में स्नेहन, स्वेदन तथा विम्लापनार्थ प्रलेप करें । जिससे उत्सेध दब कर बैठ जाय या गल जाय । किन्तु यह ध्यान रहे कि पकने न पाये । पाक हो जाने पर विद्रधिवत् चिकित्सा करें ।

आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों का मत है कि दोनों ही अवस्था में किसी विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ती । 7 से 10 दिन में कैपुट सक्सीडेनम स्वत: ठीक हो जाता है परन्तु यदि उसमें रक्तस्राव है तो फोटोथिरैपी (Photo therapy) [इसमें शिशु ने नेत्र ढक कर नीलाभ ट्यूब लाइट के प्रकाश में उसे रखा जाता है अथवा कह सकते हैं कि प्रकाश स्नान कराया जाता है ।] की जाती है । ट्यूब लाइट के स्थान पर सूर्य के प्रकाश का भी उपयोग कर सकते हैं । इसे स्वेदन का एक भेद कह सकते हैं। ऐसा न करने पर शिशु को तीव्र कामला होने की सम्भावना रहती है ।

अधिक रक्तस्राव के कारण मूर्च्छा आदि उपद्रव होने पर शिरागत रक्त देना पड़ सकता है ।

शीर्षरक्तसंग्रह अपनी आकृति के अनुसार 15 से 90 दिन के अन्दर स्वत: ही समाप्त हो जाया करता है । 15 दिन के बाद उसमें प्राय: कड़ापन (Calcification) होने लगता है । यदि उत्सेध मध्य में दबा हो तो अस्थि भग्न या विकार की सम्भावना भी होती है । इसकी गाँठ (Cyst) जैसी बनकर महीनों या वर्षों पड़ा रहना भी सम्भव है । उपरोक्त चिकित्सा की अवश्यकता इसमें भी पड़ सकती है । इस उपद्रव में शल्य कर्म से बचना चाहिए, क्योंकि यह स्थान मस्तिष्क के सन्निकट है तथा संक्रमण की सम्भावना रहती है ।

(ग) एनसेफैलोसील (Encephalocele)—प्राय: जन्म के समय कपालास्थि मध्यरेखा (Midline) से मात्र Meninges अथवा/एवं अन्य मस्तिष्क ऊतक बाहर (Protrusion) आ जाते हैं । इसका सामान्य स्थल प्राय: पश्चभाग (Occipital) होता है । परन्तु इसके अतिरिक्त अग्रभाग (Frontal) या घ्राणेन्द्रिय (Nasal) अथवा दोनों (Nasofrontal) भाग होता है । जन्म के समय शिर की मध्यरेखा पर एक Fluctuant, गोल उभार (Mass) मिलता है जिसमें से प्रकाश आर-पार दिखायी देता है । तथा खाँसने या रोने पर स्पन्दन दिखता है । स्पर्श करने पर यह प्रतीत होता है । यह उत्सेध त्वचा से ढका रहता है । यह शस्त्रकर्मसाध्य व्याधि है ।

Scanned with CamScanner

नवजात शिशु के शिर पर पाये जानेवाले उत्सेध के विभेदक लक्षण

लक्षण	उपशीर्षक	शीर्षरक्तसंग्रह	एनसेफैलोसील
उत्पत्तिकाल	जन्म से	जन्म के 6 से 12 घण्टे के पश्चात्	जन्म से
स्थान	शिशु का शिर प्रसवकाल में जिस भाग से अपत्यपथ में आता है उसी भाग पर उत्पत्ति होती है ।	शिर की जिस कपालास्थि में भग्न होता है उस पर उत्पत्ति होती है । प्राय: Unilateral-Parietal	प्राय: शिर के पश्चभाग में मध्य रेखा पर होती है । प्राय: occipital
लक्षण	प्राय: फैला हुआ (Diffuse) शोथ-युक्त, Non fluctuent शोथ, दूसरे शीर्ष के समान	गाँठदार (Cystic) या Fluctuent शोथ, जिस कपालास्थि पर होता है उसकी सीमा (suture) के मध्य ही रहता है ।	त्वचा द्वारा ढका हुआ मृदु उभार, प्राय: मध्य रेखा पर पश्चभाग में शिर पर होता है । शिशु के रोने या चिल्लाने पर उसमें अथवा स्पर्श करने पर स्पन्दन महसूस होता है ।
उपद्रव	प्राय: उपद्रव रहित	कभी-कभी अत्यधिक रक्त-स्राव के कारण पाण्डु, कामला, मूर्च्छा (Shock) जैसे उपद्रव हो सकते हैं ।	तन्त्रिका तन्त्र विषयक उपद्रव, जलशीर्ष, आक्षेप, मन्दबुद्धि ।
परिणाम	लगभग 7 से 10 दिन में समाप्त हो जाता है ।	प्राय: 15 से 90 दिन में स्वत: समाप्त हो जाता है । अथवा गाँठ (Cystic) रूप में पड़ा रहता है ।	शल्यकर्म से ही ठीक होता है ।
चिकित्सा	आवश्यकता नहीं पड़ती ।	आवश्यकता नहीं पड़ती । उपद्रव की चिकित्सा करनी पड़ सकती है ।	शल्य कर्म

(2) त्वग्गत लालिमा, खरोंच तथा त्वचा में रक्तस्राव एवं त्वचा के नीचे की वसा का नाश (Necrosis)—यह समस्त उपद्रव प्राय: सन्दंश प्रसव के बाद ही दिखायी पड़ते हैं । इनका स्थान सन्दंश लगने के स्थान पर निर्भर करता है । यह छोटे-छोटे क्षत संक्रमण से बड़े हो सकते हैं । अत: कोई सामान्य संक्रमण नाशक द्रव्य लगा दें या बन्धन भी कर दें । कभी-कभी नेत्र में या त्वचा पर रक्तस्राव के कारण चकत्ते बन जाते हैं । जो स्वत: धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं ।

Scanned with CamScanner

(3) कपालास्थिभग्न—यह उपद्रव प्राय: सन्दंश प्रसव अथवा भगास्थि एवं त्रिकास्थि (Sacrum) के दबाव से सम्भव है। हल्की दरार प्राय: पड़ जाती है। इनका न तो कोई लक्षण है न ही किसी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु कपालास्थि के अवनत भङ्ग (Depressed fracture) प्राय: सन्दंश प्रसव में मिलते हैं तथा प्राय: पार्श्वकपालास्थि के अग्र भाग (Basal and Squamous portion) में ही भग्न होता है। यह अवनति गहरी होने पर मस्तिष्क में आघात या रक्तस्राव कर सकती है तथा गम्भीर उपद्रव हो सकते हैं। विकृति का उपचार शल्य कर्म है।

मस्तिष्कगत रक्तस्राव
(Intracranial Haemorrhage)

उपरोक्त उपद्रव प्राय: आघात या श्वासावरोध (Asphyxia) के कारण या कभी-कभी सहज रक्तस्रावजन्य व्याधि (Haemorrhagic disease) के कारण होता है। आघातज रक्तस्राव का कारण प्राय: गर्भ सिर की मात्रा के श्रोणिगुहा के बाह्य मार्ग की अपेक्षा बड़ा होना होता है तथा अन्य कारण प्रसव में विलम्ब के कारण ऐसा उपद्रव पैदा करते हैं, विशेष रूप से स्फिगोदय में अथवा अनुचित शस्त्रादि का प्रयोग प्रसव में करते हैं।

मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव के कारण लक्षणों की उत्पत्ति में समय अवस्थानुसार लगता है। सामान्य लक्षणों में moro reflex का कम होना या न होना, मांसपेशी Tone का ठीक न होना, तन्द्रा आदि हैं। श्वसन गति में अनियमितता रक्तस्राव की तीव्रता को इङ्गित करता है, यदि श्वसन की अन्य कोई समस्या नहीं है तो। कभी-कभी श्वसन में अनियमितता (Apnoea), श्वेतता या नीलाभ शरीर, ठीक से स्तनपान न कर पाना, तीव्र वमन, नेत्रगत लक्षण, उद्विग्नता, बेचैनी, तीव्र तीखी चीख के साथ रोदन, मांसपेशियों में ऐंठन, आक्षेप, पक्षाघात आदि लक्षण प्रमुख हैं। Fontanelle स्पर्श में तनावयुक्त लगती है। जिह्वा सर्प के समान बाहर निकलती है। नेत्रों में Retinal haemorrhage, तारामण्डल पर प्रकाश का प्रभाव न पड़ना तथा तीव्र ज्वर हो जाता है।

ध्यान रखिये—

1. गर्भावस्था जितनी कम होगी मस्तिष्कगत स्राव की सम्भावना उतनी अधिक रहती है।
2. समयपूर्व प्रसव में एकाएक यदि शिशु श्वेत पड़ जाय तो मस्तिष्कगत रक्तस्राव की सम्भावना होती हैं।
3. पूर्ण प्रसवित शिशु यदि बड़ा हो, प्रसव में कठिनाई हो या रक्तस्राव विषयक व्याधि हो तो मस्तिष्कगत रक्तस्राव की सम्भावना अधिक होती है।
4. रक्तस्राव विषयक व्याधियाँ भी कारण हो सकती हैं।

Scanned with CamScanner

5. मस्तिष्कगत रक्तस्राव के लक्षण, रक्तस्राव के स्थल एवं विस्तार पर निर्भर करते हैं।

मस्तिष्कगत रक्तस्राव के कारण तथा लक्षण

(क) सबड्यूरल रक्तस्राव

कारण—

(1) प्रसवगत कठिनाई यथा स्फिगोदय, मुखोदय प्रसव आदि।
(2) पूर्ण प्रसवित शिशु में अधिक सम्भावना रहती है।
(3) गर्भस्थ शिशु के शिर एवं श्रोणिद्वार में असामान्य अनुपात (CPD)।
(4) अपत्यपथ काठिन्य (Rigid)
(5) आकस्मिक प्रसव (Precipitate)

लक्षण—

(1) तीव्र स्वरूप—ग्रीवा स्तम्भ (Nuchal rigidity), Retrocollis, बहिरायाम, मध्य मस्तिष्क पर दबाव के लक्षण, अर्ध मूर्च्छावस्था (Stupor), मूर्च्छा (Coma), नेत्र विकृति (Skew, deviation), श्वसनगति में अल्पता, अन्त में कुछ मिनट से लेकर घण्टे में मृत्यु।

(2) मध्यम स्वरूप—जन्म से 24 घण्टे के बाद लक्षणों की उत्पत्ति, चिड़चिड़ापन, अनियमित श्वसन, अर्ध मूर्च्छावस्था, मस्तिष्क पर दबाव के कारण अग्र तालुरन्ध्र का उभार-युक्त (Full) होना।

(3) स्थानीय प्रभाव संवर्ग—स्थानीय आक्षेप, स्थानीय पक्षाघात, मस्तिष्क में जिस दिशा में रक्तस्राव है, उसी तरफ नेत्र का घूम जाना।

(ख) सब-अरकनायड रक्तस्राव

कारण—

(1) समयपूर्व प्रसवित शिशु में यदि प्राण वायु की कमी हो।
(2) पूर्ण प्रसवित शिशु को यदि आघात हुआ है।

लक्षण—

(1) अनिश्चित लक्षण, कुछ शिशु लक्षण रहित भी हो सकते हैं।

(2) तीव्रस्वरूप पाण्डु (श्वेतता), अनियमित श्वसन एवं मृत्यु। कुछ शिशु दूसरे दिन आक्षेपयुक्त मिलते हैं। दो आक्षेप का अन्तराल सामान्य हो सकता है।

(3) समयपूर्व प्रसवित शिशु में अल्पसमय के लिए श्वसन गति का रुकना (Apnoea)।

Scanned with CamScanner

(ग) इण्ट्रावेण्ट्रीकुलर/पेरीवेण्ट्रीकुलर रक्तस्राव

कारण—

समय पूर्व प्रसव यदि निम्नलिखित अवस्था में हों—

- गर्भावस्था 32 सप्ताह से कम हो
- भार 1500 ग्राम से कम हो
- जन्मजात श्वासावरोध का इतिवृत्त हो ।

लक्षण—

(1) लक्षणों की उत्पत्ति रक्तस्राव के तत्काल बाद से कुछ घण्टों में हो जाती है। मूर्छा, श्वसनगति का रुकना (Apnoea), आक्षेप (Tonic), Decerebrate posture, स्थिर एवं विस्तृत नेत्र कृष्ण मण्डल, चारों शाखाओं का पक्षाघात (Flaccid type), अग्र तालुरन्ध्र का उभारयुक्त (Full) होना, श्वसन गति में अल्पता, रक्तचाप में कमी, शरीर के तापक्रम का कम होना ।

(2) कुछ घण्टों से लेकर 1 या 2 दिन में लक्षणों की उत्पत्ति, Sensorium में परिवर्तन, शरीर की क्रियाओं में क्रमशः न्यूनता, पेशियों में शिथिलता (Hypotonia), नेत्रों में अनियमित गतिशीलता ।

(घ) इण्ट्रासेरीबेलर रक्तस्राव

कारण—

उपरोक्त कारण (ग) तथा जन्म के समय आघात ।

लक्षण—

Apnoea, श्वसनगति में कमी, रक्तकोशिकाओं में कमी, क्रमशः स्वास्थ्य का नाश एवं मृत्यु, प्रायः निदान मृत्यु के बाद शव-परीक्षण के समय ही हो जाता है ।

प्रयोगशालीय परीक्षण

1. नेत्र परीक्षा—Fundic रक्तस्राव ।
2. सुषुम्ना नाड़ी द्रव परीक्षा (CSF)—रक्तयुक्त, लालरक्त कोशिकाओं की अधिक संख्या (0-30/cu.mm), प्रोभूजन की मात्रा में वृद्धि (90-100 mg.)
3. सबड्यूरल टैपिंग—सबड्यूरल रक्तस्राव के रुग्ण में ।
4. मस्तिष्क की सोनोग्राफी
5. C.T. Scan
6. रक्त परीक्षण (रक्तकोशिका गणना, हीमोग्लोबिन के लिए)
7. रक्तस्राव व्याधि हेतु परीक्षण

Scanned with CamScanner

चिकित्सा—बच्चे को कम-से-कम हिलायें तथा सम्भव हो तो Incubator में रखें, जिससे तापक्रम सामान्य रखा जा सके तथा आवश्यकतानुसार ओषोजन दी जा सके।

1. आक्षेपशामक औषधि यथा—Phenobarbitone
2. रक्तस्रावशामक जीवतिक्तीय Vitamin K
3. रक्त या प्लाजमा (शिरागत)।
4. रक्तस्रावज व्याधि की उचित व्यवस्था।
5. लाक्षणिक एवं निदान के अनुसार चिकित्सा।
6. Subdural taping, Ventricular drainage, Lumber taping आवश्यकतानुसार एवं शल्यकर्म।

मेरु-आघात
(Spinal Injury)

प्रसवकाल में शीर्षोदय (Cephalic presentation) में कन्धों के प्रसव में और स्फिगोदय प्रसव में मेरु-आघात की अधिक सम्भावना रहती है। आघात प्राय: ग्रीवा के सातवें या वक्ष के प्रथम कशेरुका पर ही लगता है। प्राय: आघात के नीचे के स्थान पर पूर्ण पक्षाघात स्वैच्छिक गतिशीलता का हो जाता है। शिशु प्रसव में अतिव्यथित होने से, श्वसन में कठिनाई के कारण, मूर्च्छा (Shock), शरीर का ताप कम होना तथा तीव्र स्वरूप के आघात के कारण प्राय: नाड़ीतन्त्र के लक्षण की उपस्थिति के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अन्यथा लगभग 7 दिनों के बाद लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। बाद में शिथिल पक्षाघात के लक्षण, संज्ञानाश एवं मृत्यु भी सम्भव है। कशेरुका के कारण उत्पन्न दबाव को समाप्त करना ही चिकित्सा है। इस हेतु अस्थिविशेषज्ञ की राय लेना उचित है।

नाड़ीतन्त्र-आघात
(Nerve Injury)

प्रसव काल के दुष्परिणामों में इनका प्रमुख स्थान है। कुछ सामान्य नाड़ी-आघात का उल्लेख नीचे कर रहे हैं—

(1) बाहुक पक्षाघात (Brachial palsy or Erb's paralysis)—शीर्षोदय काल में कन्धों के प्रसव हेतु प्रयास में अथवा स्फिगोदय प्रसव में जब हाथ सिर के ऊपर हो या जब कन्धों के प्रसव में अधिक तनाव दिया जाय तो बाहुकप्रतान (Plexus) में आघात के कारण बाहु के ऊर्ध्वभाग का पक्षाघात होता है।

Erb Duchenne Paralysis में पञ्चम एवं षष्ठ ग्रीवानाड़ी ही प्रभावित होती हैं। शिशु कन्धे से हाथ नहीं हिला पाता। हाथ शरीर की मध्य रेखा की ओर घूम जाता

Scanned with CamScanner

है तथा कुहनी सन्धि फैली (Expanded), अग्रबाहु सामने की ओर (Pronated) कलाई मुड़ी (Flexed) तथा अंगुलियाँ सीधी (Extended) हो जाती हैं। इसे पुलिस हैंड (हाथ) की संज्ञा दी गयी है। (देखिये चित्र 28)। Biceps reflex, Triceps, Moro's reflex अनुपस्थित हो जाता है। Grasp reflex उपस्थित रहता है। हाथ के बाह्य ओर के संवेदना तन्त्र पर भी कुछ प्रभाव पड़ जाता है। बाहु के अग्रभाग में ताकत रहना, मुट्ठी बाँध लेना शुभ लक्षण हैं।

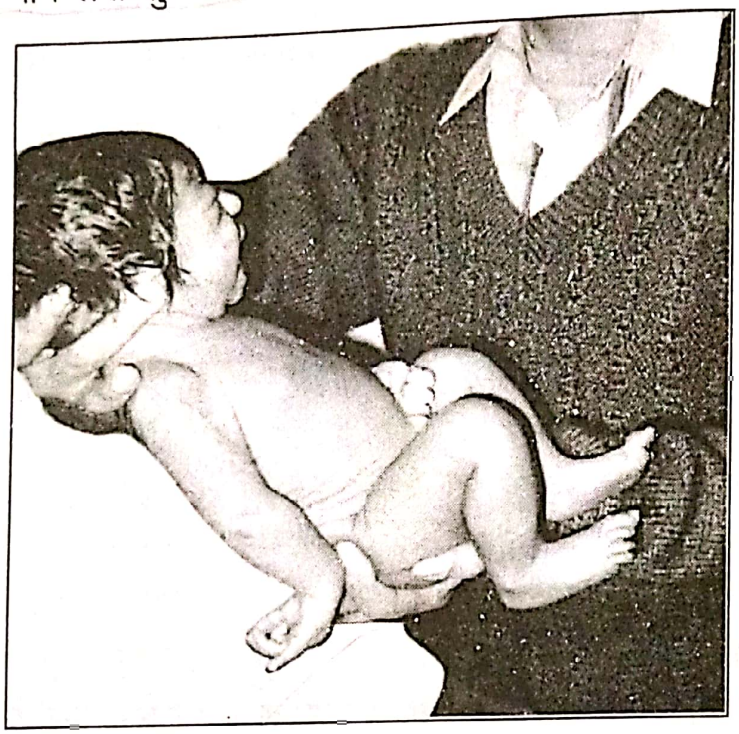

चित्र सं. 28 : Erb's Palsy

(2) Klumpke Paralysis—यह बहुत ही कम दिखायी पड़ने वाला उपद्रव है। इसमें सातवीं, आठवीं ग्रीवानाड़ी एवं प्रथम वक्षनाड़ी प्रभावित होती है। बाहु की अन्त: पेशियाँ प्रभावित होती हैं। जिससे बाहु-पक्षाघात तथा उसी तरफ के नेत्रपलकों का गिरना (Ptosis) एवं Pupil का सङ्कोच (Myosis) भी होता है, यदि Sympathetic fibers प्रथम वक्षनाडी के प्रभावित हुए हैं। Grasp reflex अनुपस्थित एवं Biceps तथा Triceps reflex उपस्थित रहता है। कभी-कभी Horner's syndrome भी मिलता है। Horner's syndrome के लक्षण इस प्रकार हैं—

1. Cervical sympathetic nerve paralysis
2. Myosis
3. Slight ptosis
4. Enopthalmos
5. Anhidrosis

चिकित्सा—अङ्ग-विशेष की क्रियाशीलता को रोकना, अङ्ग को विशिष्ट अवस्था में रखना एवं Splint बाँधना ही मुख्य चिकित्सा है।

Scanned with CamScanner

• ऊर्ध्वबाहु-पक्षाघात में—हथेली चेहरे की तरफ हो, कलाई को हल्का सीधा (Extension) करके, अग्रबाहु को पूर्णरूपेण बाहर (Supine) करके, कन्धे को बाहर की ओर घुमाकर शरीर की मध्य रेखा से 90^0 पर रखें ।

• अग्रबाहु के पक्षाघात में—प्रभावित भाग को Splint से अवश्य बाँधे तथा सामान्य अवस्था में रखें जिससे संकोच विकृति न हो ।

• पूर्णबाहु-पक्षाघात में भी उपरोक्त व्यवस्था रखनी चाहिए ।

7 से 10 दिन के बाद बला तैल या महामाष तैल से मृदु अभ्यङ्ग कर सकते हैं तथा उस अङ्ग की सामान्य प्रक्रिया (Physiotherapy) को भी कराना चाहिए ।

(3) **फ्रेनिक नाड़ी-पक्षाघात**—Phrenic नाड़ी-पक्षाघात के साथ-साथ Diaphragm पक्षाघात भी होता है । इसमें प्राय: C_3, C_4, C_5 के आघात के साथ-साथ Erb's palsy भी होती है । निदानार्थ शरीर में नीलिमा तथा अनियमित एवं हल्का श्वसन का होना पर्याप्त है । फुफ्फुस के उस ओर के भाग में श्वसन-ध्वनि हल्की होगी । एक्स-रे परीक्षण में पक्षाघात की ओर का Diaphragm सामान्य अवस्था से ऊपर की ओर उठा मिलेगा । Hypostatic pneumonia भी मिलता है ।

चिकित्सा—कोई विशिष्ट चिकित्सा नहीं है । रोगी शिशु को पीड़ित पक्ष की ओर करके लिटायें । आवश्यकतानुसार ओषोजन, सिरागत ग्लूकोस या मुख-आमाशयनलिका द्वारा दूध दें । किसी अन्य उपद्रव से बचायें । 1 से 3 माह में प्राय: व्याधि स्वयं ठीक हो जाती है, अन्यथा शल्य कर्म आवश्यक है । Pneumonia में उचित जीवाणुरोधी औषधि प्रयोग करें ।

(4) **अर्दित** (Facial nerve palsy)—प्राय: Facial nerve पर गर्भाशय में या प्रसव के समय या सन्दंश प्रसव में दबाव के कारण अर्दित विकसित होता है । कभी-कभी कारण अज्ञात होता है । पूर्ण नाड़ीपक्षाघात में उस तरफ का पूरा मुखमण्डल प्रभावित होता है । जब बालक रोता है तो स्वस्थ भाग के चेहरे पर ही गति दीखती है, मुख उस तरफ खिंच जाता है । अस्वस्थ भाग की ओर ललाट चिकना, नेत्र खुला एवं मुख का कोना गिरा रहता है ।

छठी नाड़ी के पक्षाघात के साथ प्राय: मस्तिष्क के अन्दर आघात की भी सम्भावना रहती है ।

कुछ सप्ताहों में स्वयं ही उपद्रव ठीक होने लगता है । इस पर आघात की तीव्रता का प्रभाव पड़ता है । खुले हुए नेत्र की भी उचित व्यवस्था करें । नेत्र पर पैड रखना एवं नेत्रों को गीला रखना चाहिए । यदि अर्दित ठीक नहीं होता है तो Neuroplasty शल्यकर्म करना पड़ता है ।

Scanned with CamScanner

वक्षोदर आघात

कभी-कभी वक्ष एवं उदर के अवयवों पर भी आघात पड़ जाता है । यथा— यकृत्, प्लीहा एवं अधिवृक्क में आघात । यकृत् आघात में यकृत् कैपसूल में रक्त संग्रह होकर उत्सेध बन जाता है । दक्षिण-पार्श्व में उत्सेध की उपस्थिति, स्तनपान में अरुचि, उद्विग्नता, श्वेताभ वर्ण, कामला, श्वसनगति-वृद्धि प्रमुख लक्षण हैं । तीव्र पाण्डु, मूर्च्छा एवं मृत्यु भी सम्भव है । लगभग इसी तरह वाम पार्श्व में स्थित प्लीहा के साथ होता है ।

अधिवृक्क में आघात स्फिगोदय प्रसव में आघात से या ओषोजन अल्पता से या तीव्र तनाव के कारण होना सम्भव है । निदान Roentgenographically या मृत्यु के बाद शवच्छेद से सम्भव है । मुख्य लक्षण शरीर में नीलिमा या मूर्च्छा (Shock) ही है । पार्श्व में उत्सेध स्पर्श से प्रतीत हो सकता है ।

पेशी-आघात एवं अस्थिभग्न

(1) **टारटीकोलीस** (Torticollis)—इस व्याधि में ग्रीवा की पेशी Streno-cleidomastoid का सङ्कोच हो जाता है । यह जन्मजात रचनात्मक विकृति भी हो सकती है अथवा आघातजन्य भी । आघातजन्य पेशीसङ्कोच में शिशु उसी तरफ गर्दन झुकाये रहता है जहाँ वेदना होती है । इसमें चिकित्सार्थ Soft collar का प्रयोग, स्थानीय शुष्क स्वेद तथा वेदनानाशक औषधि का प्रयोग करते हैं । जन्मजात विकृति में पेशीमध्य एक उत्सेध मिल सकता है । इसकी चिकित्सा न करने पर वह कड़ा हो जाता है तथा ग्रीवा उस ओर खिंच जाती है । चिकित्सार्थ ग्रीवा की पूर्ण गतिशीलता का नित्य प्रयास करायें । यदि उपद्रव ठीक नहीं होता तो शल्य कर्म करना पड़ता है ।

(2) **जत्रुभङ्ग** (Clavicle fracture)—प्रसवकालीन यह अति सामान्य अस्थि-भग्न है । Clavicle का भग्न होने पर उस ओर के हाथ की क्रियाशीलता में कमी, स्पर्श में असामान्यता, क्रेकिंग की आवाज तथा कभी-कभी स्नान-च्युत अस्थि भी दीखती है । उस तरफ के Moro reflex की समाप्ति, वेदना युक्त ग्रीवास्तम्भ भी हो जाता है । हल्के भग्न (Green stick) में कोई भी लक्षण प्राय: नहीं मिलता ।

यदि पूर्ण भग्न हुआ है तो हाथ एवं कन्धे को स्थिर रखते हुए पट्टी बाँध दी जाती है । 7 से 10 दिन में प्राय: भग्न जुड़ जाता है ।

(3) **शाखा-अस्थिभग्न**—जिस शाखा की अस्थि का भग्न होता है उसकी गतिशीलता समाप्त हो जाती है तथा कभी-कभी स्थानीय नाड़ीतन्त्र पर भी प्रभाव पड़ जाता है ।

प्रगण्डास्थि (Humerus) भग्न में 2 से 4 सप्ताह हेतु बाहु एवं वक्ष को त्रिकोणात्मक Splint से बाँध देते हैं । ऊरुअस्थि (Femur) भग्न में Traction-Suspension दोनों पैर का कर देने से अच्छा परिणाम प्राप्त होता है ।

Scanned with CamScanner

ओषजन-अल्पता (Anoxia) जन्य आघात

ओषोजन की अल्पता के कारण बहुत-से उपद्रव नवजात शरीर में पैदा हो जाते हैं। जन्मकालीन मृत्यु अथवा केन्द्रीय तंत्रिकातन्त्र को स्थायी आघात के परिणामस्वरूप पक्षाघात या मन्दबुद्धि आदि का प्रादुर्भाव हो जाता है।

कारण—इसके कारण दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं; यथा—

(क) प्रसवपूर्व कारण

(1) संज्ञाहरण द्रव्य का प्रयोग, हृदयाघात (Cardiac failure) या अन्य कारण से माता को ओषजन का कम मिलना।

(2) अति गर्भाशय-वृद्धि से अधो महाशिरा (Vena cava) एवं महाधमनी (Aorta) पर दबाव से अथवा शल्य कर्म के समय मेरु द्वारा संज्ञानाशक औषधि के प्रयोग से उत्पन्न माता के रक्तचाप में कमी।

(3) Oxytocin के अधिक प्रयोग से गर्भाशय में सङ्कोच (Tetany) उत्पन्न हो जाता है जिससे अपरा को पूर्णरक्त की उपलब्धि नहीं हो पाती।

(4) नाभिनाल पर दबाव या गाँठ बँध जाने से शिशु के रक्तसंवहन में बाधा पड़ना।

(5) अपरा के कार्यक्षमत्व में विभिन्न कारणों से कमी।

(ख) प्रसवोपरान्त कारण

(1) तीव्ररक्तस्राव या रक्तक्षय व्याधि (Haemolytic) जन्य पाण्डु के कारण उत्पन्न ओषोजन की अल्पता।

(2) अत्यधिक रक्तस्राव, तीव्र संक्रमण, मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव या अधिवृक्क रक्तस्रावजन्य मूर्च्छा (Shock) के कारण।

(3) श्वासावरोधजन्य ओषोजन-अल्पता।

लक्षण—कारणों के अनुसार ही लक्षणों का वर्गीकरण करना उचित होगा।

(1) **गर्भस्थ शिशु में**—Anoxia के लक्षण गर्भस्थ शिशु में प्रसव के कुछ दिन पूर्व से कुछ काल पूर्व तक देखे जा सकते हैं। गर्भस्थ शिशु के हृदयगति में कमी, Beat में लघुता (weak) एवं अनियमितता मिलती है। गर्भस्थ शिशु से प्राप्त Scalp Blood का परीक्षण करने पर उसका pH. 7.20 से कम मिलता है। लगभग पूर्ण कालीन गर्भ को तुरन्त प्रसव कराना एवं माता को अधिक आक्सीजन कृत्रिम विधि से देकर अन्य उपद्रवों से बचा जा सकता है।

(2) **प्रसवकालीन**—गर्भोदय एवं उल्व का पीला एवं मलयुक्त होना प्रसवकालीन Anoxia की ओर सङ्केत करता है। जन्म के बाद यह शिशु नियमित श्वसन नहीं कर

Scanned with CamScanner

पाते हैं। अङ्गशैथिल्य, श्वेताभ या नीलाभ शरीर, हृदयगति में कमी आदि लक्षण मिलते हैं। बाद में आक्षेप आने लगते हैं।

(3) **प्रसवोपरान्त**—प्राय: प्रसवोपरान्त Anoxia, श्वसन नियमित न होने से अथवा रक्तसंवहन में गड़बड़ी के कारण होता है। इनका विवरण यथास्थान दिया गया है।

चिकित्सा—(देखिये—नवजात शिशु-परिचर्या अध्याय में प्राणप्रत्यागमन)

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 4

प्रसवोत्तरकालीन व्यापद्

उल्बक रोग[1]

पर्याय—अम्बुपूर्ण ।

निदान—जब प्रसव के बाद शिशु गर्भोदक को वमन करके बाहर नहीं निकाल पाता अथवा मुख के कफ का ठीक से शोधन नहीं हो पाता ।

सम्प्राप्ति—उपरोक्त के सम्पर्क से दूषित रस हृदय (स्थान) में विकृति उत्पन्न करता है, जिससे शरीर के स्रोतसों के पथ अवरुद्ध होकर व्याधि-लक्षण उत्पन्न करते हैं ।

लक्षण—हृद्रोग, आक्षेपक, श्वास, कास, ज्वर, छर्दि, इस दशा में बालक मुट्ठी बाँधकर बेहोश हो जाता है आदि ।

विशेष—इस व्याधि को आचार्य ने सहज व्याधि माना है ।

चिकित्सा—

(1) शिशु को स्नान व अभ्यङ्ग का निषेध है ।

(2) स्रोतोशोधन—अजामूत्र अल्प मात्रा में प्रातःकाल कई बार देना चाहिए ।

'स्रोतो विशोधनं प्रातस्तस्मिन्नन्तरपानकम् ।
विदध्याच्छागलं मूत्रं पानाभ्यङ्गौ च वर्जयेत्' ।।

(अ.सं.उ. 2:193-194)

(3) शशक घृत का प्रयोग—

बिल्वादिमूलबृहतीपञ्चकोलं पलांशकम् ।।
धन्वमांसपलान्यष्टौ शशमूर्ध्नः पलाष्टकम् ।
साधयेत् षोडशगुणे सलिलेऽष्टांशशेषितम् ।।

---

1. गर्भाम्भसामवमनाच्छ्लेष्मणः कण्ठगस्य वा ।
सम्पर्कात् हृदये दुष्टो मार्गानावृणुते रसः ।।
बद्धमुष्टिस्ततो मूर्ह्नोद्रोगैर्बालोऽभिभूयते ।
हृद्रोगाक्षेपकश्वासकासच्छर्दिज्वरादिभिः ।।
उल्बकं सहजं व्याधिमम्बुपूर्णं च तं वदेत् ।। (अ.सं.उ. 2:191-193)

Scanned with CamScanner

तेन क्वाथेन कर्षांशैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
छगलीमूत्रमदिरादधिक्षीरसंमाशकम् ।।
विडंगसैन्धवाजाजीचविकादेवदारुभिः ।
सहिंस्राहिंगुलशुनैः सव्योषैः श्लक्ष्णकल्कितैः ।।
तत् पानाद्धन्ति सहजगुल्महिध्माऽनिलामयान् ।
पाण्डुरोगं च वातोत्थं स्वस्थवृत्ते च पुष्टिदम् ।।
(अ.सं.उ. 2/194-198)

बिल्व आदि बृहत्पञ्चमूल के द्रव्य, वनभण्टामूल तथा पञ्चकोल 1-1 पल, हरिण आदि जांगल देशीय किसी प्राणी का मांस 8 पल, खरगोश के शिर का भेजा समेत मांस 8 पल लेकर 16 गुने जल में पकावे तथा 8वाँ भाग शेष रहने पर छान लेवें फिर उस क्वाथ के साथ 1-1 तोला (प्रत्येक) वायविडंग, सैन्धव लवण, जीरा, चव्य, देवदारु, हींस की जड़, हींग, लशुन तथा त्रिकटु का भलीभाँति पीसा गया कल्क तथा 1 प्रस्थ घृत और 1-1 प्रस्थ बकरी का मूत्र, सुरा, दही तथा दूध मिला कर पाक करें, सिद्ध होने पर घृत को छानकर रख लेवें ।

इस घृत का पान करने से उक्त उल्बक रोग, गुल्म, हिचकी, वातजनित रोग और वातप्रधान पाण्डुरोग का नाश हो जाता है और स्वस्थ शिशु को पुष्ट करता है ।

तकुए के लोहे की गोली को तपाकर तैल में बुझाकर तैल का पान कराना चाहिए।

'तर्क्कधोगुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलके ।
तत् तैलं पानतो हन्ति बालानामुल्वमुल्वणम्' ।। (भै.रं. 71/10)

उपरोक्त विवरण देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि जन्म के समय शिशु के गर्भोदक या मुख में स्थित श्लेष्मा को शीघ्रतापूर्वक ठीक से न निकाला जाय तो उसे शिशु श्वसन क्रिया प्रारम्भ करते ही निगल लेगा । जो श्वसनतन्त्र में पहुँचने पर विभिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न करता है, इसे Aspiration pneumonia कह सकते हैं ।

चूषण न्युमोनिया
(Aspiration Pneumonia)
(Aspiration Syndrome)

प्रसव में कठिनाई होने पर या समय अधिक लगने पर गर्भस्थ शिशु अपरा के द्वारा ओषजन की आपूर्ति में कमी होने पर श्वसन की चेष्टा गर्भाशय में ही करने लगता है । जिसके परिणामस्वरूप गर्भ गर्भोदक पान कर लेता है । जिसमें गर्भोदक के साथ-साथ उल्बा, गर्भ का मल, केशिकाएँ आदि होते हैं । गर्भोत्पत्ति के पश्चात् हरितवर्ण तत्काल गर्भ में मलत्याग का एवं पीतवर्ण पूर्व में मलत्याग का द्योतक है । घना मल मिश्रित गर्भोदक अधिक गम्भीरता का द्योतक है । यह गर्भोदक फुफ्फुस में जाने पर सूक्ष्म

Scanned with CamScanner

श्वसननलिकाओं का मार्गावरोध करते हैं। इस गर्भोदक के साथ प्रसवमार्गादि से संक्रमणार्थ जीवाणु भी पहुँच जाते हैं तथा Aspiration pneumonia पैदा करते हैं।

उपरोक्त कारण के अतिरिक्त ग्रासनलिका-ट्रेकिया मध्य मार्ग (Tracheoesophagial fistula), ग्रासनलिका तथा पच्यमानाशय (Duodenum) का मार्गावरोध, Gastroesophageal reflex, बच्चे को ठीक से दूधपान न कराना भी कारण होता है।

मल-मिश्रित गर्भोदक की उपस्थिति, नाभिनाल, नाखून का हरित या पीत वर्ण का होना पूर्वरूप को इंगित करता है। ऐसे शिशुओं में श्वासावरोध मिल सकता है। गर्भोदक या अन्य वस्तु के श्वसनतन्त्र में जाने पर 1 से 2 घण्टे के बाद ज्वर, श्वसन-काठिन्य (Tachypnea) एवं कास होने लगता है। Apnoea तथा Hypotensive shock भी हो सकता है। उपरोक्त कारण बहुत कम ही समय पर एकाएक मृत्यु का कारण बनते हैं। रोगी परीक्षण करने पर फुफ्फुस स्थान पर Diffuse rales तथा wheezing sound सुनायी पड़ती है। रोगी नीला (Cyanotic) दीखता है।

चिकित्सा-व्यवस्था—शिर का प्रसव होते ही मुख, नाक एवं गले को श्लेष्मा चूषक यन्त्र से साफ करें। पूर्ण प्रसव के बाद Intubation कर श्वासनली से मल मिश्रित गर्भोदक को निकाले। शिशु को उचित विधि से दूध पिलाना, उपरोक्त स्थिति आने पर श्वसननलिका की तुरन्त रबरनलिका डालकर सफाई एवं कृत्रिम विधि से आक्सीजन देना। आवश्यकतानुसार Antibiotics तथा Corticosteroids देना चाहिए।

नाभिनाल-कर्तनजन्य व्याधियाँ

आचार्य चरक ने नाभिनाल काटने के समय की हुई असावधानी से होने वाले 6 उपद्रवों का उल्लेख किया है—

'असम्यक्कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामोत्तुण्डितापिण्डलिकाविनामिका-विजृम्भिकाबाधेभ्यो भयम्'। (च.शा. 8:45)

चक्रपाणि ने इसकी टीका इस प्रकार की है—

'आयामो दैर्घ्यं, व्यायामो विस्तारः, ताभ्यामुत्तुण्डिता आयामव्यायामोत्तुण्डिता, दीर्घपीनत्वयुतेत्यर्थः पिण्डलिका परिमण्डलयुता, विनामिका अन्तोच्छूना (अथवा-अन्तःस्थूला) मध्यनिम्ना, विजृम्भिका तु मुहुर्मुहुर्वृद्धिमती। (चक्रपाणि)

1. आयाम – दैर्घ्य।
2. व्यायाम – विस्तार।
3. उत्तुण्डिता – आयाम-व्यायाम से उत्पन्न।
4. पिण्डलिका – परिमण्डलयुक्त।

Scanned with CamScanner

5. विनामिका – किनारों पर उन्नति बीच में दबा हुआ ।

6. विजृम्भिका–बार-बार वृद्धि होना ।

उपरोक्त सभी अर्थ स्थानीय उपद्रवों को ही इङ्गित करते हैं । जब कि आज हम देखते हैं कि नाभिनाल कर्तन के समय असावधानी या अस्वच्छता से-बहुत से सार्वदैहिक उपद्रव हुआ करते हैं ।

आयुर्वेद-संहिताओं में आक्षेप के प्रकरण में आयाम शब्द 'बहिर्याम' एवं 'अन्तर्याम' के रूप में भी वर्णित है (च.चि. 28:43-48) । अतः यदि आक्षेप विषय को दृष्टिगत रख कर आयाम (दैर्घ्य), व्यायाम (विस्तार) शब्द को मांसपेशियों के दैर्घ्य या विस्तार के सन्दर्भ में ग्रहण करें तो इससे आक्षेप अर्थ भी निकाल सकते हैं जो कि नालकर्तन दोषपूर्ण होने पर आज भी होने वाले बहुत ही सामान्य उपद्रव Tetanus neonatorum का एक प्रमुख लक्षण है ।

उत्तुण्डिता शब्द का प्रयोग करने वाले आचार्य चरक ने इसके रूप आदि की व्याख्या तो नहीं की है । परन्तु सुश्रुत ने 'नाभितुण्डी' या तुण्डी के नाम से एक व्याधि वर्णित की है । उत्तुण्डिता शब्द में उत् उपसर्ग है अर्थात् जिसकी तुण्डि उत् अर्थात उन्नत हो ।

नाभितुण्डी—वायु के कारण फूली हुई एवं पीड़ायुक्त तुण्डि नामक व्याधि नाभि में होने से नाभितुण्डी कही जाती है ।

'वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुण्डिसंज्ञिताम् ।
मारुतघ्नैः.....' ।। (सु.शा. 10:43)

सुश्रुत ने उठी हुई नाभि के अतिरिक्त दो लक्षण और बताये हैं—

(1) **वातेनाध्मापितां**—वायु का योगदान 'उत्तुण्डिता' होने में कारण दो प्रकार से होता है । प्रथम जब झिल्लीकोष में वायु हो अथवा कोष में श्वास लेने पर या अन्य किसी कारण से उदर में दबाव की वृद्धि होने पर कोई अङ्ग-विशेष यथा आन्त्र या वपावहन (Omentum) को कोई भाग आ जाय ।

(2) **सरुजां**—आन्त्र के झिल्लीकोष में आकर किसी तरह ग्रथित होने पर या वपावहन के आकर फँस जाने पर शूल होता है । (Exomphalos) नामक एक व्याधि में तो उदर के अङ्ग का कोई भाग नाभि द्वारा बाहर आकर पतली झिल्ली मात्र से ढका रहता है । उस पर त्वचा नहीं होती, इसमें पीड़ा होने का विशेष भय रहता है ।

वाग्भट ने नाभितुण्डी का वर्णन नाभिपाक के बाद किया है । नाभिपाक के बाद उस स्थान की उदरभित्ति के कमजोर हो जाने पर उदर स्थित वायु (उदान या समान वायु) के प्रकोप से उदर के अङ्ग नाभि से बाहर आ जाते हैं । यही उत्तुण्डिता अर्थात् Umbilical hernia है ।

Scanned with CamScanner

पिण्डलिका स्थानीय उपद्रव है। जिसमें किनारों पर लालिमामण्डल बन जाता है। यह नाभिपाक से पूर्व की अवस्था है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने मात्र दो उपद्रव कहे हैं—

'असम्यक् कल्पनान्नाभेः स्याद्विनामो विजृम्भिका' ।। (उ. 2:90)

1. विनाम।
2. विजृम्भिका।

विनामिका अथवा विनाम—यद्यपि इस व्याधि का विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। परन्तु जैसा कि शब्द से अर्थ निकलता है कि मध्य में दबा हुआ, यह अर्थ सार्वदैहिक परिप्रेक्ष्य में Opisthotonus का चरित्र प्रकट करता है।

विजृम्भिका—इसका अर्थ 'मुहुर्मुहुर्वृद्धिम्' अर्थात् बार-बार वृद्धि होना चक्रपाणि ने कहा है। इसी आधार पर विद्वज्जनों ने इससे Umbilical hernia का अर्थ ग्रहण किया है।

हलायुध कोष या अन्य शब्दकोषों में विजृम्भिका का अर्थ 'श्वासक्रिया में व्यवधान' अथवा जृम्भा लेने की स्थिति कही गयी है। यह अर्थ उचित लगता है। क्योंकि जन्म के तुरन्त बाद नाभिनाल से चल रही श्वसन क्रिया का अन्त होता है तथा फुफ्फुस से यह क्रिया प्रारम्भ होती है। इस तारतम्य में कहीं भी व्यवधान होने पर श्वास क्रिया में व्यवधान होता है, शिशु को मृदु आक्षेप आते हैं जो कि जृम्भा में हुई प्रक्रिया जैसा ही होता है। अतः यह अवस्था Asphyxia का परिणाम जैसी ही है। विजृम्भिका लक्षण क्षीरालसक में भी इसी अर्थ में कहा गया है। (अ.ह.उ. 2:20-22)

इनके अतिरिक्त आयुर्वेद-ग्रन्थों में कुछ उपद्रवों का नामोल्लेख मात्र मिलता है—

1. नाभिपाक (च.शा. 8:44 तथा अ.सं.उ. 2:88 एवं यो.र.बालचि.पृ. 445)।
2. नाभिशोथ (यो.र.बालचि.पृ. 445)।
3. नाभिव्रण (अ.सं.उ. 2:87)।
4. उन्नत नाभि (अ.सं.उ. 2:87)।
5. अनुन्नत नाभि (अ.सं.उ. 2:87)।
6. नाभिकुण्डल (र.र.स. 22:160)।

इन व्याधियों की मात्र चिकित्सा वर्णित है, लक्षणादि का वर्णन नहीं है। परन्तु नामों से प्रतीत होता है कि ये स्थानीय उपद्रव हैं।

उपद्रवों की चिकित्सा

चरक द्वारा कहे गये उपरोक्त छः उपद्रवों की चिकित्सा—

Scanned with CamScanner

'तत्राविदाहिभिर्वातपित्तप्रशमनैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकैः सर्पिर्भिश्चोपक्रमेत गुरु-लाघवमभिसमीक्ष्य' । (च.शा. 8:45)

उनके निवारणार्थ अविदाही, वातपित्तनाशक अभ्यङ्ग, उत्सादन, परिषेक या घृतपान द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए । दोषों की गुरुता या लघुता का भी विचार करना चाहिए ।

उपरोक्त चिकित्सा सिद्धान्त भी 6 उपद्रवों की सार्वदैहिकता पर प्रकाश डालता है। चिकित्सा सार्वदैहिक बतायी गयी है, स्थानीय नहीं ।

(1) **नाभितुण्डी**—सुश्रुत ने इसके निवारणार्थ वातनाशक द्रव्यों से स्नेहन, स्वेदन तथा उपनाह का विधान किया है ।

'मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाहनैः' ।। (सु.शा. 10:46)

(2) **नाभिपाक**—'तस्य चेन्नाभिः पच्येत, तां लोध्रमधुकप्रियङ्गुसुरदारुहरिद्रा-कल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यज्यात्, एषामेव तैलोषधानां चूर्णेनावचूर्णयेत्' । (च.शा. 8:44)

'यष्टीलोध्रनिशाश्यामाकल्कपक्वेन सञ्चयेत् ।
नाभिपाके तु तैलेन तच्चूर्णेष्ववचूर्णयेत्' ।। (अ.सं.उ. 2:88)

'नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चात्रावधूलनम् ।।
दुग्धेन च्छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् ।
त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना' ।। (यो.र.बाल.पृ. 454)

'नाभिपाके प्रलेप्तव्यं सिक्तं तैलेन भूरिशः ।
रजनीयष्टिकालोध्रप्रियङ्गूणां च कल्कतः ।।
चूर्णेनैषां सतैलेन नाभिपाकं शमं नयेत्' ।। (र.र.स. 22:160)

नाभिपाक होने पर लोध्र, मधुक, प्रियङ्गु, देवदारु एवं हरिद्रा के कल्क से सिद्ध किये तैल से अभ्यङ्ग करें तथा इन्हीं द्रव्यों का नाभि पर अवचूर्णन करें । (चरक एवं र.र.स.)

वाग्भट ने मधुक, लोध्र, हरिद्रा एवं श्यामा के क्वाथ से स्थानीय धावन, इनके कल्क से सिद्ध तैल से व्रण कर्म एवं इन्हीं के चूर्ण से अवचूर्णन करने के लिए कहा है।

अजाविष्ठा दूध में मिलाकर सुखाकर चूर्ण कर लगाने से या क्षीरीवृक्षत्वक्चूर्ण या चन्दन चूर्ण का अवचूर्णन करने से लाभ होता है ।

(3) **नाभिशोथ**—मृतिका के ढेले को अग्नि में तपाकर उसे दूध से बुझायें एवं उसकी उष्मा से नाभि को स्वेदित करें । इससे शिशु के नाभिस्थान का शोथ नष्ट हो जाता है ।

Scanned with CamScanner

'मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति' ।। (यो.र.बा.चि.पृ. 445)

(4) **नाभिव्रण तथा अनुन्नत नाभि**—शिशु का नाभिनाल गिरने पर कभी-कभी नाभिस्थल पर उत्पन्न व्रण भरता नहीं, इसे वाग्भट ने अनुन्नत नाभि कहा है । इसमें अश्वगन्धा, अञ्जन, अजाविष्ठा एवं यष्टीमधु का चूर्ण घृत में मिलाकर रोपण हेतु प्रयोग करना चाहिए ।

'अश्वगन्धाञ्जनाजाविड्यष्टीमधुकादिभिः ।
रोपयेच्चूर्णितैर्नाभिं स्नेहयुक्तैरनुन्नताम्'।। (अ.सं.उ. 2:87)

(5) **उन्नत नाभि**—नाभिनाल के गिरने पर भी यदि नाभि उन्नत रह जाय तो अजाविष्ठा को राख का अवचूर्णन करके उसका लेखन करना चाहिए ।

'नालपातेऽपि चोन्नताम् । नाभिं छागेन दग्धेनान्तर्विचूर्णयेत्' ।।
(अ.सं.उ. 2:86)

(6) **नाभिकुण्डल**—नाभि के चारों ओर जो कुण्डलाकार शोथ होता है, इसे नाभिकुण्डल कहते हैं । यह चरकोक्त पिण्डलिका जैसी अवस्था है ।

'अपुष्पाश्वत्थपञ्चाङ्गक्वाथेनापि च कल्कतः ।
सिद्धं तैलं प्रलेपेन कुण्डलव्याधिनाशनम्' ।। (र.स.सं. 22:161)

पीपल वृक्ष के पञ्चाङ्ग के क्वाथ में उसी का कल्क डालकर सिद्ध किये गये तैल को नाभिकुण्डल में लगानाा चाहिए ।

उपर्युक्त विवरण में जिन अधुना चिकित्साविज्ञान की व्याधियों का उल्लेख आया है उनका वर्णन यहाँ उचित ही होगा तथा अन्य जो भी व्याधियाँ हमें देखने को मिलती हैं उनका भी संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है ।

स्थानीय नाभिनाड़ीशोथ-पाक
(Septic Umbilicus - Omphalitis)

नवजात शिशु की यह एक सामान्य समस्या है । नाभिकर्तन के समय स्वच्छता न रखना, कटी नाल पर अस्वच्छ वस्त्र आदि का लगना ही इसका मुख्य कारण है । E.Coli तथा Staphylococcus इसके प्रमुख संक्रमित करने वाले जीवाणु हैं । Umbilical catheterisation तथा Exchange transfusion के बाद भी प्रायः Sepsis हो जाता है । इसके कारण निम्नाङ्कित अवस्थाएँ पैदा हो सकती हैं—

(1) नाभिनाल सन्धिस्थल से स्थानीय संक्रमण के कारण पूय का निकलना ।
(2) नाभि-विद्रधि ।
(3) नाभिपरिधि पर विद्रधि (Periumbilical cellulitis) ।

Scanned with CamScanner

(4) Umbilical gangrene
(5) सार्वदैहिक संक्रमण (Septicemia)
(6) Neonatal tetanus
(7) Umbilical granuloma
(8) Umbilical hernia

यदि नाभिपाक की उचित चिकित्सा न हो, अपूर्ण चिकित्सा हो तो स्थानीय संक्रमण का परिणाम स्थानीय गुलाबी, गोलाकार बेरी की तरह के उभार के रूप में granulation tissue के साथ दीखता है यह अवस्था Umbilical granuloma की है। इससे सप्ताह या महीनों तक धीरे-धीरे स्राव निकलता रहता है।

सुरक्षा एवं चिकित्सा—नाभिनाल काटते समय सर्वप्रथम शस्त्र की स्वच्छता बाद में स्थानीय स्वच्छता, कटे स्थान पर संक्रमणरोधी द्रव्यों का प्रयोग (Triple-Dye या Gentian violet), नाभिनाल सूखकर गिरने तक सुरक्षा रखकर उपद्रव से बचाया जा सकता है। संक्रमण हो जाने पर अवस्थानुसार व्यवस्था करें।

(1) हल्का संक्रमण स्थानीय संक्रमणरोधी औषधि यथा उपरोक्त औषधियाँ अथवा Antibiotic Power (जिसमें Neomycin[Bacitracin एवं Polymyxin हो) का प्रयोग स्थान को स्प्रिट या अलकोहल से साफ कर करना चाहिए।

(2) सार्वदैहिक संक्रमण या Periumbilical cellulitis की सम्भावना पर उचित Antibiotic का सूचीवेध से प्रयोग करें।

(3) Umbilical granuloma की अवस्था में लेखन (Cauterization) Silver nitrate या Copper sulphate crystal का स्पर्श कराके करना चाहिए।

सार्वदैहिक संक्रमण
(Septicemia)

नवजात शिशुओं की प्रमुख समस्या है यदि शीघ्र ही निदान व चिकित्सा न की जाय तो बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

कारण—नाभिपाक के अतिरिक्त रोगिणी माता में प्रसव के समय बहुत पहले से ही जरायु का फटा होना, प्रसव में यन्त्रों का प्रयोग, Frank amnionitis, कृत्रिम श्वसन विधि का प्रयोग एवं कैथेटर आदि का प्रयोग भी है। सामान्यत: E. Coli, Pseudomonas aeruginosa, Staphylococcus aureus and albus जीवाणु कारण होते हैं। निम्नलिखित अवस्थाओं में सार्वदैहिक संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है।

(क) माता - गर्भिणी को ज्वर आता हो।
- प्रसव के समय से 24 घण्टे पूर्व जरायु फट गया हो।
- प्रसव यन्त्र से कराया गया हो।
- योनि संक्रमण एवं बार-बार योनि परीक्षण प्रसवकाल में किया जाय।

Scanned with CamScanner

(ख) शिशु - अल्प भार शिशु, समयपूर्व प्रसवित शिशु, नवजात शिशु श्वासावरोध।

(ग) चिकित्सा विषयक - Intubation,
- Exchange transfusion
- Ventilation
- नाभिनाल में Catheterization

लक्षण—स्तन्य विद्वेष, शरीर भार में वृद्धि का न होना अथवा कम होना, तन्द्रा, आलस्य, चिड़चिड़ापन, पेशीशैथिल्य, आक्षेप, ज्वर या शरीर का ताप, कम होना सामान्य लक्षण है। संक्रमण की तीव्रता बढ़ने पर आध्मान, छर्दि, मलभेद, अनियमित श्वसन, शरीर का नीला पड़ना जैसे लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। तत्पश्चात् कामला, रक्तपित्त, प्लीहावृद्धि, तीव्र श्वसन, रक्तचाप में कमी, त्वचा पर पूययुक्त दाने (Sclerema), CCF, आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं।

स्थानीय संक्रमण—अभिष्यन्दि, त्वचा संक्रमण, नाभिनाल पाक।

मस्तिष्कगत संक्रमण—अग्र तालुरन्ध्र का उभार (Meningitis), तथा

शरीर के विभिन्न भाग से रक्तस्राव।

प्रारम्भ में व्याधि का निदान लक्षणों के आधार पर करना पड़ता है। ततपश्चात् पैथोलोजिकल परीक्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, यथा—

(1) श्वेत रक्तकोणिका >20000/cu mm. अथवा <5000/cu mm. तथा Neutropenia <1000/cu mm.

(2) I/T अनुपात में वृद्धि

$$\frac{\text{अपरिपक्व कोशिका (Immature cells)}}{\text{Total Polymorphonuclear Cell Count}} = >0.2$$

(3) ESR में वृद्धि >15 mm. प्रथम घण्टे पर

(4) CRP धनात्मक

इन सामान्य परीक्षणों के साथ-साथ आवश्यकतानुसार Gram staining, आमाशयिक स्राव में जीवाणु परीक्षण, रक्त कल्चर, मूत्र कल्चर, सुषुम्ना नाड़ी द्रव परीक्षण, X-ray एवं रक्तस्थापन परीक्षण (यथा B.T., P.T., C.T., Fibrinogen Level, Platelet count) भी आवश्यकतानुसार करा सकते हैं।

चिकित्सा—जैसे ही व्याधि का लाक्षणिक निदान हो जाय तो रक्तादि परीक्षण भेजकर चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

चिकित्सा सिद्धान्त

1. तापक्रम नियन्त्रण
2. पोषणार्थ द्रव एवं खनिज तत्त्व मात्रा का नियमन
3. प्राणवायु संचालन (Ventilation)
4. Acidosis का नियन्त्रण
5. उचित Antibiotic का प्रयोग

(1) **एण्टीबायोटिक**—कल्चर की रिपोर्ट के आधार पर देना उचित रहता है। परन्तु उसकी अनुपस्थिति में निम्नाङ्कित Antibiotic दिया जा सकता है। अभी तक उपलब्ध एण्टीबायोटिक में Gentamycin/Amikacin, अधिकांश जीवाणुओं पर प्रभावी हैं, अत: इनका प्रयोग कर सकते हैं। Anaerobes में Metronidazole का प्रयोग कर सकते हैं।

(2) **लाक्षणिक चिकित्सा**—10% ग्लूकोज शरीर-भार के अनुसार सिरा मार्ग से देना प्रारम्भ कर दें। यह उचित पोषक के साथ-साथ Antibiotic देने का मार्ग भी प्रदान करेगा। मूर्च्छा एवं रक्ताल्पता की अवस्था में सिरागत रक्त दिया जाना चाहिए। Meningitis, त्वक् विकारादि अवस्था में Hydrocortisone भी देना चाहिए।

उपद्रव—

Shock (मूर्च्छा)।
Sclerema (त्वक्-विकार)।
Necrotizing enterocolitis (आन्त्रगत उपद्रव)।
Meningitis (मस्तिष्कशोथ)।
Pneumonia (श्वसनक-ज्वर)।
pyelonephritis (वृक्क-विकार)।

नवजात का हनुस्तम्भ
(Tetanus Neonatorum)

नवजात शिशुओं में होने वाला हनुस्तम्भ शुद्धतम प्राय: अस्वच्छ तरीके से नाभि-नाल कर्तन के कारण अथवा ग्रामीण अञ्चल में कटे नाभिनाल पर गाय का गोबर लगाने के कारण (मिथ्या-विश्वास) ही होता है। आज-कल गर्भवती माता को टिटनेसरोधी टीका (Tetanus toxoid) दिये जाने के कारण यह व्याधि बहुत ही कम दिखायी पड़ती है।

लक्षण—नवजातीय हनुस्तम्भ जीवन के प्रारम्भ के 2 दिनों में तथा 15 दिन के पश्चात् नहीं दिखायी पड़ता। प्रारम्भिक लक्षणों में अकारण अत्यधिक रोदन, स्तन्य-विद्वेष तथा उदासीनता दिखायी पड़ती है। ग्रीवामांसपेशी के सङ्कोच (Spasm) के कारण शिशु का मुँह हल्का खुला रहता है। Pharyngeal पेशियों के Reflex spasm के कारण

Scanned with CamScanner

निगलने में कठिनाई होती है। शाखाओं में Spasm होने के बाद हनुस्तम्भ (Lock-jaw) की अवस्था आती है। बच्चे की सामान्य लेटने की अवस्था (flexed Posture) दण्डापतानक (Generalised rigidity) तथा धनुषाकृति (opisthotonus) में बदल जाती है। Spasm स्पर्श, आवाज एवं तेज रोशनी से बढ़ जाते हैं। श्वसन में कठिनाई (Apnea) तथा नीलिमा (Cyanosis) होने लगती है। ज्वर भी रहने लगता है। नाभिनाल स्थल पर कुछ बच्चों में पाक दिखायी पड़ने के अतिरिक्त कोई लक्षण नहीं होता।

चिकित्सा-व्यवस्था—

(1) सुरक्षा की दृष्टि से गर्भवती माता को टिटनेसरोधी टीका (देखिये लेहाध्याय) लगवाना आवश्यक है।

(2) सामान्य व्यवस्था—बच्चे को शान्त एकान्त कक्ष में रखें, कम-से-कम स्पर्श करें। मांसगत सूचीवेध न करें। तापक्रम पर सावधानीपूर्वक ध्यान दें। मुख से होने वाला स्राव साफ करते रहें।

(3) आहार—आहार-व्यवस्था 3-4 दिन के लिए मुख से बन्द कर दें। शिरागत मार्ग से पूर्ण मात्रा में जल, आवश्यक कैलोरी तथा खनिज लवण एवं आवश्यक औषधियाँ दी जानी चाहिए। अत: सिरामार्ग Cut-open विधि द्वारा स्थायी बना लेना चाहिए। 3-4 दिन बाद नाक से आमाशय में नलिका डालकर दूध देना चाहिए।

(4) Antitoxin serum का प्रयोग परिभ्रमण में रहे विष (toxin) को समाप्त करने के लिए करते हैं। एतदर्थ AntiTetanus Serum 1500 यूनिट की एक मात्रा काफी है।

(5) शान्तिकारक (Sedative) औषधियाँ यथा—Chloropromazine 5 से 10 मि.ग्रा., Phenobarbitone 5 से 10 मि.ग्रा., Paraldehyde, Thiopentone, Diazepam—इसमें प्रथम दो औषधियाँ 6-6 घण्टे के अन्तर पर सिरागत दी जानी चाहिए। इनका क्रमिक अन्तर 3-3 घण्टे का होना उचित है। इनसे लाभ न होने पर अन्य औषधियाँ प्रयोग में लायी जा सकती हैं।

(6) मांसपेशीशैथिल्यता के लिए—Methocarbamal 50 से 75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार/दिन, सिरागत 2 बराबर मात्रा में बाँट कर अथवा Mephenesine—30 से 120 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार/मात्रा/घण्टे पर मुख द्वारा दी जानी चाहिए।

(7) संक्रमणरोधी द्रव्य—आवश्यकतानुसार Penicillin, Gentamycin या Kanamycin का प्रयोग करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(8) शल्यकर्म—जब शिशु पर बार-बार गले में सङ्कोच, श्वसन में कठिनाई, नीलिमा या Central respiratory Failure का प्रभाव होने लगे तो Tracheostomy करते हैं ।

उत्तुण्डिता
(Umbilical Hernia)

किसी अङ्ग या अङ्ग के एक भाग का अपने निकटतम रचना के किसी छिद्र से असामान्य अवस्था में बाहर निकल जाना Hernia है ।[1] यहाँ नाभि शब्द लगा हुआ है । अर्थात् नाभि से उदर के किसी अङ्ग या अपाङ्ग का निकल आना ।

सामान्य रूप से नाभिमण्डल (Umbilical ring) स्वयं सिकुड़ती है तथा उसे बन्द करने में सहायक उसके निकटतम स्नायु Lateral umbilical ligament, Round ligament, uraches तथा Richet's umbilical fascia होते हैं । नाभिपाक, शोथ या काटने के समय की असावधानी के अतिरिक्त पूर्ण विकास का होना, ठीक से लगाव (Attachment) का न होना, स्नायु की क्षीणता भी उत्तुण्डिता के कारण होते हैं । यह व्याधि नाभिनाल के कटे भाग से सुखाकर अलग होने के बाद 1 से 2 दिन से लेकर 1 या 2 सप्ताह के बाद प्रकट होती हैं । यह सम्भव है कि सभी सहज उत्तुण्डिता धीरे-धीरे स्वयं ही नाभिछिद्र के बन्द हो जाने पर समाप्त हो जायें । समयानुसार धीरे-धीरे छिद्र का बन्द होना नाभि के व्यास से सम्बन्ध रखता है । 5 से.मी. व्यास वाला नाभिछिद्र 3 माह की वय तक में बन्द हो जाता है । बड़े व्यास वाले छिद्र को बन्द होने में अधिक समय लगता है ।

Exomphalos—यह भी नाभिनाल Hernia का एक भेद है, जो विकास में होने वाली विकृति का परिणाम है । एक पतली झिल्ली से ढके उदर के अङ्ग का नाभि-छिद्र से निकलना ही इसका लक्षण है । जब यह विकृति छोटी होती है तो शल्यक्रिया द्वारा सरल साध्य होती है ।

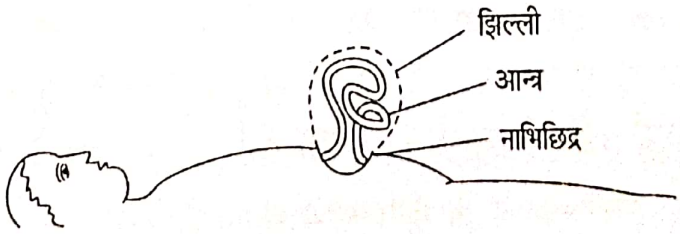

चित्र सं. 29 : एक्जोमफेलस (Exomphalos)

चिकित्सा—यदि नाभिनाल कर्तन से पूर्व शस्त्रों की उचित स्वच्छता रखी जाय तथा स्थानीय स्वच्छता पर ध्यान दिया जाय तो बचाव हो सकता है ।

1. The abnormal protrusion of an organ or part of an organ through an aperture in the surrounding structures.

Scanned with CamScanner

आयुर्वेद में चिकित्सार्थ उपनाह कर्म का विधान मिलता जिसमें चमड़े की पट्टिका का बन्धन विधान होता है (च.सू. 14:37)। आजकल इसी प्रकार Umbilical belt या Adhesive strapping का वर्णन मिलता है।

Adhesive Strapping—नीचे दिये गये चित्र के अनुसार चिपकने वाले ल्यूकोप्लास्ट से नाभि के फूले भाग को कड़ी वस्तु से दबाकर चिपका देते हैं। परन्तु आजकल इस विधि का प्रयोग नहीं किया जा रहा है, क्योंकि Leucoplast में चिपके त्वचा के खिंचने से फटने का भय रहता है तथा कड़े बन्धन के कारण श्वासावरोध और मृत्यु भी सम्भव है।

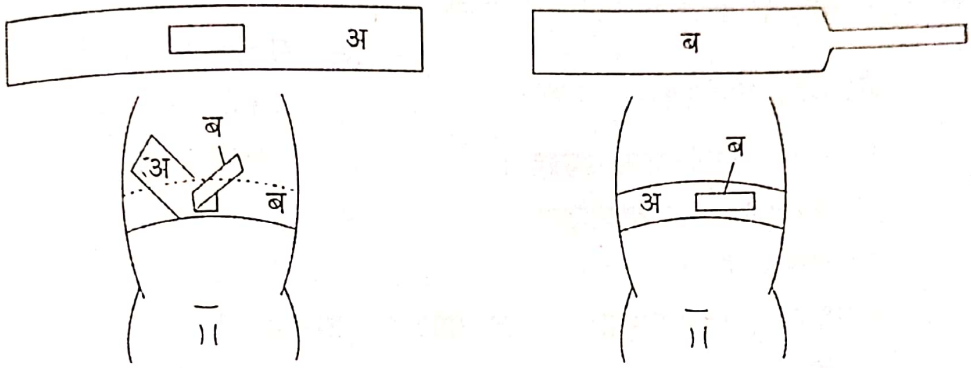

चित्र सं. 30 : उपनाह कर्म (Adhesive strapping)

शल्य कर्म—Hernia में उदरस्थ अङ्गों के आने पर सम्भावित उपद्रवों से रक्षार्थ ही शल्यकर्म आवश्यक है। यदि उपद्रव की सम्भावना कम हो तथा छिद्र के स्वयं धीरे-धीरे बन्द हो जाने की सम्भावना हो तो शल्यकर्म 2 वर्ष की वय के पूर्व नहीं करते हैं। शल्यकर्म में प्रयोग आने वाली विधि Maye's operation कहलाती है। इसमें सर्वप्रथम शिशु को पूर्ण निश्चेतन कर नाभि के एक ओर अर्धचन्द्राकार छेदन करके त्वचा के उस टुकड़े को एक ओर हटा देते हैं। अब झिल्लीकोष (Sac) को अन्य निकटस्थ मांसपेशी आदि रचना से अलगकर तथा कोष में उपस्थित अङ्गों को उदर में वापस कर कोष को बाँध कर काट देते हैं। बाँधा भाग उदर में चला जाता है तथा रिक्त स्थान को Purse-string suture (प्राचीन काल के बटुए के समान, जिसमें तागा खींचने पर बटुआ बन्द हो जाता है) द्वारा सीवन कर देते हैं और त्वचा को भी अपने स्थान पर करके सीवन कर पट्टी बाँध देते हैं।

आक्षेपक
(Convulsions)

आक्षेपक व्याधि नहीं लक्षण मात्र है। जिसका तात्पर्य है कि शरीर के अङ्ग-विशेष या समस्त शरीर में सङ्कोच, जैसे झटकों की बार-बार अनुभूति। चरकसंहिता में स्पष्ट उल्लेख है—

Scanned with CamScanner

'मुहुराक्षिपति क्रुद्धो गात्राण्याक्षेपकोऽनिलः ।
पाणिपादं च संशोष्य सिराः सस्नायुकण्डराः' ॥ (च.चि. 28:50)

जब प्रकुपित वायु हाथ, पैर, सिरा, स्नायु एवं कण्डराओं को सुखाकर बार-बार अङ्गों को आक्षिप्त करता है तो उसे आक्षेपक कहते हैं ।

सुश्रुत ने आक्षेपक का कारण वात का समस्त धमनियों में प्रवेश माना है[1] । चरक ने 80 प्रकार के वात के नानात्मज व्याधियों में इसका उल्लेख किया है ।

जैसा कि पूर्व में कह चुके हैं कि आक्षेपक एक पूर्ण व्याधि नहीं वरन् एक लक्षण है । अतः आयुर्वेद में भी विभिन्न व्याधियों में लक्षण के रूप में उल्लेख है । यहाँ पर शैशवीय व्याधियों का उल्लेख किया जा रहा है ।

शैशवीय आक्षेपक के कारण

1. नाभिनालकर्तनजन्य उपद्रव ।
2. अपतानक (कर्णवेधनजन्य) ।
3. उल्बक रोग ।
4. पितृग्रह, स्कन्दापस्मार, मेषग्रह आदि बालग्रहों में ।
5. ज्वर ।
6. उदरकृमि ।
7. बालापस्मार ।

वय को दृष्टिगत रखते हुए शैशवीय आक्षेपक के आधुनिक दृष्टिकोण से वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है ।

(अ) जीवन के प्रथम माह (Neonatal Period)

प्रथम, द्वितीय दिन—जन्म के समय की समस्याएँ; यथा—शिरोआघात, श्वासावरोध (Asphyxia), आक्सीजन की अल्पता, मस्तिष्कगत (Intracranial) रक्तस्राव, मादक द्रव्य (Narcotic) को एकाएक बन्द करना, जीवतिक्तिय बी6 (Pyridoxin) की कमी एवं Phenylketonuria आदि ।

तीसरे दिन—रक्तशर्करा की कमी (Hypoglycemia) ।

शेष दिन—संक्रमण यथा—मस्तिष्कावरण शोथ, सार्वदैहिक संक्रमण, Septicemia, कैल्शियम या मैग्नीशियम की कमी, सोडियम की कमी या आधिक्य, तीव्र स्वरूप का कामला (Kernicterus), हनुस्तम्भ, गर्भाशयगत संक्रमण तथा जन्मजात विकृतियाँ; यथा Arteriovenous fistula आदि ।

---

1. यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ।
तदाक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ।
मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ (सु.नि. 1:50-51)

Scanned with CamScanner

(ब) बाल्यकाल का पूर्वार्ध (1 से 6 माह—Infant period),

1. संक्रमणजन्य— मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis),
encephalitis,
विषम ज्वर (enteric fever),
cerebral malaria.
2. चयापचय-विकार—रक्तशर्करा अल्पता,
रक्त में कैल्शियम, मैग्नीशियम की कमी,
रक्त में सोडियम का आधिक्य ।
जन्मजात विकार यथा Glycogen storage disease
3. आघात—गिरने से शिर में आघात यथा chronic Subdural injury
4. जन्मजात विकृतियाँ—Arteriovenous fistula आदि ।
5. औषधि-- Phenothiazine,
कुचला,
Piperazine,
D.P.T. का टीका ।
6. अन्य— मस्तिष्कअर्बुद,
मस्तिष्कयक्ष्मा,
उच्च रक्तचाप आदि ।

(स) 6 माह से 3 वर्ष तक—उपरोक्त समस्त ब वर्ग के कारण तथा ज्वरजन्य आक्षेप ।

(द) 3 वर्ष से 6 वर्ष तक—उपरोक्त ब वर्ग के समस्त कारण एवं बालापस्मार (Epilepsy) ।

आक्षेपक का निदान—शिशु का विस्तृत इतिवृत्त, शारीरिक परीक्षण बहुत कुछ निदान उपरोक्त आधार पर कर देता है । आक्षेपक के तुरन्त बाद नेत्र-परीक्षण (Fundoscopy) एवं Lumbar puncture करना चाहिए । सीरम एल्क्ट्रोलाइट, रक्तशर्करा, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि का परीक्षण कराना चाहिए । शिर का X-ray, USG, CAT Scan अर्बुद आदि के लिए सहायक होता है । E.E.G. बालापस्मार के निदान में सहायक होता है ।

चिकित्सा—

1. निदानपरिवर्जन ।
2. रोगी को आराम देना चाहिए ।
3. औषधि के लिए आयुर्वेद ग्रन्थों में बृहद् वातचिंतामणि, वातकुलान्तक रस, पञ्चगव्य घृत, चैतसघृत, अष्टमङ्गल घृत तथा सारस्वतारिष्ट का प्रयोग बताया गया है ।

Scanned with CamScanner

नवजात शिशु आक्षेप/शैशवीय आक्षेप एक आत्ययिक अवस्था है। अतः कारण जानने के यत्न में समय नष्ट न करते हुए सर्वप्रथम आक्षेप को रोकने एवं शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों एवं कार्यों को सुरक्षित करने का उपाय करना चाहिए।

(1) प्राणवह स्रोतस् नियमित संचालन की व्यवस्था—सर्वप्रथम श्वसन तन्त्र मार्ग की देखरेख करें। आवश्यकतानुरूप Endotracheal tube डाल कर मार्ग को चूषणयन्त्र से साफ करें तथा प्राणवायु (O_2) देवें। प्राणवायु देने हेतु मास्क का प्रयोग करें। रुग्ण को पार्श्व स्थिति में लिटाये, जिससे मुख में होनेवाला स्राव श्वसननलिका में न जाने पाये।

(2) औषधि—औषधि देने से पूर्व रक्त के नमूने का संग्रह कर निदानार्थ भेजें।

रक्तशर्करा की अल्पता में—25% Dextrose 2 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार तीव्र गति से शिरा मार्ग से देते हैं।

Diazepam 0.2 से 0.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार/मांसगत या शिरागत आक्षेप के समय देना चाहिए। 10 से 20 मिनट बाद आवश्यकतानुरूप इसकी आधी मात्रा दी जा सकती है। इसका प्रभाव शरीर में 3 से 4 घण्टे रहता है। इसके बाद Phenobarbitone 3 से 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार से/दिन की मात्रा में दुबारा आक्षेप से रक्षा हेतु प्रयोग करते हैं। Diazepam के अभाव में अथवा आक्षेप बने रहने की स्थिति में Phenobarbitol, Phenytoin, Paraldehyde या Chloralhydrate का सूचीवेध दे सकते हैं। Phenytoin 1 मिग्रा/किग्रा/मिनट शिरामार्ग से देते हैं। Diazepam 0.04 mg/ml नार्मल सैलाइन या रिंगर लैक्टेट में मिलाकर 2-3 मि.ग्रा./घण्टे की दर से देने से लाभ हो जाता है।

उपरोक्त अवस्था में भी लाभ न होने पर संज्ञाहरण विशेषज्ञ को विशेष परिचर्या हेतु बुलायें। G.A. अथवा Amobarbital sodium G.A. एक विशेष उपाय है। Sodium valporate सीरप (50 मि.ग्रा./मि.ली.) साधारण जल में 1:1 के अनुपात में मिलाकर 20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार से बस्ति देना भी एक लाभकर उपाय है।

स्तनशोथ एवं योनि से रक्तस्राव

जन्म के समय बच्चे के स्तन की ग्रन्थि 5 मि.मी. व्यास की होती है। इससे कम होने पर समय पूर्व प्रसव वाले शिशु की सम्भावना रहती है। कभी-कभी तीसरे या चौथे दिन दोनों ही लिङ्ग के शिशुओं में स्तनशोथ (Mastitis neonatorum) हो जाया करता है। जो धीरे-धीरे कुछ दिनों या सप्ताह में स्वयं ही ठीक भी हो जाता है। यह स्तनशोथ प्रसव पूर्व के मातृज लिङ्गरस के शिशुओं में आ जाने के कारण होता है।

चिकित्सा की दृष्टि से चूचुक की सफाई मात्र कर देना चाहिए। उसको दबाना, मलना या उष्णोपचार नहीं करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

इसी कारण से कभी-कभी कन्याओं में जन्म के तीसरे से पाँचवें दिन योनि से रक्तस्राव होने लगता है । जो 2-4 दिन चलता है । इसमें भी किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, मात्र स्थानीय स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए ।

विस्फोट

'अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वराः पित्तरक्तजः ।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति' ।। (सु.नि. 13:18)

रक्त तथा पित्त के प्रकोप से शरीर के किसी एक प्रदेश पर या सम्पूर्ण शरीर पर अग्नि के जलने जैसे स्फोट (फफोले) उत्पन्न हो जाय तथा ज्वर भी हो तब उन्हें विस्फोट कहते हैं ।

माधव ने इनके कारणों की भी गणना की हैं; यथा कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, रूक्ष एवं क्षार का सेवन अजीर्ण अध्यशन एवं धूप से, ऋतु के दोष से अथवा ऋतु के विपरीत स्वभाव से दोष प्रकुपित होकर, त्वचा में आश्रित होकर रक्त, मांस एवं अस्थियों को दूषित करके ज्वर के साथ विविध भयङ्कर विस्फोटों को उत्पन्न करते हैं ।[1] माधव ने रक्तपित्तज, वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, सन्निपातज एवं रक्तज विस्फोट के रूप में 9 प्रकार के विस्फोट का वर्णन किया है ।

उपरोक्त कारण नवजात शिशु में दो प्रकार से प्रभावी हो सकते हैं—

1. माता के द्वारा उनका सेवन तथा स्तन्य द्वारा शिशु पर प्रभाव ।
2. शिशु पर धूप का एवं ऋतु विपरीत स्वभाव का प्रभाव ।

विस्फोट का वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थों में क्षुद्ररोगों के अन्तर्गत किया गया है । यह स्वतन्त्र व्याधि भी हो सकती है तथा किसी रोग का लक्षण भी; यथा शकुनी बालग्रह (सु.उ. 3:15), विसर्प (का.खिलस्थान 14) आदि । परन्तु नवजात शिशु के प्रकरण में कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । आज हम इसे विभिन्न अवस्थाओं में देखते हैं; यथा—

- Pemphigus Neonatorum (नवजात विस्फोट) ।
- Congenital Syphilis (जन्मजात फिरङ्ग) ।
- औषधिजन्य विस्फोट; यथा पारद, संखिया, अहिफेन के योग, पेन्सलीन आदि ।
- Septicaemia (सार्वदैहिक संक्रमण) आदि ।

---

1. कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहीरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तूदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ।।
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ।
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ।। (मा.नि. 53:1-2)

Scanned with CamScanner

नवजात पेम्फीगस
(Pemphigus Neonatorum)

अत्यन्त संक्रामक यह व्याधि Staphylococcus नामक जीवाणु के कारण होती है । शरीर के विभिन्न भागों में बड़े-बड़े फफोले निकल आते हैं । विशेष रूप से जहाँ त्वचा मुड़ी रहती है एवं स्वेद के कारण गीली रहती है । फफोलों मे श्वेत वर्ण का या वर्णहीन पतला स्राव रहता है ।

चिकित्सा—चिकित्सा सिद्धान्त के रूप में रक्त एवं पित्त शामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए ।[1] माँ की शोधन चिकित्सा करें ।

(1) क्वाथ—पटोलपत्र, अमृता, भूनिम्ब, वासा, निम्बत्वक्, पर्पट, खदिर एवं मोथा क्वाथ अथवा—

निम्बत्वक् एवं खदिर समभाग के क्वाथ में मधु का प्रक्षेप देखकर या गुडूची एवं इन्द्रयव समभाग के क्वाथ में मधु का प्रक्षेप देकर क्वाथ का पान करना चाहिए ।

(2) घृत—पटोलपत्र, छितवनत्वक्, निम्बत्क्, वसा, त्रिफला एवं गुडूची समभाग लेकर उससे चौगुना गोघृत लेकर घृतपाक करें । यह घृत विस्फोट, विसर्प एवं कण्डु नाशक है ।

पद्मक घृत—(यो.र. विस्फोटचि.पृ. 255) का स्थानीय लेप हेतु प्रयोग करते हैं।

(3) लेप—लाल चन्दन, नागकेसरत्वक्, चमेलीपत्र को चौराई के स्वरस में पीसकर स्थानीय लेप करना चाहिए ।

(4) संक्रमणरोधी औषधि (Antibiotic) का सार्वदैहिक एवं स्थानीय प्रयोग कराना चाहिए ।

राजिका

'घर्मस्वेदपरीतेऽङ्गे पिटिकाः सरुजो घनाः ।
राजिकावर्णसंस्थानप्रमाणा राजिकाह्वयाः' ।। (अ.ह.उ. 31:12)

गरमी (धूप) एवं स्वेद से भरे शरीर में वेदनायुक्त, घन तथा राई के वर्ण एवं आकार के समान जो पिटिकाएँ होती हैं उनको राजिका कहते हैं । लोकभाषा में इसे घमौरी

---

1. पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः ।
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तये ।।
निम्बत्वक् खदिरः सारो गुडूचीशक्रजोऽथ वा ।
क्वाथो माक्षिकसंयुक्तो विस्फोटादिज्वरापहः ।।
पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम् ।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्यात् त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ।।
चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकवारिणा ।
शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनः ।। (यो.र.विस्फोटचि., पृ. 254-55)

Scanned with CamScanner

या अम्हौरी कहते हैं। आंग्ल भाषा में इसे Prickly heat या Miliaria rubra कहते हैं। प्राय: ग्रीष्म एवं वर्षाऋतु में वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाने पर त्वचा में असंख्य महीन-महीन दाने हो जाते हैं। इसमें असह्य कण्डु होती है। इन दानों में हल्का पीले रंग का स्राव भर जाता है। कण्डू से यह फटते हैं। कुछ समय बाद दाने सूख जाते हैं तथा महीन पपड़ियाँ झड़ती हैं। जब दाने पहले हाथ पर फिर छाती पर निकलते हैं एवं सूखी त्वक्स्थली पर निकलते हैं, इनके पास की त्वचा में लालिमा एवं इसमें कण्डु नहीं होता तो इसे Miliaria कहते हैं। यह दाने ठण्डी ऋतु आने पर स्वयं शान्त हो जाते हैं।

चिकित्सा—अष्टांगहृदयकार ने पैत्तिक विसर्प के समान चिकित्सा करने को कहा है (अ.हृ.चि. 32:5)। जिसमें न्यग्रोधादि गण से या पद्मोत्पलादि गण से लेप करना कहा गया है। (अ.हृ.चि. 18:12) स्थानीय शीतकारक चिकित्सा ही सिद्धान्त है। शरीर की स्वच्छता, महीन वस्त्र का धारण एवं कैलामिन घोल का स्थानीय प्रयोग एवं पाउडर का प्रयोग करना चाहिए।

परिदग्ध छवि

'परिदग्धछवि दिह्यान्मूर्वातिलोत्पलैः।
शमीपत्रशिरीषत्वक्शारिवामधुकामयैः'॥ (अ.सं.उ. 2:94)

परिदग्ध छवि में मूर्वा, तिल, उत्पल, शमीपत्र, शिरीषत्वक्, सारिवा, यष्टीमधु एवं उशीर का लेप करना चाहिए।

परिदग्ध छवि के लिए यही उद्धरण उपलब्ध होता है। टीकाकार इन्दू ने 'यस्य बालस्य त्वक् परिदग्धा पित्तादिवशात् भवति' कहकर पित्त आदि के कारण शिशु के त्वचा पर परिदग्ध लक्षण कहकर मौन ले लिया है। परिदग्ध शब्द में परि उपसर्ग है जिसका अर्थ है पूर्णता या अतिशय अर्थात् अत्यधिक जला हुआ जैसा होना। त्वचा पर अतिशय जलने के बाद जैसा निशान बनना कुछ लोग इसे नवजात शिशु के शरीर पर पाये जाने वाले निशान के समकक्ष रखते हैं। परन्तु संहिताओं में इसके लिए 'जतूमणि' नाम क क्षुद्रोग वर्णित है। त्वचा के रंग में परिवर्तन Pellagra, Acromegaly, Cushing's disease, Addison's disease, Lichen spinulosus आदि बहुत-सी व्याधियों में होता है।

अतिरोदन

नवजात शिशु अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में प्राय: सोते हैं तथा रात में जागते हैं, क्रीड़ा करते हैं। सम्भवत: यह आचरण अपने गर्भकाल के आचरण के समान ही करते हैं। शिशु रोता तभी है जब भूखा होता है या कोई परेशानी होती है। भूख के अतिरिक्त मूत्र त्याग के पूर्व मूत्राशय के पूर्ण भरे होने का अनुभव, कड़ा मलत्याग अथवा मल-

Scanned with CamScanner

मूत्र से भीगा वस्त्र भी कारण होता है। यदि उपर्युक्त समस्या के समाधान के बाद भी शिशु रोये तो उदरशूल के कारण रो सकता है। उसके उदर से गुड़-गुड़ाहट के शब्द सुने जा सकते हैं तथा पेट के बल शयन कराने पर रोदन कुछ शान्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त लगातार रोदन, मध्यकर्णशूल या अन्य शूलयुक्त शोथ, मस्तिष्कगत उद्विग्नता, Thyrotoxicosis या किसी औषधि का परिणाम भी हो सकता है। इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य कारण भी हो सकते हैं; यथा—स्तनपायी शिशु को पूरी मात्रा में स्तन्य का न मिलना, माता कम समय स्तनपान कराती हो, बार-बार स्तन बदल देती हो; जो शिशु बोतल से दूध पीते हैं, उनमें दूध का संगठन सही न होना आदि महत्त्वपूर्ण कारण हो सकते हैं।

शिशु के वस्त्र गीले या अधिक शुष्क (कड़े) हों, वस्त्रों का आवश्यकता से अधिक या कम धारण, चुस्त वस्त्र, वस्त्रों के बटन या हुक का चुभना भी कारण हो सकता है।

रक्तस्राव

प्राय: अज्ञात कारण से अथवा सम्भवत: जीवतिक्तीय K की अल्पता से नवजात शिशु में बार-बार रक्तस्राव दूसरे या तीसरे दिन से होने लगता है। यह रक्तस्राव हल्की चोट के बाद, नाभिनाल से, त्वचा या श्लैष्मिक कला से होने लगता है। कभी-कभी अन्त:रक्तस्राव अन्नवह स्रोतस्, केन्द्रीय नाड़ीसंस्थान, मूत्रवह संस्थान या योनि में भी होता है। रक्त-परीक्षण में Prothrombin time की वृद्धि एवं Clotting time की भी वृद्धि या सामान्यता मिलती है।

चिकित्सा—जीवतिक्तीय K 1 से 5 मि.ग्रा. सिरागत सूचीवेध से निदान के तुरन्त बाद देना चाहिए। अथवा सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से प्रसव के बाद तुरन्त जीवतिक्तीय K मांसगत दे देना चाहिए। अथवा प्रसवकाल प्रारम्भ होते ही माता की जीवतिक्तिय K 10 मि.ग्रा. दे देना चाहिए।

शिशु को आवश्यकतानुसार Blood transfusion एवं स्थानीय दबाव युक्त पट्टीबन्धन कर देना चाहिए।

जी-6 पी. डी. अल्पता
(G-6 P. D. Deficiency)

लाल रक्तकण के ऊपर की झिल्ली के रख-रखाव हेतु एक एञ्जाइम Glucose-6-Phosphate-dehydrogenase आवश्यक होता है। यह एक X-linked recessive disease है। इससे बालक पीड़ित होते हैं। कन्याएँ व्याधि की वाहक होती हैं तथा हल्के रूप में व्याधि के लक्षण प्रकट करती हैं। एञ्जाइम की कमी से लाल रक्तकण ग्लूकोज का प्रयोग करने में असमर्थ होते हैं। इससे रक्तकण की झिल्ली प्रभावित होती है तथा रक्तकण नष्ट (Haemolysis) होने लगते हैं। एञ्जाइम की अल्पता के कारण

Scanned with CamScanner

रक्तकण नष्ट होना, फिर कामला की उत्पत्ति । इस प्रक्रिया का प्रारम्भ प्राय: कुछ औषधियों के शिशु या माता के प्रयोग से होता है जो स्तन्य में निकलते हैं; यथा Salfonamide, Antimalarial, Nitrofurans, ज्वरनाशक, शूलनाशक (Aspirin, Phenacetin, Amidopyrine), Chloromphenicol, Gentamycin; Kanamycin और जीवतिक्तीय K आदि ।

जब भी व्याधि का निदान हो जाय, इन औषधियों का प्रयोग न किया जाय । कामला की उत्पत्ति इनके कारण से जन्म के बाद कभी भी हो सकती है । अति तीव्र स्वरूप के कामला होने पर रक्त का Exchange transfusion ही रास्ता बचता है ।

रक्तवर्ग आर-एच फैक्टर की विषमयता

सामान्य रूप से माता एवं गर्भ का रक्त आपस में मिलान नहीं होता है । परन्तु गर्भस्राव, गर्भपात, प्रसवपूर्व-गर्भस्राव एवं कुक्षिपाटन आदि जैसी अवस्थाओं में गर्भ-गर्भिणी रक्त मिश्रण होने की सम्भावना बढ़ जाती है । Rh +ve गर्भस्थ शिशु लालरक्त कोशिका गर्भिणी के रक्त में पहुँच जाती है । अपना सम्पूर्ण जीवन माता के रक्त में संवहन करती है । अपना जीवनकाल पूर्ण होने पर गर्भस्थ शिशु की माता में गये RBC, R.E. ऊतकों द्वारा विखण्डित होते हैं तथा Antigen बनते हैं । इस प्रक्रिया में लम्बा समय लगता है । Antibodies का बनना Rh antigen की मात्रा पर भी निर्भर करता है । एक बार Antibodies के बनने पर वह नष्ट नहीं होते । यह Antibodies दो तरह के होते हैं—

(1) Saline Agglutinin (IgM)—यह सर्वप्रथम गर्भिणी के रक्त में उत्पन्न होते हैं । यह Antibodies आकार में बड़े होते हैं तथा अपरा को पार नहीं कर पाते । अत: गर्भस्थ शिशु को कोई हानि नहीं पहुँचाते ।

(2) Albumin Agglutinin (IgG)—इन्हें अपूर्ण या अवरोधक (Incomplete या blocking) Antibodies कहते हैं । यह आकार में छोटे होते हैं । अत: अपरा के माध्यम से गर्भस्थ शिशु में पहुँच जाते हैं तथा गर्भ को हानि पहुँचाते हैं । IgG के द्वारा गर्भस्थ शिशु कि लाल रक्तकणिकाओं को हानि पहुँचाने की तीव्रता पर Haemolytic व्याधियाँ होती हैं ।

इस व्याधि का दुष्परिणाम प्राय: निम्न तीन रूपों में दिखायी पड़ता है—

(अ) Hydrops fetalis—यह व्याधि का तीव्रतम घातक स्वरूप है । गर्भ के RBC के तीव्र विखण्डन के कारण तीव्र पाण्डु एवं O_2 की कमी होती है । जिससे गर्भ के हृदय, मस्तिष्क एवं अपरा पर प्रभाव पड़ता है । अपरा के आकार में वृद्धि होती है क्योंकि वह गर्भ को O_2 पहुँचाने का प्रयास करती है । परन्तु RBC विखण्डन के कारण O_2 की कमी बनी रहती है जिससे यकृत को हानि पहुँचती है । इस कारण प्रोभूजन की अल्पता होती है । गर्भ में शोफ (Oedema) हो जाता है । यही अवस्था Hydrops

Scanned with CamScanner

fetalis है । साथ ही जलोदर भी होता है । तीव्र पाण्डु एवं हृदय रोग (CCF) के कारण शिशु की गर्भ में या जन्म के कुछ देर बाद ही मृत्यु हो जाती है । बच्चे में शोथ, यकृत्-प्लीहा की वृद्धि, मृत शिशु, प्रसव में शिशु सड़ा जैसा (Macerated) तथा अपरा में भी वृद्धि एवं शोथ मिलता है ।

व्याधि विनिश्चय—

1. गर्भिणी Rh -ve हो ।
2. रक्त परीक्षण में Rh-Antibodies कि उपस्थिति ।
3. पूर्व इतिवृत
4. Hydramnios की उपस्थिति
5. गर्भिणी उदर एक्स-रे परीक्षण में गर्भ वृद्धि की अवस्था में प्रदर्शित हो । तथा गर्भ-शिर के चारों ओर रिक्त स्थान (Oedematous scalp) के कारण उपस्थित ।
6. अपरा के भार में वृद्धि ।

(ब) Icterus gravis—यदि जन्म के पूर्व लाल-रक्त कणों के क्षय का क्रम कम तीव्र रूप में रहा है तो जन्म के बाद पहले ही दिन तीव्र स्वरूप का कामला हो जाता है । पाण्डु की तीव्रता बढ़ने लगती है तथा यकृत् व प्लीहा की वृद्धि मिलती है । कभी-कभी शरीर की त्वचा या म्यूकस झिल्ली से रक्तस्राव (Purpura) भी होता है । Kernicterus भी मिलता है । अच्छी चिकित्सा-व्यवस्था के कारण बच गये शिशु बहुत से उपद्रवों से युक्त जीवन व्यतीत करते हैं ।

(स) Congenital hemolytic anaemia—यह सबसे कम उग्र स्वरूप की, बहुत ही कम मिलने वाली व्याधि है । जन्म के 1 सप्ताह पर या बाद में पाण्डु, यकृत् तथा प्लीहा वृद्धि मिलती है । कामला नहीं होता है । RBC का विखण्डन प्राय: 6 सप्ताह तक ही होता है । क्योंकि उसके बाद Antibodies उपलब्ध नहीं रहते ।

प्रयोगशालीय परीक्षण तथा निदान—

1. Rh Factor— माता का ऋणात्मक,
   शिशु का धनात्मक[1],
   पिता का धनात्मक ।
2. Direct Coomb's test on infant's red Cell—धनात्मक ।
3. अन्य परीक्षण-परिणाम—Serum bilirubin की वृद्धि, पाण्डु, Reticulocytosis, anti-Rh agglutinins तथा रक्तशर्करा की कमी ।

---

1. माता के Rh negative होने पर शिशु के पैदा होते ही नाभिनाल से रक्त लेकर परीक्षण करवा लेना चाहिए तथा अन्य परीक्षणों हेतु भी यहीं से रक्त तुरन्त संग्रह हो सकता है ।

Scanned with CamScanner

चिकित्सा—

1. माता में Rh antibodies के titer की अतिवृद्धि होने पर 38वें सप्ताह में शिशु का शल्य कर्म आदि से प्रसव अवश्य करा देना चाहिए।

2. जन्म के बाद आवश्यकतानुसार Blood transfusion (O-Rh-negative) करायें। इससे CCF तथा Kernicterus जैसे उपद्रवों से सुरक्षा होती है।

3. उपद्रवों की चिकित्सा—यथा CCF में Digitalis का प्रयोग, मृत्रल औषधि का प्रयोग आदि।

सुरक्षात्मक उपाय—प्रत्येक Rh negative माता को जिसने Rh positive शिशु को जन्म दिया हो, मांसगत Anti-D immunoglobulin (Rholin) का इंजेक्शन 72 घण्टे के अन्दर अवश्य देना चाहिए।

मात्रा का निर्धारण—Anti-D Gamma globulin की मात्रा—

- प्रसव के पश्चात् - 300 µg मांसगत (माता को)
- 20 सप्ताह के पूर्व गर्भपात में - 50 µg
- 20 सप्ताह के पश्चात गर्भपात में - 100 µg

मात्रा का निर्धारण इस पर निर्भर करता है कि गर्भ का कितना रक्त माता में गया है। इसके लिए "Kleihauer Count" तकनीक का प्रयोग करते हैं। माता के रक्त में शिशु रक्त की RBC (Dark, refractile bodies)/50 Low power fields गणना होती है। 20 Fetal RBC की 50 Low power fields में उपस्थिति एक मि.ली. रक्त की उपस्थिति को अंकित करती है।

100 µg Anti-D gamma globulin 5 ml Rh +ve रक्त के लिए पर्याप्त होता है।

ए बी ओ इन्काम्पेटीबिलिटी—

यह व्याधि बहुत ही कम मिलती है। इसमें माता का रक्तवर्ग 'O' तथा गर्भस्थ शिशु का A या B होता है। जो माता में Anti-A अथवा Anti-B Antibodies पैदा करते हैं। शिशु के जन्म के बाद शिशु में कामला, पाण्डु तथा यकृत्-प्लीहा वृद्धि मिलती है। कामला की उत्पत्ति 2 या 3 दिन के बाद होती है।

चिकित्सा—प्राय: किसी भी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ती। कभी-कभी Serum bilirubin के 20 मि.ग्रा. % से भी अधिक बढ़ जाने पर Blood transfusion करना पड़ता है।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 5

नवजात शिशु की विशिष्ट व्याधियां

अल्पभार शिशु (शोष)

आयुर्वेद-संहिताओं में 'गर्भशोष' शीर्षक से जिस व्याधि का बोध स्पष्ट रूप से कराया गया है उसका विवेचन अध्याय 2 में किया जा चुका है। पाठ्यक्रम में नवजात शिशु कामला एवं रक्तपित्त के साथ 'शोष' शब्द देने का तात्पर्य यह है कि पैदा हुआ बालक जन्म के समय सामान्य बालक की अपेक्षा कमजोर एवं शुष्क दिखायी पड़ता है। ऐसी अवस्था का कोई विशिष्ट वर्णन अपने ग्रन्थों में दिखायी नहीं पड़ता, परन्तु कुछ सन्दर्भ अवश्य मिलते हैं। जो अप्रगल्भ शिशु-प्रसव या अकाल प्रसव के रूप में इङ्गित है। हारीत ने दुर्बल बालक के प्रसव को लिखा है।

'अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते।
वातसम्प्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ।।
प्रसूयते वाऽप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृश्यते' ।। (हा.षष्ठ.स्था. 1:24-25)

दोषों के बल के कारण वायु से प्रेरित होकर यदि अपूर्ण दिनों में प्रसव हो जाता है तो दुर्बल बालक का प्रसव देखा जाता है।

आधुनिक काल में इसके लिये विभिन्न शब्दों का प्रयोग तथा मानक निर्धारित किये गये हैं।

अल्पभार शिशु (Low birth weight babies)—विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन 1962 के अनुसार "Babies with a birth weight of 2500 grams or less, irrespective of the period of their gestation, are classified as Low/ birth weight babies." अर्थात् गर्भ धारण काल को महत्त्व न देते हुए 2500 ग्राम या इससे कम भार के शिशु 'अल्पभार शिशु' कहलायेंगे। इसमें समय पूर्व प्रसवित या समय पर प्रसवित दोनों ही प्रकार के शिशुओं की गणना होती है।

अल्पभार शिशु उपरोक्त रूप से परिभाषित होने के बाद भी दो प्रकार के हो सकते हैं; यथा—

(1) समयपूर्व प्रसवित शिशु—अपनी गर्भावस्था वय के अनुसार शिशु का विकास सही होता है।

(2) गर्भावस्था वय के अनुरूप विकास न होना (SGA)—शिशु के जन्म के समय जितनी वृद्धि एवं विकास गर्भावस्थाकाल के अनुरूप होनी चाहिए उससे कम हो (10 परसेण्टाइल से भी कम)

Scanned with CamScanner

समयपूर्व प्रसवित शिशु
(Preterm babies or Immature or Premature or early born babies)

वह शिशु जो गर्भधारण काल में 37 सप्ताह पूर्ण होने से पहले प्रसवित हो जाते हैं, इस वर्ग में आते हैं। वस्तुत: यह शिशु रचनात्मक एवं क्रियात्मक दोनों पक्षों से अपूर्ण होते हैं। अल्पभार शिशु के लगभग $^2/_3$ शिशु इसी वर्ग में आते हैं।

समयपूर्व प्रसव का कारण

(1) स्वाभाविक कारण—माता को जीर्ण स्वरूप के सांस्थानिक रोग, गर्भावस्था में रक्तस्राव (A.P.H.), गर्भविषमयता, गर्भाशयग्रीवा असमर्थता (Cervical incompetence), अपरा से रक्तस्राव (Placenta praevia), यमल गर्भ एवं जन्मजात रचनात्मक विकृति आदि।

(2) कृत्रिम कारण—कुछ ऐसी अवस्थाएँ हैं जब शिशु के जीवन को ध्यान में रखकर समय पूर्व प्रसव करा देना पड़ता है; यथा—माता को मधुमेह, हृदयरोग, अपरा के कार्यक्षमत्व में कमी (गर्भ का ठीक से विकास-दर न होना, ओषजन-अल्पता जन्य लक्षणों की उत्पत्ति), गर्भावस्था में रक्तस्राव एवं रक्तवर्ग की विषमयता आदि।

लक्षण

(1) शारीरिक माप—शरीर भार 2500 ग्राम से कम होना, शरीर की अपेक्षा सिर एवं उदर का अधिक बड़ा होना, शरीर की लम्बाई 44 से.मी. से कम होना एवं सिर का व्यास 33 से.मी. से कम होना।

(2) मुख एवं सिर—सिर के आकार की अपेक्षा मुखाकृति काफी छोटी होती है। सिर के अस्थिसन्धियों के जोड़ काफी खुले रहते हैं एवं तालुरन्ध्र (Fontanelle) भी बड़े होते हैं। छोटा चिबुक, उभरे नेत्र एवं कान में उपास्थि की हीनता मिलती है। बाल ऊनवत् (Wooly) तथा फूले जैसे रहते हैं। Moro reflex, चूसने एवं निगलने की क्षमता कम रहती है या नहीं रहती है।

(3) त्वचा एवं त्वग्गत कलाएँ—त्वचा पतली, चमकदार, अत्यधिक गुलाबी विशिष्ट रोम (lanugo) युक्त एवं अल्प उल्बा युक्त होती है। शोफ भी हो सकता है, त्वग्गत वसा नहीं मिलती, चूचुक गाँठ भी नहीं मिलती तथा पैर के तलवे में गहरी रेखाएँ भी नहीं मिलती।

(4) जननाङ्ग—बालक में वृषण अपने कोष में नहीं मिलते एवं कोष का भी पूरा विकास नहीं हुआ रहता। बालिकाओं में भगोष्ठ (Labia majora) काफी खुले हुए तथा भगांकुर की अतिवृद्धि मिलती है।

(5) विभिन्न संस्थानों का अपूर्ण विकास होने के कारण इन बच्चों में बहुत-से उपद्रव होते हैं; यथा—

Scanned with CamScanner

[i] केन्द्रीय नाड़ीसंस्थान—35 सप्ताह से पूर्व प्रसवित शिशु या 1800 ग्राम से कम भार के शिशु में क्लान्ति, ठीक से न खाँस पाना, चूसने एवं निगलने में सामंजस्य न होना, जन्म के बाद ठीक से श्वसन का न होना एवं श्वसन गति में अनियमिता आदि लक्षण मिलते हैं । इन बच्चों पर ओषोजन की अल्पता का अधिक प्रभाव पड़ता है ।

[ii] श्वसन तन्त्र—श्वसन प्रायः diphragmatic होता है । श्वसन गति तीव्र एवं अनियमित होती है । बार-बार Apnoea की समस्या पैदा हो जाती है । Atelectasis, Hyaline membrane disease का होना सामान्य क्रम है । इसका मुख्य कारण श्वसनतन्त्र में सहायक मांसपेशियों की कमजोरी, फुफ्फुस का विस्तार (Expansion) सही न होना एवं मस्तिष्क में श्वसन केन्द्र का पूर्ण प्रभावी न होना होता है ।

[iii] पाचन तन्त्र—बालक स्वयं दुग्धपान नहीं कर पाता । Sucking तथा Swallowing reflex अनुपस्थित अथवा अल्प होते हैं । आमाशय से मुख में दूध लौटना, aspiration आदि सामान्य समस्या है । Hypotonia के कारण उदर का आध्मान, क्रियात्मक आन्त्रावरोध में कमी सम्भव है । रक्त में Bilirubin का बढ़ना, शरीर में जल-अल्पता, रक्तशर्करा भी कभी भी Glucuronyl transferase system के पूर्ण विकसित न होने के कारण सम्भव है । Vitamin K पर आश्रित रक्त को जमाने वाले कारकों (Factors) के अभाव में विभिन्न स्थानों से रक्तस्राव सम्भव है ।

[iv] शरीर का तापक्रम गिरा रहता है । उसे सम्भालना अति आवश्यक है । अनियमित तापक्रम (Hypothermia) के मुख्य कारण हैं—

- तापक्रम नियन्त्रण केन्द्र का अपरिपक्व होना ।
- BMR का कम होना ।
- अल्प आहार (स्तन्य) सेवन ।
- शरीर से अधिक ताप की हानि का होना (क्योंकि शरीर भार के अनुपात में अधिक Surface area होता है ।)
- त्वचा के नीचे वसा (Subcutaneous fat) का कम होना ।

[v] संक्रमण—शरीर के व्याधिबल-क्षमत्व (Inefficient cellular immunity) की कमी के कारण, IgG antibodies की अल्पता के कारण संक्रमण शीघ्र हो जाता है ।

[vi] मूत्रवह संस्थान—अपूर्ण विकास के कारण Blood urea, Nitrogen की अधिकता एवं रक्त की अम्लता में वृद्धि हो जाती है ।

[vii] औषधि का दुष्परिणाम—यकृत् के पूर्ण विकसित न होने से तथा वृक्क के पूर्ण क्रियाशील न होने के कारण औषधियों के अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं ।

[viii] कुपोषण—शरीर में लौह तत्त्व के अल्प संग्रह के कारण तथा मज्जा के पूर्ण क्रियाशील न होने से पाण्डु का होना स्वाभाविक है । इसमें Folic acid तथा

Scanned with CamScanner

Vitamin E की अल्पता भी सहायक कारण होती है। ठीक से दुग्ध पान न कर पाने के कारण Rickets होने की भी सम्भावना रहती है।

[ix] शिशुओं में प्राय: रक्तशर्करा की कमी, कैल्शियम, प्रोभूजन की कमी आदि जैसे उपद्रव हो जाते हैं।

चिकित्सा व्यवस्था—इन बच्चों की मृत्यु का कारण प्राय: जन्मकालीन श्वासावरोध, शरीर-ताप का गिरना, रक्त में Bilirubin की वृद्धि एवं संक्रमण होता है। इनसे बचाव एवं उचित व्यवस्था हेतु निम्न सावधानियाँ मृत्यु-दर को घटा सकती हैं—

(1) प्रसव कक्ष में—जन्म के तुरन्त बाद नाभिनाल को बाँधकर, कर्तन करके बच्चे का रक्त अपरा में जाने से बचायें। इससे लौहतत्त्व संग्रह पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। Vitamin K 0.5 ग्राम या Vitamin K_1 1mg तुरन्त मांसगत सूचीवेध से दें। बच्चे को ढँक कर रखें। प्राण-प्रत्यागमन हेतु उपयुक्त आकार के मास्क एवं इण्डोट्रेकियल ट्यूब का प्रयोग करें।

(2) शिशु को Incubator में रखें। तापक्रम, श्वसन, वर्ण, मल एवं कामला आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(3) तापक्रम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। incubator में तापक्रम का निर्धारण निम्न प्रकार करें—

शिशु-भार	तापक्रम (डिग्री सेल्सियस में)
1200 ग्राम से कम	35 से 36
1200 से 1500 ग्राम	32 से 34
1500 से 1800 ग्राम	30 से 32

(4) पोषण—ठीक से दूध न पी पाने पर शिरामार्ग से आवश्यक तत्त्व एवं जल दिया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार लौहतत्त्व Folic acid तथा विभिन्न विटामिन्स देना चाहिए।

(5) संक्रमण से सुरक्षा करनी चाहिए।

(6) शरीर-भार का रिकार्ड सप्ताह में 2 बार अवश्य करें। प्राय: समय पूर्व प्रसवित शिशु 15% शरीर-भार प्रथम 4-5 दिनों में कम कर देते हैं। अगले 4-5 दिनों तक वहीं पर भार रुका रहता है। फिर 20-40 ग्राम शरीर-भार प्रतिदिन बढ़ना प्रारम्भ करता है। इस क्रम में देर होने पर यह संकेत मिलता है कि शिशु को उचित पोषण नहीं मिल रहा है। एकाएक शरीर-भार में कमी जलाल्पता को इङ्गित करता है।

(7) Incubator से शिशु को बाहर करना—यह तभी सम्भव है जब शिशु ठीक से स्तनपान (बोतल से दूध पीना) प्रारम्भ कर दे तथा शरीर का ताप स्थिर हो जाय।

Scanned with CamScanner

इसके लिए Incubator को बन्द करने के बाद भी शिशु का परीक्षण कम-से-कम 12 घण्टे तक अवश्य करना चाहिए ।

गर्भाशयान्तर गर्भ की वृद्धि-अल्पता
(Small-for-Dates or Intrauterine Growth Retardation)

जब नवजात शिशु का वजन उस गर्भकाल के वजन के 10वें परसेण्टाइल या 2SD से भी कम हो तो Small-for-date babies कहा जाता है । इन्हें निम्न 3 उपवर्गों में बाँटा जा सकता है—

(क) कुपोषणजन्य—गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में अपरा के कार्यक्षमत्व की कमी के कारण गर्भस्थ शिशु लम्बा, दुबला एवं शोष युक्त (Marasmic) हो जाता है। सिर की परिधि एवं मस्तिष्क के भार पर कुपोषण का प्रभाव नहीं पड़ता है । यह शरीर वृद्धि- ह्रास कोशिकाओं की आकृति में छोटेपन के कारण होती है, उनकी संख्या प्रभावित नहीं होती । पोषण ठीक हो जाने पर शरीर का विकास उचित हो जाता है ।

(ख) विकृतिजन्य (Hypoplastic)—गर्भकालीन संक्रमण, जेनेटिक एवं क्रोमोसोमल (Genetic & Chromosomal) विकार गर्भधारण के बाद से ही भ्रूण को प्रभावित करते हैं । शरीर के समस्त अङ्गों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं । इनमें जन्मजात विकृतियों की अत्यधिक सम्भावना रहती है । शरीर का ह्रास होता है, तथा कोशिकाओं की संख्या में भी कमी होती है तथा स्थायी मानसिक एवं शारीरिक वृद्धि का ह्रास हो जाता है ।

(ग) मिश्रित वर्ग—यह गर्भाधान के बाद प्रथम या मध्यकाल में वातावरण के प्रभावजन्य दुष्परिणामों का रूप है । इसमें दोनों वर्गों के कुछ लक्षण मिलते हैं तथा कुछ लक्षण नहीं मिलते हैं ।

कारण

1. मातृज कुपोषण, उपवास एवं पाण्डु ।
2. अपरा की कार्यक्षमता में कमी (गर्भविषमयता, उच्च रक्तचाप, अतिप्रगल्भ शिशु के कारण) ।
3. मातृज सांस्थानिक रोग—राजयक्ष्मा, हृदयावरोध, तमकश्वास आदि ।
4. जेनेटिक एवं क्रोमोसोमल व्याधियाँ ।
5. गर्भकालीन संक्रमण (खसरा, Toxoplasmosis) ।
6. यमल गर्भ ।
7. अन्य कारण—धूम्रपान तथा प्रथम तीन माह में ली जाने वाली कुछ औषधियों के कारण एवं नशा आदि ।

Scanned with CamScanner

लक्षण एवं उपद्रव

1. अपरा की कार्यक्षमता में कमी के कारण गर्भस्थ शिशु की मृत्यु या गर्भ को ओषोजन की कमी ।
2. जन्म के समय तीव्र श्वासावरोध ।
3. गर्भाशय में ही गर्भ द्वारा गर्भोदक पान (Aspiration) ।
4. लाक्षणिक रक्तशर्करा की अल्पता ।
5. रचनात्मक विकृतियाँ ।
6. फुफ्फुस में रक्तस्राव (अज्ञात कारणजन्य) ।
7. Polycythemia ।
8. शरीर के ताप में अनियमितता ।

चिकित्साव्यवस्था-सिद्धान्त

(1) गर्भ में ओषोजन की कमी के लक्षण मिलते ही कुक्षिपाटन द्वारा शिशु को निकाल लेना चाहिए ।

(2) गला एवं नाक की सफाई करना चाहिए ।

(3) रचनात्मक विकृति हेतु ध्यान से परीक्षण करना चाहिए ।

(4) शीघ्र उचित आहार द्वारा रक्तशर्करा की कमी को रोका जा सकता है । इससे बच्चे के भार में उचित वृद्धि होती है ।

(5) शरीर-ताप को स्थायी रखने का यत्न करना चाहिए ।

नवजात शिशु का कामला

कामला (Jaundice) का वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थों में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है । इसके निम्न दो कारण प्रमुख रूप से बताये गये हैं—

(1) जो पाण्डुरोगी अतिपित्तवर्धक पदार्थों का सेवन करता है उसका पित्त और अधिक दूषित होकर रक्त तथा मांस को अत्यधिक दूषित कर कामलारोग की उत्पत्ति करता है ।

'पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ।
तस्य पित्तमसृग्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते' ।। (च.चि. 16:34)

(2) अथवा सामान्य व्यक्ति द्वारा अति पित्तवर्धक आहारादि का सेवन करना । यह कामला का स्वतन्त्र रूप है ।

शैशवीय कामला के दो उद्धरण आयुर्वेद संहिता-ग्रन्थों में सूत्र रूप में मिलते हैं—

(1) जिस स्त्री की सन्तान पैदा होते ही नष्ट हो जाती है, उस मांसाहारी याप्य जातहारिणी को 'पिशाची' कहा जाता है ।

Scanned with CamScanner

'जातं जातमपत्यं तु यस्याः सद्यो विनश्यति ।
पिशाचीं नाम सा घोरा मांसादो जातहारिणी' ।। (का.कल्पा.जात. 43)

पिशाची शब्द का अर्थ शब्दकोषों में इस प्रकार दिया गया है—'एक प्रकार का राक्षस, जो अपने पीले वर्ण से पहचाना जाता है ।' इस 'पीत वर्ण' के लक्षण को प्रधानता देने पर इसका तात्पर्य इस तरह लिया जा सकता है कि प्रथम दिन सन्तान में पीला वर्ण पैदा करने वाली जो व्याधि हो; यथा—नवजात शिशुकामला ।

(2) पैत्तिक दुग्धदोषजन्य कामला—

'स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्' ।। (मा.नि.बा. रोग 2)

चरक ने पैत्तिक दोष से दूध में विवर्णता एवं दौर्गन्ध्य की उत्पत्ति कही है । दौर्गन्ध्य से कामला उत्पन्न होता है—

'पूर्ववत् कुपिते पित्ते दौर्गन्ध्यं क्षीरमृच्छति ।
पाण्ड्वामयस्तत्पिबतः कामला च भवेच्छिशोः' ।। (च.चि. 30:245)

लक्षण—शैशवीय कामला के लक्षण आचार्य कश्यप ने कहे हैं—

'पीतचक्षुर्नखमुखविण्मूत्रः कामलार्दितः ।
उभयत्र निरुत्साहो नष्टाग्नी रुधिरस्पृहः' ।। (का.सू. 25:35)

प्रायः यही लक्षण आधुनिक चिकित्साग्रन्थों में भी वर्णित हैं । नवजात शिशु में प्रायः पीतवर्ण सर्वप्रथम मुख पर दिखायी पड़ता है जो क्रमशः शरीर के अन्य भाग की त्वचा पर भी दिखायी पड़ने लगता है । त्वचा पर पीत वर्ण की उत्पत्ति प्रायः तब होती है जब रक्त में बिलिरुबिन की मात्रा 4 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. या इससे अधिक होने लगती है ।

कारण—यदि नवजात शिशु को प्रतिदिन 2 बार विधिवत् निरीक्षण किया जाय। तो नवजात शिशुकामला के कारणों का पता सुविधा पूर्वक चल सकता है । क्योंकि इसका सम्बन्ध वय से होता है ।

(क) प्रथम दिवस कामला उत्पत्ति के कारण—

1. माता एवं शिशु के रक्तवर्ग की विषमयता—

- Blood Group Incompatibility
- Rh Incompatibility

2. गर्भाशयिक संक्रमण—

- TORCH संक्रमण
- Syphilis (फिरङ्ग)

Scanned with CamScanner

- Infective hepatitis
- Bacterial sepsis

3. रक्तकोशिका में एञ्जाइम्स की कमी (G-6-PD, PK, etc.) ।
4. कुछ औषधियों का माता द्वारा अति प्रयोग—Vitamin K, Salicylates, पित्तवर्धक आहार आदि ।
5. विशिष्ट व्याधियाँ— (i) Crigler Najjar Syndrome[1]
   (ii) Lucey Driscoll Syndrome[2]
   (iii) Homozygous alpha thalassemia.
   (iv) Hereditary spherocytosis.

(ख) द्वितीय एवं तृतीय दिन होने वाले कामला के कारण—प्राय: इसका कारण प्राकृतिक (Physiological) कामला है जो निम्न कारणों से बढ़ सकता है—समय पूर्व प्रसव, जन्मकालीन श्वासावरोध, शरीर-ताप का कम होना, शीर्ष रक्तसंग्रह, गर्भाशय में संक्रमण, लालरक्तकोशिका में एञ्जाइम्स की कमी, स्तनपान, Crigler-Najjar Syndrome, Cretinism एवं औषधियाँ (उपरोक्त तथा Caffein, Novobiocin, Gentamycin आदि) ।

(ग) तीसरे दिन के बाद अगले 10 दिनों में होने वाले कामला के कारण—

1. सार्वदैहिक संक्रमण (Septicemia) ।
2. नवजात शिशुयकृत् शोथ ।
3. स्तनपानजन्य कामला ।
4. Hypertrophic Pyloric Stenosis ।
5. Extra hepatic biliary atresia ।
6. चयापचयी विकृतियाँ ।
7. TORCH संक्रमण
8. Cretinism

उपरोक्त अवस्थाओं में से कुछ का विस्तृत विवरण निम्नवत् है—

1. Crigler-Najjar Syndrome के दो भेद होते हैं—
   Type I—तीव्र नवजात शिशुकामला (Autosomal recessive) ।
   Type II—मध्यम नवजात शिशुकामला (Autosomal dominant)
   Respond to Phenobarbitone.
   कारण—Glucoronyl transferase deficiency.
2. Lucey-Driscoll Syndrome—Familial transient unconjugated hyperbilirubinemia,
   कारण—Glucuronyl transferase inhibitor in serum of baby and mother.

Scanned with CamScanner

प्राकृतिक शैशवीय कामला

प्राकृतिक कामला 60% सामान्य प्रसव वाले शिशुओं में तथा 70% समय पूर्व प्रसवित शिशुओं में दिखायी पड़ता है। इसका निदानार्थक स्वरूप निम्नवत् है—

शिशु	व्याधि प्रारम्भ	तीव्रतम स्वरूप	व्याधि लक्षणों का समाप्त होना	सीरम बिलीरुबिन mg/100ML
पूर्ण प्रसव	जन्म के बाद 30वें से 72वें घण्टे के मध्य	चतुर्थ एवं पञ्चम दिन	7वें से 10वें दिन के मध्य	12 mg. से अधिक नहीं
समय पूर्व प्रसव	24 घण्टे से पहले नहीं	पञ्चम एवं षष्ठ दिन	8वें से 14वें दिन के मध्य	15 mg. से अधिक नहीं

• प्राकृतिक शैशवीय कामला की उत्पत्ति में सहायक कारण •

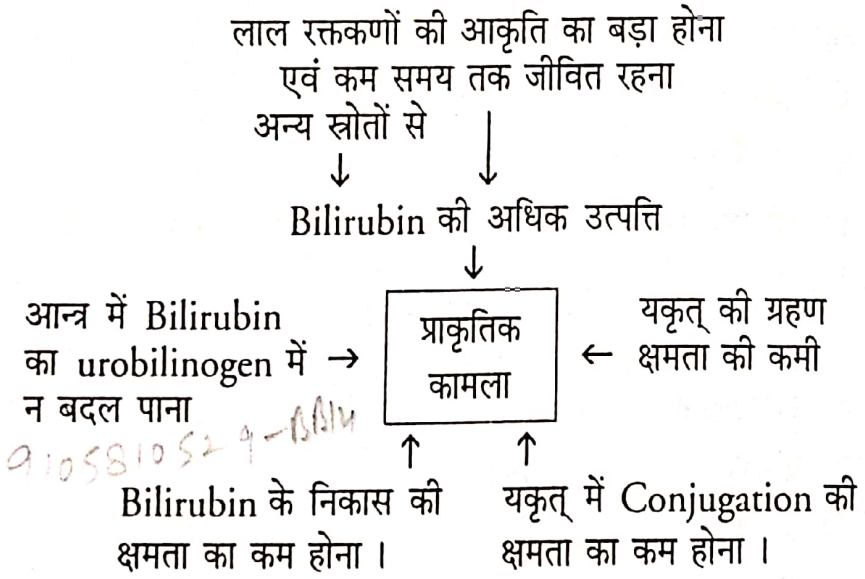

चिकित्सा व्यवस्था—शिशु को किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु समय एवं कामला की तीव्रता का ध्यानपूर्वक परीक्षण आवश्यक है। माता के द्वारा शिशु को उचित आहार एवं जल दिया जाना चाहिए। परन्तु यदि उग्रता बढ़ती जाय तथा शान्त होने का समय (7वें से 10वें दिन तक) व्यतीत हो जाय तो अन्य कारणों पर ध्यान भी देना चाहिए। जैसा कि ऊपर तालिका में कहा गया है।

स्तन्यजन्य शैशवीय कामला

यह कामला प्राकृतिक कामला के क्रम में ही अथवा लगभग 7वें दिन से प्रारम्भ होकर 10वें दिन तक रहता है। परन्तु रक्त में Bilirubin की मात्रा कभी भी इतनी नहीं बढ़ती कि रक्त का Exchange tranfusion करना पड़े। Bilirubin की मात्रा 10 से 27 मि.ग्रा. % तक हो सकती है। यदि स्तन्यपान रोक दिया जाय तो 4-5 दिन में Serum bilirubin की मात्रा घटकर सामान्य हो जाती है तथा पुनः स्तन्यपान कराने पर भी नहीं बढ़ती।

Scanned with CamScanner

क्रीटेनीज्म
(Cretinism)

यदि प्राकृतिक कामला का समय बढ़ता जा रहा हो तथा शिशु का मोटी आवाज में रोना, बड़ी जिह्वा, आलस्य, मांसपेशियों के सामान्य कड़ापन (Tone) में कमी हो तथा स्तनपान ठीक से न करता हो तो Cretinism की सम्भावना अधिक होती है। इसमें जन्मजात Thyroid deficiency होती है। इसका परीक्षण एवं निदान करना चाहिए।

थैलासीमिया
(Homozygous Alpha-thalassemia)

यह व्याधि बहुत कम पायी जाती है, इसमें रक्तकोशिकाक्षयजन्य तीव्र पाण्डु (Haemolytic Anaemia), यकृत्-प्लीहा वृद्धि तथा सम्पूर्ण शरीर पर शोफ पाया जाता है। Direct Coomb's Test का ऋणात्मक होना तथा Haemoglobin electrophoretic Studies के द्वारा निदान सम्भव है। Thalassemia व्याधि Genetically Transmitted Haemoglobin abnormality है।

औषधिजन्य कामला

विटामिन K, Kanamycin, Gentamycin, Chloramphenicol, Caffein, Salicylates आदि कामला की उत्पत्ति करते हैं या उसकी तीव्रता को बढ़ा देते हैं। इनके द्वारा कामला की उत्पत्ति निम्नांकित विधियों से सम्भव है—

1. रक्तकोशिकाओं का नाश (Haemolysis)।
2. Y acceptor protein को रोकना (Block)।
3. Bilirubin को Conjugate करने वाले Glucuronyl transferase से स्वयं Conjugate हो जाना।
4. Bilirubin को Albumin से न बँधने देना तथा अल्प Bilirubin की मात्रा में ही मस्तिष्क को आघात पहुँचाना आदि।

रक्तवर्ग-विषमयता एवं रीसस विषमयता
(A, B, O, hemolytic disease of the Newborn & Rhesus hemolytic disease of the Newborn)

इनका विवरण 'प्रसवोत्तर व्याधियाँ' नामक अध्याय में दिया गया है।

उग्ररूपीय कामला
(Kernicterus)

Hyperbilirubinemia तथा bilirubin 20 मि.ग्रा.% (Indirect) या इससे अधिक मात्रा में नवजात शिशु में मस्तिष्क को आघात पहुँचा कर नाडीतन्त्र के लक्षण पैदा करते हैं। इसमें मस्तिष्क के Basal ganglion एवं अन्य Nuclear भाग प्रभावित होते हैं।

Scanned with CamScanner

प्राय: लाल रक्तकण का क्षय करने वाली व्याधियाँ, कभी-कभी Crigler-Najjar Syndrome आदि भी इस अवस्था के उत्पादक कारण होते हैं।

इस अवस्था के प्रारम्भ में शिशु का Moro Reflex कम हो जाता है तथा स्तन-पान में कठिनाई आती है। व्याधि के बढ़ने के साथ ही पहले पेशियों में शिथिलता (Hypotonia), फिर कड़ापन (Rigidity) आने लगती है। तीव्र ज्वर एवं आक्षेप भी तीव्र स्वरूपीय कामला में दिखायी पड़ते हैं।

विकृति जन्य शैशवीय कामला

नवजात शिशु में यदि प्रथम दिन ही कामला की उपस्थिति है, तो विकृतिजन्य शैशवीय कामला की सम्भावना को पर्याप्त बल मिलता है। सहायक लक्षणों में 5 मिग्रा.% प्रति दिन की दर से Total Serum bilirubin का बढ़ना, पूर्ण प्रसवित शिशु में 12.9 मि.ग्रा.% तथा समयपूर्व प्रसवित शिशु में 15 मि.ग्रा.% से बिलिरुबिन अधिक होना, Direct serum bilirubin 1.5 मि.ग्रा.% से अधिक होना व्याधि-विनिश्चय में सहायक होते हैं। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्राकृतिक कामला में सीरम बिलीरुबिन की मात्रा 12 मि.ग्रा.% पूर्ण प्रसवित शिशु में तथा समयपूर्व प्रसवित शिशु में 15 मि.ग्रा.% से अधिक नहीं जाती। प्राकृतिक कामला के लक्षण 7 से 10 दिन में समाप्त हो जाते हैं, परन्तु विकृति जन्य शैशवीय कामला के लक्षण 7-10 दिन के बाद भी बने रहते हैं।

व्याधि-विनिश्चय में सहायक इतिवृत्त—

(1) गर्भिणी को यदि ज्वर रहता हो और शरीर पर दाने (Rash) निकलते हों तो TORCH संक्रमण की सम्भावना होती है।

(2) गर्भिणी के द्वारा यदि सल्फा औषधि, Primaquine, Sulfasoxazole जैसी औषधि का प्रयोग किया गया है तो शिशु में G6-PD अल्पता की सम्भावना रहती है।

(3) यदि गर्भिणी को बार-बार कामला हो रहा था तो Hereditary spherocytosis, एवं रक्त एञ्जाइम अल्पता कारणभूत हो सकता है। तथा पूर्व के प्रसव में कामला, पाण्डु की इतिवृत्त होने पर भी यही कारण सम्भावित है।

(4) पूर्व की सन्तानों में कामला का इतिवृत्त एवं फोटोथैरपी का होना रक्तवर्ग विषमयता का संकेत देता है।

(5) पूर्व की सन्तान की मृत्यु साथ में कामला का होना चयापचय सम्बन्धित विकार का संकेत है।

परीक्षण—ध्यानपूर्वक शिशु का परीक्षण करने पर शरीर में सीरम बिलीरुबिन की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है। एतदर्थ Kramer's Criteria निम्नवत् है—

Scanned with CamScanner

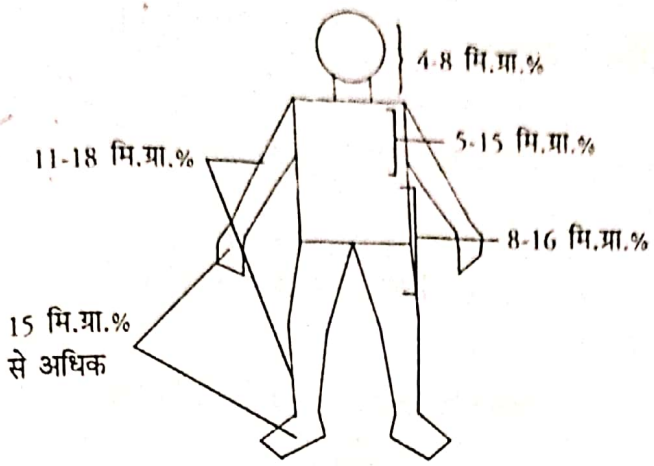

चित्र सं. 31 : Kramer's Criteria

नवजात शैशवीय कामला के साथ यदि अन्य कुछ विशिष्ट लक्षण उपस्थित होते हैं, तो निम्न निदान की ओर संकेत करते हैं—

कामला

(+)

कोई अन्य लक्षण नहीं	श्वेताभवर्ण→ (Pallor)	श्वेताभवर्ण→ +	श्वेताभवर्ण +	स्तन्य-विद्वेष +	वर्णयुक्त मूत्र +
↓	↓	यकृत् वृद्धि	लघु शिर (±)	अनियमित	मृतिका वर्ण
1. प्राकृतिक कामला	1. रक्त वर्ग विषमयता	+	Microcephaly	शरीर-तापक्रम	का मल
	2. रक्त कोशिका एंजाइम की अल्पता	प्लीहावृद्धि +	+	±	↓
		रक्तस्राव → (Purpura)	रक्तस्राव	रक्तस्राव	1. Extra hepatic bilary atresia
	3. Hereditary spherocytosis		↓	↓	
			1. गर्भाशयिक संक्रमण	1. सार्वदैहिक संक्रमण	

↓

1. गर्भाशयिक संक्रमण
2. सार्वदैहिक संक्रमण
3. रीसेस विषमयता

सीरम बिलीरुबिन के भेद एवं शैशवीय कामला से सम्बन्ध

भेद

Conjugated	Unconjugated
- नवजात यकृत शोथ	- स्तन्यजन्य कामला
- Extra hepatic biliary atresia	- रक्तवर्ग रीसेस विषमयताजन्य
- जन्मजात चयापचय विकृति	- आंत्रावरोध या Stasis
- सिरामार्ग से सम्पूर्ण पोषण	- Crigler-Najjar syndrome

Scanned with CamScanner

प्रयोगशालीय परीक्षण—

1. हीमोग्लोबिन
2. रक्तवर्ग एवं रीसेस (मात्रा एवं शिशु का)
3. Direct Coomb's Test
4. सीरम बिलीरुबिन (Direct, Indirect)
5. लालरक्त कोशिका की संरचना, संख्या एवं G.B.P.
6. रक्त कल्चर

परीक्षण के आधार पर व्याधि-विनिश्चय

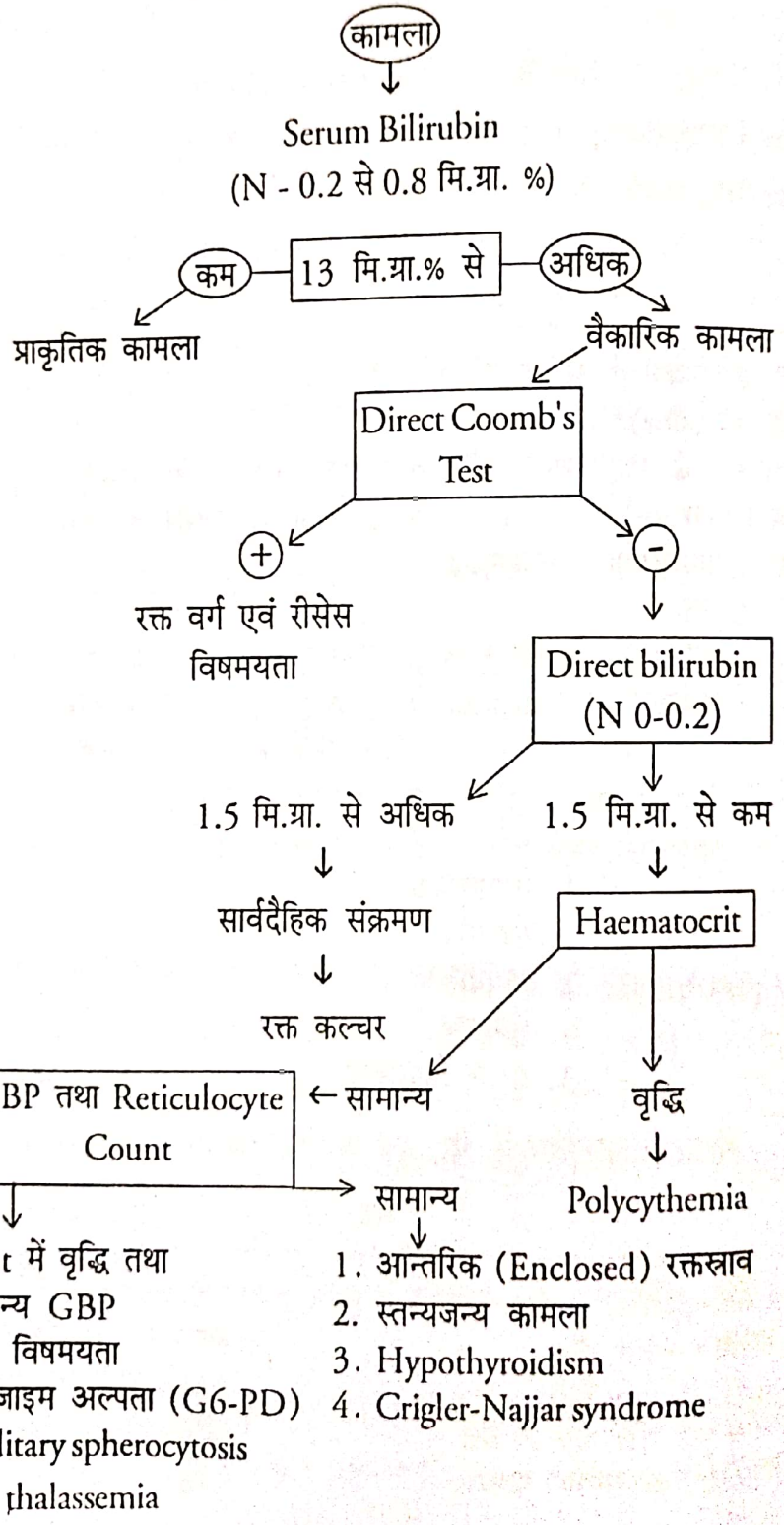

Scanned with CamScanner

अतिबिलिरुबिनरक्तता की चिकित्सा (Hyperbilirubinemia)

चिकित्सा का उद्देश्य बढ़े हुए Bilirubin की मात्रा को कम करके अन्य उपद्रवों से शिशु की रक्षा करना है ।

(1) रक्ताधान (Exchange transfusion)—रक्ताधान करने का निर्देश निम्न अवस्थाओं में है—

(क) किसी भी कारण से तीव्र कामला जिसमें Serum bilirubin की मात्रा 20 मि.ग्रा.% से अधिक हो तथा Serum bilirubin एवं Protein का अनुपात 1:3.5 या अधिक हो ।

(ख) रीसेस (Rhesus) विषमयता—जब माता में Anti-D antibodies titer का अनुपात 1:64 या अधिक हो एवं शिशु का Direct Coomb's test धनात्मक हो ।

(2) शिशु नाभिनाल रक्त में Bilirubin 5 मि.ग्रा.% या अधिक हो । यदि 5 मि.ग्रा.% प्रति घण्टे की दर से Bilirubin की मात्रा बढ़ रही हो ।

(3) प्रोभूजन का आधान (Albumin infusion)—रक्ताधान के 1 घण्टे पूर्व 25% घोल Albumin (नमक रहित) 1 ग्राम/किलोग्राम शरीर-भार की मात्रा में देना चाहिए ।

(4) उचित मात्रा में स्तनपान, जल पिलाना चाहिए ।

(5) प्रकाश स्नान (Photo therapy)—नीलाभ ट्यूब-प्रकाश अथवा श्वेत ट्यूब-प्रकाश या सूर्य-प्रकाश स्नान करना भी अतिलाभकर है । इस समय नेत्र को ढँक देना चाहिए ।

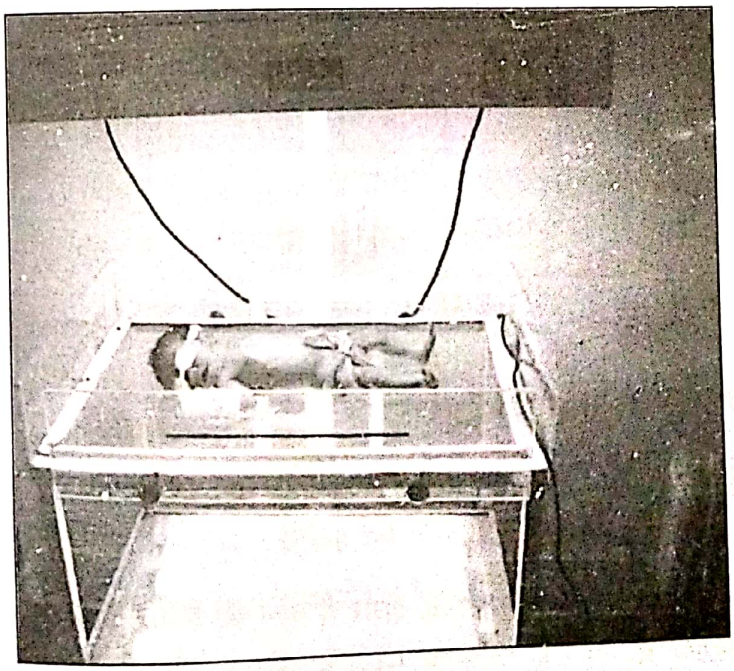

चित्र सं. 32 : Phototherapy Unit

Scanned with CamScanner

(6) औषधियाँ—Phenobarbitone, Orotic acid, Agar आदि ।

शैशवीय कामला की चिकित्सा में प्रकाश स्नान (Phototherapy) तथा रक्ताधान (Exchange blood transfusion) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय उपचार है ।

(1) प्रकाश स्नान (Phototherapy)—इस उपचार में प्रकाश के द्वारा बिलीरुबिन पर प्रक्रिया (Photoisomerization) होती है, फलस्वरूप बिलीरुबिन अहानिकारक जल में विलेय हो जाता है तथा पित्त, मल एवं मूत्र के द्वारा निकल जाता है । प्रकाश स्नान हेतु नीलाभ या श्वेत ट्यूबलाइट या हैलोजन लैम्प का प्रयोग करते हैं। प्रात: कालीन सूर्य का प्रकाश भी लाभप्रद है । इस मशीन में प्रकाश ट्यूब से बच्चे की दूरी 45 से.मी. रखी जाती है । मशीन में बच्चे को रखते समय नेत्र (रेटिना के बचाव हेतु) एवं जननांग को अच्छी तरह ढक देते हैं । बच्चे की स्थिति में बराबर परिवर्तन करते रहते हैं । बच्चे को बराबर मशीन में रखते हैं केवल स्तन्यपान हेतु एवं गीले वस्त्र बदलने के लिए बाहर निकालते हैं । प्राय: समयपूर्व प्रसवित शिशु में 10 से 12 मि.ग्रा.% एवं पूर्ण प्रसवित शिशु में 15 मि.ग्रा.% बिलीरुबिन होने पर प्रकाश-स्नान कराते हैं । इसका संक्षिप्त प्रारूप निम्न चित्र में प्रदर्शित है—

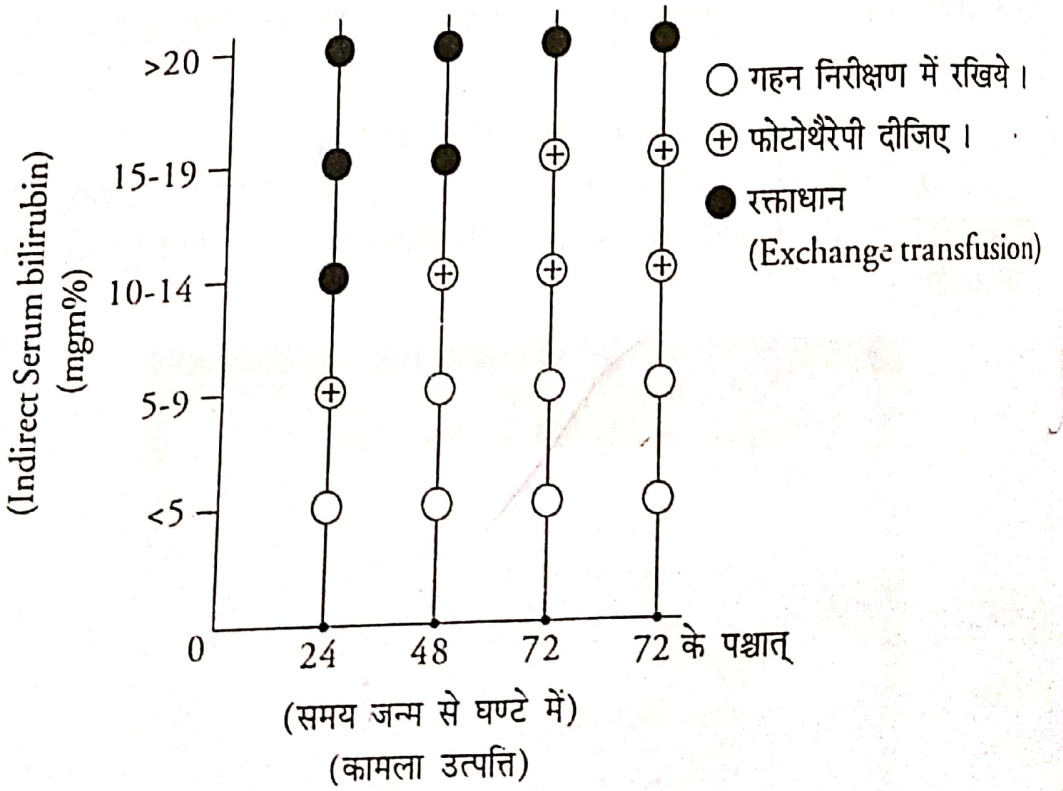

चित्र सं. 33 : शैशवीय कामला में फोटोथेरॉपी तथा रक्ताधान चिकित्सा का प्रयोग, सीरम बिलीरुबिन एवं उत्पत्ति - दिवस के सापेक्ष में

प्रकाश स्नान के मध्य शिशु के शरीर में जल की स्थिति, तापक्रम, कामला एवं पाण्डु को ध्यान में रखते हैं । प्रकाश स्नान के कारण पतला हरित मल, जलाल्पता,

Scanned with CamScanner

शरीर का ताप कम या अधिक हो सकता है। इस प्रक्रिया में त्वचा के वर्ण के आधार पर कामला का निर्धारण नहीं करना चाहिए। ध्यान रखिये—

1. नीलाभ ट्यूबलाइट 1500 से 2000 घण्टे (लगभग 3 माह) तक ही प्रभावित रहती है। इनकी अनुपस्थिति में श्वेत ट्यूबलाइट का प्रयोग करें।
2. Direct jaundice में इसका प्रयोग न करें।

(2) **रक्ताधान** (Exchange blood transfusion)—नाभिशिरा द्वारा प्राय: 160 सी.सी./कि.ग्रा. रक्ताधान किया जाता है। ध्यान रखिये—

(1) नाभिनाल रक्त में यदि Hb की मात्रा 10 ग्राम% से कम है तथा नाभिनाल रक्त में यदि बिलीरुबिन की मात्रा 5 मि.ग्रा.% से अधिक है।

(2) सीरम बिलीरुबिन की मात्रा 0.5 मि.ग्रा./घण्टे या इससे अधिक दर से बढ़ रही है। अथवा—

(3) Unconjugated bilirubin प्रतिदिन 10 मि.ग्रा. या इससे अधिक बढ़ रही हो।

(4) श्वासावरोध, सार्वदैहिक संक्रमण, शरीर ताप का कम होना आदि अवस्थाओं में कम सीरम बिलीरुबिन की मात्रा में भी रक्ताधान कर सकते हैं।

(5) सामान्य संकेत उपयुर्क्त चित्र में दिया गया है।

इन उपरोक्त अवस्थाओं में रक्ताधान कर सकते हैं।

आयुर्वेद-ग्रन्थों में कामला के चिकित्सार्थ बहुत-से योगों का वर्णन मिलता है। उचितानुचित का विचार कर उनका प्रयोग करना चाहिए। यथा—धात्रीलौह, निशालौह, नवायसलौह, पञ्चामृतलौह, प्राणवल्लभ रस, कुमारकल्याण रस, कामलाहर रस, रोहितकारिष्ट, कुमार्यासव, धात्र्यारिष्ट, फलत्रिकादि क्वाथ, पञ्चगव्य घृत, महातिक्त घृत, कल्याणक घृत आदि।

नवजात शिशु का रक्तपित्त

'संयोगाद् दूषणात्तत्तु सामान्याद् गन्धवर्णयोः।
रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः'॥ (च.चि. 4:9)

पित्त रक्त के साथ संयुक्त रहता है तथा उसे दूषित भी करता है एवं वह उसके संसर्ग से गन्ध एवं वर्ण में भी समान हो जाता है अत: इस रोग को रक्तपित्त कहते हैं। यह रक्त कभी ऊर्ध्वमार्ग से कभी अधोमार्ग से निकलने लगता है। कभी-कभी अति प्रकुपित होकर रोमकूपों से निकलने लगता है।

'तत: प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा।
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते'॥ (मा.नि.रक्तपित्त. 2-3)

Scanned with CamScanner

अन्यत्र भेद का स्पष्टीकरण देते हुए उभयमार्गी भी कहा गया है। रक्तपित्त का वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। परन्तु नवजात शिशु के सन्दर्भ में ऐसा विवेचन दृष्टिगत नहीं हो पाया है।

आधुनिक दृष्टिकोण से देखने पर रक्तपित्त (Haemorrhage) के कई कारण दिखायी देते हैं, परन्तु नवजात शिशु के सन्दर्भ में vitamin K की कमी ही प्रमुख कारण बनती है। इस प्रकरण पर Savill's System of Clinical Medicine का कहना है—

"Haemorrhagic disease of the newborn, occurs during the first five days of life causing malaena or haematemesis or more rarely haemorhage from the umblicus, mucous or serous membranes, into skin or internal organs or following circumcision. It is due to a shortage of Vitamin K, producing deficiency of plasma prothrombin which is normally at a low level during the first few days of life".

अर्थात् नवजात शिशु में रक्तस्राव जीवन के प्रथम 5 दिनों में दिखायी पड़ती है, प्रायः रक्तस्राव गुदा द्वारा होता है, कभी-कभी नाभि या श्लैष्मिक कलाओं से, त्वचा से या शरीर के अन्दर के अङ्गों से होता है। इसका कारण विटामिन K की कमी है जो जीवन के प्रथम सप्ताह में स्वयं ही कम रहने वाले Plasma prothrombin की और भी कमी करता है। (पूर्ण विवरण के लिए देखिये—'प्रसवोपरान्त व्याधि' नामक अध्याय)

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 6

जन्मजात व्याधियाँ तथा विकृतियाँ

आधुनिक विज्ञान में Gene तथा Chromosomes का ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । पिछले कुछ दशकों में इस दिशा में अत्यधिक कार्य हुआ है तथा वैज्ञानिक जीव के Genes को बदलने का भी सफल प्रयास कर चुके हैं । इस कार्य को विज्ञान की Genetic engineering शाखा के अन्तर्गत रखा गया है । इस विषय का ज्ञान हमारे आयुर्वेद-मनीषियों को भी था । इस हेतु बहुत-से उद्धरण प्राप्त होते हैं ।

यह आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान के कुछ अतिमहत्त्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या पहले समझ ली जानी चाहिए जिनके द्वारा Genetic या जन्मजात विकृतियों का वर्णन किया जाता है ।

(अ) जन्मजात (Congenital) व्याधियाँ या विकृतियाँ—यहाँ उन व्याधियों या विकृतियों का विवेचन किया जाता है जो रहती तो जन्म से हैं परन्तु इनके लक्षणों को बाद में देखा जाता है ।

इन्हें वंशानुगत (Hereditary) व्याधियों से इस प्रकार अलग कर सकते हैं कि जन्मजात व्याधियाँ या विकृतियाँ Genetic भी होती हैं तथा गर्भ काल में वातावरण के प्रभाव से भी प्रसव तक उत्पन्न हो सकती हैं जबकि वंशानुगत व्याधियाँ सदैव ही Genetic या Chromosomal होती हैं ।

इस तरह जन्मजात व्याधि या विकृतियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. Chromosomal—खण्डतालु, खण्डौष्ठ, जन्मजात ग्रन्थियुक्त (Poly-cystic) वृक्क आदि ।

2. वातावरणजन्य—गर्भकाल में माता को खसरा या Toxoplasmosis होने से हृदयरोग (Patent ductus arteriosus), छोटा सिर (Microcephaly), मूढ़ (Mental defects) एवं नेत्रविकार (Cataract) आदि का होना ।

सभी जन्मजात विकृतियाँ वंशानुगत नहीं होतीं तथा सभी वंशानुगत विकृतियाँ जन्मजात नहीं होतीं । वातावरण प्रभावजन्य विकार जन्मजात तो होते हैं परन्तु वंशानुगत नहीं । परन्तु कुछ वंशानुगत विकार यथा Friedreich's Ataxia, Huntington's chorea एवं मधुमेह जन्मजात तो नहीं होते परन्तु बाद में लक्षण प्रकट होते हैं ।

Scanned with CamScanner

(ब) वंशानुगत (Hereditary)—वह व्याधियाँ जो मातृज या पितृज या दोनों के द्वारा शिशु में आती हैं ।

(स) कुलज (Familial)—जब एक व्याधि एक परिवार के विभिन्न सदस्यों में विभिन्न पीढ़ी में दिखायी पड़ती है तो उसे कुलज विकार कहते हैं ।

वंशानुगत विकार Genes के द्वारा एक से दूसरे में जाते हैं । इस भ्रमण की क्रिया को 3 वर्गों में रखा गया है—

1. Dominant—यह अपना प्रभाव तभी दिखाते हैं जब स्वयं जैसे Dominant allele से या एक Recessive genes से सम्बन्ध हो जाय ।

2. Recessive—यह अपना प्रभाव केवल Homozygous[1] स्थिति में दिखते हैं जब दोनों Genes Recessive हों ।

3. Sex linked—लिङ्ग क्रोमोसोम्स के Genes से उत्पन्न हों ।

Recessive genes की विकृति का ज्ञान होने के बाद आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया कि एक ही परिवार में आपस में विवाह होने पर वंशानुगत विकृतियों के होने की अधिक सम्भावना रहती है, क्योंकि परिवार के बहुत-से सदस्य Recessive genes वाले होते हैं । आपसी वैवाहिक सम्बन्ध विकृति युक्त सन्तान पैदा कर सकते हैं जैसा कि नीचे चित्र में प्रदर्शित है—

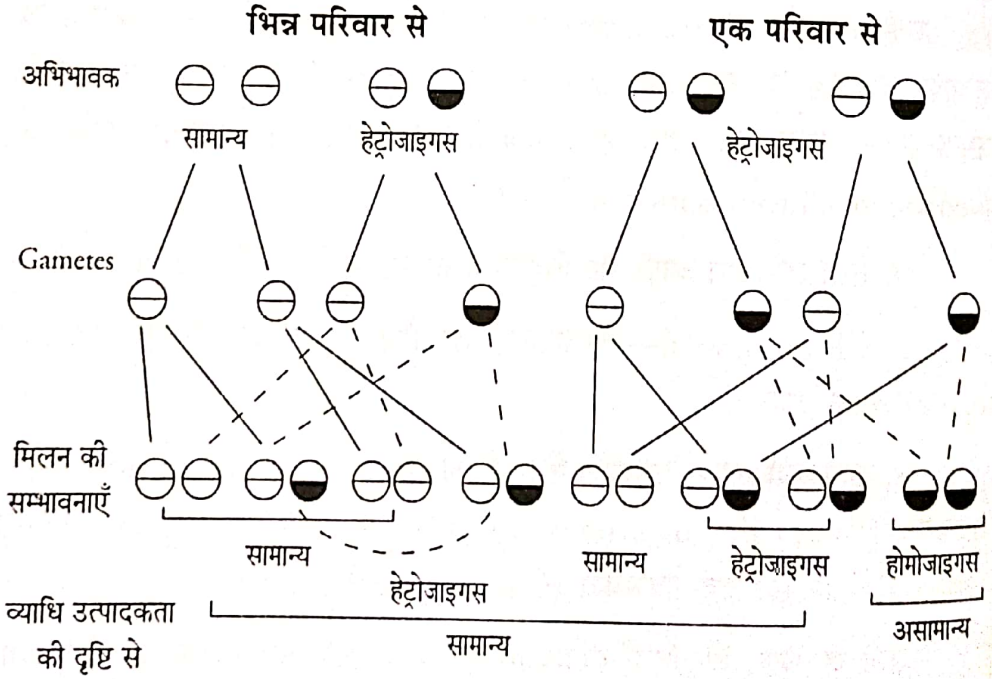

चित्र सं. 34 : विवाह एवं जीन्स का सम्बन्ध

1. Homozygous—Genes के जोड़े की दोनों इकाई एक जैसी संरचना वाली होती हैं ।
Hetrozygous—Genes के जोड़े की दोनों इकाई विभिन्न संरचना वाली होती हैं ।

Scanned with CamScanner

सम्भवतः इन्हीं सम्भावनाओं को ध्यान में रख कर हमारे आचार्यों ने माता या पिता के गोत्र में वैवाहिक सम्बन्धों का निषेध किया था। आचार्य चरक ने वैवाहिक सम्बन्ध अतुल्य गोत्र के साथ करने का उल्लेख (च.शा. 2 में) स्पष्ट रूप से किया है।

'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्माणि मैथुने' ॥ (मनुस्मृति)

जन्मजात व्याधियों के महत्त्व को देखते हुए आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट ने व्याधियों का वर्गीकरण[1] इस प्रकार किया है—

सुश्रुत	वाग्भट
1. आदिबलप्रवृत्त	सहजजन्य रोग
2. जन्मबलप्रवृत्त	गर्भजन्य रोग
3. दोषबलप्रवृत्त	जातजन्य रोग
4. संघातबलप्रवृत्त	पीड़ाजन्य रोग
5. कालबलप्रवृत्त	कालजन्य रोग
6. दैवबलप्रवृत्त	प्रभावजन्य रोग
7. स्वभावबलप्रवृत्त	स्वभावजन्य रोग

(1) आदिबलप्रवृत्त या सहजजन्य रोग—जो बीज दोष से (शुक्र या शोणित) शिशु में आते हैं तथा मातृज या पितृज होते हैं। शुक्र तथा शोणित के गर्भाधान के समय मिलने से दोषयुक्त होने पर शिशु में दोष आते हैं। स्पष्ट रूप से विकार युक्त Chromosomes एवं Gene के द्वारा होने वाली आनुवंशिक (Hereditary) व्याधि का वर्णन है।

(2) जन्मबलप्रवृत्त या गर्भजन्य रोग—गर्भ के समय माता के मिथ्या आहार-विहार से ये रोग होते हैं। इन्हें भी दो वर्गों में रखा गया है—रसकृत (कुपोषणजन्य) एवं दौहद-अवमानन। इस वर्ग का विवरण जन्मजात व्याधि या विकृति Congenital के समकक्ष है।

माता के द्वारा अहितकर एवं दोषवर्धक आहार-विहार के सेवन से[2]

वातज	पित्तज	कफज
जड़ता, बधिरता, मूकत्व मिनमिन, गदगद्, खंजत्व कुब्जत्व, वामनत्व एवं हीनाधिकांगी	खालित्य, पालित्य, दाढ़ी-मूँछ के बालों का न आना, त्वचा, नख एवं नेत्र का पिंगल वर्ण का होना	कुष्ठ, किलास एवं सदन्त जन्म

1. इनका वर्णन इस खण्ड के प्रथम अध्याय में सन्दर्भ सहित किया गया है।
2. यदा च लब्धगर्भाऽन्वक्षमेव वातलान्यासेवते तदाऽस्या वायुः प्रकुपितः शरीरमनुसर्पणं गर्भाशयेऽवतिष्ठमानो गर्भस्य जडबधिरमूकमिन्मिणगद्गदखञ्जकुब्जवामनहीनाङ्गाधिकाङ्ग-

Scanned with CamScanner

इस क्रम में वाग्भट का मत अधिक विस्तृत है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के आहार-विहार से होने वाले विकारों का उल्लेख किया है जैसा कि उक्त तालिका में दर्शाया गया है।

दोष एवं जन्मबल प्रवृत्त रोगों का सम्बन्ध

आचार्य चरक ने विकृत हीनाधिकाङ्गी या विकलेन्द्रिय सन्तान की उत्पत्ति के कारण बताते हुए कहा है कि—

'बीजात्मकर्माशयकालदोषैर्मातुस्तथाऽऽहारविहारदोषैः ।
कुर्वन्ति दोषा विविधानि दुष्टाः संस्थानवर्णेन्द्रियवैकृतानि' ।।

(शा. 2:29)

शुक्र-शोणित के स्वरूप में बीज, आत्मीय पूर्व देह के किये अशुभ कर्म, आशय (गर्भाशय) तथा काल की विकृति एवं माता के आहार-विहार के दोष से गर्भ का संस्थान (आकृति), वर्ण (रूप-रङ्ग) तथा इन्द्रियाँ विकृत हो जाती हैं।

उपरोक्त कारणों में 'आत्म कर्म दोष' ही एकमात्र इतना महत्त्व रखता है कि जिसके आधार पर यमल गर्भ के मानसिक विकास के अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है। जिसे चरक ने कहा है।

कालदोष का तात्पर्य ऋतुकाल अथवा गर्भधारणकाल या गर्भिणीकाल से लिया जा सकता है। इन प्रत्येक अवस्थाओं में निषिद्ध काल या वातावरण विकृत सन्तानोत्पादक होता है। चरक ने तो रजःस्रावकाल, ऋतुकाल, गर्भधारण से पूर्व के समय का दैनिक कर्तव्य एवं आहार-विहार भी निश्चित किया है, जिसके करने से श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति होती है। अन्यथा विकृत-रोगी सन्तान प्राप्त होगी।

आचार्य चरक ने जन्मजात विकृतियों के Sex linked chromosomes से उत्पन्न व्याधियों को भी इंगित किया है—

'यस्य यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तो भवति, तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरुपजायते'। (च.शा. 3:17)

गर्भोत्पादक बीज से या बीजभाग से जो-जो अङ्ग उत्पन्न होते हैं उनके दूषित होने पर उनसे उत्पन्न होने वाला अङ्ग विकृत उत्पन्न होता है। चक्रपाणि ने टीका करते हुए कहा है कि जो बीज का अंश शरीर के भिन्न भागों के विकास हेतु सम्बद्ध होता है उसे बीजभाग कहते हैं। मानव बीज (शुक्र या आर्तव) बीजभाग समूह मात्र है जो शरीर के प्रत्येक भाग से सम्बन्ध रखता है। इस अंश का और भी विस्तृत वर्णन चरक ने आगे किया है कि जब स्त्री वातादि दोषों को प्रकुपित करने वाला आहार-विहार करती है तो

त्वान्यन्यं वा वातविकारं करोति। तथा वायुवत् पित्तमपि खलतिपलितश्मश्रुहीनतात्वङ्नखकेशपैङ्गल्यादीनि। श्लेष्मा तु कुष्ठकिलासदन्तत्वादीनि। त्रिवर्गो मिश्रान् विकारान्। (अ.सं.शा. 2:34)

Scanned with CamScanner

वातादि दोष प्रकुपित होकर शरीर में फैलते हुए रक्त एवं गर्भाशय को प्राप्त होते हैं परन्तु सम्पूर्ण रक्त या गर्भाशय को दूषित नहीं करते। ऐसी दशा में जब वह स्त्री गर्भ धारण करती है तब उस गर्भ के मातृज या पितृज अवयवों में से किसी एक अथवा अधिक अवयवों में विकृति उत्पन्न हो जाती है। जिस-जिस अवयव के बीजभाग में दोष प्रकुपित होते हैं उन-उन बीज या बीज भागों से उत्पन्न अवयवों में विकृति आ जाती है। उत्पन्न व्याधियों में बन्ध्या, पूतिप्रजा एवं वार्ता प्रमुख हैं।

'यदा स्त्रिया दोषप्रकोपणोक्तान्यासेवमानाया दोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयावुपपद्यन्ते, न च कात्स्र्येन शोणितगर्भाशयौ दूषयन्ति, तदेयं गर्भं लभते स्त्री; तदा तस्य गर्भस्य मातृजानामवयवानामन्यतमोऽवयवो विकृतिमापद्यत एको-ऽथवाऽनेके, यस्य यस्य ह्यवयवस्य बीजे बीजभागे वा दोषाः प्रकोपमापद्यन्ते, तं तमवयवं विकृतिराविशति।.....स्त्रीव्यापदमाचक्षते'। (च.शा. 4:30)

इसी प्रकार आगे पुरुषबीज दोष का विवरण देते हुए बन्ध्य पुत्र, पूतिप्रज सन्तान तथा तृणपुत्रिका के उत्पन्न होने का विवरण है। (च.शा. 4:31)

इस प्रकार जन्मजात व्याधियों एवं विकृतियों के विषय में आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन का प्रयास यहाँ किया गया है। तदनुसार संक्षेप में व्याधियों का वर्गीकरण भी यहाँ दे रहे हैं—

(1) वंशानुगत (Hereditary)—प्रमेह (Diabetes mellitus), श्वित्र (Albinism) एवं कुष्ठ (Psoriasis) आदि।

(2) जन्मजात (Congenital diseases)—

(क) Chromosomal—नरषण्ड, नारीषण्ड (Hermaphrodite), बन्ध्या, वार्ता आदि।

(ख) कुपोषणजन्य—खालित्य, पालित्य आदि।

(ग) रचनात्मक विकृतियाँ—कुब्ज, खञ्ज, वामन, जड, विकराक्ष आदि।

(3) कुलज—कुष्ठ आदि।

जन्मजात फिरङ्ग
(Congenital Syphilis)

'फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात्फिरङ्ग इत्युक्ता व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥
गन्धरोगः फिरङ्गोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरङ्गिणाऽङ्गसंसर्गात्फिरङ्गिण्याः प्रसङ्गतः'॥
(भा.प्र.चि.प्र. 59:1-2)

फिरङ्ग देश में इस रोग के अधिक होने के कारण इसे व्याधिविशारदों ने फिरङ्ग रोग कहा है। यह फिरङ्ग रोग गन्ध से उत्पन्न होने वाला रोग है तथा फिरङ्ग देश के मनुष्यों के अङ्गसंसर्ग तथा युवतियों के साथ प्रसङ्ग करने से उत्पन्न होता है।

Scanned with CamScanner

इस फिरङ्ग रोग के 3 भेद हैं—

(1) बाह्य—विस्फोट के समान, कम पीडा एवं व्रणवत् फूटना लक्षण है। यह सुखसाध्य है।

(2) आभ्यन्तर—सन्धियों में, आमवातवत् शूलोत्पादन एवं शोथ पैदा करता है। यह याप्य है।

(3) मिश्रित—मिले-जुले लक्षण वाला होता है।

उपद्रव—कृशता, बलक्षय, नासाभङ्ग, अग्निमान्द्य, अस्थिशोष एवं वक्रता।

चिकित्सा—(1) रसकर्पूर एवं सप्तशालावटी का प्रयोग।

(2) चौबीस रत्ती चोपचीनी चूर्ण एवं मधु का सेवन।

(3) नमक का परित्याग करें।

(4) निम्बपत्र चूर्ण, हरीतकी तथा आमलकी चूर्ण अष्टमांश एवं हरिद्रा षोडशांश लेकर इस चूर्ण की 24 रत्ती मात्रा जल के साथ दें।

(5) पारद, गन्धक एवं चावल 1-1 तोला लेकर कज्जली बनाकर इसमें 7 गोलियाँ बनाकर उसका धूम्र सेवन करायें।

संक्षेप में भावप्रकाश में वर्णित फिरङ्ग रोग का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। जन्मजात फिरङ्ग रोग का कोई वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। इसका वर्णन आधुनिक चिकित्सा के ग्रन्थों में देखना पड़ता है, जहाँ इसका वर्णन सिफिलिस के नाम से है। इस व्याधि का कारण Treponema pallidum नामक Spirochaete है। जन्मजात फिरङ्ग का संक्रमण संक्रमित माता से शिशु को प्राप्त होता है। प्राय: संक्रमण अपरा के माध्यम से पहुँचता है। विरलावस्था में ही जन्म के समय अपत्य मार्ग के माध्यम से संक्रमण होता है। विलम्बित संक्रमण चुम्बन, संयोग या संक्रमित चूचुक के पान से होता है।

लक्षण—लक्षण के दृष्टिकोण से इसे 2 भागों में बाँट सकते हैं—

(1) प्रारम्भिक जन्मजात फिरङ्ग—इस अवस्था में व्याधि का प्रभाव शिशु में प्रथम 6 सप्ताह में दिखायी पड़ने लगता है, अथवा जन्म से भी हो सकता है। नाक से श्लेष्मापूय युक्त स्राव आता है। प्राय: ऊर्ध्व ओष्ठ के ऊपरी भाग पर व्रण बनता है जो ठीक होकर अपना दाग छोड़ जाता है। इसे Rhagdes कहते हैं। हाथ व पैर के तलवों पर फफोलेनुमा व्रण बनते हैं। मुख में या गुदा पर व्रण एवं विदार हो जाता है। त्वक्-व्रण पीठ पर, स्फिग पर तथा उसके पृष्ठ भाग पर बनते हैं।

पाण्डु, यकृत्-प्लीहावृद्धि, कामला, ज्वर, वृद्धिदर का रुक जाना, लसीका ग्रन्थियों का बड़ा होना 50% रोगियों में, नेत्रों में रञ्जित पटल और परितारा शोथ (Choroiditis, Iritis) मिलता है।

बड़ी अस्थियों के शिरों पर शोथ एवं/अथवा अस्थियों के ईषत् शोथ युक्त (Osteochondritis) होने से भ्रमवश पक्षाघात (Pseudo paralysis) की शंका हो

Scanned with CamScanner

जाती है। नाड़ीतन्त्र पर इसका दुष्प्रभाव मस्तिष्क को आघात, जलशीर्ष एवं नेत्रनाड़ी-आघात (Optic nerve atrophy) के रूप में दिखायी पड़ता है। इसके साथ ही श्वसनक ज्वर (Pneumonia) एवं यकृत् आघात (Hepatic failure) के रूप में घातक उपद्रव भी हो सकते हैं।

(2) विलम्बित जन्मजात फिरङ्ग—इस अवस्था में लक्षण 2 वर्ष की वय के बाद पैदा होते हैं। दंत विकार (Hutchinson's teeth), ललाट में उभार (Bossing) उभरी हुई जत्रु, दबी हुई नासा सन्धि, Sabre tibia[1] आदि लक्षण प्रारम्भ में मिलते हैं। बाद में अन्तरालीय स्वच्छ मण्डल प्रवाह (Interstitial keratitis), छत्रकार्श (Condylomata) अर्थात् त्वचा या श्लैष्मिक कला पर दानें होना, दोनों में शूलरहित शोथ (Cluttan's Joints), सिर में गाँठें, नासाभङ्ग (Saddle nose), बहरापन, Haemoglobinuria तथा Neuro syphilis के रूप में लक्षण होते हैं। अन्त में मस्तिष्कशोथ (Meningitis), खञ्जता (Juvenile tabes), नेत्रनाड़ी-आघात, आक्षेप, बहरापन तथा विभिन्न Cranial nerves का पक्षाघात हो सकता है। कौष्ठिक परिवर्तन में यकृत् वृद्धि एवं हृदय तथा रक्तपरिभ्रमण तन्त्र भी प्रभावित होता है।

फिरङ्ग के महत्त्वपूर्ण निदानार्थक बिन्दु इस प्रकार हैं, जिसे Syphilitic stigma के नाम से जाना जाता है—

Syphilitic Stigma

1. व्रणचिह्न (Rhagdes)
2. नासाभङ्ग (Saddle nose) Nose)
3. सिर पर गाँठें (Cranial bossing)
4. तालुछिद्र (Perforation of palate)
5. Sabre tibia
6. अन्धता

Hutchison's triad

1. राजदन्त विकार (Peg-shaped upper central incisiors)
2. अन्तरालीय स्वच्छ मण्डलप्रवाह (Interstitial keratitis)
3. बहरापन

प्रयोगशालीय परीक्षण—

1. जीवाणु का खुरचन में पाया जाना।
2. एक्स-रे परीक्षण में अस्थिगत परिवर्तन दिखायी देना।
3. V.D.R.L, Kahn Test तथा W.R. test, F.T.A.-ABS-IgM test
4. C.S.F. परीक्षण

1. Sabre tibia—Thickening and forward bowing of tibia due to calcification along the anterior ridge.

Scanned with CamScanner

चिकित्सा

1. Procaine Penicillin 4 से 6 लाख यूनिट्स/प्रतिदिन 7 से 10 दिन तक नये रोगियों में तथा 14 से 21 दिन जीर्ण रोगियों में सूचीवेध से मांसगत देने से लाभ होता है। V.D.R.L. या W.R. test ऋणात्मक न होने पर पुन: दिया जा सकता है।

2. अन्तरालीय स्वच्छ मण्डलप्रवाह में Cortisone नेत्रबिन्दु डालना चाहिए।

3. अन्य लक्षणानुसार चिकित्सा करें।

4. शिशु को उचित पोषण देना चाहिए।

5. यदि गर्भवती माता में इस व्याधि का निदान हो तो उपर्युक्त चिकित्सा के द्वारा नवजात शिशुओं को इस व्याधि से बचाया जा सकता है।

6. पुन: चिकित्सा में Erythromycin का भी प्रयोग कर सकते हैं।

राजयक्ष्मा

राजयक्ष्मा (Tuberculosis) एक संक्रमणजन्य व्याधि है। वंशानुगत या जन्मजात व्याधि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यदि गर्भवती माता राजयक्ष्मा से पीड़ित है तथा कोई चिकित्सा नहीं ले रही है अथवा संक्रमण करने की क्षमता रखती है तो नवजात शिशु को संक्रमण हो सकता है। प्राय: गर्भावस्था में अन्तिम त्रयमास में माता के संक्रमित होने पर शिशु को संक्रमण की सम्भावना अधिक होती है। इससे इस रोग के संक्रमणजन्य होने की स्वयमेव पुष्टि हो जाती है।

निदान

'वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्' ॥ (मा.नि. 10:1)

वेगविधारण, क्षय, साहस तथा विषमासन इन चार हेतुओं से त्रिदोषज यक्ष्मा नामक रोग की उत्पत्ति होती है। वेगविधारण का तात्पर्य अधारणीय वेगों को रोकने से है तथा क्षय का अर्थ 'क्षीयतेऽनेनेति क्षय:' अर्थात् जिसके कारण रोगी निरन्तर क्षीण होता जाता है; यथा अतिव्यवाय, अनशन, रक्तस्राव आदि। साहस अर्थात् 'साहसी बलवद्विग्रहादि:' अर्थात् उमङ्ग में आकर सहसा अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने की प्रवृत्ति साहस है। विषमाशन अर्थात् प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोगसंस्था तथा उपयोक्ता के विरुद्ध आहार का उपयोग करने से स्रोतोवरोध तथा अन्त में राजयक्ष्मा की उत्पत्ति होती है।

वस्तुत: उपरोक्त समस्त कारण 'धातुक्षय' करने वाले हैं। जब भी धातुक्षय होगा, रोग की प्रतिरोधक क्षमता में भी कमी आयेगी, परिणामस्वरूप व्याधि-उत्पादक जीवाणु 'Mycobacterium tuberculosis' व्याधि उत्पन्न करता है। अत: उपरोक्त कारण सहायक कारण के रूप में ग्राह्य हैं।

Scanned with CamScanner

सम्प्राप्ति

'कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः' ।। (मा.नि. 10:2)

कफ प्रधान दोषों के द्वारा रसवाही स्रोतों के अवरुद्ध हो जाने पर (अनुलोम क्षय) अथवा अति मैथुन करने के कारण वीर्य क्षीण होने से (प्रतिलोम क्षय) सभी धातुओं का क्षय हो जाता है तथा व्यक्ति शोष को प्राप्त होता है ।

पूर्वरूप—श्वास, अङ्गमर्द, मुख से कफ आना, तालु सूखना, वमन, अग्निनाश, मद, प्रतिश्याय, कास तथा निद्रा ये पूर्वरूप हैं । इसके अतिरिक्त रोगी के नेत्र श्वेत हो जाते हैं, मांस तथा स्त्रीरमण की इच्छा होती है ।

'श्वासाङ्गमर्दकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः' ।।
(मा.नि. 10:3)

राजयक्ष्मा का त्रिरूप, षड्रूप तथा एकादश रूप—लक्षणों की दृष्टि से राजयक्ष्मा को तीन वर्गों में रखा गया है—

त्रिरूप राजयक्ष्मा

चरकसंहिता (चि. 8:51)	भोजवचन (माधवनिदान 10 मधुकोषटीका)
1. अंस एवं पार्श्व में अभिताप (पीड़ा) 2. पैर तथा हाथ में ताप (जलन) 3. सर्वशरीरगत ज्वर	1. कास 2. ज्वर 3. रक्तपित्त

षड्रूप राजयक्ष्मा

चरकसंहिता (चि. 8:45)	सुश्रुतसंहिता (उ.त. 41:13)	योगरत्नाकर राजयक्ष्मा-निदान पृ. 363
1. कास 2. ज्वर 3. पार्श्वशूल 4. स्वरभेद 5. मलभेद 6. अरुचि	1. अरुचि 2. ज्वर 3. श्वास 4. कास 5. रक्तष्ठीवन 6. स्वरभेद	1. अग्निमान्द्य 2. ज्वर 3. शीतता 4. रक्तपूयमिश्रित वमन 5. सत्त्वहानि 6. दौर्बल्य

Scanned with CamScanner

एकादश रूप राजयक्ष्मा

चरकसंहिता (चि. 8:44 एवं नि.6:14)	सुश्रुतसंहिता (सू. 30:41:14-15)	
1. कास	1. स्वरभेद	वातिक लक्षण
2. अंसाभिताप	2. शूल	
3. स्वरभेद	3. स्कन्ध एवं पार्श्वसङ्कोच	
4. ज्वर	4. ज्वर	पैत्तिक लक्षण
5. पार्श्वशूल	5. दाह	
6. शिरःशूल	6. अतिसार	
7. रक्तवमन	7. रक्तष्ठीवन	
8. कफष्ठीवन	8. सिर का भारीपन	कफज लक्षण
9. श्वास	9. अरुचि	
10. अतिसार	10. कास	
11. अरुचि	11. कण्ठोद्ध्वंस	

उपर्युक्त विवेचन देखकर यह कहा जा सकता है कि साध्यासाध्यता, अथवा आधुनिकोक्त विभिन्न स्तरों से इसका कोई सामञ्जस्य नहीं है।

साध्यासाध्यता—उपर्युक्त एकादशरूप या षड्रूप या कास, श्वास तथा रक्तष्ठीवन इन तीनों लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा असाध्य है। इसके विपरीत यदि बल व मांस का क्षय न हुआ हो तो चिकित्सा करनी चाहिए। पर्याप्त भोजन के बाद भी निरन्तर क्षीण होने वाले, अतिसार से पीड़ित तथा जिसके पेट व मुष्क पर सूजन आ गयी हो ऐसे रोगी की चिकित्सा न करें। नेत्र श्वेत, अरुचि तथा ऊर्ध्वश्वास वाला एवं कष्ट से मूत्रत्याग करने वाला रोगी भी असाध्य है।

'एकादशभिरेमिर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम्।
कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैः कासश्वासासृगामयैः।
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः॥
सर्वरर्धैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥
महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम्।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत्॥
शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वसन्निपीडितम्।
कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम्'॥ (मा.नि. 10:8-12)

चिकित्सा—व्याधि एवं चिकित्सा का पूर्ण विवरण किसी भी कायचिकित्सा के ग्रन्थ में विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। यहाँ मात्र सङ्केत दिया जा रहा है—

Scanned with CamScanner

(1) व्यवायशोषी को दूध, रस, मांस, घृत आदि भोजन, मधुरगन्ध तथा जीवनीय गुण की औषधियाँ देनी चाहिए। (यो.र., राज.चि.पृ. 366)

(2) व्रणशोषी को स्निग्ध, दीपन, स्वादु एवं शीतल द्रव्यों का सेवन करायें।

(3) शोकादि शोषी को दीपनीय, लघु अन्न, हर्षोत्पादक वचन तथा दूध, स्निग्ध, एवं मधुर शीतल पदार्थ दें।

(4) अध्वशोषी को सुखपूर्वक शय्या पर रखें। दिवास्वप्न, शीतल-मधुर-वृंहण पदार्थ तथा मांसरस का आहार दें।

'आस्यासुखैर्दिवास्वप्नशीतैर्मधुरबृंहणैः।
तत्र मांसरसाहारैरध्वशोषिणमाचरेत्' ॥ (यो.र.राज.चि.पृ. 366)

(5) व्यायामशोषी को स्निग्ध पदार्थ दें।

(6) क्षतक्षय में हितकारी, शीतल पदार्थ, जीवनीय गणौषधि तथा कफकारक पदार्थों का सेवन करायें।

(7) बलवान् व बढ़े दोष वाले रोगी को वमन करायें। दोषहरणार्थ वात-कफ-नाशक क्वाथ दें, क्षीण रोगी को कदापि नहीं।

'बलिनो बहुदोषस्य वमनं रेचनं तथा।
वातश्लेष्महरं क्वाथं दद्याद् दोषपहं पुरा।
यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य यत्कृतं स्याद्विषोपमम्' ॥
(यो.र.राज.चि.पृ. 366)

(8) अपथ्य—बैगन, करैला, तेल, बिल्वफल, राई, मैथुन, दिवास्वप्न तथा क्रोध।

(9) पथ्य—शालि व साठी चावल, गोधूम, यव, मूँग, मदिरा, जाङ्गल पशु-पक्षी मांस, मूली एवं कुलत्थी जूस हितकर है। स्त्री जाति का पशुमांस एवं पुरुषवर्गीय पक्षी-मांस हितकर है। बकरी का मांस, दूध, घृत सेवन विशेष हितकर हैं।

औषधि योग[1]

1. यूष—षडङ्ग यूष।
2. क्वाथ—दशमूल क्वाथ।
3. चूर्ण—सितोपलादि, तालिसादि, लवङ्गादि, कर्पूराद्य चूर्ण, एलादि चूर्ण, अश्वगन्धादि चूर्ण, द्राक्षादि चूर्ण, चतुर्दशाङ्ग लौह, बृहन्नवायस लौह, शिलाजीत योग, जातिफलादि चूर्ण।
4. घृत—दशमूलघृत, वासाघृत, षट्पलघृत, नवनीत योग, बलाद्य घृत, द्राक्षादि घृत।

1. उपर्युक्त समस्त योग योगरत्नाकर तथा भावप्रकाश से उद्धरित हैं। इनका आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

5. अवलेह—च्यवनप्राश, खण्डपिप्पली अवलेह, वासावलेह, अगस्त्यावलेह, अमृतप्राशावलेह ।

6. आसव-अरिष्ट—द्राक्षासव, पिप्पल्यारिष्ट, खर्जूरासव ।

7. रसौषधि—चतुर्मुख रस, राजमृगाङ्क, कनकसिन्दूररस, लक्ष्मीविलास, वसन्त-कुसुमाकर, स्वर्णपर्पटी, स्वर्णवसन्तमालती रस आदि ।

जैसा कि पहले कह चुके हैं कि आधुनिक विज्ञान इसका कारण 'Mycobacterium tuberculosis' नामक Bacilli को मानता है । यह जानते हुए भी कि यह जन्मजात या वंशानुगत रोग नहीं है । शिशु-बालक इस व्याधि से अत्यधिक पीड़ित होते हैं ।

निदानाश्रित सम्प्राप्ति—प्राय: शिशु किसी बड़े व्यक्ति से संक्रमण प्राप्त करता है तथा संक्रमण लसिकाग्रन्थि, गलशुण्डी, त्वचा या आन्त्र में कभी-कभी तथा प्राय: फुफ्फुस में प्रथम होता है ।

इस प्रारम्भिक संक्रमण के लगभग 6 सप्ताह (न्यूनतम 2 अधिकतम 10 सप्ताह) के बाद जीवाणु स्थानीय लसिकाग्रन्थि में पहुँचते हैं । वहाँ पर कोशिकाओं को नष्ट कर Casseation करते हैं । इसके बाद Ghon's focus[1] का निर्माण होता है । जिनके स्थानीय लसिकावाहिनी तथा लसिकाग्रन्थियों को भी प्रभावित कर लेने पर Primary complex कहते हैं । यह Ghon's focus क्रमश: रोपण (Healing) की प्रक्रिया में Calcification तथा Fibrosis के साथ लगा रहता है । Primary complex पुन: संक्रमण की अवस्था में (विशेषरूप से 15-16 वर्ष वय में) पुन: क्रियाशील (reactivation) दीखता है ।

उद्भवन (Incubation) काल की समाप्ति पर विभिन्न लक्षण यथा—ज्वर, Pleural reaction, त्वक्-लक्षण Erythema nodosum तथा Tuberculin test धनात्मक मिलता है ।

यह Primary complex व्याधि के विकास की प्रक्रिया में दो प्रकार के परिणाम देता है ।

(1) स्थानीय विस्तार—फुफ्फुस फुफ्फुसावरण सद्रव संक्रमण, श्वसनिका (Broncheole) पर दबाव पड़ने से निपात (Collapse) या अवरोधजन्य स्फीति (Emphysema) अथवा Endobrachial tuberculosis होती है, जो बच्चों में प्राय: दीखती है ।

---

1. Ghon's Focus 1 सेण्टीमीटर परिधि वाला Tubercle है । संक्रमण स्थल पर सर्वप्रथम Polymorphs एकत्र होते हैं । फिर Epithelial cell का निर्माण होता है । अन्त में Tubercle बनता है जसकी बाह्य भित्ति Mononuclear leucocytes द्वारा तथा कभी-कभी Giant cell द्वारा बनती है । यह Ghon's focus है ।

Scanned with CamScanner

(2) सार्वदैहिक विस्तार—एक छोटा-सा भी Primary complex रक्तवाहिनी के सान्निध्य में होने पर या बड़ी शिरा में फटने पर रक्त द्वारा संक्रमण सर्वशरीर में पहुँचाता है तथा Millary tuberculosis, मस्तिष्कशोथ या यकृत्-प्लीहा-उदरच्छद, अस्थि, सन्धियों, वृक्क या त्वचा में संक्रमण करता है ।

स्थान-भेद से राजयक्ष्मा के लक्षण

यह व्याधि शरीर के किसी भी अङ्ग या उपाङ्ग में हो सकती है । कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों का संक्षिप्त परिचय निम्नाङ्कित है—

(1) प्रारम्भिक (Primary focus)—प्राय: शिशुओं या बच्चों में इसके कोई लक्षण नहीं मिलते । कुक्कुरकास या खसरा जैसी व्याधियों के बाद यह लक्षण पैदा होने लगते हैं । अधिक वय के बच्चों में अङ्गमर्द, थकान, अरुचि, वजन कम होना, वृद्धि में कमी होना तथा हल्का ज्वर मिलता है ।

व्याधि का निदान Montoux test कराने पर या वक्ष का एक्सरे कराने पर होता है ।

(2) Hilar lymphadenitis—Primary complex का यह एक प्रधान लक्षण है । कास, ज्वर एवं शरीर-भार का कम होना साथ में सामान्य लक्षण है । Montoux test धनात्मक तथा एक्सरे में फुफ्फुसमूल पर बढ़ी हुई लसिकाग्रन्थियों की छाया पाया जाना निश्चयात्मक निदान है ।

(3) क्षयज उरस्तोय (Pleural effusion)—जब Primary complex जो फुफ्फुस के बाह्यभाग में स्थित रहा हो अथवा वृद्धि को प्राप्त लसिकाग्रन्थि के फटने से उसका द्रव फुफ्फुसावरण पर चला जाता है । इसमें ज्वर, शरीर-भार का कम होना, वक्ष:शूल एवं श्वसन में कठिनाई (Dyspnoea) होती है । श्वसन के समय वक्ष का हिलना कम हो जाता है । Dullness on percussion, pleural rub, decreased breath sounds and vocal fremitus प्रधान लक्षण हैं ।

यदि वायु भी वहाँ पहुँच चुकी है तो एक्सरे लेने पर Uniform opacity तथा Curve fluid line दिखायी पड़ती है ।

वक्ष पार्श्व से सूचिका भेद करके द्रव निकालने पर Straw भूसा के वर्ण का द्रव निकलता है ।

(4) Miliaris tuberculosis—यह रक्तपरिभ्रमण संस्थान द्वारा फैलने वाली अवस्था है जिसमें फुफ्फुस में Miliary mottling होने के साथ साथ यकृत्, प्लीहा तथा अन्य अङ्ग भी प्रभावित होते हैं । क्षयज मस्तिष्कशोथ इसके साथ प्राय: हो जाता है । व्याधि का आक्रमण प्राय: धीरे-धीरे होता है पर एकाएक भी हो सकता है । तीव्र ज्वर, अङ्गमर्द, रात्रि में स्वेद आना, शरीर-वृद्धि का रुक जाना एवं पाण्डु सामान्य लक्षण

Scanned with CamScanner

हैं । कुछ रोगियों में खांस भी मिल सकता है । प्राय: साथ-साथ यकृत्-प्लीहावृद्धि भी मिलती है । वक्ष में कभी-कभी Crepts भी मिल सकते हैं ।

एक्स-रे करने पर बहुत-से छोटे-छोटे बिन्दुवत् धब्बे दिखायी पड़ते हैं । इसे Snow storm appearance कहते हैं । बी.सी.जी. टेस्ट धनात्मक मिलता है । Tuberculin test का विशेष महत्त्व नहीं है ।

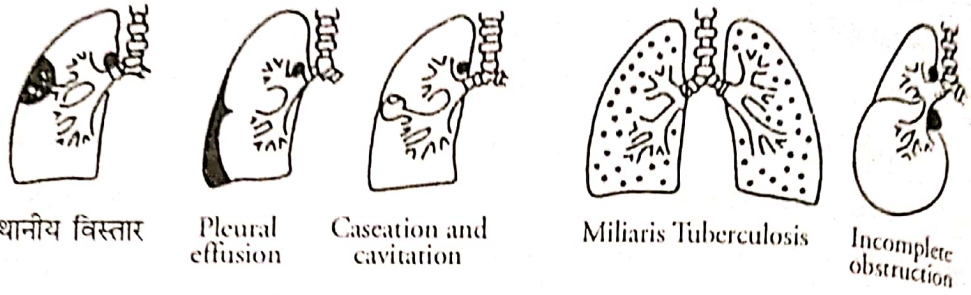

चित्र सं. 35 : प्राइमरी कॉम्प्लेक्स का परिणाम

(5) Superficial tuberculous lymphadenitis—यह हमारे देश की अति सामान्य समस्या है । सबसे पहले ग्रीवा की लसिकाग्रन्थियाँ फिर कक्षा को प्रभावित करती हैं । सार्वदैहिक लसिकाग्रन्थियाँ प्राय: प्रभावित नहीं होतीं । सर्वप्रथम ग्रन्थि अलग होकर आसानी से पकड़ कर हिलायी जा सकती है पर शीघ्र ही स्थानीय त्वचा से चिपक जाती है तथा शीघ्र ही शीत वृद्धि का निर्माण एवं फूटकर स्थानीय त्वचा पर व्रण बना देती है । इसे Scrofuloderma कहते हैं ।

(6) उदरक्षय—यह प्राय: कम दिखायी पड़ती है । इसके तीन उपवर्ग हैं—

- Tuberculous mesenterica (Glandular involvement) ।
- उदरावरण कलाशोथ ।
- आन्त्रिक राजयक्ष्मा ।

यह प्राय: स्वतन्त्र रूप से न होकर फुफ्फुस या अन्य किसी संक्रमण के बाद होती हैं । (विशेष विवरण देखिये—बालग्रह-विवेचन में शुष्करेवती)

इनके अतिरिक्त अस्थिगत, त्वग्गत, वृक्कगत, मस्तिष्कगत, कान व नेत्र गत भी राजयक्ष्मा होता है ।

(7) फुफ्फुस राजयक्ष्मा—एक बन्द पड़े Primary complex के रोगी में पुन: संक्रमण अथवा खसरा, कुक्कुरकास आदि के कारण पुन: लक्षणोत्पत्ति होने लगती है। यह युवा प्रकार की Adult type या Chronic pulmonary tuberculosis या Phthisis कहलाती है । इसमें Cavitation सामान्य लक्षण है । ग्रन्थि पर प्रभाव कम पड़ता है ।

Scanned with CamScanner

शैशवीय एवं युवा राजयक्ष्मा में अन्तर

शैशवीय (Childhood type)	युवा राजयक्ष्मा (Adult type)
1. प्रारम्भिक संक्रमण से प्रारम्भ	Healed focus के पुनः क्रियाशील होने से या पुनः संक्रमण से प्रारम्भ।
2. फुप्फुस के बाह्य भाग पर (Peripheral)	फम्फुस शीर्ष पर (Apical)
3. क्षय-क्षत की पूर्ति Calcification द्वारा	Fibrosis द्वारा
4. लसिकाग्रन्थि प्रभावित	बहुत ही कम
5. सामान्यतः दूसरे को संक्रमण नहीं कर सकता।	संक्रमण कर सकता है।
6. रक्तपरिभ्रमण द्वारा विस्तार सम्भव है।	बहुत ही कम सम्भव है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—इसके अन्तर्गत Montoux test, BCG test, X-ray एवं ष्ठीवन-परीक्षण (AFB के लिए) आदि का बहुत महत्त्व है। आवश्यकतानुसार आमाशयिक द्रव परीक्षण (AFB के लिए) भी कराया जाता है। लसिका ग्रन्थि राजयक्ष्मा की सम्भावना में FNAC करते हैं। नवीनतम तकनीक में ष्ठीवन परीक्षण के स्थान पर "Radiometric method of detection of Tuberculosis (Bactec system) का प्रयोग किया जा रहा है, जो अत्यन्त संवेदनशील है।

अत्यन्त संवेदनशील परीक्षण -
- Detection of Tuberculous DNA in blood/CSF.
- Serodiagnosis tests (Based on Antibody, Antigen or on circulating immune complexs monoclonal antibodies, synthetic peptidase friction etc.)
- Elisa test (IgM & IgG. for T.B.)

शैशवीय राजयक्ष्मा के निदानार्थ Kenneth Jone's ने 1960 में एक तालिका प्रस्तुत की है जो निदान में अति सहायक है—

Kenneth Jone's निदान-तालिका

+ 3 अङ्क	+2 अङ्क	+ 1 अङ्क	-1 अङ्क
1. ष्ठीवन, आमाशयिक धोवन, मूत्रादि में Bacilli का मिलना।	1. एक्सरे-परीक्षण धनात्मक।	1. एक्सरे-परीक्षण में सन्देहास्पद स्थिति।	गत 2 वर्षों में BCG लगा हो।
2. यकृत् Biopsy में Granulomatous Lesion, नेत्र-परीक्षण में Choroid tubercles का मिलना।	2. लक्षणों की उपस्थिति यथा उरस्तोय, त्वचा में लक्षण, Osteomyclitis, जलोदर आदि।	2. लक्षणों का मिलना, यथा मस्तिष्कशोथ, रक्त-ष्ठीवन, लसिकाग्रन्थि वृद्धि आदि।	

Scanned with CamScanner

+ 3 अङ्क	+2 अङ्क	+ 1 अङ्क	-1 अङ्क
3. Montoux test का 10 मि.मी. से अधिक उत्सेध ।	3. Montoux test में उत्सेध 5 से 9 मि. मी. का हो । 4. Montoux व्रणात्मक, रोगी पुनः परीक्षण में धनात्मक हो जाय । 5. बलगम में AFB. मिलता हो ऐसे रोगी से सम्बन्ध का इतिवृत्त हो ।	3. राजयक्ष्मा पीड़ित से सम्बन्ध का इतिवृत्त हो । 4. Non specific Granuloma । 5. वय 2 वर्ष से कम हो ।	
		परिवर्तन—इस क्रम में कुपोषण PEM को भी स्थान दिया जाय[1] ।	

इस तालिका से अधिकतम 24 अङ्क प्राप्त किये जा सकते हैं ।

परिणाम—

(1) 1 से 2 अङ्क—सम्भावना नहीं के बराबर (∓)
(2) 3 से 4 अङ्क—सम्भावना है । (±)
(3) 5 से 6 अङ्क—सम्भव है । (+)
(4) 7 से अधिक अङ्क—निश्चयात्मक (+++)

Crofton, Horne & Miler Scoring Method

यह स्कोरिंग पद्धति सरल एवं व्याधि-निदान में सहायक है । इस पद्धति में यदि स्कोर 7 से अधिक है तो व्याधि की सम्भावना अधिक होती है ।

		स्कोर
1. अस्वस्थता काल (सप्ताह में)	- A - 2 सप्ताह से कम	0
	B - 2-4 सप्ताह	1
	C - 4 सप्ताह से अधिक	3
2. पोषण (% शरीर भार/वय)	- A - 80 से अधिक	0
	B - 80-60	1
	C - 60 से कम	3
3. यक्ष्मा का पारिवारिक इतिवृत्त	- A - नहीं	0
	B - परिवार द्वारा कहा गया	1
	C - ष्ठीवन +	3

1. Pediatrics By Suraj Gupte द्वारा संस्तुति के आधार पर यह परिवर्तन इस तालिका में जोड़ा गया है । इससे परिणाम 95% तक सही प्राप्त होता है ।

Scanned with CamScanner

4. माण्टोक्स टेस्ट	धनात्मक	3
5. कुपोषण	4 सप्ताह की चिकित्सा के बाद भी सुधार न हो	3
6. लसिका ग्रन्थि वृद्धि		3
7. सन्धि एवं अस्थिशोथ		3
8. उदर मास/जलोदर		3
9. केन्द्रीय नाड़ी तन्त्र के लक्षण या CSF में असामान्यता		3
10. मेरु विकृति (Angle deformity)		4

बी.सी.जी. परीक्षण तथा ट्यूबरकुलीन परीक्षण की विस्तृत चर्चा लेहाध्याय में की गयी है। रक्त-परीक्षण में बढ़ा हुआ E.S.R. भी राजयक्ष्मा के निदान में सहायक होता है।

चिकित्सा

राजयक्ष्मा की चिकित्सा में प्राय: तीन औषधि-समूह के प्रयोग का विधान है, क्योंकि एक औषधि प्रयोग में उस औषधि के प्रति सहिष्णुता की सम्भावना रहती है।

राजयक्ष्मा में प्रयोग होने वाली प्रमुख औषधि एवं मात्रा

औषधि	मात्रा/शरीर भार (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	मार्ग	औषधि का अन्य प्रभाव
1. Isoniazid	5 से 20 (1 बार में)	मुख	मलबन्ध, आक्षेप, त्वग्विकार, नाड़ीविका, यकृत् पर विषाक्त प्रभाव
2. Streptomycin	20 से 40	मांसगत सूचीवेध	बहरापन, वृक्क पर विषाक्त प्रभाव
3. PAS	200 से 400	मुख	अन्नवह प्रणाली के उपद्रव, कामला, रक्तविकार यथा Agranulocytosis
4. Thiacetazone	3 से 5	मुख	यकृत् पर विषाक्त प्रभाव, त्वग्विकार (नं. 3 के साथ नहीं देना चाहिए)
5. Rifampicin	10 से 20 (भोजन पूर्व 1 मात्रा)	मुख	यकृत् पर विषाक्त प्रभाव
6. Ethambutol	15 से 25	मुख	नेत्रविकार, नाड़ीविकार
7. Pyrazinamide	15 से 30	मुख	यकृत् पर विषाक्त प्रभाव

[इनके अतिरिक्त अन्य औषधियाँ; यथा—Ethionamide, Cycloserine, Pyrazinamide, Viomycin आदि भी है। इसका विषाक्त प्रभाव अधिक होने के कारण यह मजबूरी में ही प्रयोग की जाती हैं।]

Scanned with CamScanner

प्रथम श्रेणी राजयक्ष्मारोधी औषधि-समूह—

- Streptomycin + Isoniazid + PAS/Thiacetazone
- Ethambutal + Isoniazid + Thiacetazone/PAS
- Rifampicin + Isoniazid + Thiacetazone

क्षयज मस्तिष्कशोथ, तीव्र स्वरूप के रोगियों में तीन औषधि समूह का प्रयोग करना श्रेयस्कर है। Streptomycin का प्रयोग स्थिति पर विचार कर 3 माह के बाद बन्द किया जा सकता है। प्राय: प्रथम दो वर्ग 18 से 24 माह तक रोगी को देना पड़ता है। तृतीय वर्ग में औषधि-प्रयोगकाल 6 से 9 माह कर दिया गया है।

प्राय: उपरोक्त समूहों में Isonex एवं Thiacetazone को न बदलने का कारण अच्छा प्रभाव एवं कम कीमत है।

(ख) राजयक्ष्मारोधी औषधियों का अल्पकालीन प्रयोग—आजकल राजयक्ष्मा की चिकित्सा का काल घट कर 6 से 9 माह रह गया है।

राजयक्ष्मा की चिकित्सा व्यवस्था में दिन प्रतिदिन परिवर्तन होता जा रहा है। यहाँ पर इण्डियन एसोशियेशन ऑफ पिडियाट्रिक द्वारा अनुमोदित चिकित्सा व्यवस्था दी जा रही है। परन्तु चिकित्सक समय-समय पर होने वाले शोध कार्यों के आधार पर इसमें परिवर्तन कर सकते हैं।

IAP चिकित्सा में चिकित्सा इतिवृत्त के आधार पर राजयक्ष्मा को 5 वर्गों में बाँटा गया है तथा प्रत्येक वर्ग के लिए अलग-अलग राजयक्ष्मारोधी औषधि का प्रयोग बताया गया है; यथा—

प्रथम वर्ग

(1) लक्षण रहित संवर्ग, माण्टूक्स टेस्ट +, वय <3 वर्ष
(2) उपर्युक्त, वय <5 वर्ष, साथ में कुपोषण (III/IV श्रेणी)
(3) लक्षण रहित, माण्टूक्स टेस्ट + (शीघ्र ही हुआ हो)
(4) वक्ष एक्स-रे सामान्य, Calcification/Fibrosis
(5) बालक वय <3 वर्ष, + रोगी के सम्पर्क में हो
(6) बालक (क्रम 2) परवर्णित अवस्था, + रोगी के सम्पर्क में हो

6 माह तक
आइसोनेक्स + रिफैम्पीसीन दीजिए।

द्वितीय वर्ग

(1) फुफ्फुस में Primary complex
(2) लक्षण युक्त बालक, माण्टूक्स +, वय <3 वर्ष } without
(3) उपर्युक्त, वय <5 वर्ष, कुपोषण (III/IV श्रेणी) } Localization
(4) लसिका ग्रन्थि शोथ (Isolated)
(5) Pleural effusion

प्रथम 2 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन
- पायराजिनामाइड

पुनः 4 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन

तृतीय वर्ग

(1) वृद्धि को प्राप्त फुफ्फुस व्याधि
(2) लसिका ग्रन्थियों में शोथ
(3) In case of non-resolution of lesion <3 months

प्रथम 2 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन
- पायराजिनामाइड
- इथाम्ब्यूटाल

पुनः 4 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन

चतुर्थ वर्ग

(1) Millary T.B./Disseminated T.B.
(2) Cavitatory/Bronchopneumonia
(3) अस्थिगत (Osteoarticular)
(4) उदरगत, हृदयावरणगत (Pericordial) एवं मूत्रवह संस्थानगत

प्रथम 2 माह
तृतीय वर्गवत्
पुनः 7 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन

पंचम वर्ग

(1) नाड़ीवह संस्थानगत (Neuro T.B.)

प्रथम 2 माह
तृतीय वर्गवत्
पुनः 10 माह
- आइसोनेक्स
- रिफैम्पीसीन

IAP द्वारा संस्तुत औषधि मात्रा—

1. आइसोनेक्स	-	*5+ मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार
2. रिफैम्पीसीन	-	10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार
3. पायराजिनामाइड	-	25 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार
4. इथामब्यूटाल	-	20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार
5. स्ट्रेप्टोमाइसिन	-	20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार
6. प्रेडनीसोलोन	-	1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार

*इससे कम मात्रा नहीं देनी चाहिए तथा गणना में अगला उच्च उपक्रम यथा 10/15/20 ग्रहण करें।

विशिष्ट निर्देश

(1) सभी औषधियाँ एक बार में खाली पेट देनी चाहिए।
(2) मानक मात्रा में औषधि का प्रयोग सुरक्षित है।
(3) बालकों में Isonex के साथ B6 का प्रयोग आवश्यक नहीं है।

Scanned with CamScanner

(4) कुपोषणयुक्त बालकों में यकृत पर विषाक्त प्रभाव दृष्टिगत हो सकता है।

(5) प्रतिदिन औषधि-प्रयोग की विधा अन्य औषधि प्रयोग विधा (सप्ताह में 2 या 3 दिन) से श्रेयस्कर है।

(6) प्रेडनीसोलोन—प्राय: नाड़ी तन्त्रगत, Milliary T.B, जब यक्ष्मा Serous layers को प्रभावित करती हो, Endobronchial, Segmental, मूत्रवह संस्थान के यक्ष्मा में 1 mg/kg शरीर भार की मात्रा में 4 से 8 सप्ताह, नाड़ी तन्त्र यक्ष्मा में 8 से 12 सप्ताह प्रयोग कर सकते हैं।

(7) माता यदि यक्ष्मा ग्रसित हो विशेषरूप से तृतीय त्रैमास में एवं शिशु उत्पन्न हो उस अवस्था में मातृस्तन्य अवश्य पिलायें। BCG टीकाकरण तुरन्त करायें। वक्ष एक्स-रे असामान्य होने पर प्रथम 2 माह आइसोनेक्स, रिफैम्पीसीन, पायराजिनामाइड, पुन: 7 माह प्रथम वर्गवत् औषधि का प्रयोग करें।

(8) जन्मजात यक्ष्मा में भी उपर्युक्त चिकित्सा-व्यवस्था करनी चाहिए।

आइसोनेक्स (Isonex) का विशिष्ट प्रयोग

(1) यदि व्याधि का कोई प्रेरणस्थान (Focus) अन्यत्र न हो, BCG लगा हो तथा Lympho-adenitis हो।

(2) बी.सी.जी. लगे हुए 5 वर्ष वय तक के बच्चे में Tuberculin परीक्षण धनात्मक हो।

(3) कुछ माह पूर्व BCG न लगा हो, फिर भी Montoux ऋणात्मक शिशु धनात्मक हो जाय।

(4) राजयक्ष्मा संक्रमण करने वाले व्यक्ति के सम्पर्क में (BCG न लगा हुआ) शिशु आ जाय।

उपरोक्त अवस्थाओं में शिशु को Isonex 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार से 6 से 12 माह तक देना चाहिए।

विशिष्ट अवस्थाएँ—कुछ विशेष स्थिति में यथा क्षयज मस्तिष्कशोथ, तीव्र स्वरूप का क्षय वक्ष में, क्षयज उरस्तोय आदि में Steroids 1 से 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन 4 से 8 सप्ताह तक आवश्यकतानुसार दें।

सुरक्षात्मक व्यवस्था

1. बी.सी.जी. का टीका।
2. सम्भावित संक्रमण के सन्देह में isonex का प्रयोग।

3. राजयक्ष्मा के रोगी का शीघ्र निदान एवं उपयुक्त चिकित्सा।
4. राजयक्ष्मारोधी औषधि देने के बाद भी यदि लाभ नहीं होता है तो कुमार-कल्याण रस, अमृता सत्त्व एवं सितोपलादि का योग बनाकर अकेले अथवा आधुनिक औषधियों के साथ देना अत्यन्त लाभप्रद होता है।
5. बी.सी.जिओसिस में भी यह योग अत्यन्त लाभप्रद है।

प्रमेह

'प्रकर्षेण प्रभूतं प्रचुरं वारंवारं वा मेहति मूत्रत्यागं करोति यस्मिन् रोगे स प्रमेहः'।

अर्थात् अत्यधिक या बार-बार एवं प्राय: गँदले मूत्र का त्याग जिस रोग में होता है वह प्रमेह है।

यह प्रमेह बीजदोष से उत्पन्न होने के कारण असाध्य होता है।

'जात: प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्य उक्त: स हि बीजदोषात्' ॥
(च.चि. 6:57)

बीजदोष के अतिरिक्त सुखासन पर शयन, सुखपूर्वक शयन (अत्यधिक आराम), दही, ग्राम्य, औदक तथा आनूप मांसरस का सेवन, दूध, नवान्न, गुड़ के बने पदार्थों का सेवन, कफवर्धक पदार्थों का सेवन प्रमेह उत्पन्न करता है।

'आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसा: पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतु: कफकृच्च सर्वम्' ॥
(च.चि. 6:4)

यह प्रमेह 20 प्रकार का होता है। कौमारभृत्य के सन्दर्भ में हम उन सबका विस्तृत वर्णन न देकर जन्मजात या वंशानुगत भेदों का ही उल्लेख करने का प्रयास करेंगे। इसके 20 भेद सभी आचार्यों ने किये हैं, परन्तु कहीं-कहीं नाम या लक्षण में भेद है जो आगे प्रस्तुत तालिका में दर्शाया गया है। इस तालिका में माधवनिदान के टीकाकार श्री सुदर्शन शास्त्री के मत से उसकी आधुनिक व्याख्या भी दी जा रही है तथा उसे ही आगे वर्णन का आधार बनाया गया है। विस्तृत विवरण हेतु कायचिकित्सा के ग्रन्थों का अध्ययन उचित होगा।

प्रमेहोत्पत्ति के तीनों दोष कारण हैं। मेद, रक्त, शुक्र, जल, वसा, लसिका, मज्जा, रस, ओज एवं मांस यह दस दूष्य हैं। इनके संयोग से बीस प्रकार के प्रमेह की उत्पत्ति होती है।

Scanned with CamScanner

प्रमेह के दोषानुसार भेद एवं सुदर्शन शास्त्री के मत से उनका आधुनिक विवेचन

चरकसंहिता निदानस्थान (4)	सुश्रुतसंहिता निदानस्थान (6)	अष्टाङ्गहृदय	श्री सुदर्शन शास्त्री* का मत
		कफज	
उदकमेह	उदकमेह	उदकमेह	Diabetes insipidus
इक्षुवालिकारसमेह	इक्षुवालिकामेह	इक्षुमेह	Alimentary glycosuria
सान्द्रमेह	सान्द्रमेह	सान्द्रमेह	Phosphaturia
सान्द्रप्रसादमेह	सुरामेह	सुरामेह	Acetonuria
शुक्लमेह	पिष्टमेह	पिष्टमेह	Phosphaturia या Chyluria
शुक्रमेह	शुक्रमेह	शुक्रमेह	Spermaturia
शीतमेह	-	शीतमेह	-
शनैर्मेह	शनैर्मेह	शनैर्मेह	(मूत्राघात का एक भेद)
लालामेह	-	लालामेह	Albuminuria
सिकतामेह	सिकतामेह	सिकतामेह	Lithuria
-	लवणमेह	-	Oxaluria
-	फेनमेह	-	Pneumaturia
		पित्तज	
क्षारमेह	क्षारमेह	क्षारमेह	Alkaline urine
कालमेह	-	कालमेह	Haematuria का एक भेद ?
नीलमेह	नीलमेह	नीलमेह	-
हरिद्रामेह	हरिद्रामेह	हरिद्रामेह	Biluria
मञ्जिष्ठामेह	मञ्जिष्ठामेह	मञ्जिष्ठामेह	Haemoglobinuria
रक्तमेह	रक्तमेह	रक्तमेह	Haematuria
-	आम्लमेह	-	Highly acidic urine
		वातज	
मज्जामेह	सर्पिर्मेह	मज्जामेह	Chyluria ?
हस्तिमेह	हस्तिमेह	गजमेह	False incontinence of urine
वसामेह	वसामेह	वसामेह	Lipuria
मधुमेह	क्षौद्रमेह	मधुमेह	Diabetes mellitus

* श्रीसुदर्शनशास्त्री कृत माधवनिदान की टीका द्रष्टव्य ।

मधुमेह की व्यापकता

'सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि' ॥ (सु.नि. 6:27)

'कालेनोपेक्षिताः सर्वे यद्यान्ति मधुमेहताम् ।
मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः' ॥
(अ.हृ.नि. 10:20-21)

सभी प्रकार के प्रमेहों की प्रारम्भावस्था में चिकित्सा न करने से वे मधुमेह का रूप धारण कर लेते हैं तथा असाध्य हो जाते हैं । क्योंकि सभी प्रमेह उपेक्षा करने पर कुछ समय बाद मधुमेह में बदल जाते हैं । शरीर के स्वभावतः मधुर हो जाने से सभी मेहों में मधु के समान मूत्र आता है अतः सभी मेह मधुमेह कहे जाते हैं ।

आयुर्वेद-ग्रन्थों में इनका शैशवीय रूप कहीं अलग से वर्णित नहीं मिलता है परन्तु सादृश्य आधुनिक रोगों में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है । विषय एवं व्याधि के महत्त्व को देखते हुए निम्न का वर्णन संक्षेप में दिया जा रहा है—

1. सान्द्रमेह
2. उदकमेह
3. मधुमेह

अन्य सभी वर्ग प्रायः लक्षण के रूप में इंगित हैं जो बहुत-सी व्याधियों में पाये जाते हैं ।

सान्द्रमेह

'यस्य पर्युषितं मूत्रं सान्द्रीभवति भाजने ।
पुरुषं कफकोपेन तमाहुः सान्द्रमेहिनम्' ॥ (च.नि. 4:5)
'आविलं सान्द्रं सान्द्रमेही' । (सु.नि. 6:12)
'सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति' ॥ (अ.हृ.नि. 10:10)

कफ के कोप के कारण पात्र में रखा हुआ जिसका मूत्र गाढ़ा हो जाता है, गन्दला गाढ़ा मूत्र त्याग करता है वह सान्द्रमेह है ।

Phosphaturia (मूत्र में फॉस्फेट्स का जाना) इससे सामान्य मूत्र में भी गन्दलापन दिखायी देता है । यह निम्न अवस्थाओं में सम्भव है ।

1. क्षारीय मूत्र ।
2. Antacid औषधि लेने के बाद ।
3. मानसिक दबाव एवं तनाव के पश्चात् ।
4. Hyperchlorohydria.

Scanned with CamScanner

5. शोषजन्य व्याधियाँ—जिन व्याधियों में क्षय होता हो ।
6. अधिक फल व सब्जी खाने पर ।
7. ज्वर एवं आक्षेप में ।

चिकित्सा-व्यवस्था कारण के अनुसार करनी चाहिए । यदि कोई विशिष्ट व्याधि न हो तो प्रायः मानसिक सन्तोष देने से ही रोगी ठीक हो जाता है ।

उदकमेह

'अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।
श्लेष्मकोपान्नरो मूत्रमुदमेही प्रमेहति' ।। (च.नि. 4:13)
'श्वेतमवेदनमुदकसदृशमुदकमेही मेहति' ।। (सु.नि. 6:10)
'अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।
मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम्' ।। (अ.ह.नि. 10:8)

कफ के प्रकोप के कारण उदकमेही स्वच्छ, अतिश्वेत, शीतल, गन्ध रहित जल की तरह मूत्र त्याग करता है । मूत्र त्याग वेदना रहित होता है । वाग्भट ने मूत्र कुछ गँदला एवं पिच्छिल भी कहा है ।

Diabetes Insipidus—यह एक जीर्ण स्वरूप की व्याधि है जिसमें Neurohypophyseal System में व्यवधान उत्पन्न होता है । इस व्याधि में मूत्र का सान्द्र न होना, बार-बार मूत्र त्याग होना (5 से 20 लीटर प्रति/दिन) तथा साथ में बार-बार प्यास लगना एवं बहुमूत्रता से रात्रिनिद्रा का गड़बड़ हो जाना मुख्य लक्षण हैं । यदि तृषा में रोगी पानी न पा सके तो जलाल्पता, खनिज-लवण की अल्पता एवं तीव्र गति से शरीर-भार घटने लगता है ।

कारण—Vasopressin—Antidiuretic hormone की अल्पता, इसका मुख्य कारण Neurohypophyseal system में किसी कारण से दोषात्पत्ति है; यथा Craniopharyngioma, Optic glaucoma तथा अन्य अर्बुद, Histocytic infiltration, Reticuloendotheliosis, Leukemia, मस्तिष्कशोथ आदि तथा जन्मजात Autosomal dominant एवं X-linked recessive कारण ।

मरीज 24 घण्टे में 4 से 10 लीटर तक मूत्र त्याग करता है । मूत्र का आपेक्षिक घनत्व 1001 से 1005 तक होता है ।

चिकित्सा—वास्तविक चिकित्सा तो 'निदान-परिवर्जन' है । अर्थात् कारण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए । लाक्षणिक चिकित्सा में Pitressin tonnate का मांसगत सूचीवेध या नाक से लेने हेतु बिन्दु या फुहार (Spray) का प्रयोग करते हैं।

मधुमेह

प्रमेह प्रकरण में इसके 3 प्रकार के कारणों का विवेचन किया जा चुका है—

1. विशिष्ट प्रकार का आहार-विहार ।
2. जन्मजात बीजदोषजन्य ।
3. अन्य प्रमेहों की उचित चिकित्सा न करने पर कालान्तर में मधुमेह में परिवर्तन ।

लक्षण—

'कषायमधुरं पाण्डु रूक्षं मेहति यो नरः ।
वातकोपादसाध्यं तं प्रतीयान्मधुमेहिनम्' ।। (च.नि. 4:44)
'क्षौद्ररसवर्णं क्षौद्रमेही' । (सु.नि. 6:12)
'मधुमेही मधुसमं जायते स किल द्विधा ।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा' ।। (अ.ह.नि. 10:18-19)

वात के कोप के कारण जो मनुष्य कषाय, मधुर, पाण्डु एवं रूक्ष मूत्र त्याग करता है वह मधुमेही असाध्य होता है । अन्य आचार्यों ने मधु के समान मूत्र त्याग कहा है ।

वाग्भट ने इसकी उत्पत्ति दो प्रकार की मानी है—

1. प्रथम धातुक्षय, उससे वात का प्रकोपजन्य ।
2. दोषों से मार्गावरोध, उससे वात का प्रकोपजन्य ।

धातुक्षयजन्य असाध्य है तथा मार्गावरोधजन्य कष्टसाध्य है ।

प्रमेह-चिकित्सा

सिद्धान्त—

'स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथैकः परिदुर्बलश्च ।
सम्बृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य' ।।
(च.चि. 6:15)

प्रमेह के रोगी निम्न दो प्रकार के होते हैं—

1. स्थूल एवं बलवान् रोगी—इनका संशोधन करें ।
2. कृश एवं दुर्बल रोगी—इनका बृंहण करें ।

'बृंहयेदौषधाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम्' ।। (अ.ह.चि. 12:38)
'अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः ।।
योजनानां शतं यायात्खनेद्वा सलिलाशयान् ।
गोशकृन्मूत्रवृत्तिर्वा गोभिरेव सह भ्रमेत्' ।। (अ.ह.चि. 12:36-37)

कृश व्यक्ति को मेद तथा मूत्र न बढ़ाने वाला आहार एवं औषधि देना चाहिए तथा निर्धन रोगी को छाता, जूता रहित, नंङ्गे सिर-पैर हो, मुनियों के समान व्रत धारण कर प्रतिदिन 100 योजन चले या तालाब, जलाशय या कूप खोदे अर्थात् सादा भोजन एवं परिश्रम करें । गोमूत्र एवं गोबर पर जीवन यापन करे, उन्हीं के साथ रहे ।

Scanned with CamScanner

• सान्द्रमेह में प्रयुक्त कुछ औषधियाँ—

1. हरिद्रा, दारुहरिद्रा, तगर एवं विडङ्ग का क्वाथ मधु के प्रक्षेप के साथ पिलाना चाहिए।

2. सप्तपर्ण का क्वाथ पान करायें।

• उदकमेह में प्रयुक्त कुछ औषधियाँ—

1. हरीतकी, कट्फल, मुस्ता एवं लोध्रक्वाथ—मधु के प्रक्षेप के साथ पिलायें।

2. पारिजात क्वाथ का पान करायें।

• मधुमेह में प्रयुक्त कुछ औषधियाँ—

1. पूगीफल, विट एवं खदिर क्वाथ को मधु के प्रक्षेप के साथ दें।

2. खदिर, बबूल एवं पूगीफल का क्वाथ दे।

सामान्य चिकित्सा

1. क्वाथ—फलत्रिकादि क्वाथ, विडङ्गादि क्वाथ, सालसारादि गणक्वाथ। (सु.)

2. चूर्ण—त्रिफलादि चूर्ण, न्यग्रोधादि चूर्ण, कर्कटबीजादि चूर्ण।

3. वटी—गोक्षुरादि वटी, चन्द्रप्रभावटी, शिलाजत्वादि वटी (भै.र.) शिवागुटिका। (च.द.)

4. पाक एवं लेह—पूगीपाक, अश्वगन्धापाक, सालमपाक, द्राक्षापाक, सालसाराद्यवलेह। (च.द.)

5. आसव-अरिष्ट—लोहासव, पलाशपुष्पासव। (सि.भै., शा.सं.)

6. घृतादि—सिंहामृतघृत, शाल्मतीघृत (भै.र.)।

7. रसौषधि—वङ्गेश्वररस, वङ्गभस्मप्रयोग, शिलाजतुयोग, वसन्तकुसुमाकररस, मेहारिरस, बृहत्सोमनाथरस (भै.र.), तारकेश्वर रस (भै.र.), सर्वेश्वर रस (भै.र.) आदि।

Diabetes Mellitus

"It is a disturbance of energy metabolism due to a deficiency of Insulin or of its action and is characterized by altered homeostasis of carbohydrate, protein and fat.

अर्थात् इन्सुलिन की कमी या उसके कार्य में कमी के कारण उत्पन्न ऊर्जा चयापचय की विकृति है जो रक्त में शर्करा, प्रोभूजन एवं वसा की स्थिति को प्रभावित करता है।

वर्गीकरण

(1) इंसुलिन आश्रित (Insulin dependent)

नोट—ऊपर जिन योगों के आगे ग्रन्थोल्लेख नहीं है, वे योगरत्नाकर से लिये गये है।

पर्याय—Type I या Juvenile-onset diabetes, Insulin dependent diabetes mellitus (IDDM)—मूत्र में शर्करा एवं Ketone का जाना, Glycosuria, Ketonuria एकदम से रक्तशर्करा कराने पर 200 मि.ग्रा.% प्राप्त होना इस वर्ग का हेतु है।

(2) इंसुलिन अनाश्रित (Non-insulin dependent diabetes mellitus-NIDDM)।

पर्याय—Type II या Adult onset diabetes या Maturity onset diabetes (MOD) या Stable diabetes या Maturity onset diabetes of young (MODY)—इस वर्ग में FBS 40 मि.ग्रा.% तथा मुख द्वारा GTT 2 घण्टे के बाद 200 मि.ग्रा.% होता है।

(3) अन्य वर्ग—इसमें उपरोक्त दोनों वर्गों के हेतु के साथ-साथ कुछ जीनस विषयक व्याधियाँ (Genetic syndrome), औषधियाँ, Cystic fibrosis तथा अन्य विकार भी होते है।

इंसुलिन आश्रित मधुमेह

इस वर्ग की व्याधि के 3 विशिष्ट उत्पादक कारण माने जाते है।

1. सहज (Genetic predisposing)
2. विषाण (Viral trigger)
3. व्याधिरोधी क्षमत्व अल्पता (Autoimmune mechanism)

पारिवारिक इतिवृत्त मिलना, भाई या बहन में व्याधि का मिलना तथा एक तरह की जुड़वा सन्तान में अधिक मिलना इसके सहज होने (Hereditary) का संकेत करता है।

Viral trigger का संकेत इसकी व्यापकता से मिलता है। शिशिर ऋतु में व्याधि का प्रारम्भ होना, स्कूल जाने की वय के प्रथम वर्ष में अधिक होना तथा गलसुआ (Mumps), Coxsackie B तथा कभी-कभी जन्मजात खसरा (Rubella) संक्रमण का सीधा संकेत मिलता है।[1]

स्वयं को नष्ट करने की प्रक्रिया (Self-destructive mechanism) सम्भवत: अग्न्याशय (Pancreas) की Islet cells को क्रमिक रूप से नष्ट करते हैं। ऐसा Autoimmune प्रक्रिया में समझा जाता है।[2]

लक्षण—व्याधि का आक्रमण तीव्र (Acute) होता है। बार-बार तीव्र प्यास लगना, बार-बार मूत्र त्याग, बच्चे में जलाल्पता शीघ्र होती है। अत: उसमें मूत्रकृच्छ्रता, अतिक्षुधा, शरीर-भार गिरना, कमजोरी, क्लान्ति एवं अङ्गमर्द प्रारम्भिक लक्षण हैं।

1. Paediatrics by N.D. Barnes & NRC Roberton, First edition 1981, M.T.P. Press Ltd., England. page No 97.
2. Farquhar, J.W., Arch. Dis. Childh/1979, 54, 569.

Scanned with CamScanner

उद्विग्नता, वमन, हल्लास, उदरशूल एवं मूर्च्छा का बार-बार आक्रमण तथा स्कूल में (कक्षा में) स्तर में गिरावट होती है।

मधुमेहजन्य मूर्च्छा (Coma) ही प्राय: ध्यानाकर्षण करती है।

व्याधिविनिश्चय

1. लक्षण के आधार पर सङ्केत मिलने पर प्रयोगशाला परीक्षण करातें हैं।
2. मूत्र में शर्करा एवं Acetone।
3. रक्तशर्करा की मात्रा रिक्त पेट कराने पर।

100 से 103 मि.ग्रा.%	±
130 से 160 मि.ग्रा.%	निश्चयात्मक
160 मि.ग्रा.% से अधिक	निश्चित

4. आवश्यकता पड़ने पर Glucose tolerance test भी कराना चाहिए।

चिकित्सा

(1) प्रारम्भ में निदान एवं चिकित्सा हेतु बालक को चिकित्सालय में भर्ती कर देना चाहिए।

(2) Soluble insulin—5 यूनिट/कि.ग्रा. शरीर-भार की मात्रा में, प्रति 3 मात्रा में बाँट कर प्रात: नास्ता, दोपहर एवं रात्रिकालीन भोजन से पूर्व देना चाहिए। सूचीवेध करने के पूर्व मूत्र-परीक्षण आवश्यक है। कुछ मरीजों में Glycosuria तथा Ketonuria को शान्त करने हेतु एक या दो सूचीवेध/दिन की अधिक आवश्यकता होती है। आवश्यकतानुसार मात्रा बढ़ायी भी जा सकती है। यौवन काल आने के पूर्व की मात्रा 0.5 से 1.0 यूनिट प्रति कि.ग्रा. प्रतिदिन तथा यौवन काल की मात्रा प्राय: 1 से 1.5 यूनिट प्रति कि.ग्रा. प्रतिदिन पर निश्चित हो जाया करती है। इस इंसुलिन का कार्यकाल 2 से 4 घण्टे का होता है तथा 8 घण्टे में एकदम समाप्त हो जाता है।

(3) कुछ दिनों के बाद तीव्रता से प्रभावी (Rapid acting) तथा देर में कार्य करने वाली (Late acting) इंसुलिन का प्रयोग कर सकते है।

(4) लगभग 3 माह की चिकित्सा के बाद इतना सुधार सम्भव है कि रोगी कुछ दिन इन्सूलिन के सूचीवेध के बगैर भी रह सकता है। परन्तु .5 यूनिट इन्सूलिन/दिन इस काल में देना अन्य उपद्रवों से बचाव हेतु हितकर है।

मधुमेहजन्य मूर्च्छा
(Diabetic Coma)

Soluble insulin से 1 से 2 यूनिट/कि.ग्रा. शरीर-भार की मात्रा में ½ मात्रा शिरा से तथा ½ मात्रा त्वग्गत देनी चाहिए। यदि पुन: इन्सूलिन देना आवश्यक हो तो

0.5 से 1 यूनिट/कि.ग्रा. की मात्रा 3 से 4 घण्टे पर या ⅕वाँ भाग प्रारम्भिक मात्रा का प्रति 1 या 2 घण्टे पर देना उचित होगा। अथवा लगातार कम मात्रा में सिरामार्ग से द्रव तथा औषधि देना भी एक चिकित्सा है। Diabetic ketoacidosis या मूर्च्छा में 0.1 यूनिट/कि.ग्रा. शरीर-भार/घण्टा की दर से Soluble insulin देते हैं। सिरा में देते समय यह Insulin बोतल के द्रव में ही मिला देते हैं। यह विधि 75 मि.ग्रा.% रक्तशर्करा प्रति घण्टे कम करता है।

सामान्य उपक्रम

1. खनिज लवण एवं जलीय आवश्यकता पूर्ण करने हेतु सिरामार्ग से आवश्यक द्रव दें।
2. संक्रमण से बचाव हेतु Antibiotics का प्रयोग करें।
3. सामान्य देख-भाल करना चाहिए।

प्राय: उपरोक्त व्यवस्था 8 घण्टे के बाद मुखमार्ग से द्रव पदार्थ तथा 12 घण्टे के बाद अर्धतरल पदार्थ लेने की अवस्था ला देती है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे सदैव Insulin सूचीवेध से ही ठीक होते हैं। मुखौषधि कारगर नहीं होती। इंसूलिन की मात्रा का निर्धारण ही मात्र व्यवस्था नहीं है वरन् प्रयास होना चाहिए कि शिशु अपना सामान्य जीवन व्यतीत कर सके, उसका उचित विकास हो सके। भोजन पर अत्यधिक रोक का कोई विशेष लाभ नहीं मिलता। अधिक मात्रा में शर्करा, कार्बोहाईड्रेट के प्रयोग से बचना चाहिए।

उपद्रव—मधुमेहजन्य मूर्च्छा (Acidosis) के अतिरिक्त कभी-कभी नेत्रविकार, Retinitis, Peripheral neuropathy, उच्च रक्तचाप, यकृत् वृद्धि, विद्रधि, पिडकाएँ, राजयक्ष्मा आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं।

मधुमेही माता का शिशु

मधुमेही माता अथवा ऐसी माता जिसे मधुमेह होना सम्भावित हो (Prediabetic) बड़ी आकृति के शिशु का प्रसव एवं शिशुओं की अधिक मृत्युदर Polyhydramnios जैसे उपद्रवों की जनक होती है। 37 सप्ताह से पूर्व का प्रसवित गर्भ अत्यधिक भार वाला होता है। 37 से 40 सप्ताह के मध्य के शिशु का भार कम होता है।

प्राय: नवजात शिशु अतिभारी, चन्द्रमा-सा मुख भरा-भरा, गोल-मटोल एवं अत्यधिक उल्वक से लिपटा होता है। इन शिशुओं में रक्तशर्करा की कमी (Hypoglycemia), कैल्शियम की कमी तथा अज्ञात कारण से श्वसन में कठिनाई होती है। रक्त में Bilirubin का बढ़ना, वृक्क एवं अधिवृक्क की शिशुओं में Thrombosis एवं अन्य जन्मजात विकृतियाँ हो जाती है।

Scanned with CamScanner

इस समय गर्भवती माता की उचित देख-रेख, मधुमेह की उचित चिकित्सा-व्यवस्था से गर्भ के विकास-दर को ठीक रखा जा सकता है।

प्रसवित शिशु को समय पूर्व प्रसवित शिशु की भाँति समझ कर चिकित्सा करनी चाहिए। शिशु को Incubator में रखें। 10% का ग्लूकोज द्रव सिरागत 10 सी.सी./घण्टे की दर से शिशु को देना चाहिए तथा शीघ्रातिशीघ्र मुख द्वारा दुग्ध आहार देना प्रारम्भ करना चाहिए।

ऐसे शिशुओं में 100 में से 1 या 2 शिशु बाल्यकाल में मधुमेह के शिकार होते हैं।

कुष्ठ

आधुनिक दृष्टिकोण से राजयक्ष्मा की ही भाँति कुष्ठ (Leprosy) भी संक्रामक व्याधि है। दोनों के जीवाणु (Mycobacterium tuberculosis & Mycobacterium Leprae) एक ही वर्ग के हैं। दोनों ही जीवाणु Acid fast bacilli है। आश्चर्य है कि दोनों ही व्याधियों की गणना आयुर्वेद-मनीषियों ने जन्मजात विकारों में कैसे कर ली है। आज हम आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इन्हें संक्रमणजन्य ही मानते हैं। परन्तु सम्भव है कि भविष्य में किसी ऐसे तथ्य का पता चल सके कि दोनों की व्याधियाँ जन्मजात भी हो सकती हैं।

कुष्ठ शीर्षक के अन्तर्गत आयुर्वेद ने महाकुष्ठ एवं क्षुद्रकुष्ठ शीर्षक से बहुत-सी व्याधियों का वर्णन किया है। उन सभी का वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। आवश्यकतानुसार उनका विवरण अन्य ग्रन्थों में देखना चाहिए। यहाँ केवल उनका संक्षिप्त उल्लेख तथा उनके जन्मजात मिलने वाली व्याधियों का सङ्केत मात्र किया गया है।

महाकुष्ठ

चरक (नि. 5)	सुश्रुत (नि. 5:5)	अष्टाङ्गहृदय (नि. 14)
1. कपालकुष्ठ	1. कपालकुष्ठ	1. कपालकुष्ठ
2. उदुम्बरकुष्ठ	2. उदुम्बरकुष्ठ	2. उदुम्बरकुष्ठ
3. मण्डलकुष्ठ	—	3. मण्डलकुष्ठ
4. ऋष्यजिह्वकुष्ठ	3. ऋष्यजिह्वकुष्ठ	4. ऋष्यजिह्वकुष्ठ
5. पुण्डरीककुष्ठ	4. पुण्डरीककुष्ठ	5. पुण्डरीककुष्ठ
6. सिध्मकुष्ठ	—	—
7. काकणककुष्ठ	5. काकणककुष्ठ	6. काकणककुष्ठ
	6. अरुणकुष्ठ	—
	7. दद्रुकुष्ठ	7. दद्रुकुष्ठ

क्षुद्रकुष्ठ

चरक (चि. 7:12)	सुश्रुत (नि. 5:5)	अष्टाङ्गहृदय (नि. 14)
1. एककुष्ठ	1. एककुष्ठ	1. एककुष्ठ
2. चर्माख्य	—	2. चर्मकुष्ठ
3. किटिभ	2. किटिभ	3. किटिभ
4. विपादिका	—	4. विपादिका
5. अलसक	—	5. अलस
6. दद्रु	—	—
7. चर्मदल	3. चर्मदल	6. चर्मदल
8. पामा	4. पामा	7. पामा
9. विस्फोटक	—	8. विस्फोट
10. शतारु	—	9. शतारुष
11. विचर्चिका	5. विचर्चिका	10. विचर्चिका
	6. स्थूलारुष्क	—
	7. महाकुष्ठ	—
	8. परिसर्प	—
	9. सिध्म	11. सिध्म
	10. रकसा	—
	11. विसर्प	—

आचार्यों ने कुष्ठ को यद्यपि आदिबलप्रवृत्त व्याधि में गिना है—

'तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयः ॥
(सु.सू. 24:5)

परन्तु इसे संक्रामक व्याधि भी माना है—

'प्रसङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्याऽऽसनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्' ॥ (सु.नि. 5:33-34)

इस प्रकार कुष्ठ संक्रामक व्याधि है—यह आयुर्वेद में माना गया है। निःसन्देह कुष्ठ Leprosy के सन्दर्भ में लेने पर संक्रामक रोग मानना उचित भी है।

कुष्ठ के अन्तर्गत महाकुष्ठ एवं क्षुद्रकुष्ठ के नाम पर बहुत-से त्वग्गत विकारों का समावेश कर लिया गया है। इन 18 प्रकारों में से निश्चय ही कुछ जन्मजात या वंशानुगत होते हैं। आधुनिक दृष्टिकोण से जन्मजात या वंशानुगत व्याधियों में से कुछ का नामोल्लेख किया जा रहा है—

Scanned with CamScanner

Tuberous sclerosis Neurofibromatosis Ichthyosis vulgaris Telangiectasia	Dominant inheritance
Albinism Phenylketonuria	Recessive inheritance
Ichthyosis	Sex linked

उपरोक्त नामों या अन्य अवस्थाओं का विवरण सम्बद्ध ग्रन्थों में देखना चाहिए।

नवजात (शैशवीय) यकृत्शोथ
(Neonatal Hepatitis)

पर्याय—Giant cell hepatitis.

यह व्याधि जीवन के प्रथम 6 सप्ताह में कभी भी हो सकती है। पारिवारिक इतिवृत्त, भाई-बहनों में पाये जाने की इतिवृत्त तथा बालकों में व्याधि की अधिकता देखी जाती है।

कारण

1. विषाणुजन्य—Australian antigen
2. अन्य कारण—गर्भाशयान्तर संक्रमण, Galactosemia, Tyrosinosis, Cystic fibrosis आदि।

लक्षण—व्याधि एकाएक तीव्र स्वरूप के कामला (अवरोधजन्य) के साथ उत्पन्न होती है। यकृत् की अतिवृद्धि (+ + +), स्पर्श में सतह चिकनी लेकिन कड़ी होती है तथा प्लीहावृद्धि (+ +) भी होती है।

बच्चे के भार में वृद्धि कम हो जाती है। वमन भी होता है। मूत्र गहरा पीला तथा मल हल्के वर्ण का होता है।

व्याधिविनिश्चय

यकृतकार्य-परीक्षण LFT—असामान्य, Alkaline phosphatase सामान्य मिलता है।

चिकित्सा—प्राय: सभी रोगियों को 1 से 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार/प्रतिदिन 3-4 माह तक Steroids देने पर निश्चित लाभ हो जाता है।

उपद्रव—व्याधि के बाद Cirrhosis एवं Portal hypertension का होना सम्भव है।

नवजात शैशवीय यकृत्शोथ एवं Biliary atresia की तुलना

लक्षण	यकृत्शोथ	Biliary atresia
1. व्याधि का प्रादुर्भाव	नवजात शिशुकाल में कभी भी	प्रथम सप्ताहान्त
2. कामला	तीव्रतम से क्रमश: कम होना	कम से तीव्र होना
3. मल	वर्णभिन्नता	मिट्टी के वर्ण का (Clay colour)
4. यकृत्प्लीहावृद्धि	शीघ्र	देर से
5. मूत्र में Urobilin	+	—
6. मल में Stercobilin	+	—
7. Serum alkaline phosphatase	±	+ +
8. SGOT & SGPT	+ + +	+ + या + ,
9. Liver biopsy	Giant cells का आधिक्य	Hyperplasia, पित्त-नलिका-विस्तार

जलशीर्ष
(Hydrocephalus)

Hydrocephalus शब्द ग्रीक भाषा का है जिसका अर्थ है—सिर में जल का संग्रह अर्थात् जलशीर्ष। इसके परिणामस्वरूप सिर बड़ा हो जाता है, क्योंकि मस्तिष्कावरण के अन्दर प्रमस्तिष्क मध्य दरारों में असामान्य रूप से मस्तिष्कसुषुम्ना में जल का संग्रह हो जाता है। यह C.S.F. की अति वृद्धि निम्न तीन कारणों से हो सकती है—

(क) C.S.F. की उत्पत्ति की वृद्धि—Pseudotumor cerebri, choroid plexes papilloma आदि

(ख) मार्गावरोध—शोथजन्य, विकासकालीन विकृतियाँ आदि।

(ग) विकृत शोषण—Cavernous sinus thrombosis आदि।

चित्र सं. 36 : जलशीर्ष (Hydrocephalus)

Scanned with CamScanner

उपरोक्त वर्गीकरण को समझने में C.S.F. का परिभ्रमण देखना पर्याप्त होगा।

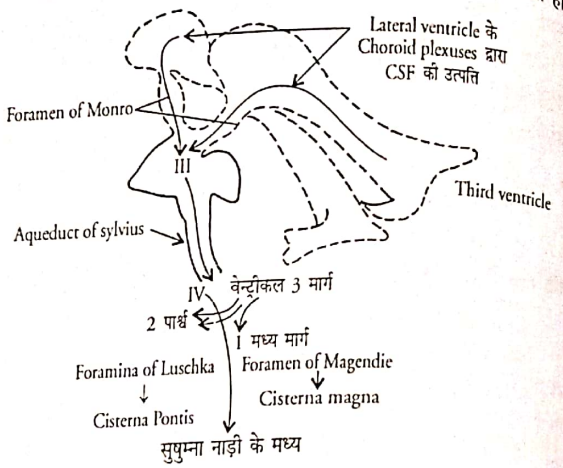

चित्र सं. 37 : C.S.F. परिभ्रमणपथ

सुषुम्ना नाड़ी द्रव (CSF) की उत्पत्ति, पार्श्व वेण्ट्रिकल में स्थित Large choroid plexuses के द्वारा होता है। इन Plexuses की सूक्ष्म वाहिकायें (Capillaries) भिन्न प्रकार के Epithelial cells द्वारा बाहर से निर्मित होती हैं। जो परिवहन का विशिष्ट कार्य करती हैं। इन कोशिकाओं के द्वारा CSF का स्राव विशिष्ट रासायनिक प्रक्रिया द्वारा होता है। Acetazolamide इस रासायनिक प्रक्रिया में क्रियाशील होकर Carbonic anhydrase को कम करता है तथा CSF का निर्माण धीमा हो जाता है।

पार्श्व वेण्ट्रीकल से इण्टरवेण्ट्रीकुलर फोरामिना (Foramina monro) के द्वारा CSF तृतीय वेण्ट्रीकल में तथा Aqueduct of Sylvius (Cerebral aqueduct) के माध्यम से चतुर्थ वेण्ट्रीकल में जाता है। तत्पश्चात् Subarachnoid space में (Cerebral & Spinal) Foramen Magendie तथा Luschka's foramen के माध्यम से जाता है।

CSF का निर्माण प्रायः 0.2 मि.ली./मिनट की दर से होता है तथा युवा में इसकी मात्रा 130-150 मि.ली. की होती है। CSF का दबाव 100 से 200 मि.ली. ऑफ वाटर होता है। शिराओं (Internal jugular vein) में दबाव बढ़ने पर CSF का अवशोषण बाधित होता है तथा CSF का दबाव बढ़ता है।

CSF का अवशोषण Arachnoid villi into dural sinuses तथा Spinal vein से होता है। $\frac{4}{5}$ भाग CSF arachnoid villi तथा अवशेष $\frac{1}{5}$ भाग का Spinal शिरा द्वारा होता है। अल्पमात्रा में CSF Cranial nerve की sheath में जाता है तथा अन्त में ग्रीवा लसिका तन्त्र में निकलती है।

सर्वाधिक प्रतिशतता अवरोधजन्य कारणों की होती है। यह जलशीर्ष व्याधि जन्मजात अर्जित होती है।

जन्मजात कारण—इसमें प्रायः रचनात्मक विकृतियाँ ही आती हैं जो मार्गावरोध पैदा करती हैं; यथा—Arnold-Chiari malformation या Dandy-Walker anomaly या Aqueduct cerebri या Arachnoid villi की विकृति हो।

अर्जित कारण—

1. शोथजन्य—मस्तिष्कशोथ (Meningitis)।
2. आघातजन्य—प्रसवकालीन, आघात, शिरोघात, मस्तिष्क अन्तः रक्तस्राव आदि।
3. नयी वृद्धि—Tuberculoma, विद्रधि, Gliomas, रक्तविद्रधि आदि।

लक्षण—जन्मजात जलशीर्ष जन्मकाल से उपस्थित रहता है तथा जीवन के प्रथम कुछ माह में ही शिर अति बड़ा दीखने लगता है। अर्जित जलशीर्ष बाद में कारणों के साथ विकसित होता है।

बड़ा सिर, विस्तृत एवं फूले हुए सिरोरन्ध्र (Fontanelle), सिर के सीवन खुले, ललाट बढ़ा हुआ, सिरकोशिकाएँ विस्तृत दीखती हैं। नेत्रों में तारे के ऊपर श्वेत भाग ऐसे दीखता है जैसे सूर्य डूबने का दृश्य। इसे Sunset sign कहते हैं।

बौद्धिक ह्रास की मात्रा रोग की स्थिति एवं तीव्रता पर निर्भर करती है। सामान्य बुद्धि से लेकर मन्द बुद्धि तक के शिशु मिलते हैं।

कभी-कभी सिर का विकास जो तेजी से हो रहा था, स्वयं रुक जाता है। इसमें किसी चिकित्सा या शल्यकर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रयोगशालीय परीक्षण—आवश्यकतानुसार सिर का सामान्य एक्सरे, Ventriculography या Pneumo-encephalography कराते हैं।

चिकित्सा

1. औषधि—मूत्रल औषधियाँ, Acetazolamide, Hypertonic solution।
2. सिर को कसकर बाँधना।
3. शल्यकर्म—यह दो प्रकार का होता है—

(क) विकृत अङ्ग काटना Ventriculostomy तथा Choroid plexectomy.

(ख) कृत्रिम मार्ग बनाना (Shunt लगाना)—इस क्रिया में एक ट्यूब को लेकर मार्गावरोध के पूर्व लगा देते हैं। दूसरा भाग गर्वीनी, रक्तनलिका, फुप्फुसावरण, उदरावरण या किसी आशय यथा दक्षिण अलिन्द हृदय से जोड़ देते हैं। यह प्रक्रिया

Scanned with CamScanner

परिस्थिति विशेष पर निर्भर करती है। इस नलिका में कपाटों द्वारा ऐसी व्यवस्था रहती है कि CSF को तो नीचे आने देते हैं परन्तु नीचे से कोई द्रव ऊपर नहीं जा पाता। इससे सिर के आकार में वृद्धि कम होने लगती है तथा वह सामान्य के लगभग आ जाता है।

मस्तुलुङ्गक्षय
(Microcephaly)

पर्याय—तालुपात, तालुनमन।

'मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्य वायुस्ताल्वस्थि नामयेत्।
तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः शृतम्॥
पानाभ्यञ्जनयोर्योज्यं शीताम्बुद्वेजनं यथा'॥
(सु.शा. 10:42; अ.सं.उ. 2:78)

मस्तुलुङ्गक्षय के कारण वायु ताल्वस्थि को दबा देता है। तब बालक तृषा से दीन होता है। उसके लिए पान एवं अभ्यञ्जन हेतु मधुर द्रव्यों से बने घृत का प्रयोग करना चाहिए तथा ठण्डे जल से सिंचित कर बालक को उद्वेलित करना चाहिए।

डल्हण ने इसकी टीका करते हुए स्पष्ट किया है कि—

'मस्तुलुङ्गोऽविलीनघृताकारा मस्तकमज्जा'।

अर्थात् मस्तुलुङ्ग घृत जैसी मस्तक की मज्जा अर्थात् Cortex of brain है।

इस क्षय की गणना पाठ्यक्रम में जन्मजात विकारों में की गयी है। अतः वह अवस्था जिसमें Cortex की अल्पता हो इससे सम्बन्ध रखती है। यथा—Microcephaly। कुछ लोग मस्तुलुङ्ग का सम्बन्ध C.S.F. से जोड़ते हैं, क्योंकि आगे लक्षण तालुनमन, तृषा एवं दीनता दिया गया है। परन्तु इन लक्षणों को प्रधानता देने पर यह एक अर्जित व्याधि कही जानी चाहिए। अतः सिर का छोटा होना या Microcephaly कहना ही उपयुक्त होगा।

Microcephaly के कारण—

(1) मस्तिष्क विकास में असामान्यता—वंशानुगत लघु सिर (Hereditary microcephaly), मङ्गोल शिशु, मातृज Phenylketonuria, Seckel dwarfism, Fetal alcohol syndrome आदि।

(2) गर्भाशयान्तर संक्रमण—खसरा, फिरङ्ग, Toxoplasmosis तथा Cytomegaloviral संक्रमण आदि।

(3) जन्मकालीन या प्रसवोपरान्त कारण—गर्भाशयान्तर या जन्मकालीन श्वासावरोध (Anoxia), नवजात शिशुकाल में कुपोषण तथा Herpes virus का संक्रमण आदि।

इन बच्चों के सिर की परिधि काफी कम होती है तथा बौद्धिक विकास की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े मन्द बुद्धि के शिशु होते हैं।

यह व्याधि असाध्य मानी गयी है। आयुर्वेद के आचार्य इसे वातज विकार मानते हैं तथा क्षय को दृष्टि में रखकर वर्धक चिकित्सा मधुर गणौषधियों से करने को कहा है।

पाङ्गुल्य
(Paraplagia)

अस्सी प्रकार के वातविकारों में इसकी गणना सभी आचार्यों ने की है। सुश्रुत ने लक्षण देते हुए खञ्ज से अन्तर किया है—

'वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्'॥ (सु.नि. 1:77)

प्रकुपित वायु कटिप्रदेश में स्थित होकर सक्थि की कण्डराओं को चलायमान कर देती हैं तो मनुष्य खञ्ज हो जाता है तथा दोनों पैरों में कण्डरा, सिरा, स्नायु एवं नाड़ी के वध होने से पङ्गु हो जाता है। इसके अतिरिक्त गर्भकालीन माता का मिथ्याहार-विहार भी पाङ्गुल्य का कारण बनता है।

'जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात् पङ्गुजात्यन्ध·····'। (सु. सू. 24:5)

इसको स्पष्ट करते हुए जन्मजात पाङ्गुल्य का कारण माता द्वारा लिया जाने वाला वातप्रकोपक आहार वाग्भट ने (अ.सं.शा. 2:34) कहा है।

'पित्तानिलप्रकृतिकी पटुक्षीरा पटुप्रजा।
कुतः पङ्गुजडा मूका त्रिदोषक्षीरभोजिनः'॥ (का.फक्कचि. 5)

पित्त या वातज प्रकृति वाली स्त्री जिसका दुग्ध लवण युक्त हो तथा जिसके सन्तान अधिक हों, उसके दूध के सेवन से या त्रिदोषज दूध के सेवन से बालकों में पंगुता, जड़ता एवं मूकता आ जाती है।

'हृदयात् सम्प्रवर्तन्ते मनः पूर्वाणि देहिनाम्।
इन्द्रियाणीन्द्रियावश्यौद्वा ?····· हितम्'॥ (का.चि.फक्कचि. 6)

हृदय से ये लक्षण मन सहित इन्द्रियों में पहुँचते हैं। वस्तुतः उक्त दृष्टिकोण से पाङ्गुल्य व्याधि है किन्तु यह कुछ व्याधियों का लक्षण भी है। इसे Paraplegia कहते हैं।

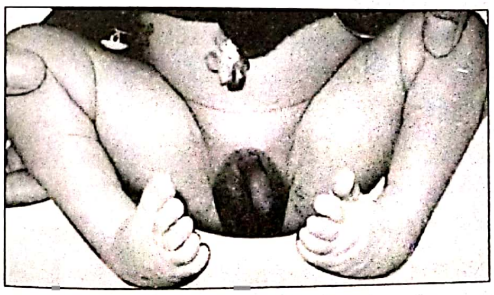

चित्र सं. 38 : Talipus Equinovarus

Scanned with CamScanner

Paraplegia के कारणों को विकृति के आधार पर निम्न दो वर्गों में बाँटा गया है—

(1) अपर मोटर न्यूरोन प्रकार—इसे पुनः विकृत-स्थान के आधार पर दो वर्गों में विभाजित करते हैं—

(अ) मस्तिष्क के अन्दर विकार—यह विकार निम्न कई कारणों से होता है—

- जन्मजात—Diplegia cerebral palsy, जलशीर्ष आदि ।
- रक्त का धमनी में जमना ।
- जल-अल्पता ।
- मेनिनजियोमा ।
- आघातज ।

(आ) सुषुम्ना नाड़ी में विकार—इस प्रकार के निम्न कई कारण है; जैसे—

- सुषुम्ना नाड़ी पर दबाव अर्बुद आदि से ।
- जन्मजात रोग—Syringomyelia, Friedreich's ataxia आदि ।
- दोषोत्पादक भोजन—खेसारी दाल ।
- आघातज ।
- व्याधिजन्य—Leukaemia, यक्ष्मा, Hodgkin's disease, चेचक, खसरा आदि के बाद ।
- संक्रमणरोधी टीकों के बाद—चेचक, श्वानदंश आदि ।
- एनसेफलोमाइलाइटिस ।

अपर मोटर न्यूरान प्रकार (Paraplegia) में मांसपेशी कमजोर एवं तनावयुक्त (Spastic) हो जाती है । उदर का रिफ्लेक्स हीन तथा अन्य टेण्डन रिफ्लेक्स तीव्र हो जाते हैं । प्लाण्टर रिफ्लेक्स में अँगूठा ऊपर को (Extensor) होता है ।

(2) लोवर मोटर न्यूरोन प्रकार—यह निम्न कई प्रकार का होता है ।

- पोलियो माइलाइटिस, पोलीन्यूराइटिस ।
- दबाव—कोडाइक्वीना पर ।
- मेनिंगोमाइलोसील ।
- पेशीगत रोग—पेशीक्षय (Atrophy) ।
- हिस्टीरिया ।

इसमें पेशियाँ कमजोर एवं शिथिल हो जाती हैं । प्रायः सभी अवस्थाओं में संवेदना की कमी हो जाती है परन्तु पोलियों में ऐसा नहीं होता । टेण्डन रिफ्लेक्स विहीन हो जाते हैं या गायब हो जाते हैं ।

प्रयोगशालीय परीक्षण—रोगी का इतिवृत्त एवं परीक्षण के साथ-साथ निम्न परीक्षण सहायक सिद्ध होते हैं—

1. सिर का एक्सरे ।
2. सुषुम्नाजल-परीक्षण ।
3. CAT Scan आदि ।

कारण के अनुसार ही चिकित्सा की जानी चाहिए । उपरोक्त व्याधियों में शिशुओं को दृष्टिगत रखते हुए एवं व्याधि महत्त्व की दृष्टि से Cerebral palsy का वर्णन ही उपयुक्त होगा ।

'A child had been stiff from birth, is unable to suck properly, has a feeble cry and may have fits, or after a few months of nearly normal development it fails to hold its head up, to sit up or to stand at the normal age, and holds its leg in rigid extension and adduction, the condition is cerebral palsy.' (Savill's System of Clinical Medicine)

अर्थात् यदि शिशु जन्म से ही तनावयुक्त (Stiff) हो, ठीक से स्तनपान न कर पाये, हल्के स्वर में रोदन तथा कभी-कभी आक्षेप हो अथवा जन्म के बाद कुछ समय तक ठीक विकास होने पर अपने सिर को न सम्भाल पाना या बैठना या खड़ा होना उचित वय पर सम्भव न हो तथा खड़ा करने पर पैर को आगे कर कड़ा करे तो Cerebral palsy की अवस्था होगी ।

गर्भकालीन या जन्मकालीन कुछ कारणों से Central motor system की Nonprogressive हानि Cerebral palsy के रूप में जानी जाती है । यह एक व्याधि नहीं है वरन् विभिन्न कारणों से उत्पन्न विभिन्न विकारों का समूह है । Cerebral palsy तथा नवजात शिशुकाल के ओपजन-अल्पता का सम्बन्ध वैज्ञानिक Little ने 1843 में स्थापित किया था । इसी कारण इसे लिटिल का रोग (Little's disease) भी कहते हैं । 2500 ग्राम से कम भार के शिशुओं में यह व्याधि अधिक होती है ।

कारण—जन्मजात ओपजन-अल्पता, जन्म के समय सिर पर आघात, मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव, मस्तिष्क-रचनात्मक विकृति, Cerebral vascular occlusion disease तथा Kernicterus आदि ।

लक्षण—लक्षण के आधार पर व्याधि को 4 वर्गों में रखा गया है—

1. तनावयुक्त (Spastic) ।
2. Dystonia ।
3. Atonic ।
4. मिश्रित ।

(1) तनावयुक्त (Spastic)—यह उपरोक्त सभी वर्गों में सर्वाधिक सामान्य वर्ग है । नवजात काल में सभी Reflexes असामान्य होते हैं । Grasp reflex के अत्यधिक

Scanned with CamScanner

होने से पूरा हाथ कड़ा रहता है। ग्रीवास्तम्भ, शरीर ऐंठकर धनुषाकार हो जाता है। शिशु को खड़ा करने पर पैर एक-दूसरे को पार कर कैंचीवत् हो जाते हैं। धीरे-धीरे सन्धियों में भी कड़ापन आ जाता है। इसमें सभी शाखाओं का पक्षाघात या दो शाखा का पक्षाघात अथवा एकार्ध पक्षाघात या एक शाखा का पक्षाघात हो सकता है। चारों शाखाओं के पक्षाघात में मस्तिष्क के भी प्रभावित होने की सम्भावना रहती है जब कि नीचे की दोनों शाखा के पक्षाघात में सुषुम्ना नाड़ी-आघातजन्य कारण की सम्भावना रहती है।

(2) Dystonia—प्रारम्भिक नवजात शिशुकाल में मात्र Hypotonia मिलती है। बाद में Choreoathetoid गति तथा Dystonia भी मिलती है। प्राय: व्याधि का निदान 6 माह की वय के पूर्व कठिन होता है। जब शिशु किसी वस्तु को पकड़ने के लिए यत्न करना है तो उसके हाथ गलत स्थान पर पड़ते हैं। जब Choreoathetoid गति मिलती है तो उसके साथ बहरापन भी होता है तथा यह Kernicterus का दुष्परिणाम होता है। इसमें मन्द बुद्धि भी होती है।

(3) Atonic diplegia स्वयमेव लक्षण को स्पष्ट करने वाला शब्द है। यह केन्द्रीय नाड़ीसंस्थान के आघात के कारण उत्पन्न होता है। इसमें मानसिक विकास भी कम होता है। कुछ वय के बाद हल्की Spasticity भी आ जाती है।

चिकित्सा—शारीरिक अङ्गों में रचनात्मक विकृति आने से बचाना चाहिए। इसके लिए सन्धियों की कसरत, आवश्यक अस्थि सहायक (Orthopaedic appliances) तथा आवश्यक शल्य कर्म करना चाहिए। इस प्रकार के बच्चों को विशिष्ट प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए। भावप्रकाशकार ने पङ्गुता की चिकित्सा का वर्णन किया है—

'उपचरेदभिनवं खञ्जं पङ्गुमथापि च।
विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहबस्तिभि:' ॥

(भा.प्र., मध्यखण्ड 24:152)

विरेचन, आस्थापन बस्ति, स्वेदन, गुग्गुलु के प्रयोग एवं स्नेह बस्ति से पङ्गुता की चिकित्सा करनी चाहिए।

योगरत्नाकर में वर्णित प्रसारिणी तैल, नारायण तैल एवं रास्नापूतिक तैल का प्रयोग पङ्गुता में लाभकर है। यह चिकित्सा-प्रकरण देखने से स्पष्ट होता है कि चिकित्सा अर्जित पङ्गुता की कही गयी है, जन्मजात पङ्गुता की चिकित्सा का निर्देश नहीं है।

मूकत्व
(Aphonia)

इसका वर्णन भी आयुर्वेद-संहिताओं में 80 प्रकार के वातज विकारों में किया गया है।

'आवृत्य सकफो वायुर्धमनी: शब्दवाहिनी:।
नरान् करोत्यक्रियकान् मूकमिन्मिणगद्गदान्' ॥ (सु.नि. 1:85)

अर्थात् कफ सहित वायु शब्द को वहन करने वाली धमनियों का अवरोध करके मनुष्यों को भाषणादि-क्रियाहीन कर मूक, मिन्मिन तथा गद्गद रोगों को पैदा कर देता है। मूक से तात्पर्य गूँगा (Aphonia) से है। इसके अतिरिक्त पङ्गुता के सन्दर्भों में दिये गये जन्मजात कारणों का सन्दर्भ भी यहाँ के लिए भी संग्रहणीय है।

शब्दवह धमनी से जिह्वा की चेष्टावह नाड़ी (Hypoglossal nerve) तथा मस्तिष्कगत वाक्केन्द्र का ग्रहण करना चाहिए। मस्तिष्क के वाम शंखकीय खण्ड में वाक्केन्द्र होता है। जिस अवस्था में यह केन्द्र पूर्णतया नष्ट हो जाता है तो बोलने की शक्ति भी पूर्णतया नष्ट हो जाती है। प्राय: यह केन्द्र पूरा नष्ट नहीं होता अत: रोगी कष्ट से बोलता है।

जन्मजात मूकत्व में इस वाक्केन्द्र की विकृति के अतिरिक्त स्वरयन्त्र में स्थानीय या विकासकालीन रचनात्मक विकृति, वाक्-सम्बन्धित नाड़ीविकार एवं बहरापन भी कारण होता है।

काश्यपसंहिता का पङ्गुता में आया सन्दर्भ यहाँ भी देखना चाहिए।

'पित्तानिलप्रकृतिकी·····हितम्'। (का.चि.फक्कचि. 5:6)

इसी प्रकरण में आचार्य कश्यप ने मूकत्व को स्पष्ट करने का प्रयास इस प्रकार किया है—

'तत्र वागिन्द्रियं त्वेकं द्विधा भिन्नं यथा करौ।
अर्धेन शब्दं वदति गृह्णात्यर्धेन तं पुन: ॥
तस्माच्च मूका भूयिष्ठं भवन्ति बधिरा नरा:।
वाङ्मूलं हि स्मृतं श्रोत्रं वाग्भ्रंशे भ्रश्यते हि तत्' ॥
मूलं वाच्छोत्रम·····च्च बधिरो नर:।
ब्रवीति मूले हि हते हतावा·····' ॥ (का.चि.फक्कचि. 7-9)

इन इन्द्रियों में एक वाक् इन्द्रिय होती है। इसके भी हाथों के समान दो भाग होते हैं। उनमें से एक भाग के द्वारा वह बोलता है एवं दूसरे के द्वारा उसे पुन: ग्रहण करता है अर्थात् सुनता है। अत: जो बालक मूक होता है वह साथ ही प्राय: बधिर भी होता है। श्रोत्र वाङ्मूल में स्थित होता है इसीलिए वाणी के नष्ट होने पर श्रवण शक्ति भी स्वयमेव नष्ट हो जाती है। इस प्रकार मूल के नष्ट होने पर व्यक्ति बधिर हो जाता है। अर्जित मूकत्व, अत्यधिक चीखने-चिल्लाने से गले के विकार, स्वरयन्त्र की नाड़ियों के विकार, पेशीय आकुञ्चन, पक्षाघात, हिस्टीरिया या कैंसर जन्य हो सकता है।

व्याधि के दृष्टिकोण से निम्न तीन विशिष्ट अवस्थाएँ है—

1. गले में शोथ (Acute laryngitis)।

Scanned with CamScanner

2. Perichondritis—इस अवस्था में Laryngeal cartilage के Perichondrium का शोथ होता है। बाद में Necrosis तथा विद्रधि हो जाती है। इसमें मूकत्व, हल्का शूल एवं स्पर्श पर पीड़ा तथा ग्रीवाशोथ उत्पन्न हो जाता है।

3. Vocal cord का पक्षाघात (Bilateral adductor paralysis)।

चिकित्सा—'निदानपरिवर्जन' जो कारण मूकत्व का स्पष्ट हो, उसे दूर करें अथवा चिकित्सा करें। रचनात्मक विकृतियों में जहाँ तक सम्भव हो शल्य कर्म ही सहयोगी सिद्ध होता है। अन्यथा आधुनिक काल में ऐसे बच्चों के लिए विशेष शिक्षाकेन्द्र खुले हैं, उनका सहयोग लेना चाहिए।

'वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम्'। (भै.र. 26:27)

इसकी चिकित्सा में वातहर तैलों का गण्डूष धारण कुछ देर तक दिन में 3-4 बार करना चाहिए।

कल्याणकावलेह देने के 1 घण्टे बाद दशमूल क्वाथ 8 तोला, शुद्ध हिंगु $1\frac{1}{2}$ माशा एवं पुष्करमूल चूर्ण 3 माशा मिलाकर देना चाहिए। दिन भर में 3-4 बार इसका प्रयोग हितकर है। इनके अतिरिक्त सारस्वत घृत एवं ब्राह्मी घृत का उपयोग भी करते हैं।

वामनत्व
(Short Stature)

चरकसंहिता में वामनत्व को 80 प्रकार के नानात्मज वातज विकारों में (सूत्र. 20:11) तथा अष्टौनिन्दितीय अध्याय (सूत्र. 21) में अतिह्रस्व शीर्षक से वर्णित किया गया है। परन्तु मात्र नामोल्लेख के अलावा अन्य कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं होता है।

इसी प्रकार एक मात्र चरक द्वारा वर्णित अष्टौ क्षीरदोषों में 'वैरस्य' के कारण शिशु की वृद्धि नहीं होती अर्थात् वह छोटा (वामन) रह जाता है।

'विरसं वातसंसृष्टं कृशीभवति तत्पिवन्।
न चास्य स्वदते क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्धते'॥ (च.चि. 30:239)

यदि उपर्युक्त विवरण को अर्जित वामनत्व का कारण मान लिया जाय तो जन्मजात कारणों का उल्लेख भी जन्मबलप्रवृत्त या गर्भजन्य रोगों के विवरण में प्राप्त होता है।

'जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात् पङ्गुजात्यन्धबधिरमूकमिन्मिणवामनप्रभृतयो जायन्ते'। (सु.सू. 24:5)

इसके अतिरिक्त वाग्भट ने इसे और अधिक स्पष्ट किया है —

'यदा च लब्धगर्भाऽन्वक्षमेव वातलान्यासेवते तदाऽस्या वायुः प्रकुपितः शरीरमनुसर्पन् गर्भाशयेऽवतिष्ठमानो गर्भस्य जडबधिरमूकमिन्मिणगद्गदखञ्जकुब्जवामनहीनाङ्गाधिकाङ्गत्वान्यन्यं वा वातविकारं करोति'। (अ.सं.शा. 2:53)

योगरत्नाकरकार ने इसका चिकित्सा सिद्धान्त दिया है—

'वामनत्वाङ्गसङ्कोचभङ्गभेदग्रहव्यथाः।
मर्दनैर्बस्तिभिः क्वाथैः स्वेदनैश्च भिषग्जयेत्'॥

(यो.र.वातव्याधिचि.पृ. 524)

वामनत्व, अङ्गसङ्कोच, अङ्गभङ्ग, अङ्गों में टूटने के समान पीड़ा, शरीर में स्तम्भन एवं अङ्गों में व्यथा के लिए मर्दन, बस्तिकर्म, क्वाथ एवं स्वेदन का प्रयोग करना चाहिए।

'वामनत्व' से तात्पर्य है—अपने देश, समाज एवं अवस्था के अनुरूप सामान्य औसत शारीरिक लम्बाई से कम लम्बा होना। पाठ्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में यह जन्मजात वामनत्व का विवेचन है। इसे Dwarfism भी कह सकते हैं। परन्तु Short Stature शब्द इसके लिए उपयुक्त है। यदि किसी बालक की लम्बाई 3 Percentile से भी नीचे है तभी उसे 'Short Stature' कहेंगे।

Short stature पर सामान्यरूपेण निम्न बिन्दुओं का प्रभाव पड़ता है—

1. पारिवारिक (Inheritance)।
2. गर्भाशयान्तर विकास।
3. सामाजिक स्थिति।
4. पोषण।
5. सामान्य स्वास्थ्य।
6. अन्तःस्रावी ग्रन्थिरसों का प्रभाव।

10 वर्ष वय के 3 Percentile के नीचे के 98 बच्चों का परीक्षण New Castle Community Study में किया गया जिसमें 82 बच्चे सामान्य Short stature थे तथा अन्य 16 बच्चों में निम्नाङ्कित कारण Short stature का था—

व्याधि	कुल संख्या
Chromosomal abnormality	6
Cystic fibrosis	1
Chronic renal failure	1
Fallot's tetralogy	1
Juvenile rheumatoid	1
Hurler's syndrome	1
Mental handicap	4
Growth hormone deficiency	1

Scanned with CamScanner

अत: "Short stature" वामनत्व का कारण मात्र पियूषग्रन्थि का स्राव "Growth Hormone" ही नहीं है वरन् अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी हैं।

(1) पोषण—दीर्घकाल तक कुपोषण, रिकेट आदि।

(2) पाचनतन्त्र-विकार—संग्रहणी, Celiac disease, Cystic fibrosis of pancreas, अतिकृमिरोग, Cirrhosis liver, Congenital megacolon.

(3) हृदयरोग—जन्मजात (Fallot's tetralogy), Rheumatic heart.

(4) श्वसनतन्त्र—राजयक्ष्मा, तमकश्वास, आदि।

(5) अन्त:स्रावी ग्रन्थि—पियूषग्रन्थिजन्य वामन, Hypothyroidism, Hypogonadism, Precocious puberty, मधुमेह, Cushing's syndrome.

(6) मूत्रवह संस्थान—Renal rickets।

(7) संक्रमण—राजयक्ष्मा, फिरङ्ग आदि।

(8) औषधि—दीर्घकाल तक Anabolic Steroid या Corticosteroid का सेवन।

(9) क्रोमोसोमल—Turner's syndrome, Mongolism।

(10) मानसिक कारण—अनाथ, उचित देखरेख न होना, मानसिक आघात।

(11) पारिवारिक—अज्ञात Genetic factor।

(12) गर्भाशयान्तर विकास—Low birth weight आदि।

इस प्रकार इसका उचित निदान एवं निदान के अनुसार चिकित्सा करना श्रेयस्कर होगा। यदि कारण अचिकित्स्य हैं तो अभिभावक को स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए।

ओष्ठ-भेद (खण्डौष्ठ)

पर्याय—खण्डौष्ठ, Hare lips, Cleft lips।

आयुर्वेद-संहिताओं में सर्वप्रथम इसका उल्लेख वाग्भट ने 'मुखरोग' में किया है।

'तत्र खण्डौष्ठ इत्युक्तो वातेनौष्ठो द्विधा कृत:'। (अ.ह.उ. 21:3)

इस मुखरोग में वायु के कारण ओष्ठ के दो भाग हो जाने पर इसको खण्डौष्ठ कहते हैं।

वस्तुत: यह सहज व्याधि है। भ्रूण के मुखभाग का निर्माण गर्भधारण के छठे सप्ताह से 9वें सप्ताह के मध्य होता है। गर्भावस्था में ओष्ठ का दाहिना एवं बायाँ भाग अलग-अलग होता है। जो आपस में जुड़कर पूर्ण ओष्ठ का निर्माण करते हैं। Genetic Factors एवं पारिवारिक (कुलज) तथ्य का इसमे महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। यह रचनात्मक विकृति अल्प से लेकर अतिस्वरूप की हो सकती है। साथ में अन्य रचनात्मक विकृति भी मिल सकती है। प्राय: साथ में विकृत दन्त, अतिरिक्त दन्त या दन्तहीन विकृति मिलती है। नासाविकृति एवं तालुविकृति भी मिल सकती है। खरगोश के समान कटे ओष्ठ के कारण इसे Hare lip की संज्ञा दी गयी है।

चित्र सं. 39 : ओष्ठभेद (Cleft lip)

चिकित्सा

इस विकृति की एक मात्र चिकित्सा शल्य कर्म द्वारा इनका जोड़ देना ही है। प्राय: 1-2 माह की आयु में शिशु के पूर्ण स्वस्थ रहने पर ही किया जाता है। इस शल्य कर्म में जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं उसे Z-Plasty कहते हैं।

खण्डौष्ठ की चिकित्सा का सुन्दर वर्णन आचार्य वाग्भट ने किया है—

'खण्डौष्ठस्य विलिख्यान्तौ स्यूत्वा व्रणवदाचरेत्।
यष्टीज्योतिष्मतीरोध्रश्रावणीसारिवोत्पलै: ॥
पटोल्या काकमाच्यां च तैलमभ्यञ्जनं पचेत्।
नस्य च तैलं वातघ्नमधुरस्कन्धसाधितम्' ॥ (अ.ह.उ. 22:1-2)

इस रोगी का स्नेहन-स्वेदन (उचित संशोधन) करके ओष्ठ के प्रान्त भागों (किनारों) का लेखन करके उसको भली-भाँति मिलाकर क्षौमसूत्र से सीकर सद्योव्रण की चिकित्सा करें।

शतधौत घृत से अभ्यक्त कवलिका को व्रण के ऊपर रख दें। मधुयष्टी, मालकङ्गनी, लोध्र, मुण्डी, सारिवा, कमल, पटोली एवं मकोय—इनके कल्क से तैल का परिपाक करें तथा इससे अभ्यङ्ग करें। वातनाशक एवं मधुर गण से सिद्ध तैल का नस्य देना चाहिए।

तालुविकृति (खण्डताल्)
(Cleft Palate)

ओष्ठ-भेद की भाँति यह भी सहज व्याधि है जिसमें रचनात्मक विकृति होती है। यह अकेले अथवा खण्डौष्ठ के साथ उपस्थित होती है। यह विकृति 2500 जन्म शिशुओं में 1 की दर से दिखायी देती है। ऐसा भी देखा गया है कि यह विकृति बालिकाओं में अधिक मिलती है। इस विकृति के साथ-साथ अन्य रचनात्मक विकृतियाँ भी मिल सकती हैं। इनके कारणों में Chromosomal विकृति, Genetic factors एवं पारिवारिक इतिवृत्त प्रमुख हैं।

गर्भावस्था में विकास क्रम में तालुओं का विकास दोनों पार्श्व से होता है तथा मध्य में आकर मुख में जुड़ते हैं। कभी-कभी यह जोड़ न बनकर छोटी या बड़ी दरार रह

Scanned with CamScanner

जाती है। प्राय: यह दरार या विवर कोमल तालु तक ही रहता है अथवा नासिका तक फैल जाती है, जिसके परिणामस्वरूप कठिन तालु (Hard palate) भी प्रभावित हो जाता है। ऐसी दशा में नासाफलकास्थि (Vomer) एवं नासिकाप्राचीर की वृद्धि में अंशरूपेण या पूर्णरूपेण अल्पता पायी जाती है अथवा पूर्णतया अनुपस्थित रहते है। मुख के ऊर्ध्व भाग में विकृति होने से शिशु को स्तनपान करने में कठिनाई या असमर्थता प्रतीत होती है। यह विवर ओष्ठ या दन्तोलूखल कटक तक भी फैली मिल सकती है। बोतल से दूध पिलाते समय वह उलट कर नाक से बाहर आ जाता है।

चित्र सं. 40 : खण्डतालु एवं ओष्ठभेद (Cleft palate with Cleft lip)

आचार्य सुश्रुत ने तालुरोगों के वर्णन के समय तालुशोष का वर्णन किया है जिसके लक्षण में हल्का सामञ्जस्य होने के कारण आधुनिक आयुर्वेद के कुछ विद्वान् तालुविकृति (खण्डतालु) मान लेते हैं।

'शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु: श्वासो वातात्तालुशोष: सपित्तात्'। (सु.नि. 16:45)

पित्त सहित वात के प्रकोप से तालुप्रदेश में अत्यन्त शोष होता है तथा वह विदीर्ण (फटना) भी हो जाता है एवं श्वास में कठिनाई होती है। इसे तालुशोष कहते हैं। परन्तु चिकित्सा के वर्णन में स्पष्ट हो जाता है कि यह खण्डतालु का विवेचन नहीं है क्योंकि कहीं भी शल्य कर्म का विवेचन नहीं है।

'स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशन:'। (सु.चि. 22:58)

तालुशोष में स्नेहन, स्वेदन एवं वातनाशक क्रिया का प्रयोग करना चाहिए।

खण्डतालु की चिकित्सा एक मात्र शल्यकर्म है जो प्रत्येक रोगी की विकृति के हीन या अधिक विस्तृत होने तथा आकार आदि पर निर्भर है। इस शल्य कर्म को विकास एवं आवश्यकता के आधार पर 6 माह से 5 वर्ष की आयु के मध्य कभी भी कर सकते हैं। शल्य कर्म का उद्देश्य दोनों तालुओं को जोड़ना, अच्छी एवं मधुर आवाज की उत्पत्ति तथा Maxilla को कोई आघात न होने देना है। इस शल्यकर्म में 2-3 बार शल्यकर्म करना पड़ता है।

*

अध्याय - 7

कर्णवेधन

'कर्णवेधन' एक संस्कार है जिसका उल्लेख प्रथम खण्ड के 'कुमारों में संस्कार' नामक अध्याय में किया गया है। यहाँ उसका उपद्रव एवं चिकित्सा वर्णित है।

वेधन स्थल—बच्चे के कान को खींचकर दैवकृत छिद्र के सूर्यकिरणों द्वारा दिखायी देने वाले स्थान पर वेधन करना चाहिए। वाग्भट ने इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है—'वाम हाथ से पकड़ कर कान के निचले भाग के मध्य में गण्डभाग की ओर कुछ पाली को झुकाते हुए, पतली झिल्ली से ढके हुए, सूर्यकिरणें जिसमें से दीख रही हों ऐसे स्थल पर वेध करें।

'वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे आदित्यकरावभासिते शनै: शनैर्दक्षिण-हस्तेनर्जु विध्येत्'। (सु.सू. 16:3)

'मध्यत: कर्णपीठस्य किञ्चिद्गण्डाश्रयं प्रति।
जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते॥
घृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते।
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जुलाघवात्।
नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाध:.....'॥

(अ.ह.उ. 1:30-32; अ.सं.उ. 1:45)

अयोग्य स्थान में कर्णवेध से हानि

'शोणितबहुत्वेन वेदनया चान्यदेशविद्धमिति जानीयात्' (सु.सू. 16:4)

यदि वेधन करने से रक्त का अधिक स्राव तथा पीडा हो तो अन्यदेशविद्ध समझें।

'तत्राज्ञेन यदृच्छया विद्धासु सिरासु कालिकामर्मरिकालोहितिकासूपद्रवा भवन्ति। तत्र कालिकायां ज्वरो दाह: श्वयथुर्वेदना च भवति; मर्मरिकायां वेदना ज्वरो ग्रन्थयश्च; लोहितिकायां मन्यास्तम्भापतानकशिरोग्रहकर्णशूलानि भवन्ति। तेषु यथास्वं प्रतिकुर्वीत'। (सु.सू. 16:5)

अज्ञानता से कालिका, मर्मरिका एवं लोहितिका सिराओं में वेधन होने से उपद्रव होता है।

कालिका—ज्वर, दाह, शोथ एवं वेदना।

Scanned with CamScanner

मर्मरिका—वेदना, ज्वर एवं ग्रन्थियों की उत्पत्ति ।
लोहितिका—मन्यास्तम्भ, अपतानक, शिरोग्रह एवं कर्णशूल ।

काश्यपसंहिता में इसके ऊपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है परन्तु संहिता के अपूर्ण होने से ज्ञान नहीं हो पा रहा है । दो उपद्रवों का उल्लेख है—

1. आमच्छेद ।
2. कुवेध ।

'आमच्छेदेऽत्ययो ह्यत्र कुवेधाद्वोपजायते' । (का.सू. 21, पृ. 12)

आचार्य वाग्भट ने भी सुश्रुत के मत का प्रतिपादन किया है परन्तु सिरावेध के उपद्रव अलग-अलग न कह कर एक साथ ही कहे हैं ।[1]

उपद्रवों को देखने से स्पष्ट होता है कि ये उपद्रव स्थानीय एवं सार्वदैहिक संक्रमण के कारण होते हैं । जिसमें सिरावेध रक्त द्वारा संक्रमण को फैलाने में सहायक ही होता है ।

चिकित्सा

'ततः पिचुवर्त्तिं प्रवेशयेत्' । (सु.सू. 16:3)

कर्णछिद्र में रूई की वर्ति का पिचु डालना चाहिए ।

'तत्र सम्यग्विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् त्र्यहात् त्र्यहाच्च वर्तिं स्थूलतरां दद्यात्, परिषेकं च तमेव' । (सु.सू. 16:7)

'अथ व्यपगतदोषोपद्रवे कर्णे वर्धनार्थं लघु वर्धनकं कुर्यात्' ।
(सु.सू. 16:8)

'स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं सूत्रं चानु निधापयेत् ।
आमतैलेन सिञ्चेच्च बहलां तद्वदारया ।।
विध्येत्पालीं हितभुजः सञ्चार्याऽथ स्थवीयसी ।
वर्तिरन्यहात्ततो रूढं वर्धयेत शनैः शनैः' ।। (अ.हृ.उ. 1:35-36)

'स्वेदितोद्वर्तितं कर्णमभ्यक्तं बृहणैः पुनः' । (अ.सं.उ. 1:47)

'सदा च युञ्ज्यादभ्यङ्गान् कर्णपालीगदोदिवान् । पुष्टि नीरुक्त्वजननानिति संवर्धिते दृढे । कलधौतावबद्धानि कर्णे रत्नानि निक्षिपते' । (अ.सं.उ. 1:48)

योग्य वेधन हो जाने पर तिल्ली के कच्चे तैल से व्रण का परिसेचन करें तथा 6 दिन तक 2-2 दिन के अन्तर से रूई की उत्तरोत्तर मोटी वर्ति प्रविष्ट करायें, जो आम

1. कालिकामर्मरीरक्तास्तद्वयधाद्रागरुग्ज्वराः ।
सशोफदाहसंरम्भमन्यास्तम्भापतानकाः ॥ (अ.हृ.उ. 1:33)

तैल से सिंचित हो । दोष एवं ज्वर-शोफादि उपद्रवों के शान्त होने पर कर्णछिद्र को बड़ा करने के लिए छोटे-छोटे वर्धनकों का प्रयोग करें ।

कर्णपाली मोटी होने पर (वाग्भट) हितभोजी रखते हुए आग से इसका वेधन करें ।[1] इस सूई से विधे कान में तीसरे दिन मोटी वर्ति डालिये । जब कान भर जाये तो इस छिद्र को धीरे-धीरे बढ़ायें ।

कर्णवेधन के दोष व चिकित्सा

'क्लिष्टजिह्माप्रशस्तसूचीव्यधाद्गाढतरवर्त्तित्वाद्दोषसमुदायादप्रशस्तव्यधाद् वा यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र वर्त्तिमुपहृत्याशु मधुकैरण्डमूलमञ्जिष्ठायवतिलकल्कैर्मधुघृतप्रगाढैरालेपयेत् तावद्यावत् सुरूढ इति; सुरूढं चैनं पुनर्विध्येत् । विधानन्तु पूर्वोक्तमेव' । (सु.सू. 16:6)

धाररहित, खुरदरी तथा टेढ़ी एवं अप्रशस्त धातु की बनी सूची के द्वारा वेधन करने से या मोटी बत्ती कर्णछिद्र में रखने से अथवा दोषों के प्रकोप से या ठीक तरह से वेधन न होने से जहाँ पर शोथ या वेदना उत्पन्न हो तो वर्ति को हटाकर शीघ्र ही मधुयष्टी, एरण्डमूल, मञ्जिष्ठा, यव तथा तिल—इनके कल्क में शहद एवं घृत अधिक मात्रा में मिलाकर रोपण होने तक प्रतिदिन आलेप करें । रोपण हुए कान का पुनः योग्य स्थान पर वेधन करें ।[2]

कर्णपाली विकृति

यह जन्मजात भी हो सकती है अथवा जन्म के बाद, आघातादि जन्य भी हो सकती है । विकृतियों में कर्णपाली का विभक्त होना तथा लोप होना, इस हेतु आचार्य सुश्रुत ने विस्तृत वर्णन किया है । उसी का पूर्ण विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

'एवं विवर्धितः कर्णश्छिद्यते तु द्विधा नृणाम् ।
दोषतो वाऽभिघाताद्वा सन्धानं तस्य मे शृणु' ।। (सु.सू. 16)

कभी-कभी विवर्धित कर्णदोषों के प्रकोप से अथवा आघात लगने से दो भागों में फट जाता है । अतः उसका सन्धान करना चाहिए ।

1. आरा—आराऽर्धाङ्गुलवृत्तास्या तत्प्रवेशा तयोर्ध्वतः ।
चतुरस्रा तया विध्येच्छोफं पक्कामसंशये ।।
कर्णपालीं च बहलाम् ·····।। (अ.हृ.सू. 26:25)
2. 'जिह्मसूचीव्यधाद्वर्त्ति गाढत्वादथवा मलैः । जाते महति संरम्भे वर्तिमाधपनीय तत् ।। यवैरण्डजटायष्टीमञ्जिष्ठाज्यैः प्रलेपयेत् । सुरूढं च पुनर्विध्येत् त्वरया तु विवर्धनात्' ।।
'छिद्यते पालीशुद्धस्य शुद्धास्त्रां सन्दधीतताम् ।
कर्णामयनिषेधोक्तसन्धानविधिना भिषक्' ।। (अ.सं.उ. 1:68-71)

Scanned with CamScanner

इस हेतु सुश्रुत ने (सूत्रस्थान, अध्याय 16:10 में) 15 विधियाँ विभिन्न प्रकार के विकार हेतु कही है; यथा—

	कर्णपाली-विकार	सन्धान-विधि
1.	यदि कर्णपाली के दोनों भाग, मोटे, फैले हुए एवं समान हों ।	नेमिसन्धानक बन्धन
2.	दोनों कर्णपाली गोल, दीर्घ एवं समान हों ।	उत्पलभेद्यक बन्ध
3.	दोनों कर्णपाली गोल, छोटी एवं समान हों ।	वल्लूरक बन्ध
4.	जिसकी भीतरी एक कर्णपाली दीर्घ हो ।	आसङ्गिम बन्ध
5.	जिसकी बाह्य एक कर्णपाली दीर्घ हो ।	गण्डकर्ण बन्ध
6.	जिसकी दोनों कर्णपाली न हों ।	आहार्य बन्ध
7.	जिसकी दोनों कर्णपाली मूल से ही छिन्न हो ।	निर्वेधिम बन्ध
8.	जिसकी कर्णपाली का एक भाग स्थूल तथा दूसरा सूक्ष्म हो तथा एक समान दूसरा विषम हो ।	व्यायोजिम बन्ध
9.	जहाँ एक पाली भीतर से लम्बी, दूसरी अल्प हो	कपाटसन्धिक बन्ध
10.	जहाँ बाह्य भाग दीर्घ भीतरी अल्प हो	अर्धकपाटसन्धिक बन्ध
11.	यदि बाह्य पाली का शष्कुली भाग सूख गया हो या नष्ट हो गया हो एवं दूसरा भाग अल्प हो ।	संक्षिप्त बन्ध
12.	जहाँ पाली का अधिष्ठान हीन हो तथा गण्ड के दोनों तरफ बाह्य भाग में मांस क्षीण हों ।	हीनकर्ण बन्ध
13.	यदि पाली पतली, टेढ़ी-मेढ़ी तथा अल्प हो ।	वल्लीकर्ण बन्ध
14.	जहाँ पाली के मांस में गाँठ पड़ गयी हो, सिराएँ कुटिल या स्तब्ध पड़ गयी हों ।	यष्टिकर्ण बन्ध
15.	यदि पाली मांसरहित, संक्षिप्त अग्र भाग वाली तथा अल्प रक्त युक्त हो ।	काकौष्ठक बन्धन

'बद्धेष्वपि तु शोफदाहरागपाकपिडकास्रावयुक्ता न सिद्धिमुपयान्ति' ।।10।।

इस तरह इन बन्धनों को करने पर भी, शोथ, दाह, लालिमा, पाक, पिडकाएँ एवं पूयादि का स्राव होने लगे तो सन्धान में कार्यसिद्धि प्राप्त नहीं होती ।

आचार्य सुश्रुत ने निम्न अवस्थाओं को असाध्य भी माना है—

(1) 'यस्य पालिद्वयमपि कर्णस्य न भवेदिह ।
कर्णपीठं समे मध्ये तस्य विद्ध्वा विवर्धयेत्' ।।11।।

जिसके कान में दोनों पाली न हों तो उसके कर्णपीठ के मध्य के समान स्थान में वेधन करके वर्धन करें ।

(2) 'बाह्यायामिह दीर्घायां सन्धिराभ्यन्तरो भवेत् ।
अभ्यन्तरायां दीर्घायां बाह्यसन्धिरुदाहृतः' ।।12।।

बाह्य कर्णपाली लम्बी हो तो भीतर की ओर तथा भीतरी कर्णपाली लम्बी हो तो बाहर की ओर सन्धान करें ।

(3) 'एकैव तु भवेत् पालिः स्थूला पृथ्वी स्थिरा च या ।
तां द्विधा पाटयित्वा तु छित्त्वा चोपरि सन्धयेत्' ।।13।।

यदि किसी की पाली मोटी, चौड़ी तथा एक ही हो तो मध्य से चीरकर ऊपर की ओर जोड़ दें ।

(4) 'गण्डादुत्पाट्य मांसेन सानुबन्धेन जीवता ।
कर्णपालीमपालेस्तु कुर्यान्निर्लिख्य शास्त्रवित्' ।।14।।

पालीहीन के गण्डप्रदेश से जीवित तथा कुछ सम्बन्ध रखने वाले मांस को लेकर कर्णपाली बनायें ।

कर्णपालीसन्धान-विधि

'अतोऽन्यतमं बन्धं चिकीर्षुरग्रोपहरणीयोक्तोपसम्भृतसम्भारं विशेषतश्चात्रोपहरेत्, सुरामण्डं क्षीरमुदकं धान्याम्लं कपालचूर्णञ्चेति । ततोऽङ्गनां पुरुषं वा ग्रथितकेशान्तं लघु भुक्तवन्तमाप्तैः सुपरिगृहीतं च कृत्वा, बन्धमुपधार्य्य, छेद्यभेद्यलेख्यव्यधनैरुपपन्नैरुपपाद्य कर्णशोणितमवेक्ष्य दुष्टमदुष्टं वेति' ।

उपर्युक्त बन्धनों में से किसी एक बन्धन को करने की इच्छावाला प्रथम अग्रोपहरणीय अध्याय (सूत्रस्थान 5) में वर्णित आवश्यक सामग्री एकत्र करें । विशेष रूप से सुरामण्ड, दुग्ध, जल, काञ्जी एवं टूटे-फूटे मिट्टी के बर्तन का महीन चूर्ण । फिर रोगी के बालों को ठीक तरह से पीछे की ओर बाँधकर हल्का भोजन कराकर पकड़वा दे । बन्धन के दृष्टिकोण से छेदन, भेदन, लेखन तथा वेधन में से उचित कर्म करें । उसके कान से निकलते रक्त को देखकर शुद्ध या अशुद्ध का निर्णय करें ।

'तत्र वातदुष्टे धान्याम्लोष्णोदकाभ्यां, पित्तदुष्टे शीतोदकपयोभ्यां श्लेष्मदुष्टे सुरामण्डोष्णोदकाभ्यां प्रक्षाल्य कर्णौ, पुनरवलिख्यानुन्नतमहीनमविषमञ्च कर्णसन्धिं सन्निवेश्य, स्थितरक्तं सन्दध्यात् । ततो मधुघृतेनाभ्यज्य पिचुप्रोतयोरन्यतरेणावगुण्ठ्य सूत्रेणानवगाढमनतिशिथिलञ्च बद्ध्वा कपालचूर्णेनावकीर्याचारिमुपदिशेत्, द्विव्रणीयोक्तेन च विधानेनोपचरेत्' ।।15।।

वातदूषित रक्त हो तो काञ्जी एवं गरम जल से, पित्तदूषित रक्त हो तो ठण्डे जल से एवं दुग्ध से, कफ दूषित हो तो सुरामण्ड एवं गर्म जल से कान को प्रक्षालित कर,

Scanned with CamScanner

उस स्थान का लेखन कर कर्णसन्धि को ऊँचा, नीचा या विषम न रखकर रक्तस्राव के बन्द होने पर सन्धान करें। फिर शहद व घृत लगाकर पिचु या प्रोत (कपड़े) से ढककर डोरे से न अधिक कड़ा न अति शिथिल बाँधकर कपालचूर्ण छिड़ककर द्विव्रणीय अध्याय (चिकित्सास्थान, प्रथम अध्याय) में वर्णित उपचार करें।

'विघट्टनं दिवास्वप्नं व्यायाममतिभोजनम्।
व्यवायमग्निसन्तापं वाक्श्रमञ्च विवर्जयेत्' ।।16।।

कर्ण का किसी के साथ विघट्टन, दिवास्वप्न, व्यायाम, अतिभोजन, स्त्रीसम्भोग, अग्नि या सूर्य का ताप, अतिभाषण एवं अन्य प्रकार का श्रम वर्जित है।

'न चाशुद्धरक्तमतिप्रवृत्तरक्तं क्षीणरक्तं वा सन्दध्यात्। स हि वातदुष्टे रक्ते रूढोऽपि परिपुटनवान्! पित्तदुष्टे दाहपाकरागवेदनावान्, श्लेष्मदुष्टे स्तब्धः कण्डूमान्, अतिप्रवृत्तरक्ते श्यावशोफवान्, क्षीणोऽल्पमांसो न वृद्धिमुपैति ।।17।।

बन्धन के समय कर्णपाली से अशुद्ध रक्त निकलता हो या अधिक या कम रक्त निकलता हो तो सन्धान नहीं करना चाहिए। वायुदुष्ट रक्त से परिपोट रोग, पित्तदुष्ट से दाह, पाक, राग एवं वेदना; कफदुष्ट से स्तब्धता एवं कण्डु, अति रक्त की प्रवृत्ति से उस स्थान में कालिमा या नीलिमा तथा शोथ एवं रक्तक्षीणता से मांस कम होने के कारण सन्धान करने पर भी वृद्धि नहीं होती।

'(आमतैलेन त्रिरात्रं परिषेचयेत्, त्रिरात्राच्च पिचुं परिवर्तयेत्।) स यदा सुरूढो निरुपद्रवः सवर्णो भवति तदैनं शनैश्शनैरभिवर्द्धयेत्। अतोऽन्यथा संरम्भदाहपाक रागवेदनावान्, पुनश्छिद्यते वा' ।।18।।

(तिल्ली के कच्चे तेल द्वारा तीन दिन तक परिषेक करें तथा प्रत्येक तीसरे दिन पिचु बदलें।) ठीक तरह रोपित हो जाने पर, कोई उपद्रव न होने पर, उस स्थान की त्वचा का रंग अन्य त्वचा सदृश हो जाय तो उसके छिद्र को वर्धनों द्वारा धीरे-धीरे बढ़ायें। इसके विपरीत करने से दाह, पाक, राग एवं वेदना होती है तथा कर्णपाली पुनः फट जाती हैं। इसके पश्चात् कहे गये तैल (सू. 16:21-24) एवं उबटन द्वारा कर्णपाली की वृद्धि करना चाहिए।

कर्णपाली के रोग

'कर्णपाल्यां प्रकुपिता वातपित्तकफास्त्रयः।
द्विधा वाऽप्यथ संसृष्टाः कुर्वन्ति विविधा रुजः ।।
विस्फोटः स्तब्धता शोफः पाल्यां दोषे तु वातिके।
दाहविस्फोटजननं शोफः पाकश्च पैत्तिके।
कण्डूः सश्वयथुः स्तम्भो गुरुत्वञ्च कफात्मके' ।।
(सु.सू. 16:29-31)

मिथ्या आहार-विहार से त्रिदोष कुपित होकर पृथक्-पृथक् दो या तीनों मिलकर कर्णपाली के अनेक रोग उत्पन्न करते हैं। यथा—

वातज—विस्फोट, स्पर्शज्ञानाभाव एवं शोथ।
पित्तज—दाह, विस्फोट का प्रादुर्भाव, शोथ एवं पाक।
कफज—कण्डू, शोथ, स्तम्भ एवं भारीपन।

'यथादोषं च संशोध्य कुर्यात्तेषां चिकित्सितम्।
स्वेदाभ्यङ्गपरीषेकैः प्रलेपासृग्विमोक्षणैः ।।
मृद्वीं क्रियां बृंहणीयैर्यथास्वं भोजनैस्तथा।
य एवं वेत्ति दोषाणां चिकित्सां कर्त्तुमर्हति' ।। (सु.सू. 16:32-33)

उपरोक्त रोगों में दोषानुसार प्रथम शोधन करके स्वेदन, अभ्यङ्ग, परिषेक, प्रलेप एवं रक्तमोक्षण करें। इसके अतिरिक्त अन्य मृदु क्रियाएँ तथा यथा योग्य बृंहणीय भोजन का प्रयोग करायें।

कर्णपाली के उपद्रवस्वरूप रोग एवं चिकित्सा

(सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान, 16:34-48)

उपद्रव	चिकित्सा-विधि	योग
1. उत्पाटक	प्रलेप एवं तैल का प्रयोग	अपामार्ग, राल, पाटला, बड़हलत्वक् का कल्क या तैलपाक।
2. उत्पुटक	प्रलेप एवं तैल का प्रयोग	अमलतास, शिग्रु, पूतिकरञ्ज, गोहमेद वसा, सूकर, गो, हरिणपित्त एवं घृतकल्क या तैलपाक।
3. श्याव	प्रलेप एवं तैल का प्रयोग	हरिद्रा, सुगन्धा, श्यामा, अनन्ता एवं चौलाई का कल्क या तैलपाक।
4. सकण्डूक या सकण्डूक+व्रण या सकण्डूक + शुष्कपाली	प्रलेप एवं तैल का प्रयोग तैल-प्रयोग	पाठा, रसांजन, शहद, उष्णकांजी का लेप या तैलपाक। (1) वक्ष्यमाण तैल। (2) मुलेठी, क्षीरकाकोली, जीवकीय गणौषधि, गोधा, सूकर एवं सर्पवसा का प्रयोग
5. अवमन्थक	अवसेचन, लेप एवं तैल प्रयोग	कमल, मुलेठी, मंजिष्ठा एवं धव का लेप या तैलपाक।
6. कण्डू	लेप एवं तैल	सहदेवी विश्वेदेवा, अजादुग्ध, सैन्धव का कल्क या तैलपाक।
7. ग्रन्थिक	पाटनकर्म, घर्षण एवं लेप	शस्त्र से चीरकर, रक्तादि को निकालकर सैन्धव से घर्षण करें तथा जल में पीसकर लगायें।

Scanned with CamScanner

उपद्रव	चिकित्सा-विधि	योग
8. जम्बुल	लेखन, घर्षण, रोपण	लेखनकर, लोध्रचूर्ण से घर्षण कर दुग्ध से प्रक्षालन एवं रोपण कर्म करें ।
9. स्रावी	लेप एवं तैल	मधुपर्णी, मधुक, मधूक को मधु में पीसकर लगायें अथवा तैल सिद्ध करके लगायें ।
10. दाहवान्	लेपन	1. पञ्चवल्कल, मधु एवं घृत के स्नाथ एवं 2. जीवनीय गणौषधि घृत के साथ लेप करें ।

इस प्रकार आयुर्वेद में बतायी गयी सभी कर्णपालीविकृति-विकार एवं उपद्रव जो सुश्रुत ने विशेष रूप से वर्णित किये है, का यहाँ उल्लेख किया गया है ।

*

अध्याय - 8

दुष्टस्तन्यजन्य रोग

त्रिदोष सिद्धान्त एवं पञ्चमहाभूतवाद आयुर्वेद की अपनी मौलिकता है । माता के द्वारा मिथ्या (जो उचित नहीं है) आहार-विहार लेने से वात-पित्त-कफ में से एक का अथवा दो का एक साथ या तीनों का एक साथ प्रकोप होता है जो व्याधि का उत्पादक कारण है । आधुनिक दृष्टिकोण से दूध के सामान्य रासायनिक सङ्गठन में परिवर्तन या दूध के द्वारा संक्रमणजन्य व्याधियाँ हो सकती हैं । यह संक्रमण स्थानीय (स्तनविद्रधि, विदार) या सार्वदैहिक (माता को ज्वरादि) हो सकता है जिससे जीवाणु या विषाणु दूध के साथ निकल कर बच्चे द्वारा पान कर लिये जाते हैं । त्रिदोष के अतिरिक्त बालग्रह भी दूध को दूषित करते हैं । इनका बाहर से आक्रमण होता है । सम्भवत: काश्यपसंहिता का यह प्रसङ्ग संक्रमण का ही द्योतक हो ।

स्तन्यदुष्टि के सामान्य हेतु

'अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् ।
लवणाम्लकटुक्षारप्रक्लिन्नानां च सेवनात् ।।
मन:शरीरसन्तापादस्वप्नान्निशि चिन्तनात् ।
प्राप्तवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेन च ।।
परमान्नं गुडकृतं कृशरां दधि मन्दकम् ।
अभिष्यन्दीनि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च ।।
भुक्त्वा भुक्त्वा दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात् ।
अनायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्शनै: ।
दोषा: क्षीरवहा: प्राप्य सिरा: स्तन्यं प्रदूष्य च' ।।
(च.चि. 30:232-236)

'विरुद्धाहारभुक्तायाः क्षुधिताया विचेतसः ।
प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः' ।। (अ.हृ.उ. 1:19)

'क्षीरं हि यथोक्तैर्दोषकोपनैराहारविहारैर्धात्र्या व्यापन्नं विविधा भयो दयाय बालस्य प्रकल्पते' । (अ.सं.उ. 2:3)

'गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टदोषैः प्रदूषितम् ।
क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते' ।।
(मा.नि.स्त.नि.; यो.र.क्षीरदोष, पृ. 432)

Scanned with CamScanner

अजीर्ण पर भोजन, असात्म्य भोजन, विषम भोजन तथा विरुद्ध भोजन के अति सेवन से; लवण, अम्ल, कटु, क्षार एवं प्रक्लिन्न द्रव्यों के सेवन से; मनःसन्ताप एवं दैहिक सन्ताप से; रात्रिजागरण, चिन्ता, प्रवृत्त वेगों को रोकने से, अप्राप्त वेगों को बलात् प्रवृत्त करने से; परमान्न, गुड़ से बना आहार, कृशरा, मन्दक, दधि, अभिष्यन्दि, ग्राम्य, आनूप एवं जलज पशु-पक्षियों के मांस के अति सेवन से एवं इनके भोजन के पश्चात् सदा सो जाने से; अति मद्यपान से, कोई श्रम का कार्य न करने से; चोट, क्रोध या व्याधि से उत्पन्न कृशता या दौर्बल्य के कारण वातादि दोष क्षीरवह शिराओं में पहुँच कर दूध को दूषित करते हैं।

लगभग ऐसे ही कारण सभी आचार्यों ने संक्षेप में कहे हैं। वाग्भट ने गर्भवती स्त्री का दूध भी कारणों में बताया है (पारिगर्भिक रोग)।

वातदोष से विकृत दुग्ध के लक्षण एवं व्याधियाँ

'श्यावारुणवर्णं कषायानुरसं विशदमनालक्ष्यगन्धं रूक्षं द्रवं फेनिलं लघ्वतृप्तिकरं कर्शनं वातविकाराणां कर्तृ वातोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम्' ।। (च.शा. 8:55)

'वैरस्यं फेनसङ्घातो रौक्ष्यं चेत्यनिलात्मके' । (च.चि. 30:237)

'तत् कषायं भवेद्वातात् क्षिप्तं च प्लवतेऽम्भसि' । (सु.नि. 10:23)

'कषायं फेनिलं रूक्षं वर्चोमूत्रविबन्धकृत्' । (अ.हृ.उ. 2:3)

'तत्र श्यावारुणवर्णं तिक्तकषायानुरसं विशदं रूक्षमलक्ष्यगन्धं फेनिलमतृप्तिकरमाध्मानमूत्रवर्चोविबन्धकृत् कर्शनमप्सु विसर्पति विच्छिन्नं च प्लवते वातदुष्टम्'। (अ.सं.उ. 2:4)

'कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्' ।। (यो.र.क्षीरदोष पृ. 432)

वर्ण—श्याव-अरुण वर्ण।
रस—तिक्त, कषाय ??
अनुरस—कषाय।
गुण—विशद, गन्धहीन, रूक्ष, अति तनु, फेनयुक्त, लघु।
विगुणता—वैरस्य, फेनसङ्घात, रौक्ष्य (देखिये—अष्ट क्षीरदोष प्रकरण)।
लक्षण एवं व्याधि—अतृप्तिकारक, कृशता, सम्पूर्ण वातविकार पैदा करने वाला, आध्मान तथा मूत्र-मल का अवरोध करने वाला होता है।
परीक्षण—पानी में डालने से उस पर तैरता है।

पित्तदूषित स्तन्य के लक्षण एवं व्याधियाँ

'कृष्णनीलपीतताम्रावभासं तिक्ताम्लकटुकानुरसं कुणपरुधिरगन्धि भृशोष्णं पित्तविकाराणां कर्तृ च पित्तोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम्' । (च.शा. 8:55)

'पित्ताद्वेवर्ण्यदौर्गन्ध्ये.....' । (च.चि. 30:237)

'पित्तादम्लं सकटुकं राज्योऽम्भसि च पीतिका:' । (सु.नि. 10:24)

'पित्तादुष्णाम्लकटुकं पीतराज्यप्सु दाहकृत्' । (अ.हृ.उ. 2:3)

'कृष्णानीलताम्रावभासं तिक्तावभासं तिक्ताम्लकटुकानुरसं कुणपरुधिरः गन्धि-भृशोष्णमप्सु पीतराजीमद्विदाहकरं च पित्तदुष्टम्' । (अ.सं.उ. 2:5)

'कट्वम्ललवणं पित्तं राजिमत् पित्तसंज्ञितम्' । (यो.र. क्षीरदोषा.; मा.नि. स्तन्य)

वर्ण—कृष्ण, नीला, पीला या ताम्रवर्ण की आभा वाला।
रस—अम्ल, कटु एवं लवण ??
अनुरस—तिक्त, अम्ल, कटु।
गन्ध—कुणपगन्धि, रुधिरगन्धि।
गुण—अति उष्ण, दाहकारक।
लक्षण एवं व्याधि—पित्तज विकारों को उत्पन्न करने वाला।
विगुणता—वैवर्ण्य, दौर्गन्ध्य (देखिये—अष्टक्षीरदोष प्रकरण)।
परीक्षण—पानी में डालने पर पीली रेखाएँ छोड़ता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने पैत्तिक दुग्ध दोष की चिकित्सा (आगे इसी अध्याय में देखे) में ताम्रवर्णावभास दुग्ध, कटु एवं अम्ल अनुरस तथा उष्ण दुग्ध का प्रभाव भी लिखा है।

(1) 'ताम्रावभासं पयो हृदयमुद्वेष्टयति' (हृदयस्थान में उद्वेष्टन)।
(2) 'अम्लानुरसमम्लं पित्तकरम्'। (अम्ल पित्तकारक-अम्ल अनुरस)
(3) 'कटुकानुरसं छर्दतीसारं कासश्वासकरम्'।
(4) 'भृशोष्णमनामदाह ज्वरकरं विरेचनम्'। (अ.सं.उ. 2:14)

कफदूषित स्तन्य के लक्षण एवं व्याधियाँ

'अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्योपपन्नं लवणानुरसं घृततैलवसामज्जगन्धि पिच्छिलं तन्तुमदुदकपात्रेऽवसीदच्छ्लेष्मविकाराणां कर्तृ श्लेष्मोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम्'। (च.शा. 8:55)

'.....स्नेहपैच्छिल्यगौरवम्।
कफाद्भवति.....' ।। (च.चि. 30:237)

'कफाद् घनं पिच्छिलं च जले चाप्यवसीदति' ।। (सु.नि. 10:24)

'कफात्सलवणं सान्द्रं जले मज्जति पिच्छिलम्' ।। (अ.हृ.उ. 2:4)

'अत्यर्थं शुक्लमधुरं लवणानुरसं घृततैलवसामज्जगन्धि, पिच्छिलं बहलं तन्तुमत् गुरु सलिलेऽवसीदति निद्राबहुलं च श्लेष्मदुष्टम्' ।। (अ.सं.उ. 2:6)

'कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम्' ।। (यो.र.क्षीरदोष. पृ. 433)

Scanned with CamScanner

वर्ण—अतिश्वेत ।
रस—अतिमधुर (लवण ??) ।
अनुरस—लवण ।
गन्ध—घृत, तैल, वसा, मज्जा के समान ।
गुण—अतिपिच्छिल, तन्तुयुक्त, घन, गुरु, वहल ।
विगुणता—अतिस्नेह, अतिपिच्छिलता एवं अतिगौरव ।
लक्षण एवं व्याधि—निद्राधिक्य, कफज विकार उत्पन्न करने वाला ।
परीक्षण—जल में डालने पर नीचे चला जाता है ।

पैत्तिक दुग्ध दोष की ही भाँति अष्टाङ्गसंग्रहकार ने कफज दुग्ध दोष में भी वर्णित किया है ।

'लवणानुरसं विसर्पकोठकण्डूकरम्' ।
'तन्तुमद् दौर्बल्यश्वासकासकरम्' ।
'गुरु सदनात्मकं प्रतिश्यायसिङ्घाणकक्षीरालसककरम्' ।
(अ.सं.उ. 2:16)

द्वन्द्वज एवं त्रिदोषज दुष्ट दुग्ध के लक्षण एवं व्याधियाँ

'सर्वैर्दुष्टैः सर्वलिङ्गमभिघाताच्च दुष्यति' । (सु.नि. 10:24)
'संसृष्टलिङ्गं संसर्गात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम्'। (अ.सं.उ. 2:4)
'द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम्' ।
(यो.र.क्षीरदोष.पृ. 433)

'स्तन्ये त्रिदोषसन्दुष्टं शकृदामं जलोपमम् ।
नानावर्णरुजं चार्द्धविबद्धमुपवेशयेत्' ।। (यो.र.क्षीरदोष.पृ. 433)

दो दोषों के मिलने से दूषित दूध में दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं । सन्निपातज में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं । अष्टाङ्गसंग्रहकार ने (उ. 2:17) त्रिदोषज दुग्ध दोष से क्षीरालसक की उत्पत्ति बताया है । इसका विवेचन आगे किया जायेगा । त्रिदोषज दुष्ट दूध से शिशु को मल आमयुक्त, जलवत्, अनेक वर्ण तथा पीड़ाओं से युक्त, आधा बँधा एवं आधा पतला होता है ।

माधवनिदान एवं योगरत्नाकरकार ने दोषानुसार दुष्ट स्तन्य से होने वाली व्याधियों का संग्रह करने का प्रयास किया है—

'वाताद् दुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः ।
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद् बद्धविण्मूत्रमारुतः ।।
स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्ग पित्तदुष्टं पयः पिबन् ।।
कफदुष्टं पिबत् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ।

निद्रान्वितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छर्दनः शिशुः ।।
द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम्' । (मा.नि.वा.रो.)

वातदुष्ट स्तन्य—वातिक व्याधियाँ, क्षीणस्वर, कृशता, मल-मूत्र-वायु का अवरोध ।
पित्तदुष्ट स्तन्य—अतिस्वेद, मलभेद, कामला, अतितृष्णा, सर्वाङ्ग शरीर में उष्णता, पैत्तिक रोग ।
कफदुष्ट स्तन्य—अतिलालास्राव, श्लैष्मिक व्याधियाँ, निद्राधिक्य, जड़ता, मुख एवं नेत्रों पर शोथ तथा वमन ।
द्वन्द्वज एवं त्रिदोष दुष्ट स्तन्य—मिश्रित लक्षण ।

चरकोक्त अष्टक्षीरदोष का विवेचन
(च.चि. 30:237-250)

चरकसंहिता में वात-पित्त-कफ के कारण स्तन्य में उत्पन्न विगुणता को आठ भागों में दोषानुसार वैशिष्ट्य के अनुरूप बाँटा गया है—

'वैरस्यं फेनसङ्घातो रौक्ष्यं चेत्यनिलात्मके ।
पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्ये स्नेहपैच्छिल्यगौरवम् ।।
कफाद्भवति·····' ।

वातदोषजन्य विगुणता—विरसता, फेनसङ्घात एवं रूक्षता ।
पित्तदोषजन्य विगुणता—दौर्गन्ध्य, विवर्णता ।
कफदोषजन्य विगुणता—अतिस्नेह, पिच्छिलता एवं गुरुता ।

स्तन्य-वैगुण्य की सम्प्राप्ति एवं उत्पन्न व्याधि के लक्षण

(1) **विरसता**—वात अपने रूक्षादि कोपक कारणों से कुपित होकर क्षीराशय (स्तन) में जाकर दूध के रस को दूषित कर देता है । उस दूध को पान करने वाला शिशु कृश होता है । वह दूध शिशु को सुस्वादु (अच्छा) नहीं लगता । शिशु की ठीक से वृद्धि नहीं हो पाती है ।

'····· रूक्षाद्यैरनिलः स्वैः प्रकोपणैः ।
क्रुद्धः क्षीराशयं प्राप्य रसं स्तन्यस्य दूषयेत् ।
विरसं वातसंसृष्टं कृशीभवति तत् पिबन् ।
न चास्य स्वदते क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्धते' ।।

(2) **फेनसङ्घात**—उसी प्रकार कुपित वायु दूध को स्तन में ही विलोडित करता हुआ फेन उत्पन्न करता है, जो स्तन्य बड़ी कठिनाई से निकलता है । इसके पान करने से बालक का स्वर अतिदुर्बल एवं शुष्क हो जाता है । मल-मूत्र एवं अपानवायु अवरोध हो जाता है, इससे शिशु को वातिक शिरोरोग या पीनस रोग हो जाता है ।

'तथैव वायुः कुपितः स्तन्यमन्तर्विलोडयन् ।
करोति फेनसङ्घातं तत्तु कृच्छ्रात्प्रवर्तते' ।।

Scanned with CamScanner

तेन क्षामस्वरो बालो बद्धविण्मूत्रमारुतः ।
वातिकं शीर्षरोगं वा पीनसं वाऽधिगच्छति' ।।

(3) **रूक्षता**—पूर्ववत् कुपित हुआ वायु स्तन्य में स्नेह भाग को सुखा देता है। उस स्तन्य के पान से रूक्षता एवं बल का ह्रास होता है ।

'पूर्ववत्कुपितः स्तन्ये स्नेहं शोषयतेऽनिलः ।
रूक्षं तत् पिबतो रौक्ष्याद्बलह्रासः प्रजायते' ।।

(4) **विवर्णता**—उष्णादि हेतुओं से क्रुद्ध पित्त स्तन में पहुँचकर दूध में नीलिमा, पीलिमा, कृष्णता आदि विवर्णता उत्पन्न करता है जिसके पान करने से शरीर में विवर्णता होना, अतिस्वेद होना, अतितृषा, मलभेद, नित्य शरीर का उष्ण रहना एवं स्तनपान न करना आदि लक्षण प्रकट होते हैं ।

'पित्तमुष्णादिभिः क्रुद्धं स्तन्याशयमभिप्लुतम् ।
करोति स्तन्यवैवर्ण्यं नीलपीतासितादिकम् ।
विवर्णगात्रः स्विन्नः स्यात्तृष्णालुर्भिन्नविट् शिशुः ।
नित्यमुष्णशरीरश्च नाभिनन्दति तं स्तनम् ।।

(5) **दौर्गन्ध्य**—पूर्ववत् पित्त के कुपित होने पर स्तन्य दुर्गन्धित होता है, जिसके पान करने से पाण्डु एवं कामला हो जाता है ।

'पूर्ववत्कुपिते पित्ते दौर्गन्ध्यं क्षीरमृच्छति ।
पाण्ड्वामयस्तत्पिवतः कामला च भवेच्छिशोः' ।

(6) **अतिस्नेह**—स्त्री के स्तन में गया हुआ गुरु आदि हेतुओं से क्रुद्ध कफ स्नेह गुण युक्त होने से उस स्तन्य को अति स्निग्ध कर देता है, जिसके पान करने से शिशु को वमन, कुन्थन, मुख से सदैव लालस्राव होता है । स्रोत सदा कफ से भरे रहते हैं। शिशु को अतिनिद्रा, श्वास, कास, कफप्रसेक एवं तमकश्वास हो जाता है ।

'क्रुद्धो गुर्वादिभिः श्लेष्मा क्षीराशयगतः स्त्रियाः ।
स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमतिस्निग्धं करोति तु ।
छर्दनः कुन्थनस्तेन लालालुर्जायते शिशुः ।
नित्योपदिग्धैः स्रोतोभिर्निद्राक्लमसमन्वितः ।
श्वासकासपरीतस्तु प्रसेकतमकान्वितः' ।।

(7) **पिच्छिलता**—जब कफ स्तन्य को दूषित कर पिच्छिल कर देता है तो उसके पीने से शिशु को लार बहती है । मुख एवं नेत्रों पर शोफ हो जाता है । शिशु में जड़ता आ जाती है ।

'अभिभूय कफः स्तन्यं पिच्छिलं कुरुते यदा ।
लालालुः शूनवक्त्राक्षिर्जडः स्यात्तत् पिबञ्छिशुः' ।।

(8) **गुरुता**—क्षीराशय में पहुँचा हुआ कफ अपने गुरु गुण से स्तन्य को भी गुरु कर देता है । उसके पान करने से शिशु को हृदयरोग उत्पन्न होता है एवं अन्य रोग भी उत्पन्न होते हैं ।

'कफः क्षीराशयगतो गुरुत्वात्क्षीरगौरवम् ।
करोति गुरु तत्पीत्वा बालो हृद्रोगमृच्छति ।।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् कुर्यात्क्षीरसमाश्रितान्' ।

हारीतोक्त पाँच स्तन्य दोष

'पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणां च कथिता बुधैः ।
घनक्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा चैव तथा परा ।।
अल्पक्षीरा मृदुक्षीरा क्षारक्षीरा तथा परा ।
मृदुक्षीरा भवेत् सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः' ।।

(हा.सं. 3 स्थान 54:1-2)

मृदु क्षीर होना 'प्रकृति' है, अन्य पाँच विकृतियाँ हैं; यथा—घन, उष्ण, अम्ल, अल्प एवं क्षारक्षीर ।

काश्यपोक्त ग्रह तथा वातादि दोष-दुष्ट स्तन्य का विवेचन

(काश्यपसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय 19)

यह अध्याय प्रारम्भ से ही खण्डित है तथा अध्याय का उपलब्ध अंश स्तन्य-ग्रह के दुष्ट होने के प्रकरण से ही प्रारम्भ है । यदि पूर्ण विवरण उपलब्ध होता तो सम्भवतः सभी ग्रहों का या दोषों का प्रभाव स्तन्य पर कश्यप के मत से भी स्पष्ट होता, क्योंकि इसी अध्याय में चिकित्सा क्रम में उपलब्ध विवरण वातादि दोष-विवरण का स्पष्ट संकेत करते हैं ।

'सक्षौद्रः कफसंसृष्टे सघृतः शेषयोर्भवेत् ।
नेत्येके श्लेष्मणः स्थानात् क्षीरं हि कफसम्भवम्' ।।

अर्थात् उपर्युक्त कषाय कफ से दूषित हुए दूध के लिए मधु के साथ तथा शेष दोनों में (वात तथा पित्त) से दूषित में घृत के साथ देना चाहिए । कुछ लोगों का मत है कि इसे घृत के साथ नहीं देना चाहिए । क्योंकि घृत श्लेष्मा का स्थान है तथा दुग्ध से कफ उत्पन्न है ।

'.....शकुनी कटुतिक्तके ।
स्कन्दषष्ठीग्रहौ ज्ञेयौ व्यापन्ने सान्निपातिके ।।
पूतना स्वादुकटुके शेषाः संसृष्टदोषजाः ।
बहुविण्मूत्रता स्वादौ कषाये मूत्रविड्ग्रहः ।।

Scanned with CamScanner

तैलवर्णे बली तुल्या घृतवर्णे महाधनः ।
यशस्वी धूमवर्णे तु शुद्धे सर्वगुणोदितः' ।।

ग्रहबाधा	स्तन्य-स्वाद	दोषज लक्षण	शिशु में परिणाम
शकुनी	कटु एवं तिक्त	—	??
स्कन्द	—	त्रिदोषजन्य लक्षण	—
षष्ठीग्रह	—	त्रिदोषजन्य लक्षण	—
पूतना	मधुर एवं कटु	—	मल एवं मूत्र बाहुल्य ??
??	कषाय रस	—	मूत्रग्रह, मलग्रह
—	लवण रस[1]	—	पङ्गुता, जड़ता एवं मूकता
—	—	त्रिदोषज दुग्ध दोष से[2]	उपरोक्त

स्तन्य का वर्ण	परिणाम
तैलवर्ण	बलवान्
घृतवर्ण	ऐश्वर्ययुक्त
धूम्रवर्ण	यशस्वी
शुद्ध दुग्ध	सर्वगुणसम्पन्न

उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रोग दुष्ट स्तन्य से होते हैं जिनका वर्णन आगे दिया जायेगा । यहाँ उल्लेख मात्र किया जा रहा है—

1. फक्करोग—श्लैष्मिक दुग्ध दोष, गर्भवती माता का दूध ।
2. बालशोष—श्लैष्मिक दुग्ध दोष ।
3. पारिगर्भिक—गर्भवती माता का दूध ।
4. अहिपूतना—दुष्ट स्तन्य पान । (सु.नि. 13:57)
5. कुकूणक—स्तन्य दुष्टि (कफरक्तज-कश्यप) (त्रिदोषज-सुश्रुत)
6. विसर्प—दुग्ध दोष (कश्यप) ।
7. चर्मदल—दुग्ध दोष (कश्यप) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालकों की बहुत-सी व्याधियों का कारण आयुर्वेद संहिताओं में दुष्ट दुग्ध को माना गया है । उपरोक्त समस्त विवरण एवं मत-मतान्तर को आगे की तालिका में संग्रहीत किया जा रहा है ।

1-2. पित्तानिलप्रकृतिकी पटुक्षीरा पटुप्रजा ।
कुतः पङ्गु जडा मूकाः त्रिदोषक्षीरभोजिनः ।। (का.चि.फक्कचि. 5)

दुष्ट स्तन्य : लक्षण, परीक्षण एवं परिणाम

दोष	वैगुण्य	परिणाम	वर्ण	दोषानुसार गुण-विवेचन	गन्ध	परीक्षण	रस	अनुरस	ग्रहबाधा जन्य	हारीतोक्त दुग्ध दोष	व्याधि
वातज	1. वैरस्य 2. फेन-सङ्घात 3. रौक्ष्य	कृशता, ठीक से वृद्धि न होना, स्वादहीन होना । स्वरदौर्बल्य, मल-मूत्र-अपानवायु का अवरोध, वातिक शिरोरोग/पीनस । रूक्षता, बलह्रास	श्याव-अरुण	विशद, रूक्ष, अतितनु, फेनयुक्त, लघु, स्वादहीन	गन्धहीन	जल में क्षीर डालने पर तैरता है ।	तिक्त, कषाय	कषाय	?? (कषायरस)	1. अल्प क्षीर	कार्श्यता, चर्मदल (कश्यप)
पित्तज	1. वैवर्ण्य 2.दौर्गन्ध्य	गात्रविवर्णता, अतिस्वेद, अति तृषा, मलभेद, स्तनपान न करना, सर्वाङ्ग उष्णता । पाण्डु, कामला ।	कृष्ण-नील-पीत-ताम्र[1] वर्ण-आभास वाला	अतिउष्ण[2] दाहकारक	कुणप-गन्धि, रक्तगन्धि	जल में डालने पर पीली रेखायें छोड़ता है ।	अम्ल कटु लवण	तिक्त अम्ल[3] कटु[4]	शकुनी (कटु + तिक्त)	2. उष्ण क्षीर 3. अम्ल क्षीर	पाण्डु, कामला, अतिसार (अम्ल-पित्त, वमन, कास-श्वास, अनाम, दाह, ज्वर)

(1) ताम्रवर्ण दूध से हृदय में उद्वेष्टन, (2) अतिउष्ण से अनाम, दाह, ज्वर, विरेचन (3) अम्ल अनुरस से अम्लपित्त (4) कटु से वमन, अतिसार, कास, श्वास । होता है । (अ.सं.उ. 2:14)

Scanned with CamScanner

दोष	वैगुण्य	परिणाम	वर्ण	दोषानुसार गुण-विवेचन	गन्ध	परीक्षण	रस	अनुरस	ग्रहबाधा जन्य	हारीतोक्त दुग्ध दोष	व्याधि
श्लैष्मिक	1. अति स्नेह	वमन, कुथन, लालास्राव, स्रोतों का कफ से भरा रहना, अतिनिद्रा, श्वास, कास ।	अनभिहित	अतिपिच्छिल तन्तुयुक्त[1] घन, गुरु[2] बहल ।	घृत-तैल वसा-मज्जावत्	जल में डालने पर नीचे बैठ जाता है ।	अति मधुर लवण	लवण[3]		4. घन 5. क्षार-क्षीर (??)	फक्कोग, बाल-शोष [विसर्प, कोठ, कण्डू, दौर्बल्य, श्वास-कास, शैथिल्य, प्रतिश्याय, सिषाणक क्षीरालसक?] [लवणरस, पङ्गु, जड़ एवं मूक] [का.]
द्वन्द्वज (दो दोषों का समूह)	—	—		मिश्रित गुणादि एवं लक्षण उत्पन्न होते हैं ।			मधुर + कटु		पूतना ग्रह	—	—
त्रिदोषज	—	—		मिश्रित गुणादि एवं लक्षण होते हैं ।					स्कन्द ग्रह, षष्ठी ग्रह, त्रिदोषज दुग्ध ।		क्षीरालसक, कुकूणक (त्रिदोष + रक्त) (सुश्रुत), विसर्प (कार्श्यप) एवं पङ्गु, जड़ तथा मूक ।

1. तन्तु से दौर्बल्य, श्वास एवं कास; 2. गुरुता से शैथिल्य, सिषाणक, क्षीरालसक एवं 3. लवण अनुरस से विसर्प, कोठ, कण्डू होते हैं ।
नोट—सामान्य दुग्धदोषजन्य व्याधियाँ—अहिपूतना (भोज) एवं पारिग्रहिक (नाक्षिणी माता) हैं (जहाँ दोषों का उल्लेख नहीं है) ।

चिकित्सा—स्तन्य दोष की चिकित्सा का प्रारूप इस प्रकार है ।

यहाँ के सन्दर्भ में सर्वप्रथम दोषानुसार चिकित्सा का वर्णन कर रहे हैं । आगे रोगों के सन्दर्भ में रोगानुसार चिकित्सा की जायेगी ।

दुग्ध-दोषों की सामान्य चिकित्सा

धात्री या माता की चिकित्सा—तीनों दोषों के प्रत्येक भेद का विचार करके दोषानुसार चिकित्सा का विचार कर संशोधन कर्म करें । दुष्ट दूध वाली धात्री को पथ्य में जौ, गेहूँ, शालि, षष्टी, मूँग, हरेणु, कुलत्थी, सुरा, सौवीर, मैरेय, मेदक, लहशुन एवं करञ्ज दें । इसका भी विचार दोषानुरूप ही करें । पाठा, शुण्ठी, देवदारु, मूर्वा, अमृता, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और सारिवा—इन द्रव्यों का क्वाथ पिलायें ।[1]

इनके अतिरिक्त तिक्त, कषाय, कटु एवं मधुर रस वाले द्रव्यों का प्रयोग करें ।

धात्री विशेष हेतु मात्रा, काल एवं दोष का विचार अवश्य करें ।

'तेषां तु त्रयाणामपि क्षीरदोषाणां प्रतिविशेषमभिसमीक्ष्य यथास्वं यथादोषं च वमनविरेचनास्थापनानुवासनानि विभज्य कृतानि प्रशमनाय भवन्ति । पानाशनविधिस्तु दुष्टक्षीराया यवगोधूमशालिषष्टिकमुद्गहरेणुककुलत्थसुरासौवीरकमैरेयमेदकलशुनकरञ्जप्रायः स्यात् । क्षीरदोषविशेषांश्चावेक्ष्या वेक्ष्य तत्तद्विधानं कार्यं स्यात् । पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तककटुकरोहिणीसारिवाकषायाणां च पानं प्रशस्यते । तथाऽन्येषां तिक्तकषायकटुकमधुराणां द्रव्याणां प्रयोगः क्षीरविकारविशेषा-नभिसमीक्ष्य मात्रां कालं च' । (च.शा. 8:56)

संशोधन कर्म

'तत्रादौ स्तन्यशुद्ध्यर्थं धात्रीं स्नेहोपपादिताम् ।
संस्वेद्य विधिवद् वैद्यो वमनेनोपपादयेत्' ।। (च.चि. 30:251)

स्तन्य शुद्धि हेतु प्रारम्भ में स्नेहन, फिर विधिवत् स्वेदन कर वमन करायें ।

(क) वमनार्थ—वचा, प्रियङ्गु, मधुक, मदनफल, इन्द्रयव, सर्षप का कल्क तथा सैन्धव को निम्बत्वक्, पटोलपत्र के क्वाथ में डालकर पिलायें । सम्यक् वमन हो जाने पर यथानियम पेयादि संसर्जन क्रम करें ।

1. स्तन्यशोधन महाकषाय । (च.सू. 4:18)

Scanned with CamScanner

'वचाप्रियङ्गुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः ।।
कल्कैर्निम्बपटोलानां क्वाथैः सलवणैर्वमेत् ।
सम्यग्वान्तां यथान्यायं कृतसंसर्जनां ततः' ।।
(च.चि. 30:252-253)

'स्तन्ये गते विकृतिमाशु भिषक् तु धात्रीं
पीतां घृतं परिणतेऽहनि वामयेत्तु।।
निम्बोदकेन मधुमागधिकायुतेन
वान्तागतेऽहनि च मुद्गरसाशना स्यात् ।।
एवं त्र्यहं चतुरहं षडहं वमेद्वा
सर्पिः पिबेत्त्रिफलया सह संयुतं वा ' ।। (सु.चि. 17:42-43)

दूध में विकार उत्पन्न होने पर निम्नाङ्कित कोई योग पिला कर वमन करायें। वमन के बाद दूसरे दिन मूँग का यूष दें। इस प्रकार 3-4 या 6 दिन वमन करायें।

- घृतपान।
- निम्बक्वाथ में पिप्पली एवं मधु डालकर।
- त्रिफलामिश्रित घृत।

(ख) विरेचन—फिर स्नेहन कराकर विरेचन करायें। विरेचन के लिए निम्न में से किसी एक योग का प्रयोग करें—

- त्रिवृत् चूर्ण त्रिफला क्वाथ में आलोडित कर मधु से या
- हरीतकी चूर्ण त्रिफला क्वाथ में आलोडित कर मधु से या
- हरीतकी चूर्ण गोमूत्र के साथ दें।

'दोषकालबलापेक्षी स्नेहयित्वा विरेचयेत् ।
त्रिवृतामभयां वाऽपि त्रिफलारससंयुताम् ।।
पाययेन्मधुसंयुक्तामभयां वाऽपि केवलाम् ।
पाययेन्मूत्रसंयुक्तां विरेकार्थं च शास्त्रवित् ।।
सम्यग्विरिक्तां मतिमान् कृतसंसर्जनां पुनः ।
ततो दोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ।। (च.चि. 30:254-56)

सम्यक् विरेचन हो जाने पर पुनः पेय आदि संसर्जनक्रम से करके अवशिष्ट दोष-नाशक अन्नपान से उपचार करें।

(ग) पथ्य—शालि, साठी, श्यामाक, प्रियङ्गु, कोरदूष, यव, बाँस का यव, अन्न तथा कच्चा बाँस, वेत्राग्र, कलाय, घृत आदि स्नेह से संस्कृत, मूँग, मसूर एवं कुलत्थी का यूष या निम्ब, वेताग्र, कुलक, बैंगन एवं आमलकी—इनमें से किसी एक द्रव्य से साधित त्रिकटु तथा सैन्धव युक्त यूष; शशक, कपिञ्जल (गौरतित्तर), एण (काला हिरण) इनके त्रिकटु आदि से संस्कृत मांस/मांसरस का प्रयोग करें।

'शालयः षष्टिका वा स्युः श्यामाका भोजने हिताः ।
प्रियङ्गवः कोरदूषा यवा वेणुयवास्तथा ।।
वंशवेत्रकलायाश्च शाकार्थे स्नेहसंस्कृताः ।
मुद्गान् मसूरान् यूषार्थे कुलत्थांश्च प्रकल्पयेत् ।
निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैः शृतान् ।
सव्योषसैन्धवान्यूषान् दापयेत्स्तन्यशोधनान् ।।
शशान् कपिञ्जलानेणान्संस्कृतांश्च प्रदापयेत्' ।
(च.चि. 30:257-259)

(घ) स्तन्यशोधन योग—

(1) 'शार्ङ्गेष्टासप्तपर्णत्वग्वस्तगन्धाशृतं जलम् ।
पाययेताथवा स्तन्यशुद्धये रोहिणीशृतम्' ।। (च.चि. 30:260)

शार्ङ्गेष्टादि, सप्तपर्णत्वक्, वस्तगन्धा (अश्वगन्धा)—इससे षडंगपरिभाषानुसार साधित जल स्तन्यशोधनार्थ दें।

(2) रोहिणी-साधित जल दें।
(3) 'अमृतासप्तपर्णत्वक्क्वाथं चैव सनागरम्' ।
गिलोय एवं सप्तपर्णत्वक् का क्वाथ या—
(4) शुण्ठी क्वाथ।
(5) 'किराततिक्तकक्वाथं श्लोकपादेरितान् पिबेत्' ।।
(च.चि. 30:261)

किराततिक्तक (चिरायता) का क्वाथ पिलायें।

इस प्रकार सामान्य चिकित्सा का विस्तृत विवरण चरकसंहिता में दिया गया है। स्तन्यशोधन महाकषाय एवं उपरोक्त 5 स्तन्यशोधन योगों के अतिरिक्त सुश्रुत ने नये योग का वर्णन दिया है—

(6) 'भार्गीं वचामतिविषां सुरदारु पाठां मुस्तादिकं मधुरसां कटुरोहिणीं च ।
धात्री पिबेत्तु पयसः परिशोधनार्थमारग्वधादिषु वरं मधुना कषायम्' ।।
(सु.चि. 17:44)

भार्गी, वचा, अतीस, सुरदारु, पाठा, मुस्तादिगण, मूर्वा, कुटकी एवं आरग्वधादि गण के क्वाथ में मधु मिला कर पिलायें।

काश्यपोक्त स्तन्यशोधक (सूत्रस्थान; क्षीरोत्पत्ति अध्याय 19)

(7) त्रिफला, त्रिकटु, पाठा, मधुरसा, वच, कोल का चूर्ण, जम्बूत्वक्, देवदारु एवं सर्षप मिलाकर 1 प्रसृत (8 तोला) चूर्ण मधु के साथ सेवन करायें।

Scanned with CamScanner

'त्रिफला सत्रिकटुका पाठा मधुरसा वचा ।
कोलचूर्णं त्वचो जम्ब्वा देवदारु च पेषितम् ।।
सर्षप प्रसृतोन्मिश्रं पातव्यं क्षौद्र संयुतम् ।
एतत् स्तन्यस्य दुष्टस्य श्रेष्ठं शोधनमुच्यते' ।।

(8) आर्द्रक एवं पटोलपत्र के साथ पिप्पली चूर्ण का सेवन करायें। साथ में पथ्य के रूप में यूष तथा लघु अन्नपान कराना चाहिए ।

'शृङ्गवेरपटोलाभ्यां पिप्पलीचूर्णचूर्णितम् ।
यूषं पथ्यं विदध्याच्च ह्यन्नपानं च यल्लघु' ।।

(9) धातकीपुष्प, एला, मञ्जिष्ठा, मरिच, जम्बूत्वक् एवं मधुयष्टी चूर्ण शोधक है।

'धातकी पुष्पमेला च समङ्गा मरिचानि च ।
जम्बूत्वचं समधुकं क्षीरशोधनमुत्तमम्' ।।

(10) 'पाठा महौषधं दारु मूर्वामुस्तकवत्सकाः ।
सारिवारिष्टकटुकाः कैरातं त्रिफला वचा ।।
गुडूची मधुकं द्राक्षा दशमूलं सदीपनम् ।
रक्षोघ्नश्च पटोलश्च गणः क्षीरविशोधनः ।।
लाभतः क्वथितस्तेषां कषायः स तु सेवितः ।
क्षीरं शोधयति क्षिप्रं चिरव्यापन्नमप्युत ।।
सक्षौद्रः कफसंसृष्टे सघृतः शेषयोर्भवेत् ।
नेत्येके श्लेष्मणः स्थानात् क्षीरं हि कफसम्भवम्' ।।

चरकोक्त स्तन्यशोधन महाकषायोक्त द्रव्य, त्रिफला, वचा, मधुक, द्राक्षा, दशमूल, दीपनीय[1], रक्षोघ्न[2] एवं पटोलादि गण[3] के द्रव्य सभी दुग्धशोधक हैं। इनमें जो भी प्राप्त हों, उनका कषाय बनाकर देने से चिरकालीन स्तन्य दोष नष्ट हो जाते हैं। कफज स्तन्य दुष्टि में मधु के साथ, वातज तथा पित्तज में घृत के साथ देना चाहिए। कुछ विद्वान् घृत को श्लेष्मा का स्थान मानते हुए दुग्ध कफ से उत्पन्न है, अतः घृत का निषेध करते हैं।

---

1. दीपनीय—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिङ्गुनिर्यासा इति दशेमानि दीपनीयानि भवन्ति । (च.सू. 4:9)
2. रक्षोघ्न—आदानीखदिरकर्कन्धुपीलुपरूषकशाखाभिरस्या गृहं समन्ततः परिवारयेत् । सर्वतश्च सूतिकागारस्य सर्षपातसीतण्डुलकणकणिकाः प्रकिरेयुः ·····रक्षाविधानमुक्तम्। (च.शा. 8:47)
3. पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी चेति । (सु.सू. 38:33)
(कुचन्दन=रक्तचन्दन)

वातदूषित स्तन्य की चिकित्सा

'तत्र वातदूषिते स्तन्ये देवदारुसरलकटुरोहिणीवचाकुष्ठपाठाभार्ङ्गीमागधिकावृश्चिकालीचित्रकाजमोदशुण्ठीमरीचानां क्वाथं दशमूलक्वाथं वा त्रिरात्रं पाययित्वा वातव्याधिविहितानां सर्पिषामन्यतमं निगदमदिरानुपानं दद्याद्यातहरद्रव्यसिद्धं वा । ततः स्निग्धां मृदु विरेच्य बस्तिकर्मणोपचरेत् । वातघ्नैश्चाभ्यङ्गस्वेदोपदेहोन्मर्दनैः सरलरास्नाजमोदादेवदारुचूर्णं सर्पिषा बालमवलेहयेत् । एवंविधैरेव च विपक्वं सशर्करं सर्पिः । अपि च तिक्तानुरसं स्तन्यं मुद्गमाषपलाशाभ्यां काकोलीयुगलेन च शोधयेत् । प्रियङ्गुधातकीपुष्पदाकदेवदारुरक्षौद्रैर्वा । कषायानुरसं हिङ्गुसैन्धवता घृतेन । फेनिलं विच्छिन्नं प्लवमानं च बिल्वाग्निमन्थशृतेन पयसा हविषा च । सूप्यपर्णीकाकोलीबृहत्यवल्गुजफलैर्वा' । (अ.सं.उ. 2:11-12)

'अथ धात्र्याः क्रियां कुर्याद्यथादोषं यथामयम् ।
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिबेत् ।।
अथवाऽग्निवचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।
सभार्गीदारुसरलवृश्चिकालीकणोषणम् ।।
ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम् ।
अनु चाच्छसुरामेवं स्निग्धां मृदु विरेचयेत् ।।
बस्तिकर्म ततः कुर्यात्स्वेदादींश्चानिलापहान् ।
रास्नाऽजमोदासरलदेवदारुरजोऽन्वितम् ।।
बालो लिह्याद् घृतं तैर्वा विपक्वं ससितोपलम्' ।। (अ.हृ.उ. 2:9-12)

'तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीं त्र्यहं पिबेत् ।
वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत्' ।।
(यो.र.क्षीरदोषचि., पृ. 433)

(क) स्नेहन—धात्री को सर्वप्रथम निम्नाङ्कित में से कोई एक क्वाथ तीन रात तक पिलायें।

1. दशमूल क्वाथ या—
2. देवदारु, सरल, कटुरोहिणी, वचा, कुष्ठ, पाठा, भार्ङ्गी, मागधिका, वृश्चिकाली, चित्रक, अजमोदा, शुण्ठी एवं मरिच का क्वाथ देना चाहिए।

इसके बाद वातव्याधिहर घृत का पान करायें। मदिरा को अनुपान में दें।

(ख) विरेचन—मृदु विरेचन अमलतास या गुलकन्द से।

(ग) बस्ति कर्म—फिर बस्ति दें।

(घ) वातनाशक द्रव्यों का अभ्यंग तथा उन्हीं से स्वेदन एवं स्तन पर लेप करें।

(ङ) दूध के लक्षणानुरूप चिकित्सा भी करें; यथा—

Scanned with CamScanner

1. तिक्तानुरस दूध में मूँग, उड़द, ढाक, काकोली एवं क्षीरकाकोली का क्वाथ दें। या प्रियङ्गु, धातकीपुष्प, पद्माख, देवदारु का क्वाथ मधु से दें।

2. कषायानुरस दूध में हिङ्गु एवं सैन्धव को घृत से चटायें।

3. फेनिल एवं टुकड़े-टुकड़े होकर तैरने वाले दूध वाली स्त्री को बिल्व एवं अग्निमंथ से सिद्ध घृत के साथ दें। या माषपर्णी, काकोली, बड़ी कटेरी एवं बाकुची सिद्ध घृत के साथ दें।

शिशु को—सरल रास्ना, अजमोदा, देवदारु का चूर्ण घृत के साथ चटाना चाहिए और इन्हीं औषधियों से सिद्ध घृत को शक्कर मिलाकर चटाना चाहिए।

चरकोक्त वातदोष के तीन स्तन्य-वैगुण्यों की चिकित्सा

(च.चि. 3:263-270)

(1) वैरस्य स्तन्य-दोष

पाययेद्विरसक्षीरां द्राक्षामधुकसारिवाः।
श्लक्ष्णपिष्टां पयस्यां च समालोड्य सुखाम्बुना ।।
पञ्चकोलकुलत्थैश्च पिष्टैरालेपयेत्स्तनौ।
शुष्कौ प्रक्षाल्य निर्दुह्यात्तथा स्तन्यं विशुध्यति ।।

(क) द्राक्षादि योग—द्राक्षा, मधुक, सारिवा एवं पयस्या का महीन चूर्ण हल्के गर्म जल में घोलकर धात्री को पिलाये।

(ख) पञ्चकोल एवं कुलत्थी को जल में पीसकर स्तन पर लेप करें। सूख जाने पर जल से धोकर स्तन्य को निकाल देना चाहिए।

(2) फेनसङ्घात स्तन्य-दोष

फेनसङ्घातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत् स्त्रियम्।
पाठानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना ।।
किराततिक्तकं शुण्ठीं सामृतां क्वाथयेद्भिषक्।
तं क्वाथं पाययेद्धात्रीं स्तन्यदोषनिबर्हणम् ।।
स्तनौ चालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः ।।
अञ्जनं नागरं दारु बिल्वमूलं प्रियङ्गवः।
स्तनयोः पूर्ववत्कार्यं लेपनं क्षीरशोधनम् ।।

(क) पाठा, शुण्ठी, शार्ङ्गेष्टा तथा मूर्वा के कल्क को जल में घोल कर पिलायें।
(ख) किराततिक्तादि क्वाथ—चिरायता, शुण्ठी एवं गुडूची का क्वाथ पिलायें।
(ग) यव आटा, गोधूम आटा एवं सर्षप कल्क का स्तन पर लेप करें। या—

(घ) अञ्जन, शुण्ठी, देवदारु, बिल्वमूल और प्रियङ्गु का पूर्व में कही हुई विधि से लेपादि करें।

(3) रूक्ष स्तन्य-दोष

'षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैः स्तन्यशोधनैः।
रूक्षक्षीरा पिबेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिबेत् ।।
पूर्ववज्जीवकाद्यं च पञ्चमूलं प्रलेपनम्।
स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोधनम्' ।।

(क) स्तन्यशोधन महाकषाय औषधियों से सिद्ध दूध या घृत का पान कराना चाहिए।

(ख) जीवनीय गण एवं बृहत्पञ्चमूल का कल्क पूर्वोक्त विधि से स्तन पर लेपादि करें।

पित्तदूषित स्तन्य की चिकित्सा

'पित्तेऽमृतापटोलपत्रशारिवाशतावरीनिम्बचन्दनक्वाथं धात्री बालश्च पिबेत्। त्रिफलाभूनिम्बकटुकामुस्तक्वाथं वा। जीवकर्षभकद्विकाकोलीमधुककटफलकर्कटशृङ्गीक्वाथो वा। सक्षौद्रं पटोलादि पद्मकादि वा। शारिवाद्यादिं न्यग्रोधादिं वा। एभिरेव च द्रव्यैः सर्पिषि पित्तघ्नानि च विरेचनानि, शीताश्चाभ्यङ्गप्रदेहसेकान् कुर्यात्। अपि च ताम्रावभासं पयो हृदयमुद्वेष्टयति। तत् प्रियङ्गुमुस्ताशाबरलोध्रैः शोधयेत्। अम्लानुरसमम्लपित्तकरम्। तत् द्राक्षामधुकपयस्याश्रीपर्णीभिः। कटुकानुरसं छर्द्यतीसारं कासश्वासकरम्। तत् काकोलीविदारीभ्यां मधुपर्ण्या च। भृशोष्णमनामदाहज्वरकरं विरेचनं च तच्चन्दनोत्पलकमलैः। (अ.सं.उ. 2:13-14)

'पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्बचन्दनम्।
धात्री कुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा ससारिवम् ।।
अथवा त्रिफलामुस्तभूनिम्बकटुरोहिणीः।
सारिवादिं पटोलादिं पद्मकादिं तथा गणम् ।।
घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम्।
शीतांश्चाभ्यङ्गलेपादीन् युञ्ज्यात्.....'।। (अ.हृ.उ. 2:13-15)

'पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम्।
धात्री कुमारश्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशर्करम्' ।।
(यो.र.क्षीरदोषचि., पृ. 433)

धात्री को निम्नाङ्कित क्वाथों में से कोई भी एक दें। प्रथम क्वाथ शिशु के लिए भी उल्लिखित है।

Scanned with CamScanner

1. अमृता, पटोलपत्र, सारिवा, शतावरी, निम्ब एवं चन्दन का क्वाथ या—
2. त्रिफला, भूनिम्ब, कुटकी एवं मोथा का क्वाथ या—
3. जीवक, ऋषभक, काकोली, मधुक, कायफल एवं काकड़ाशृङ्गी का क्वाथ।
4. पटोलादि गण[1] या पद्मकादि[2] गण या सारिवादि गण[3] या न्यग्रोधादि[4] गण की औषधियाँ मधु के साथ दें। इनके द्वारा बनाया घृत दें।
5. पित्तनाशक विरेचन दें।
6. शीतल अभ्यङ्ग, प्रलेप एवं परिषेक करें।
7. दोष-लक्षणानुसार चिकित्सा करें। यथा—

(i) ताम्ररङ्ग आभा वाले दूध से शिशु के हृदय में उद्वेष्टन होता है। इसके शमनार्थ प्रियङ्गु, मोथा, शावर एवं लोध्र का क्वाथ दें।

(ii) अम्ल-अनुरस दुग्ध—अम्ल पित्तकारक होता है। इसके लिए द्राक्षा, मधुक एवं विदारी का क्वाथ दें।

(iii) कटु अनुरस वाला दुग्ध वमन, अतिसार, कास एवं श्वास पैदा करता है। इसके लिए काकोली, विदारी एवं मधुपर्णी का क्वाथ दें।

(iv) अति उष्ण दुग्ध से अनाम, दाह, ज्वर एवं विरेचन होता है। इसके लिए चन्दन, श्वेत एवं लाल कमल का क्वाथ देना चाहिए।

चरकोक्त पैत्तिक दुग्धदोष से उत्पन्न दो वैगुण्यों की चिकित्सा
(च.चि. 30:271-275)

(1) विवर्णता स्तन्य-दोष

'यष्टीमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिकाः।
शीताम्बुना पिबेत्कल्कं क्षीरवैवर्ण्यनाशनम् ।।
द्राक्षामधुककल्केन स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्।
प्रक्षाल्य वारिणा चैव निर्दुह्यात्तौ पुनः पुनः' ।।

(क) मधुयष्टी, द्राक्षा, पयस्या एवं निर्गुण्डी कल्क को शीतल जल से पिलायें।
(ख) द्राक्षा एवं मधुक का कल्क पूर्वोक्त भाँति से स्तन पर लेपादि करें।

1. पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी चेति। (सु.सू. 38:33)
2. उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि मधुकश्चेति। (सु.सू. 38:52)
3. सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधूकपुष्पाण्युशीरं चेति। (सु.सू. 38:39)
4. न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयप्रियालमधूकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीसल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति। (सु.सू. 38:48)

(2) दौर्गन्ध्य स्तन्य-दोष

'विषाणिकाजशृङ्ग्यौ च त्रिफलां रजनीं वचाम्।
पिबेच्छीताम्बुना पिष्ट्वा क्षीरदौर्गन्ध्यनाशिनीम् ।।
लिह्याद्वाऽप्यभयाचूर्णं सव्योषं माक्षिकप्लुतम्।
क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थं धात्री पथ्याशिनी तथा ।।
सारिवोशीरमञ्जिष्ठाश्लेष्मातककुचन्दनैः।
पत्राम्बुचन्दनोशीरैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्' ।।

(क) विषाणिका, अजशृङ्गी एवं त्रिफला, हल्दी एवं वचा कल्क शीतल जल से पिलायें।
(ख) पथ्याहारी धात्री को हरीतकी एवं त्रिकटु चूर्ण मधु से चटायें।
(ग) अनन्तमूल, खस, मञ्जीठ, श्लेष्मान्तक, लाल चन्दन अथवा—
(घ) तेजपत्र, सुगन्धबाला, श्वेतचन्दन एवं खस के कल्क का पूर्वोक्त विधि से लेप करें।

कफदूषित स्तन्य की चिकित्सा

'कफे तु सैन्धवपिप्पलीयुक्तं सर्पिर्बालं पाययेत्। सैन्धवमधुकसंसृष्टं वा मदनपुष्पकल्केन च सक्षौद्रेण स्तनं बालस्य चोष्ठमालिम्पेत्। तेन सुखं वमति। धात्रीं तु तीक्ष्णैर्वामयेत्। ततः कृतसंसर्जनां पञ्चमूलधनवातिविषाक्वाथं पाययेत्। तगरसुरदारुसुरेन्द्रयवपृथ्वीकावृश्चिकालीक्वाथं वा। आरग्वधादिं मुस्तादिं वा। रूक्षोष्णांश्च नस्यधूमगण्डूषप्रदेहपरिषेकान् शीलयेत्। अविरुद्धं चान्नपानं योजयेत्'।

अपि च—
'लवणानुरसं·····।
तत् पिचुमन्दपटोलीक्षीरीवृक्षैः शोधयेत् ।।
तन्तुमद्·····।
तत् पिप्पलीनागरचूर्णेन समधुघृतेन।
गुरु सदनात्मकम्·····'।

'तत् पाठाव्योषकल्केनपञ्चकोलचूर्णेन वा क्षौद्रघृताप्लुतेन। दोषोपक्रमणीयं चेक्षते'। (अ.सं.उ. 2:15-16)

'·····श्लेष्मात्मके पुनः।
यष्ट्याह्वसैन्धवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम् ।।
सिन्धूत्थपिप्पलीमद्वा, पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ।
राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ।।
सुखमेवं वमेद्बालस्तीक्ष्णैर्धात्रीं तु वामयेत्।

Scanned with CamScanner

अथाचरितसंसर्गी मुस्तादिं क्वथितं पिबेत् ।।
तद्वत्तगरपृथ्वीकासुरदारुकलिङ्गकान् ।
अथवाऽतिविषामुस्तषड्ग्रन्थापञ्चकोलकम्' ।। (अं.ह.उ. 2:16-19)

'कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम् ।
राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ।
सुखमेवं वमेद्बालः कफकोपश्च शाम्यति' ।।
(यो.र.क्षीरदोषचि., पृ. 433)

शिशु के लिए

वमनार्थ—1. सैन्धव तथा पिप्पलीयुक्त घृत चटायें । अथवा—
2. सैन्धव, मधुक एवं मदनफल का पुष्प—इनके चूर्ण को मधु में मिलाकर बच्चे के ओष्ठ पर लगायें अथवा स्तन पर लगा दें । अथवा—
3. मधुक एवं सैन्धव युक्त घृत पिलायें । अथवा
4. मात्र मदनफल पुष्प का कल्क बच्चे के ओष्ठ पर या स्तन पर वमनार्थ लगायें ।

धात्री के लिए

वमनार्थ—तीक्ष्ण द्रव्यों (वचा, सर्षप, पिप्पली) से वमन करायें । फिर संसर्जन क्रम का पालन कराकर निम्नांकित कोई एक क्वाथ दें—

1. बृहत्पञ्चमूल, नागरमोथा—वच एवं अतिविषा अथवा—
2. तगर, देवदारु, इन्द्रयव, पृथ्वीका एवं वृश्चिकाली, अथवा (वृश्चिकाली छोड़कर)—
3. आरग्वधादि गण[1] अथवा—
4. मुस्तादि गण[2] अथवा—
5. अतिविषा, मुस्ता, वचा एवं पञ्चकोल ।

इसके बाद नस्य, धूम, गण्डूष, प्रदेह, परिषेक इत्यादि कर्म रूक्ष-उष्ण गुण वाले द्रव्यों से करें । कफशामक या नाशक आहार देना चाहिए । स्तन्यदोष की लक्षणानुरूप चिकित्सा करें । यथा—

1. लवणानुरस में निम्ब, पटोल एवं क्षीरीवृक्षत्वक् का कषाय दें ।

1. आरग्वधमदनगोपघोण्टाकण्टकीकुटजपाठापाटलामूर्वेन्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासी-कुरुण्टकगुडूचीचित्रकशार्ङ्गेष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानि सुषवी चेति । (सु.सू. 38:6)
2. मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकबिभीतककुष्ठहैमवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गेष्टाति-विषाद्राविडीभल्लातकानि चित्रकश्चेति । (सु.सू. 38:54)

2. तन्तुयुक्त दूध में पिप्पली एवं शुण्ठी के चूर्ण को मधु से दें ।
3. गुरु स्तन्य में पाठा, त्रिकटु चूर्ण अथवा पञ्चकोल चूर्ण मधु एवं घृत से दें ।

चरकोक्त कफज क्षीरदोष से उत्पन्न तीन वैगुण्यों की चिकित्सा
(च.चि. 30:276-281)

(1) अतिस्निग्ध स्तन्य

'स्निग्धक्षीरा दारुमुस्तपाठाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना ।
पीत्वा ससैन्धवाः क्षिप्रं क्षीरशुद्धिमवाप्नुयात्' ।।

देवदारु, मुस्ता एवं पाठा कल्क में किञ्चित् सैन्धव मिलाकर सुखोष्ण जल से पिलायें ।

(2) पिच्छिल स्तन्य-दोष

'पाययेत्पिच्छिलक्षीरां शार्ङ्गेष्टामभयां वचाम् ।
मुस्तनागरपाठाश्च पीताः स्तन्यविशोधनाः ।।
तक्रारिष्टं पिबेच्चापि यदुक्तं गुदजापहम् ।
विदारीबिल्वमधुकैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्' ।।

(1) शार्ङ्गेष्टादि योग—शार्ङ्गेष्टा, हरीतकी एवं वचा का कल्क सुखोष्ण जल से पिलायें ।
(2) मुस्ताद्य योग—मुस्ता, शुण्ठी एवं पाठा का कल्क दें ।
(3) तक्रारिष्ट । (च.चि. 14:73)
(4) विदारीकन्द, बिल्वमूलत्वक् तथा मुलहठी का लेप स्तनों पर करायें ।

(3) गुरु स्तन्य-दोष

'त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् ।
गुरुक्षीरा पिबेदाशु स्तन्यदोषविशुद्धये ।।
पिबेद्वा पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
बलानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाभिर्लेपयेत् स्तनौ ।।
पृश्निपर्णीपयस्याभ्यां स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्' ।।

(1) त्रायमाणा, अमृता, निम्बत्वक्, पटोलपत्र एवं त्रिफलाक्वाथ पिलायें ।
(2) पिप्पली रहित पञ्चकोल कल्क जल से देना चाहिए ।
(3) बला, शुण्ठी, शार्ङ्गेष्टा एवं मूर्वा; अथवा—
(4) पृश्निपर्णी एवं पयस्या को जल में पीसकर स्तन पर लेप करें ।

Scanned with CamScanner

द्वन्द्वज एवं सान्निपातिक स्तन्यदोष-चिकित्सा

'तत्र धात्रीं बालं च पूर्वमेवाशु वामयेत् । विहितसंसर्गयोश्च मुस्तापाठातिविषा-कुष्ठकटुकानां क्वाथं पानाय दद्यात् । रास्नाजमोदाप्रियङ्गुभद्रदारूणां वा । पाठातेजोवती-पुनर्नववृश्चिकालीनां वा । भूनिम्बामृताकुटजफलशारिवाणां वा । [1]'वचाहरिद्रादि'गण-योर्वा । पाठादिमहाकषायस्य वा । जम्बाम्रतिन्दुककपित्थपत्राणां वा । विल्वभङ्गस्य वा । अनुबन्धे च यथाव्याधि प्रतिकुर्वीत । (अ.सं.उ. 2:20)

'द्वन्द्वदुष्टं द्वियोगाभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विशोधयेत् ।
पाठा मूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः ।
सारिवाघनतिक्ताख्यं तच्च स्तन्यविशोधनम्' ।।

(यो.र.क्षीरदोषचि., पृ. 433)

इस अवस्था में सर्वप्रथम धात्री एवं बालक को शीघ्र वमन कराना चाहिए । फिर संसर्जन कर्म करके निम्नाङ्कित कोई एक क्वाथ धात्री को दें ।

1. मुस्ता, पाठा, अतिविषा, कुष्ठ एवं कुटकी या—
2. रास्ना, अजमोदा; प्रियङ्गु एवं भद्रदारु या—
3. पाठा, तेजबल, पुनर्नवा एवं वृश्चिकाली या—
4. भूनिम्ब, अमृता, कुटजफल एवं सारिवा या—
5. वचादि गणौषधि क्वाथ या—
6. हरिद्रादि गणौषधि क्वाथ या—
7. चरकोक्त स्तन्यशोधक महाकषाय या—
8. जम्बू, आम्र, तिन्दुक एवं कैथ या—
9. बिल्व को तोड़कर उसका क्वाथ या—
10. पाठा, मूर्वा, भूनिम्ब, देवदारु, शुण्ठी, इन्द्रयव, सारिवा, नागरमोथा एवं कुटकी का क्वाथ देना चाहिए ।
11. दो दोषों के लक्षणों से दूषित दूध को पहले कहे हुए दोनों दोषों को शमन करने वाले योगों से शुद्ध करें ।

विभिन्न दोषों, ग्रहों एवं विगुणताओं से ग्रसित दुग्धपान से बच्चों में जो व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं उन्हें पिछली तालिका में दर्शाया गया है । उनका वर्णन अगले सम्बन्धित अध्यायों में किया जायेगा । पङ्गुत्व एवं मूकत्व का विवेचन पूर्व में ही अध्याय 6 में किया जा चुका है ।

*

1. वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरञ्चेति । (सु.सू. 38:26)
2. हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकं चेति । (सु.सू. 38:26)

अध्याय - 9

कुपोषणजन्य व्याधि

प्राणिमात्र के लिए जीवन के प्रारम्भ (गर्भाधान) से लेकर जीवन-पर्यन्त आहार का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । भोजन के द्वारा ही जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित होते हैं । यथा—

- शारीरिक कार्यों हेतु ऊर्जा प्रदान करना ।
- शरीर की चयापचय प्रक्रियाओं हेतु ।
- शरीर की वृद्धि एवं विकास में ।
- शरीर में प्रत्येक क्षण हो रहे क्षरण के पुनः निर्माण हेतु ।

संतुलित भोजन शरीर के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । भोजन व्यवस्था में किसी प्रकार की अनियमितता अनेक रोगों को जन्म देती है । आयुर्वेद मनीषियों ने 'क्षय' शब्द के द्वारा इन व्याधियों अथवा उपद्रवों/लक्षणों को परिभाषित किया है । क्षय में अनुलोम क्षय तथा प्रतिलोम क्षय दोनों आते हैं । पोषण प्रक्रिया में व्यवधान प्रायः अनुलोम क्षय उत्पन्न करता है ।

आचार्य चरक (सू.17) ने 18 प्रकार के क्षय का वर्णन किया है । जिसमें 7 प्रकार के धातु क्षय का भी वर्णन किया है । क्षय के सामान्य कारणों का विवेचन निम्नवत् दिया है—

'व्यायामोऽनशनं चिन्ता रूक्षाल्पप्रमिताशनम् ।
वातातपौ भयशोको रूक्षपानं प्रजागरः ।।
कफशोणितशुक्राणां मलानां चातिवर्तनम् ।
कालो भूतोपघातश्च ज्ञातव्याः क्षयहेतवः ।। (च.सू. 17/76-77)

क्षय के निम्नलिखित कारण हैं—

1. (अति) व्यायाम
2. अनशन*
3. चिन्ता
4. अतिरूक्ष भोजन*
5. अल्प भोजन*
6. प्रमित भोजन
7. तीव्र हवा, धूप-सेवन
8. भय*

Scanned with CamScanner

9. शोक*
10. रूक्ष*
11. मदिरापान
12. रात्रिजागरण
13. कफ*, रक्त, शुक्र एवं मलों का अतिवर्तन*
14. काल* (बाल, युवा, वृद्धावस्था)
15. भूतोपघात*

उपरोक्त कारण सामान्य रूप से सभी के लिए कहे गये हैं। परन्तु विचार करने पर कुछ कारण जो तारांकित (*) हैं बाल्यकाल में विशेषरूप से प्रभावी होते हैं, जो कुपोषण जनित लक्षण, उपद्रव या व्याधि उत्पन्न करते हैं।

आयुर्वेद संहिताओं में बाल्यकाल में होनेवाली कुपोषण जनित 4 अवस्थाओं का विवेचन है; यथा—

1. कृशता
2. फक्करोग (श्लैष्मिक, गर्भज एवं व्याधिज फक्क)
3. पारिगर्भिक
4. बालशोष

इसे निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं—

उस वय के लिए निर्धारित भार	शोथरहित	शोथसहित
80% भार	कृशता	बालशोष, श्लैष्मिक फक्क
60% भार	पारिगर्भिक, गर्भज फक्क	व्याधिज फक्क

कृशता

कृशता की गणना चरकसंहिता में अष्टौनिन्दितीय प्रकरण में की गयी है तथा उसमें भी चिकित्सा की दृष्टि से कृशता को महत्त्वपूर्ण कहा गया है।

'स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यं समोपकरणौ हि तौ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवातिपीडयेत्' ॥ (च.सू. 21:17)

वस्तुतः अष्ट निन्दित पुरुष रचनात्मक दृष्टि से वर्णित है। चिकित्सा में उनका महत्त्व अधिक नहीं है। परन्तु अतिकृश तथा अतिस्थूल में स्थूल का रोग अधिक कष्ट देता है, अतः चिकित्सा की दृष्टि से कृशता ही महत्त्वपूर्ण है।

'शुष्कस्फिगुदरग्रीवो धमनीजालसन्ततः।
त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरो मतः' ॥ (च.सू. 21:15)

अतिकृश मनुष्य (नर-नारी-शिशु) का नितम्ब, उदर एवं ग्रीवा सूख जाता है। शरीर की धमनियों का जाल दृष्टिगोचर होता है। ऐसा देखने से प्रतीत होता है कि शरीर में मात्र त्वचा एवं अस्थि ही शेष है तथा इनकी सन्धियाँ मोटी हो जाती है।

निदान

'सेवा रूक्षान्नपानानां लङ्घनं प्रमिताशनम्।
क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥
रूक्षस्योद्वर्तनं स्नानस्याभ्यासः प्रकृतिर्जरा।
विकारानुशयः क्रोधः कुर्वन्त्यतिकृशं नरम्' ॥ (च.सू. 21:11-12)

'तत्र पुनर्वातलाहारसेविनोऽतिव्यायामव्यवायाध्ययनभयशोकध्यानरात्रिजागरण-पिपासाक्षुत्कषायाल्पाशनप्रभृतिभिरुपशोषितो रसधातुः शरीरमननुक्रामन्नल्पत्वान्न प्रीणाति, तस्मादतिकार्श्यं भवति'। (सु.सू. 15:33)

'विरसं वातसंसृष्टं कृशीभवति तत्पिबन्।
न चास्य स्वदते क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्धते' ॥ (च.चि. 30:239)

'वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः।
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद् बद्धविण्मूत्रमारुतः' ॥ (मा.नि.बा.रो.नि. 1)

'यथा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान्'।
(यो.र., बा.रो.चि. पृ. 444)

रूक्षान्नपान का सेवन, उपवास, मात्रा में अल्प एवं नपा-तुला भोजन, किसी भी शारीरिक या मानसिक कार्यों का अधिक करना, शोक करना, वेग-विधारण, शरीर का रूक्ष-रहना, रूक्ष उद्वर्तन, स्नान, वातिक रोगी प्रकृति, वृद्धावस्था एवं बहुत दिनों तक रोगी रहना और क्रोध—ये सभी कृशता पैदा करते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने संक्षेप में कहा है कि वातवर्धक द्रव्यों का भोजन करने वाले, व्यायाम, स्त्री-सम्भोग, अध्ययन, भय, चिन्ता, ध्यान, रात्रिजागरण, प्यास, क्षुधा, कषाय रस एवं अल्प भोजन आदि कारणों से उपशोषित रस धातु शरीर में पूर्ण रूप से भ्रमण नहीं करती तथा अल्प प्रमाण में रहने के कारण शरीर को पुष्ट नहीं करती, जिससे मनुष्य का शरीर कृश हो जाता है।

उपरोक्त दोनों मत वयस्कों को ध्यान में रख कर कहे गये हैं परन्तु उनमें से बहुत से कारण बच्चों में कृशता पैदा कर देते हैं। अतः इस ज्ञान हेतु वयस्कों के कृशता के कारणों को भी जानना आवश्यक है। यथा—रूक्षान्नपान, उपवास (बच्चे को समय पर दूधादि न देना), वातिक प्रकृति, वातल आहार, तृषा, क्षुधा, कषाय रस और लम्बे समय तक रोग का बना रहना बच्चों में कृशता का कारण हो सकता है।

वातदोष दुष्ट दुग्ध एवं वातदोष से दूषित दुग्ध में उत्पन्न विरसता बच्चों में कृशता का कारण बनती है। दूध के स्वादिष्ट न होने से शिशु उसे ग्रहण नहीं करता। भूखा रहने के कारण ही वह पुष्ट नहीं हो पाता जिससे कृशता पैदा हो जाती है।

Scanned with CamScanner

योगरत्नाकरकार ने उपरोक्त सभी कारणों के विपरीत सङ्केत दिया है कि अग्नि पाचकाग्नि वाला बालक उचित रीति से खाते हुए भी दुर्बल हो सकता है।

इस प्रकार से कार्श्य को निम्न तीन भागों में बाँट सकते हैं—

1. वातल आहार-विहारजन्य।
2. रोगजन्य।
3. स्वयं उत्पन्न।

चिकित्सा-सिद्धान्त

1. बृंहण चिकित्सा (च.सू. 21:16)।
2. निदान-परिवर्जन।
3. स्तनपायी शिशु में माता को बृंहण आहार दें।
4. रोगों की उचित चिकित्सा एवं पथ्य आदि पर ध्यान देना चाहिए।
5. शिशु को पौष्टिक आहार देना चाहिए।

बृंहण द्रव्य—गुरु, शीत, मधुर, मृदु, स्निग्ध, बहल, स्थूल, पिच्छिल, मन्द, स्थिर एवं श्लक्ष्ण होते हैं।

'गुरु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं स्थूलपिच्छिलम्।
प्रायो मन्दं स्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं बृंहणमुच्यते'॥ (च.सू. 22:13)

योगरत्नाकरकार ने स्वयं उद्भूत कृशता की चिकित्सा भी दी है—

(1) विदारीकन्दादि चूर्ण—विदारीकन्द, गेहूँ तथा यव समभाग लेकर चूर्ण कर गोघृत मिलाकर और इसे दूध में शीतल होने पर मधु शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन कराना चाहिए।

'विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्।
खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्'॥

(2) अश्वगन्धाघृत—गोघृत 1 भाग, अश्वगन्ध कल्क 1/4 भाग एवं गोदुग्ध 8 भाग लेकर घृतपान करायें। यह घृत शिशु के शरीर की पुष्टि एवं बल का वर्धन करता है।

'पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत्।
घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्धनम्'॥ (यो.र.बा.रो.चि. पृ. 445)

(3) सुवर्ण योग—निम्नाङ्कित कोई भी एक योग चटाने से शरीर, मेधा व बल की पुष्टि होती है।

'सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा।
मत्स्याक्षकः शङ्खपुष्पी मधुसर्पिः सकाञ्चनम्'॥

अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रं चूर्णितं कनकं वचा।
सहेम चूर्णं कैडर्यं श्वेतदूर्वा घृतं मधु॥
चत्वारोऽभिहिताः प्राश्या अर्धश्लोकसमापनाः।
कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः'॥ (यो.र.बा.रो.चि. पृ. 444)

(क) स्वर्ण भस्म, गोघृत, वचा एवं कुष्ठ चूर्ण।
(ख) स्वर्णभस्म, गोघृत, मधु, मत्स्याक्षी एवं शङ्खपुष्पी।
(ग) स्वर्णभस्म, गोघृत, मधु, वचा एवं अर्कपुष्पी।
(घ) स्वर्णभस्म, गोघृत, मधु, श्वेतदूर्वा एवं कायफर।

(4) लाक्षादि तैल—लाक्षारस या क्वाथ 1 भाग, मूर्च्छित तिलतैल 1 भाग, दधि-जल 4 भाग, रास्ना, रक्तचन्दन, कुष्ठ, मोथा, अश्वगन्धा, हरिद्रा, शतपुष्पा, दारुहरिद्रा, मधुक, मूर्वा, कटुकी एवं रेणुका को समभाग मिश्रित तेल का चतुर्थांश लेकर तैलपाक करें। इसके लगाने से ज्वर, दुष्टग्रह, दोष का नाश एवं बल-वर्ण वृद्धि होती है।

'लाक्षारससमं तैलं मस्तून्यथ चतुर्गुणे।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः।
संसिद्ध ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः'॥ (यो.र.बा.रो.चि. पृ. 444)

(5) उबटनादि—सप्तपर्ण, अर्कपत्र, करञ्ज की जड़ तथा कनेरमूल को सम भाग में लेकर पशु (गौ) मूत्र के साथ पीसकर शरीर पर उबटन करने से तथा सुगन्धबाला एवं मुण्डी जल में पकाकर सिञ्चन करने से शरीर की वृद्धि होती है।

'सप्तच्छदार्कच्छदनक्तमालमूलैस्तुरङ्गारिजटासमेतैः।
उत्सादिताङ्गः पशुमूत्रपिष्टैर्हीबेरमुण्डीसलिलाभिषिक्तः॥
दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धिं पतिः क्षपाणामिव शुक्लपक्षे'॥
(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 445)

(6) लेहाध्याय में वर्णित लेहों का प्रयोग कर सकते हैं।

फक्करोग
(का.चि., फक्कचिकित्सा अध्याय)

निरुक्ति—'फक्कति नीचैर्गच्छति इति फक्कः'।

फक्क शब्द की उत्पत्ति 'फक्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है शरीर में स्वास्थ्य का 'क्रमशः नीचे जाना' या गिरती अवस्था अर्थात् Run down condition of the body.

'स्वास्थ्य की क्रमशः गिरती हुई स्थिति' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को दृष्टिगत रखते हुए 'आचार्य कश्यप' ने इस विषय पर एक पूर्ण अध्याय लिखा है। सम्पूर्ण विषय के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'फक्करोग एक व्याधि नहीं वरन् एक महत्त्वपूर्ण

Scanned with CamScanner

लक्षण है जो विभिन्न व्याधियों में उत्पन्न होता है। इस लक्षण के द्वारा शिशु के संरक्षक एवं चिकित्सक का सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित होता है अतः इसे व्याधि के रूप में नामाङ्कित किया गया।

चिकित्सक के पास शिशु का संरक्षक सदैव यह समस्या ही लेकर आता है कि मेरा शिशु एक वर्ष का हो गया परन्तु खड़ा नही हो पाता है। आचार्य कश्यप ने इस व्याधि का यही सामान्य लक्षण दिया है।

'बालः संवत्सरा(पन्नः) पादाभ्यां यो न गच्छति।
सफक्क इति विज्ञेयः·····' ॥

इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है—(1) 'संवत्सरापन्नः' अर्थात् एक वर्ष का होने पर यह ध्यान रखना चाहिए कि आचार्य भी एक वर्ष की वय को बालक के चलने का स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ लक्षण मानते हैं। (2) 'संवत्सरादूर्ध्वं प्रतितिष्ठति' (काश्यप-शारीरस्थान, पृ. 66)। यदि बालक न चल सके अथवा 'संवत्सरात् आपन्नः' अर्थात् वर्षों व्याधि युक्त होने पर बालक अपने पैरों पर न चल सके तो उसे 'फक्करोग' कहेंगे। प्रमाण-स्वरूप निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

'अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांसबलद्युतिः'। (फ.रोग चि. 12)
'निश्चेष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपि वा'। (फ.रोग चि. 14)

इस तरह संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जब चलने वाले शिशु की 'चलने की शक्ति में ह्रास हो जाय, उसका कारण कुछ भी हो तो उसे फक्क कहेंगे।

कश्यप ने इसे निदान के आधार पर वर्गीकृत किया है—

'क्षीरजं गर्भजं चैव तृतीयं व्याधिसम्भवम्।
फक्कत्वं त्रिविधं प्रोक्तं·····' ॥10॥

1. क्षीरज फक्क।
2. गर्भज फक्क।
3. व्याधिज फक्क।

सामान्य निदान एवं सम्प्राप्ति

'गर्भिणी मातृकेनैव ·····। ·····। ····· मनाथानां विशेषतः।
प्रदुष्टग्रहणीकाश्च प्रायशो बहुभोजिनः।
फक्का भवन्ति तस्माच्च भुक्तं तेषामपार्थकम्॥
मन्दाग्नित्वाद्रवो(सो)त्सर्गाद्बहुमूत्रपुरीषिणः॥ ·····।·····'।

जिसकी माता गर्भवती है, ·····अनाथ, दुष्ट ग्रहणी रोग वाले एवं अधिक भोजन वाले बालक फक्करोगी होते हैं। इसलिए उनका खाया-पिया सब व्यर्थ हो जाता है। मन्दाग्नि होने से (कफप्रकोपज) एवं रस का उत्सर्ग होने से (स्रोतोवरोधजन्य) उन्हें मूत्र-पुरीष अधिक होता है।

(1) क्षीरज फक्क

'धात्री श्लैष्मिकदुग्धा तु फक्कदुग्धेति संज्ञिता।
तत्क्षीरपो बहुव्याधिः कार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्' ॥15॥

निदान—(फक्क दुग्ध' अर्थात् 'श्लैष्मिक दुग्ध' या माता का दूध जो श्लेष्मा दोष से दूषित हो।

लक्षण—कार्श्यात् अर्थात् कृशता एवं अनेक व्याधियों का आक्रमण और अन्त में फक्कत्व की प्राप्ति। (विशिष्ट विवरण 'बालशोष' प्रकरण में देखिये)

(2) गर्भज फक्क

'गर्भिणीमातृकः क्षिप्र स्तन्यस्य विनिवर्तनात्।
क्षीयते म्रियते वाऽपि स फक्को गर्भपीडितः॥

निदान—गर्भिणी माता का दूध शीघ्र कम होने से या बन्द होने से।
लक्षण—क्षीणता या मृत्यु।

क्षीराद् बालक की माता जब पुनः उसी मध्य गर्भवती हो जाती है तो माता का दूध बनना कम हो जाता है या बन्द हो जाता है। इससे स्वभावतः बढ़ते शिशु की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती और वह कृश होने लगता है। इसके दो प्रमुख कारण हैं—

(क) शिशु माता के स्तन द्वारा अल्प दुग्धोत्पादन पर ही निर्भर रहता है। वह दूध अपने रासायनिक संगठन में विभिन्न तत्त्वों की सामान्य मात्रा से कम मात्रा ही धारण किये होता है। क्योंकि माता के गर्भवती होने पर उसके शरीर की आवश्यकताएँ बढ़ जाती है। इस तथ्य को आधुनिक एवं आयुर्वेद के आचार्य दोनों ही मानते हैं।

'यदन्नपानं प्रायेण गर्भिणी स्त्री निषेवते।
रसो निर्वर्तते तादृक् त्रिधा चास्याः प्रवर्तते॥
मातृपुष्ट्यर्थमेकांशो द्वितीयो गर्भपुष्टये।
तृतीयः स्तनपुष्ट्यर्थं नार्या गर्भस्तु पुष्यति'॥

इसका परिणाम यह होता है कि शिशु का ठीक से विकास नहीं हो पाता, कृशता एवं फक्कत्व की प्राप्ति होती है।

(ख) शिशु को यदि बाह्य भोजन पर माता के अल्प दूध या दूध के न होने पर रखते हैं तो उस वय तक बालक का पाचनतन्त्र उस भोजन को सुपाच्य करने में असमर्थ रहता है।

परिणामस्वरूप अतिसार, वमन या अन्य पाचनतन्त्र के विकार होते हैं जिससे कृशता एवं फक्कत्व की प्राप्ति होती है।

Scanned with CamScanner

(3) व्याधिज फक्क

'निजैरागन्तुभिश्चैव ..... रो ज्वरादिभिः ।
अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांसबलद्युतिः ।।
सशुष्कस्फिग्बाहूरुर्महोदरशिरोमुखः ।
पीताक्षो हर्षिताङ्गश्च दृश्यमानास्थिपञ्जरः ।।
प्रम्लानाधरकायश्च नित्यमूत्रपुरीषकृत् ।
निश्चेष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपि वा ।।
दौर्बल्यान्मन्दचेष्टश्च मन्दत्वात् परिभूतकः ।
मक्षिकाकृमिकीटानां गम्यश्चासन्नमृत्युरुक् ।।
विशीर्णहृष्टरोमा च स्तब्धरोमा महानखः ।
दुर्गन्धी मलिनः क्रोधी फक्कः श्वसिति ताम्यति ।।
अतिविण्मूत्रदूषिकाशिङ्घाणकमलोद्भवः ।
इत्येतैः कारणैर्विद्याद्व्याधिजां फक्कतां शिशोः' ।।

निज तथा आगन्तुज ज्वर आदि रोगों से, अनाथ बालकों को क्लेश होकर उनका मांस, बल एवं द्युति क्षीण हो जाता है। उस बालक के स्फिच्, बाहु एवं जङ्घाएँ शुष्क हो जाती है तथा उदर, सिर एवं मुख बड़े हो जाते हैं। पीले नेत्र, अंगहर्ष तथा शरीर अस्थिपञ्जरवत् दिखाई देता है। उसका अधर काय म्लान दीखता है। मल-मूत्र सदैव होता रहता है तथा निचला भाग निश्चेष्ट हो जाता है (दुर्बलता के कारण)। वह हाथ एवं घुटने के बल चलता है। दौर्बल्य के कारण चेष्टाएँ मन्द हो जाती हैं। चेष्टाओं के मन्द होने के कारण मक्खियाँ, कृमि एवं कीट आदि उसे आक्रान्त कर शीघ्र मृत्यु कारक रोगों से आक्रान्त करते हैं। फक्करोगी के रोम विशीर्ण (सूखे हुए) हृष्ट एवं स्तब्ध होते हैं। नख बड़े होते हैं, शरीर से दुर्गन्धि आती है। वह मलिन एवं क्रोधी होता है। वह विशेष प्रकार की श्वास लेता है। मल-मूत्राधिक्य, दूषित नाक का मल आदि लक्षणों को देखकर बालक को व्याधिजन्य फक्क रोग ग्रसित समझना चाहिए।

अर्थात् विभिन्न प्रकार की व्याधियों के परिणामस्वरूप अथवा जो बालक अनाथ होता है, जिसका ठीक से पालन-पोषण नहीं हो पाता। वे बालक व्याधिज फक्क से पीड़ित होते हैं।

चिकित्सा—काश्यपसंहिता अपूर्ण रूपेण उपलब्ध होने के कारण चिकित्सा-विवरण खण्डित है। परन्तु उसे देखने से चिकित्सा-सिद्धान्त इस प्रकार स्पष्ट होता है।

(1) शोधन कर्म—इसमें सर्वप्रथम स्नेहन, फिर विरेचन कराना उचित है।

'कल्याणकं पिबेत् फक्कः षट्पलं वा यथाऽमृतम् ।
सप्तरात्रात् परं चैनं त्रिवृत्क्षीरेण शोधयेत् ।।
शुद्धकोष्ठस्ततः फक्कः पि..... । ..... । ..... ।।
न तु ब्राह्मीघृतं .....।।

दीप ..... । ..... । ..... ल्या वा रास्ना मधुकेन वा ।।
पुनर्नवैकपर्णीभ्यामेरण्डशतपुष्पयोः ।
द्राक्षापीलुत्रिवृद्भिर्वा श्रृतं क्षीरं प्रयोजयेत् ।।
एतानि त्वेव सर्वाणि सम्भृत्य मतिमान् भिषक्' ।।

फक्करोगी को सर्वप्रथम कल्याणक घृत, षट्पल घृत या अमृत घृत का पान करायें। इससे स्नेहन हो जाने पर 7 दिन के बाद रोगी का त्रिवृत्क्षीर से कोष्ठ का शोधन कर (ब्राह्मी घृत) का पान करायें।.....तथा रास्ना, मधुक, पुनर्नवा, एकपर्णी, एरण्ड, सौंफ, द्राक्षा, पीलू एवं त्रिवृत् के द्वारा पकाये क्षीर का प्रयोग करें।

(2) बल्य-चिकित्सा

'मांसस्य..... । .....पनर्यूषसंस्कृतं क्षीरमेव वा ।
शाल्यन्नेन सहाश्नीयात् पिबेत्तं चापि नित्यशः ।
तेन प्राणं च लभते याति रोगैश्च मुच्यते ।
तेनेव तैलं विपचेत् फक्कानां सर्वथोदितम्' ।।

मांस.....यूष तथा संस्कारित दूध शालि अन्न के साथ नित्य सेवन करायें। इससे प्राण लाभ होकर रोग नष्ट हो जाता है। इन्हीं उपर्युक्त औषधियों से तैल सिद्ध करके फक्करोग में प्रयोग करते हैं।

'रास्नामधु..... । .....घृतं वा तैलं वा क्षीरं यूषमथो रसम् ।
द्विःसंस्कृतं प्रयुञ्जीत सर्वरोगैर्विमुच्यते' ।।

इसी प्रकार रास्ना, मधु.....आदि औषधियों से यथाविधि घृत, तेल, दूध, यूष या मांसरस को दो बार संस्कारित कर प्रयोग करने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

(3) दोषानुसार कर्म—कफ की प्रधानता होने पर दूध में गोमूत्र मिलाकर पिलाने से तथा पथ्य से रोग दूर हो जाता है।

'कफाधिकं चेन्मन्येत मूत्रमिश्रं पयः पिबेत् ।
प्रयोगेण हिताशी च फक्करोगैर्विमुच्यते' ।।

यदि इसके साथ में वातरोगों का संसर्ग हो तो उन बालकों को बस्ति, स्नेहपान एवं स्वेदन व उद्वर्तन करें तथा उसे सुखकारी शय्या, आसन एवं बस्तियोगों का प्रयोग करें।

'बस्तयः स्नेहपानानि स्वेदाश्चोद्वर्तनानि च ।
वातरोगेषु बालानां संसृष्टेषु विशेषतः ।।
.....
.....जन्तोः सुखाश्च शयासनबस्तियोगाः ।।

(4) अभ्यंगार्थ विशिष्ट राज तैल

'एरण्डांशुमती बिल्व ..... ।
.....शास्ते कार्या दशपलाः पृथक् ।।

Scanned with CamScanner

यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं समावपेत् ।
अपां पचेच्चतुर्द्रोणे कषायं पादशेषितम् ।।
तैलप्रस्थं दधिप्रस्थं कषायं च पुनः पचेत् ।
तत् सिद्धं गोपयेद्यत्नात् सर्वथा सम्प्रयोजयेत् ।।
वन्ध्यापङ्गु .....।
..... ते इक्ष्वाकोः सुबाहोः सगरस्य च ।।
नहुषस्य दिलीपस्य भरतस्य गयस्य च ।
एतेन लेभिरे पुत्रागतिमायुर्बलं सुखम् ।।
राज्ञां पूर्वोपदेशाच्च राजतैलमिति स्मृतम् ।
.....।।

एरण्ड, अंशुमती तथा बिल्वादि.....प्रत्येक 10 पल, यव, कोल तथा कुलत्थ 1-1 प्रस्थ, जल 4 द्रोण लेकर क्वाथ बनायें । चतुर्थांश शेष रहने पर 1 प्रस्थ तैल, 1 पस्थ दही के साथ क्वाथ का पुनः पाक करें । तैल सिद्ध होने पर सुरक्षित रखें । यह वन्ध्यत्व, पङ्गुत्व आदि नाशक है । इसके प्रयोग से विभिन्न महाशयों के पुत्रों ने गति, आयु, बल तथा सुख प्राप्त किया था । यह राज तैल है ।

(5) **त्रिपाद चक्ररथ**—तीन पहियों वाले फक्क रथ का प्रयोग फक्करोगी शिशु को चलाने में करें ।

'त्रिचक्रं फक्करथकं प्राज्ञः शिल्पिकनिर्मितम् ।
विदध्यात्तेन शनकैर्गृहीतो गतिमभ्यसेत्' ।।

इस प्रकार फक्करोग का सम्पूर्ण विवरण देखने से स्पष्ट होता है कि एक मात्र कश्यप द्वारा वर्णित यह व्याधि शिशुओं के कुपोषण से सम्बन्धित है । वह कुपोषण आधुनिक शब्दों में भोजन के विभिन्न तत्त्वों की कमी से सम्बन्ध रखता है; यथा प्रोभूजन, शर्करा, विभिन्न विटामिन्स आदि । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के प्रकाश में इसकी व्याख्या इसी अध्याय में आगे की जायेगी ।

क्षीरज फक्क का कारण श्लैष्मिक दुग्ध कहा गया है । अर्थात् कफवर्धक आहार या कारण । आचार्य वाग्भट ने एक इसी प्रकार की व्याधि का वर्णन किया है । उसे बाल-शोष कहते हैं ।

बालशोष

(अ.सं.उ. 2:46-54 एवं अ.हृ.उ. 2:44-56)

अत्यहःस्वप्नशीताम्बुश्लैष्मिकस्तन्यसेविनः ।
शिशोः कफेन स्रोतःसु रसवाहिषु ।।
अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते ।
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः' ।।

निदान—अत्यधिक सोना, शीतल जल एवं श्लैष्मिक स्तन्य—ये तीनों ही कारण कफवर्धक है ।

सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणों से बढ़ा हुआ कफ शिशु के रसवाही स्रोतसों को अवरुद्ध कर देता है ।

लक्षण—अरुचि, प्रतिश्याय, ज्वर, कास, शोष एवं मुख-नेत्र का स्निग्ध एवं श्वेत होना ।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण को कश्यप ने क्षीरज फक्क में संक्षेप में दिया है । श्लैष्मिक दुग्ध के पान से बहुत सी व्याधियाँ, कार्श्यता एवं फक्कत्व होता है । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि केवल नामाकरण में दोनों में अन्तर है । अन्यथा दोनों ही व्याधियाँ एक हैं ।

दोनों की सम्प्राप्ति का विस्तृत दृश्यावलोकन निम्न रूप में प्रदर्शित है—

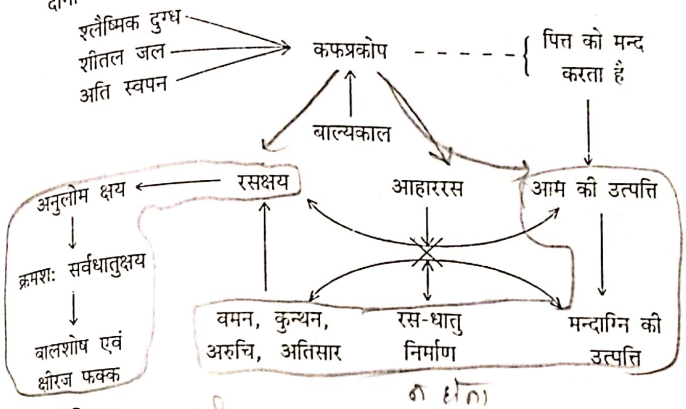

चिकित्सा

1. सैन्धव, त्रिकटु, शाङ्गेष्टा, पाठा तथा महाकदम्ब को मधु के साथ अरुचि आदि में दें[1] ।
2. पञ्चकोल, अशोक एवं कुटकी चूर्ण को घृत से चटायें[2] ।
3. बेर, धातकी एवं आमलकी चूर्ण को घृत से चटाना चाहिए[3] ।
4. अश्वलिण्ड रस, मधुयष्टी एवं मधु के साथ चटायें[4] ।
5. अश्वलिण्ड रस तथा कटेरी-द्वय फलरस के साथ चटायें[5] ।
6. पिप्पली, त्रिकटु, पाठा, मूर्वा एवं शतावरी चूर्ण मधु से दें[6] ।

1. सैन्धवव्योषशाङ्गेष्टापाठागिरिकदम्बकान् ।
शुण्ठतो मधुसर्पिर्भ्यामरुच्यादिषु योजयेत् ।।
2. अशोकरोहिणीयुक्तं पञ्चकोलं च चूर्णितम् ।
3. बदरीधातकीधात्रीचूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम् ।। (अ.हृ.उ. 2:46-47) (अ.सं.उ. 2:47)
4. अश्वलिण्डरसक्षौद्रयुक्तां वा मधुयष्टिकाम् ।
5. द्विवार्ताकीफलरसं केवलं वाश्वविड्रसम् ।।
6. मधुना वा धनव्योषपाठामूर्वाशतावरीः ।

Scanned with CamScanner

7. पयस्या एवं पृथक्पर्णी को घृत एवं मधु से दें[1] ।

8. स्थिरा, देवदारु, त्रिकटु एवं पुनर्नवाद्वय को दें[2] ।

9. शिशुशोषनाशक शोधन घृत—शालपर्णी, वचा, कटेरी, काकोली, पिप्पली, तगर, जलवेतस, कमल, पुनर्नवा, भार्ङ्गी एवं मुस्ता प्रत्येक 1-1 कर्ष लेकर इनसे ½ प्रस्थ घृत सिद्ध करें । यह घृत स्रोतों को खोलने में उत्तम है[3] ।

10. शिशुशोषनाशक शोधन घृत (दो)—कटेरी, अश्वगन्धा, तुलसी, पीपर सिद्ध घृत भी स्रोतों को खोलने में उत्तम है[4] ।

11. शिशुशोषनाशक घृत (प्रथम)—मधुक, पिप्पली, लोध्र, पद्माख, कमल, चन्दन, तालीस एवं सारिवा सिद्ध घृत शोषनाशक है[5] ।

12 शिशुशोषनाशक घृत (द्वितीय)—शृङ्गी, मधुलिका, भार्ङ्गी, पिप्पली, देवदारु, अश्वगन्धा, काकोलीद्वय, रास्ना, ऋषभक, जीवक, शूर्पपर्णी, विडङ्ग के कल्क एवं शशक-सिर से बनाये क्वाथ में सिद्ध घृत शोषनाशक है[6] ।

13. शोषनाशक तैल—वचा, वयःस्था (आँवला या क्षीरकाकोली), तगर, कायस्था (हरीतकी या निर्गुण्डी), चोरक एवं अजामूत्र सुरा में सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करें।

'वचावयःस्थातगरकायस्थाचोरकैः शृतम् ।
बस्तमूत्रसुराभ्यां च तैलमभ्यञ्जने हितम्' ।।

14. प्रदेह—बलाद्वय, तुम्बुरु, छल्ली, वचा तथा गिरिकदम्ब को सुरा में पीस कर[7] ।

15. परिषेक—सिंहस्कन्द, सिंहवल्ली, करमर्दी, गोक्षुर एवं भाँग के क्वाथ से[8] ।

1. सपयस्या पृथक्पर्णी घृतं वा माक्षिकान्वितम् ।।
2. स्थिरामरतरुव्योषद्विपुनर्नवासाधितम् ।। (अ.सं.उ. 2:48)
3. स्थिरावचाद्विवृहतीकाकोलीपिप्पलीनतैः ।
निचुलोत्पलवर्षाभूभार्ङ्गीमुस्तैश्च कार्षिकैः ।
सिद्धं प्रस्थार्धमाज्यस्य स्रोतसां शोधनं परम् ।।
4. सिह्यश्वगन्धासुरसाकणागर्भं च तद्गुणम् ।
5. यष्ट्याह्वपिप्पलीरोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
तालीससारिवाभ्यां च साधितं शोषजिद् घृतम् ।।
5. शृङ्गीमधूलिकाभार्गीपिप्पलीदेवदारुभिः ।
अश्वगन्धाद्विकाकोलीरास्नर्षभकजीवकैः ।।
शूर्पपर्णीविडङ्गैश्च कल्कितैः साधितं घृतम् ।
शशोत्तमाङ्गनिर्यूहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम् ।। (अ.हृ.उ. 2:48-52) (अ.सं.उ. 2:48-49)
7. द्वे बले तुम्बुरुच्छल्ली वचा गिरिकदम्बकः ।
सुरापिष्टः प्रदेहः स्यादधः काये विशुष्यताम् ।।
8. सिहस्कन्दीसिंहवल्लीकरमर्दीत्रिकण्टकैः ।
भङ्गैः क्वाथः कुमाराणां शुष्यतां परिषेचनम् ।।

16. अशोक, रोहिणी एवं पिप्पली चूर्ण को मधु-घृत से चटायें तथा अजादुग्ध को शर्करायुक्त कर पीने को दें[1] ।

17. योगरत्नाकर द्वारा कृशता (दौर्बल्य) चिकित्सा-प्रकरण में वर्णित योगों का प्रयोग करना चाहिए ।

18. लाक्षादि तैल—लाक्षारस 1 भाग, तैल 1 भाग (प्रस्थ), मस्तु 4 भाग, अश्वगन्धा, हरिद्रा, देवदारु, रेणुका, कूठ, मोथा, चन्दन, मूर्वा, कटुकी, रास्ना, सौंफ तथा मधुक—इन्हें समभाग लेकर इनके कल्क से तैल सिद्ध कर अभ्यङ्ग करें ।

यह तैल क्षय, ज्वर, उन्माद, श्वास, अपस्मार एवं वातनाशक, यक्ष-राक्षस-भूत नाशक तथा गर्भवती के लिए उत्तम है । बालकों का बल-वर्ण बढ़ाता है[2] ।

पारिगर्भिक

पर्याय—परिभवाख्य, परिभव, दुधकट्टा, अहिण्डी ।

'न गर्भिण्याः पिबेत् स्तन्यं पारिगर्भिकवृद्धितत्' । (अ.सं.उ. 1:38)

'मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
कायाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ।।
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् ।
रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम्' ।। (अ.सं.उ. 2:64)

गर्भिणी माता का दूध पीने से प्रायः शिशुओं को कास, अग्निसाद, वमन, तन्द्रा, कार्श्य, अरुचि, भ्रम एवं उदर वृद्धि लक्षण हो जाते हैं । इसे पारिगर्भिक या परिभवाख्य कहते हैं ।

सम्प्राप्ति—पाठभेद से इस व्याधि की दो सम्प्राप्ति बनती है—

(1) 'प्रायः पिबन्नपि'—प्रायः गर्भिणी माता का दूध पीने से ।

(2) 'प्रायोऽपिबन्नपि'—प्रायः माता में गर्भिणी होने पर दूध न पिलाने से ।

1. साशोकरोहिणीं कृष्णां मध्वाज्येनलिहञ्जयेत् ।
शिशुः शोषं शरीरस्य ससितच्छागदुग्धभुक् ।। (अ.सं.उ. 2:54)
2. लाक्षारससमं तैलप्रस्थं मस्तु चतुर्गुणम् ।
अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ।।
समूर्वारोहिणीरास्नाशताह्वामधुकैः समैः ।
सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिदम् ।।
बल्यं ज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत् ।
यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीतां च शस्यते ।। (अ.हृ.उ. 2:54-56)
लाक्षारससमं तैलं मस्तून्यथ चतुर्गुणे ।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः ।।
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ।। (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 444)

Scanned with CamScanner

गुणवत्ता की कमी या मात्रा की कमी ही इस व्याधि का कारण होता है। आचार्य कश्यप ने इन्हीं लक्षणों एवं निदान से युक्त गर्भज फक्क का वर्णन किया है।

'गर्भिणी मातृकः क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात्।
क्षीयते म्रियते वाऽपि स फक्को गर्भपीडितः' ॥ (का.चि.फक्कचि.)

गर्भवती माता के स्तन्य के शीघ्र कम हो जाने से या समाप्त होने से बालक क्षीण हो जाता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है।

वाग्भट ने व्याधि के इतने तीव्र स्वरूप का वर्णन तो नहीं किया है। परन्तु अल्प उग्र स्वरूप का विवेचन विभिन्न लक्षणों द्वारा किया है।

कश्यप ने इसी कारण एक और अवस्था का वर्णन किया है—

'विभर्त्यन्यं यदा गर्भं तदा पूर्वः प्रमीयते।
संदंशीति वदन्त्येनामसाध्यां जातहारिणीम्' ॥

(का.कल्प.रेवतीकल्पाध्याय 53)

जब स्त्री दूसरे गर्भ को धारण करती है तो उसका पहला गर्भ (पुत्र) नष्ट हो जाता है। यह असाध्य जातहारिणी सन्दंशी है।

इस वर्णन का सम्बन्ध गर्भज फक्क से शायद स्थापित हो सकता है। यह एक विचारणीय प्रसङ्ग है।

चिकित्सा

सिद्धान्त—

'रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम्' ॥ (अ.सं.उ. 2:64)

अग्निदीपन चिकित्सा करनी चाहिए।

(1) 'पिप्पलीपिप्पलीमूलकटुकादेवदारुभिः।
क्षारद्वयविडाजाजीबिल्वमध्याग्निदीप्यकैः ॥
दधिसौवीरकसुरामण्डैश्च विपचेत् घृतम्।
हन्ति प्रयुक्तं तत् काले रोगान् परिभवाश्रयान्' ॥ (अ.सं.उ. 2:65)

पिप्पली, पिप्पलीमूल, कटुकी, देवदारु, क्षारद्वय, विडनमक, जीरा, बेल का गूदा एवं चित्रक का कल्क तथा दही, कांजी एवं सुरामण्ड के साथ घृतपाक करें। यह पारिगर्भिक रोगनाशक है।

(2) 'अत्युद्रिक्तक्षुधं बालं परिभूतं तु लेहयेत्।
विदारीयवगोधूमकणाचूर्णं घृताप्लुतम्।
पाययेदनु च क्षीरं श्रृतं समधुशर्करम्' ॥ (अ.सं.उ. 2:67)

विदारीकन्द, यव, गोधूम तथा पिप्पली चूर्ण घृत में मिला कर दें तथा ऊपर से मधु एवं शर्करा मिश्रित गर्म दूध देना चाहिए।

(3) 'अक्षमज्जाद्विकाकोलीयष्टीमधुकमोरटैः।
श्रपयेत् क्षीरमाज्यं वा बीजैरिक्षुरकस्य च' ॥ (अ.सं.उ. 2:67)

बिभीतकमज्जा, काकोली, क्षीरकाकोली, मधुक एवं मोरठ को अजादुग्ध में पकाकर दें।

(4) 'तत् प्रयोज्यं गुरु स्निग्धं यच्चात्यग्नौ पुरेरितम्'।

गुरु एवं स्निग्ध भोजन दें।

(5) 'न चेदेवं क्षुत्तस्य प्रशमं व्रजेत्।
क्षीरीपादपमूलस्थं विधिना स्नापितं ततः ॥
वस्त्ररत्नाद्यलङ्कारैः कुमारं भूषयेत् सितैः।
वृक्षं चानु ततः कुर्यात् भूषणव्यत्ययं तयोः।
एतदायुःप्रदं धन्यं स्नपनं सर्वरोगजित्' ॥

(6) 'जटीभूतक चाक्ष्यादिपक्ष्माणमतिलोलुपम्।
गोमूत्रगन्धि स्नपयेत्तीर्थे गव्यशकृद्रसैः' ॥

(7) 'वचापुष्पशिलाकुष्ठवयःस्थाहिङ्गुकट्फलैः।
सबस्तमूत्रमदिरैस्तैलमभ्यञ्जनं पचेत्' ॥

(8) 'बलाविदारीत्रिकटुकुष्ठोशीरकुचन्दनैः।
सिद्धं पीतं हविर्हन्ति तं विकारमशेषतः' ॥ (अ.सं.उ. 2:68-71)

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से वर्णित उपरोक्त सभी व्याधियों पर यदि आधुनिक प्रकाश में विचार करें तो समस्त व्याधियाँ कुपोषण का परिणाम प्रतीत होती हैं। यह कुपोषण किसी भी कारण से सकता है। यथा—

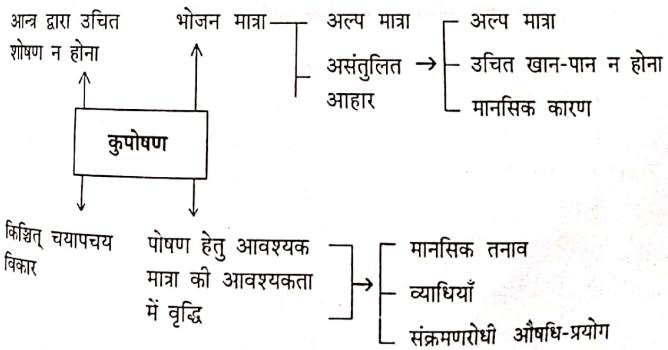

Scanned with CamScanner

इस प्रकार उपरोक्त रेखाचित्र के द्वारा कुपोषण के सभी कारणों को देखा जा सकता है।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में कुपोषण (Malnutrition) के अन्तर्गत Kwashiorkor, Marasmus, Protein energy malnutrition आदि व्याधियों, जीवतिक्तिय की कमी तथा पाण्डु आदि का भी ग्रहण होता है।

कुपोषण के कारण एवं सम्प्राप्ति

एक ही देश के विभिन्न प्रान्तों में, भिन्न-भिन्न रोगियों में कुपोषण के भिन्न-भिन्न कारण होते है। लेकिन वस्तुत: भोजनजन्य, संक्रमणजन्य, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कुरीतियों का सम्मिलित प्रयास कुपोषण के रूप में होता है। इन सभी कारणों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) प्रारम्भिक कारण—पोषण की कमी मुख्य रूप से होती है। इसके अनेक हेतु हैं; यथा—आर्थिक स्थिति, अज्ञानता, गलत धारणायें, बड़ा परिवार, दो बच्चों के जन्म में कम अन्तराल, नौकरीपेशा माता आदि।

(ख) द्वितीयक कारण—विभिन्न व्याधियाँ।

(1) भोजन का प्रभाव—भोजन के वे तत्त्व जो शरीर के लिए आवश्यक है, विभिन्न कारणों से कम हो सकते हैं; यथा—

(i) भोजन के आवश्यक तत्त्वों के विषय में अज्ञानता।

(ii) भोजन के विषय में गलत धारणा बनाना तथा गलत आदतें डालना। यथा—इस भोजन का असर गर्म या ठण्डा होता है, अत: नहीं देना चाहिए।

(iii) आर्थिक विपन्नता।

(iv) पर्याप्त मात्रा में भोज्य पदार्थों की बाजार में अनुपलब्धि।

(2) संक्रमण का प्रभाव—प्राय: कुपोषण युक्त बच्चों में पाचनतन्त्र का संक्रमण 60 से 75% तक पाया जाता है। अन्य संक्रमण भी कारण हो सकते हैं। यथा—

- अतिसार, आन्त्रकृमि } (60 से 75%)
- कुक्कुर कास
- खसरा—8.5%
- ज्वर
- श्वसनतन्त्र संक्रमण
- राजयक्ष्मा
- मधुमेह

ये समस्त कारण निम्न विधि से अपना प्रभाव कुपोषण के रूप में डालते हैं—

(i) ऋणात्मक नाइट्रोजन स्थिति (Balance) पैदा होने से अधिवृक्क (Adrenal) ग्रन्थि को उत्तेजना मिलती है तथा इसके परिणामस्वरूप प्लाज्मा में Cortisone की मात्रा बढ़ती है और उससे Catabolism प्रतिक्रिया शरीर में बढ़ जाती है।

(ii) संक्रमण के साथ-साथ अरुचि पैदा होती है तथा भोजन करने की मात्रा घट जाती है।

(iii) पक्व भोजन का आन्त्र से शोषण कम हो जाता है।

(iv) भोजन के पोषक तत्त्वों की कमी हो जाती है।

(v) उपरोक्त समस्त कारणों के साथ-साथ यदि अनुचित सलाह दी जाती है; यथा—उपवास कराना, भोजन न देना तो स्थिति और गम्भीर हो जाती है।

(3) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण—

(i) सामाजिक प्रथाएँ, अन्धविश्वास आदि।

(ii) नौकरी पेशा माता।

(iii) जनसंख्या वृद्धि।

(iv) भोज्य पदार्थों की अनुपलब्धता एवं महँगाई।

(4) शारीरिक कारण—कुछ कुपोषण युक्त बच्चों में शारीरिक विकृतियाँ कारण बनती हैं। यथा—

(i) जन्मजात रोग—Congenital anomalies of biliary tract, Lactose intolerance, Milk allergy.

(ii) जन्मजात विकृतियाँ—Cleft palate, Cleft lip, Pyloric stenosis आदि।

आधुनिक बाल-चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विज्ञान में कुपोषण के ऊपर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। इसके परीक्षण के लिए विभिन्न परीक्षाएँ की जाती हैं—

1. आयु के आधार पर शारीरिक नाप-तौल।
2. नैदानकीय परीक्षण।
3. विशिष्ट परीक्षणों के आधार पर।

आयु के आधार पर शारीरिक नाप-तौल

शारीरिक नाप-तौल के कुछ माप वय के सानुपातिक होते हैं। यथा—शारीरिक भार, लम्बाई, मध्यबाहुपरिधि, सिर एवं वक्ष की परिधि का अनुपात आदि। इनका विवरण प्रथम खण्ड में दिया गया है।

नैदानकीय परीक्षण

रक्त में प्रोभूजन की मात्रा, एमीनो अम्ल की मात्रा, हीमोग्लोबिन की मात्रा आदि ज्ञात करना।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट परीक्षण

शरीर के कुछ विशिष्ट नाप-तौल, वय को बहुत महत्त्व न देकर शरीर की शक्ति (Energy) एवं प्रोभूजन के भण्डारण का प्रदर्शन करती हैं। यथा—त्वक्‌झुर्रियों की मोटाई। इसी प्रकार शारीरिक भार कुपोषण में शीघ्र घटता है जबकि लम्बाई बहुत देर में।

इसी प्रकार के विभिन्न असंतुलन को देख कर कुछ सूत्रों का निर्माण किया गया है—

(1) Ratio of Dugdale—(डगडाल अनुपात)

$$= \frac{\text{शरीर-भार (कि.ग्रा.)} \times 100}{(\text{शरीर की ऊँचाई से.मी.})^{1.6}}$$

= 0.88-0.97—सामान्य
= 0.79-0.88—मध्यम कुपोषण
= 0.79 से कम—तीव्र कुपोषण

(2) Quetlet's Index (क्यूटलेट सङ्केत)

$$= \frac{\text{शरीर-भार कि.ग्रा. में} \times 100}{(\text{ऊँचाई से.मी.})^2}$$

= 0.14 से 0.16—सामान्य
= 0.14 से कम—कुपोषण

(3) बाहुपरिधि एवं ऊँचाई-विधि—

$$= \frac{\text{मध्यबाहुपरिधि से.मी.}}{\text{ऊँचाई से.मी. में}}$$

= 0.32 से 0.33—सामान्य
= 0.28 से 0.314—अल्प कुपोषण
= 0.25 से 0.279—मध्यम कुपोषण
= 0.25 से कम—गम्भीर कुपोषण

(4) कानावर्ती सूत्र—

$$\frac{\text{मध्यबाहुपरिधि}}{\text{सिर की परिधि}} =$$

0.310 से 0.280 तक—अल्प प्रोभूजन कैलोरी अल्पता।
0.279 से 0.250 तक—मध्यम प्रोभूजन कैलोरी अल्पता।
0.249 से कम—गम्भीर प्रोभूजन कैलोरी अल्पता।

(5) आरनाल्ड विधि—इसमें एक छड़ी का प्रयोग होता है। इस पर दो तरह के सङ्केत बिन्दु एवं माप बने होते हैं—

(i) लम्बाई की माप।
(ii) उस लम्बाई के सामान्य स्वस्थ शिशु के मध्य बाहु की औसत परिधि।

इस विधि में मध्यबाहुपरिधि मापते हैं। यदि छड़ी पर मध्यबाहुपरिधि के आगे अङ्कित लम्बाई से बच्चे की लम्बाई अधिक है तो शिशु कुपोषण का शिकार होगा।

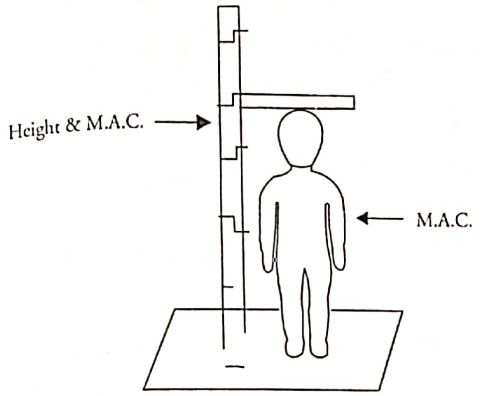

चित्र सं. 41 : अरनॉल्ड विधि (Arnold method)

(6) चूड़ी-विधि (Bangle method)—इसके परिणाम सन्देहास्पद हैं, परन्तु यह सरलतम विधि है। इसमें 4 से.मी. व्यास की एक चूड़ी शिशु को पहनाते हैं, यदि वह कुहनी से ऊपर चली जाती है तो शिशु में कुपोषण है।

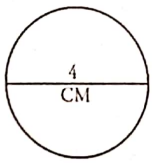

चित्र सं. 42 : बेंजल विधि (Bangle method)

(7) शकीर-टेप विधि—इसमें एक प्लास्टिक का टेप होता है जिससे मध्य बाहु परिधि नापी जाती है। इसमें 3 रङ्ग का सङ्केत बना होता है, जो निश्चित नाप व परिणाम के आधार पर बना होता है—

हरा वर्ण (13.5 से.मी. से अधिक)—सामान्य स्वास्थ्य।
पीत वर्ण (12.5 से.मी. से 13.5 से.मी.) कुपोषण सम्भावित।
लाल वर्ण (12.5 से.मी. से कम)—कुपोषण युक्त शिशु।

Scanned with CamScanner

चित्र सं. 43 : शकीर टेप विधि (Shakir tape method)

उपरोक्त विधियों के द्वारा कुपोषण का ज्ञान हम कर सकते हैं ।

कुपोषण का वर्गीकरण

विभिन्न विद्वानों ने या विद्वत्-समूहों ने कुपोषण का वर्गीकरण अपनी विशिष्टता के आधार पर किया है । वर्गीकरण में प्राय: कुपोषण की तीव्रता, काल एवं शरीर के विभिन्न मापों एवं वय से सम्बन्ध को दृष्टिगत रखा गया है । यथा—

(क) गोमेज वर्गीकरण (Gomez's 1955)

प्रथम श्रेणी—90% से 75%
द्वितीय श्रेणी—75% से 60%
तृतीय श्रेणी—60% से कम
} उस वय के लिए निर्धारित भार का

(ख) संशोधित गोमेज वर्गीकरण (Indian Paediatrics Association)

कुपोषण श्रेणी	उस वय के लिए निर्धारित भार का%		विशेष विवरण
प्रथम	90% से अधिक		
द्वितीय	90% से 80%		
तृतीय चतुर्थ	80% से 70% 70 से 60%	60 से 80% शोथ के साथ	क्वाशिआरकर
पंचम	60% से कम	शोथ के साथ शोथ रहित	मैरिस्मिक क्वाशिआरकर मैरास्मस

(ग) Indian Academy of Paediatrics का वर्गीकरण

श्रेणी	उस वय के लिए निर्धारित भार का
प्रथम	80 से 70%
द्वितीय	70 से 60%
तृतीय	60 से 50%
चतुर्थ	50% से कम

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण या Wellcome का वर्गीकरण

उस वय से लिए निर्धारित भार का	शोथ रहित	शोथ सहित
80% भार	भार-अल्पता (under weight)	क्वाशिआरकर
60% भार	मैरास्मस	मैरास्मिक क्वाशिआरकर

(ङ) Jelliffe's वर्गीकरण

श्रेणी	उस वय के लिए निर्धारित भार का %
प्रथम	90 से 80%
द्वितीय	80 से 70%
तृतीय	70 से 60%
चतुर्थ	60% से कम

(च) Garrows criteria (गैरोज वर्गीकरण)

1. गम्भीर कुपोषण—70% से कम शरीर-भार, उस वय के लिए ।
2. मैरास्मस—60 प्रतिशत भार उस वय के लिए शोथ रहित ।
3. क्वाशिआरकर—कम-से-कम 60% शरीर-भार उस वय के लिए एवं शोथ और/अथवा यकृत्-वृद्धि या त्वक्-विकार (Dermatosis) हो ।
4. मैरास्मिक क्वाशिअरकर—60% से कम शरीर-भार + शोथ + क्वाशिआरकर के लक्षण हों ।

(छ) मैकलारन (McLaren) वर्गीकरण

इसका आधार विशिष्ट वय के लिए निर्धारित लम्बाई है ।

श्रेणी	**उस वय के लिए निर्धारित लम्बाई**
वामन (Dwarf)	80% से कम लम्बाई
अल्पता (Short)	80% से 93% तक लम्बाई
सामान्य	93% से अधिक लम्बाई

(ज) डेविड्सन (Davidson) वर्गीकरण

Scanned with CamScanner

व्याधि वर्ग	अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप शरीर भार % में	शोथ	भार या लम्बाई में अल्पता
क्वाशिआरकर	80-60	+	+
मैरास्मिक क्वाशिआरकर	60 से कम	+	++
मैरास्मस	60 से कम	0	++
कुपोषणजन्य अल्प लम्बाई	60 से कम	0	न्यूनतम
अल्पभार शिशु (Under weight child) (PEM - Grade II & III)	80-60	0	+

इस प्रकार के कुछ अन्य वर्गीकरण भी आधुनिक चिकित्साशास्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं ।

प्रोटीन कैलोरी/एनर्जी मालन्यूट्रीशन[1]
(Protein Calories/Energy Malnutrition)

उपर्युक्त वर्गीकरण में व्याधियों के आये नाम एवं उनका समूह इस शीर्षक के अन्तर्गत आता है । वस्तुत: मात्र प्रोभूजन की या शर्करा की अकेले कमी होती है, ऐसा कहना उचित नहीं है । शक्ति या ऊर्जा (Calories) की कमी के महत्त्व को इनकार नहीं किया जा सकता है । अत: नामकरण प्रोटीन कैलोरी मालन्यूट्रीशन (Protien Calories Malnutrition) किया गया जिसे विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन तथा खाद्य एवं कृषि सङ्गठन (FAO) के परामर्श के आधार पर Protein Energy Malnutrition कहा जाने लगा । वस्तुत: Calories से Energy ही प्राप्त होती है । क्योंकि ग्रहण किया गया खाद्य पदार्थ अन्तत: शक्ति (Energy) ही प्रदान करता है । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सैद्धान्तिक रूप में पाँच कुपोषण जनित अवस्थायें चिह्नित की गयी हैं, जो D5 के संकेत से जानी जाती हैं—

(1) क्वाशिआरकर ।
(2) मैरास्मस ।
(3) जीरोफ्थेल्मिया (Xerophthalmia)
(4) कुपोषणजन्य पाण्डु (Anaemia)
(5) गलगण्ड (Goitre)

1. Range of pathological conditions arising from coincidental lack of varying proportions of protein and calories. (WHO)

क्वाशिआरकर
(Kwashiorkor)

यह प्रोभूजन (Protein) की अल्पता के कारण होने वाली व्याधि है । यह शब्द घाना (Ghana) देश की Gar भाषा द्वारा लिया गया है जिसका अर्थ है "Disease of deposed child" अर्थात् फूले हुए शिशु की व्याधि अथवा इस व्याधि से शरीर पर पड़ने वाले लाल चकत्तों के कारण यह नाम पड़ा । भोजन में पूर्ण मात्रा में Calories के रहने पर भी प्रोभूजन की अल्पता का होना ही इस व्याधि की उत्पादकता का कारण है । यह व्याधि प्राय: 1 से 4 वर्ष की वय में होती है । कारण एवं रासायनिक परिवर्तनों के आधार पर इसे निम्न तीन भागों में बाँटा गया है—

1. मैरिस्मिक क्वाशिआरकर—शोथ रहित रोगी का शरीर-भार सामान्य से 40% कम या शोथ युक्त रोगी का शरीर-भार सामान्य से 10% कम तथा त्वचा के नीचे की वसा का सम्पूर्ण शरीर में कम हो जाना । यह वर्ग भारत में सामान्यत: मिलता है ।

2. शर्करा शिशु-क्वाशिआरकर—शोथ रहित रोगी का शरीर-भार सामान्य से 20-30% कम तथा नितम्ब एवं चेहरे पर त्वचा के नीचे की वसा का शेष रहना (अन्य स्थानों पर कमी होना) । यह वर्ग जमैका में मिलता है जहाँ शिशु के आहार में शर्करा को बहुतायत रहती है ।

3. शुष्कतायुक्त (Atrophic Kwashiorkor)—शोथ रहित रोगी का शरीर-भार सामान्य से 30-40% अल्प एवं चेहरे पर त्वचा के नीचे की वसा का शेष रहना ।

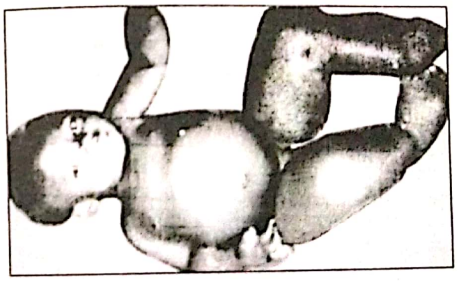

चित्र सं. 44 : क्वाशिआरकर (Kwashiorkor)

लक्षण

1. शोथ (Oedema)—जो पैरों से प्रारम्भ होकर मुख की ओर बढ़ता है । शोथ पर अँगुठे से दबाने पर निशान बन जाते हैं (Pitting) । कुछ रोगियों में उदरावणकला (Peritoneum) में द्रव एकत्र हो जाता है एवं जलोदर की उत्पत्ति हो जाती है ।

2. शारीरिक वृद्धि का रुक जाना ।

3. मानसिक लक्षण—चिड़चिड़ापन, उदासीन, वातावरण में अरुचि (Apathy) ।

Scanned with CamScanner

4. पेशियों का पतला होना एवं त्वचा के नीचे की वसा का रुका रहना।

5. सिर के बाल सूखे, सिल्कवत्, कुरकुरे तथा आसानी से गुच्छों में उखड़ जाने वाले हो जाते हैं। पीला एवं भूरा होना Flag sign कहलाता है। यह परिवर्तन Tyrosine एवं Phenylalanine की कमी से होते हैं।

6. त्वग्गत परिवर्तन—विवर्णता, हल्का भूरा या काला हो जाता है। उसके चारों ओर त्वचा लाल एवं व्रणयुक्त (Flakypaint-Dermatosis) हो जाती है। त्वचा की बाह्य सतह पर व्रण (Flexural ulcer) हो जाते हैं। ऐसा 50% रोगियों में होता है। यह त्रुटिपूर्ण collagen Formation के कारण होता है।

7. चन्द्रमुख—शोथ आदि के कारण चेहरा गोल हो जाता है। Jelliffi (1966) ने पैरोटिड ग्रन्थि के शोथ के कारण ऐसा होना कहा है।

8. पाण्डु कभी-कभी होता है।

9. यकृत् वृद्धि—20 से 30% रोगियों में मिलती है।

10. व्याधि में साथ-साथ विटामिन्स की अल्पताजन्य लक्षण 30 से 50% रोगियों में मिलते हैं।

11. श्लैष्मिक कलागत—ओष्ठ के किनारों का फटना (Angular Stomatitis cheilosis), चिकनी जिह्वा, गुदा पर व्रण।

12. अन्नवह स्रोतस्-विकार, अतिसार एवं अधिक मलत्याग, श्वसनतन्त्र का संक्रमण, त्वक संक्रमण।

13. अङ्गुलिपर्व का मोटा होना (Clubbing)।

निदान के पाँच प्रमुख घटक—

1. शारीरिक विकास—↓
2. पेशी का पतला होना
3. मानसिक परिवर्तन
4. शोथ

} निदानार्थ महत्त्वपूर्ण लक्षण

5. Serum Albumin की मात्रा 2.5 ग्रा.% से कम हो। (हृदयगत, यकृत्, वृक्कगत कारणों पर विचार के बाद।)

प्रयोगशालीय परीक्षण—सीरम प्रोटीन एवं एल्ब्यूमिन की मात्रा कम हो जाती है। ग्लोब्यूलिन बढ़ जाता है। लौहतत्त्व अल्पताजन्य पाण्डु मिलता है। सीरम एञ्जाइम कम हो जाते हैं। प्लाज्मा एमीनोएसिड की मात्रा असामान्य (Imbalance) हो जाती है।

मैरास्मस (Marasmus)

यह शब्द ग्रीक भाषा के 'Marasmos' शब्द से बना है जिसका अर्थ "Severe wasting" अर्थात् पेशियों का अति पतला होना है। इसका कारण मूलरूप से Calories की कमी माना जाता है। यह व्याधि 6 माह की वय से 3 वर्ष की वय के मध्यप्राय होती है।

लक्षण

1. शारीरिक वृद्धि न होना—शरीर-भार एवं लम्बाई का प्रायः 60% सामान्य शरीर-भार से कम होना सामान्य लक्षण है।

2. मांसपेशियों का पतला हो जाना तथा शरीर पर त्वचा के नीचे की वसा का कम हो जाना, झुर्रियाँ पड़ जाना आदि के परिणामस्वरूप शिशु का चेहरा बन्दर जैसा दिखाई देता है।

3. शोथ का न होना।

4. पाण्डु क्वाशिआरकर की अपेक्षा अधिक पाया जाता है।

5. सिर के बाल में विशेष परिवर्तन नहीं होता है।

6. मुरझाया हुआ शरीर (Wizened appearence)।

7. शारीरिक तापक्रम सामान्य से कम रहता है।

8. शरीर-भार की कमी लम्बाई की कमी की अपेक्षा अधिक होती है।

9. अम्लीय मल त्याग, जलवत् अतिसार होना अथवा अर्धतरल मल का होना, संक्रमणजन्य आन्त्रशोथ (Infective gastrointeritis)।

10 उदर धँसा हुआ या फूला रहता है तथा कभी-कभी आन्त्र की गति दिखायी पड़ती है।

11. शाखाएँ अस्थि एवं त्वचा मात्र दीखती हैं।

12. त्वचा एवं श्लैष्मिक कला सूखी हुई होती हैं एवं विटामिन्स की कमी के लक्षण मिलते हैं।

13. मानसिक परिवर्तन एवं उद्विग्नता हो सकती है। लम्बे समय के रोगों में अन्य मानसिक लक्षण क्वाशिआरकर की भाँति मिलते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में बालक चिड़चिड़ा, क्षुधायुक्त एवं भोजन देखकर आकर्षित होता है। बाद में बालक उदासीन, अरुचि एवं भोजन के प्रति अनिच्छा प्रकट करता है।

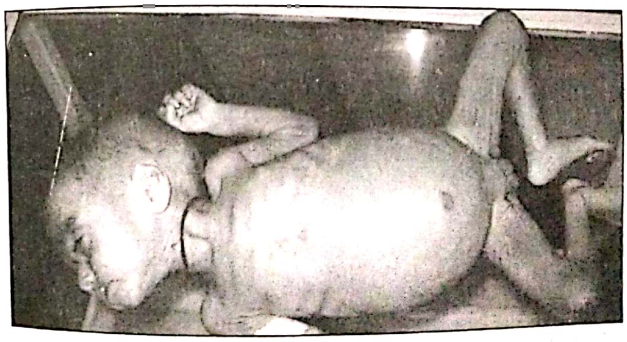

चित्र सं. 45 : मैरास्मस (Marasmus)

Scanned with CamScanner

मैरास्मिक क्वाशिआरकर
(Marasmic Kwashiorkor)

इस वर्ग में दोनों व्याधियों के मिश्रित लक्षण मिलते हैं। निदानार्थ शोथ का होना आवश्यक है। प्राय: ऐसा होता है कि त्रुटिपूर्ण आहार-व्यवस्था मैरास्मस के रोगी की हो जाती है अर्थात् प्रोभूजन की अल्पता एवं कैलोरी का बाहुल्य। परिणामस्वरूप शरीर से प्रोभूजन की अल्पताजन्य शोथ हो जाता है। इस प्रकार क्वाशिआरकर का प्रमुख लक्षण प्रकट हो जाता है।

क्वाशिआरकर का पूर्वरूप

कुपोषण एवं क्वाशिआरकर के कुछ लक्षणों से युक्त अवस्था है। इस अवस्था में शोथ तो नहीं होता परन्तु क्वाशिआरकर के कुछ अन्य लक्षण, जैसे—सिर के बालों में परिवर्तन आदि मिलता है।

क्वाशिआरकर एवं मैरास्मस में विभेदक लक्षण

लक्षण	क्वाशिआरकर	मैरास्मस
1. व्याधि उद्भव	शीघ्र	धीरे-धीरे
2. वय	12 से 48 माह के मध्य	6 से 36 माह के मध्य
3. मांसपेशी का पतलापन	+ + + पुराने रोगियों में	+ + + + त्वग्गत वसा की क्षीणता, शरीर पर झुर्रियाँ, बन्दर जैसा चेहरा होना।
4. शोथ	+ + + प्रारम्भ पैर से→ऊरु को→हाथ में →चेहरे पर क्रमश होता है।	नहीं
5. चेहरा	शोथ एवं त्वग्गत वसा के कारण चन्द्रमुख।	बन्दर जैसा चेहरा।
6. क्षुधा	अल्प	अच्छी
7. शारीरिक विकास	कमी आती है परन्तु शरीर-भार में विशेष अन्तर शोथ के कारण नहीं होता।	अत्यधिक कमी होती है।
8. त्वग्गत लक्षण	सम्भव है। भूरे काले धब्बे, Flaky Point Dermatosis	नहीं
9. सिर के बालों के लक्षण	विवर्णता, आसानी से गुच्छों में उखड़ने वाले (Flag sign)	कभी-कभी बालों में पतलापन दीखता है।

लक्षण	क्वाशिआरकर	मैरास्मस
10. मानसिक लक्षण	वातावरण में अरुचि, अनिच्छा, उद्विग्नता एवं व्यावहारिक विकास क्रम में कमी होना।	परिवर्तन होता है परन्तु कम होता है।
11. खनिज लवण	जल एवं खनिज लवण के चयापचय में अत्यधिक परिवर्तन—शरीर में जल की मात्रा में वृद्धि K—अल्पता + + + Na—वृद्धि + + +	Na की मात्रा में अतिसार के साथ परिवर्तन
12. मल	अतिसार +, मल में दुर्गन्ध, पतला एवं अपचित भोज्य पदार्थ युक्त	अतिसार +
13. पाण्डु	+	+
14. प्रोभूजन की रक्त में मात्रा	कुल प्रोभूजन की मात्रा में कमी, एल्ब्यूमिन की मात्रा में अत्यधिक अल्पता।	कमी सम्भव है।
15. यकृत्	वृद्धि	सामान्य
16. अन्य लक्षण	विटामिन्स की कमी के लक्षण, लौह एवं ताम्र तत्त्वों की कमी होती है।	विटामिन्स की कमी एवं खनिज लक्षणों की कमी होती है।

तीव्र कुपोषण का प्रथम दृष्टया चिकित्सासूत्र

1. रक्तशर्करा की अल्पता को पूर्ण करना।
2. बच्चे को समयानुसार उचित आहार देना।
3. शरीर तापक्रम जो प्राय: कम हो जाता है, उसे सामान्य रखना।
4. शरीर में जलाल्पता की अवस्था की चिकित्सा।
5. खनिज तत्त्व की अल्पता को पूर्ण करना।
6. संक्रमण की चिकित्सा।
7. जीवतिक्तीय एवं अन्य सूक्ष्म आवश्यक तत्त्वों की आपूर्ति।
8. क्रमश: पूर्ण आहार का प्रारम्भ।

तीव्र कुपोषण की चिकित्सा-व्यवस्था

सिद्धान्त रूप में यह समझना चाहिए कि प्राय: कुपोषण में मृत्यु उपद्रवों के कारण होती है। अत: मूल चिकित्सा सिद्धान्त है कि मृत्युदर में कमी लायें तथा शिशु को शीघ्र पोषित कर स्वस्थ करें।

Scanned with CamScanner

उपद्रव चिकित्सा—चिकित्सक का दायित्व है कि चिकित्सा प्रारम्भ करते समय घातक उपद्रवों का शीघ्र निदान करें, जिससे बच्चे को सुरक्षित (SHIELDED) किया जा सके ।

S - Sugar deficiency (Hypoglycaemia)
H - Hypothermia
I - Infection & Septic shock
EL - Electrolyte
DE - Dehydration
D - Deficiency of Micronutrients and vitamins

यह उपद्रव चिकित्सा का मूल सुरक्षा कवच (SHIELDED) है; जो मृत्युदर को प्रभावी रूप से कम कर सकता है ।

(1) रक्तशर्करा में अल्पता (Hypoglycemia)—इस उपद्रव के कारण शिशु मूर्च्छित हो सकता है, उसमें आक्षेप आते हैं । प्राय: रक्तशर्करा की मात्रा 54 मि.ग्रा./डे.ली. से भी कम मिलती है ।

व्यवस्था—शिरामार्ग से सूचीवेध द्वारा 5 से 10 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार की दर से 10% Glucose solution देना चाहिए ।

(2) शरीर के तापक्रम में अल्पता (Hypothermia)—प्राय: यह उपद्रव 1 वर्ष से कम वय के शिशु में तथा Marasmus के रोगियों में मिलता है । (गुदामार्ग का तापक्रम 35.5^0 सें. से कम मिलता है)

व्यवस्था—नवजात शिशु श्वासावरोध काल में इस उपद्रव के लिए बातये गये सभी उपाय करें यथा—कंगारू के समान बच्चे को माँ के शरीर से लगाये रखना एवं शरीर को ढक कर रखना । प्रत्येक ½-1 घण्टे पर ताप का मापन ।

(3) संक्रमण—प्राय: त्वचा, अन्नवह स्रोतस्, श्वसन तन्त्र और मूत्रवह स्रोतस् में संक्रमण होता है । एतदर्थ आवश्यक औषधि (Antibiotics) शरीर भार के अनुसार प्रयोग करना चाहिए । यदि इससे भी लाभ न हो तो यक्ष्मा-निदानार्थ ट्युबरकुलीन टेस्ट करा लेना उचित है । यह भी सम्भव है कि संक्रमण के कल्चर में किसी जीवाणु की उपस्थिति न मिले । ऐसी अवस्था में सुरक्षा की दृष्टि से भी औषधि (Antibiotic) का प्रयोग कर सकते हैं ।

संक्रमणजन्य मूर्च्छा (Septic shock) एवं जलाल्पता की अवस्था का तीव्र कुपोषण में निदान कठिन होता है । अत: जलाल्पता की चिकित्सा करने पर भी (शिरामार्ग सूचीवेध से प्रथम 2 घण्टे द्रव देने पर) यदि शिशु के स्वास्थ्य में सुधार के संकेत न

मिले, नाड़ी-गति का धीमा होना या न मिलना एवं रक्तचाप का कम रहना Septic shock का संकेत है । अत: शीघ्र उचित एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग करें । रक्ताधान या प्लाज्मा 10 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर-भार की दर से लगभग 3 घण्टे तक अवश्य दें एवं Septic shock की चिकित्सा विधि का प्रयोग करें ।

(4) जलाल्पता—इस अवस्था की चिकित्सा में शीघ्रता न करते हुए क्रमश: आवश्यकता की पूर्ति में 10 से 12 घण्टे का समय लगता है ।

- अल्प या मध्यम जलाल्पता की चिकित्सा मुख द्वारा द्रव (ORS) के प्रयोग से करें ।
- तीव्र जलाल्पता में शिरामार्ग का प्रयोग करें—
  - प्रारम्भ में - Ringer's lactate अथवा
    - $N/2$ Saline + 5% Dextrose
    30 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार प्रथम 2 घण्टे में
  - तत्पश्चात् - $N/2$ Saline + 5% Dextrose
    100 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर-भार पर अगले 10 घण्टे में
  - अगले 12 घण्टे में उपरोक्त द्रव की ½ मात्रा दीजिए ।
  - उपरोक्त चिकित्सा-व्यवस्था से जलाल्पता ठीक हो जाती है । अथवा आवश्यकतानुसार आगे भी बढ़ायी जा सकती है ।
  - इसके उपरान्त 5% Dextrose शिरामार्ग से तब तक देना चाहिए जब तक बालक मुख द्वारा पर्याप्त पोषण न ग्रहण करने लगे ।

कुपोषण में दिया जानेवाला ORS

- सामान्य ORS में सोडियम की मात्रा अधिक होती है जबकि इस अवस्था में शरीर में सोडियम का संग्रह रहता है ।
- इस अवस्था में पोटेशियम की शरीर में कमी होती है जबकि सामान्य ORS में पोटेशियम कम होता है ।
- अत: कुपोषण जनित जलाल्पता में दिये जानेवाले ORS का निर्माण निम्नवत् किया जाता है । इसे Re So Mal (Rehydration Solution for Malnutrition) कहते हैं ।

Re So Mal का निर्माण

• ORS (W.H.O. Formula pack)	एक पैकेट
• उबला हुआ शीतल जल	2 लीटर
• Sucrose	50 ग्राम
• Mineral mix	40 सी.सी.

Scanned with CamScanner

दोनो प्रकार के ORS का तुलनात्मक विवरण

संगठन	ORS (W.H.O. निर्धारित)	Re So Mal (कुपोषण-जलाल्पता)
	(m Mol/L)	(m Mol/L)
ग्लूकोज	111	125
सोडियम	90	45
पोटेशियम	20	40
क्लोराइड	80	70
साइट्रेट	10	7
मैग्नीशियम	-	3
जिंक	-	0.3
कॉपर	-	0.045
Osmolarity	311	300

Re So Mal 70 से 100 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर-भार की दर से 12 घण्टे में देना चाहिए। (5 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर-भार की दर से प्रति 30 मिनट में प्रथम 2 घण्टे में मुख द्वारा या नेजोगैस्ट्रिक ट्यूब द्वारा देना चाहिए, तत्पश्चात् 5 से 10 मि.ली./कि.ग्रा./घण्टे की दर से देना चाहिए।)

(5) खनिज, जीवतिक्तीय एवं अन्य पोषक तत्त्व

क्र. सं.	नाम	विवरण	मात्रा
1.	सोडियम	प्रारम्भिक अवस्था में सोडियम एवं जल संग्रह से बचाव हेतु निषिद्ध है।	—
2.	पोटेशियम (K)	कुपोषण जनित अतिसार में प्राय: K अल्पता होती है।	30-40 mEq/L
3.	लौहतत्त्व एवं रक्ताधान	तीव्र पाण्डु (Hb 4 ग्रा./डी.एल से कम होने पर) अन्य, अवस्था (अल्प या मध्यम पाण्डु)	रक्ताधान 10 मि.ली./कि.ग्रा. लौहतत्त्व 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन फोलिक एसिड. 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन विटामिन B_{12} 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन
4.	फॉलिक एसिड	—	5 मि.ग्रा./दिन तत्पश्चात् 1 मि.ग्रा./दिन

क्र. सं.	नाम	विवरण	मात्रा
5.	मैग्नीशियम सल्फेट	—	50% सोल्यूशन का 2 सी.सी. मांसगत सूचीवेध प्रथम दिवस
6.	जीवतिक्तीय-के (विटामिन)	—	2.5 मि.ग्रा. की एक मात्रा मांसगत सूचीवेध
7.	जिवतिक्तीय-ए	6 माह से कम वय	50,000 IU (मुख से)
		6 से 12 माह वय	एक लाख IU
		1 वर्ष से अधिक वय	दो लाख IU
		नेत्र विकार (Xeropthalmia)	उपरोक्त आवश्यक मात्रा दूसरे दिन तथा 2 सप्ताह के बाद पुन: देवें।

आहार-चिकित्सा

कुपोषण से ग्रसित बालक की चिकित्सा का मूल मन्त्र है श्रेष्ठ (BEST) आहार व्यवस्था।

B - Begining - आहार का प्रारम्भ
E - Energy dense - ऊर्जायुक्त आहार
S - Stimulation of emotion and sensual development - आहार के प्रति रुचि का विकास
T - Transfer - घर पर दिये जाने लायक आहार की व्यवस्था

आहार का प्रारम्भ (प्रथम दिवस से 7 दिन तक)

- उपद्रव (यथा—जलाल्पता, खनिज तत्त्व अल्पता एवं संक्रमण) के ठीक होने के पश्चात् प्रारम्भ करें।
- बलपूर्वक आहार न देवें। अत्यधिक आहार लेने के लिए दबाव न बनाये।
- आहार मुख से अथवा यदि मुख से आहार ग्रहण न करे तो नेजोगैस्ट्रिक ट्यूब से दिया जाय।
- आहार-मात्रा का निर्धारण आमाशय की क्षमता के आधार पर करना चाहिए। आमाशय क्षमता प्राय: 3% शरीर भार की होती है।
- आहार दुग्ध आधारित होना चाहिए।
- शीघ्रातिशीघ्र अर्धतरल आहार प्रारम्भ करें।

आहार-मात्रा एवं संगठन

- प्रारम्भ में 80 कैलोरी/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन की दर से कैलोरी तथा 0.7 ग्राम/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन की दर से प्रोभूजन की मात्रा देनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

- 7 दिन के बाद क्रमशः उपरोक्त मात्रा का विवर्धन करते हुए निम्नांकित स्वरूप निर्धारित करें—
  - कैलोरी 150/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन
  - प्रोभूजन 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन
  - द्रव अंश 100-125 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार/दिन
- ऊर्जा की 8 से 10% मात्रा प्रथम श्रेणी प्रोभूजन से पूर्ण की जानी चाहिए।
- नारियल तैल का प्रयोग श्रेयस्कर है।
- पोषणार्थ निम्नांकित पोष्यतत्त्व अलग से दिये जाने चाहिए। क्योंकि प्रायः आहार से इनकी पूर्ति नहीं हो पाती—

क्रमांक	पोष्य तत्त्व	मात्रा
1.	पोटेशियम क्लोराइड	1.2-2.4 gm/L of feed
2.	मैग्नीशियम क्लोराइड	300-600 mg/L of feed
3.	जिंक एसीटेट	20 mg/दिन
4.	कॉपर एसीटेट	2 mg/L of feed
5.	सेलेनियम	6-10 mg/कि.ग्रा./दिन
6.	जीवतिक्तीय D	6 लाख यूनिट (मुख से)

- उपद्रव चिकित्सा के पश्चात् अति ऊर्जायुक्त (Energy dene food) आहार की भी अवश्यकता पड़ती है। जिसमें 150 से 220 कैलोरी/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन तथा प्रोभूजन 3 से 4 ग्राम/कि.ग्रा. शरीर भार/दिन की दर से दिया जाता है। एतदर्थ चावल, गुड़ एवं घृत, खिचड़ी एवं घृत, पराठा, बेसन की पंजीरी आदि का प्रयोग कर सकते हैं।

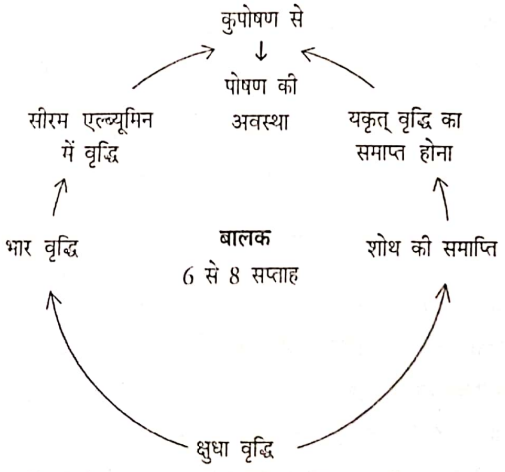

चित्र सं. 46 : बालक के स्वास्थ्य में सुधार के लक्षण

जब लम्बाई के अनुपात में शरीर-भार प्राप्त हो जाय तो सम्पूर्ण सुधार का संकेत समझना चाहिए। तत्पश्चात् प्रत्येक 15 दिन पर पुनः परीक्षण करें। उचित रोगप्रतिरोधक टीका लगवायें तथा शिशु की स्वच्छता एवं उचित देखभाल रखी जानी चाहिए।

कुपोषण से बचाव के उपाय

वस्तुतः कुपोषण एक आर्थिक एवं सामाजिक समस्या है। अतः यदि शिशुओं को इस समस्या से छुटकारा दिलाना है तो चिकित्सकों, वैज्ञानिकों, समाज-सेवकों तथा शासन को इस दिशा में सम्मिलित प्रयास करने होंगे। इस हेतु सभी स्तर पर प्रयास करना होगा।

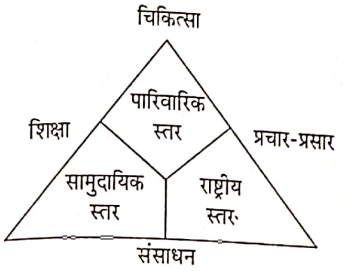

पारिवारिक स्तर

शिक्षा	प्रचार-प्रसार	संसाधन
- स्तनपान के प्रति जागरूकता - समय पर अन्नप्राशन एवं फलप्राशन - आहार के विभिन्न वर्गों का ज्ञान - टीकाकरण	- पारिवार नियोजन एवं - दो बच्चों के जन्म में अन्तर - सस्ते, सुलभ एवं संतुलित आहार - टीकाकरण	- आर्थिक सम्पन्नता के उपाय

सामुदायिक स्तर

शिक्षा एवं प्रचार-प्रसार	संसाधन	चिकित्सा
-आहार वर्ग एवं उपयोगिता -टीकाकरण -परिवार-कल्याण -स्थानीय उपलब्ध आहार द्रव्य -राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम	- निःशुल्क उपलब्धता - टीकाकरण - चिकित्सा - शीघ्र एवं उचित निदान व्यवस्था के उपाय	- संक्रमण से बचाव - उदरकृमि से बचाव - उचित टीकाकरण - चिकित्सा - पोष्य तत्त्वों का सम्यग् प्रयोग

राष्ट्रीय स्तर पर कुपोषण समस्या का निवारण

राष्ट्रीय स्तर पर सरकार के द्वारा कुपोषण की समस्या के निवारणार्थ अनेक प्रयास निम्न भाँति किये जा रहे हैं। उनको हम तीन स्तर पर निम्न भाँति प्रस्तुत कर सकते हैं; यथा—

Scanned with CamScanner

(1) शिक्षा एवं प्रचार-प्रसार—विभिन्न पाठ्यक्रमों की संरचना, विशेषज्ञों को तैयार कर उनका सही ढंग से प्रयोग करना तथा शासन स्तर पर उपलब्धता करायी गयी सुविधाओं का प्रचार एवं प्रसार।

(2) पोषक आहार की उपलब्धि—शासन द्वारा अनेक कार्यक्रमों के द्वारा पोषक आहार उपलब्ध कराये जा रहे हैं। परन्तु पोषक आहार प्रत्येक प्रदेश/समुदाय आदि स्तर पर एक नहीं हो सकता। अतः नीति-निर्धारण स्थानविशेष की समस्या के आधार पर किया जाना चाहिए। स्थानविशेष की कुपोषण की समस्या का अध्ययन करना तथा उनके निवारणार्थ सुलभ एवं सस्ते संसाधन का चयन करने पर ही परिणाम अच्छे आयेंगे।

विभिन्न पद्धति के चिकित्सकों का सक्रिय सहयोग इस कार्यक्रम में लिया जाना चाहिए। उन पद्धतियों में उपलब्ध ज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन कर उसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

(3) पोषण कार्यक्रम की योजना—राष्ट्रीय स्तर पर लम्बे समय तक चलने वाली योजना का निर्माण होना चाहिए। योजना निर्माण में खुले मस्तिष्क से विचार-विमर्श होना चाहिए। इसमें विभिन्न विशेषज्ञों का सक्रिय योगदान लिया जाना चाहिए।

वर्तमान राष्ट्रीय कार्यक्रम

1. बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम (समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा)
2. विद्यालयों में 'मिड डे मील' कार्यक्रम (शिक्षा मंत्रालय द्वारा)
3. विशिष्ट पोषण कार्यक्रम (समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा)
4. ICDS (Integrated Child Development Services) कार्यक्रम (समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा)
5. कुपोषण जन्य पाण्डु बचाव कार्यक्रम (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा) (Prophylaxis against nutritional anaemia).
6. विटामिन-ए प्रयोग कार्यक्रम
7. आयोडिनयुक्त नमक कार्यक्रम
8. राष्ट्रीय स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम
9. राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम

प्रोभूजन एवं उर्जायुक्त संस्तुत विशिष्ट आहार

क्रमांक	नाम	संगठन	कैलोरी	प्रोभूजन (ग्राम)
1	लड्डू/पंजीरी	गेंहूँ का आटा, गुड़, बेसन, घृत (समभाग)	500/100 ग्राम	9/100 ग्राम
2.	सूजी खीर	टोण्ड दुग्ध 750 सी.सी. शर्करा 100 ग्राम सूजी 25 ग्राम घृत (तैल) 50 ग्राम	143.2	28.4 ग्राम

क्रमांक	नाम	संगठन	कैलोरी	प्रोभूजन (ग्राम)
3.	हैदराबादी मिश्रण	गेंहूँ 40 ग्राम चना 16 ग्राम मूँगफली 10 ग्राम गुड़ 20 ग्राम	330/86 ग्राम	11.3/86 ग्राम
4.	शक्ति आहार	भुना हुआ गेंहूँ 40 ग्राम भुना हुआ चना 20 ग्राम भुना हुआ मटर 10 ग्राम गुड़ 30 ग्राम	390/100 ग्राम	11.4/100 ग्राम

आयुर्वेद संहिता ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेक योग दिये हैं। यथा—

विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्।
खादेयत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्॥ (यो.र.,बा.रो.चि.,पृ. 445)

विदारीकन्द, गोधूम, यवचूर्ण } समभाग

घृत में भूनकर शर्करा मिला दें। फिर इसे दूध एवं मधु के साथ देना चाहिए। ज्ञातव्य है कि विदारीकन्द में 64% कार्बोहाइड्रेट एवं 11% प्रोभूजन होता है। इस योग का परीक्षण होने पर लाभदायक परिणाम प्राप्त होने की सम्भावना है।

भोजन एवं पोषक तत्त्व

कुपोषण में पोषक तत्त्व की गणना का अत्यन्त महत्त्व है। खाद्य पदार्थों, फलों एवं शाक वर्ग की ऊर्जा एवं प्रोभूजन की गणना अध्याय 9 में प्रस्तुत की गयी है। प्रसंगवश यहाँ पर कुछ विशिष्ट खाद्य पदार्थों का विवरण दिया जा रहा है—

मांसवर्ग

मांसवर्ग (प्रति 100 ग्राम)	कैलोरी	प्रोभूजन	वसा
बकरा	150	21.4 ग्राम	3.6 ग्राम
मत्स्य	135	20.0 ग्राम	2.2 ग्राम
अण्डा (उबला हुआ)	75	7.0 ग्राम	7 ग्राम

घृतवर्ग

घृतवर्ग/100 ग्राम	ऊर्जा/कैलोरी
देशी घी	870
मक्खन	720
चीज (Cheese)	398

Scanned with CamScanner

कुछ प्रचलित खाद्य पदार्थों द्वारा प्राप्त ऊर्जा

1 चपाती (बिना चुपड़ी)	90 कैलोरी
1 पूड़ी	110 कैलोरी
1 पराठा	160 कैलोरी
1 ब्रेड स्लाइस	85 कैलोरी
1 कप चावल	180 कैलोरी
1 कप खिचड़ी	200 कैलोरी
1 कप सादी दाल (बिना तड़का लगाई हुई)	100 कैलोरी
1 कप रसेदार सब्जी (शाकाहारी)	170 कैलोरी
1 कप सूखी सब्जी (शाकाहारी)	150 कैलोरी
1 गिलास मीठी लस्सी	150 कैलोरी
1 कप पोहा	270 कैलोरी
100 मि.ली. दही (गाय का)	70 कैलोरी
100 मि.ली. दही (भैंस का)	110 कैलोरी

उपरोक्त विवरण को दृष्टिगत रखते हुए आयुर्वेद में वर्णित रोगों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्न तालिका प्रस्तुत की जा सकती है—

1. बालशोष . : क्वाशिआरकर
2. क्षीरज फक्क : मैरिस्मिक क्वाशिआरकर
3. गर्भज फक्क या पारिगर्भिक : मैरास्मस
4. व्याधिज फक्क : प्रोटीन एनर्जी मालन्यूट्रीशन
5. कार्श्य : मैरास्मस या कुपोषण

आयुर्वेद के कुछ आधुनिक विद्वानों ने फक्करोग से रिकेट को ग्रहण किया है जो उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उनकी धारणा **'बालः संवत्सरा(पन्नः) पादाभ्यां यो न गच्छति'** पर आधारित है। परन्तु उन्होंने 'फक्कति नीचैर्गच्छति इति फक्कः' पर ध्यान नहीं दिया। दूसरा तथ्य यह है कि क्षीरज फक्क का निदान श्लैष्मिक दुग्ध ही बालशोष का भी कारण है। बालशोष के लक्षणों को ध्यान में रखने पर 'तत्क्षीरपो बहुव्याधि' का विश्लेषण हो जाता है। अरुचि, ज्वर, शोष एवं स्निग्धशुक्ल मुख एवं नेत्र लक्षण के आधार पर एवं विकृत दूध के पीने पर होने वाली व्याधि बालशोष का वर्णन क्वाशिआरकर के अधिक सन्निकट है तथा क्षीरज फक्क के लक्षण कार्श्य को भी ध्यान में रखने पर यह मैरास्मिक क्वाशिआरकर के नजदीक प्रतीत होता है।

दूध की कमी जन्य गर्भज फक्क या पारिगर्भिक रोग स्पष्ट रूप से मैरास्मस के निकट है।

दीर्घकालीन व्याधिजन्य या अनाथ शिशु का धीरे-धीरे स्वास्थ्य कुपोषण के कारण गिरता है। उसमें मिश्रित लक्षण होते हैं। अतः उसके अन्तर्गत व्याधिसमूह PEM को दृष्टिगत रखना उपयुक्त होगा।

चिकित्सा में घृत, मांसरस एवं क्षीर का प्रयोग भी उच्च कैलोरी एवं प्रोटीन वर्ग की आहार-व्यवस्था इसे कुपोषण समस्याजन्य व्याधि मानने को बाध्य करती है।

कुपोषण में प्रयोज्य आयुर्वेदिक औषधि योग

सामान्य रूप से आयुर्वेद में वर्णित, जीवनीय, बल्य, बृंहणीय एवं पुष्टिकारक आदि औषधियों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु यहाँ पर कुछ ऐसे योगों का संग्रह दिया जा रहा है जो आधुनिक दृष्टि से भी ग्राह्य है—

(1) विदारीकन्दादि चूर्ण

'विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्।
खादेयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्' ॥ (वंगसेन 70:135)

विदारीकन्द, गोधूम तथा यव चूर्ण घृत में भूनकर, दूध में मिलाकर, मधु एवं शर्करा के साथ देवें।

(2) शाल्य अवलेह

'शालीनां षष्टिकानां वा पुराणानां विशेषतः।
तण्डुलैर्निस्तुषैर्भृष्टैः क्षालितैः साधिता द्रवाः ॥
सस्नेह लवणा लेह्या बालानां पुष्टिवर्धनाः।
गोधूमानां तथा चूर्णं यवानां वाऽपि सात्म्यताः' ॥ (का.स.जातक)

पुराना छिलका रहित भुने शालि एवं षष्टिक चावल को धोकर सिद्ध किये द्रव में स्नेह एवं लवण मिलाकर अवलेह बनायें। इनके सेवन से बालकों की पुष्टि एवं संवर्धन होता है। सात्म्य के अनुसार गेंहूँ या यव का प्रयोग कर सकते हैं।

(3) 'सिताघृताढयान्'.....। (अं.सं.उ. 1:65)

मिश्री एवं घृत मिलाकर चटायें। यह बालकों के लिए हितकर है।

(4) कालखण्ड महागुटिका

'कालखण्डादष्टपलं छागस्य वृषभस्य वा।
संस्कृत्य खण्डतां नीत्वा तिलतैलेन भर्जयेत् ॥
यद्येडस्य यकृन्मांसं गृहीतं तर्हि भर्जने।
केचित् तु घृतमिच्छन्ति तन्मांसोष्णत्वमारणात् ॥

Scanned with CamScanner

अथ द्विजीरकं द्रोण्यां त्रिवर्गं कटुरोहिणीम् ।
लशुनं मरिचं यष्टीं यवक्षारञ्च सिन्धुजम् ।।
दत्त्वा माषोन्मितैर्भागैः किञ्चिद् भृष्ट्वा पृथक्-पृथक् ।
चूर्णीकृत्याऽमिषैः सार्धं पिष्ट्वा दृषदि यत्नतः ।।
विदध्यान्माक्षिकं दत्त्वा गुटीर्धात्रीफलान्मिताः ।
एषा परिभवव्याधिं बालानां ग्रहणीगदम् ।।
तीक्ष्णाग्निं वह्निमान्द्यञ्च हत्वा नेत्रामयांस्तथा ।
सौख्यं समावहेन्नित्यं कालखण्डं महागुटी ।।'

(लंकाभैषज्यमणिमाला 251-256)

बकरे या बैल के यकृत् को 8 पल (320 ग्राम) लेकर साफ कर लें फिर इनके टुकड़े कर तिल-तैल में भूने। जब यह भलीप्रकार भुन जाय तो इसमें जीरा, कालाजीरा, अजमोदा, जायफल, लौंग, जावित्री, कुटकी, लहसुन, कालीमिर्च, मुलेठी, जवाखार एवं सेंधानमक—प्रत्येक 1-1 ग्राम लेकर इन्हें पृथक्-पृथक् हल्का भूनकर उपर्युक्त मांस के साथ खरल में अच्छी प्रकार से मर्दन कर लें और मधु के साथ आँवला के प्रमाण की गोलियाँ बना लें। यह योग परिभव (पारिगर्भिक) रोग, ग्रहणी, तीक्ष्णाग्नि, अग्निमांद्य तथा नेत्ररोगों में हितकर है।

(5) तालमखाना को अजादुग्ध में पकाकर देने से पारिगर्भिक रोग नष्ट होता है।

'.....वा बीजैरिक्षुरकस्य वा ।' (अ.सं.उ. 2:67)

(6) अन्न के साथ दुग्धपान भी पारिगर्भिक रोग का नाशक है।

'अन्नेनोपहितं स्तन्यं पिबतो विहितान् परम् ।
इमानेव गदान् कुर्यात् .....' ।। (अ.सं.उ. 2:66)

(7) लाजादि योग—बटेर के मांस को स्नेह एवं लवण छोड़कर अन्य पदार्थों से संस्कृत कर शर्करा के साथ पिलाने से लघंनजन्य रोग नष्ट होते हैं।

'अस्नेहलवणं पीत्वा संस्कृतं लावजं रसम् ।
सशर्करं विजयेत वालो लघंनजान् गदान्' ।। (अ.सं.उ. 2:60)

(8) मूँग की दाल का हलुवा अथवा लड्डू बनाकर प्रयोग कर सकते हैं। मूँग की दाल की पिट्टी, घृत में भूनकर शर्करा मिलाकर बिस्कुट बनाये जा सकते हैं।

कुपोषणजन्य विविध व्याधियाँ

इस अध्याय में वर्णित व्याधियों के अतिरिक्त प्रत्येक विटामिन्स की अल्पताजन्य व्याधियाँ भी होती हैं। जिनमें तीन व्याधियाँ औसतन अत्यधिक मिलती हैं। उनका विवरण भी सामान्य ज्ञानार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. विटामिन A अल्पताजन्य।

2. विटामिन B समूह अल्पताजन्य।
3. विटामिन D अल्पताजन्य।

विटामिन 'ए' की अल्पता

विटामिन 'ए' समुद्री मत्स्य के यकृत् तैल में, पशुस्नेह में; यथा—मक्खन; अण्डा, यकृत् एवं वृक्क में; गाजर एवं पीले फल; यथा—पपीता, आम आदि में पाया जाता है।

इसकी कमी से नेत्रकला की शुष्कता (Xerophthalmia) एवं रात्रिअन्धता का होना विशेष लक्षण हैं।

कारण

1. प्रायः इसकी कमी कुपोषण के साथ होती है।
2. इसकी अल्पता के कारण कुछ अन्य रोग भी होते हैं; यथा—अतिसार, जीर्ण अतिसार (Mal-absorption syndrome)। कुछ अग्न्याशय की व्याधियाँ; यथा—Fibro-cystic disease एवं यकृत् की कार्यक्षमता में कमी।

उपरोक्त सभी कारण विटामिन 'ए' के शोषण एवं चयापचय को विकृत कर अल्पता करते हैं।

लक्षण—इसके लक्षण निम्न दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—

(1) नेत्रगत लक्षण—सर्वप्रथम दृष्टिवर्णक (Rhodopsin) एवं दृष्टिरञ्जक (Visual purple) की कमी से रात्रि-अन्धता पैदा होती है। बच्चा रात में देख नहीं पाता, टटोलता है। परीक्षण के दौरान नेत्रकला शुष्कता (Xerosis) पहला लक्षण मिलता है। नेत्रकला के ऊपर शुष्कता, खरता, झुर्रियाँ एवं गन्दला भूरा वर्ण मिलता है। प्रायः यह परिवर्तन नासिका की ओर होता है एवं सम्पूर्ण कनीनिका को घेरे रहता है। फिर बाह्य किनारों पर प्रायः धब्बे (Bitot's spot) बनते हैं। यह धब्बा पतले, श्वेत-झागदार या ग्रीसी पदार्थ से ढका रहता है। लम्बे समय तक अल्पता रहने पर कृष्ण पटल पर विकृत Keratomalacia होने लगती है। अर्थात् व्रण होना, व्रण के भरने से श्वेतता का आना प्रारम्भ हो जाता है। इसमें प्रायः संक्रमण हो जाने से स्थिति भयावह हो जाती है। अन्त में Panopthalmitis सम्पूर्ण नेत्रशोथ सम्भव है।

(2) बहिर्गत लक्षण—

(क) शुष्क एवं छिल्के युक्त त्वचा विशेष रूप से हाथ-पैर आदि शरीर के बाह्य भाग पर (Toad Skin या Follicular Hyperkeratosis)।

(ख) जिह्वा-विकार (Hypertrophy)।

Scanned with CamScanner

(ग) संक्रमण अधिक होना—मूत्रसंस्थानगत, श्वसनसंस्थानगत, रोगप्रतिरोधक संस्थान आदि ।

(घ) शारीरिक विकार की गति अवरुद्ध होती है ।

(ङ) Pseudo tumor Cerebri

नेत्रगत मुख्य लक्षण
- रात्रि अन्धता
- शुष्कता (xerosis)
- धब्बा (Bitot's spot)
- keratomalacia
- सम्पूर्ण नेत्रशोथ

विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा जीवतिक्तीय A की अल्पता के कारण होनेवाले XEROPTHALMIA को निम्नवत् वर्गीकृत किया है—

(क) प्रारम्भिक लक्षण

X1A - Conjunctival xerosis
X1B - Bitot's Spots
X2 - Corneal Xerosis (<1/3 cornea)
X3A - Corneal Ulceration (<1/3 cornea)
X3B - Corneal Ulceration (>1/3 cornea)

(ख) विलम्बित लक्षण

XN - Night Blindness
XF - Fundal Changes
XS - Corneal Scarring

निदान—उपर्युक्त लक्षण एवं Dark Adaption Test.

रक्त में विटामिन A की मात्रा (50 से 100 IU सामान्य)

चिकित्सा—

1. लक्षण उत्पन्न शिशुओं में विटामिन A निम्न मात्रा में दें—
   - 6 माह से कम वय - 50,000 IU (3/4 मात्रा सूचीवेध से)
   - 6 माह 12 माह की वय - 1,00,000 IU (1/2 मात्रा सूचीवेध से)
   - 1 वर्ष से अधिक वय - 2,00,000 IU (1/2 मात्रा सूचीवेध से)

2. रोग से बचाव हेतु 1500 IU शिशुओं को तथा 4 वर्ष से बड़े बच्चों को 500 ई.यू. विटामिन 'ए' प्रतिदिन देना चाहिए जो सामान्य आहार से भी प्राप्य है।

3. पतला मल होने के बाद इसे अवश्य दें ।

4. यदि शुष्कता का प्रभाव कृष्ण पटल पर पड़ गया है तो नेत्रचिकित्सक की उचित सलाह भी आवश्यक है ।

सामान्य रूप से तुरन्त एण्टीबायोटिक ड्राप दिन में 3 बार डलवायें । नेत्र को स्वच्छ कार्पास वस्त्र से ढक कर रखें तथा Atropin 1% मलहम या ड्राप एक बार डालिए । तथा नेत्र चिकित्सक के पास भेज दें ।

विटामिन बी काम्पलेक्स की अल्पता

विटामिन	रोग या लक्षण उत्पत्ति	चिकित्सा	बचाव
$बी_1$ (Thiamine)	बेरी-बेरी व्याधि (पेरीफेरल न्यूराइटस, आक्षेप, मूर्च्छा, तन्द्रा, शोथ, वमन C.C.F.)	10 से 25 मि.ग्रा./दिन मुख या पेशी मार्ग से ।	बी काम्पलेक्स 1 से 2 मि. ग्रा./दिन
$बी_2$ (Riboflavin)	मुखपाक, पाण्डु, नेत्र-विकार ।	3 से 10 मि.ग्रा./दिन मुख से या 2 मि.ग्रा./दिन/ त्वग्गत् सूचीवेध ।	,,
$बी_6$ (Pyridoxin)	आक्षेप, वमन, अतिसार, मुखपाक, त्वक्शोथ ।	10 से 100 मि.ग्रा./ दिन, मुख से/या त्वग्गत सूचीवेध ।	,,
$बी_{12}$ (Cyanocobalamin)	पाण्डु (Megaloblastic), तन्त्रिकाओं में अर्ति, स्मृ, हाथ में कम्प आदि ।	100 मि.ग्रा./दिन, मुख से या त्वग्गत सूचीवेध ।	,,
निकोटिनाइड-	पेलाग्रा (अतिसार, त्वक्-शोथ, Dementia आदि)	50 से 300 मि.ग्रा./ दिन, मुख से या 25 से 100 मि. ग्रा.मांसगत सूचीवेध ।	,,

नोट—विस्तृत विवरण प्रथम खण्ड में देखना चाहिए ।

विटामिन 'डी' की अल्पता

विटामिन 'डी' की अल्पता से बच्चों की अति महत्त्वपूर्ण व्याधि रिकेट होती है । इसकी बहुतायतता को देखते हुए विस्तृत विवरण दिया जा रहा है । यह भी जान लेना आवश्यक है कि विटामिन 'डी' की अल्पता के अतिरिक्त भी कुछ कारण रिकेट के होते हैं । जिसमें से Fanconi Syndrome के रोगी भी प्राय: मिलते हैं, यह व्याधि वृक्क-विकार जन्य होती है । सभी का विवरण तो दे पाना यहाँ सम्भव नहीं है, परन्तु कुछ के नाम एवं उनमें परिवर्तनशील प्रयोगशालीय परीक्षण का अङ्कन नीचे की तालिका में दिया जा रहा है ।

Scanned with CamScanner

रिकेट का वर्गीकरण (निदान के आधार पर) एवं प्रयोगशालीय परीक्षण

	1	2	3	4	5
	वर्गीकरण	सीरम कैल्शियम लेवल (Serum Calcium Level)	सीरम फास्फोरस लेवल (Serum Phosphorus Level)	एल्कलाइन फास्फेटेज एक्टीविटी (Alkaline Phosphatase Activity)	मूत्र में अमीनो एसिड मात्रा (Urine Concentration of amino acid)
	सामान्य मात्रा	8.8 से 10.8 मि.ग्रा./डे.ली.	4.5 से 6.5 मि.ग्रा./डे.ली.	शिशु 50 से 155 यू./ली. कुमार 20 से 150 यू./ली.	
(क)	$डी_3$ विटामिन की अल्पता 1. विटामिन डी की अल्पता (अ) सूर्यप्रकाश की अल्पता (ब) भोजन में अल्पता (स) जन्मजात	सामान्य या ह्रास सामान्य या ह्रास सामान्य या ह्रास	ह्रास ह्रास ह्रास	वृद्धि वृद्धि वृद्धि	वृद्धि वृद्धि वृद्धि
	2. विटामिन डी का ठीक से शोषण न होना	सामान्य या ह्रास	ह्रास	वृद्धि	वृद्धि
	3. यकृत् विकार	सामान्य या ह्रास	ह्रास	वृद्धि	वृद्धि
	4. आक्षेपरोधी औषधि का प्रयोग	सामान्य या ह्रास	ह्रास	वृद्धि	वृद्धि
	5. वृक्क-विकार (Renal osteodystrophy)	सामान्य या ह्रास	वृद्धि	वृद्धि	अन्तर्हित
	6. विटामिन डी निर्भर वर्ग-1	ह्रास	*सामान्य या ह्रास*	वृद्धि	वृद्धि

	1	2	3	4	5
(ख)	प्राथमिक फास्फेट की अल्पता 1. जेनेटिक प्राथमिक हाइपोफास्फेटीमिया	सामान्य	ह्रास	वृद्धि	सामान्य
	2. फेन्कोनी (Fanconi) सिण्ड्रोम	सामान्य	ह्रास	वृद्धि	वृद्धि
	3. वृक्क-विकार (Renal tubular acidosis)	सामान्य	ह्रास	वृद्धि	सामान्य
	4. फास्फेट अल्पता या ठीक से शोषण न होना	सामान्य	ह्रास	वृद्धि	वृद्धि
(ग)	विटामिन डी निर्भर वर्ग-2 (महत्त्वपूर्ण वर्ग)	ह्रास	सामान्य या ह्रास	ह्रास	Phosphoethanamine की वृद्धि
(घ)	रिकेट सदृश सम्बद्ध अवस्थाएँ 1. हाइपोफास्फेटेरिया/Hypophosphataesia)	सामान्य	सामान्य	ह्रास	सामान्य
	2. Metaphyseal dystosis (क) Jansen type	वृद्धि	सामान्य	वृद्धि	
	(ख) Schmid type	सामान्य	सामान्य	सामान्य	

Scanned with CamScanner

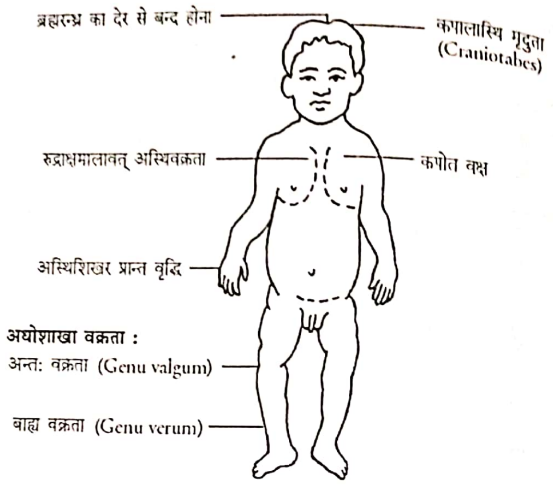

चित्र सं. 47 : कुपोषणजन्य रिकेट

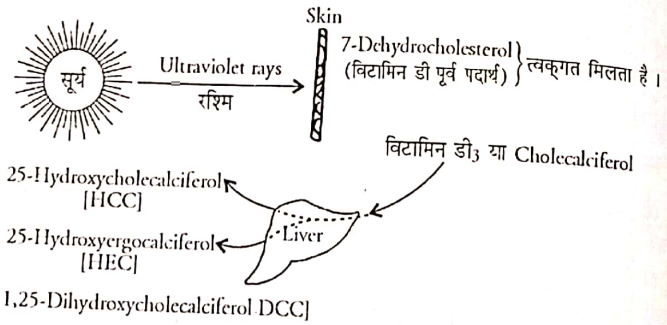

चित्र सं. 48 : सूर्य का प्रभाव एवं विटामिन डी की क्रियाशीलता

(क) 25 HCC एवं 25 HEC बाह्य कोशिकाद्रव में तथा अस्थि (Matrix) में कैल्शियम एवं फास्फोरस की सान्द्रता हेतु आवश्यक है।

(ख) 1-DCC आन्त्रभित्ति में उस प्रोभजन के निर्माण में सहायक होता है जो कैल्शियम का वहन करता है। उसे Calcium transport protein कहते हैं।

रिकेट के कारण

1. अत्यधिक वस्त्र धारण आदि सूर्य का प्रकाश शरीर पर न लगना।
2. विटामिन डी की भोज्य पदार्थ में अल्पता।

3. आन्त्र द्वारा ठीक से शोषण न होना।
4. भोजन में कैल्शियम एवं फास्फोरस की अल्पता।

लक्षण—रिकेट शारीरिक वृद्धि के श्रेष्ठ काल की व्याधि है। यह समय 6 माह से 24 माह वय का है। 3 माह से कम वय के शिशु में यह व्याधि नहीं देखी गयी है।

पूर्वरूप—निश्चित रूप से कह पाना कठिन है परन्तु उद्विग्नता, चिड़चिडापन एवं ललाट पर अत्यधिक स्वेद का होना विशेष कर सोते समय, प्रायः मिलता है।

शरीर के विभिन्न अङ्गों पर व्याधि का प्रभाव पड़ता है—

(1) सिर—सिर के अग्र एवं पश्च अस्थियों का ऊँचा हो जाना (Bossing), सिर का बड़ा होना, ब्रह्मरन्ध्र का बड़ा होना व देर से बन्द होना एवं कपालास्थिमृदुता (अस्थियाँ अँगूठे से दबाने पर टेबुल-टेनिस के गेंद जैसे दब जाती हैं)।

(2) दन्त—दाँतों का देर से निकलना, विकृत दन्तोत्पत्ति एवं कृमि दन्त।

(3) वक्ष—वक्ष के सामने के भाग पर मध्य के दोनों ओर पर्शुकाओं के सन्धि-स्थलों के फूलने से रुद्राक्ष माला जैसी बन जाती है। इसे Ricket Rosary कहते हैं। कपोतवत् वृक्ष का हो जाना।

(4) मेरुदण्ड—Scoliosis (मेरुदण्ड का पार्श्व में मुड़ना) Kyphosis (मेरुदण्ड का पीछे को मुड़ना)।

(5) शाखा—कलाई, घुटने आदि के अस्थिशिखर प्रान्तों की वृद्धि एवं पैरों का बाह्य या अन्तः वक्र होना, घुटनों का आपस में लड़ना (Knock knee), कभी-कभी अस्थिभग्न का होना।

(6) अन्य लक्षण=शारीरिक वृद्धि गति में ह्रास, पादतल का चपटा होना, उदर का बाहर निकला होना, यकृत् का सामान्य स्थान से च्युत होना। पेशियों एवं बन्धनों के मृदु होने के कारण शाखाएँ किसी भी दिशा में बाँस के समान मुड़ जाती हैं। विबन्ध तथा कभी-कभी आक्षेप (Tetany) आयोनाइज्ड कैलशियम की प्लाज्मा में कमी के कारण आते हैं। श्रोणि प्रदेश की विकृति एवं सँकरी श्रोणि (Contracted pelvis) भी सम्भव है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—

(अ) (i) Alkaline Phosphatase में वृद्धि।
(ii) प्रायः सामान्य सीरम कैल्शियम।
(iii) सीरम फासफोरस में अल्पता।
(iv) सीरम 25 HCC की अल्पता।

(ब) X-Ray परीक्षण—कलाई के X-Ray में Cupping, Flaring & Fraying रेडियस एवं अलना अस्थियों में मिलता है।

Scanned with CamScanner

चिकित्सा

इसकी विशेष चिकित्सा के अन्तर्गत एक बार में ही मुखमार्ग से या मांसगत सूची-वेध से विटामिन डी अत्यधिक मात्रा में दी जाती है। 6 लाख यूनिट की एकल मात्रा मांसगत सूचीवेध से देना चाहिए जिससे 5 दिन के अन्दर Serum Alkaline Phosphatase एवं फास्फोरस सामान्य हो जाय। X-ray परीक्षण में 10 से 14 दिन में स्वास्थ्य लाभ दिखता है। इसके साथ-साथ उचित मात्रा में कैल्शियम एवं फास्फोरस भी देना चाहिए तथा अगले माह में भी एक बार उपयुक्त मात्रा दुबारा दे देना चाहिए।

1500 से 2000 यूनिट विटामिन डी प्रतिदिन देकर भी उपर्युक्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद भी यदि सुधार नहीं दिखायी देता है तो Resistant vit D रिकेट की सम्भावना बनती है तो विटामिन D युक्त संतुलित आहार दें, तथा अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करें। आवश्यकतानुसार कैल्शियम एवं फास्फोरस का प्रयोग करें।

विटामिन डी के प्रयोग के साथ-साथ/अथवा अकेले, शृंगभस्म, मुक्ताशुक्तिभस्म, शुक्तिभस्म, सुधावटक अवलेह, कुक्कुटाण्ड त्वक् भस्म का प्रयोग मात्रानुसार कर सकते हैं।

अत्यधिक अस्थिवक्रता शल्य कर्म से ठीक होती है।

यदि उपर्युक्त चिकित्सा से लाभ न हो तो रिकेट के अन्य वर्गों पर विचार करना चाहिए। यथा—Resistant रिकेट (कुपोषण के कारण, वृक्कगत विकार) Fanconi's syndrome आदि।

विटामिन डी-निर्भर रिकेट

इसके अन्तर्गत 2 वर्ग आते हैं—

(क) पारिवारिक हाइपो फासफेटीमिया—यह व्याधि प्राय: X-linked dominant trait द्वारा होती है। प्राय: बालकों को तथा कभी-कभी बालिकाओं को यह व्याधि प्रभावित करती है।

बच्चा जन्म के समय सामान्य होता है। 6 माह की आयु के बाद विकासदर में विकृति आती है। अधोशाखा-विकृति (Genu : Varum या Valgum), Coxa-vera, (A decrease in the normal angle plus torsion of the neck.) आदि लक्षण मिलते हैं। कुपोषणजन्य रिकेट से तुलना की दृष्टि में वक्ष एवं सिर की अस्थियों में कम परिवर्तन होता है। रिकेट रोजरी नहीं बनती है। श्रोणि में भी परिवर्तन नहीं आता। प्राय: रोगी छोटे कद का होता हैं। दाँतों में विकृति आ जाती है।

चिकित्सा

विटामिन डी 50000 से 150000 यूनिट/दिन।
फास्फेट 0.5 से 1.5 ग्राम/दिन मुखमार्ग से।

ये मात्राएँ रिकेट से उत्पन्न लक्षणों के दूर होने तक देना चाहिए।

(ख) कृत्रिम विटामिन डी-अल्पता—इस व्याधि का पता 1961 में लगा है। यह व्याधि शिशु की सामान्य पूर्ण मात्रा विटामिन डी मिलने के बाद भी होती है। यह व्याधि प्राय: 3 माह से 12 माह की वय के मध्य होती है। परन्तु लक्षण बाद में भी मिल सकते हैं।

इस व्याधि में सीरम कैल्शियम एवं फास्फेट की मात्रा कम होती है। सीरम एल्कलाइन फास्फेट एक्टीविटी बढ़ी होती है।

चिकित्सा—विटामिन डी 10000 से 50000 यूनिट/दिन की मात्रा में देना चाहिए। यह मात्रा रोगी की अवस्थानुसार बदल सकती है। विटामिन D_3 0.5 से 1 माइक्रोग्राम प्रतिदिन की मात्रा में दे सकते हैं।

फैन्कोनी सिण्ड्रोम

[Fanconi Syndrome वृक्कमध्य-नलिकाओं (Proximal renal tubule) के बहुत से विकारों के साथ रिकेट]

जैसा कि सिण्ड्रोम के साथ पर्याय स्वरूप नाम वर्णित है। इसमें Renal tubules की कई विकृतियाँ होती हैं। परिणामस्वरूप सार्वदैहिक Aminoaciduria, वृक्कजन्य मूत्रशर्करा (Glycosuria) एवं Phosphaturia परिणामस्वरूप Hypophosphatemia का होना फैन्कोनी सिण्ड्रोम का लक्षण है।

यदि व्याधि का कारण जन्मजात Genetically transmitted inborn errors of metabolism के साथ-साथ कुछ अन्य बाद के विकार भी हैं जिसमें वातावरणजन्य विष भी कारण है; यथा—पारद, वङ्ग आदि एवं Tetracyclin औषधि। वस्तुत: व्याधि का कारण अज्ञात है।

यह व्याधि किसी भी वय में होकर कई वर्षों तक चल सकती है। लक्षण जीवन के प्रथम 6 माह में उत्पन्न हो जाते हैं। यथा—वमन, बहुमूत्रता, विबन्ध, बार-बार शरीर का कमजोर होना, ज्वर, जलाल्पता एवं चयापचयजन्य अम्लता (Acidosis) आदि।

एक्स-रे परीक्षण में रिकेट के लक्षण मिलते हैं। जबकि रोगी को पूर्ण मात्रा विटामिन डी की प्राप्त होती रहती है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—फास्फेट एवं पोटेशियम की अल्पता होती है। Fractional excretion of phosphate की वृद्धि हो जाती है। यदि रिकेट है तो Alkaline phosphatase भी बढ़ जाता है। सामान्य रक्तशर्करा होने पर भी मूत्र में शर्करा आती है। Aminoaciduria भी मिलता है।

चिकित्सा—लक्षणानुसार चिकित्सा करके खनिज एवं विशिष्ट द्रव्यों की पूर्ति करके रोगी की सुरक्षा की जा सकती है। साथ में रिकेट की चिकित्सा, अस्थिविकृति की चिकित्सा भी करनी चाहिए।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 10

दन्तरोग

दन्तोद्भव विकास-क्रम की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसको आयुर्वेद ने अत्यधिक महत्त्व दिय है। प्रस्तुत अध्याय में दाँतों से सम्बन्धित कुछ व्याधियों का वर्णन किया जा रहा है।

दन्तोद्भवकालीन व्याधियाँ

दन्तोद्भव का शारीरिक विकास, पोषण, रोग एवं शैशवकाल से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। सम्भवत: इसी कारण इस समय प्राय: होने वाली सभी व्याधियों का सम्बन्ध दन्तोद्भव से जोड़ दिया गया है।

'दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम्।
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम्॥
अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते।
पृष्ठभङ्गे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे॥
दन्तोद्भेदे च बालानां न हि किञ्चिन्न दूयते'॥ (अ.हृ.उ. 2:26-28)

अर्थात् दाँतों का निकलना सभी रोगों का कारण होता है। विशेषकर ज्वर, अतीसार, कास, वमन, शिर:शूल, अभिष्यन्द, पोथकी एवं विसर्प उत्पन्न होता है।

बिल्लियों के पीठ के टूटने पर, मोर में कलङ्गी निकलने पर एवं बालकों में दाँतों के निकलने पर सभी अङ्ग पीड़ित होते हैं।

कुछ विद्वानों ने वाग्भट के अष्टाङ्गसंग्रह के मत को अधिक महत्त्वपूर्ण कहा है, क्योंकि कारण के स्थान पर आयतन शब्द दिया गया है; यथा—

'दन्तोद्भेदश्च सर्वरोगायतनम्। विशेषेण तु तन्मूला ज्वरशिरोभितापतृष्णाभ्रमाभिष्यन्दकुकूणकपोथकीवमथुकासश्वासातिसारविसर्पाः'। (अ.सं.उ. 2:19)

बच्चों में दाँतों का निकलना सभी रोगों का आयतन है। विशेष रूप से ज्वर, शिर:शूल, तृष्णा, भ्रम, अभिष्यन्द, कुकूणक, पोथकी, वमन, कास, श्वास, अतिसार एवं विसर्प होता है।

इसके अतिरिक्त अष्टाङ्गहृदयकार, अष्टांगसंग्रहकार एवं योगरत्नाकरकार ने इसकी एवं होने वाली व्याधियों की विशेष चिकित्सा भी दी है—

सामान्य चिकित्सा—

1. बच्चों की दन्तपाली को पिप्पली के चूर्ण या धातकी पुष्प एवं आमलकी से बनाये चूर्ण में मधु मिलाकर रगड़े।

2. लावा (बटेर) एवं तीतर के शुष्क मांस के चूर्ण को मधु मिला कर पतला करके लगाने से बच्चों का मुख शीघ्र ही कमल-केसर की भाँति दन्तकेसर युक्त हो जाता है।

3. वच, कटेरी, बड़ी कटेरी, पाठा, कुटकी, अतीस, मोथा एवं जीवनीयगण से सिद्ध घृत दाँतों की उत्पत्ति में सिद्ध है।

4. कश्यप घृत—मञ्जिष्ठा, धातकीपुष्प, लोध्र, केवटी, मोथा, बला, अतिबला, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, कच्चा बिल्व, वनकार्पास—इन सबका क्वाथ घृत से चौगुना लेकर दूध एवं मस्तु के साथ सिद्ध कर दन्तोद्भवजन्य नाना प्रकार के रोगों में देने पर नाश करता है।[1]

5. धातकी पुष्प एवं पीपल के सम्मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर या आमलकी-स्वरस प्रतिसारण से दन्तपाली रोग नष्ट होता है।

6. श्वेतपुष्प सिन्धुवार के पूर्व दिशा की ओर का मूल लेकर बालक के गले में बाँधने से दाँत उत्पन्न होने के समय की पीड़ा नष्ट होती है।[2]

इस सामान्य चिकित्सा के अतिरिक्त रोग-विशेष की चिकित्सा का भी वर्णन किया गया है। विस्तार-भय से उसका सङ्केत मात्र किया जा रहा है।

(1) वातज ज्वर

'भद्रदारुघनं यष्टी समङ्गा ससितोपला।
वातज्वरपरीताङ्गा पिबेदन्तरपानकम्॥
सुराह्वघनयष्ट्याह्वपयस्यांशुमतीद्वयम्।
नागरं मरिचं भार्ङ्गी वृश्चिकाली शतावरी॥

1. दन्तपालीं समधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत्। पिप्पल्या धातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा॥
लावातित्तिरिविल्लूररज: पुष्परसद्रुतम्। द्रुतं करोति बालानां दन्तकेसरवन्मुखम्॥
वचाद्विबृहतीपाठकटुकाऽतिविषाघनै:। मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजन्मनि॥
समङ्गाधातकीरोध्रकुटन्नटबलाद्वयै: । महासहाक्षुद्रसहामुदगबिल्वशलाटुभि:॥
सकार्पासीफलैस्तोये साधितै: साधितं घृतम्। क्षीरमस्तुयुतं हन्ति शीघ्रं दन्तोद्भवोद्भवान्॥
विविधानामयानेतद् वृद्धकाश्यपनिर्मितम्॥ (अ.हृ.उ. 2:35-37,41-42)
(अ.सं.उ. 2:31, 43-44)

2. दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत्।
धातकीपुष्पपिप्पल्यो धात्रीफलरसेन वा॥
प्राचीगतं पाण्डुरसिन्दुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम्।
हितोति दन्तोद्भववेदनां च·····॥ (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 447)

Scanned with CamScanner

घृतं तत्क्वाथदुग्धाभ्यां सिद्धं हन्त्यनिलज्वरम् ।
बालस्य पानाभ्यङ्गाभ्यामेभिश्चोन्मर्दनं हितम् ।।
हरिद्राकुष्ठषट्ग्रन्थाशतपुष्पाहरेणुभिः ।
भाङ्ग्यैलासुषवीरास्नावर्षाभूनतसर्षपैः ।।
अक्षांशैः साम्बुसौवीरैर्मस्तुपिष्टैर्मरुज्ज्वरे ।
तैलप्रस्थं सुरामण्डतुल्यमभ्यञ्जनं पचेत्' ।। (अ.सं.उ. 32:34)

(2) कफज ज्वर

'मधुकव्योषषट्ग्रन्थाग्रन्थिकास्पृष्टरोदिकाः ।
क्षीराणां च प्रवालानि पाठा च विपचेत् घृतम् ।।
तत् पीतं समधु श्लेष्मज्वरघ्नं दीपनं परम् ।
रास्नैलानततक्कारीमधुशिग्रुसुराह्वयैः ।
सबिल्वकुष्ठवरणरेणुकामिसिभिः कृतः ।
श्लेष्मज्वरहरो लेपस्तैलमभ्यञ्जनं च तैः ।
मण्डलानि तु साज्येन गजमूत्रेण लेपयेत्' ।। (अ.सं.उ. 2:39-40)

(3) ज्वरातिसार

'लाजनीलोत्पलकणामधुकाञ्जनशर्करम् ।
पित्तज्वरमतीसारं मधु लीढ़ं निवर्तयेत् ।।
लाजद्विपिप्पलीक्वाथः शर्करामधुसंयुतः ।
पीतो ज्वरमतीसारं तृष्णा छर्दिं च नाशयेत् ।।
आमातिसारे रक्ते च कल्कितां गजपिप्पलीम् ।
पाययेच्छर्करोपेतां चूर्णं वा देवदारुजम्' ।। (अ.सं.उ. 2:35)

(4) तृष्णातिसार

'प्रियङ्ग्वञ्जनमुस्तानां चूर्णस्तण्डुलवारिणा ।
तृष्णातिसारवमथून् हन्ति पीतः समाक्षिकः ।।
पटोलनिम्बकुटजं सप्तपर्णं सदीप्यकम् ।
देवदारुविलङ्गानि सरलोमाक्षिकं घृतम् ।।
लीढज्वरमतीसारं कासं पाण्ड्वामयं वमिम् ।
हन्याच्च मातृकादोषान् रोगानन्यांश्च तद्विधान्' ।। (अ.सं.उ. 2:38)

(5) शिरोभिताप

'शिरोभितापे सघृतैः शिरः शीतैः प्रलेपयेत् ।
पत्रैः कपित्थचाङ्गेरीबदरीकाकमाचिजैः ।।
शिरोरुक्च्छर्द्यतीसारनाशनं मूर्धलेपनम् ।
गवादनीं दाडिमं च तृड्वान्कोष्णाम्भसा पिबेत्' ।। (अ.सं.उ. 2:36)

(6) नेत्ररोग

'कुर्यात् कूकूणपोत्थक्योर्यथोक्तं स्वं स्वमौषधम् ।
मनश्शिलाशङ्खनाभिः पिप्पल्यो मधुयष्टिका ।।
क्षौद्रेण घृष्टा गुलिका शिशोः सर्वाक्षिरोगजित् ।
पिप्पलीतण्डुलैर्मुल्गैः सुमनः कोरकैर्यवैः ।।
नीलोत्पलस्य पत्रैश्च श्रेष्ठा वर्तिः शतोन्मितैः' ।। (अ.सं.उ. 2:37)

(7) सर्वरोगनाशक

'रजनीदारुसरलश्रेयसी वृहतीद्वयम् ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ।।
ग्रहणी दीपनं श्रेष्ठं मारुतस्यानुलोमनम् ।
अतीसारज्वरश्वासकामिलापाण्डुकासजित् ।।
बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्णदम् ।
बिल्वपेशी गजकणाधातकी लोध्रवालकम् ।।
हन्ति लीढमतीसारं शिशोःक्षौद्रद्रुतं द्रुतम् ।
त्रिफला धातकीपुष्पपद्मबिल्वशलाटुभिः ।।
सकट्वङ्गैर्धृतं सिद्धमुदरामयनाशनम् ।
पथ्यासौवर्चलक्षारवेल्लव्योषाग्निहिङ्गुभिः ।।
तिक्तया च घृतं सिद्धं समक्षीरं व्यपोहति ।
शूलानाहगुदभ्रंशश्वासकासविलम्बिका' ।। (अ.सं.उ. 2:32-42)

(8) रसौषधि

'पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।
अजमोदायमानीभ्यां निशया मधुकेन च ।।
दारुदार्वीविडङ्गैलानागकेशरनीरदैः ।
शटीशृङ्गीविडैर्व्योम्ना शङ्खायोहेममाक्षिकैः ।।
विधाय पयसा पिष्टैर्वटिकावल्लसम्मिता ।
दन्तघर्षेऽभ्यवहृतौ योजयेच्च प्रयोगवित् ।।
प्रयोगादस्य दन्तानां त्वरयोद्गमतो गदाः ।
ज्वराक्षेपातिसाराद्या निवर्त्तन्ते न संशयः' ।।
(भै.र.बा.रो.चि. 123-126)

दन्तोद्भेदगदान्तक रस—पंचकोल, अजमोदा, यवानी, हरिद्रा, मधुयष्टि, देवदारु, दारुहरिद्रा, वायविडङ्ग, एला, नागकेशर, नागरमोथा, शटी, शृंगी, विडलवण, अभ्रक भस्म, शंखभस्म, लोहभस्म एवं स्वर्णमाक्षिक—प्रत्येक समभाग लेकर महीन चूर्ण

Scanned with CamScanner

बनायें। दूध से मर्दन कर वटिका का निर्माण करें। इस वटिका को जल में घिसकर मसूड़ों एवं दन्त पर घिसे। तथा मात्रानुसार आभ्यन्तर प्रयोग कराने से दाँत आसानी से निकलते हैं तथा दन्तोद्भेदजन्य रोग यथा—ज्वर, आक्षेप अतिसार आदि नहीं होते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रकरण देखने से स्पष्ट होता है कि दाँतों के निकलने का समय अतिमहत्त्वपूर्ण होता है तथा इस समय बच्चे पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यह एकदम स्पष्ट है कि दाँतों के निकलने के समय एवं रोगों का आपस में मात्र इतना सम्बन्ध है कि यदि शिशु पहले से कमजोर, अस्वस्थ एवं कुपोषित है तो इस समय उसे विभिन्न प्रकार के रोग होना सम्भव है, क्योंकि रोगप्रतिरोधक क्षमता और भी कम हो जाती है।

दूसरा सम्बन्ध यह है कि दाँतों के निकलते समय मसूड़ों पर शोथ होना स्वाभाविक है, जिससे कभी-कभी ज्वर आ सकता है। मसूड़ों पर शोथ एवं लालिमा के कारण बच्चे को मृदु कण्डु जैसा होता है जिसे मिटाने के लिए वह कोई भी कड़ी वस्तु मुँह में डालकर काटता है। उस वस्तु के द्वारा संक्रमण होकर ज्वर, कास एवं अतिसार हो सकता है।

परन्तु यदि स्वास्थ्य एवं पोषण अच्छा है और बच्चा निरोग है तो उसे दन्तोद्भव काल में कोई व्याधि नहीं होगी। अतः शास्त्रों में वर्णित 'सर्वरोगायतनम्' विशेष महत्त्व को मात्र इङ्गित करने के लिए है। क्योंकि आचार्य ने स्वयं कहा है कि—

'दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत्।
स्वयमप्युपशाम्यन्ति जातदन्तस्य यद्गदाः' ॥ (अ.हृ.उ. 2:43)

अर्थात् इस काल में बालकों को दूसरे ज्वर आदि रोगों की भाँति पथ्य भोजन आदि से बहुत अधिक नियन्त्रित न करें, क्योंकि दन्तोत्पत्ति के कारण हुए रोग दाँत निकलने पर स्वयमेव शान्त हो जाते हैं।

कृमिदन्त
(Dental Caries)

आजकल शिशुओं में कृमिदन्त की समस्या अत्यधिक पायी जाती है तथा इसकी वृद्धि भी तीव्रतम गति से हो रही है।

'कृष्णच्छिद्री चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः।
अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदन्तकः' ॥ (सु.नि. 16:29)

जो दाँत काले छिद्र वाला होता है, हिलता है एवं जिसमें स्राव, शोथ एवं अकारण तीव्रशूल होता हो उस वातिक रोग को कृमिदन्तक कहते हैं।

'समूलं दन्तमाश्रित्य दोषैरुल्बणमारुतैः।
शोषिते मज्जि सुषिरे दन्तेऽन्नमलपूरिते ॥

पूतित्वात्कृमयः सूक्ष्मा जायन्ते जायते ततः।
अहेतुतीव्रार्तिशमः ससंरम्भोऽसितश्चलः ॥
प्रलूनः पूयरक्तस्रुत् स चोक्तः कृमिदन्तकः'।

(अ.हृ.उ. 21:18-19)

मूल सहित दाँत का आश्रय लिये हुए वातप्रधान दोषों से, अन्नमल से भरे दाँत के खोखले में मज्जा का शोषण हो जाने पर सड़ने से सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते हैं। इसके पीछे अकारण वेदना होती है तथा अकारण ही शान्त हो जाती है। शोथ होता है, दाँत काला पड़ जाता है, हिलता है एवं कटा हुआ होता है। इसमें से पूय तथा रक्त बहता है। इसे कृमिदन्त कहते हैं।

कृमिदन्त व्याधि शैशवकाल (4 से 8 वर्ष) एवं यौवन काल (12 से 18 वर्ष) की व्याधि है। जब भोजन एवं मुख का स्वस्थवृत्त अनुचित होता है। उसी समय व्याधि का आक्रमण होता है।

कई परिस्थितियों का मिश्रित परिणाम कृमिदन्त होता है। व्याधि को प्रारम्भ करने वाला जीवाणु Streptococci होता है, जो कि अन्तिम परिणाम दाँतों में गड्ढों के रूप में स्पष्ट करता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया निम्नवत् है।

कृमिदन्त व्याधि की उत्पत्ति

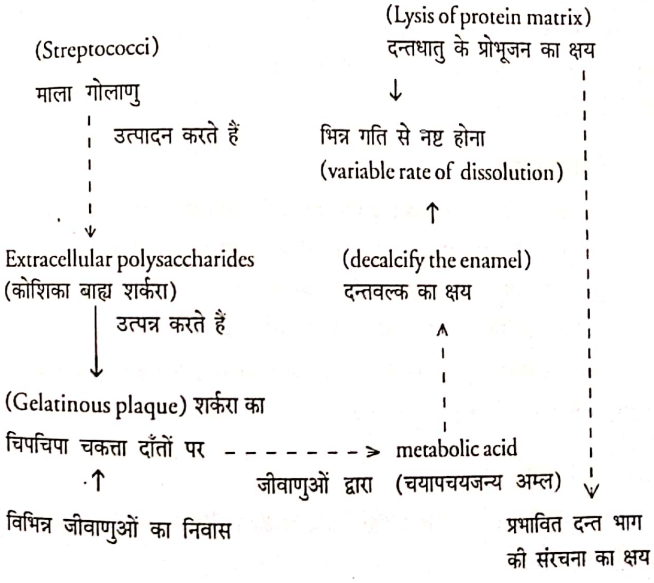

Scanned with CamScanner

उपरोक्त क्रम में क्षय की प्रक्रिया जब तन्त्रिकाप्रकोष्ठ तक पहुँच जाती है तो पीड़ा की तीव्र अनुभूति होती है। गड्ढे में फँसा भोजन इस पीड़ा की अनुभूति को बढ़ाता है। धीरे-धीरे क्षय की प्रक्रिया में वृद्धि पूयोत्पादक एवं दन्तविद्रधि की उत्पादक होती है।

चिकित्सा – कृमिदन्त में जो दाँत हिलता न हो उसमें स्वेदन करके विस्रावण साधनों से रक्त को निकाले। फिर स्निग्ध एवं वातनाशक द्रव्यों से आलेप, गण्डूष, नस्य एवं आहार बरतें। खोखले भाग को गुड़ या मोम से भरकर (तप्त शलाका से) जला दें। सतवन एवं अर्कदुग्ध से भरने पर कृमि एवं शूल नष्ट होता है।

'जयेद्विस्रावणः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम्।
स्निग्धैश्चालेपगण्डूषनस्याहारैश्चलापहैः ॥
गुडेन पूर्णं सुषिरं मधूच्छिष्टेन वा दहेत्।
सप्तच्छदार्ककक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित्' ॥ (अ.हृ.उ. 22:19-20)

सुश्रुत ने भद्रदार्वादि तथा पुनर्नवादि गण के लेप को भी कहा है—

'भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः' ॥ (सु.चि. 22:39)

कृमिदन्त में प्रयोगार्थ वर्णित कुछ शास्त्रीय योगों का सङ्केत यहाँ कर रहे हैं—

इरिमेदादि तैल (शा.सं.), खदिरादि तैल (सि.यो.सं.), लवङ्ग तैल, कर्पूरधारा एवं दशन संस्कार चूर्ण का मञ्जन (शुण्ठी, हरीतकी, मोथा, कपित्थ, कपूर, सुपारीभस्म, कालीमिर्च, लवङ्ग एवं दालचीनी समभाग का चूर्ण के बराबर खड़िया मिट्टी का चूर्ण, बृहत्यादि क्वाथ, स्वर्जिका योग (सि.भे.म.मा.), कासीसादि गुटिका (हराकासीस, तलाव-हिङ्गु, एलम एवं देवदारु का समभाग चूर्ण बना पानी में घोट कर गोली 1-1 माशा की बनायें।)

विशिष्ट प्रयोग

1. छतिवन एवं मदार का दूध दाँत पर लगाने से कृमि गिर पड़ते हैं।
2. इसी हेतु अनन्तमूल की पत्ती के कल्क का प्रयोग भी करते हैं।
3. काकजङ्घामूल का चर्वण इसीलिए कराते हैं।
4. हिङ्गु को गर्म कर दन्तछिद्र में भरना चाहिए।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी दन्त छिद्रों को साफ कर भर दिया जाता है। अन्यथा दाँतों को निकाल दिया जाता है।

रोधक-चिकित्सा

1. मुख की प्रातः एवं रात में सोते समय नियमित ठीक से सफाई, भोजनोपरान्त ठीक से स्वच्छता।

2. मुख के स्वस्थवृत्त का पालन।
3. फ्लोराइट का प्रयोग।
4. शर्करा, टाफी, स्नेकस आदि का कम प्रयोग।
5. समय-समय पर दाँत का परीक्षण एवं दन्तचिकित्सक की सलाह।

दन्तहर्ष

'शीतमुष्णं च दशनाः सहन्ते स्पर्शनं न च।
यस्य तं दन्तहर्षं तु व्याधिं विद्यात् समीरणात्' ॥ (सु.नि. 16:30)

जिसके दाँत शीत तथा उष्ण स्पर्श को या केवल स्पर्श को ही सहन नहीं कर सकते हों, उसे वातजन्य दन्तहर्ष रोग समझना चाहिए।

'दन्तहर्षे प्रवाताम्लशीतभक्षाक्षमा द्विजाः।
भवन्त्यम्लाशनेनेव सरुजाश्चलिता इव' ॥ (अ.हृ.उ. 21:12)

दन्तहर्ष में दाँत ठण्डी वायु, अम्ल पदार्थ, ठण्डी वस्तु एवं पेय के स्पर्श को सहन करने में अक्षम होते हैं। वृक्षाम्ल आदि खट्टे रस को खाये हुए की भाँति अनुभूति होती है। इनमें वेदना होती है तथा ये हिलते हैं।

'शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः।
तत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः' ॥ (भा.प्र. 66:68)

जिसमें ठण्डी एवं रूक्ष वस्तुओं को तथा वायु के झोके एवं खटाई को दाँत न सह सके वह वातपित्तज दन्तहर्ष रोग है।

वस्तुतः यह व्याधि दाँतों पर पाये जाने वाले Enamel का Erosion है।

चिकित्सा

'स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्निग्धं च भोजनम्।
रसो रसयवाग्वश्च क्षीरं सन्तानिका घृतम्।
शिरोबस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः' ॥ (सु.चि. 22:35)

स्नैहिक धूम, नस्य, स्निग्ध भोजन, मांसरस, मांसरस से सिद्ध यवागू, दूध, मलाई, घृत, शिरोबस्ति एवं वातनाशक सभी क्रियाएँ हितकर हैं।

'दन्तहर्षे तथा भेदे सर्वा वातहरा क्रिया।
तिलयष्टी मधुशृतं क्षीरं गण्डूषधारणम्' ॥

दन्तहर्ष एवं भेद में समस्त वातनाशक क्रियाएँ करें। तिल एवं मधुयष्टी से सिद्ध दूध का गण्डूष धारण करें।

Scanned with CamScanner

'स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य च ।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः' ।। (भा.प्र. 66:81)

स्नेहों का, निशोथ से पकाये घृत का तथा वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ का गरम-गरम कवल धारण करना चाहिए ।

उपरोक्त प्रकरण में बालक से कहीं भी दन्तहर्ष का सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ है। प्रथम खण्ड के अध्याय में कश्यप के मत का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

'पञ्चमे स्यन्दनाश्च प्रहर्षिणश्चामयवसुलाश्च' । (का.सू. 20, पृ. 13)

इसी प्रकरण को ध्यान में रख कर दन्तहर्ष का परिचय इस अध्याय में कराया गया है ।

दन्त शब्द

भैषज्यरत्नावली में दन्त शब्द या दाँत किटकिटाना को 'दन्तरोगाध्याय' में रखा गया है । वस्तुतः दन्तरोगों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

कृमिदन्त या दन्तोद्भवजन्य क्षोभ या दन्तशूल में यह लक्षण कभी-कभी दिखाई देते हैं । परन्तु प्रायः चिरकालीन अजीर्ण एवं उदरकृमि विशेष रूप से सूत्रकृमि एवं कञ्चुकसन्निभा (Ascaris) में यह लक्षण निदानार्थ प्रयोग होता है ।

कभी-कभी मस्तिष्क या मस्तिष्कावरण शोथ एवं यक्ष्माजन्य मस्तिष्कावरण शोथ में यह लक्षण मिलता है । वाग्भट ने इस विषय पर अपना निम्न मत दिया है—

'रूक्षाशिनो वातिकस्य चालयत्यनिलः शिराः ।
हन्वाश्रयाः प्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः' ।।
(अ.ह.उ. 2 पाठभेद में 61 के बाद)

रूक्ष भोजन करने वाले वातज प्रकृति बच्चे की शिराओं को हनु में आश्रित वायु चलाती है । इसलिए बच्चा सोते हुए दाँत कटकटाता है, दाँतों से शब्द होता है ।

चिकित्सा—रोग का निदान कर तदनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए । आजकल प्रायः इससे कृमिनिदान ही करते हैं । भैषज्यरत्नावली में इसकी विशेष चिकित्सा वर्णित है ।

'कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति ।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ।।
चरणौ कर्कटस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत् ।
घनताञ्च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात् ।।
दन्तानां कड्मडीं हन्ति सत्यं सत्यञ्च पार्वति ।

कृष्णवर्णाश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वेणिका ।
तां बद्ध्वा च गले दन्तकड्मडीं हन्ति मानवः'।।
(भै.र. 61:46-48)

केकड़े के पैरों से क्षीरसन्धान कर दुग्ध सिद्ध करके उससे घृत का यथाविधि पाक कर लें । बाद में इससे प्रतिदिन दन्तपङ्क्ति पर रगडते रहने से दन्तशब्दरोग नष्ट हो जाता है । या केकड़े के पैर को जल के साथ पीस कर दाँतों पर लेप लगाने से दन्तशब्द नष्ट हो जाता है ।

केकड़े के दो पैरों को पीस कर 10 तोले गोदुग्ध में डाल कर गाढ़ा होने तक पका कर सोते समय पैरों पर लेप लगाने से दाँतों का कड्मडी रोग नष्ट होता है ।

काले वर्ण के अश्व की पूँछ के 7 बाल तोड़कर उनकी चोटी बनाकर गले में बाँधने से दन्तकड्मडी रोग नष्ट हो जाता है ।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 11

अन्नवह स्रोतस् के विकार

शरीर के पोषक अंश की पूर्ति भोजन से होती है। जिसका ग्रहण पाचन एवं शोषण अन्नवह स्रोतस् करता है। इस स्रोतस् का कोई भी विकार भोजन के ग्रहण-पाचन या शोषण को प्रभावित कर सकता है। अत: उनका ज्ञान आवश्यक है। शैशवीय दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण व्याधियों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

मुखपाक

'लालास्रवणमत्यर्थं स्तनद्वेषारतिव्यथा: ।
पीतमुद्गिरति क्षीरं नासाश्वासी मुखामये' ।। (का.सू. 25:8)

मुखरोग में बालक के मुख से अत्यन्त लालास्राव होता है, दूध से द्वेष हो जाता है, उसे ग्लानि एवं व्यथा होती है। बालक पीये हुए दूध को उगल देता है तथा नासिका से श्वास लेता है। मुखामय के यही लक्षण हैं।

मुखामय को सुश्रुत ने सर्वसर रोग के नाम से वर्णित किया है तथा वाग्भट ने मुखपाक के नाम से वर्णित किया है। यह वर्णन बाल-वृद्ध सभी के लिए है। परन्तु कश्यप ने शिशुओं में विशेष लक्षण वर्णित किये हैं।

विभिन्न व्याधियों के लक्षणों में मुखपाक लक्षण रूप भी वर्णित है। यथा—

1. बालग्रह—शकुनि ग्रह, रेवती ग्रह।
2. क्षीरजन्य—क्षीरालसक।
3. विविध रोग—चर्मदल, ज्वर आदि।

सुश्रुतोक्त सर्वसर रोग की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

'सर्वस्मिन् मुखे ये भवन्ति ते सर्वसरा: ।
सर्वमुखेऽस्मिन् सरतीति सर्वसर:' ।। (शाङ्गर्धर पर आढमल्ल टीका)

अर्थात् सम्पूर्ण मुख में व्याप्त होकर होने वाले रोगों को सर्वसर रोग कहा जाता है। इसे आधुनिक भाषा में Stomatitis कहते हैं।

विभिन्न आचार्यों ने इसका भिन्न-भिन्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यथा—सुश्रुत ने 3, वाग्भट ने 5 एवं शाङ्गर्धर ने 8 भेद बतलाये हैं। इसे वहीं देखना चाहिए। यहाँ सामान्य ज्ञानार्थ सुश्रुतोक्त भेद एवं लक्षण प्रस्तुत है—

'स्फोटै: सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याचितं सर्वसर: स वातात् ।।
रक्तै: सदाहैस्तनुभि: सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात् ।।
कण्डूयुतैरल्परुजै: सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन ।।
रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित् प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञ:' ।।
(सु.नि. 16:65-66)

जिस रोगी का पूरा मुख पीड़ायुक्त स्फोट से भर जाता है वह वातज सर्वसर रोग है। पैत्तिक सर्वसर में मुख दाहयुक्त लाल एवं पीत वर्ण के स्फोट से व्याप्त हो जाता है। जिस रोगी का पूरा मुख कण्डूयुक्त, अल्परुजादायक तथा समान वर्ण के स्फोटों से व्याप्त हो जाता है वह कफज सर्वसर रोग है। रक्त की विकृति से पृथक् रोग न होकर पैत्तिक सर्वसर रोग में वर्णित लक्षण होते हैं। वही मुखपाकसंज्ञक सर्वसर रोग है। इससे प्रतीत होता है कि सुश्रुत ने रक्तज या पित्तज सर्वसर रोग को मुखपाक माना है।

मुखपाक (Stomatitis)—मुखगुहा की श्लैष्मिक कला में हल्के से लेकर गम्भीर वर्ग के शोथ-व्रण का होना ही प्रमुख लक्षण है। इसके कई भेद हैं; यथा—

(1) प्रसेकीय मुखपाक (Catarrhal stomatitis)—यह हल्का स्वरूप है। मुख में कहीं-कहीं धब्बे के रूप में हल्की लालिमा एवं शोथ हो जाता है। ऐसा हिलते दाँतों, गन्दे दाँतों के कारण, घ्राण एवं गले के प्रसेक (Catarrh) के कारण एवं औषधि-जन्य (Tetracyclin, Penicillin का लम्बे समय तक प्रयोग) से होता है।

चिकित्सा के लिए Hydrogen peroxide या Glyc. thymol के तनु घोल से मुखगुहा का प्रक्षालन करायें।

(2) सव्रण मुखपाक—यह दन्तोलूखल शोथ(Gingivitis)जन्य अवस्था है। उसी की चिकित्सा लाभकर होती है।

(3) क्षुद्रस्फोटी मुखपाक (Herpetic stomatitis)—यह विषाणुजन्य रोग है। इसमें क्षुद्र एवं सशूल स्फोट बन जाते हैं। कभी-कभी इनमें रक्त भी आ जाता है।

इसकी चिकित्सा में निम्न घोल का लेप करते हैं—

(क) Gentian violet का 1% का घोल

या

(ख) Aureomycin hydrochloride 1%

ग्लिसरीन, जल—समभाग मिलाकर इसका घोल प्रयोग करते हैं।

(4) विस्फोटी मुखपाक (Apthous stomatitis) यह प्राय: युवा महिला वर्ग में होता है।

Scanned with CamScanner

(5) कीटाणुजन्य मुखपाक (Parasitic thrush)—बच्चों में इसका स्वरूप प्रातः बोतलपायी में देखने को मिलता है। यह प्रायः गाल के अन्दर या जिह्वा के किनारों पर प्रारम्भ होता है। परन्तु ओष्ठ, मुखगुहा एवं गले तक भी फैल सकता है। इसमें मुख में श्लैष्मिक कला पर श्वेत धब्बे 'खमीर' की भाँति दिखायी देते हैं। उन्हें साफ करने पर लाल रङ्ग का क्षेत्र दिखायी पड़ता है।

यह समस्या उन नवजात शिशुओं में देखने को मिलती है जिनकी माता योनिगत Moniliasis से पीड़ित होती है या नवजात शिशु-परिचर्या कक्ष में लम्बे काल तक रहने पर या कुपोषणजन्य या लम्बे समय तक जीवाणुरोधी औषधि का प्रयोग करते हैं।

Thrush के हो जाने पर दूध पीने में कठिनाई होती है, श्वास लेने में कठिनाई (Pneumonia) एवं उत्फुल्लिका हो सकती है।

चिकित्सा में स्थानीय लेप करते हैं—

1. Gentian violet 0.25 से 0.5% का घोल या—
2. Nystatin 1 लाख से 2 लाख यूनिट/एम.एल. का घोल।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी बहुत-सी अवस्थाएँ हैं जिसमें मुखपाक होता है। यथा—

1. कोथीय मुखपाक (Gangrenous)।
2. मसूरिका, खसरा, रोमान्तिका जन्य।
3. औषधिजन्य।
4. Lupus erythematosus.
5. Purpuric lesion.
6. संक्रमण - Pemphigus vulgaris आदि।
7. मुख में उपदंश व्रण आदि।

चिकित्सा—वाग्भट ने इसकी चिकित्सा में कहा है—

'मुखपाकेषु सक्षौद्राः प्रयोज्या मुखधावनाः।
क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः॥
निष्ठेव्या भक्षयित्वा वा कुठेरादिर्गणोऽथवा'॥ (अ.ह.उ. 2:73-74)

मुखपाक में मधु के साथ प्रक्षालन करें। प्रक्षालन में त्रिफला, पाठा, द्राक्षा एवं चमेली के कोमल पत्तों का क्वाथ प्रयोग करें। या हरीतकीवर्गोक्त कुठेरादि गण[1] को चबा कर थूकना चाहिए।

वातजन्य में पिप्पली, नमक एवं ऐला से प्रतिसारण करें। वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध तैल, कवल एवं नस्य लें। पित्तज एवं रक्तज में पित्त-रक्तनाशक एवं कफज मुखपाक

1. कुठेरशिग्रुसुरसंसुमुखासुरिभूस्तृणम्।
फणिज्जार्जकजम्बीरप्रभृति ग्राहि शालनम्॥ (अ.ह.सू. 6:106)

में कफनाशक विधि का प्रयोग करें। कठिन एवं स्थिर पिटिकाओं में सागौन पत्र से लेखन करें।[1]

'सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च।
संस्रविणि मुखे सस्तो धावनार्थं शिशोः सदा'॥

सारिवा, तिल, लोध्र एवं मधुयष्टी के क्वाथ से मुखस्राव में प्रक्षालन करायें।

'मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयो रसः।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम्'॥

बालकों के मुखपाक में आमसार का चूर्ण, लौहभस्म, गैरिक, मधु एवं रसौत मिलाकर लगायें।

'दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रस्तु धावनम्।
अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्'॥ (यो.र.बा.चि.पृ. 446)

दारुहरिद्रा, यष्टीमधु, हरीतकी तथा चमेलीपत्र के क्वाथ में मधु मिलाकर मुख-धावन करें एवं पीपल की छाल एवं उसी के पत्र का चूर्ण मधु में मिलाकर मुखपाक में लेप करें।

इसके अतिरिक्त बालकों को पुष्टिकारक आहार दें। जीवतिक्तिय बी एवं सी का प्रयोग करें। टङ्कणभस्म एवं मधु का मुख में लेप करें। लौहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्ण-माक्षिक भस्म, मुक्ता या प्रवाल का आभ्यन्तर प्रयोग करना चाहिए।

अजीर्ण

'न जीर्यति सुखेनान्नं विकारान् कुरुतेऽपि च।
तदजीर्णमिति प्राहुस्तन्मूला विविधा रुजः'॥ (गणनाथसेन)

अन्न का सुखपूर्वक पाचन न होना ही अजीर्ण कहलाता है। इसके कारण अनेक प्रकार की व्याधियों की उत्पत्ति होती है।

अजीर्ण का मूल अग्निमान्द्य है। अग्निमान्द्य होने से भोजन का परिपाक नहीं होता है। भोजन की अपरिपक्वावस्था का ही दूसरा नाम अजीर्ण है। विसूचिका, अलसक आदि रोग भी अजीर्ण से पैदा होते हैं। साधारणतया अजीर्ण को पाचनाभाव (Indigestion) कह सकते हैं। यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है। फिर भी अनेक रोगों का प्रमुख कारण होने से आचार्यों ने इसे अलग से वर्णित किया है।

आचार्य माधव ने अजीर्ण का मूल कारण अतिभोजन माना है—

1. मुखपाकेऽनिलात् कृष्णापट्वेलाः प्रतिसारणम्।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः॥
पित्तास्रे पित्तरक्तघ्नः कफघ्नश्च कफे विधिः।
लिखेच्छाकादिपत्रैश्च पिटिकाः कठिनाः स्थिराः॥ (अ.ह.उ. 22:75-76)

Scanned with CamScanner

'अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि' ।। (मा.नि. 6:14)

जो असंयमी पशुओं के समान बिना प्रमाण के अधिक खाते हैं वे रोगसमूह के मूल अजीर्ण को प्राप्त होते हैं ।

'मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः' ।। (सु.सू. 46:504)

'अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका' ।। (सु.उ. 56:3)

मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुख में पानी आना, अङ्गसाद और भ्रम—ये अजीर्ण के उपद्रव हैं । अजीर्ण से मृत्यु भी सम्भव है । आमाजीर्ण, विष्टब्ध एवं विदग्धाजीर्ण से विसूचिका, अलसक तथा विलम्बिका की उत्पत्ति होती हैं ।

'आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ।।
अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्' ।। (मा.नि. 6:5-6)

कफ, पित्त एवं वायु के प्रकोप से क्रमशः आम, विदग्ध तथा विष्टब्ध नामक अजीर्ण होता है । कुछ विद्वान् चौथा रसशेषाजीर्ण भी स्वीकार करते हैं । कुछ विद्वान् पाँचवाँ एवं प्रतिदिन रहने वाले प्राकृत को छठा अजीर्ण मानते हैं ।

संक्षिप्त चिकित्सासूत्र—अजीर्ण की शान्ति अपतर्पण से होती है । अल्पदोष में लङ्घन, मध्यदोष में लङ्घन-पाचन एवं बहुदोष में शोधन करना चाहिए ।

1. आमाजीर्ण—1. लङ्घन करायें । 2. दोषाधिक्य में वमन करायें । 3. धनियाँ एवं शुण्ठी से पकाया जल दें ।

2. विदग्धाजीर्ण—1. वमन करायें । 2. दोष उत्कट न हों तो मात्र लङ्घन करायें। 3. ठण्डा जल पिलायें ।

3. विष्टब्धाजीर्ण—1. उदर पर पर्याप्त स्वेदन करें । 2. सैन्धव-मिश्रित गर्म जल पिलायें ।

4. रसशेषाजीर्ण—1. बिना कुछ खिलाये निवात स्थल पर सुलायें । 2. भूख लगने पर लघु भोजन दें ।

औषधि योग

चूर्ण—पाचन चूर्ण,[1] लवणभास्कर चूर्ण, शतपत्र्यादि चूर्ण (सि.यो.सं.), अग्निमुख चूर्ण, यमानीषड्यक, बालचातुर्भद्र चूर्ण आदि ।

1. पाचन चूर्ण—काला नमक, काली मिर्च, शुद्ध नरसार 1-1 भाग तथा शुद्ध हिङ्गु 1/16 भाग मिलाकर बनाते हैं ।

वटी—विडलवणादि वटी (सि.यो.सं.), महाशङ्खवटी, शङ्खवटी, हिंग्वादि वटी, लशुनादि वटी, बालवटी, सञ्जीवनी वटी, अर्कवटी आदि ।

रस—बालार्क रस, कुमारकल्याण रस, लघुक्रव्याद रस, बृहत्क्रव्याद रस, सर्वतोभद्र रस (र.सा.स.) आदि ।

आसव-अरिष्ट—अरविन्दासव, कर्पूरासव, कर्पूरधारा[1] आदि ।

वमन (छर्दि)

वमन या छर्दि कोई रोग न होकर विभिन्न रोगों का लक्षण मात्र है । क्षीरपायी शिशुओं में प्रारम्भ में दूध उगल देने की प्रवृत्ति होती है । यह व्याधि नहीं है वरन् दूध अधिक पिलाना, दूध पिलाते समय शिशु का पेट दबा होना, दूध के साथ-साथ पेट में हवा का जाना तथा दूध पीने के बाद पेट पर दबाव पड़ना भी कारण हो सकता है । इसे मात्र माता को दूध पिलाने की उचित विधि की सलाह देकर ठीक कर सकते हैं ।

परन्तु कभी-कभी वमन गम्भीर व्याधि का भी सङ्केत देता है ।

वय	सामान्य कारण	विशेष कारण
नवजात शिशु (प्रारम्भिक काल)	दूध के साथ हवा पीना, गर्भोदक पान, प्रसव-काल में रक्तपान आदि ।	संक्रमण (Septicemia), मस्तिष्क शोथ, गर्भाशयान्तर्गत संक्रमणजन्य मस्तिष्क शोथ, कर्णशोथ (Otitis), क्षीरालसक, अन्नवह-स्रोतस् में अवरोध, जन्म के समय शिरो-आघात, केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र के जन्मजात विकार, रक्तशर्करा में कमी (Hypogly-cemia) ।
नवजात शिशु (विलम्बित काल)	अनुचित दुग्धपान, अत्यधिक चिल्लाना ।	उपरोक्त संक्रमण, कुकुरकास, जन्मजात पाइलोरिक स्टेनोसिस, हियेटस हर्निया (Hiatus hernia), गोदुग्ध-असहिष्णुता, मधुमेह, Uremia, galactosemia आदि ।
बाल्यकाल	अतिभोजन, संरक्षक-शिशु के सम्बन्ध ठीक न होना Motion sickness, Cyclic vomiting.	यकृत्-विकार (Viral hepatitis), गल-शुण्डिका शोथ, मस्तिष्कावरण शोथ, उण्डुकशोथ, आंत्रावरोध, भोजन-विषमयता आदि उपरोक्त कारण ।

आयुर्वेद-संहिताओं में भी बहुत-सी शैशवीय व्याधियों में वमन लक्षण स्वरूप वर्णित है । यथा—

1. कपूरधारा—देशी कपूर, पुदीनासत्त्व, यवानीसत्त्व समभाग मिलाकर बनाते हैं ।

Scanned with CamScanner

क्षीरदोषज व्याधि	बालग्रह	अन्य व्याधियाँ
कफज दुग्ध दोष पारिगर्भिक रोग क्षीरालसक	स्कन्दग्रह पितृग्रह पूतना शीतपूतना अन्धपूतना	दन्तोद्भेदजन्य मृत्तिकाभक्षणजन्य तालुपात उल्वक रोग

इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेद एवं आधुनिक दोनों दृष्टिकोण से वमन (छर्दि) एक लक्षण है। परन्तु प्रभावी लक्षण होने के कारण अलग से वर्णित है।

चिकित्सा-सिद्धान्त

1. निदानपरिवर्जन वमन का कारण विचार कर उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए।
2. आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए।
3. वमन के कारण उत्पन्न शरीर में जलाल्पता को दूर करना चाहिए।
4. वमनरोधी औषधि का आवश्यकतानुरूप प्रयोग करना चाहिए।

चिकित्सा-योग

'मधुनाऽतिविषाशृङ्गीपिप्पलीर्लेहयेच्छिशुम्।
एकां वाऽतिविषां कासज्वरच्छर्दिरुपद्रुतम्' ।। (अ.ह.उ. 2:57)

अतिविषा, काकड़ाशृङ्गी तथा पिप्पली का चूर्ण मधु के साथ बच्चे को चटायें। या केवल अतीस को मधु से चटाने पर कास, ज्वर एवं वमन से पीड़ित शिशु को चटायें।

'पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ।।
पिप्पलीपञ्चलवणं कृमिजित्पारिभद्रकम्।
तद्वल्लिह्यात्तथा व्योषं मषीं वा रोमचर्मणाम् ।।
लाभतः शल्यकश्वाविद्गोधर्क्षशिखिजन्मनाम्।
खदिरार्जुनतालीसकुष्ठचन्दनजे रसे।
सक्षीरं साधितं सर्पिर्वमथुं विनियच्छति' ।। (अ.ह.उ. 2:58-61)

जो शिशु पिये हुए दूध को बार-बार वमन कर देता है, उसे कटेरीद्वय के फलों के स्वरस के साथ पञ्चकोल चूर्ण को मधु एवं घृत के साथ देना चाहिए। पिप्पली, पाँचों नमक, वायविडङ्ग एवं पारिभद्र को मधु व घृत से चटायें। त्रिकटु को मधु व घृत से चटाये।

सेह, श्वाविद्, गोधा, रीछ और मोर—इनके रोम व चर्म जो मिल सके उनकी राख को मधु से चटायें।

खैर, अर्जुन, तालीस, कुष्ठ एवं चन्दन—इनके क्वाथ से सिद्ध दूध के साथ घृत वमन को बन्द करता है।

बालक यदि दूध का वमन करता हो तो आम की गुठली, धान का लावा एवं सैन्धव का चूर्ण शहद से देना चाहिए।

'आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्'।
(भा.प्र.म.ख. 71:165)

बालचातुर्भद्रावलेह—मुस्ता, पिप्पली, अतिविषा तथा काकड़ाशृङ्गी—इनका चूर्ण मधु से चटाने पर ज्वर, अतिसार, कास, श्वास एवं वमन दूर होता है।

'वनकृष्णाऽरुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्।
शिशुर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं वमिर्हरेत्' ।। (भा.प्र.म.ख. 71:151)

कुटकी चूर्ण मधु से चटाने पर हिक्का तथा वमन नष्ट होता है।

'चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्।
हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम्' ।।
(भा.प्र.म.ख. 71:163)

एलादि चूर्ण मधु के साथ, मयूरपिच्छ भस्म को मधु के साथ, झरबेर की गुठली की मज्जा व पिप्पली मधु व मिश्री के साथ चटाना चाहिए।

करञ्ज के बीज को हल्का भून कर टुकड़ा कर मुँह में रख कर सुपारी की तरह चूसने से भी वमन बन्द हो जाता है।

ग्रन्थों में छर्दिरिपुरस, छर्दान्तकरस, वृषभध्वजरस, पारदादि चूर्ण या रसेन्द्र का भी वर्णन वमन में प्रयोगार्थ वर्णित है।

वमन के कारणों का पता लगाने के साथ-साथ होनेवाले अन्य उपद्रव को भी ध्यान में रखें। जलाल्पता प्रमुख उपद्रव है, जिसकी व्यवस्था के साथ-साथ रक्तचाप, नाड़ी गति, श्वसन गति एवं आक्षेप का भी ध्यान रखें। इनकी व्यवस्था के साथ वमन का आवश्यक उपचार करें। Pyridoxin का प्रयोग अज्ञातकरणजन्य वमन में 50 मि.ग्रा. मांसगत सूचीवेध से कर सकते हैं। Domperidone 0.3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में मुख द्वारा/Promethazine 0.25 मि.ग्रा./कि.ग्रा. दिन मुख से या मांसगत सूचीवेध से प्रयोग कर सकते हैं।

अतिसार (बालातिसार)

गुदामार्ग से अधिक द्रवयुक्त मल का निकलना ही अतिसार है—

'गुदेन बहुद्रवसरणमतिसारः'।

Scanned with CamScanner

यही अतिसार जब बच्चों में होता है तो उसे बालातिसार कहते है । वस्तुत: 24 घण्टे में 3 बार या इससे अधिक बार पतला अथवा द्रववत् मलत्याग अतिसार की श्रेणी में आता है । पतला मल का तात्पर्य है कि जिस बर्तन में मल त्याग हो उसका स्वरूप धारण कर लें । स्तनपायी शिशुओं में लेई के समान कई बार मलत्याग सामान्य है जो अतिसार की श्रेणी मे नहीं आता । वस्तुत: बालातिसार शब्द आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहीं भी प्रयुक्त नहीं है । यह शब्द आधुनिक काल में Infantile diarrhoea के समकक्ष आयुर्वेद के विद्वानों ने बनाया है । परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आर्ष ग्रन्थों मे बालातिसार का वर्णन नहीं है । बालातिसार के विभिन्न कारणों का विस्तृत सन्दर्भ-ग्रन्थों में प्राप्त होता है । इस दृष्टि से हम अतिसार को दो भागों में बाँट सकते हैं—

1. सामान्य अतिसार ।
2. बालातिसार ।

सामान्य अतिसार का वर्णन प्रत्येक कायचिकित्सा के ग्रन्थ में उपलब्ध हैं । इसे निम्न वर्गों में विभाजित करते हैं—

(1) वातातिसार—अरुण, झागयुक्त, रूक्ष एवं आम मल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार पीड़ा एवं शब्द के साथ निकलता है ।[1]

(2) पैत्तिक अतिसार—इसमें मल पीला-नीला या कुछ रक्त वर्ण का आता है। रोगी को तृषा, मूर्च्छा, सवाङ्गदाह एवं गुदपाक होता है ।[2]

(3) कफज अतिसार—सफेद, गाढ़ा, कफयुक्त, दुर्गन्धित एवं शीतल मल का त्याग करता है । रोम खड़े हो जाते हैं ।[3]

(4) त्रिदोषज अतिसार—शूकर, वसा एवं मांस धोवनवत् तथा सर्व दोषों के रूपों से युक्त अतिसार को त्रिदोषज समझें । यह कृच्छ्रसाध्य होता है ।[4]

(5) रक्तातिसार—पैत्तिक अतिसार से पीड़ित रोगी जब पित्तवर्धक आहार का निरन्तर एवं अतिमात्रा में सेवन करता है तो भयंकर रक्तातिसार होता है ।[5]

(6) ज्वरातिसार—ज्वर एवं अतिसार का जो निदान पृथक्-पृथक् कहे गये हैं उन्हें मिलाकर ज्वरातिसार का निदान समझें ।[6]

1. अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहु: । शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥
2. पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।
3. शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्य:।
4. वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
   कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥
5. पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
   तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातिसार उल्बण: ॥
6. ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत् पृथक् पृथक् ।
   तत्स्याज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितं पुन: ॥ (मा.नि. 6, 9, 20-24)

(7) आगन्तुक अतिसार दो प्रकार के है—भय एवं शोक से उत्पन्न होने वाले। यह दोनों मानस भाव से सम्बद्ध हैं । इन दोनों के वही लक्षण है जो वातिक अतिसार के है ।[1] सुश्रुतसंहिता में मात्र शोकज को कह कर उसका अलग से लक्षण कहा है । (सु.उ. 40:14-15)

(8) आमातिसार—अन्न के न पचने के कारण प्रकुपित दोष कोष्ठ, रक्तादि धातु तथा मल को दूषित करके अनेक वर्णो से युक्त शूल युक्त मल बार-बार आमातिसार में निकालते हैं ।[2]

(9) पक्वातिसार—आममल के लक्षणों[3] से विपरीत लक्षण जिस मल में हों तथा रोगी के शरीर में हल्कापन हो तो पक्वमल का पक्वातिसार होता है ।[4]

इस प्रकार के अतिसार का वर्गीकरण सामान्यक्रम में देखने को प्राप्त होता है । बालातिसार के क्रम में हम निम्न प्रकार का विभाजन आयुर्वेद के दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर सकते हैं ।

क्षीरदोषजन्य	बालग्रह	व्याधिजन्य	अन्य कारणजन्य
1. पैत्तिक क्षीरदोष 2. त्रिदोषज क्षीरदोष-जन्य क्षीरालसक 3. वैवर्ण्य क्षीरदोष 4. पारिगर्भिक रोग	नैगमेष, पितृग्रह, शकुनिग्रह, पूतनाग्रह, शीतपूतना, अन्धपूतना, रेवतीग्रह, शुष्करेवतीग्रह	विभिन्न व्याधियों के उपद्रव स्वरूप; यथा—उत्फुल्लिका, कृमि तालुकण्टक आदि ।	मृत्तिकाभक्षणजन्य त्रास के कारण दन्तोद्भेदजन्य ।

इन समस्त अवस्थाओं का अध्ययन विभिन्न सम्बन्धित अध्याओं में हम कर सकते हैं । प्राय: इन्हीं सब अवस्थाओं का विस्तृत वर्गीकरण आधुनिक विज्ञान की पुस्तकों में प्राप्त होता है । इसकी तालिका भी नीचे प्रस्तुत की जा रही है—

1. आगन्तू द्वावतीसारौ मानसौ भयशोकजौ ।
   ततयोर्लक्षणं वायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥ (च.चि. 19:14)
2. आमाजीर्णोपद्रुता: क्षोभयन्त: कोष्ठं दोषा: सम्प्रदुष्टा: सभक्तम् ।
   नानावर्णं नैकश: सारयन्ति कृच्छ्राज्जन्तो: षष्ठमेनं वदन्ति ॥ (सु.उ. 40:16)
3. संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
   पुरीषं भृशदुर्गन्धि विच्छिन्नं चामसंज्ञकम् ॥
4. एतान्ये व तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य तु ।
   लाघवञ्च मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ (सु.उ. 40:17-18)

Scanned with CamScanner

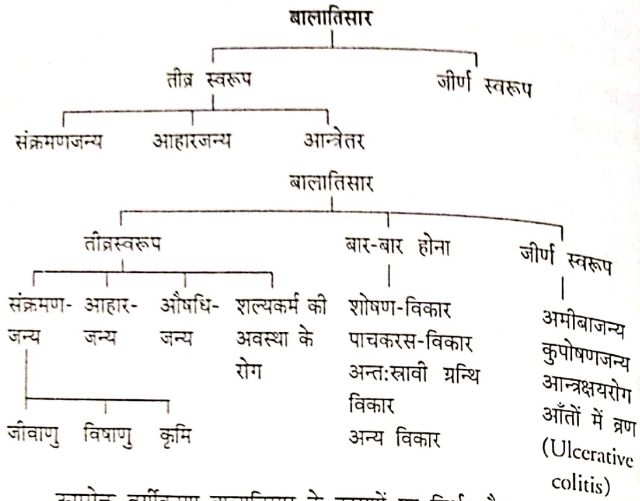

ऊपरोक्त वर्गीकरण बालातिसार के कारणों पर निर्भर है । इनका निदान मल परीक्षण के आधार पर कर सकते हैं । तीव्रता के आधार पर बालातिसार दो प्रकार का होता है—

(1) तीव्रस्वरूप का अतिसार—दिनभर में कई बार जलवत् मल का त्याग इस श्रेणी में आता है । साथ में वमन एवं ज्वर भी हो सकता है । अत्यधिक जल एवं खनिज लवण के निकल जाने के कारण इनकी अल्पता के लक्षण भी आ जाते हैं । यह प्राय: संक्रमण जन्य होता है ।

(2) जीर्णस्वरूप का अतिसार—जलवत् या रक्त मिश्रित लम्बे समय तक चलने वाला अतिसार इस श्रेणी में आता है । इस वर्ग में बालक के भार में अत्यधिक कमी आती है । यह प्राय: संक्रमणजन्य नहीं होता है ।

(1) जीवाणुजन्य (Bacterial)—

विब्रियो कालरा (Vibrio cholera)
शीगेला (Shigella)
ई. कोलाई (E. Coli)
सालमोनेला (Salmonella)
स्टैफिलोकोकस (Staphylococcus)
प्रोटियस (Proteus)
बी. एण्ट्रम (B. antrum)

ई. कोलाई का संक्रमण प्राय: माता का दूध पीने से नहीं होता । संक्रमण में मल दुर्गन्धित, हरे रङ्ग का एवं पानी के समान पतला होता है । मिचली, वमन, पतला मल,

उदर का फूलना एवं वायु के साथ मल त्याग सामान्य लक्षण है । प्राय: हरे वर्ण का मल (E.Coli) संक्रमण में होता है ।

(2) विषाणुजन्य (Viral)—

रोटा वाइरस (Rota virus)
इन्फ्लूएंजा (Influenza)
इण्ट्रोवाइरसेज (Enteroviruses)
मिजिल्स (Measles)
मम्पस (Mumps)
यकृत् शोथ (Infective hepatitis)
नवजात शिशु में अतिसार (Epidemic)

पानी के समान पतला मल, मात्रा में अत्यधिक (शीघ्र जलाल्पता के लक्षण उत्पन्न करने वाला), गन्धरहित तथा बार-बार तीव्रता से मलत्याग होता है । साथ में ज्वर, क्लान्ति, मुख, नेत्र एवं योनि की श्लैष्मिक कला में लालिमा (Congestion), वमन, हृल्लास एवं अरुचि प्रमुख लक्षण हैं ।

(3) कृमिजन्य—

आन्त्रकृमि (एस्केरिस, थ्रेडवर्म आदि)
जिआरडिया (Giardia)
अमीबा (Amoeba)

मल-परीक्षण से शीघ्र निदान सम्भव है ।

नोट—कभी-कभी सांस्थानिक संक्रमण; यथा—न्यूमोनिया, ब्रांकियोलाइटिस आदि में भी अतिसार होता है जो सम्भव है कि संक्रमण के कारण आन्त्र के कार्यों में व्यवधान से होता है ।

(4) आहारजन्य—

अति भोजन ।
उपवास ।
असहिष्णुता (Allergy) ।
भोजन-विषमयता (Food poisoning) ।
डाइसैकराइड (Disaccharidase) की अल्पता ।

उपवासजन्य अतिसार प्राय: बच्चों में देखने को मिलता है । मल में कोई गन्ध नहीं होती तथा गाढ़े हरे रंग का होता है । मल में छोटी-छोटी गुठली हो सकती है अथवा लेप या लेई जैसा मल त्याग, दूध पिलाने के तुरन्त बाद होता है । अन्य कोई सहायक लक्षण नहीं होता है ।

Scanned with CamScanner

(5) औषधिजन्य—
पारद (Hg), संक्रमणरोधी औषधि, PAS,Thyroid extract Ampicillin, Amoxicillin आदि।

(6) शल्यकर्मसाध्य कारण—
उण्डुक विद्रधि
Intussuception
Diverticulitis
बड़ी आन्त्र में बहुत-से अर्शाङ्कुर होना (Polyposis)।

(7) शोषणविकारजन्य (Malabsorption Syndromes)
कुपोषण
आन्त्र का राजयक्ष्मा
यकृत्-विकार (Cirrhosis)
कृमि (Giardiasis, Ulcerative colitis)
Sprue
Coeliac disease आदि।

शोषणविकारजन्य अतिसार में मल की मात्रा अधिक, वर्ण में श्वेताभ पीलापन या भूरापन, भोजन के तुरन्त बाद दुर्गन्धित मल त्याग होता है। अपचित भोजन का अंश भी मल में मिलता है। बच्चे के परीक्षण में श्वेताभ, Hypotonia, पतली शाखायें एवं उदर निकला हुआ मिलता है। भूख प्रायः अच्छी होती है। आन्त्र-राजयक्ष्मा में भूख नहीं लगती है।

(8) पाचकरसविकारजन्य—
Mucoviscodosis[1]
शर्करा-असहिष्णुताजन्य

(9) अन्तःस्रावी ग्रन्थिविकारजन्य—
Tetany
Hyperthyroidism

(10) अन्य कारण—
प्रोभूजन-असहिष्णुता
Familial dysautonomia.

सामान्य सम्प्राप्ति—वृद्ध जलीय धातु पाचकाग्नि को मन्द करके मल के साथ मिलकर वायु के द्वारा प्रेरित होकर अधोमार्ग से प्रचुर मात्रा में बाहर निकलता है। अतएव इस घोर व्याधि को अतिसार कहते हैं—

1. Mucoviscodosis जन्मजात वंशानुगत व्याधि है। अग्न्याशय (Pancreas), स्वेद-ग्रन्थि एवं श्लेष्मास्रावी ग्रन्थि का सामान्य विकार इसमें नहीं हो पाता है।

'संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति' ॥
(मा.नि. 3:4)

पूर्वरूप—हृदयप्रदेश, नाभि, गुदा, उदर तथा कुक्षि में सूचिकावेधनवत् पीड़ा का होना, अङ्गों की शिथिलता, अधोवायु का अवरोध, मलप्रवृत्ति का अभाव, आध्मान एवं भोजन का परिपाक न होना—

'हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि' ॥
(मा.नि. 3:5)

उपद्रव—अतिसार के उपद्रवों को भी दो भागों में बाँट सकते हैं—

1. तीव्र स्वरूप के अतिसारजन्य उपद्रव—
- जलाल्पता,
- खनिज लवण की अल्पता,
- शरीर की अम्ल में वृद्धि,
- तीव्र ज्वर,
- आध्मान (उदर का फूलना)
- हृल्लास एवं वमन,
- आक्षेप,
- यूरीमिया,
- गुदप्रदेश की त्वचा में दाह एवं व्रण होना।

2. बार-बार होने वाले अतिसार एवं जीर्ण स्वरूप के अतिसार के उपद्रव—
- बालक का ठीक से विकास न होना,
- कुपोषण एवं कुपोषणजन्य व्याधियाँ,
- रोगप्रतिरोधक क्षमता में कमी,
- गुदभ्रंश,
- मानसिक समस्याएँ।

उपरोक्त उपद्रवों में जलाल्पता, खनिज लवणों की कमी एवं शरीर में अम्ल की वृद्धि (Acidosis) महत्त्वपूर्ण उपद्रव हैं। इनका ज्ञान भी अत्यावश्यक हैं।

जलाल्पता
(Dehydration)

शरीर से हुए जल के क्षय के आधार पर जलाल्पता को 3 भागों में विभाजित किया गया है जिसके लिए WHO के निर्देश निम्नवत् हैं—

Scanned with CamScanner

लक्षण	जलाल्पता लक्षण विहीन	अल्प जलाल्पता लक्षणयुक्त	पूर्ण जलाल्पता लक्षणयुक्त
1. बालक की सामान्य अवस्था	स्वस्थ, चैतन्य	बेचैन, चिड़चिड़ा*	तन्द्रायुक्त या मूर्च्छित*
2. नेत्र	सामान्य	नेत्र धँसे (Sunken)	नेत्र धँसे हुए एवं शुष्क
3. अश्रु	उपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित
4. मुख एवं जिह्वा	गीला	शुष्क	अतिशुष्क
5. तृष्णा	सामान्य	बार-बार जल पीने की इच्छा*	कठिनाई से जल पीना, या पीने के अयोग्य अवस्था*
6. त्वचा	सामान्य	झुर्रियों का धीरे-धीरे सामान्य होना*	झुर्रियों का अति धीमी गति से सामान्य होना*
निर्णय	लक्षण विहीन	कम से कम दो लक्षण अवश्य उपस्थित होने चाहिए— 1. उपरोक्त में से कोई एक तारांकित लक्षण (*) 2. अन्य लक्षण	कम से कम दो लक्षण अवश्य उपस्थित होने चाहिए— 1. उपरोक्त में से कोई एक तारांकित (*) (2) अन्य लक्षण

खनिज लवणों की मात्रा में अनियमितता

इनके संक्षिप्त लक्षण यहाँ दिये जा रहे हैं। विस्तृत लक्षणों के लिए आगे बालग्रह अध्याय में पूतना, शीतपूतना एवं अन्धपूतना के साथ की तालिका देखिए।

(1) पोटेशियम-अल्पता—आन्त्रशैथिल्य (Paralytic ileus) के कारण पेट का फूलना, मानसिक क्रियाओं तथा पेशियों में शिथिलता होती है। प्रतिक्रियाओं में शिथिलता होती है। ई.सी.जी. में परिवर्तन मिलता है।

(2) पोटेशियम-आधिक्य—हृदय में Fibrillation, पेशियों का लकवा होता है। ई.सी.जी. में परिवर्तन मिलता है।

(3) कैल्शियम-अल्पता—Paralytic ileus होता है। Tetany होती है।

(4) कैल्शियम-आधिक्य—पेशीशैथिल्य एवं मलावरोध (कड़ा मल) होता है।

(5) मैग्नीशियम-अल्पता—पेशियों में ऐंठन (Twitching) एवं (Tetany) होती है।

(6) मैग्नीशियम-आधिक्य—प्रतिक्रियाओं (Reflex) में शिथिलता होती है। तन्त्रिकातन्त्र का अवसाद होता है।

(7) अम्ल-आधिक्य (Acidosis)—श्वसनगति तीव्र एवं गम्भीर होती है।

जलाल्पता एवं खनिज द्रव्यों के अल्पाधिक्य का कारण तथा प्रभाव

विवरण	जलाल्पता (Dehydration)			पोटेशियम अल्पता	पोटेशियम आधिक्य	कैल्शियम अल्पता	कैल्शियम आधिक्य	मैग्नीशियम अल्पता	मैग्नीशियम आधिक्य
	हाइपोटोनिक (1% रोगी)	हाइपरटोनिक (20% रोगी)	आइसोटोनिक (70% रोगी)						
1. अन्य अवशोषक स्रोतस् जन्य	अल्प ग्रहण करना, वमन, अतिसार, Enterocutaneous fistula, आमाशय-प्रक्षालन, अति बस्ति आदि	—	वमन, अतिसार आदि	उपवास, वमन, अतिसार, आमाशय-प्रक्षालन, Enterocutaneous fistula, रेचन औषधि, बस्ति आदि	—	—	—	उपवास, वमन, अतिसार, Fistula, आमाशय-प्रक्षालन, Sprue आदि	—
2. मूत्रवह संस्थान	मूत्रल औषधि	—	—	मूत्रल औषधि	रीनल फेल्योर, यथा—एक्यूट ट्युबुलर नेक्रोसिस, क्रानिक पाइलो या ग्लोमेरुलो नेफ्राइटिस	रीनल फेल्योर के साथ सीरम फास्फेट की वृद्धि	—	—	रीनल फेल्योर, बार-बार हीमोडायलिसिस आदि
3. अन्तःस्रावी ग्रन्थि-विकार	Addison's Disease, मधुमेह	Aldosteronism, बहुमूत्रता (Diabetes insipidus)	—	Aldosteronism, Cushing's syndrome	Addison's disease मधुमेह	Hypoparathyroidism	Hyperparathyriodism, Hyperthyroidism.	Hyperparathyroidism	—
4. त्वचा	अति स्वेद, दग्ध	—	—	दग्ध	—	—	—	—	—
5. चिकित्सा	—	सैलाइन, मैनीटाल	—	सैलाइन, कार्टीसोन, इन्सूलिन का डायबेटिक एसिडोसिसि में प्रयोग	संगृहीत रक्त का देना एवं पोटेशियम का सूचीवेध	—	विटामिन D का अधिक प्रयोग	—	—
6. अन्य	—	—	—	एल्कलोसिस	आघात (Crush injury)	रिकेट, आस्टियोमलेसिया	Sarcoidosis, Multiple myeloma, अज्ञात कारण	—	—
लक्षण —	अरुचि, जानु की पेशियों में ऐंठन, अंगमर्द	तृष्णा	—	क्षुधानाश	—	ऐंठन (Cramps) कम्प, आक्षेप, झटका आदि	थकावट, मलबन्ध, अतितृषा	झटका (Twitching)	—
बोध — 1. मानसिक	मूर्च्छा	अति उत्तेजना	निद्रालु	उदासीन, घबड़ाहट, Confusion	—	उदासीनता, घबड़ाहट, चित्तभ्रम (Delirium)	—	—	केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र की उदासीनता (Depression)
2. पेशी	—	—	—	पेशी-शैथिल्य Paralytic ileus, Reflexes घटना	Fibrillation, पक्षाघात	Reflexes बढ़ना, Tetany	नाड़ी Reflexes का घटना, अन्तः Hypotonia	Tetany	Reflexes का घटना
3. त्वचा तापवर्ण स्पर्श, Turgor	धूसर (Gray), ठण्डी, चिपचिपी, बहुत खराब	धूसर, ठण्डी/गर्म, मोटी, ठीक (Fair)	धूसर, ठण्डी, खराब (Poor)	—	—	—	—	—	—
4. शर्लैष्मिक कला	आर्द्र	झुलसी हुई जैसी	शुष्क	—	—	—	—	—	—
5. तालुरन्ध्र एवं नेत्रगोलक	सिकुड़े एवं मृदु	सिकुड़े	सिकुड़े एवं मुलायम	—	—	—	—	—	—
6. नाड़ीगति एवं हृदय ध्वनि	तीव्र +	तीव्र ++	तीव्र	तीव्र या कम, हृदय की ध्वनि ठीक से नहीं	तीव्र या कम, हृदय की ध्वनि ठीक से नहीं	—	—	—	—
7. रक्तचाप	अत्यधिक कम +++	कुछ कम ++	कम +	सुनायी देती है	सुनायी देती है				
सामान्य मात्रा	सीरम सोडियम, लेवल 130 mEq/L से कम हो जाय।	सीरम सोडियम लेवल 150 mEq/L से अधिक हो जाय।	सीरम सोडियम लेवल 130 से 150 mEq/L के मध्य हो।	सीरम पोटेशियम की सामान्य मात्रा 3.6 से 5.3 mEq/L		सीरम कैल्शियम की सामान्य मात्रा 4.5 से 5.7 mEq/L (9 से 11.4 mg/100 ml) की है।		सामान्य मात्रा 1.5 से 1.8 mEq/L की होती है।	

Scanned with CamScanner

(8) क्षार-आधिक्य (Alkalosis) Tetany होती है। श्वसनगति कम एवं श्वसन छिछला (Shallow) होता है।

चिकित्सा

एतदर्थ आयुर्वेद के कुछ प्रमुख चिकित्सा-सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

(1) निदान-परिवर्जन।

(2) तत्पश्चात् अतिसार की निराम व साम अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। सामावस्था में तीव्र संग्राही औषधियाँ देने से आध्मान आदि उपद्रव होते हैं। अत: पहले आम के लिए पाचन एवं दीपन औषधियों का सेवन करायें। यथा—सामावस्था में बालचातुर्भद्र, लवणभास्कर तथा आमकुठारादि रस आदि निरामावस्था में गंगाधर चूर्ण, कर्पूर रस आदि।

(3) आवश्यकतानुसार लघु संशोधन कर्म भी करना चाहिए। यथा—क्षीरालसक में वमन कराना।

(4) अहिफेनयुक्त औषधि का प्रयोग न करें या कम करें।

(5) पानक के रूप में पोषक यूषों का अधिक प्रयोग करें।

औषधियों का विवेचन

रावणकृत कुमारतन्त्र में कई औषधि योग वर्णित हैं—

'बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्वाथोऽवलेहो मधुना विमिश्रो बालेषु योज्यः कटिधारितेषु'[1] ॥114॥
(चक्रदत्त, बालरोग 31)
(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 441)

बिल्व, धातकी पुष्प, जलं (सुगन्धबाला), लोध्र, गजपीपल का क्वाथ या अवलेह बच्चों में कटि धारण हेतु (अतिसार नाश हेतु) प्रयोग करना चाहिए।

'काकोली गजकृष्णा च लोध्रमेषां समांशतः।
क्वाथो मध्यान्वितः पीतो बलातिसार[2]हन्मतः ॥115॥

काकोली, गजकृष्णा एवं लोध्र समभाग लेकर क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर पान कराने से बालक का अतिसार नष्ट होता है।

'लाजा सैन्धवमाम्रास्थिचूर्णमेषां समांशतः।
हन्ति छर्दिमतीसारं मधुना सह भक्षितम्' ॥116॥

लाजा (धान की खील), सैन्धव तथा आम्र की गुठली का चूर्ण समभाग लेकर मधु से चटाने पर छर्दि एवं अतिसार का नाश होता है।

---

1. पाठभेद—अतिसारेषु।
2. मेरे विचार से 'बालातिसार' पाठ होना चाहिए।

Scanned with CamScanner

योगरत्नाकर ने इन्हीं घटकों से केवल वमन में लाभ कहा है ।

'आम्रास्थिलाजसिन्थूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्' । (यो.र.बा.रो.पृ. 443)
'आम्रास्थिलाजसिन्थूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत्' ।
(चक्रदत्त बा.रो.चि. 28)
'आम्रबीजं तथा लोध्रं धात्रीफलरसं तथा ।
पीत्वा महिषतक्रेण बालातिसारनाशनम्' ।।117।।

आम्रबीज चूर्ण, लोध्र एवं धात्री के फल का रस (आमलकीरस) महिषतक्र से पान कराने पर बालातिसार का नाश होता है ।

'फलिन्यं जनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णाछर्दिमतीसारं बालानां तत्त्वतो हरेत्' ।।118।।

प्रियङ्गु, अञ्जन (रसौत) एवं मुस्ता चूर्ण मधु से पीने पर शिशु की तृषा, छर्दि एवं अतिसार का नाश होता है ।

'श्यामारसाञ्जनं चूतफलास्थिसमचूर्णितम् ।
हन्ति छर्दिमतीसारं बालानां मधुनाशितम्' ।।119।।

श्यामा, रसांजन, आम्रफलास्थिचूर्ण को मधु से देने पर शिशु के वमन एवं अतिसार का नाश होता है ।

'धातकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः ।
क्षौद्रेण बालानां ज्वरातिसारकं जयेत्'[1] ।।120।।
(चक्रदत्त बा.रो.23)

धातकी, बिल्व, धनियाँ, लोध्र, इन्द्रयव एवं बालक (सुगन्धबाला) का चूर्ण मधु से देने पर ज्वर, अतिसार (वमन) बालकों का ठीक हो जाता है ।

'लोध्रेण पिप्पली बालो बालकातिसृतौ हितः ।
श्रीरसो माक्षिकयुतो धातकीकुसुमैः समः' ।।121।।
(यो.र.बा.रो.चि. 441)

लोध्र एवं पिप्पलीकण का चूर्ण अथवा श्रीरस (सरलनिर्यास-गन्धाविरोजा) एवं धातकी पुष्प को शहद में मिलाकर चटाने से अतिसार का नाश होता है ।

'विडङ्गान्यजमोदा च पिप्पलीचूर्णकानि च ।
एषामालिह्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा ।।
आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक्' ।।122।।
(यो.र.बा.रो. 441)

1. पाठभेद—लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातिसारवान्तिनुत् ।

वायविडङ्ग, अजमोद एवं पिप्पलीचूर्ण समभाग लेकर (मधु के साथ) चटाकर सुखोष्ण जल का पान करायें । इससे शिशु का आमातिसार नष्ट होता है ।

'मोचरसं समङ्गा च धातकी पद्मकेसरम् ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी' ।।129।।
(चक्रदत्त बा.रो. 37; यो.र.बा.रो.चि.पृ. 441)

मोचरस, मञ्जिष्ठा, धातकी तथा कमलकेशर के कल्क से सिद्धयवागू के सेवन से रक्तातिसार में लाभ होता है ।

'नागरातिविषामुस्तावालकेन्द्रयवैः कृतम् ।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातिसारनाशनम् ।।130।।
(चक्रदत्त बा.रो. 33, यो.र.बा.रो.चि.पृ. 441)

शुण्ठी, अतिविषा, मुस्ता, बालक, इन्द्रयव के क्वाथ को पान कराने से बालक के सभी प्रकार के अतिसार नष्ट होते हैं ।

'लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीह्रीबेरमुस्तकम् ।
मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातिसारनाशनम्' ।।131।।
(यो.र.बा.चि. 442)

लोध्र, इन्द्रयव, धनियाँ, धात्री (आमलकी), हाऊबेर तथा मुस्तक को मधु के साथ लेहन कराने पर शिशु का ज्वरातिसार नष्ट होता है ।

'रजनी सरलो दारुबृहती गजपिप्पली ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ।।
दीपनी ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिं सकामलम् ।
ज्वरातिसारपाण्डुत्वं बालानां सर्वरोगनुत्' ।।132।।
(यो.र.बा.रो.चि. 442)

रजनी (हरिद्रा), सरल (चीड़), देवदारु, बृहती, गजपिप्पली, पृश्निपर्णी तथा शताह्वा (शतपुष्पा) समभाग लेकर चूर्ण बनाकर मधु-घृत से चटाने पर दीपन होता है । यह ग्रहणीरोगनाशक, वातरोग, कामला, ज्वरातिसार एवं पाण्डु आदि सभी बालकों के रोगों का नाश करता है ।

'ह्रीबेरशर्कराक्षौद्रं पीतं तण्डुलवारिणा ।
शिशो रक्तातिसारघ्नं कासश्वासवमिं हरेत्' ।।133।।

हाऊबेर, शर्करा एवं मधु में मिलाकर चावल के माँड़ से बच्चों को देने पर रक्तातिसार, कास, श्वास तथा वमन का नाश होता है ।

'यवानीकुटजारिष्टसप्तपर्णपटोलकैः ।
लेहश्छर्दिमतीसारं ज्वरं बालस्य नाशयेत्' ।।160।।

Scanned with CamScanner

यवानी, कुटज, निम्ब, सप्तपर्ण एवं पटोल का लेह बनाकर देने से बालक की छर्दि, अतिसार एवं ज्वर का नाश होता है ।

'तालानां जलमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णां छर्दिमतीसारं शिशूनामुद्धतं हरेत्' ।।163।।

ताड़ एवं जलमुस्ता का चूर्ण मधु से देने पर तृष्णा, छर्दि एवं अतिसार नष्ट होता है ।

'घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं वमिं हरेत्' ।।

(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 441)

नागरमोथा, पिप्पली, अतीस एवं काकड़ाशृङ्गी का समभाग चूर्ण लेकर मधु के साथ मिलाकर चटाने से उनका ज्वर, अतिसार या ज्वरातिसार, कास, श्वास एवं वमन नष्ट होता है । इसे भैषज्यरत्नावली में बालचातुर्भद्र कहा है । (भै.र. 71:39)

'समङ्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् ।
दुधरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम्' ।।

(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 441)

मञ्जिष्ठा या लज्जालू, धातकी, लोध्र एवं सारिवा को समभाग लेकर क्वाथ बनाकर मधु का प्रक्षेप देकर बालकों के भयङ्कर अतिसार में देना चाहिए ।

इनके अतिरिक्त विभिन्न ग्रन्थों में बालातिसारनाशक विशिष्ट योगों का वर्णन है।

चूर्ण—धातक्यादि चूर्ण, बालचातुर्भद्र चूर्ण, लवङ्गचतुःसम[1] तथा दाड़िमचतुःसम[2] (भै.र.) ।

क्वाथ—धातक्यादि क्वाथ (शा.सं.), कर्करादि क्वाथ (भै.र.) ।

घृत—चाङ्गेरी घृत (च.द.) ।

1. जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितञ्च ।
जीरञ्च टङ्कणयुतं चरकैः प्रयुक्तम् ।।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा ।
सामातिसारमखिलं गुरु हन्ति शूलम् ।। (भै.र. 71:100)
जायफल, लवङ्ग, श्वेत जीरा एवं टङ्कण के समभाग चूर्ण में शहद व चीनी मिलाकर चटाने से आमातिसार व आमशूल नष्ट होता है ।

2. एतद्द्रव्यचतुष्कञ्च दाडिमीफलमध्यगम् ।
पुटपक्वं पयःपिष्टं तद्दाडिमचतुःसमम् ।। (भै.र. 71:101)
लवङ्गचतुःसम चूर्ण को दाडिम के फल के मध्य रखकर कपड़मिट्टी कर पुटपाक कर लें। फिर निकालकर दूध में पीस कर रख लें । यही दाडिमचतुःसम है ।

लेह—लवङ्ग चतुःसम लेह (भै.र.), धातक्यादि लेह (च.द.), बालकुटजावलेह (भै.र.) ।

रस—महागन्धक रस, कर्पूररस (भै.र.), बालार्करस[1] (रसयोगसागर) ।

क्षार—चिञ्चाक्षार (र.त.) ।

आधुनिक चिकित्सा का दृष्टिकोण भी आयुर्वेद की ही भाँति है । उसको भी हम निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं—

1. शिशु के स्वास्थ्य का ध्यानपूर्वक परीक्षण ।
2. जलाल्पता का विश्लेषण एवं चिकित्सा ।
3. खनिज लवण विषमता का विश्लेषण एवं अध्ययन ।
4. उचित आहार ।
5. लाक्षणिक/निदानानुसार चिकित्सा

जलाल्पता की व्यवस्था

जलाल्पता की स्थिति का विश्लेषण पूर्व में दिये गये निर्देश के अनुसार करते हैं । रुग्ण बालक किस श्रेणी में आता है, इसके निर्धारण के पश्चात् उसकी व्यवस्था निम्नानुसार करते हैं—

(1) **प्रथम श्रेणी**—इस वर्ग के रोगी बालकों में जलाल्पता के कोई भी लक्षण नहीं होते हैं । अतः इनकी व्यवस्था में मल द्वारा निकलने वाले तरल की प्रतिपूर्ति पर ध्यान देना चाहिए । साथ ही पोषण का भी ध्यान दिया जाना चाहिए ।

(क) प्रतिपूर्ति हेतु तरल पदार्थ
- चावल की माँड़ एवं नमक
- दाल का पानी
- काँजी
- लस्सी
- नारियल का पानी
- घर पर निर्मित चीनी-नमक का घोल
- ORS

1. रसकञ्च प्रबालञ्च शृङ्गभस्म च हिङ्गुलम् ।
कर्षकर्चूरकेणाऽऽढ्यं केशरन्तु समांशकम् ।।
मर्दयेज्जलयोगेन जलेनैनं प्रदापयेत् ।
वातश्लेष्मातिसारेषु क्रिमिकासज्वरार्तिहृत् ।। (रसयोगसागर 1646-47)
खर्वर, प्रबाल, भृगशृंग, हिङ्गुल तथा कचूर—एक-एक कर्ष (ग्राम) तथा समभाग केशर लेकर जल में घोट कर 3-3 रत्ती की गोली बनायें । जल या उचित अनुपान से देने पर वातश्लैष्मिक रोग, अतिसार, क्रिमि, कास तथा ज्वर में लाभप्रद है । सिद्धयोगसंग्रह में केशर भी सबके समान ।ग्राम तथा गोरोचन मिलाने का विधान किया है । मर्दन के लिए जल के स्थान पर ब्राह्मी स्वरस का प्रयोग किया है । (सिद्धयोगसंग्रह/बालरोग चि. 2)

Scanned with CamScanner

WHO/UNICEF द्वारा निर्धारित ORS का संगठन

संगठन	मात्रा ग्राम/ लीटर जल में	घर पर निर्माण हेतु
1. नमक (सोडियम क्लोराइड)	3.5	एक बराबर चम्मच
2. पोटेशियम क्लोराइड	1.5	एक बराबर चम्मच का $\frac{1}{3}$ भाग
3. मीठा सोडा (सोडियमबाईकोर्बोनेट) अथवा—ट्राइसोडियम साइट्रेट	2.5 2.9	एक बराबर चम्मच का $\frac{3}{4}$ भाग
4. ग्लूकोज	20.0	आठ बराबर चम्मच

एक लीटर शुद्ध (उबाले हुए ठण्डे) जल में घोल बनायें (लगभग $8\frac{1}{2}$ कप)

घर में निर्मित चीनी एवं नमक का घोल—

चीनी - एक चम्मच (पूरा भरा)
नमक - एक चुटकी
नीबू - $\frac{1}{4}$ भाग

उबले हुए 200 सी.सी. जल में घोल बना कर दिया जा सकता है।

(ख) पथ्य - बालक को सामान्य आहार अवश्य देवें।
- (स्तनपायी शिशु में) स्तनपान अवश्य करायें।
- 6 माह से अधिक वय के शिशु में पशु-दूध, अनाज, दाल एवं सब्जियाँ अवश्य खिलायें।
- मण्ड, विलेपी, खिचड़ी दे सकते हैं।
- केला दिया जा सकता है।

अतिसार ठीक होने के बाद सामान्य आहार पर शिशु को रखना चाहिए। प्रारम्भ में आहार की मात्रा एक बार अधिक दी जा सकती है।

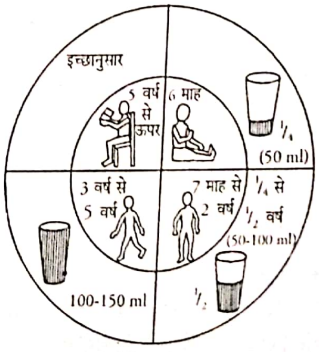

चित्र सं. 49 : प्रत्येक मलत्याग के बाद दी जानेवाली ORS/तरल की मात्रा

ORS की मात्रा का निर्धारण प्रथम श्रेणी के लिए

वय	प्रत्येक तरल मलत्याग के बाद
6 माह से कम	50 सी.सी.
7 माह से 2 वर्ष तक	50-100 सी.सी.
2 वर्ष से 5 वर्ष तक	100-150 सी.सी.
तदुपरान्त	बच्चे की इच्छानुसार

(2) द्वितीय श्रेणी—इस वर्ग के रोगी शिशु में जलाल्पता के कुछ लक्षण मिलते हैं। जिनका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है। अल्प जलाल्पता के लक्षण के आधार पर निर्धारण करने के पश्चात् निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिए—

1. रोगी को चिकित्सक के गहन निरीक्षण में रखकर चिकित्सा की जानी चाहिए।
2. जलाल्पता की मात्रा का निर्धारण WHO के दिशानिर्देश पर करना चाहिए।
3. ORS 75 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार के दर से दिया जाना चाहिए जो 4 घण्टे के लिए पर्याप्त है।
4. जहाँ शिशुभार का ज्ञान न हो, वय के आधार पर ORS की मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है। यद्यपि यह बहुत श्रेयस्कर नहीं हैं।

प्रथम 4 घण्टे में दिये जानेवाली ORS की मात्रा

(WHO के दिशानिर्देश के अनुसार)

वय	4 माह से कम	4-11 माह	2 वर्ष	3-4 वर्ष	5-14 वर्ष	15 वर्ष से अधिक
भार	5 कि.ग्रा. से कम	5-7.9 कि.ग्रा.	8-10.9 कि.ग्रा.	11-15.9 कि.ग्रा.	16-29.9 कि.ग्रा.	30 कि.ग्रा. से अधिक
ORS की मात्रा (सी.सी.)	200-400	400-600	600-800	800-1200	1200-2200	2200-4000

5. सामान्य रूप में निम्न सूत्र के अनुसार ORS की मात्रा का निर्धारण कर सकते हैं—रोगी का भार (कि.ग्रा.) x 75 = ...सी.सी.
6. यदि रोगी अधिक ORS पीना चाहता है तो अवश्य दीजिए।
7. स्तनपायी शिशु को स्तनपान अवश्य करायें।
8. यदि 6 माह से कम वय का शिशु स्तनपायी नहीं है तो उसे शुद्ध जल 100-200 सी.सी. अवश्य दिया जाय।
9. आवश्यक मात्रा में ORS के देने का तरीका माता को या परिचारक को अवश्य समझाइये। यथा—2 वर्ष के कम वय के शिशु में 1-2 चम्मच प्रत्येक 1 से 2 मिनट में पिलाये। आगणित ORS चार घण्टे में देना है।

Scanned with CamScanner

10. यदि बालक ORS का वमन कर देता है तो कुछ देर रुककर धीरे-धीरे ORS देना चाहिए।

11. यदि शिशु के वर्त्म पर शोथ आ जाता है तो ORS रोक देवें तथा सामान्य जल एवं स्तनपान पर रखें। शोथ समाप्त होने पर जलाल्पता की प्रथम श्रेणी की भाँति ORS देना चाहिए।

चार घण्टे के पश्चात् बच्चे का पुनः सघन परीक्षण करें। तथा जलाल्पता की श्रेणी का निर्धारण कर निम्नवत् चिकित्सा करें—

1. यदि स्थिति पूर्ववत् है तो पुनः वही चिकित्सा दुहरायें।

2. यदि स्थिति में सुधार हुआ है तो जलाल्पता की प्रथम श्रेणी के अनुसार व्यवस्था करें।

3. यदि स्थिति में सुधार नहीं हो रहा है तथा जलाल्पता की श्रेणी बढ़ रही है तो शिरागत मार्ग का प्रयोग किया जाना चाहिए। (इसका विधान आगे तृतीय श्रेणी में दिया गया है।)

4. रोगी को घर भेजते समय जलाल्पता की प्रथम श्रेणी की व्यवस्था की पूर्ण शिक्षा माता को अवश्य देवें।

(3) तृतीय श्रेणी—यह सबसे गम्भीर अवस्था है। इस की व्यवस्था तीव्रता से करनी चाहिए तथा रोगी को चिकित्सालय में तत्काल प्रवेश करायें। निम्नलिखित तालिका के अनुसार व्यवस्था निर्धारित करें—

तृतीय श्रेणी की जलाल्पता की चिकित्सा व्यवस्था

प्रयोज्य द्रव—(1) Ringer's Lactate (श्रेष्ठतम द्रव)
(2) Normal Saline
(3) Darrow's Solution ½

प्रयोज्य मार्ग—शिरागत सूचीवेध द्वारा।

निर्देश

शिरागत सूचीवेध द्रव देने की सुविधा होने पर → हाँ

कार्यव्यवस्था

1. शिरावेध से द्रव देना प्रारम्भ करें।
2. यदि रोगी मुख द्वारा द्रव ग्रहण करने में सक्षम है तो ORS 100 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार की दर से साथ में दीजिए।
3. प्रयोज्य द्रव देने का विधान—
- एक वर्ष से कम वय में—
  - RL 30 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार प्रथम घण्टे में दीजिए।
  - तदुपरान्त 70 सी.सी. कि.ग्रा. शरीर भार पर अगले 5 घण्टे में दीजिए।
- एक वर्ष से अधिक वय में—
  - RL 30 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार पर प्रथम ½ घण्टे में दीजिए।
  - तदुपरान्त 70 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर भार पर प्रथम 2½ घण्टे में दीजिए।

4. यदि नाड़ी गति बहुत ही मन्द हो अथवा न मिल रही हो तो पुनः उपरोक्त व्यवस्था करें।

5. यदि रोगी की हालत में 1 से 2 घण्टे में सुधार न हो तो द्रव देने की गति बढ़ा दें।

6. प्रायः 1 वर्ष के बच्चों में 3-4 घण्टे में एवं बड़े बच्चों में 1-2 घण्टे में सुधार होने लगता है। तब ORS 5 सी.सी./कि.ग्रा./घण्टे की दर से साथ में देना प्रारम्भ कर देवें।

7. एक वर्ष से कम वय के शिशु में 6 घण्टे पर एवं बड़े बच्चों में 3 घण्टे पर पुनः परीक्षण कर श्रेणी निर्धारण करें। तदनुसार चिकित्सा व्यवस्था करें।

नहीं

निकटस्थ शिरागत द्रव देने के स्थान पर ½ घण्टे में भेज सकते हैं। → हाँ → (1) मरीज को तुरन्त चिकित्सालय भेजिए।
(2) यदि मरीज मुख द्वारा द्रव ग्रहण करने की स्थिति में है तो ORS पिलवाने की व्यवस्था भी कर दीजिए।

नहीं

Naso-gastric नलिका के प्रयोग की सुविधा → हाँ →
- नलिका द्वारा ORS 20 सी.सी./कि.ग्रा./घण्टे की दर से 6 घण्टे में (120 सी.सी./कि.ग्रा. कुल मात्रा) देना प्रारम्भ करें।
- यदि वमन और/या आध्मान होने लगे तो द्रव देने की गति कम कर दीजिए।
- यदि लक्षण 3 घण्टे में कम नहीं हो रहे हैं तो सिरा मार्ग से द्रव देने हेतु मरीज को स्थानान्तरित करिये।
- सुधार होने पर 6 घण्टे के बाद मरीज का निरीक्षण कर आगे की चिकित्सा व्यवस्था करिये।

नहीं

मुख द्वारा द्रव ग्रहण करने की स्थिति → हाँ →
- उपरोक्तवत् ORS दीजिए।
- प्रत्येक 1-2 घण्टे पर मरीज का परीक्षण करें।
  - वमन होने पर द्रव देने की गति धीमी करिये।
  - यदि लक्षण दूर न हो रहे हों तो सिरामार्ग से द्रव दिलाने की व्यवस्था करें।
- 6 घण्टे के बाद पुनः मरीज का निरीक्षण कर सुधार की दशा के आधार पर आगे की चिकित्सा का निर्णय करें।

नहीं

रोगी को शीघ्र शिरामार्ग से द्रव देने की सुविधा प्रदान करें

Scanned with CamScanner

(1) खनिज लवण की अल्पता का निरीक्षण कर उसकी आपूर्ति करिये।
(2) निदान के अनुसार संक्रमण रोधी औषधि का प्रयोग करिये। यथा—

कारण	औषधि	काल	मात्रा
1. कालरा	Furazolidone	3 दिन	5 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/3 बार में
	Tetracyclin	2-3 दिन	30 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/3-4 बार में
	TMP+SMX	3 दिन	5-25 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/2 बार में
	Erythromycin	3 दिन	30 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/3 बार में
2. शिगेला	TMP+SMX	5 दिन	5+25 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/2 बार में
	Nalidixic acid	5 दिन	15 मि.ग्रा./कि.ग्रा. 4 बार में प्रति दिन
	Ampicillin	5 दिन	25 मि.ग्रा./कि.ग्रा. 4 बार में प्रतिदिन
3. अमीबियेसिस	Metronidazole	5-10 दिन	30 मि.ग्रा./कि.ग्रा. 3 बार में
4. जिआर्डि-येसिस	Metronidazole	5 दिन	उपरोक्त की आधी मात्रा
	Tinidazole	5 दिन	10-15 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन/3 बार में

आहार-व्यवस्था - लघु आहार (मण्ड, पेया, विलेपी, खिचड़ी आदि) का प्रयोग।
- उपरोक्त के पाचन होने पर दधि, तक्र यवागू आदि का प्रयोग करें।

क्षीरालसक
(Gastroenteritis)

क्षीरालसक शब्द 'क्षीर' एवं 'अलसक' दो शब्दों से मिलकर बना है। अन्यत्र आयुर्वेद में अलसक शब्द विसूचिका, विलम्बिका एवं अलसक के प्रकरण में (सु.उ. 56) आया है। आचार्य चरक ने आमदोषजन्य दो व्याधियों का उल्लेख किया है—

'तं द्विविधमामप्रदोषमाचक्षते भिषजः विसूचिकाम्, अलसकं च'।
(च.वि. 2:10)

इस प्रकार चरक अलसक को आमदोषजन्य मानते हैं। सुश्रुत ने आम, विदग्ध एवं विष्टब्धाजीर्ण में से किसी से भी अलसक की उत्पत्ति मानी है। आचार्य चरक ने अलसक को वात एवं कफ दोष प्रधानताजन्य माना है। वस्तुतः अलसक कहने का तात्पर्य दोषों के स्थिरत्व के निमित्त है। अर्थात् आमाशय में भोजन का पूर्णतया रुक जाना एवं किसी भी मार्ग से न निकलना ही अलसक है—

'प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न विपच्यते।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः'॥
(मा.नि. 6:19-20 की मधुकोष टीका)

असलक शब्द का भी यही अर्थ है—

'न लसति व्याप्रियते इति'।

वाग्भट ने त्रिदोष से उत्पन्न इस अलसक व्याधि का क्षीर से सम्बन्ध स्थापित करते हुए क्षीरालसक का सर्वप्रथम वर्णन किया है—

'स्तन्ये त्रिदोषमलिने दुर्गन्ध्यामं जलोपमम्।
विविद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते॥
शकृन्नानाव्यथावर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम्।
ज्वरारोचकतृट्छर्दिशुष्कोद्गारविजृम्भिकाः॥
अङ्गभङ्गोऽङ्गविक्षेपः कूजनं वेपथुर्भ्रमः।
घ्राणाक्षिमुखपाकाद्या जायन्तेऽन्येऽपि तं गदम्॥
क्षीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम्'। (अ.हृ.उ. 2:20-22)

'यदा पुनर्धात्री सन्निपातप्रकोपनान्यासेवेत, तदास्यात्स्रयो मला युगपद्वक्षोऽभिप्रपन्नाः क्षीरवहा रसायनीः समनुसृत्य सङ्कीर्णं लिङ्गं स्तन्यमावहन्ति। तच्चेदविज्ञानात् सततमप्रत्यवेक्षणात् प्रमादाद्वा मातुः कुमारः पिबति। ततः स तेन सलिलोपममच्छं विच्छिन्नमामं दुर्गन्धिनानावर्णवेदनं फेनिलमतिसार्यते। पीतश्वेतमूत्रताविष्टम्भतृष्णाज्वरच्छर्दिविजृम्भिकाशुष्कोद्गारारुचिभ्रमाङ्गभङ्गविक्षेपकूजनघ्राणाक्षिमुखपाकदृष्ट्युपप्लवस्वरसादादयश्चास्य प्रादुर्भवन्ति। तं क्षीरालसकमत्ययं चाचक्षते'।
(अ.सं.उ. 2:17)

निदान—जब धात्री त्रिदोष को प्रकुपित करने वाले कारणों का सेवन करती है तो त्रिदोष प्रकुपित होकर एक साथ वक्ष में आकर क्षीरवहा रसायनियों (नलिकाओं) में प्रवेश कर स्तन्य को दूषित कर देते हैं तथा माता की अज्ञानता, असावधानी या आलस्य के कारण जब वह दूषित दुग्ध शिशु पान करता है तो क्षीरालसक नामक व्याधि से ग्रसित हो जाता है।

लक्षण—शिशु का मल दुर्गन्धयुक्त, आम, जल की भाँति द्रव, रुक-रुक कर, जलवत् निर्मल, विच्छिन्न, टूटा-टूटा एवं झागदार नाना वर्ण का एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की पीड़ा वाला होता है। मूत्र पीला, श्वेत एवं घना होता है। विष्टम्भ, ज्वर, अरुचि, तृषा, छर्दि, शुष्कोद्गार, जृम्भा, अङ्गों का टूटना, अङ्गविक्षेप, आन्त्र-कूजन, चक्कर आना; नाक, नेत्र एवं मुख का पाक, नेत्र में दृष्टि की कमी या अभाव एवं स्वर का बैठना आदि लक्षण मिलते हैं।

उपरोक्त समस्त लक्षण प्रायः Gastroenteritis में मिलते हैं। इस व्याधि के दो प्रमुख कारण हैं; जीवाणुजन्य (Bacterial) एवं विषाणुजन्य (Viral)। जीवाणुजन्य Gastroenteritis में प्रमुख जीवाणु Salmonella, Shigella, E. Coli तथा Vibrio Cholerae हैं। E. Coli तथा Vibrio Cholerae में चावल के धोवनवत् स्वच्छ मल होता है। शेष में रक्त, श्लेष्मा आदि मिश्रित मल होता है। जीवाणुजन्य Gastroenteritis में प्रायः ज्वर मिलता है। Shigella संक्रमण में ज्वरजन्य आक्षेप

Scanned with CamScanner

भी मिल सकते हैं। मूत्र कम होना या बन्द हो जाना V. Cholerae में प्रमुख लक्षण है, क्योंकि तीव्रता से जल की शरीर में कमी होती है।

चिकित्सा

आयुर्वेद-संहिताओं में चिकित्सा-वर्णन में माता एवं शिशु दोनों की चिकित्सा का विधान किया गया है, क्योंकि दूषित दुग्ध माता से शिशु को प्राप्त होता है।

'तत्राशु धात्रीं बालं च वमनेनोपपादयेत्।
विहितायां च संसर्ग्यां वचादिं योजयेद्गणम्॥
निशादिं वाऽथवा माद्रीपाठातिक्ताघनामयान्।
पाठाशुण्ठ्यमृतातिक्तकितिक्तादेवाह्वसारिवाः॥
समुस्त पूर्वेन्द्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम्।
अनुबन्धे यथाव्याधि प्रतिकुर्वीत कालवित्' ॥ (अ.ह.उ. 2:23-25)

(1) शोधन-चिकित्सा—धात्री तथा शिशु दोनों के कोष्ठ का शोधन तुरन्त ही वमन के द्वारा करिये।

(2) शमन-चिकित्सा—दोष-शमनार्थ नीचे लिखे गये कोई भी क्वाथ दिये जा सकते हैं—

1. वचादि या निशादि गण की औषधियों का क्वाथ पिलायें।
2. हरिद्रादि गण या पाठादि गण महाकषाय दें। (अ.सं.उ. 2:18)
3. अतिविषा, पाठा, कुटकी, मुस्ता एवं कूठ का क्वाथ दें।
4. पाठा, शुण्ठी, गिलोय, चिरायता, कुटकी, देवदारु, सारिवा, मोथा, मूर्वा एवं इन्द्रयव का क्वाथ दें। यह स्तन्यदोषहर हैं।
5. रास्ना, प्रियङ्गु, यवानी, पाठा, तेजबल, पुनर्नवा एवं वृश्चिकाली क्वाथ देवें। (अ.सं.उ. 2:18)
6. जामुन, आम्र, तिन्दुक एवं कपित्थपत्र क्वाथ दें। (अ.सं.उ. 2:18)
7. बिल्व के गूदे का प्रयोग करें। (अ.सं.उ. 2:18)

तदुपरान्त बचे हुए लक्षणों की रोगानुसार चिकित्सा करें। अहिफेन के योगों का प्रयोग कदापि न करें।

आमयुक्त मल में उक्त क्रम संख्या 3 के क्वाथ में दुग्धपाषाण मिला कर देना चाहिए। पक्वातिसार में गङ्गाधर चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। माता का दूध अनुकूल न रहने पर बकरी का दूध प्रयोग कर सकते हैं। कुमारकल्याण रस का प्रयोग भी हितकर है।

आधुनिक दृष्टिकोण से भी चिकित्सा में जलाल्पता के लक्षणानुरूप सिरामार्ग से उचित मात्रा में जलापूर्ति, नार्मल सैलाइन, सोडाबाईकार्ब तथा पोटेशियम देना चाहिए तथा निदान के अनुसार उचित एण्टीबायोटिक (अतिसार चिकित्सा देखिये) का प्रयोग करें और लाक्षणिक चिकित्सा करें।

विशेष—प्रायः सभी आचार्यों ने अलसक या अलस[1] के नाम से एक क्षुद्ररोग का वर्णन भी किया है। छात्रों को उससे एवं क्षीरालसक अथवा विसूचिका-अलसक से भ्रान्ति में पड़कर सामञ्जस्य नहीं करना चाहिए। यह दोनों एकदम ही अलग व्याधि हैं।

गाढविट्कता एवं मलावरोध

गाढविट्कता से तात्पर्य है मल का सूख जाना। अर्थात् कभी-कभी सम्पूर्ण मल गाढ़ा-शुष्क (Dry) एवं ग्रन्थिल हो जाता है अथवा कभी-कभी मात्र प्रारम्भ का कुछ मल शुष्क एवं ग्रन्थिमय हो जाता है। शेष भाग सामान्य मल जैसा रहता है। यह दोनों अवस्थाएँ मल से पिण्डीभाव एवं वातोत्पत्ति की तारतम्यता के बोधक हैं।

मलावरोध, कोष्ठबद्धता, विबन्ध या कब्ज यह पर्यायवाची शब्द हैं तथा ये अवस्थाए कोई व्याधि नहीं वरन् लक्षण मात्र हैं। मलावरोध का कारण सामान्य भोजन, बच्चे की सक्रियता एवं आदतों पर भी निर्भर हो सकता है अथवा किसी विशिष्ट व्याधि का लक्षण भी हो सकता है।

नवजात शिशु एवं प्रथम वर्ष वय में इसका सामान्य कारण निम्नलिखित हो सकते हैं—दुग्ध एवं जल का कम मात्रा में लेना, कृत्रिम विधि से दुग्धपान (बोतल, कटोरी आदि), अन्नप्राशन देर से करना, रेचक एवं मल को पतला करने वाली औषधियों का लम्बे समय तक प्रयोग करना।

विशिष्ट कारणों में गुद-विदार, आन्त्रकृमि, ग्रासनली की सहज सङ्कीर्णता (Pyloric stenosis), सहज आन्त्र-अछिद्रता (Duodenal atresia) आदि प्रथम मलावरोध (Meconium ileus) एवं वामनत्व (Cretinism) आदि प्रमुख हैं।

अन्य बच्चों में सामान्य कारण भोजन कम लेना, भोजन में मल की मात्रा बढ़ाने वाले पदार्थ (Residue) की कमी होना, रेचन औषधियों पर निर्भरता, मानसिक कारण, मलत्याग की ठीक से आदत न पड़ना, गन्दे शौचालय आदि विशेष हैं।

विशिष्ट कारणों में आन्त्रों में कृमि, गुद-विदार एवं अल्प आन्त्र-अवरोध (Subacute) विशेष हैं।

चिकित्सा—सैद्धान्तिक रूप में निदान-परिवर्जन ही विशिष्ट चिकित्सा है। प्रायः अच्छा आहार एवं उचित मात्रा में द्रव-आहार देने से ही ये समस्याएँ दूर हो जाती हैं। मलत्याग की नियमित समय से आदत डलवाना चाहिए। औषधि प्रयोग जहाँ तक सम्भव हो नहीं करना ही श्रेयस्कर है। विशेष अवस्था में कुछ सामान्य औषधि का प्रयोग कर सकते हैं। यदि इनसे लाभ न हो तो विशिष्ट कारणों की ओर ध्यान देना चाहिए।

दुग्ध में मुनक्का डाल कर पिलाना एवं भोजन में हरी सब्जियों का प्रयोग लाभकर होता है। औषधि रूप एरण्ड तैल, बड़ी हरीतकी, गुदावर्ति एवं आवश्यकतानुरूप बस्ति का प्रयोग करते हैं।

*

1. च.चि. 7:12 एवं 22, सु.नि. 13:3 एवं 31, अ.ह.नि. 14:8 एवं 23, मा.नि. 55:27।

Scanned with CamScanner

अध्याय - 12

गुदरोग

गुदरोग बहुत-से हैं परन्तु शैशवीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ व्याधियों का सङ्कलन यहाँ किया गया है ।

अर्श

'अर्शांसीत्यधिमांसविकाराः' ।

गुदा एवं नासादि की त्वचा के मांस में उत्पन्न हुए विकार को अर्श कहते हैं।

'अरवित्प्राणिनो मांसकीलका विशसन्ति यत् ।
अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः' ।। (अ.ह.नि. 7:1)

मांसाङ्कुर गुदामार्ग का अवरोध कर शत्रुवत् हिंसा (कष्ट) करते हैं । अतः इन्हें अर्श कहते हैं ।

अर्श का वर्गीकरण

'सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद्द्वेधा समासतः ।
शुष्कस्राविविभेदाश्च.....'।। (अ.ह.नि. 7:3)

1. सहज (जन्म के साथ)
2. जन्मोत्तर (जन्म के पीछे)

} या {

1. शुष्क
2. स्रावी

अन्य आचार्यों ने विस्तृत वर्गीकरण दिया है—

(क) सुश्रुत संहिता—

1. वातज
2. पैत्तिक
3. कफज
4. सान्निपातिक
5. रक्तज
6. सहज

(ख) चरकसंहिता—

1. सहज
2. उत्तरकालज

इसके पुनः छः भेद हैं—

1. वातिक
2. पैत्तिक

3. कफज
4. त्रिदोषज
5. द्वन्द्वज
6. रक्तज

उपरोक्त सभी का वर्णन यहाँ न देकर विषय के अनुरूप सहज अर्श का वर्णन किया जा रहा है । अन्य का वर्णन उपयुक्त स्थलों पर देखना चाहिए ।

सहज अर्श अर्थात् जन्म से ही उपस्थित अर्श । आचार्य चरक ने कहा है[1] कि सहज अर्श का कारण वह शुक्रशोणितरूप बीज है जिसका गुदवली का उत्पादक भाग दुष्ट हो । इस दुष्टि के भी दो कारण हैं—

1. माता-पिता का अपचार ।
2. पूर्वकृत कर्म ।

सहज अर्श के उत्पन्न करने में मातृज बीज की प्रधानता—अर्श की स्थानभूत गुदवलियों का स्थान गुदा है जिसमें 3 वलियाँ होती हैं—

'अर्धपञ्चाङ्गुलस्तस्मिंस्तिस्रोऽध्यर्धाङ्गुलाः स्थिताः ।
वल्यः प्रवाहिणी तासामन्तर्मध्ये विसर्जनी ।।
बाह्या संवरणी तस्या गुदौष्ठो बहिरङ्गुले' ।। (अ.ह.नि. 7:4-5)

स्थूलान्त्र से सम्बद्ध साढ़े चार अङ्गुल परिमाण की गुदा होती है । इसमें 3 वलियाँ हैं जो कि 1½ अङ्गुल की परिमाण की प्रत्येक होती हैं । इसमें सबसे भीतर की वली का नाम प्रवाहिणी, मध्य की विसर्जनी और बाहर की संवरणी है । इसके बाहर 1 अङ्गुल भाग में गुदौष्ठ है ।

चरक ने स्पष्ट रूप से उत्तरगुद एवं अधोगुद को मातृज बीज से उत्पन्न माना है ।

'यानि खल्वस्य गर्भस्य मातृजानि, यानि चास्य मातृतः सम्भवतः सम्भवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा–

त्वक्.....पक्वाशयश्चोत्तरगुदं चाधरगुदं च क्षुद्रान्त्रं च.....'।। (च.शा. 3:6)

ऐसी अवस्था में सहज या वंशपरम्परागत रोगों की उत्पत्ति में शुक्र-शोणित का तत्तद्रोग से दूषित होना अनिवार्य है ।

सहज अर्श का आकार एवं वर्ण—सहज अर्श में कोई अणु, कोई महान्, कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई गोल, कोई विषम रूप से फैला हुआ, कोई अन्तर से कुटिल,

1. द्विविधान्यर्शांसि—कानिचित् सहजानि, कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि । तत्र बीजं गुद-वलिबीजोपतप्तमायतनमर्शसां सहजानाम् । तत्र द्विविधो बीजोपतप्तौ हेतुः—मातापित्रोर-पचारः, पूर्वकृतं च कर्म; तथाऽन्येषामपि सहजानां विकाराणाम् । (च.चि. 14:5)

Scanned with CamScanner

कोई बाहर से कुटिल, कोई जटिल एवं कोई अन्तर्मुख होते है। इनका वर्ण अनुबन्ध रूप मे दोषानुसार स्थित होता है।

'तत्र सहजान्यर्शांसि कानिचिदणूनि, कानिचिन्महान्ति कानिचिद्दीर्घाणि, कानिचिद्ध्रस्वानि, कानिचिद् वृत्तानि, कानिचिद्विषमविसृतानि, कानिचिदन्तःकुटिलानि, कानिचिद्बहिःकुटिलानि, कानिचिज्जटिलानि, कानिचिदन्तर्मुखानि यथास्वं दोषानुबन्धवर्णानि'। (च.चि. 14:7)

वाग्भट ने संक्षेप में कहा है—

'सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि च।
अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च' ॥ (अ.ह.नि. 7:8)

सहज अर्श रूक्ष, देखने में भयोत्पादक, भीतर मुख वाले, पाण्डुवर्ण एवं दारुण उपद्रवयुक्त होते हैं।

कश्यप ने वेदनाध्याय (सू. 25) में कहा है कि इसमें मल बँधा हुआ तथा पक्व होगा, साथ में रक्त भी होगा। बालक कमजोर होगा, गुदा में वेदना, कण्डू एवं तोद होगा।

'बद्धपक्वपुरीषत्वं सरक्तं वा कृशात्मनः।
गुदनिष्पीडनं कण्डूं तोदं चासिलक्षयेत्' ॥ (23)

लक्षण—इनसे पीड़ित दुर्बल, अल्प भोजन करने वाला, शरीर पर सिराओं के उभार से युक्त, कम सन्तान वाला, क्षीणवीर्य, दुर्बलस्वर, क्रोधी, अल्पपाचकाग्नियुक्त तथा नासा, शिर, नेत्र, कर्ण रोगों से पीड़ित एवं निरन्तर आन्त्र में कूजन तथा आटोप होना, हृदय पर भारीपन, अरुचि आदि लक्षण हैं।

'तैरुपद्रुतः कृशोऽल्पभुक् सिरासन्ततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोऽल्पाग्निप्राणः परमलसश्च, तथा घ्राणशिरोऽक्षिनासाश्रवणरोगी, सततमन्त्रकूजाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते'। (सु.नि. 2:16)

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में इसे Hemorrhoids के नाम से जानते हैं। बच्चों में प्रायः यह व्याधि नहीं पायी जाती। इसके होने का सही कारण ज्ञात नहीं है। परन्तु बच्चों में यदि यह व्याधि होती है तो उसके निम्न सम्भाव्य कारण हैं—

(1) अधोग महाशिरा या मिसेण्ट्री (Vena cava or mesentric) में अवरोध।

(2) यकृत्-विकार Cirrhosis, Portal hypertension या अन्य कारण जो शिरा में अवरोध पैदा करते हों।

(3) पुराना विबन्ध या मल की गुठली बन जाना तथा मल त्याग के समय अत्यधिक जोर लगाना। यदि इन कारणों को ठीक कर दिया जाय तो अर्श स्वयं ठीक हो जाता है। प्रायः शल्य कर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सहज अर्श को असाध्य माना गया है; यथा—

'सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरे वलौ।
स्थितानि तान्यसाध्यानि, याप्यन्तेऽग्निबलादिभिः' ॥
(अ.ह.नि. 7:53)

चिकित्सा

'चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः। तद्यथा—भेषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति'।
(सु.चि. 6:1)

अर्श की चिकित्सा के भेषज, क्षार, अग्निकर्म एवं शस्त्रकर्म ये चार उपाय हैं। इनमें बालक की दृष्टि से भेषज कर्म उचित है।

यद्यपि सहज अर्श असाध्य है फिर भी शुष्क लक्षण युक्त होने के कारण शुष्क अर्श के समान चिकित्सा करें। शुष्कार्श वातश्लेष्मोल्वण होते हैं। इनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से लेपन आदि चिकित्सा करें।

अर्श प्रायः अतिसार, ग्रहणी के समान मन्दाग्नि से उत्पन्न होता है। अतः अग्नि को तीक्ष्ण रखना चाहिए। विबन्ध न रहे इसका ध्यान रखें। गाँठदार पुरीष होने पर चिकित्सा उदावर्त के समान करना चाहिए।

अर्श की चिकित्सा में प्रयोग होने वाली कुछ औषधियाँ निम्नवत् हैं—

चूर्ण—आमारि चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, पञ्चषकार या षड्षकार चूर्ण, मरिच्यादि चूर्ण, बड़ी हरीतकी चूर्ण, निशोथ चूर्ण तथा त्रिफला चूर्ण।

वटी—काङ्कायन गुटिका, शूरण वटक, प्राणदा गुटिका, अर्शोघ्नी वटी एवं चन्द्रप्रभावटी।

रस—नित्योदित रस, अर्शकुठार रस, कामदुधा रस, रसपर्पटी, बोलपर्पटी आदि।

आसव-अरिष्ट—अभयारिष्ट, मृद्वीकारिष्ट, उशीरासव।

तैल—क्षार तैल, पिप्पल्यादि तैल, काशीशाद्य तैल।

भोज्य—तक्र एवं सूरन का प्रयोग।

आजकल क्षारसूत्र का प्रयोग अर्श के अङ्कुर को काट कर निकाल देने के लिए किया जा रहा है।

अहिपूतना

इस व्याधि की गणना 'क्षुद्ररोगों' में आचार्यों ने की है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि बालग्रह में वर्णित पूतना, अन्धपूतना एवं शीतपूतना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

पर्याय—पृष्टारु, गुदकुट्ट, अनामक रोग, मातृका दोष।

विशिष्टता—यह व्याधि बच्चों में ही पायी जाती है।

Scanned with CamScanner

'शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्ने वास्नाप्यमानस्य कण्डूरक्तकफोद्भवा ।।
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम्' ।।
(यो.र. क्षुद्ररो.चि.पृ. 274, मा.नि 55:50-51)

मल तथा मूत्र से युक्त अपान (गुदा) के पानी द्वारा नहीं धोने पर तथा स्वेद होने के बाद प्राय: मन्दोष्ण जल से स्नान नहीं कराने वाले बच्चे के रक्त एवं कफ के कारण गुदा में कण्डू उत्पन्न होती है तथा कण्डू के होने पर स्फोट उत्पन्न होकर उसमें से स्राव बहता रहता है । इस तरह व्रणों से युक्त एवं भयङ्कर स्वरूप की व्याधि अहिपूतना है।

'मलोपलेपात् स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भवः ।
ताम्रो व्रणोऽन्तः कण्डूमाञ्जायते भूर्युपद्रवः ।।
केचित्तं मातृकादोषं वदन्त्यन्येऽहिपूतनम् ।
पृष्टारुर्गुदकुट्टं च केचिच्च तमनामिकम्' ।।
(अ.हृ.उ. 2:69-70, अ.सं.उ. 2:79)

मल के लगे रहने से या स्वेद आने से गुदा में रक्त व कफजन्य ताम्रवर्ण का व्रण हो जाता है । गुदा के अन्दर कण्डू होती है तथा इस व्रण में बहुत उपद्रव होते हैं । इसे मातृका दोष, अहिपूतना, पृष्टारु, गुदकुट्ट एवं अनामिका नाम से जानते हैं ।

'दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च ।
कण्डूदाहरुजावद्भिः पिडकैश्च समाचिता ।।
सम्भवन्ति यथा दोषं दारणाह्यहिपूतिना' ।। (भोज)

भोज ने इसे दुष्ट स्तन्यजन्य माना है ।

वस्तुत: दूषित स्तनपान एवं अस्वच्छता ही इस व्याधि का मूल कारण है । दूध के पीने से खट्टे एवं जलन करने वाले मलत्याग के कारण यह व्याधि होती है । इसे आज-कल Napkin rash या Sore buttocks कहते हैं । माता की लापरवाही अर्थात् गुदा की सफाई ठीक से न करने पर तथा मल-मूत्र से भीगे वस्त्रों को न बदलने पर यह रोग होता है । कुछ चिकित्सक मल-मूत्र की अम्लीयता को इसका कारण मानते हैं । बच्चों के अधोवस्त्र (Napkins) का ध्यान न रखने के कारण होने वाली यह व्याधि Napkin rash कहलाती है ।

चिकित्सा

(1) धात्री के स्तन्य का शोधन करें ।† पित्तश्लेष्महर द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए ।‡

(2) पटोलपत्र, त्रिफला एवं रसाञ्जन से सिद्ध शृतशीत या शीतल जल का पान करायें ।†

(3) मधु एवं रसाञ्जन मिश्रित जल देना चाहिए ।‡

(4) त्रिफला, कोल एवं खदिर के क्वाथ का प्रयोग व्रणरोपण हेतु करें ।† इसके द्वारा परिषेक करें ।‡

(5) मधु एवं रसौत का व्रण पर लेपन करें ।‡

(6) कासीस, गोरोचन, तूतिया, हरिताल एवं रसौत†,‡ या बेरछाल एवं सैन्धव नमक को काञ्जी में पीस कर लेप करें ।†

(7) कासीस आदि का चूर्ण व्रण पर छिड़कें ।‡ कपाल एवं तुत्थ चूर्ण का प्रयोग कर सकते हैं ।†

(8) मधुक, शंख, सौवीराञ्जन या सारिवा एवं शंखनाभि चूर्ण को छिड़के‡ ।

(9) असनत्वक् का लेप करें ।‡

(10) लालिमा एवं कण्डू अधिक होने पर जलौका द्वारा रक्तस्राव करायें ।‡

(11) पित्तव्रणनाशक समस्त उपाय करें ।‡

(12) बच्चों की सफाई रखें । अधोवस्त्र गीले होने पर तुरन्त बदल दें । बच्चे के वस्त्रों के प्रक्षालनार्थ अच्छे सावुन एवं संक्रमणरोधी द्रव्य का प्रयोग करें । व्रण-कण्डू होने पर रोधी द्रव्य (Antibiotic) का चूर्ण प्रयोग करें । माता के भोजन पर ध्यान दें ।

गुदपाक
(Proctitis)

प्राय: बालकों में गुदा में पाक हो जाने से मलत्याग में कष्ट होता है । इस अवस्था में निम्न विधान है—

'गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ।
रसाञ्जनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम्' ।। (सु.शा. 10:49)

पित्तनाशक चिकित्सा करें, विशेष रूप से रसाञ्जन का पान करायें तथा लेप करें ।

'शङ्खयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत्' । (यो.र.बा.रो.चि. पृ. 445)

शङ्खभस्म,, यष्टीमधु एवं रसाञ्जन चूर्ण को लगायें ।

---

†. धात्र्या: स्तन्यं शोधयित्वा बाले साध्याऽहिपूतना । पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् । त्रिफलाकोलखदिरकषायं व्रणरोपणम् ।।
कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः । लेपोऽम्लपिष्टो बदरीत्वग्वा सैन्धवसंयुता ।।
कपालतुत्थजं चूर्णं चूर्णकाले प्रयोजयेत् । (सु.चि. 20:57-59)

‡. तत्र धात्र्या: पय: शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः । शृतशीतं च शीताम्बुयुक्तमन्तरपानकम् ।।
सक्षौद्रताक्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत् । त्रिफलाबदरीप्लक्षत्वक्क्वाथपरिषेचितम् ।।
कासीसरोचनातुत्थमनोह्याऽऽलरसाञ्जनैः । लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वाऽवचूर्णयेत् ।।
सुश्लक्ष्णैरथवा यष्टीशङ्खसौवीरकाञ्जनैः । सारिवाशङ्खनाभिभ्यामसनस्य त्वचाऽथवा ।।
रागकण्डूत्कटे कुर्याद्रक्तस्रावं जलौकसा । सर्वं च पित्तव्रणजिच्छस्यते गुदकुट्टके ।।
(अ.हृ.उ. 2:71-75)

Scanned with CamScanner

'अजादुग्धेन सम्मिश्र्य जीरकाञ्जनचूर्णकैः ।
जातीपत्ररसोपेतैः पूर्वप्रोक्तरसैरपि' ।। (र.र.स. 22)

रसाञ्जन, जीरक चूर्ण एवं जातिपत्र में मर्दन करके स्वरस निकालकर उस स्वरस को अजादुग्ध में मिला दें । फिर इसका पान करायें ।

गुदभ्रंश

इसकी गणना भी आचार्यों ने क्षुद्ररोगों में की है ।

'प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत्' ।। (सु.नि. 13:61)

रूक्ष एवं दुर्बल शरीर वाले को प्रवाहण (कुन्थन) एवं अतिसार से गुदा बाहर निकल आती है । यही गुदभ्रंश है ।

यह व्याधि बच्चों में देखने को प्रायः मिलती है । इस व्याधि हेतु आधुनिक चिकित्सा में Prolapse तथा Procidentia शब्द आते हैं । गुदमार्ग से मलाशय की श्लैष्मिक कला का असामान्य रूप से बाहर आना, चाहे बाहर उसका विस्तार हो या न हो वह 'Prolapse of rectum' कहलायेगा । जबकि Procidentia में गुदमार्ग से मलाशय एवं उसके ऊपर के भी भाग Sigmoid colon के सभी स्तर श्लैष्मिक कला के साथ-साथ बाहर आ जाते हैं । आयुर्वेद में ये दोनों आवस्थाएँ गुदभ्रंश में समाविष्ट हैं।

यह अवस्था 3 से 5 वर्ष के मध्य के बच्चों में बहुतायत देखने को मिलती है। ऐसा कोई भी कारण जो उदर के अन्दर से दबाव की वृद्धि करता हो, इस व्याधि का कारण होता है । नितम्ब एवं पैरों पर देर तक बैठना (उकडूं बैठना), कुपोषण (इसके कारण Ischiorectal fat समाप्त हो जाता है), ग्रहणी या संग्रहणी रोग (Malabsorption), Cystic fibrosis—ये सामान्य कारण हैं । इसके अतिरिक्त आन्त्रकृमि की अधिकता, अर्शांकुर, भगन्दर, कुक्कुरकास आदि भी कारण हैं ।

मलत्याग के समय बाहर निकली गुदा पहले तो स्वयं ही भीतर हो जाती है । परन्तु कारणों के बने रहने पर यह स्वयं भीतर नहीं जाती है तब हाथ से भीतर करना पड़ता है । बाहर निकली गुदा हल्के से गाढ़े लाल वर्ण की होती है । यह 5 इञ्च तक लम्बी हो सकती है ।

चिकित्सा

आधुनिक दृष्टिकोण से कारणों का निवारण ही मुख्य चिकित्सा है । भोजन की उचित व्यवस्था जो विबन्ध का कारण न बने, शौचकर्म की बच्चों को उचित शिक्षा एवं कारणों का निवारण; यथा—आन्त्रकृमि, अतिसार एवं अर्श की उचित व्यवस्था है । रूई एवं टेप लगारक शौच कर्म के बाद गुदमार्ग को सहारा देना भी व्यवस्था में है । यदि

अत्यधिक गुदभ्रंश है तो अँगुली परा शौचपत्र (Toilet paper) रखकर गुदा में धीरे-धीरे प्रवेश कराके मलाशय को अन्दर करते हैं । फिर अँगुली बाहर कर लेते हैं । कागज अन्दर रुक जाता है जो बाद में गीला होने पर बाहर आता है ।

इन सभी व्यवस्थाओं से ठीक न होने पर Perineal operation Sigmoidoplexy शल्य कर्म किया जाता है ।

आयुर्वेद-संहिताओं में इसकी चिकित्सा का विस्तृत वर्णन है—

(1) 'गुदनिःसरणे शूले पानमम्लस्य सर्पिषः ।
प्रशस्यते निरामाणामथवाऽप्यनुवासनम्' ।। (च.चि. 19:45)

गुदा के बाहर आने पर, शूल होने एवं निराम पुरीष में अम्लघृत का पान प्रशस्त है या अनुवासन बस्ति देना चाहिए ।

(2) चाङ्गेरी घृत[1] एवं चव्यादि घृत[2] का पान करायें ।

(3) अनुवासन बस्ति हेतु योगों का उल्लेख[3]—

1. दशमूल क्वाथ ।
2. बेलगिरी कल्क-साधित स्नेह ।
3. शटी, सोवा एवं बेलगिरी साधित स्नेह ।
4. वचा-साधित स्नेह ।
5. चित्रक-साधित स्नेह ।

(4) स्तब्ध गुदभ्रंश में प्रथम स्नेहन फिर स्वेदन करें । अच्छी प्रकार स्वेदन हो जाने पर अङ्गुली को पिचु से आच्छादित कर हल्के दबाव से अन्दर कर दें ।

'स्तब्धभ्रष्टगुदे पूर्वं स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
सुस्विन्नं तं मृदुभूतं पिचुना सम्प्रवेशयेत्' ।। (च.चि. 19:46)

'गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहाभ्यक्तं प्रवेशयेत् ।
कारयेद् गोफणाबन्धं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा ।
विनिर्गमार्थं वायोश्च स्वेदयेच्च मुहुर्मुहुः' ।। (सु.चि. 20:61)

सुश्रुत ने उपरोक्त कर्म के बाद अधोवायु निकलने के लिए मध्य में छेद वाली चमड़े की गोफण बन्धन से पट्टी बाँधने का एवं धीर-धीरे स्वेदन का निर्देश दिया है ।

(5) कमलिनी के कोमल पत्रों का चूर्ण कर शर्करा युक्त सेवन करायें ।[4]

---

1. चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् । घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥
2. सचव्यपिप्पलीमूलं सव्योषविडदाडिमम् । पेयमम्लं घृतं युक्त्या सधान्याजाजिचित्रकम् ॥ (च.चि. 19:43-44)
3. दशमूलोपसिद्धं वा सबिल्वमनुवासनम् । शटीशताह्वाबिल्वैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥ (च.चि. 19:45)
4. पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ (यो.र. क्षुद्ररो.चि. पृ. 285)

Scanned with CamScanner

(6) दूध में बृहत् पञ्चमूल तथा आन्त्ररहित चूहे को पकाकर इस दूध द्वारा वातघ्न औषधियों के कल्क के साथ तैलपाक करें। इसके पान करने से तथा लगाने से गुदभ्रंश ठीक हो जाता है।[1]

(7) चूहे की वसा को गुदभ्रंश पर लेप करने से या चूहे के मास को तपाकर गुदा पर स्वेद करने से गुदभ्रंश नष्ट होता है।[2]

(8) चाङ्गेरी बेर, दही, काँजी, शुण्ठी एवं यवक्षार सम भाग का कल्क बनाकर उसके चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से गुदभ्रंश की पीड़ा नष्ट हो जाती है।[3]

(9) वृक्षाम्ल, चित्रकमूल, चाङ्गेरी, बिल्व, पाठा तथा यवक्षार सम भाग लेकर चूर्ण कर तक्र के अनुपात से सेवन करने पर अग्नि दीप्त होती है एवं गुदभ्रंश नष्ट होता है[4]।

(10) मूषक तैल—चूहे का मांस एव दशमूल की मिलित औषधियाँ समभाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर उसके चौगुना तिलतैल, तैल का चौगुना उन्हीं कल्कद्रव्यों का क्वाथ लेकर सबको मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से गुदभ्रंश, गुदशूल एवं भगन्दर रोग नष्ट होता है।[5]

(11) गुदा की नाड़ी जो बाहर निकल गयी हो उसको गोदुग्ध से तरल कर निःशंक होकर प्रवेश करा दें। विशेषकर रसौत का पान एवं लेप हितकर होता है।[6]

परिकर्तिका रोग

पर्याय—गुदविदार, गुदचीर, क्षतगुद, Anal fissure।

परिकर्तिका व्याधि का वर्णन प्रायः सभी आचार्यों ने किया है। परन्तु प्रायः सभी ने इसे मुख्य व्याधि न मानकर अतिसार या विरेचन एवं वस्ति चिकित्साओं का उपद्रव माना है। वस्तुस्थिति भी इसी प्रकार है।

'गुदे कर्तनवत् पीडा' अथवा 'शूलयुक्तं कर्तनं यस्मिनत् स परिकर्तिका'।

---

1. क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकां चान्त्रवर्जिताम्। पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम्॥ गुदभ्रंशमिदं कृच्छ्रं पानाभ्यङ्गात् प्रसाधयेत्॥ (सु.चि. 20:62-63)
2. मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्। स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद् गुदम्॥
3. चाङ्गेरीकोलदध्म्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम्॥
4. वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्। तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम्॥
5. मूषकान् दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्। तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम्॥ अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति। विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगन्दराः॥
6. गुदं च गव्यपयसा वेशयेदविशङ्कितः। दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः॥ (यो.र. क्षुद्ररो.चि.पृ. 285-286) (भा.प्र. मध्यख. 61:106-111)

आयुर्वेद में बालवय से सम्बद्ध किसी भी प्रकार इस व्याधि को नहीं वर्णित किया है। परन्तु काश्यपसंहिता में इसका विवेचन है।

संक्षेप में आयुर्वेद में उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त ज्वर (च.चि. 3:186), गर्भिणी स्त्री (का.सि. 10:101) एवं वैद्यनिमित्तज परिकर्तिका (च.सि. 6:61-62 एवं सु.चि. 36:6) का भी उल्लेख है।

नवजात शिशुकाल में यह व्याधि आजकल देखने को मिलती है। 5 वर्ष के बाद के बच्चों में प्रायः यह व्याधि कम होती है।

कारण

1. अत्यधिक शौच (सफाई के द्वारा)।
2. विबन्ध।
3. कड़ा एवं बड़े आकार का गुठलीदार मल होना।
4. कृमिजन्य (Enterobius vermicularis जन्य कण्डू से)।
5. अन्य कारण।

लक्षण—मलत्याग के बाद तीव्र शूल होना, कठिन मल के पार्श्व से रक्त की धारी का होना। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद में कुछ और भी लक्षण कहे गये हैं।

'तत्र गुदनाभिमेढ्रबस्तिशिरःसु सदाहं परिकर्तनमनिलसङ्गो वायुविष्टम्भो भक्तारुचिश्च भवति'। (सु.चि. 34-16)

गुद नाभि, मेढ्र एवं बस्तिशिर प्रदेशों में दाह एवं कर्तनवत् पीड़ा, अपानवायु का रुक जाना, उदर में वायु द्वारा आध्मान तथा भोजन में अरुचि होती है।

यदि शोक की अधिकता हो तो कभी-कभी ज्वर भी हो सकता है। यदि वेदना अधिक हो तो वातसङ्ग के साथ विड्सङ्ग भी होना स्वाभाविक है। रोगी बचैन रहता है, किसी कार्य में मन नहीं लगता; बैठने, चलने या लेटने में किसी भी प्रकार आराम नहीं मिलता।

परीक्षण—शिशु को उत्तान लिटाकर पैरों को पेट पर मोड़कर गुदामार्ग का परीक्षण करते हैं। गुदौष्ठ पर व्रण, चर्मक्षत, विशेषकर पिछले भाग पर, कभी-कभी गुदचीर के मूल में चर्म बढ़कर बाहर लटका मिलता है।

चिकित्सा-सूत्र

1. व्रण ही रोग का मूल स्वरूप है अतः सर्वप्रथम व्रण शोधन एवं रोपण करें। इसके लिए औषधि-सिद्ध घृत, तैल एवं मलहम का प्रयोग करें।
2. मूल कारण (विबन्ध, अतिसार, कृमि) की चिकित्सा करें।
3. मल कठिन होने पर मृदु रेचन का प्रयोग करें।
4. वातप्रकोप ही रोग के लक्षण का मूल है अतः अनुवासन बस्ति (नारायण तैल, पञ्चगुण तैल, यष्टिमधु तैल) से सद्यः लाभ होता है।

Scanned with CamScanner

5. स्थानीय स्वेदन का प्रयोग ।
6. अग्निदीपक औषधि-प्रयोग ।
7. व्रणशोथ को कम करने हेतु उचित उपचार करें । आजकल इस हेतु जीवाणुनाशक औषधि एवं शोथघ्न औषधि का प्रयोग करते हैं ।
8. स्थानीय मलहम यथा—Proctosedyl, Anusol का प्रयोग करें ।
9. अतिवेदना में स्थानीय संज्ञाहर औषधि का प्रयोग करें ।
10. अति आवश्यक होने पर शल्य कर्म गुदाविस्फार एवं छेदन कर्म (Fissurectomy) भी कर सकते हैं ।

आयुर्वेदीय योग—वातहर तैल की वस्ति, उष्णोदक अवगाह, जातीघृत, अभयारिष्ट, गुग्गुलासव, शिग्रुगुग्गुलु, षट्पकार चूर्ण आदि ।

पश्चाद्गुज

अहिपूतना के लक्षणों जैसी एक व्याधि का वर्णन भैषज्यरत्नावली में प्राप्त होता है । (भै.र.बालरो. 79-81)

'दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं सम्पिबतः शिशोः ।
यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ।।
तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः ।
व्रणः सदाहो व्यक्तोष्मा तदास्य स्याज्ज्वरः परः ।।
हरितं पीतकं वाऽपि वर्च्चस्तेन भवेद्ध्रुवम् ।
व्रणः पश्चाद्गुजो नाम व्याधिः परमदारुणः' ।।

माता जब सदोष एवं विकृत अन्न का भोजन करके बालक को स्तन्य पिलाती है तब पित्त कुपित होकर बालक के गुदप्रदेश में व्याप्त हो जाता है । वहां जलौका सदृश व्रण, दाह एवं ज्वर को उत्पन्न कर देता है । इसमें हरित-पीत वर्ण का मलभेद (पतला मल) होता है । इस गुदाव्रणरोग को पश्चाद्गुज कहते हैं । यह रोग अत्यन्त दुःखदायक है ।

चिकित्सा—भैषज्यरत्नावली में इसकी चिकित्सा हेतु चन्दनादि लेप का विधान है ।

'चन्दनं शारिवे द्वे च शङ्खिनीति समायुतैः ।
पश्चाद्गुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु शस्यते' ।। (भै.र. बालरोग 82)

चन्दन, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा एवं शङ्खपुष्पी जल के साथ पीसकर (4 रत्ती) मधु के साथ चटायें तथा गुदा पर लेपन करें ।

सनिरुद्धगुद

पर्याय—रुद्धगुद ।

इस व्याधि की भी गणना क्षुद्ररोगों में की गयी है ।

'वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदमाश्रितः ।
निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ।।
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात् सुदुस्तरम्' ।।
(सु.नि. 13:56-57)

अपानवात तथा मलमूत्र के वेगों को रोकने से कुपित वात गुदा में जाकर महास्रोत का अवरोध करके उसके नीचे का (गुद) मार्ग सङ्कुचित कर देती है, इस तरह मार्ग के छोटे होने से उस मनुष्य का मल कठिनता से बाहर निकलता है । इस प्रकार के उत्पन्न सुदुस्तर रोग को सन्निरुद्ध गुद कहते हैं ।

'वेगसन्धारणाद्वायुरपानोऽपानसंश्रयम् ।
अणूकरोति बाह्यान्तर्मार्गमस्य ततः शकृत् ।।
कृच्छ्रान्निर्गच्छति व्याधिरयं रुद्धगुदो मतः' । (अ.हृ.उ. 31:22)

वायु एवं मल के वेग को रोकने से कुपित अपान वायु गुदा का आश्रय लेकर बाहर एवं अन्दर का मार्ग छोटा कर देती है । इस रोग में मल कठिनाई से बाहर आता है । इस रोग को रुद्धगुद कहते हैं ।

विद्वानों ने इसे Stricture of the rectum माना है । प्रवाहिका, अतिसार, अर्श आदि में गुदा में व्रण, व्रणवस्तु (Scar) एवं सङ्कोच (Stricture) बन जाता है ।

कभी-कभी गर्भदोष से जन्म से ही गुदमार्ग बन्द रहता है जिसे Imperforated anus कहते हैं । इसकी गणना भी विद्वानों ने इसी के अन्तर्गत कर ली है ।

चिकित्सा—सुश्रुत ने सन्निरुद्धगुद की चिकित्सा निरुद्धप्रकश की तरह करने को कहा है ।[1]

'सन्निरुद्धगुदे योज्या निरुद्धप्रकशक्रिया' । (सु.चि. 20:47)

वागभट ने भी चिकित्सा 'निरुद्ध मणि' की भाँति करने को कहा है ।

'निरुद्धमणिवत्कार्यं रुद्धपायोश्चिकित्सितम्' । (अ.हृ.उ. 32:11)

सामान्य रूप से इसकी चिकित्सा में पैराफिन देकर मल त्याग कराना चाहिए । इसके बाद भी आराम न होने पर गुदवर्तियों (Gum elastic rectal bougies) का प्रयोग करते हैं । अन्त में गुदविस्फार ही चिकित्सा है ।

*

1. निरुद्धप्रकश (निरुद्धमणि) की चिकित्सा 'सामान्य व्याधि-प्रकरण' में देखिए ।

Scanned with CamScanner

अध्याय - 13
यकृत्-विकार

आयुर्वेद-संहिताओं में यकृत् तथा यकृद् विकारों के विषय में बहुत ही अल्प वर्णन मिलता है। यकृत् का वर्णन प्लीहा के साथ ही करते हुए आचार्यों ने प्लीहा के समान ही विवेचन करने को कहा है—

'सव्येतरस्मिन् यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव'। (सु.नि. 7)

अर्थात् दक्षिणपार्श्व में इसी प्रकार यकृत् के बढ़ा होने पर यकृद्दाल्युदर समझना चाहिए। प्राय: सभी आचार्यों ने निदान, लक्षण तथा चिकित्सा की समानता को दृष्टिगत करते हुए प्लीहोदर के समान ही यकृतोदर को वर्णित कर दिया है। यह सत्य है कि कुछ व्याधियों में यकृत् व प्लीहा की वृद्धि एक साथ होती है। इसी कारण कुछ विद्वानों का यह मानना है कि प्लीहा वृद्धि के साथ हुई यकृत्-वृद्धि को ही यकृद्दाल्युदर कहा गया है। यकृतोदर का आयुर्वेद में कहीं भी स्वतन्त्र वर्णन नहीं है। वस्तुस्थिति भी ऐसी ही प्रतीत होती है।

इस अध्याय में हम यकृत-विकारों का ज्ञान आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में करेंगे। प्राय: समस्त यकृत-विकारों के निदान में सहायक निम्नाङ्कित बिन्दु होते हैं।

1. इतिवृत्त एवं शारीरिक परीक्षणों द्वारा लक्षणों का उचित निदान करना।
2. उचित यकृत् कार्य प्रयोगशाल-परीक्षणों का निश्चय करना।
3. यकृत्-ऊतक परीक्षण (Biopsy) एवं अन्य विधियों का उचित समय पर उचित उपयोग।

उपर्युक्त निर्देशों के अन्तर्गत आने वाले सामान्य लक्षणों एवं प्रयोगशालीय परीक्षणों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

सामान्य लक्षण

नवजात शिशु काल (प्रथम वर्ष) में यकृत्-विकार होने पर पारिवारिक इतिवृत अति आवश्यक है। वंशानुगत विकार एवं जन्मजात विकृति उन यकृत् एवं पित्ताशय आदि (Biliary tract) के विकारों का कारण हो सकते हैं। जिनके लक्षण कुछ दिन या सप्ताह में जन्म के बाद उत्पन्न होते हैं तथा उचित समय पर निदान एवं चिकित्सा न होने पर उनका स्वरूप जीर्ण हो सकता है या मृत्युकारक सिद्ध हो सकते हैं। यकृत्-विकारों के दो ही प्रमुख लक्षण हैं—

(1) कामला

नवजात शिशुओं के प्राय: सभी यकृत्-विकारों में सर्वप्रथम मिलने वाला लक्षण है। यथा—संक्रमणजन्य (Sepsis) जैसा सामान्य कारण हो सकता है, चयापचय विकृतिजन्य चिकित्सकीय कारण Galactosemia हो सकता है, अथवा जन्मजात पित्त-नलिका की कुरचना का परिणाम हो सकता है जिसमें शल्यकर्म आवश्यक है। माता के गर्भधारण पूर्व या गर्भधारण काल में कामला से पीड़ित होने के इतिवृत्त से ऐसी सम्भावना बनती है कि बच्चे में Hepatitis B संक्रमण माता से आ गया हो। बड़े बच्चों में कामला का कारण प्राय: Hepatitis A संक्रमण होता है। इसी तरह कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी हो सकते हैं। जिन्हें संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है—

(अ) नवजात शिशु एवं 1 वर्ष वय तक के काल में होने वाले कामला के कारण—

1. संक्रमण जन्मजात या बाद में हो। उदाहरण स्वरूप=जीवाणुजन्य; यथा—E.coli, विषाणुजन्य Hepatitis, खसरा आदि अन्य संक्रमण यथा उपदंश (Syphilis), Toxoplasmosis आदि।

2. चयापचय दोषजन्य—वंशानुगत (एल्फा 1 एण्टीट्रीपसीन-अल्पता Galactosemia, Cystic fibrosis आदि), बाद में आगत कारण; यथा—Cholestasis.

3. अज्ञात कारणजन्य—नवजात शिशु यकृत् शोथ (Neonatal hepatitis), पारिवारिक सिरोसिस (Familial cirrhosis) आदि।

4. पित्तवह नलिका की कुरचना—Atresia, Hypoplasias, Cystic malformation.

(ब) बाल्यकाल एवं यौवन काल—

1. जीर्ण यकृत् शोथ (Chronic hepatitis)।
2. वंशानुगत कारण—Wilson disease, Cystic fibrosis आदि।
3. कैंसर=Leukemia, अर्बुद, Lymphoma आदि।
4. रासायनिक कारण—विष, अधिक मात्रा में विटामिन्स का प्रयोग; यथा—यकृत् को हानि पहुँचाने वाले द्रव्य एवं औषधि आदि का प्रयोग।
5. कृमिजन्य संक्रमण—Leptospirosis, Schistosomiasis आदि।
6. अज्ञात कारणजन्य—यथा आन्त्रशोथ (Ulcerative colitis), Rheumotoid arthritis आदि।

(2) यकृत्-वृद्धि

यकृत् विकारों का यह दूसरा परन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यकृत् की वृद्धि, आकार, स्पर्श, यकृत् का किनारा एवं सतह का परीक्षण महत्त्वपूर्ण सङ्केत देता

Scanned with CamScanner

है। नवजात शिशु में दक्षिण भाग में, पार्श्वकाओं के नीचे उदर में 2-3 से.मी. यकृत् स्पर्श में अनुभव होता है। कुछ बड़े शिशुओं में मात्र 1-2 से.मी. स्पर्श होता है। कभी-कभी यकृत् का स्वस्थान से च्युत हो जाना (किसी अङ्ग के दबाव के कारण या अभ्यङ्ग से) भी यकृत् वृद्धि का भ्रम पैदा करता है, जिसे यकृत् के ऊपरी किनारे की ताड़न-परीक्षा द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यकृत् स्पर्श-परीक्षा में दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू उसका शूलयुक्त होना है। अर्थात् स्पर्श पर कष्ट होता है या नहीं। यकृत् की श्रवण-परीक्षा Bruits (Murmur) के लिए करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बहुत-से यकृत् से असम्बद्ध लक्षण भी यकृत्-विकार को इङ्गित करते हैं, यथा जन्मजात मोतियाबिन्द Galactosemia में, फुफ्फुस में असामान्य ध्वनि Cystic fibrosis में, आदि नवजात शिशुओं में, कण्डू, Chronic cholestasis, त्वचा में शुष्कता एवं कड़ापन (Carotenemia) विटामिन A के आधिक्य में, गलशुण्डि शोथ (Glossitis) का Cirrhosis में होना बड़े बच्चों में सामान्य क्रम है। नीचे उन यकृत् व्याधियों का उल्लेख किया गया है जिनमें यकृत् की वृद्धि होती है—

1. जन्मजात यकृत्—Fibrosis.
2. हृदय-व्याधि—Congestive heart failure.
3. चयापचय विकार—Reye's syndrome, Glycogenesis, Gaucher's disease आदि।
4. कुपोषणजन्य—क्वाशिआरकर, मधुमेह, अति कैलोरी का प्रयोग।
5. विविध—Leukemia, Lymphoma, Hepatoblastoma, Hematoma, Neuroblastoma, Wilm's tumor आदि।

यकृत् कार्य : प्रयोगशालीय परीक्षण
(Laboratory Function Test)

इसके अन्तर्गत कुछ विशिष्ट परीक्षण प्रयोगशाला में किये जाते हैं तथा जिनके द्वारा विशिष्ट-व्याधियों का निदान सम्भव होता है; यथा—

(1) सीरम बिलीरुबिन (Serum Bilirubin)—कामला के वर्गीकरण में (अर्थात् hepatic है या hemolytic है) तथा यकृत् से पित्त के स्राव में कहाँ विकृति है (Hepatocellular या Biliary exceretory dysfunction) का एवं Severe hepato cellular Failure के ज्ञान में सहायक होता है।

सामान्य मात्रा—0-1 मि.ग्रा.

(2) ट्रांसमिनेज (SGOT & SGPT)—यकृत् में अल्प विकार होने पर भी यह परीक्षण महत्त्वपूर्ण संकेत दे देता है। इसका प्रयोग यकृत् पर दुष्प्रभाव डालने वाले द्रव्यों के प्रयोग का प्रभाव जानने हेतु, जीर्ण यकृत् विकार में औषधि का प्रभाव जानने हेतु तथा Viral hepatitis, Fulminant hepatitis के निदान में करते हैं।

सामान्य मात्रा—

Alanine amino - transferase ALT (SGPT)-5-25 IU/L
Asparate amino - transferase AST (SGOT)-10-40 IU/L

(3) एलकलाइन फास्फेटेज (Alkaline phosphatase)—इसके द्वारा पित्तवह संस्थान (Biliary tract) के अवरोधजन्य या शोथजन्य विकार का ज्ञान होता है।

सामान्य मात्रा—100-400 IU/L

(4) सीरम एल्ब्यूमिन (Serum albumin)—इसके द्वारा यकृत् की कुछ महत्त्वपूर्ण व्याधियों; यथा Cirrhosis, Chronic active hepatitis आदि का ज्ञान होता है।

सामान्य मात्रा—

Total Protein - 5.5-8.0 ग्रा./डे.ली.
Albumin - 3.5-5.5 ग्रा./डे.ली.
Albulin - 2.0-2.5 ग्रा./डे.ली.

(5) प्रोथ्रोम्बिन काल (Prothrombin time)—बढ़ा हुआ समय Reye Syndrome या Massive hepatic necrosis को एवं औषधि के विष-प्रभाव को इङ्गित करता है। यदि विटामिन K देने पर भी समय कम न हो तो यह extensive hepatocellular destruction, यकृत् जन्य मूर्च्छा, तन्द्रा आदि को इङ्गित करता है।

सामान्य मात्रा—

Prothrombin - 10-15 सेकेण्ड
Bleeding time (Skin puncture - 2-7 मिनट
Clotting time (Glass tube) - 5-12 मिनट

उपरोक्त के अतिरिक्त भी कुछ अन्य परीक्षण L.F.T. के अन्तर्गत होते हैं। इनका विशिष्ट वर्णन आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की पुस्तकों में देखा जा सकता है।

अन्य विशिष्ट परीक्षण

1. यकृत् ऊतक परीक्षण (Percutaneous liver biopsy)।
2. एक्स-रे परीक्षण—
   Ultrasonography.
   Radionuclide scanning.
   Computed tomography.
   Transhepatic and Endoscopic cholangiography.

Scanned with CamScanner

बच्चों को दो सामान्य व्याधियों नवजात शिशु यकृत् शोथ (अ. 6) तथा नवजात शिशु कामला (अ. 5) का वर्णन पिछले अध्यायों में दिया जा चुका है। इस अध्याय में यकृत् की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्याधि का वर्णन किया गया है। जिसे भारतीय बच्चों का यकृत् सिरोसिस (Indian Childhood Cirrhosis) के नाम से जाना जाता है।

भारतीय बच्चों का यकृत् सिरोसिस (I.C.C.)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में 1887 में बी.सी. सेन ने सर्वप्रथम इस व्याधि का वर्णन किया तथा इसे Sen's Syndrome कहा गया[1]। 1855 में इसे 'Infantile Cirrhosis of the Liver in India' नाम दिया गया[2] तथा 1960 में I.C.C. के नाम से इङ्गित किया गया जो आज भी जाना जाता है।[3]

परिभाषा एवं परिचय

इस व्याधि को बहुत प्रकार से विद्वानों ने परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों ने यकृत् की संरचना की विकृति का आधार माना है तो किसी ने सहायक कारणों को महत्त्वपूर्ण माना है। परन्तु अरविन्द जी भागवत द्वारा दी गयी यह परिभाषा चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

"Idiopathic non-alcoholic cirrhosis with progressive splenic enlargement and a fatal end following hematemesis."

अर्थात् अज्ञात कारणजन्य सिरोसिस जिसमें क्रमशः प्लीहा-वृद्धि होती हो तथा जिसका अन्तरक्त वमन के साथ ही वह असाध्य व्याधि I.C.C. है।

100 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी एवं इस व्याधि पर बहुत कुछ शोध कार्य होने के बाद आज भी इस व्याधि का कारण अज्ञात है। इसकी चिकित्सा भी सम्भव नहीं है और यह व्याधि चिकित्सकों के लिए एक चुनौती बनी हुई है।

निदान—जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि इस व्याधि का कारण ज्ञात नहीं है फिर भी जो कुछ प्रयास सफल हुए हैं उसे निम्न दो वर्गों में रख सकते हैं—

(1) सहायक कारण

(1) वय एवं लिङ्ग—यह व्याधि 1 से 3 वर्ष के बच्चों में एवं विशेष रूप से लड़कों में (3:1) मिलती है।

1. बी.सी.सेन., इण्डियन मेडिकल गजट, 22 : 338, 1887।
2. आई.सी.एम.आर. रिपोर्ट 1955।
3. एस.टी. आचार्य एवं अन्य,Indian Childhood Cirrhosis, ज. पेडियाट्रिक 57: 744,1960।

(2) जाति एवं धर्म—मुसलमानों एवं ईसाइयों की अपेक्षा हिन्दू बच्चों में विशेषकर बनिया, ब्राह्मण एवं कायस्थ जाति में यह व्याधि अधिक होती है।

(3) भौगोलिक स्थिति—भारत में यह व्याधि सभी स्थानों पर मिलती है। इसके साथ-साथ श्रीलंका, इण्डोनेशिया, पश्चिम अफ्रीका, इसरायल एवं वर्मा में भी पायी जाती है। अब तक 14 देशों में यह व्याधि देखी गयी है।

(4) पारिवारिक इतिवृत्त—यह व्याधि प्रथम एवं चतुर्थ क्रम की सन्तान में प्रायः मिलती है। यह रोग प्रायः विशिष्ट परिवार के अनेक भाई-बहनों में मिलता है। यह व्याधि प्रायः शाकाहारी परिवार में मिलती है।

(5) सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति—यह रोग प्रायः सभी प्रकार के सामाजिक व आर्थिक वर्ग में मिलता है। परन्तु प्रायः गरीबों में नहीं दिखाई पड़ती।

(2) सम्भाव्य कारण

अज्ञात कारणजन्य इस व्याधि के कारणों का पता लगाने के बहुत-से प्रयास हुए हैं। उन प्रयासों (Hypothesis) का संक्षिप्त उल्लेख निम्न है—

(1) पोषणाभाव—प्रोभूजन की अल्पता को I.C.C. से जोड़ने का प्रयास किया गया। परन्तु प्रत्येक क्वाशिआरकर के रोगी को I.C.C. नहीं होता। अतः यह कारण मानना सम्भव नहीं है।

(2) संक्रमण—कुछ विद्वानों ने जीवाणु-संक्रमण कारण माना है। कभी-कभी राजयक्ष्मा सहयोगी व्याधि के रूप में मिलता है। कुछ विद्वान् विषाणु (Virus) को कारण मानते हैं। इधर $ECHO_1$ Virus को I.C.C. के रोगी में पाये जाने का प्रमाण इसके पक्ष में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु Infective hepatitis के व्यापक रूप से फैले क्षेत्र में I.C.C. का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ना, इस सिद्धान्त को काटता है एवं दोनों के द्वारा यकृत् में उत्पन्न विकृति (Histopathology) समान नहीं मिलती।

(3) विष-प्रभाव—पहले किसी अज्ञात विष को Non-specific और अब Aflotoxin को इस व्याधि का कारण मानते हैं। यह विष Aspergillus flavus नामक फंगस से होता है। इसके कई प्रकार हैं जिनमें B_1 अधिक घातक है। जब यह विष स्तन्य में निकलता है तो इसे Aflotoxin M. कहते हैं। यह फङ्गस मूँगफली एवं उबले चावल में मिलता है। परन्तु अभी तक इस विष के प्रभाव एवं I.C.C. में विधि-पूर्वक सामञ्जस्य नहीं स्थापित हो सका है।

(4) इम्यूनिटी (Autoimmune body)—विभिन्न वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के इम्यूनोग्लोबिन की उपस्थिति एवं I.C.C. से सम्बन्ध स्थापित किया है। यथा—IgC, IgM, IgA आदि। वर्तमान में AFP (Alpha-fetoprotein) के उपस्थिति एवं I.C.C. में अत्यधिक सामञ्जस्य स्थापित हुआ है। आगे होने वाले शोधकार्य सही स्थिति पर प्रकाश डाल सकेंगे।

Scanned with CamScanner

(5) इनके अतिरिक्त वंशानुगत (Genetic) एवं चयापचय दोष (Metabolic) कारण भी इस व्याधि के समझे जाते है ।

(6) आटो-इम्यून सिद्धान्त (Autoimmune theory)—इस समय 60% रोगियों में Autoliver antibodies की उपस्थिति के कारण इसको महत्त्वपूर्ण कारण के रूप में देखा जा रहा है । साथ ही सीरम Immunoglobulins की वृद्धि, Hepatitis antigen की उपस्थिति एवं Smooth पेशियों में Auto antibodies का पाया जाना इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है । यह सभी प्रमाण ICC के निश्चयात्मक रुग्णों में मिलते हैं । अत: अभी इनका कारण के रूप में सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाया है ।

अन्त में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कोई भी एक कारण I.C.C. की उत्पत्ति नहीं करता वरन् यह सम्भव है कि वंशानुगत कारण (Genetically Prone) से ग्रस्त शिशु पर अन्य एक या बहुत-से कारणों का; यथा—विष, कुपोषण, इम्यूनिटी आदि का प्रभाव पड़ता हो तथा व्याधि उत्पन्न होती हो ।

लक्षण—यह व्याधि क्रमश: धीरे-धीरे अथवा एकाएक दो रूपों में प्रकट होती है । सर्वप्रथम क्रमश: धीरे-धीरे होने वाले स्वरूप के लक्षण वर्णित कर रहे हैं ।

यह व्याधि लक्षणों के आधार पर निम्न तीन स्थिति में बाँटी जा सकती है परन्तु सभी स्थितियाँ एकदम स्पष्ट रूप से अलग-अलग न होकर मिश्रित होती हैं ।

(1) प्रथमावस्था—इस अवस्था में विभिन्न लक्षण मिलते हैं । यथा—आध्मान, अरुचि या क्षुधा की स्थिति में परिवर्तन, चिड़चिड़ापन, हल्का ज्वर, विबन्ध या अतिसार (जिसमें मिट्टी के वर्ण का चिपचिपा मल निकलता है) एवं शिशुविकास-दर का प्रभावित होना आदि । यकृत् दक्षिण-पार्श्व में 3 से 5 से.मी. पार्श्वकाओं से बाहर आ जाता है अर्थात् वृद्धि होती है । स्पर्श में कड़ा, किनारे स्पष्ट एवं पत्र के किनारों जैसे स्पष्ट होते हैं ।

(2) द्वितीय अवस्था या मध्यमावस्था—व्याधि की उग्रता में वृद्धि के साथ-साथ प्रथमावस्था एवं मध्यमावस्था में परिवर्तित हो जाती है तथा रोग का निदान प्राय: इस अवस्था में हो जाता है । क्षुधा में परिवर्तन, चिड़चिड़ापन, कामला, रक्तवमन, उदरवृद्धि, पाण्डु, कभी-कभी ज्वर तथा साथ में अतीसार या विबन्ध भी मिलता है । यकृत् की और वृद्धि हो जाती है तथा वह नाभि तक उपस्थित हो सकता है । उसकी सतह दानेदार (Granular) प्रतीत होती है । प्लीहावृद्धि, जलोदर, उदर पर नीली शिराओं का जाल मिलता है । इसी अवस्था को देखकर 'मुखमण्डिका' नामक बालग्रह से इस व्याधि की तुलना की जाती है ।

(3) तृतीय अवस्था या अन्तिम अवस्था—अन्त में रोगी पूर्णरूपेण असाध्य या अरिष्ट अवस्था में पहुँच जाता है । शिशु अत्यन्त चिड़चिड़ा, वातावरण से एकदम रुचिहीन, अरुचि, भूख न लगना तथा अनियमित ज्वर युक्त होता है । तीव्र स्वरूप का

कामला एवं सार्षप तैलवत् मूत्र का त्याग करता है । मल एकदम मिट्टी के समान वर्ण का होता है । कभी रक्तमिश्रित होने से काले वर्ण का मल होता है । यह रक्त Varicose vein के द्वारा अन्नवह स्रोतस् में निकलता है । उदर वृद्धियुक्त एवं उदर पर फैली हुई शिराओं का जाल दीखता है । जलोदर एवं पादशोथ मिलता है । यकृत् स्पर्श में कड़ा, शूलरहित, दानेदार एवं स्पष्ट किनारों युक्त मिलता है । इसका आकार घटने लगता है । प्लीहा की और वृद्धि हो जाती है, सर्वाङ्गशोथ एवं पाण्डु भी स्पष्ट होता है ।

यह अवस्था क्रमश: अरिष्ट लक्षण युक्त होती जाती है, यथा—सदैव कष्ट की अनुभूति, आराम न मिलना एवं भ्रम तथा धीरे-धीरे बेहोशी होना (Hepatic coma) आदि और अन्तत: शिशु की मृत्यु हो जाती है । इस व्याधि का क्रियाकाल 6 माह से 3 वर्ष तक का होता है ।

I.C.C. का तीव्र स्वरूप—प्राय: 33% रोगियों में व्याधि एकाएक कामला, ज्वर, मिट्टी के वर्ण के मल के साथ यकृत् वृद्धि युक्त लक्षणों से प्रकट होती है । यह व्याधि तीव्रगति से बढ़ती हुई बेहोशी (Hepatic coma) में चली जाती है । इसे Malignant hepatitis भी कहते हैं ।

नैदानकीय परीक्षण—इस व्याधि में प्रयोगशाला परीक्षण का बहुत महत्त्व नहीं है । प्रारम्भिक अवस्था में प्राय: सभी Liver function test सामान्य होते हैं तथा बाद में सभी असामान्य हो जाते हैं । यकृत्-ऊतक परीक्षण (Liver biopsy) ही इसका निश्चयात्मक निदान करता है ।

चिकित्सा—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चिकित्सा के दृष्टिकोण से व्याधि असाध्य है । अत: धैर्य एवं कालापेक्षी व्याधि है । लाक्षणिक चिकित्सा करते हैं । आहार में प्रोभूजन की मात्रा आधक एवं घृत-तैल की मात्रा कम देते हैं । मूर्च्छा की अवस्था आने पर प्रोभूजन भी कम कर देते हैं । शर्करा (Glucose) की मात्रा बढ़ा देते हैं । शोथ बढ़ने पर नमक कम कर या बन्दकर मूत्रल औषधियों का प्रयोग करते हैं । कुछ चिकित्सक व्याधि के प्रारम्भ में Corticosteriod, Gamma globulins, d-Penicillamine या Levamisol के प्रयोग को मान्यता देते हैं ।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से काष्ठौषधियों पर हुए विभिन्न शोध के दृष्टिकोण से पुनर्नवा (हरा), पुष्करमूल एवं Liv-52 नामक औषधि योग कुछ लाभकारी सिद्ध हुए है । आयुर्वेद के विद्वान् बालयकृदारि लौह, बृहत् लोकनाथरस, पुनर्नवामण्डूर, आरोग्य-वर्धिनी आदि का प्रयोग करते हैं । परन्तु लाभ की दृष्टि से यहाँ अभी बहुत ही शोध की आवश्यकता है ।

आयुर्वेदिक पादप औषधियों को अब आधुनिक चिकित्सक भी लाभप्रद मानने लगे हैं । IAP Text Book of Pediatrics ने Herbal Hepatic supportives तथा Antioxidants को चिकित्सा-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । (प्रथम संस्करण 1999)

Scanned with CamScanner

रे का सिंड्रोम
(Reye's Syndrome)

कामलाविहीन यकृत् वृद्धि, जिससे यकृत् कार्य नहीं करता, एकाएक वमन एवं आक्षेप होने लगता है। रक्त में शर्करा की मात्रा घट जाती है एवं विभिन्न स्थलों से रक्त-स्राव होने लगता है। अज्ञात कारणजन्य इस व्याधि का कारण कुछ शोधकर्ता विषाणु या विष को मानते हैं। मूर्च्छा आने के 24 घण्टे के अन्दर शिशु की मृत्यु हो जाती है। यदि मृत्यु न हुई तो अपस्मार, अर्धाङ्गघात एवं मानसिक विकास में विकृति हो जाती है।

चिकित्सा—कारण ज्ञात न होने से चिकित्सा भी ज्ञात नहीं है। आहार में शर्करा अधिक तथा प्रोभूजन कम देते हैं। लाक्षणिक चिकित्सा करते हैं। Cortisone से कुछ लाभ मिलता है। बच्चे का रक्त भी बदला जाता है।

विल्सन रोग
(Wilson's Disease)

यह जन्मजात होने वाली व्याधि, प्रोभूजन में ताम्र के न मिल पाने के कारण होती है। शरीर में ताम्र की मात्रा बढ़ जाती है। कार्निया के ऊपर तथा नीचे केसर-फ्लेशर की मुद्रिका बनती है। इस व्याधि को Hepatolenticular degeneration भी कहते हैं।

चिकित्सा—आहार में प्रोभूजन की मात्रा बढ़ाना एवं ताम्र की मात्रा कम कर देना चाहिए। BAL का प्रयोग लाभकर है। पोटेशियम सल्फाइड देने से ताम्र का आन्त्र से चूषण कम हो जाता है।

*

अध्याय - 14

मृत्तिकाभक्षणजन्य व्याधि

शिशुओं का मिट्टी खाना एक समस्या है। ऐसा प्राय: देखने को मिलता है। मिट्टी खाने पर न तो स्वयं पचती है और न ही खाये गये खाद्य पदार्थों का पाचन व शोषण होने देती है। साथ में संक्रमण के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करती है।

'नित्यं मृद्भक्षणाद्रक्षेत्तया स्युर्नियतं गदाः।
पाण्डुत्वश्वयथुश्वासकासातिसारजन्तवः॥
छर्दिमूर्च्छाग्निसदनस्तन्यद्वेषाङ्गरुग्भ्रमाः' ॥ (अ.सं.उ. 1:74)

नित्य मिट्टी खाने से पाण्डु, शोथ, कास, अतिसार, कृमि, छर्दि, मूर्च्छा, अग्नि-मान्द्य, स्तन्य-द्वेष एवं भ्रम आदि रोग होते हैं।

प्राय: 4 वर्ष तक के बच्चों में मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है। वे मिट्टी, चाक, खड़िया आदि खाने लगते हैं। इससे सामान्यरूप से कुपोषण, शोथ एवं उदर-कृमि हो जाते हैं।

आचार्य चरक ने पाण्डु के सन्दर्भ में इसका विस्तृत उल्लेख किया है—

'मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं विरूक्षयेत्।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च॥
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम्॥
शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूः शूनपात्राभिमेहनः।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक् कफान्वितम्' ॥
(च.चि. 16:26-29)

मिट्टी के रस के अनुरूप रोगियों में तीनों दोषों में से कोई एक दोष कुपित हो जाता है। यथा—

मिट्टी का रस	दोषप्रकोप
कषाय	वात
ऊसर (क्षारयुक्त)	पित्त
मधुर	कफ

Scanned with CamScanner

रूक्ष होने के कारण मिट्टी रस आदि धातुओं तथा भुक्त आहार को रूक्ष कर देती है। जिससे मिट्टी पचती नहीं है तथा अपक्व ही वह स्रोतों में भर जाती है। मार्गावरोध हो जाता है, परिणामस्वरूप इन्द्रियों के बल, तेज एवं वीर्य-नाश होकर पाण्डुरोग पैदा हो जाता है। इस पाण्डुरोग में बल, वर्ण एवं अग्नि नष्ट हो जाती है। रोगी के गण्ड, अक्षिकूट एवं भ्रू पर शोथ हो जाता है। पेट में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं एवं रोगी को रक्त तथा कफमिश्रित अतिसार होता है।

चिकित्सा—निदानपरिवर्जन ही मुख्य चिकित्सा है। मिट्टी खाना जब तक शिशु बन्द नहीं करेगा तब तक कोई चिकित्सा लाभ नहीं करेगी। इस हेतु कुछ लोग कटु-तिक्त रस मिश्रित मिट्टी बच्चे को देने का विचार करते हैं, इससे शिशु मिट्टी कटु होने से खाना छोड़ देता है परन्तु अभिभावक ही इस समस्या का समाधान कर सकता है। आधुनिक चिकित्सा की दृष्टि से इसके बाद लाक्षणिक चिकित्सा एवं श्रेष्ठ आहार ही चिकित्सा है।

'यथादोषं प्रकुर्वीत भैषज्यं पाण्डुरोगिणाम्।
क्रियाविशेष एषोऽस्य मतो हेतुविशेषतः' ॥ (च.चि. 16:123)

दोषज पाण्डुरोगों में कही गयी चिकित्सा के अनुसार मृत्तिकाभक्षणजन्य पाण्डु में भी वही चिकित्सा दोषानुसार करें।

'पाठावेल्लद्विरजनीमुस्तभार्गीपुनर्नवैः।
सबिल्वत्र्यूषणैः सर्पिर्वृश्चिकालीयुतैः शृतम् ॥
लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः'। (अ.हृ.उ. 2:76-77)

पाठा, वायविडङ्ग, हरिद्राद्वय, मुस्ता, भार्ङ्गी, पुनर्नवा, बिल्व, त्रिकटु एवं वृश्चि-काली सिद्ध घृत चटाने से शिशु मृत्तिकाभक्षणजन्य रोगों से मुक्त हो जाता है।

'इन्दुलोचननेत्राणि शिखिभागं हि योजयेत्।
त्रुटिगन्धकमुर्दाडशतपुष्पा विचूर्णिता ॥
माषद्वयं गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्चकम्।
रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम्' ॥ (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 444)

मृत्तिका भक्षण करने वाले शिशु को निम्न चूर्ण यथाबल मात्रा से गोदुग्ध के अनुपान से 5 दिन तक सेवन करायें। इससे उदर से मृत्तिका का रेचन हो जाता है।

योग—	छोटी एला	1 भाग
	शुद्ध गन्धक	2 भाग
	मुर्दा शङ्ख	2 भाग
	शतपुष्पा	3 भाग

'निपातयेच्छरीरात्तु मृत्तिकां भक्षितां भिषक्।

युक्तिज्ञः शोधनैस्तीक्ष्णैः प्रसमीक्ष्य बलाबलम् ॥
शुद्धकायस्य सर्पींषि बलाधानानि योजयेत्' ॥
(च.चि. 16:117-118)

युक्ति को जानने वाला चिकित्सक खाई हुई मिट्टी को रोगी के बलाबल के अनुसार तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा उसके शरीर से निकाल दें। शरीर के शुद्ध होने पर बल देने वाले घृतों का प्रयोग करायें।

चरक ने व्योषाद्य घृत (च.चि. 16:118-119) का प्रयोग बताया है तथा नागकेशर, मधुयष्टी, पिप्पली एवं दूर्वा का चतुर्थांश मिलित कल्क से चतुर्गुण दुग्ध द्वारा साधित घृत देने को भी कहा है।

'तद्वत्केशरयष्ट्याह्वपिप्पलीक्षीरशाद्वलैः'। (च.चि. 16:121)

मृत्तिकाभक्षणजन्य रोगों में पाण्डु के बाद या साथ कृमियों का उदर में होना विशेष महत्त्व रखता है। अतः कृमियों के नाश की चिकित्सा करनी चाहिए।

शिशुओं की उदरकृमि

शिशु-चिकित्सा की दृष्टि से कृमियों की चिकित्सा का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विकृतिविज्ञान में कृमियों के स्वरूप एवं मल में पाये जाने वाले रूप का विस्तृत विवेचन द्रष्टव्य है। यहाँ पर उनका संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जा रहा है।

आयुर्वेद-संहिताओं में 20 प्रकार के कृमियों का वर्णन अल्प मतामतान्तर से मिलता है—

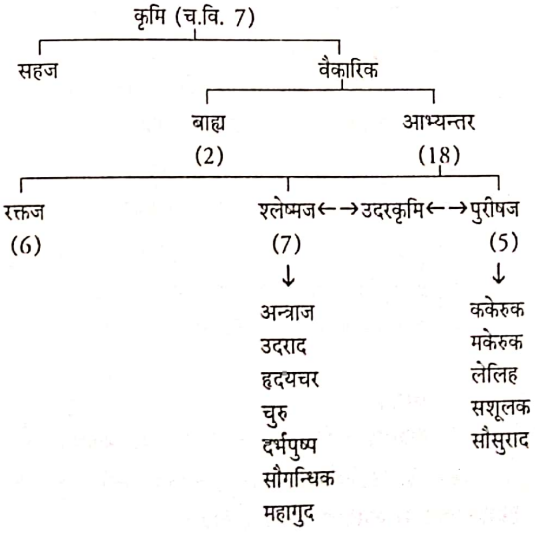

Scanned with CamScanner

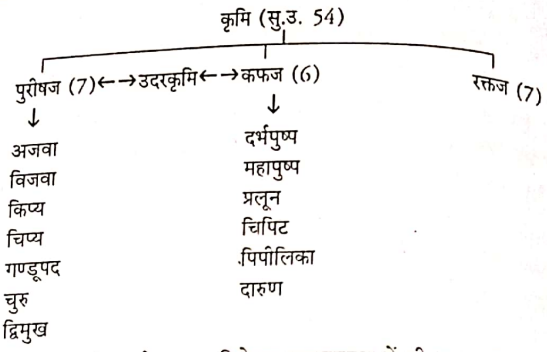

प्राय: चरकसंहिता के समान विवेचन अष्टाङ्गहृदय में भी प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक दृष्टिकोण से बच्चों में निम्न कृमि महत्त्वपूर्ण हैं—

एस्करिस, सूत्रकृमि, जियार्डिया, हुकवर्म एवं अमीबा। आश्चर्यजनक सत्य है कि चरक के सहपाठी हारीत ने अपनी संहिता में (इतिहासकार उपलब्ध हारीतसंहिता 12वीं शती की मानते हैं। इस दृष्टिकोण से भी वर्णन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्राय: कृमियों का आधुनिक वर्णन 17वीं शती के पास से प्रारम्भ है।) कुछ इसी प्रकार का उल्लेख किया है—

'कृमयो द्विविधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवा: ।
सप्तविधो भवेद्बाह्य: षड्विधोऽन्त: समुद्भव: ।।
कफकोष्ठं मलाधारं कोष्ठे सर्पन्ति सर्पवत् ।
पृथुमुण्डा भवन्त्येके केचित्किशुकसन्निभा: ।।
धान्याङ्कुरनिभा: केचित् केचित् सूक्ष्मास्तथाणव: ।
सूचीमुखा: परिज्ञेयाश्चान्त्राणि सीदयन्ति ते' ।। (हा.तृ. 5:2-11)

कृमि 2 प्रकार के होते हैं—बाह्य एवं आभ्यन्तर। इसमें आभ्यन्तर कृमि 6 प्रकार के होते हैं। इनके नाम ही इनके स्वरूप का बोध कराते हैं—

1. पृथुमुण्डा अर्थात् चौड़े सिर वाले स्फित कृमि (Tape worm)।
2. केंचुए के समान अर्थात् गोल लम्बा (Round worm)।
3. धान्याङ्कुर के समान अर्थात् छोटे श्वेत (Pin worm)।
4. सूक्ष्म।
5. अणु।
6. सूचीमुख अर्थात् सूची के समान मुख, अणुवत् (Amoeba)।

अत: ऐसा विचार बनता है कि आयुर्वेद की दृष्टि से कृमियों पर विचार करते समय हारीतसंहिता का वर्णन भी देखना चाहिए।

आभ्यन्तर कृमि द्वारा उत्पन्न सामान्य लक्षण—

'ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोग: सदनं भ्रम: ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम्' ।। (सु.उ. 54-19)

ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग, अङ्गशैथिल्य, भ्रम, अरुचि एवं अतिसार सामान्य लक्षण हैं।

कफज कृमियों द्वारा उत्पन्न सामान्य लक्षण—

'हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान्' ।। (अ.हृ.नि. 14:50)

इनके कारण मिचली, लालास्राव, अजीर्ण, अरुचि, मूर्च्छा, छर्दि, ज्वर, आनाह, कृशता, छींक एवं पीनस रोग की उत्पत्ति होती है।

पुरीष-कृमियों द्वारा उत्पन्न सामान्य लक्षण—

'विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुता: ।
रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विनिर्गमात्' ।। (अ.हृ.नि. 14:56)

यह विरुद्ध मार्ग में पहुँचने पर मलभेद, शूल, मलावरोध, कृशता, रूक्षता, पाण्डु, रोमाञ्च, अग्निमान्द्य एवं गुदकण्डू पैदा करते हैं।

चिकित्सा—सैद्धान्तिक रूप से बड़ों एवं बच्चों की चिकित्सा का एक ही सिद्धान्त है—

1. निदान-परिवर्जन।
2. अपकर्षण।
3. प्रकृतिविघात।

सामान्य चिकित्साक्रम में भी बड़ों की चिकित्सा प्रयोग की जा सकती है। ग्रन्थों में शिशु कृमिरोगों की कुछ विशिष्ट चिकित्सा वर्णित है; यथा—

'मुस्ताविडङ्गं मगधाखुपर्णी कम्पिलको दाडिमबैल्वकेन ।
कृमीन् हरेत्सत्वरमुग्रवेगाद् रोगेषु लीढं शमयत्यवश्यम्' ।।
(रावण, कु.त. 217)

मुस्ता, विडङ्ग, मगधा, आखुपर्णी, कम्पिल्लक, दाड़िम एवं बिल्व का चूर्ण मधु के साथ चटायें तो उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं।

'विडङ्गं मधुना लीढं पुष्करं बालशिग्रुकम् ।
आखुपर्णी तदैका वा कृमिभ्यो मुच्यते शिशु:' ।। (रावण, कु.त. 153)

विडङ्ग, पुष्कर, बालशिग्रु एवं आखुपर्णी का चूर्ण मधु से चटाने पर कृमियों का नाश होता है।

Scanned with CamScanner

'पारसदेशयमानि पीता पर्युषितवारिणा प्रातः ।
गुडपूर्वा क्रिमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु' ।। (भै.र. 11:1)

यदि बालक को प्रातः गुड़ खिलाकर पारसीक यवानी गुनगुने जल से खिलाई जाय तो उदरकृमि नष्ट होते हैं ।

'विडङ्गसैन्धवक्षारकम्पिल्लकहरीतकीः ।
पिबेत् तक्रेण सम्पिष्य सर्वकृमिनिवृत्तये' ।। (भै.र. 11:17)

विडङ्ग, सैन्धव, क्षार, कम्पिल्लक एवं हरीतकी—इनका चूर्ण मधु के साथ पिलाने से सभी प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं ।

'पलाशबीजेन्द्रविडङ्गनिम्बभूनिम्बचूर्णं सगुडं लिहेद्यः ।
दिनत्रयेण क्रिमयः पतन्ति पलाशबीजेन यमानिका वा' ।। (भै.र. 11:12)

पलाशबीज, इन्द्रयव, विडङ्ग, निम्ब एवं भूनिम्ब—इनका चूर्ण गुड़ के साथ अथवा पलाशबीज के साथ यवानी पीस कर गुड़ के साथ देने से बालक के कृमि नष्ट हो जाते हैं ।

उपरोक्त योगों के अतिरिक्त बहुत प्रकार के कृमिहर योगों का वर्णन आयुर्वेद-शास्त्रों में उपलब्ध है । यथा—कृमिमुद्गर रस (भै.र.), कृमिकालानल रस, कृमिकुठाररस (र.रा.सु.), विडङ्गारिष्ट (भै.र.), भल्लातक तैल (चरक) आदि ।

आधुनिक प्रयोगशालीय परीक्षणों की सुविधा के प्रकाश में विशिष्ट कृमि की चिकित्सा की जा सकती है । इस दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण कृमियों का उल्लेख किया जा रहा है—

(1) केंचुआ (Ascariasis or Round worm)—इस कृमि के कारण उदरशूल, अखाद्य खाने की इच्छा, निद्रा, आध्मान, हल्लास, वमन, शरीर पर चकते (Urticaria) आदि लक्षण होते हैं । बड़े आकार के होने के कारण अधिक संख्या में होने पर ये आन्त्र अवरोध पैदा कर सकते हैं । अपने जीवन वृत्त में इसका लार्वा जब फुफ्फुस में प्रवेश करता है तब निमोनिया के समान लक्षण पैदा करता है । मल में कृमि या उसके अण्ड मिलते हैं । रक्त-परीक्षण में इसनोफिल की मात्रा बढ़ी मिलती है ।

(2) हुकवर्म (Hook worm या Ankylostomiasis)—यह व्याधि Ankylostoma duodenal के द्वारा उत्पन्न होती है । यह कृमि प्रायः नङ्गे पैर चलने पर वहाँ की त्वचा से काट कर प्रवेश करता है अतः उस स्थल पर कण्डू होती है । आन्त्र में यह कृमि पच्यमानाशय में रहता है । जगह-जगह अपने अंकुश द्वारा भित्ति को पकड़कर रक्त चूषण करता है एवं रक्तस्राव करता बिन्दु छोड़ देता है । अतः इस कृमि द्वारा तीव्र स्वरूप का पाण्डु होता है । मल में जमा रक्त (Occult Blood) मिलता है

तथा मल में कृमि एवं अण्डे मिलते हैं । पाण्डु के कारण हीमोग्लोबिन की अल्पता मिलती है । अन्य लक्षणों में क्षुधा-परिवर्तन, कुपोषण, उदरशूल, पतला मलत्याग मिलता है । जिह्वा पर कृष्ण वर्ण के धब्बे मिलते हैं ।

(3) चुरने (Thread worm or Pin worm or Oxyuriasis or Enterobiasis)—यह प्रायः बच्चों में मिलता है । गुदा में कण्डू, असह्य जलन, उदरशूल, योनि में शोथ मिलता है । मल में छोटे-छोटे श्वेत कृमि दिखायी पड़ते हैं ।

(4) स्फीत कृमि (Tape worm)—इस वर्ग के 3 प्रकार के कृमि मिलते हैं तथा ये प्रायः मांसाहारियों में ही मिलते हैं ।

- टीनिया सोलियम—सूअर के मांस से संक्रमण होता है ।
- टीनिया सैजिनेटा—गोवर्ग के पशुमांस से संक्रमण होता है ।
- हाइमेनोलेपिस नाना—इसका अण्ड मुख द्वारा संक्रमण करता है ।

टीनिया सोलियम	टीनिया सैजिनेटा	हाइमेनोलेपिस नाना
भूख अधिक लगना, उदरशूल, अतिसार, आध्मान, आक्षेप (कभी-कभी), ठीक से विकास न होना,	टीनिया सोलियम के ही समान लक्षण होते हैं ।	भूख कम लगना, उदरशूल, अतिसार, शरीर कमजोर होता है ।

(5) अमीबा (Entamoeba histolytica)—इसके संक्रमण से रक्त एवं पूय-श्लेष्मा मिश्रित मलत्याग होता है । उदर में शूल एवं ऐंठन होती है । बार-बार मल त्याग होता है । यकृत् में जाकर अर्ति या विद्रधि करता है । इसी तरह इसके द्वारा विद्रधि फुफ्फुस एवं मस्तिष्क में भी होता है । मल में अमीबा या उसके सिस्ट मिलते हैं ।

हारीतसंहिता में इसका बड़ा सुन्दर व स्पष्ट वर्णन मिलता है—

'सूचीवत् तुद्यतेऽन्त्राणि रक्तं चैवातिसार्यते ।
यकृद्वा भक्षयन्त्यन्ये रक्तं वा वमते भृशम् ।।
क्लेदो मुखेऽरुचिं जाड्यं मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ।
क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञेयाः सूचीमुखकृमिरुजा' ।। (हा.सं.तृ. 5:15)

सूचीमुख कृमि उदर में सूचीभेदवत् पीड़ा करता है, रक्तमिश्रित अतिसार होता है । यह कृमि यकृत् का भक्षण करता है तथा इससे रक्त वमन (फुफ्फुसविद्रधि से) भी होता है । अन्य लक्षणों में मुखक्लेद, अरुचि, जड़ता, मन्दाग्नि, वेपथु, मन्द ज्वर एवं तृष्णा पैदा होती है । हारीत ने इतना स्पष्ट वर्णन किया है कि लगता है कि यह Amoebiasis के सभी लक्षणों का वर्णन हो ।

Scanned with CamScanner

(6) जियार्डिया (Giardia Lambelia)—शैशवावस्था में यह कृमि शिशु को बहुत कमजोर कर देता है। पतला मलत्याग, उदरशूल, पेचिश, अरुचि आदि लक्षण मिलते हैं। मल दुर्गन्धित, चिकना एवं मात्रा में अधिक होता है।

चिकित्सा

मल-परीक्षा द्वारा विशिष्ट कृमि का ज्ञान होने पर उसकी चिकित्सा की जाती है।

(1) **एस्कैरिस**—Piperazine citrate (150 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार की एक मात्रा) इसकी विशिष्ट औषधि है। इसके अतिरिक्त व्यापक क्षेत्र वाली औषधियाँ भी दी जाती हैं। इन्हें अन्त में दिया जा रहा है।

(2) **हुकवर्म**—Bephenium hydoxy-naphthoathe को 5 वर्ष से कम वय में 2.5 ग्राम तथा अधिक वय में 5 ग्राम की एक मात्रा प्रातः खाली पेट शक्कर के घोल से देते हैं। यह औषधि बहुत ही कटु है।

Tetrachloroethylene 0.1 सी.सी./कि.ग्रा. शरीर-भार की एक मात्रा, अधिकतम 5 सी.सी. युवावर्ग हेतु प्रयोज्य है।

(3) **चुरने**—इसमें भी Piperazine लाभकर है। मात्रा में एस्कैरिस से अन्तर है। 50 से 75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार से 7 से 10 दिन तक 3-3 मात्रा में प्रतिदिन देते हैं। इसके अतिरिक्त Pyrvinium pamoate, Thiabendazole एवं pyrantel embonate भी लाभकारी है।

(4) **स्फीत कृमि**—Niclosamide औषधि प्रयुक्त होती है। पर अति विषैला प्रभाव युक्त होने से कम प्रयोग होती है। 2 वर्ष से कम आयु में 500 मि.ग्रा. तथा अधिक आयु में 1.2 ग्राम एक बार देना चाहिए। अन्य औषधियों में क्विनाक्रिन हाइड्रोक्लोर, डाइक्लोरोफेन प्रयोज्य है।

(5) **अमीबा**—मेट्रोनिडाजाल, फ्यूरामाइड, डाइ-आइडोक्वीन आदि बहुत-सी औषधियाँ हैं।

(6) **जियार्डिया**—मेट्रोनिडाजाल, फ्यूराजोलाडीन, ट्रीनीडाजाल एवं बर्बेरीन प्रयोज्य है।

अन्य कृमिनाशक औषधि एवं मात्रा

Albendazole—400 मि.ग्रा. की केवल एक मात्रा पर्याप्त है तथा प्रायः प्रत्येक प्रकार के कृमि में (अमीबा व जियार्डिया को छोड़कर) हितकर है।

Mebendazole—प्रायः सभी प्रकार के कृमियों में लाभकर है। चुरने में 1 गोली की एक मात्रा, स्फीतकृमि में 2 गोली की 2 मात्रा 4 दिन तक, एस्कैरिस एवं हुकवर्म में 1 गोली दिन में 2 बार 3 दिन तक देते है। इसकी 1 गोली 100 मि.ग्रा. की आती है।

Pyrantel—प्रायः सभी प्रकार के कृमियों में लाभदायक है। 10 मिग्रा./कि.ग्रा. की मात्रा में दिन में 1 बार 3 दिन तक देते हैं। कुछ लोग वयानुसार मात्रा स्थापित करते हैं। इसकी 200 मि.ग्रा. की वटी तथा 25 मिग्रा./एम.एल. का घोल आता है।

वय	शरीर-भार	वटी	घोल (एम.एल.)
2 वर्ष से कम	(10 कि.ग्रा. से कम)	½	4
2 से 7 वर्ष	(10 से 20 कि.ग्रा.)	1	8
8 से 14 वर्ष	(21 से 40 कि.ग्रा.)	2	-
14 वर्ष से ऊपर	(41 से 60 कि.ग्रा.)	3	-
	(60 कि.ग्रा. से ऊपर)	4	-

Levamisole—यह एस्कैरिस में लाभकर है। इसकी 50 मि.ग्रा. की 1 मात्रा पर्याप्त है।

Metronidazole—यह औषधि जियार्डिया एवं अमीबा दोनों में लाभप्रद है। 50 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार से 5 से 10 दिन तक देते हैं।

Tinidozole—उपरोक्त दोनों में लाभकर है। 50 से 60 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर-भार से दिन में 1 बार 3 से 5 दिन तक देते हैं। जियार्डिया में 1 वर्ष से कम वय में 600 मि.ग्रा., 2 से 7 वर्ष में 120 मि.ग्रा., 8 से 12 वर्ष वय में 1500 मि.ग्रा. की एक मात्रा पर्याप्त है।

इनके अतिरिक्त बहुत प्रकार के योग कृमियों के लिए बाजार में उपलब्ध हैं। नीचे की तालिका में स्वानुभव से सामान्य कृमियों हेतु श्रेष्ठ औषधियों का निर्देश दिया जा रहा है—

कृमि	आधुनिक चिकित्सा (औषधि)	आयुर्वेद चिकित्सा (औषधि)
1. एस्केरिस	पिपराजीन	पलाशबीज चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण
2. हुकवर्म	बफेनियम हाइड्रोक्लोराइड	भल्लातक या निम्ब तैल
3. चुरने	पिपराजीन	निम्ब तैल एवं विरेचन
4. स्फीत कृमि	निकलोसामाइड	कम्पिल्लक चूर्ण
5. अमीबा	मेट्रोनिडाजाल	कुटज योग
6. जियार्डिया	मेट्रोनिडजाल	कुटज योग एवं जहरमोहरा

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 15

प्राणवह स्रोतस् के विकार

आयुर्वेद मनीषियों ने बच्चो मे होने वाले प्राणवह स्रोतस् विकारों की कोई विशिष्ट रूपरेखा वर्णित नहीं की है। परन्तु बड़ों में होने वाली व्याधियाँ बच्चों में भी होती है, इस दृष्टि से कायचिकित्सा विषयान्तर्गत विवेचन देखना चाहिए। इसके साथ-साथ आचार्यों ने बच्चों में उन व्याधियों के होने पर उनका विशेष उपचार दिया है जिसका प्रयोग निदान करने के बाद अवश्य करें।

शुष्क कास

'शुष्ककासे कुमारस्य धात्र्याः स्तन्यविशोधनः।
माषयूषः प्रयोक्तव्यः सकृष्णो घृतभर्जितः' ॥ (अ.सं.उ. 2:55)

शुष्क कास बच्चों को होने पर धात्रीस्तन्य का शोधन करें। पिप्पली को घृत में भून कर दें तथा माषयूष का प्रयोग करें।

'पौष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः।
कृतं चूर्णं तु सक्षौद्रं शिशूनां पञ्चकासजित्' ॥ (यो.र.बा.चि.पृ. 442)

पुष्करमूल, अतीस, काकड़ाशृङ्गी, पीपल एवं यवासा को समान भाग लेकर विधि-पूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से पाँचों प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

'मुस्तकातिविषावासाकणाशृङ्गीरसं लिहन्।
मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुच्छ्रितैः' ॥
(यो.र.बा.चि.पृ. 442)

नागरमोथा, अतीस, वासा, पिप्पली एवं काकड़ाशृङ्गी को सम भाग लेकर इनके रस या घनक्वाथ को शीतल करके उसमें मधु का प्रक्षेप देकर चटाने से बालक पाँचों प्रकार के कास से मुक्त हो जाता है।

'व्याघ्रीकुसुमसञ्जातकेसरैरवलेहिका।
मधुनाचिरसञ्जाताञ्शिशोः कासान् व्यपोहति' ॥ (यो.र.बा.चि. 442)

छोटी कटेरी के पुष्प के केसरों को लेकर मधु से अवलेह बनाकर चटाने से बालकों के बहुत दिनों से उत्पन्न हुए कासरोग नष्ट हो जाते हैं।

'गुडोदकं वा क्वथितं व्योषसैन्धवसंयुतम्।
सुखोष्णं पाययेद्बालं कासरोगोपशान्तये' ॥ (रावण, कु.त. 149)

त्रिकटु, सैन्धव को गुड़ के जल में डाल क्वाथ बनाकर सुखोष्ण रूप में शिशु को देने पर कास शान्त होता है।

'विहितो मधुना लेहो व्याघ्रीकुसुमकेसरैः।
लीढो हि नाशयत्याशु कासं पञ्चविधं शिशोः' ॥ (रावण, कु.त. 150)

व्याघ्री, कुसुम (लवङ्ग) एवं केशर (नागकेशर) का चूर्ण मधु से देने पर बच्चों की पाँचों प्रकार का कास नष्ट होता है।

'एकाशृङ्गी निहन्त्याशु मूलकस्य फलान्विता।
घृतेन मधुना लीढा कासं बालस्य दुस्तरम्' ॥ (रावण कु.त. 151)

काकड़ाशृङ्गी एवं मूली के बीजों का चूर्ण घृत एवं मधु से चटाने पर बच्चों का भयङ्कर कास नष्ट होता है।

'पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च।
चूर्णं सगुडमेवं हि बालानां कासनाशनम्' ॥
(हा.सं. तृतीय स्थान 54:16)

हरीतकी, वचा, शुण्ठी, मोथा एवं कर्कटशृङ्गी चूर्ण को गुड़ मिलाकर देने से बालकों का कास नष्ट होता है।

कास-श्वासचिकित्सा

'कटुकीविहितः क्वाथः कणाचूर्णसमन्वितः।
एकाहिकं ज्वरं हन्ति कासश्वासादिदूषितम्' ॥ (रावण कु.त. 104)

कटुकी के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण डालकर पीने से कास, श्वास तथा ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है।

'पौष्करातिविषाशृङ्गीमाधवीधन्वयासकैः।
कृतं चूर्णं तु सक्षौद्रं शिशूनां श्वासकासजित्' ॥ (रावण कु.त. 154)

पुष्करमूल, अतिविषा, कर्कटशृङ्गी, मागधी, धनिया एवं यवासक का चूर्ण मधु से देने पर श्वास-कास नष्ट हो जाता है।

'भार्ङ्गीरास्नाकर्कटकचूर्णं वा मधुसंयुतम्।
लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः' ॥
(हा.सं.तृ.स्थान 54:15)

भार्ङ्गी, रास्ना, काकड़ाशृङ्गी चूर्ण को मधु से चटाने पर बालकों का श्वास-कास नष्ट हो जाता है।

Scanned with CamScanner

'धान्यं शर्करया युक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
पानमेतत् प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः' ।। (यो.र.बा.रो.पृ. 442)

धनिया को पीसकर या चूर्णकर उसमें शर्करा मिला कर चावल के धोवन में घोलकर या चावल के धोवन में ही धनिया एवं शर्करा पीस कर घोल कर पानक बनाकर बालकों को पिलाने से उनका कास-श्वास नष्ट हो जाता है ।

'द्राक्षावासाभयाकृष्णचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा ।
लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा' ।। (यो.र.बा.चि.पृ. 442)

द्राक्षा, वासा, हरीतकी एवं पिप्पली समभाग लेकर चूर्ण कर मधु तथा गोघृत के अनुपान से चटाने पर बच्चों का कास, श्वास एवं तमक श्वास नष्ट हो जाता है ।

दुरालभादि लेह—

'दुरालभाकणाद्राक्षापथ्याः क्षौद्रेण लेहयेत् ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कासश्वासहरः शिशोः' ।। (यो.र.बा.चि.पृ. 443)

यवासा, पिप्पली, द्राक्षा तथा हरीतकी समभाग लेकर चूर्ण कर मधु के अनुपान से तीन रात्रि या पाँच रात्रि चटाने से बालकों का कास-श्वास नष्ट हो जाता है ।

'तुगा च क्षौद्रसंलीढा कासश्वासौ शिशोर्जयेत्' । (यो.र.बा.चि.पृ. 443)

वंशलोचन के चूर्ण को मधु के अनुपान से चटाने पर बालकों का कास-श्वास रोग नष्ट होता है ।

उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त बहुत-से योगों का वर्णन प्राणवह स्रोतस् विकारों के लिए ग्रन्थों में हैं । इनके लिए आगे अध्याय 17 भी देखना चाहिए । पिछले अध्यायों में राजयक्ष्मा व उसकी चिकित्सा का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है । नीचे कुछ योगों का मात्र नामोल्लेख किया गया है—

कास में—बालरोगान्तक रस (भै.र.), चन्द्रशेखर रस (भै.र.), तालीसादि चूर्ण (यो.र.), कण्टकार्यावलेह (शा.सं.) आदि का प्रयोग करें ।

श्वास में—बालरस (भै.र.), मकरध्वज रस (भै.र.) अष्टाङ्गावलेह (वृ.मा.) तथा अपामार्ग क्षार का प्रयोग करना चाहिए ।

इस अध्याय के सन्दर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण व्याधियों का विवेचन; यथा—प्रतिश्याय, कास, श्वास, उत्फुल्लिका (Pneumonia) एवं कुक्कुरकास प्रस्तुत करना समीचीन होगा ।

प्रतिश्याय
(Common Cold, Coryza)

'प्रति' उपसर्ग पूर्वक 'श्यैङ्गतौ' धातु से प्रतिश्याय शब्द निष्पन्न होता है ।

'वातं प्रति अभिमुखं श्यायो गमनं कफादीनां यत्र स प्रतिश्यायः' । (डल्हण)

अर्थात् वायु की ओर अथवा नासिका से बाहर की ओर कफादि दोषों का जिसमें निःसरण की प्रवृत्ति हो, उस रोग को प्रतिश्याय कहते हैं । आचार्यों ने इसके कारण स्पष्ट रूप से 2 वर्गों में कहे हैं—

1. सद्योजनक—मैथुन, शिरोऽभिताप, धूप, शीत, अधिक गर्मी आदि ।
2. चिरकारी—क्रमशः सञ्चित व प्रकुपित दोषों द्वारा प्रतिश्याय होता है ।

प्रतिश्याय बच्चों की सर्वाधिक सामान्य समस्या है । वातावरण में परिवर्तन, धूल आदि द्वारा प्राणवह स्रोतस् के बाह्य भाग के संक्रमण से यह अवस्था होती है । इसमें प्रायः संक्रमण विषाणु (Virus) जन्य होता है—Adeno viruses, Influenza, Parainfluenza, or Respiratory syncytial viruses आदि ।

यह संक्रमण कास, छींक आदि द्वारा होता है । वातावरण की ठण्डी, गर्मी आदि इसे फैलाने में सहायक होती है ।

चिकित्सा—अपक्व तथा पक्व प्रतिश्याय के भेद से दो तरह का चिकित्सा-क्रम अपनाना चाहिए । अपक्व में दोषपाचन तथा पक्व में दोषों का निर्हरण श्रेष्ठ कर्म है । वायरस जन्य व्याधि होने से आधुनिक चिकित्सा में इसकी कोई विशिष्ट औषधि नहीं है । लक्षणानुसार चिकित्सा करते हैं । ज्वरनाशक, नाक में मल भरा हो तो निर्हरणार्थ (Decongestants) एवं कफ मिक्सचर का प्रयोग करते हैं । प्रतिश्याय में आयुर्वेदीय योग अति लाभकर सिद्ध होते हैं ।

(1) नवप्रतिश्याय में मृत्युञ्जयरस, शृङ्गभस्म, शृंग्यादि चूर्ण एवं स्फटिक भस्म का योग वनफ्शा क्वाथ से लाभकर है ।

(2) जीर्ण प्रतिश्याय में नारदीय लक्ष्मीविलास रस, अभ्रक भस्म, गोदन्ती भस्म तथा पञ्चकोल चूर्ण का योग मधु से लाभदायक होता है ।

(3) दुष्ट प्रतिश्याय में मकरध्वज, प्रवाल भस्म, अमृतासत्व एवं सितोपलादि चूर्ण योग को च्यवनप्राश से देना चाहिए ।

इनके अतिरिक्त ग्रन्थ सन्दर्भ में बहुत-से योग एवं नस्य का वर्णन हैं जिन्हें यथास्थान प्रयोग करना चाहिए ।

नस्य—अणुतैल (च.), षड्बिन्दुघृत (यो.र.), व्याघ्रीतैल (च.द.) ।

योग—चित्रक हरीतकी (यो.र.), अगस्त्यहरीतकी (च.द.), पिप्पलीपाक (यो.र.) ।

क्वाथ—गोजिह्वादि क्वाथ (च.), सुरसादि क्वाथ (सु.) एवं दशमूल क्वाथ ।

Scanned with CamScanner

कास
(Cough)

'कसनात् कासः', 'कस गतिशातनयोः' इस धातु से ऊर्ध्वगति अर्थ में कास सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त 'कसति शिरः कण्ठादूर्ध्वं गच्छति वायुरिति कासः' इस क्रिया में वायु कण्ठ से ऊपर शिर की ओर जाती है अतः इसे कास कहते हैं।

निदान—मुख, नासिका एवं गले में धूम्र के प्रवेश करने से; धूल, गर्द आदि के उक्त मार्गों में चले जाने से या वायु द्वारा प्रेरित आमरस के मुख की ओर आने से व्यायाम एवं रूक्षान्न सेवन से, भोजन के विरुद्ध मार्ग में चले जाने से और छींक का वेग रोकने से दुष्ट प्राणवायु उदानवायु से मिलकर फूटे हुए कांसे के पात्र के शब्द के समान शब्द को करता हुआ दोष (कफ-पित्त) सहित मुख से सहसा निकलता है, इसे कास कहते हैं।

'धूमोपघाताद्रसतस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ।।
प्राणोत्युदानानुगतः प्रदुष्टं स भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः' ।।
(मा.नि. 11:1-2)

वस्तुतः कास एक लक्षण है जो अनेक रोगों में पाया जाता है परन्तु जहाँ इसके कारण से ही अनेक लक्षण मिलते हैं वहाँ इसे स्वतन्त्र रोग भी माना जाता है। ऊपर वर्णित धूम-धूलादि सामान्य कारण हैं। आचार्यों ने विशिष्ट कारण भी कास का वर्गीकरण कर उसमें बताया है। वातिक, पैत्तिक, कफज, क्षतज एवं क्षयज ये पाँच भेद हैं। उपेक्षा करने पर सभी पाँचों क्षय में परिणत हो सकते हैं।

वस्तुतः ऊपर कहे गये सामान्य कारण बालकों में भी कास का कारण बनते हैं। परन्तु कास के कुछ विशिष्ट कारण भी हो सकते हैं; यथा—विभिन्न जीवाणुओं का संक्रमण, असहिष्णुता (Allergy), गलशुण्डी शोथ आदि। वस्तुतः वे समस्त कारण जो श्वास की नली में शोथ उत्पन्न करते हैं इसके अन्तर्गत आते हैं। इसी कारण इसे Bronchitis कहते हैं। कास के कुछ कारण बच्चों में निम्नवत् हैं—

1. कफज दुग्धदोष।
2. बालशोष।
3. पारिगर्भिक रोग।
4. मृत्तिकाभक्षणजन्य कास।
5. उल्वक रोग।
6. बालग्रह यथा—मेषग्रह, पितृग्रह, शीतपूतना, अन्धपूतना।

लक्षण—जीवाणुजन्य इस रोग में ज्वर, शुष्क कास जो रात में तीव्र हो जाती है तथा यदि व्याधि 4-5 दिन चलती रहे तो उसमें श्लेष्मा भी निकलने लगता है। फुफ्फुस पर श्रवण-परीक्षा में Rhonchi एवं Coarse crepitation मिलता है।

'पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते' ।। (मा.नि. 11:4)

सभी प्रकार के कासों के पूर्वरूप में मुख एवं गले में शूक भर जाने के समान वेदना का होना, कण्ठ कण्डू एवं भोज्य पदार्थों का गले में अवरोध—ये लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा—बालकों के लिए जिस विशिष्ट योगादि का वर्णन ग्रन्थों में प्राप्त होता है उनका वर्णन इस अध्याय में प्रारम्भ में किया जा चुका है। कुछ सामान्य चिकित्साक्रम का उल्लेख यहाँ करेंगे। आधुनिक चिकित्सा में उचित Antibiotic का प्रयोग, कफ-निस्सारक एवं ज्वरशामक औषधि का प्रयोग करते हैं।

विशिष्ट योग

1. बालचातुर्भद्र (मुस्ता, पिप्पली, अतिविषा एवं काकड़ाशृंगी) चूर्ण 2 से 8 रत्ती की मात्रा में मधु से 3 से 4 बार चटायें।
2. बालार्क रस (सि.यो.सं.) 1-1 रत्ती दिन में 3 या 4 बार मधु से दें।
3. भटकटैया के फूल की केसर को पीसकर मधु से चटायें।
4. कुमारकल्याण रस का प्रयोग करें।
5. शुष्क कास में चन्द्रामृत, महालक्ष्मीविलास एवं यवक्षार का मिश्रण कण्टकारी घृत से देना चाहिए।
6. शुष्क कास में अपामार्गक्षार एवं तालीसादि चूर्ण के योग को वासास्वरस से देना चाहिए।
7. चूसने में मरिचादि गुटिका, व्योषादि वटी या लवङ्गादि वटी का प्रयोग कराते हैं।
8. आर्द्र कास में लक्ष्मीविलास, चन्द्रामृत तथा कफकेतु का योग वासास्वरस से दे सकते है। चन्द्रामृत के स्थान पर शृंगाराभ्र का प्रयोग करते हैं।
9. बिभीतकावलेह (यो.र.) या आर्द्रकावलेह (यो.र.) या व्याघ्रीहरीतकी का प्रयोग पञ्चकोलशृत दुग्ध या तुलसी की चाय से आर्द्रकास में प्रयोग करते हैं।
10. क्षतज एवं क्षयज कास में चिकित्सा यक्ष्मा के समान करें।

तमकश्वास रोग
(Bronchial Asthma)

यह व्याधि श्वास लेने में कठिनाई का दौरे पड़ने के लक्षण से पहचानी जाती है। यह दौरे श्वासनलिका (Bronchi) के अल्पसमय के लिए अवरुद्ध (श्लैष्मिककलाशोथ या सान्द्र स्राव या श्वासनलिकासङ्कोच) होने के कारण होते हैं। बालक, बालिकाओं की अपेक्षा अधिक पीड़ित होते हैं। व्याधि प्रायः 2 वर्ष की वय से प्रारम्भ हो जाती है परन्तु इसके सर्वाधिक रोगी 5 से 10 वर्ष की वय में मिलते हैं।

Scanned with CamScanner

निदान—इस व्याधि के कारणों को 2 भागों में बाँट सकते है—

(अ) सम्भावित उत्पादक कारण; यथा—

(1) वंशानुगत तमकश्वास का या किसी विशिष्ट एलर्जी का इतिवृत्त मिलना।
(2) बाल्यकाल में खसरा या कुक्कुर कास के संक्रमण का इतिवृत्त मिलना।

(ब) सहायक कारण; यथा—

(1) विभिन्न पदार्थों से असहिष्णुता (Allergy); यथा—परागकण, धूम्र, धूल, टैल्कम पाउडर, ऊन, भोज्य पदार्थ (अण्डा, मांस, गेहूँ, चाकलेट) एवं विभिन्न औषधियाँ जैसे—पेन्सिलीन, एस्पिरीन आदि।
(2) श्वसनतन्त्र के संक्रमण।
(3) मानसिक कारण—घर में लड़ाई-झगड़ा, स्कूल का भय, क्षोभ आदि।
(4) श्रम।
(5) वातावरण में परिवर्तन—ऋतु-परिवर्तन, स्थान-परिवर्तन आदि।

सम्प्राप्ति—श्वासनलिका की पेशियों (Smooth muscles) में सङ्कोच का होना ही इसकी विकृति है जो वस्तुत: सान्द्र स्राव एवं श्लैष्मिक कला के शोथ के कारण श्वास-नलिका का अवरोध करते हैं। परिणामस्वरूप श्वासावरोध (Distress) विशेष रूप से (Expiratory wheezing) पैदा होती है। व्याधि के बढ़ने पर collapse या emphysema तथा कभी-कभी Bronchiectasis हो जाती है। इस सम्प्राप्ति को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में चरक ने कहा है कि—

'प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा।
अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम्'॥ (च.चि. 17:54-55)

विरुद्ध गति को प्राप्त हुआ वायु प्राणवह स्रोतों में पहुँचकर ग्रीवा एवं शिर को जकड़ता हुआ कफ को और भी उदीर्ण करके पीनस (प्रतिश्याय) रोग उत्पन्न करता है। इस कफ से अवरुद्ध हुआ वायु घुर्घुर शब्द से युक्त प्राणों के आश्रय हृदय को कष्ट देने वाले एवं अत्यन्त तीव्र वेगों से युक्त तमकश्वास को उत्पन्न करता है।

लक्षण—रोग का आक्रमण (दौरा) प्राय: एकाएक होता है तथा रात में होता है। कभी-कभी रोग का दौरा प्रारम्भ होने से पूर्व विशेष लक्षण (Aura) भी मिलते हैं; यथा—घबराहट, बेचैनी, बार-बार मूत्र त्याग, कण्डू एवं वक्ष का बँधा प्रतीत होना आदि। दौरा पड़ने पर श्वास लेने में कठिनाई, बार-बार कास का होना, घुर्घुर होना (Expiratory wheezing), शरीर में नीलिमा, स्वेद का आना, थकावट एवं बेचैनी होती है। नाड़ीगति अनियमित एवं बढ़ी रहती है। यह चक्र 1-2 घण्टे में पूर्ण हो जाता है। कभी-कभी यह दौरा 7 से 10 दिन तक रह जाता है, उसे Status asthmaticus कहते हैं। जिन

बालकों को यह व्याधि तीव्र रूप में लम्बे काल तक रहती है उनका वक्ष कपोतवत् (Barrel-shaped) हो जाता है।

उपद्रव—व्याधि के लम्बे समय तक चलते रहने पर हृदय के आकार में वृद्धि (Cor pulmonale) हृदयातिपात (Collapse), श्वासनलिका शोथ, न्यूमोथोरक्स आदि हो सकते हैं। जिन रोगियों में लम्बे काल तक कार्टिसोन चलता है उन्हें राजयक्ष्मा होने की सम्भावना होती है।

तमकश्वास में यदि कफ विशेष हो तो वह आर्द्र एवं जब वायु अधिक कुपित हो तो उसे शुष्क श्वास कहते हैं। पित्तानुबन्ध होने पर ज्वर एवं मूर्च्छा होती है तो उसे प्रतमक या सन्तमक कहते हैं।

चिकित्सा—बालकों में श्वासरोग में प्रयोगार्थ विशेष योगों का वर्णन अध्याय के आरम्भ में किया गया है। कुछ सामान्य चिकित्सा यहाँ दी जा रही है—

(1) पुराना गोघृत एवं लवण मिलाकर वक्ष पर मलकर स्वेदन करें। यह प्रक्रिया दिन व रात में कई बार की जानी चाहिए।

(2) श्वास-कासचिन्तामणि या श्वासचिन्तामणि या श्वासकुठार रस तथा अपामार्ग क्षार या यवक्षार के योग का प्रयोग सर्षप तैल एवं पुराने गुड़ से करायें। फिर भार्ङ्गी एवं शुण्ठी क्वाथ गुड़ सहित पिलायें।
(3) तालीशादि चूर्ण एवं यवक्षार का वासास्वरस से प्रयोग करायें।
(4) कण्टकार्यावलेह, भार्ङ्गी एवं हरीतकी अवलेह (यो.र.) लाभप्रद हैं।
(5) द्राक्षारिष्ट एवं कनकासव का प्रयोग करायें।
(6) आर्द्र श्वास में अर्कलवण, शृंगाराभ्र को पान के रस एवं मधु से देना चाहिए।

आयुर्वेदोक्त चिकित्सा अन्य ग्रन्थों को भी देख कर यथायोग्य लाभकारी सिद्ध होती है। आवश्यकतानुरूप रोग के दौरे में आधुनिक चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए।

(क) रोग के दौरे के समय—

(1) Adrenaline (1:1000) का अधस्त्वक् (S.C.) सूचीवेध 0.1 से 0.2 एम.एल. की मात्रा में प्रति 15 मिनट पर 2 या 3 बार देते हैं।

(2) Aminophylline—4 से 6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. सिरागत सूचीवेध से धीरे-धीरे देते हैं। तीव्र स्वरूप में जहाँ एडरीनेलीन का प्रभाव न हो प्रति 4 से 6 घण्टे पर इसे देते हैं। अथवा सिरागत लगातार ग्लूकोज घोल के साथ प्रयोग कर सकते हैं। इसमें उपर्युक्त मात्रा से प्रारम्भ कर 0.6 से 1 मि.ग्रा./कि.ग्रा./घण्टे की मात्रा में देते हैं।

(3) हल्के स्वरूप के दौरे में Ephedrine 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की मात्रा में 4 से 6 मात्रा में बाँट कर मुख से देते हैं या Isoprenaline 0.2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की मात्रा

Scanned with CamScanner

जिह्वा के नीचे रखते है । मुख से Theophylline या Salbutamol या Terbutaline का प्रयोग कर सकते है । इनका प्रयोग दौरा समाप्त होने पर भी करते है।

(4) आवश्यकतानुसार निद्राकारक औषधि का प्रयोग करें; यथा फिनोबार ।

(5) कफनिस्सारक का प्रयोग करें ।

(6) आवश्यकतानुसार Antibiotic का प्रयोग संक्रमण में करें ।

(7) नीलिमा एवं अधिक श्वासावरोध में ओषोजन का प्रयोग करें ।

(8) आवश्यकतानुसार जल एवं लवण की मात्रा दें ।

(9) Status asthmaticus में कार्टिसोन का प्रयोग कर सकते हैं । परन्तु प्रयास करें कि इसे अल्प काल तक ही प्रयोग किया जाय । दौरे के समय Hydrocortisone 8 से 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की मात्रा में 6-6 घण्टे पर शिरागत दें । दौरा ठीक होने पर Prednisolone 1 से 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन मुख से 3 से 5 दिन तक देकर आवश्यकतानुरूप मात्रा को घटा कर निश्चित करें ।

(ब) रोग के सामान्य काल में—

रोग का कारण पता करें यदि एलर्जी है तो उस पदार्थ को ज्ञात करें तथा दूर करने का प्रयास करें । वातावरण-परिवर्तन एवं मानसिक तनाव को दूर करना भी लाभदायक सिद्ध होता है ।

अमीनोफाइलिन का योग, Disodium cromoglycate inhalor का प्रयोग मुख द्वारा कफनिस्सारक एवं Bronchodilators का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें ।

सूर्यास्त के बाद भोजन का त्याग हितकर है । प्राणायाम एवं यौगिक क्रियाएँ भी लाभ देती हैं ।

उत्फुल्लिका
(Pneumonia)

उत्फुल्लिका शीर्षक से व्याधि-वर्णन योगरत्नाकर में किया गया है; यथा—

'आध्मानवातसम्फुल्ली दक्षकुक्षौ शिशोर्भवेत् ।
उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासश्वयथुसङ्कुला' ।।

(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 456)

बालक के दाहिने कुक्षि में आध्मान होकर वायु से सम्फुल्ल (फूला या शोथ) हो जाता है तथा श्वास हो आता है और श्वासनली में भी शोथ हो जाता है । इसे उत्फुल्लिका व्याधि कहते हैं ।

आधुनिक आयुर्वेद मनीषियों ने इस व्याधि को 'Pneumonia' के समकक्ष माना है । विद्वानों ने योगरत्नाकर के पूर्व के ग्रन्थों में श्लेष्मोल्बण विषम सन्निपात ज्वर (Pneumonia) की संज्ञा दी है । आचार्य चरक ने इस व्याधि की मर्यादा 12 दिन

(च.चि. 3:53-54) की कही है । चिकित्सादर्श में पं. राजेश्वर दत्त शास्त्री ने इसे वात-श्लेष्मोल्बण सन्निपात ज्वर या श्वसनक ज्वर की संज्ञा दी है । बालग्रहों में पितृग्रह के लक्षणों का अत्यधिक सामंजस्य न्युमोनिया के लक्षणों से मिलता है । यदि समय पर उचित उपचार न किया जाय तो शैशवीय मृत्यु का कारण भी बनता है । पितृग्रह का वर्णन आगे बालग्रहों में किया गया है ।

न्युमोनिया शैशवकाल की प्रमुख व्याधि है । यह व्याधि स्वतन्त्र रूप से भी होती है एवं किसी अन्य व्याधि के उपद्रव स्वरूप भी होती है । इसके कारण अनेक उपद्रव; यथा—Empyema, विद्रधि, फुफ्फुस-क्षत, हृदयाघात (C.C.F.), मस्तिष्कशोथ, हृदयावरणशोथ आदि हो सकते हैं ।

रचनात्मक दृष्टिकोण से व्याधि को निम्न तीन वर्गों में बाँट सकते हैं—

(1) Broncho-pneumonia—इस स्थिति में फुफ्फुस में कुछ-कुछ दूर पर धब्बे के समान विकृति मिलती है । यह अवस्था बच्चों में प्राय: मिलती है ।

(2) Lobar pneumonia—इस विकृति में फुफ्फुस का एक खण्ड या एक से अधिक खण्ड विकार से प्रभावित होते हैं । यह अवस्था बच्चों में कम देखने को मिलती है ।

(3) Pneumonitis—इस विकृति में Alveoli या Interstitial के मध्य का भाग प्रभावित होता है । प्राय: इस अवस्था का निदान X-ray द्वारा ही हो पाता है ।

इस व्याधि में अनेक प्रकार के जीवाणुओं का संक्रमण मिल सकता है । यथा—Pneumococcus, Staphylococcus, Streptococcus, H. Influenza, H. Pertussis, M. Tuberculosis, Measles, Chickenpox आदि । Lobar में प्राय: Pneumococcus का संक्रमण होता है तथा जीवन के प्रथम वर्ष में विशेष रूप से प्रथम 3 माह में Staphylococcus संक्रमण होता है । इन शिशुओं में खसरा या शीतला का संक्रमण, कुपोषण, Cystic fibrosis of pancreas केंसर का होना, Hypogammaglobulinemia या Immuno-suppressive औषधि का प्रयोग इस संक्रमणजन्य न्युमोनिया के सहायक उत्पादक कारण होते हैं ।

Pneumonia का प्रारम्भ प्राय: एकाएक ठण्डक के साथ तीव्र ज्वर, कास एवं श्वास लेने में कठिनाई के साथ होता है । श्वसनगति तीव्र हो जाती है । नासापुट का बराबर फूलना व पिचकना विशिष्ट लक्षण हैं । श्वास निकलते समय पर्शुकाएँ विशिष्ट गति करने लगती हैं । इसी अवस्था को सामान्य भाषा में "पसली चलना" या "हुक लगना" कहा जाता है । इसके अतिरिक्त शरीर का नीला पड़ना (Cyanosis), अतिसार, वमन, आक्षेप एवं वक्ष:शूल जो उदर को प्रत्यावर्तित होता है आदि लक्षण मिलते हैं ।

वक्ष: परीक्षण में ताड़न-परीक्षा में (Dullness) (ठोस), श्रवण-परीक्षा में Bronchial breath एवं Crepitation मिलते हैं ।

Scanned with CamScanner

छोटे शिशुओं में (प्राय: 2 वर्ष से कम वय में) व्याधि का उपर्युक्त स्वरूप प्राय: नहीं दिखायी देता। प्राय: इनमें अल्प कष्ट 4-5 दिन तक श्वसनतन्त्र विषयक रहने पर यथा—नाक बहना, प्रतिश्याय आदि, एकाएक तीव्र ज्वर एवं आक्षेप प्रारम्भ हो जाता है।

पर्शुकाएँ विशिष्ट गति करती हैं। Clavicle के ऊपर ग्रीवा के नीचे का स्थान अन्दर दबता उठता है। नासापुट तीव्र गति करते हैं। तीव्र (Shallow) श्वसन होता है। फुफ्फुस की ताड़न-परीक्षा करने पर Dullness एवं श्रवण-परीक्षा में Crepitation मिलता है। Meningitis में ग्रीवास्तम्भ मिलता है।

चिकित्सा

आधुनिक दृष्टिकोण से जीवाणुजन्य व्याधि का उचित उपचार विशिष्ट एण्टी-बायटिक Antibiotic से होता है। अत: उचित Antibiotic का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरण स्वरूप नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण जीवाणु एवं Antibiotic का उल्लेख किया जा रहा है—

Pneumococcus—Penicillin, Sulfonamides.

Staphylococcus—Penicillin, erythromycin, Ampicillin, Gentamycin एवं Penicillin से Resistant रोगियों में Cloxacillin.

Streptococcus—Penicillin, Erythromycin, Ampicillin, etc.

न्यूमोनिया में प्राय: Penicillin या Ampicillin ही प्रत्येक प्रकार के जीवाणु में लाभकारी है। इसके साथ रोगी की उचित देख-रेख की जाय तथा उसे आराम दिया जाय। रोगी के गले से बराबर श्लैष्मिक स्राव को साफ किया जाय या निकाला जाय। आवश्यकतानुरूप ओषजन, जल एवं लवण की पूर्ति की जाय तथा लाक्षणिक चिकित्सा; यथा—कास, श्रम, ज्वर, शूल की करनी चाहिए। यदि कोई उपद्रव हो तो उसकी चिकित्सा भी करें।

वातश्लेष्मोल्बण सन्निपात ज्वर में पं. राजेश्वर दत्त शास्त्री जी ने निम्न चिकित्सा कही है—

(1) त्रिभुवनकीर्ति, शृङ्गाराभ्र, शृङ्गभस्म, शुद्ध नरसार एवं रससिन्दूर का योग वयानुसार बनाकर दिन में 6 बार पान, सेंहुण्डपत्र-स्वरस तथा मधु से दें।

(2) श्वासकृच्छ्र होने पर सौभाग्य वटी, श्वासकासचिन्तामणि, मल्लचन्द्रोदय शृङ्गभस्म का योग दिन में 6 बार काकड़ाशृंगी एवं मुलेठी चूर्ण से तथा मधु से दें।

(3) कैरातादि क्वाथ का प्रयोग करें।

(4) पिप्पल्यादि चूर्ण (यो.र.), टङ्कणादि योग (सि.भे.म.मा.), हिङ्गुलादि वटी (सि.भे.म.मा.) का प्रयोग उत्फुल्लिका में किया जाय।

(5) कुमारकल्याण रस का प्रयोग निश्चित ही लाभकारी है।

उत्फुल्लिका की शास्त्रीय चिकित्सा

'नि:सारयेज्जलौकाभी रक्तं च जठरात्तदा'।

इस रोग में शिशु के उदर में जलौका लगाकर रक्तमोक्षण करें।

'कर्कोटनागरामेधकङ्कोलातिविषाभवम्।
चूर्णं दुग्धेन सम्मिश्र्य पाययेन्मातरं भिषक्।
धात्रीं वा पाययेत्सद्य: क्षीरदोषनिवारणम्' ॥

कर्कोट, शुण्ठी, मुस्ता, कङ्कोल एवं अतिविषा समभाग लेकर चूर्ण कर दूध के अनुपान से माता या धात्री को पिलाकर दूध को शुद्ध कर दें।

'अग्निना स्वेदयेद्वाऽपि दाहयेच्च शलाकया।
जठरे बिन्दुकाकारं पृष्ठभागे यथा ध्रुवम्' ॥

बालक के उदर पर अग्नि से स्वेदन करें या उदर पर और पीठ पर शलाका तपा कर बिन्दु के आकार का दाह करें।

बिल्वमूलादि क्वाथ—बिल्वमूल, मुस्ता, पाठा, त्रिफला तथा कटेरीद्वय समभाग का क्वाथ बनाकर समभाग गुड़ का मद्य मिलाकर शिशु को यथामात्रा पिलाने से फुल्लिका व्याधि ठीक होती है।

'बिल्वमूलकं नीरदो वृकी त्रिफलां तथा सिंहिकाद्वयम्।
गौडमिश्रितं क्वथितं समं पाययेच्छिशुं फुल्लिकापहम्' ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पिप्पली, पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, शुण्ठी, त्रायमाण, दारुहरिद्रा, भार्ङ्गी, लवङ्ग, शु. टङ्कण, घृतकुमारी, हरीतकी व छोटी हरीतकी एवं सैन्धव का समभाग चूर्ण अजामूत्र में मर्दन कर दो टङ्क के प्रमाण में बालक को देने से फुल्लिका रोग शान्त होता है।

'पिप्पली ग्रन्थिकं विश्वा त्रायमाणा च दार्विका।
पथ्येभपिप्पली भार्ङ्गी लवङ्गं टङ्कणस्तथा ॥
कुमारी बालपथ्ये च सैन्धवस्त्वाजवारिणा।
घर्षितं पाययेत्प्रातर्द्विटङ्कं फुल्लिकापहम्' ॥

(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 456)

कुक्कुरकास
(Whooping Cough)

अत्यधिक फैलने वाली यह व्याधि जीवाणुजन्य (Bordetella pertusis, B. parapertusis एवं B. bronchiseptica) होती है एवं अपने विशिष्ट लक्षण कास के दौरे के कारण पहचानी जाती है। इसमें हूप (Whoop) शब्द निकलने के कारण

Scanned with CamScanner

इसे Whooping cough कहा जाता है। यह शब्द कुत्ते के भौंकने के समान शब्द होने से कुछ लोग इसे श्वग्रह भी मानते हैं (देखिये—बालग्रहप्रकरण)। चिकित्सादर्श में इसे दुष्टकास की संज्ञा दी गयी है। कुछ विद्वान् इसे वातज कास के समकक्ष शास्त्रीय दृष्टि से मानते हैं।

रोगोत्पत्ति का प्रधान करण B. Pertusis (Hemophilus pertusis) ही है। सामान्यतया यह व्याधि 1 वर्ष से 5 वर्ष तक की वय में बहुतायत से मिलती है। व्याधि किसी भी वय में हो सकती है। शीत प्रदेश एवं शीत काल में यह रोग अधिक होता है। रोग का संक्रमण बिन्दूत्क्षेपण विधि द्वारा होता है। रोगी के खाँसने, छींकने व थूकने से उत्पन्न बिन्दुओं द्वारा रोग का प्रसार होता है। घर के एक बच्चे को होने पर यह रोग प्रायः सभी बच्चों को हो जाता है।

इस व्याधि में पूर्ण श्वसनतन्त्र की विकृति होती है। घ्राणेन्द्रिय, गला, स्वरयन्त्र से लेकर फुफ्फुस में सूक्ष्म प्रणाली (Bronchioles) में श्लैष्मिक कला का शोथ एवं श्लेष्मा का स्राव हो जाता है तथा यही विकृति समस्त लक्षण व उपद्रव का कारण होती है। इसका संचय काल 7 से 14 दिन का है। ऐसा माना जाता है कि जिसे एक बार यह व्याधि हो जाती है प्रायः उसे पुनः यह रोग नहीं होता, क्योंकि उसमें व्याधि-प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है।

लक्षण—लक्षण के आधार पर व्याधि को 3 अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं—

(1) प्रसेकी अवस्था (Catarrhal stage)—यह अवस्था प्रायः 10 से 12 दिन की होती है। प्रतिश्याय, नाक का बहना, अश्रुस्राव, ज्वर तथा गले में खराश के साथ खाँसी का बराबर आना तथा कभी-कभी वमन का होना सामान्य लक्षण हैं। कास के आवेग का समय धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। कास प्रायः चिल्लाने के समय या भोजन करते समय प्रारम्भ हो जाती है। प्रारम्भ में रक्त-परीक्षण में W.B.C. सामान्य से कम ही रहते हैं। पर इस अवस्था के अन्त एवं द्वितीय अवस्था के प्रारम्भ में W.B.C. की संख्या बढ़कर 20,000 से 50,000 रक्तकण/मि.मि.^{3} आव रक्त तक पहुँच जाता है। इसमें 50 से 90% तक Lymphocytes ही होते हैं।

(2) आवेगावस्था (Spasmodic or Paroxysmal stage)—यह अवस्था 2 से 4 सप्ताह तक या इससे भी अधिक समय तक रहती है। कास के आवेग का समय एवं तीव्रता बढ़ जाती है। कास शुष्क होता है। झटके से 5 से 10 बार खाँसने से फुफ्फुस में संचित वायु निकल जाती है जिससे रोगी का दम घुटने लगता है। इसके बाद रोगी एक दीर्घ श्वास खींचता है, इस समय स्वरयन्त्र के सङ्कुचित (spasm) रहने के कारण एक विशिष्ट ध्वनि हूप (Whoop) निकलती है। इस समय बालक का मुख रक्ताभ या नीलिमायुक्त होता है; नेत्र उभरे हुए, जिह्वा मुख से बाहर, लालास्राव, अश्रुस्राव एवं ग्रीवा की शिराओं का उभरा होना लक्षण होते हैं। कभी-कभी यह आवेग लम्बे समय तक बार-

बार तब तक आते हैं जब तक श्लैष्मिक स्राव का वह अंश जो मार्गावरोध किया है, निकल न जाय। अतः कास का अन्त प्रायः वमन से होता है। अन्य विशेष लक्षण जैसे—नेत्रगोलक के बाहर शोथ, नेत्रकलागत रक्तस्राव, थकावट, जलाल्पता एवं आक्षेप आदि होते हैं।

याद रखने का तथ्य है कि आवेग प्रायः भोजन के समय, एकाएक क्रियाशील होने से, चिल्लाने से, छींकने से एवं कमरे का तापक्रम बदलने से प्रारम्भ होते हैं। आवेग के मध्य बालक लगभग सामान्य होता है।

(3) प्रशमावस्था (Convalescent stage)—यह अवस्था 7 से 14 दिन की होती है। क्रमशः कास, हूप एवं वमन के आवेग कम होते जाते हैं। कभी-कभी हल्की कास लम्बे समय तक चलती रहती है।

उपद्रव—कुक्कुरकास में उपद्रवों की संख्या अत्यधिक है—

(1) श्वसनतन्त्र—वातश्लैष्मिक ज्वर, न्यूमोनिया, Bronchiectasis, श्वसनी-शोथ, Pneumothorax एवं राजयक्ष्मा आदि।

(2) अन्नवह स्रोतस्—जिह्वासीवनी में व्रण, वमन, अतिसार एवं गुदभ्रंश।

(3) नाड़ीतन्त्र—मस्तिष्कावरण शोथ, आक्षेप, पक्षाघात एवं मस्तिष्कगत रक्तस्राव, नाभि से आन्त्रवृद्धि (Inguinal hernia) या कुपोषण आदि।

चिकित्सा—आधुनिक चिकित्सा में उचित Antibiotic का प्रयोग ही एक मात्र साधन है। प्रायः Erythromycin 50 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन या Ampicillin 100 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन देने के लिए सहमति व्यक्त की जाती है। यह चिकित्सा प्रसेकी अवस्था का समय कम कर देती है।

कुछ चिकित्सक Steroids एवं Isonex देने की सलाह देते हैं जो उचित नहीं हैं। Isonex यदि राजयक्ष्मा की सम्भावना हो तो पूर्ण चिकित्सा के साथ देना चाहिए। इन सबके साथ लाक्षणिक चिकित्सा भी करनी चाहिए।

कुछ चिकित्सक 1.25 से 2.5 एम.एल. Gammaglobulin देने से लाभ की बात करते हैं।

व्याधि से सुरक्षार्थ इसके टीके अवश्य लगवाने चाहिए जिनका विस्तृत विवरण लेहाध्याय में दिया गया है।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से निम्न औषधियाँ लाभकर हैं। इनका प्रयोग करते हुए वातिक कास की चिकित्सा को भी ध्यान में रखना हितकर है—

(1) वसन्तमालती, चन्द्रामृत, महालक्ष्मीविलास रस।

(2) अपामार्ग, यवक्षार, तालीशादि चूर्ण।

(3) प्रवालभस्म, शृंगभस्म, गोदन्ती हरताल भस्म।

Scanned with CamScanner

(4) कण्टकारी घृत ।

(5) च्यवनप्राश, कण्टकार्यावलेह, व्याघ्रीहरीतकी, अगस्त्यहरीतकी, वासावलेह ।

(6) सेहुण्ड के 5 ग्राम वजन के दण्ड को बीच में चीर कर उसमें 1¼ माष काली-मिर्च भर कर छिद्र बन्द कर हाँडी में बन्द कर फूँक कर भस्म बना दें । इसकी 2-2 रत्ती की मात्रा दिन में 4-5 बार शर्करा से देने पर लाभ करता है । (चिकित्सादर्श)

(7) मक्के की खुखड़ी को जलाकर उसकी राख नमक एवं यवानी सत्त्व 1/16 भाग मिलाकर देने से लाभ करता है ।

(8) केले के पत्तों की भस्म 2 से 4 रत्ती की मात्रा में मधु के साथ दिन में 3 बार चटाने से लाभ करता है । (सुधानिधि-नि.चि.वि.भाग-3)

*

अध्याय - 16

नेत्र-विकार

आयुर्वेद-संहिताओं में अभिष्यन्दी, पोथकी एवं कुकूणक नाम की व्याधियों का सम्बन्ध शिशुओं से विशेष रूप से जोड़ा गया है । परन्तु इनके अतिरिक्त बहुत-सी व्याधियाँ शिशुओं में होती है; यथा—रात्रिअन्धता एवं नेत्रकलागत रक्तस्राव जिनका वर्णन शुरू के अध्यायों में दिया गया है । काश्यपसंहिता में कुकूणक चिकित्सा प्रकरण एवं षट्कलाध्याय में बहुत-से नेत्ररोगों का उल्लेख भी किया है । यथा—पिल्लिका रोग, उपलेप रोग, तिमिर रोग, कोथ रोग, नेत्र तथा कण्डू आदि ।

अभिष्यन्द

अभि उपसर्गपूर्वक 'स्यन्द्-प्रस्रवणे' नामक धातु से अभिष्यन्द शब्द बना है । जिस रोग में नयन से अत्यधिक स्राव हो, उसे अभिष्यन्द कहते हैं । इस अवस्था में श्लेष्मकला में रक्ताधिक्य एवं शोथ हो जाता है । अत: इसे (conjunctivitis) कहते है । आचार्यों ने इसका सम्बन्ध दन्तोद्भेदजन्य उपद्रव से जोड़ा है—

'दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम् ।
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ।।
अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते' ।।

(अ.हृ.उ. 2:26-27)

शास्त्रीय दृष्टि से अभिष्यन्द 4 प्रकार का होता है—

(1) वातज—तोद, स्तम्भ, रोमहर्ष, नेत्र में किरकिरापन, रूक्षता, शिर:शूल, नेत्र में मल का अभाव एवं ठण्डे अश्रुपात का होना आदि इसके लक्षण हैं ।

(2) पैत्तिक—दाह, पाक, ठण्डे पदार्थों के सेवन की इच्छा, धूम्र के निकलने जैसी प्रतीति, गरम अश्रुपात एवं पीलापन आदि लक्षण हैं ।

(3) कफज—उष्ण वस्तुओं के सेवन की इच्छा, नेत्र में गुरुता एवं शोथ, कण्डू, नेत्र का लिप्त रहना, ठण्डापन, मात्रा में अधिक पिच्छिल स्राव का होना सामान्य लक्षण है ।

(4) रक्तज—ताम्रवर्ण का अश्रुपात, नेत्र के चारों ओर की कोशिकाओं का लाल होना एवं पैत्तिक अभिष्यन्द के लक्षण युक्त होता है ।

वस्तुत: बच्चों में होने वाले विशिष्ट अभिष्यन्द हैं जिनका वर्णन आगे कुकूणक के साथ किया जायेगा ।

Scanned with CamScanner

चिकित्सा

'ससैन्धवं लोध्रमध्वाज्यघृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कण्डूं च दाहं च रुजं च हन्यात्' ॥ (रा.कु.तं. 228)

सैन्धव, लोध्र एवं सौवीराञ्जन को मधु एवं घृत से घिस करके स्वच्छ वस्त्र में पोटली बनाकर नेत्रकण्डू, नेत्रदाह एवं नेत्ररुजा शान्त होती है ।

'चन्दनं मरुकं लोध्रं जातिपुष्पाणि गैरिकम् ।
प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोयाभिष्यन्दनाशनः' ॥ (रा.कु.तं. 229)

चन्दन, मरुक, लोध्र, जातिपुष्प एवं गैरिक का प्रलेप दाहरोग, नेत्र-अभिष्यन्द एवं जलस्राव का नाश करता है ।

इसके अतिरिक्त अभिष्यन्द की चिकित्सा भी की जानी चाहिए । एतदर्थ कुकूणक प्रकरण भी देखिए ।

कुकूणक

आचार्यों में कुकूणक नामक नेत्ररोग होने के कारण में मतभेद हैं ।

'स्तन्यप्रकोपकफमारुतपित्तरक्तै-
र्बालाक्षिवर्त्मभव एव कुकूणकोऽन्यः' ॥ (सु.उ. 19:9)

स्तन्य के प्रकोप से तथा कफ, वायु, पित्त एवं रक्त की दुष्टि के कारण बालकों के नेत्रवर्त्म प्रदेश में होने वाला यह कुकूणक रोग है ।

'यदा माता कुमारस्य मधुराणि निषेवते ।
मत्स्यं मांसं पयः शाकं नवनीतं तथा दधि ॥
सुरासवं पिष्टमयं तिलपिष्टाम्लकाञ्जिकम् ।
अभिष्यन्दीनि सर्वाणि काले काले निषेवते ॥
भुक्त्वा भुक्त्वा दिवा शेते विसंज्ञा च विबुध्यते ।
तस्या दोषाः प्रकुपिता दूरं गत्वा च तिष्ठते ॥
दोषेणावृतमार्गायास्ततः स्तन्यं च दुष्यते ।
प्रदुष्टदोषसंज्ञं तु यदा पिबति दारकः ॥
लवणाम्लनिषेवित्वान्मातापुत्रौरसादिह ।
आहारदोषास्तस्यास्तु बालस्यानन्नभोजिनः ॥
अनुप्रवेशादाक्षेपादुष्णसत्त्वावनादपि ।
जायते नयनव्याधिः श्लेष्मलोहितसम्भवः' ॥ (का.खि. 13:3-8)

जब शिशु की माता सदा मधुर द्रव्य, मछली, मांस, दूध, शाक, मक्खन, दधि, सुरा, आसव, उड़द की पिष्टी के बने पदार्थ, तिल के बने पदार्थ, खट्टी काञ्जी तथा सम्पूर्ण अभिष्यन्दि द्रव्यों का सेवन करती हैं, दिन में भोजन करके सो जाती है तथा संज्ञाशून्य हो जाती है तब उस स्त्री के दोष प्रकुपित होकर शरीर में दूर जाकर स्थित हो जाते हैं तथा दोषों के द्वारा मार्गों में रुक जाने से उस स्त्री का दुग्ध दूषित हो जाता है। उस दूध को जब शिशु पीता है तो माता के लवण एवं अम्लरस के सेवन करने से तथा उत्पन्न आहारदोष से अन्न का सेवन न करने वाले अर्थात् क्षीराद शिशुओं में आक्षेप एवं उष्णता के कारण कफ तथा रक्त से उत्पन्न होने वाला कुकूणक नेत्ररोग हो जाता है ।

'कुकूणकः शिशोरेव दन्तोत्पत्तिनिमित्तजः' । (अ.हृ.उ. 8:19)
(अ.सं.उ. 11:23)

वाग्भट ने कुकूणक को दन्तोत्पत्ति निमित्त माना है ।

रावणकृत कुमारतन्त्र, योगरत्नाकर एवं माधवनिदान में कुकूणक क्षीरदोष से उत्पन्न माना गया है ।

'कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि' । (रावण, कु.तं. 76)

हारीत ने क्षार दूध पीने से नेत्ररोग का होना कहा है ।

'चक्षुरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावस्रावितां ।
संक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके' ॥ (हा.तृतीयस्थान 54:7)

इस प्रकार के उपरोक्त प्रकरण देखने पर स्पष्ट होता है कि दो तरह के कारण कहे गये हैं—

1. क्षीरदोषजन्य ।
2. दन्तोत्पत्तिजन्य ।

लक्षण—उस शिशु के नेत्र से निरन्तर जल गिरता है, उसे छींक नहीं आती, मन अप्रसन्न, कष्टपूर्वक वह नासिका तथा कानों को कुरेदता है, ललाट, नेत्र एवं नाक को मलता है, नेत्र में अत्यधिक कण्डू होती है जिससे वह उन्हें हाथ में रगड़ता है । वह प्रकाश को सहन नहीं कर पाता और नेत्र से अश्रु बहता रहता है । नेत्रपक्ष्म में शोथ हो जाता है । कश्यप ने निम्नोक्त लक्षण कहे हैं—

'अभीक्ष्णमस्रं स्रवते न च क्षीवति दुर्मनाः ।
नासिकां परिमृद्नाति कर्णौ वाञ्छ(ह्व)ति दुःखितः ॥
ललाटमक्षिकूटं च नासां च परिमर्दति ।
नेत्रे कण्डूयतेऽभीक्ष्णं पाणिना चाप्यतीव तु ॥
स प्रकाशं न सहते अश्रु चारय प्रवर्तते ।
वर्त्मनि श्वयथुश्चास्य जानीयात्तं कुक्कूणकम्' ॥ (का.खि. 13:9-11)

Scanned with CamScanner

'मृद्नाति नेत्रमतिकण्डूमथाक्षिकूटं
नासाललाटमपि तेन शिशुः स नित्यम् ।
सूर्यप्रभां न सहते स्रवति प्रबद्धं
तस्याहरेद्रुधिरमाशु बिनिर्लिखेच्च ।।
क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः प्रतिसारयेत्तु
मातुः शिशोरभिहितञ्च विधिं विदध्यात्' ।। (सु.उ. 19:10)

शिशु के नेत्र में अतिकण्डू होती है, जिससे वह अक्षिकूट, नासा व ललाट को मसलता रहता है, इससे वर्त्म में शोथ हो जाता है । जिससे वह नेत्र नहीं खोल पाता, सूर्य के प्रकाश को भी सहन नहीं कर सकता । निरन्तर नेत्र से अश्रुस्राव होता है ।

वाग्भट, माधव, योगरत्नाकरकार एवं रावण ने संक्षेप में प्रायः यही लक्षण कहे हैं—

'स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः ।
सवर्त्मशूलपैच्छिल्यः कर्णनासाक्षिमर्दनः' ।।
(अ.ह.उ. 8:20, अ.सं.उ. 11:23)

शोथ एवं रक्त वर्ण के नेत्र, देखने में असमर्थता, वर्त्म में शूल एवं पिच्छिलता रहती है । बच्चा कान, नाक तथा नेत्रों को मलता है ।

'जायते तेन नेत्रं च कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ।
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम् ।
शक्तो नार्कप्रभां दुष्टं न नेत्रोन्मीलनक्षयः' ।। (रावण, कु.तं. 76)

नेत्र में अतिकण्डू, नेत्रस्राव, मस्तक-अक्षिकूट तथा नासिका को बार-बार रगड़ना, सूर्यप्रकाश न देख पाना एवं नेत्र बन्द करने में कष्ट होता है ।

उपरोक्त विवरण देखने पर विशेष रूप से निम्नाङ्कित लक्षण स्पष्ट होते हैं—

1. अत्यधिक अश्रुपात ।
2. नेत्रकण्डू एवं वर्त्मशोथ ।
3. प्रकाशसन्त्रास ।
4. मस्तक, नेत्रकूट एवं नासिका को बार-बार रगड़ना ।
5. छींक का न आना ।

उपरोक्त निदान एवं लक्षण को दृष्टिगत कर क्षीरदोषजन्य कुकूणक को विद्वानों ने Opthalmia neonatorum माना है । कुछ विद्वानों ने दन्तोत्पत्ति को दृष्टिगत रखते हुए इसे Follicular conjunctivitis माना है । परन्तु दोनों कारणों को दृष्टिगत रखते ए Allergic conjunctivitis मानना उपयुक्त प्रतीत होता है । क्योंकि Allergy दूध , भोज्य पदार्थों से या दन्तोत्पत्ति के समय के कष्ट से किसी भी कारणों से हो सकती । इन अवस्थाओं का विवरण आगे दिया जा रहा है ।

चिकित्सा—आचार्यों ने कुकूणक की चिकित्सा का विस्तृत उल्लेख किया है ।

'तस्याहरेद् रुधिरमाशु विनिर्लिखेच्च ।
क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः प्रतिसारयेत्तु
मातुः शिशोरभिहितञ्च विधिं विदध्यात्' ।। (सु.उ. 19:10)

कुकूणक में शिशु के नेत्रपलक या उसके आस-पास जलौका लगाकर रक्त का निर्हरण करें या हरशृङ्गार आदि के पत्र से लेखन कर्म करें । इसके बाद त्रिकटु चूर्ण शहद में मिलाकर उसका प्रतिसारण करें । यही सिद्धान्त Follicular conjunctivitis के लिए भी है । कश्यप, वाग्भट ने भी रक्त निर्हरण के लिए कहा है[1] । तदोपरान्त सभी ने वर्त्मप्रक्षालन, परिषेक एवं आश्योतन के लिए कहा है ।

(1) प्रक्षालन एवं परिषेक के लिए जामुन, आम्र, आमलकी एवं अश्मन्तक के कोमल पत्र व छाल का कषाय प्रयोग करें । या एरण्ड, रोहिषा, त्वक्क्षीरी तथा वरुण क्वाथ से परिषेक करें ।[2]

(2) अश्योतन नीम व गिलोय के कल्क या क्वाथ से सिद्ध घृत या त्रिफला के कल्क और क्वाथ से सिद्ध घृत से करें । फणिज्झक तथा तुलसीपत्र रस, जातीपत्र रस, प्रसन्ना, मण्ड तथा मधुयष्टी मिलाकर उससे या शीतल जल से 2 या 3 दिन तक नेत्र का आश्योतन करें या भृङ्गराजपत्र तथा बिल्व गोंद व पत्रस्वरस को सुरामण्ड में पीसने से उत्तम आश्योतन बनता है ।[3]

(3) बालक की धात्री को वमन करायें तथा युक्तिपूर्वक उसके दोषों का पाचन

---

1. ततो वर्त्मनि बालस्य निर्भुज्याथ प्रमृज्य च । निर्मुच्य रुधिरं दुष्टं कुर्याद्धीरोऽवसेचनम् ।।
शिशोस्तु लिखितं वर्त्मस्रुतासुग्वा·····।। (का.खि. 13:15)
(अं.ह.उ. 9:27)

2. (क) ·····ऽम्बुजन्मभिः । धात्र्यश्मन्तकजम्बूत्थपत्रकवाथेन सेचयेत् ।।
(अ.ह.उ. 9:27-28)
(ख) जम्ब्वाम्रधात्र्यणुदलः परिधावनार्थं कार्य्यं कषायमवसेचनमेव चापि ।
(सु.उ. 19:13)
(ग) एरण्डं रोहिषं चैव त्वक्क्षीरीं वरुणं तथा । निष्काथमेतत् कृत्वा च कुमारं परिषेचयेत् ।।
(का.खि. 13:16)

3. (क) आश्योतने च हितमत्र घृतं गुडूचीसिद्धं तथाऽऽहुरपि च त्रिफलाविपक्वम् ।।
(सु.उ. 19:13)
(ख) फणिज्झकस्य पत्राणि सुरसस्य च पीडयेत् । जातिप्रसन्नामण्डेन यष्टीमधुकमेव च ।।
एतदाश्योतनं तस्य शारदेन जलेन तु । त्र्यहमेतत् प्रयुञ्जीत द्व्यहं वाऽपि विधानवित् ।।
ने(भे)कराजस्य पत्राणि बिल्वस्याच्छवनां तथा । सुराग्रमण्डसम्पिष्टं श्रेष्ठमाश्योतनं मतम् ।।
(का.खि. 13:17-19)

Scanned with CamScanner

करे। वमन एवं विरेचन के बाद उसके दोनों स्तनों से दूध निकाल दे, फिर पथ्य का सेवन करायें, अपथ्य का त्याग करे। स्वच्छ रखें, निर्मल वस्त्र पहनायें एवं क्लेशयुक्त न रहें।[1]

आचार्य सुश्रुत ने संशोधन में मात्र वमन कर्म कहा है। शिशु को प्रथम माता या धात्री या अजा दुग्ध पिलाकर शहद के साथ सैन्धव लवण चूर्ण एवं अपामार्ग बीज का चूर्ण चटाकर वमन कराना चाहिए अथवा पिप्पली, सैन्धव लवण का चूर्ण और शहद में अपामार्गबीज चूर्ण मिलाकर वमन करायें। यदि वमन बच्चे को स्वयं हो रहा हो तो वमन कराना आवश्यक नहीं है। क्षीरान्नाद शिशु को वचा चूर्ण दूध या पानी से खिलाकर वमन करायें तथा अन्नाद में मदनफल चूर्ण के द्वारा वमन करायें।

इस सिद्धान्त से यह भी प्रतीत होता है कि यह व्याधि नवजात मात्र की न होकर किसी भी वय में हो सकती है अर्थात् क्षीराद क्षीरान्नाद या अन्नाद को।

(4) कुकूणक में प्रयुक्त होने वाले अञ्जन—

1. मनःशिला, मरिच, शङ्खनाभि, रसाञ्जन, सैन्धव लवण, गुड़ एवं शहद समभाग का अञ्जन निर्माण करें।[2]

2. मूर्वा, मुलेठी एवं आम्रत्वक् जला कर इसका अञ्जन बनायें।[3]

3. कृष्ण लौह का अन्तर्धूम करके चूर्णाञ्जन बनाकर घृत व मधु के साथ अञ्जन करें।[4]

(4) त्रिकटु, पलाण्डु, मुलेठी तथा सैन्धव पीपल की लाख समभाग लेकर कूटकर खरलकर गुटिकाञ्जन बना लें।[5]

(5) निम्बपत्र, मधुयष्टी, दारुहरिद्रा, ताम्रचूर्ण या भस्म एवं लोध्र—इन्हें एकत्र कर, पीस कर समान भाग अञ्जन मिलाकर जल के साथ खरल कर गुटिकाञ्जन बनायें[6]।

1. (क) धात्रीं तु तस्य वामयेद्घृतं चैव विपाचयेत्। तस्या वान्तविरिक्ताया निर्दुह्य च स्तनावुभौ॥
भोजनानि च सर्वाणि यथायुक्तं प्रदापयेत्। पथ्यं भुञ्जीत खादेत विपरीतं च वर्जयेत्॥
प्रयता शुद्धवस्त्रा स्यादक्लिष्टाऽमलिना तथा। (का.खि. 13:12-14)
(ख) तं वामयेत्तु मधुसैन्धवसम्प्रयुक्तैः पीतं पयः खलु फलैः खरमञ्जरीणाम्॥
स्यात्पिप्पलीलवणमाक्षिकसंयुतैर्वा नैनं वमन्तमपि वामयितुं यतेत।
दत्त्वा वचामशनदुग्धभुजे प्रयोज्यमूर्ध्वं ततः फलयुतं वमनं विधिज्ञैः॥
(सु.उ. 19:11-12)

2-4. नेपालजामरिचशाङ्गरसाञ्जनानि सिन्धुप्रसूतगुडमाक्षिकसंयुतानि।
स्यादञ्जनं मधुरसामधुकाम्रकैर्वा कृष्णायसं धृतपयो मधु वाऽपि दग्धम्॥
(सु.उ. 19:14)

5. व्योषं पलाण्डु मधुकं लवणोत्तमञ्च लाक्षाञ्च गैरिकयुतां गुटिकाञ्जनं वा।
(सु.उ. 19:15)

6. स्यादञ्जनं मधुरसामधुकाम्रकैर्वा कृष्णायसं धृतपयो मधु वाऽपि दग्धम्॥
(सु.उ. 19:14)

(6) हरिद्राद्वय, लोध्र, मधुयष्टी, कुटकी, निम्बपत्र एवं ताम्रभस्म को पानी में पीस कर इसकी वर्ति बनायें।[1]

(7) लौहभस्म को दूध, मधु एवं घृत में मिला कर वर्ति बनायें।[2]

(8) एला, रसोन, कतक, शङ्खनाभि, मरिच एवं कट्फल को सुरा के साथ पीसकर इसकी वर्ति बनायें।[3]

वाग्भट ने कुकूणक चिकित्सा में स्तन पर लेप व धूपन भी कहा है एवं धात्री-शोधन की भी बात कही है जबकि व्याधि का कारण दन्तोत्पत्ति माना है। अर्थात् वे भी कहीं शङ्का करते थे कि यह व्याधि क्षीरजन्य है या दन्तोत्पत्ति निमित्त।[4]

कश्यप ने कुकूणक-चिकित्सा (खि. 13) प्रकरण में नेत्ररोगों की चिकित्सा का विस्तृत वर्णन किया है। उसका भी अवलोकन इस क्रम में किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त काश्यपसंहिता/कल्पस्थान/पृ. 183 षट्कल्प अध्याय भी नेत्ररोगों की चिकित्सा की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में चक्षुष्या, पुष्यक, माता (हरीतकी), गोरोचन, रसौत एवं निर्मली बीज के विशिष्ट कल्प नेत्ररोगों में हितकर बताये गये हैं। यथा—

'जन्मतश्चतुरो मासान् पञ्च षड् वाऽक्षिरोगिणाम्।
विघृष्य नारीस्तन्येन चक्षुषी प्रतिपूरयेत्'॥

जन्म के बाद 4, 5 एवं 6 मास तक उपर्युक्त औषधियों को स्त्रीदग्ध में घिसकर नेत्ररोगियों की आँख में डाले।

पोथकी

पोथकी का उल्लेख भी दन्तोद्भेदनिमित्त व्याधि प्रकरण में शिशुओं के लिए आया है। इसके लक्षण निम्नवत् हैं—

'स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः।
रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः'॥ (मा.नि. 59:78)

स्राव व कण्डु युक्त भारी लाल सर्षप के समान वर्त्म में जो पीड़ायुक्त पिडिका हो जाती हैं उन्हें पोथकी कहते हैं। लक्षण की दृष्टि से इसे Trachoma कहा जा सकता है।

1-3. द्विनिशारोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिम्बपल्लवैः। कुकुणके हिता वर्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोऽन्वितैः॥
क्षीरक्षौद्रघृतोपेतं दग्धं वा लोहजं रजः। एलारसोनकतकशङ्खोषणफणिज्जकैः॥
वर्तिः कुकूणपोथक्योः सुरापिष्टैः सकट्फलैः॥ (अ.ह.उ. 9:32-34)

4. मुस्ताद्विरजनीकृष्णाकल्केनालेपयेत्स्तनौ। धूपयेत्सर्षपैः साज्यैः शुद्धां क्वाथं च पाययेत्॥
पटोलमुस्तमृद्वीकागुडूचीत्रिफलोद्भवम्। शिशोस्तु लिखितं वर्त्म स्तुतासृग्वाऽऽम्बुजन्मभिः॥
धात्र्यश्मन्तकजम्बूत्थपत्रक्वाथेन सेचयेत्॥ (अ.ह.उ. 9:26-28)

Scanned with CamScanner

चिकित्सा—पोथकी की चिकित्सा में आचार्यों ने सर्वप्रथम लेखन कर्म का विधान किया है—

'पोथकीर्लिखिताः शुण्ठीसैन्धवप्रतिसारिताः ।
उष्णाम्बुक्षालिताः सिञ्चेत् खदिराढकिशिग्रुभिः ।।
अप्सिद्धैर्द्विनिशाश्रेष्ठामधुकैर्वा समाक्षिकैः' । (अ.ह.उ. 9:21-22)

लेखन करके शुण्ठी एवं सैन्धव से प्रतिसारण करें । गर्म जल से धोकर खैर, आढ़क, शिग्रू के क्वाथ से परिषेक करें । या हरिद्राद्वय, त्रिफला एवं मधुयष्टी क्वाथ में मधु डालकर इससे परिषेक करें । चन्द्रोदयवर्ति का प्रयोग करें ।

आधुनिक चिकित्सा में उपरोक्त व्याधियों का वर्णन निम्नवत् है ।

नवजात शिशु का नेत्रशोथ
(Opthalmia Neonatorum)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि आधुनिक आयुर्वेद के मनीषियों द्वारा इसे कुकूणक की संज्ञा दी जाती है । यह व्याधि नवजात शिशु में प्रथम सप्ताह में दोनों नेत्रों में पूययुक्त श्लेष्मकला शोथ (Purulent conjunctivitis) के रूप में होती है । इसमें Gonococcus, Staphylococcus, Streptococcus, B. coli या Typical genital virus का संक्रमण कारण होता है । यह संक्रमण जन्म के समय प्रसव मार्ग के जीवाणुओं के संसर्ग से होता है । Gonococcus का सञ्चय काल 1 से 3 दिन, अन्य जीवाणुओं का 7 से 14 दिन एवं विषाणु (Virus) का 7 से 9 दिन का होता है ।

यह व्याधि प्रायः दोनों नेत्रों में होती है । नेत्रवर्त्म शोथयुक्त लाल हो जाते हैं । प्रारम्भ में स्राव जलीय होता है जो बाद में पूययुक्त हो जाता है जो 6 से 8 सप्ताह में घट कर अल्प रह जाता है ।

चिकित्सा—सुरक्षात्मक उपायों को अपनाना अधिक श्रेयस्कर है । एतदर्थ—

(1) गर्भकाल में माता का किसी भी संक्रमण के लिए परीक्षण एवं उचित चिकित्सा करें ।

(2) जन्मोपरान्त शिशु के नेत्र में 1% सिल्वर नाइट्रेट का घोल डालते हैं । आजकल इसके स्थान पर क्रिस्टलाइन पेन्सिलीन का 2500 यूनिट/सी.सी. जल का घोल डालते है ।

चिकित्सा हेतु Penicillin, Sulpha औषधियों का प्रयोग मुख से करें एवं उपरोक्त Penicillin का घोल नेत्र में 4-4 घण्टे पर डालें । यदि Cornea के प्रभावित होने की सम्भावना हो तो Atropine sulphate मलहम लगायें तथा नेत्रचिकित्सक की सलाह लें ।

नेत्रश्लैष्मिककलाशोथ
(Acute Conjunctivitis)

यह नेत्र के लाल होने का सामान्य कारण है । यह किसी भी वय में, किसी भी लिङ्ग में हो सकता है । इसमें प्रायः Staphylococcus, Kochweek's bacillus, Pneumococcus or Influeza bacillus) का संक्रमण कारण होता है । गन्दी आदतें एवं अस्वास्थ्यजनक स्थिति सहायक कारण होती है ।

लक्षण—मरीज निम्नलिखित कष्टों के साथ आता है—

1. प्रकाश असहिष्णुता ।
2. सोते समय नेत्रपलकों का स्राव के कारण चिपकना ।
3. नेत्रों में कष्ट, किरकिरापन की अनुभूति ।
4. स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ना क्योंकि Cornea पर स्राव का पतला-सा स्तर बन जाता है । प्रकाश सात रङ्गों में बँटा भी दिखता है ।

रोगी का परीक्षण करने पर प्रायः व्याधि एक नेत्र में मिलती है जो बाद में दूसरे नेत्र में भी हो जाती है । अन्य लक्षण निम्नवत् होते हैं—

1. नेत्र के श्वेत मण्डल का लाल होना ।
2. नेत्रपलकों में हल्का शोथ ।
3. नेत्र के श्वेत मण्डल पर रक्तस्राव के धब्बे प्रायः Pueumococcus संक्रमण में मिलता है ।
4. पूययुक्त श्लैष्मिक स्राव नेत्र के किनारों पर तथा पलकों पर एकत्रित रहता है । इससे पलकों के बाल आपस में चिपक जाते हैं ।

चिकित्सा—यदि एक नेत्र ही व्याधिग्रस्त हो तो दूसरे की सुरक्षा करें । व्याधित नेत्र की ओर करवट करके लेटना, उस नेत्र को स्पर्श कर दूसरा नेत्र न छूना आदि उपाय करें ।

(1) नेत्र को स्वच्छ रखने हेतु 1.4 प्रतिशत का नार्मल सैलाइन घोल नेत्र धावन हेतु प्रयोग करें ।

(2) Argyral 5% या Lotion pretorgal 5% का प्रयोग नेत्र में तीन बार करना चाहिए ।

(3) उचित Antibiotic drop यथा Sulphacetamide drop 10% का नेत्र में 3-4 बार प्रयोग करें । सोते समय मलहम का प्रयोग करें ।

(4) नेत्र पर पट्टी या पैड का प्रयोग न करें । बड़े बच्चे काला चश्मा प्रयोग कर सकते हैं ।

(5) यदि व्रण की सम्भावना हो तो Atropine 1% का प्रयोग करते हुए नेत्र-चिकित्सक का परामर्श लेना चाहिए ।

Scanned with CamScanner

कोषीय नेत्रश्लैष्मिककला शोथ
(Follicular Conjunctivitis)

यह संक्रामक प्रकार का एक ऐसा नेत्र-श्लैष्मिक कलाशोथ है जिसमें श्लैष्मिक-कला में कोषों (Follicles) का निर्माण हो जाता है। यह कोष श्लैष्मिक कला के Sub-epithelial adenoid layer में Lymphocytes के संग्रह से बनते हैं। निम्नाङ्कित अवस्थाओं में प्राय: इनका निर्माण होता है—

1. Folliculosis.
2. कोषकीय नेत्रश्लैष्मिक-कलाशोथ।
3. पोथकी (Trachoma)।
4. औषधि-प्रतिक्रिया Atropin या Eserine आदि डालने से।

(1) Folliculosis—प्राय: बाल्यकाल में अस्वास्थ्यजनित अवस्था में होने वाली व्याधि है। जो 20 वर्ष की वय के बाद प्राय: नहीं होती। दृष्टिदोष (Hyper-metropia), गलशुण्डी (Tonsilitis) एवं Adenoids से भी इसका सम्बन्ध है। यह व्याधि लक्षण रहित होती है। परीक्षण में प्राय: अधोवर्त्मकोण में समानान्तर रेखाओं में यह कोष (Follicles) शृंखलाबद्ध दिखते हैं। कोई भी लालिमा या स्राव नहीं होता।

चिकित्सा—सामान्य स्वास्थ्य की देख-रेख की जाय। गलशुण्डी आदि अवस्था का उपचार करें। किसी विशेष स्थानीय चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। फिर भी जिंक सल्फेट 1% एवं बोरिक एसिड 2% का घोल नेत्र में दिन में 3-4 बार डाला जा सकता है।

(2) कोषीय नेत्रश्लैष्मिक-कलाशोथ—इसके तीव्र एवं जीर्ण दो स्वरूप हैं। जिसमें एक विशिष्ट अवस्था शिशुओं से सम्बद्ध है जिसे नवजात शिशु का Inclusion Plennorrhoea कहते हैं।

इस शैशवीय व्याधि का कारण TRIC virus है। इसमें प्रथम नेत्र के अधोवर्त्म के नीचे की श्लैष्मिक कला में लालिमा होती है। धीरे-धीरे तीन माह के बाद कोष बन जाते हैं। तीव्र स्वरूप के नेत्रश्लैष्मिक कलाशोथ के सभी लक्षण मिलते हैं। इस अवस्था को ध्यान में रखकर कुछ विद्वान् इसे कुकूणक भी मानते हैं।

चिकित्सा—इस व्याधि के विषाणुओं पर Sulpha औषधि एवं Broad Spectrum antibiotics का अच्छा प्रभाव है। चिकित्सा पोथकी के समान करना चाहिए।

जीर्णकोषीय नेत्रश्लैष्मिक-कलाशोथ—यह अवस्था कोषीय नेत्रश्लैष्मिक कला-शोथ की सभी अवस्थाओं में सबसे सामान्य है। इसमें वस्तुत: Folliculosis के साथ हल्के संक्रमण के लक्षण भी होते हैं। नेत्र में कण्डु एवं प्रकाशासहता होती है। अल्प स्राव, सम्पूर्ण नेत्र में हल्की लालिमा एवं कोषों का निर्माण होता है। यह व्याधि 1½ से 2 वर्ष तक चलती है।

चिकित्सा—Folliculosis में बताया गया नेत्रबिन्दु (Eye drop) डालना चाहिए।

असहिष्णुताजन्य नेत्रश्लेष्ममय कलाशोथ
(Allergic Conjunctivitis)

नेत्र की श्लेष्म कला (Conjunctiva) का शोथ किसी विशिष्ट वस्तु के असहिष्णुता (Allergy) से होता है। यह तीन प्रकार का होता है—

(1) सामान्य—इस वर्ग में बाह्य कारण जैसे—परागकण, सब्जियाँ एवं पशुओं के पदार्थ; औषधियाँ यथा—Penicillin, Atropin, Eserine आदि है। अन्त: कारण किसी Septic focus में उपस्थित जीवाणु से उत्पन्न विष यथा—Staphylococcus कारण होते हैं।

(2) Phlyctenular—इसमें प्राय: उपरोक्त अन्त: कारण ही व्याधि उत्पन्न करते हैं। अस्वास्थ्यकर अवस्था में यह प्राय: 4 से 13 वर्ष की वय में होता है। अत्यधिक शर्करासेवी में यह व्याधि अधिक होती है। Tubercular diathesis एवं Tuber-culo-toxin भी इसका कारण है।

(3) ग्रीष्मकालीन (Spring catarrh)—इसमें प्राय: बाह्य कारण ही होते हैं। व्याधि प्राय: गर्मी में होती है तथा जाड़ों में शान्त हो जाती है। शुष्क ताप से यह बढ़ता है।

सामान्य वर्ग में नेत्र में कण्डु, प्रकाश में असहता एवं अश्रुपात होता है। Phlyctenular में नेत्रों के कष्ट, कण्डु एवं अश्रुपात होता है। ग्रीष्मकालीन Conjunc-tivitis में उपरोक्त सभी लक्षण तथा जलन भी होता है।

(1) सामान्य (Simple) allergic conjuctivitis—इसमें नेत्रों में लालिमा, श्वेत मण्डल पर रक्तसञ्चय (Chemosis), अल्प जलस्राव एवं नेत्रवर्त्म में शोथ होता है। Conjunctival smear के परीक्षण में Eosinophil मिलते हैं।

चिकित्सा—Allergen को दूर करना चाहिए। Antistin-privine drop 4 से 6 बार नेत्र में डालना चाहिए। Anti-allergic एवं Vaso-constrictor औषधि का प्रयोग करें। Hydrocortisone 1% का मलहम रात में सोते समय प्रयोग करें।

(2) Phlyctenular conjuctivitis में कृष्ण मण्डल एवं श्वेत मण्डल सन्धि पर श्वेताभ गुलाबी वर्ण के Nodules दिखाई पड़ते हैं। जो श्वेत मण्डल पर भी मिल सकते हैं। नेत्र में लालिमा मिलती है। सामान्य रूप में अश्रुपात ही होता है। बच्चों में साथ में गलशुण्डी-वृद्धि एवं ग्रीवा में लसिकाग्रन्थि-वृद्धि भी मिलती है।

Scanned with CamScanner

चिकित्सा

(1) स्थानीय—यदि संक्रमण न हो तो Hydrocortisone drop 1% को 2-2 घण्टे पर डालें। संक्रमण की अवस्था में नेत्राभिष्यन्द की चिकित्सा करें। फिर उपरोक्त ड्राप डालें। यदि कृष्ण मण्डल भी व्याधित हो तो Atropin 1% मलहम का भी प्रयोग करें।

(2) सार्वदैहिक चिकित्सा—यदि राजयक्ष्मा का संक्रमण हो तो उचित निदान व चिकित्सा करें। अन्य संक्रमणों की चिकित्सा भी करें तथा पोषणयुक्त श्रेष्ठ आहार दें।

(3) ग्रीष्मकालीन—बालक नेत्र में बराबर कण्डु बताता है, जो ग्रीष्म ऋतु में बढ़ जाती है। Flat cobble-stone जैसी Papillae ऊपरी श्लेष्मल कला (Upper tarsal Conjunctiva) में मिलता हो। या Gelatinous, heaped up tissue यदि कृष्ण मण्डल एवं श्वेत मण्डल के सन्धि पर हो तथा Conjunctiva के स्राव में Eosinophil मिलते हैं।

चिकित्सा—कण्डुनाश हेतु Antistin-privin drop 4 से 6 बार प्रतिदिन नेत्र में डालें। Hydrocortisone acetate मलहम 1% दिन में 2 बार 3 से 4 माह तक लगायें।

अत्यधिक Papillae hypertrophy में Beta-radiation अथवा शल्य कर्म द्वारा निर्हरण कहना पड़ता है।

पोथकी
(Trachoma)

पोथकी (Trachoma) श्लेष्मल कला एवं कृष्णमण्डल (Cornea) का व्रणशोथ है। इसका जीवाणु Trachoma chlamydia trachomatis के नाम से जाना जाता है। Trachoma में Epithelium का Papillary hypertrophy होती है। दाने या कोष (follicles) होने के साथ-साथ Subepithelial tissue का lymphoid infiltration तथा व्रण-रोपण (Scar) होने के पूर्व Connective tissue की वृद्धि या Proliferation होता है।

बाल्यावस्था में, अस्वास्थ्यकर परिवेश एवं भीड़ में इसका बाहुल्य होता है। तीव्र (Acute) अवस्था में यह संक्रामक है। इसका सञ्चयकाल 5 से 12 दिन का होता है।

प्रारम्भ में अधिकांश रोगियों में लक्षण साधारणत: अव्यक्त होते है। इसमें वर्त्मों का कुछ शोथ एवं लम्बमानता, नेत्रगोलकस्थ श्लेष्मलकला का शोथ, रक्ताभ, Palpebral conjunctiva की Papillary वृद्धि, पूययुक्त श्लैष्मिकस्राव, कृष्ण-मण्डल के Epithelium में खुरदरापन, कभी-कभी Preauricular glands में शोथ एवं स्पर्श-असह्यता होती है। साथ-साथ नेत्रवेदना, प्रकाश-असहता, अश्रुस्राव आदि

लक्षण भी होते है। तृतीय सप्ताह में कोष (Follicles) एवं Papillary की hypertrophy हो जाती है। इसके कुछ ही समय बाद Cornea के परिसरीय उपरिभाग में रक्तसिरा धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होती है। ये अवस्थाएँ सुगम साध्य हैं।

रोग की साधारण गति से तीव्र लक्षण शान्त होते हैं एवं तृतीय मास में रोग-निर्णायक नक्षत्र सदृश Cicatrices दृष्टिगोचर होते है। इस नेत्रव्याधि के कई वर्गीकरण लक्षण व सम्प्राप्ति के आधार पर किये गये है। प्राय: इसे निम्न चार अवस्थाओं में बाँटते हैं—

1. प्रथम अवस्था—जब व्याधि का निर्णय सम्भव नहीं है।
2. द्वितीय अवस्था—व्रणावस्था से Scar formation की अन्तर्वर्ती अवस्था है।
3. तृतीय अवस्था—जब Scar एकदम स्पष्ट हो जाता है।
4. चतुर्थ अवस्था—जब आरोग्य प्रतीत होता है या रोग शान्त मालूम होता है। परन्तु Cicatrix के कारण लक्षण दीखते है।

चिकित्सा

(1) उचित Antibiotics का प्रयोग करते हैं। प्राय: Sulphonamides खाने के लिए एवं Sulphacetamides drop 10% से 30% का प्रयोग करते है। अन्य संक्रमण की अवस्था में Broad spectrum antibiotics का अवश्य प्रयोग करें।

(2) Follicle को दूर करने के लिए Trachoma-roller-forceps से लेखन करते है। अथवा Copper sulphate या Silver-nitrate का स्पर्श कराते हैं। आजकल इसका प्रयोग नहीं करते।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 17

वातव्याधि

आचार्यों ने सामान्यज एवं नानात्मज वर्गीकरण से दो प्रकार की व्याधियों का वर्णन किया है। इनमें से जो रोग वातादि प्रत्येक दोष व सभी दोषों से उत्पन्न होते है, वे सामान्यज कहे जाते हैं। यथा—ज्वर, कास, श्वास आदि। परन्तु वे रोग जो केवल एक ही दोष से उत्पन्न होते हैं, नानात्मज विकार कहे जाते हैं। यथा—वातदोषजन्य आक्षेप, पक्षवध, अर्दित आदि।

शास्त्र में 80 प्रकार के ('अशीतिर्वातविकाराः'—च.सू. 20) वातव्याधियों का उल्लेख मिलता है। जिसमें से कुछ (पाठ्यक्रम में निर्धारित) का वर्णन इस अध्याय में किया जा रहा है।

पक्षवध

जब वायु शरीर के दक्षिण या वाम किसी एक पक्ष को हत कर देता है एवं रोगी उस पक्ष से चेष्टा नहीं कर पाता। इसमें पीड़ा होती है, वाणी रुक जाती है। इसे पक्षवध कहा जाता है—

'हत्वैकं मारुतः पक्षं दक्षिणं वाममेव वा।
कुर्याच्चेष्टानिवृत्तिं हि रुजं वाक्स्तम्भमेव च' ॥ (च.चि. 28:53)

कुछ आचार्य इसे एकांगवात एवं अर्धाङ्गवात की भी संज्ञा देते है।

'गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः सिरोः स्नायूर्विशोष्य च।
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन् ॥
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः' ॥ (अ.हृ.नि. 15:38-40)

वायु शरीर के आधे भाग को आक्रान्त करके, सिरा एवं स्नायु को शुष्क करके तथा सन्धिबन्धनों को ढीला करके किसी एक पार्श्व को निष्कर्म कर देता है। इससे रोगी का आधा शरीर कर्महीन एवं संज्ञाहीन हो जाता है। इसे एकाङ्गरोग या पक्षवध कहते हैं।

वस्तुतः अङ्गघात को 4 भागों में विभक्त किया जाता है—

1. एकाङ्गघात (Monoplegia)।
2. पक्षवध या अर्धांगवात (Hemiplegia)।
3. सर्वांगघात (Diplegia)।
4. अधराङ्गघात (Paraplegia)।

उपरोक्त 4 अवस्थाओं में पक्षवध का विवेचन आगे स्कन्द ग्रह प्रकरण में हतैकपक्षः या बालपक्षाघात शीर्षक से किया गया है। उस प्रकरण में बच्चों में होने वाले प्रमुख उन कारणों का उल्लेख है जिनसे पक्षवध या पक्षाघात बच्चों में हो जाता है।

शैशवीय पक्षाघात

उपरोक्त प्रकरण में ही शैशवीय पक्षाघात का भी विवेचन किया गया है। कुछ विद्वान् इस शीर्षक से Polio का ग्रहण कर लेते है परन्तु यह द्रष्टव्य है कि शैशवीय पक्षाघात का Polio virus एक प्रमुख कारण होता है। परन्तु शैशवीय पक्षाघात के अनेक अन्य कारण भी है। अतः इन्हें एक-दूसरे का पर्याय नहीं मानना चाहिए।

एकाङ्गघात
(Monoplegia)

इस अवस्था में शरीर के किसी एक अङ्ग (हाथ या पैर) का घात या वध हो जाता है। नाड़ीवह संस्थान के Cerebral या सुषुम्ना नाड़ी या स्थानीय नाड़ियों के विक्षत (Lesion) से यह अवस्था पैदा होती है। लक्षण एकाएक या क्रमशः पैदा होते है। इस आधार पर इसे निम्न दो में बाँट सकते है—

(क) जब लक्षण एकाएक प्रकट हों—

1. पोलियो माइलाइटिस।
2. एनसेफलाइटिस एवं Rheumatic norea.
3. प्रसवकालीन आघातजन्य—Brachial या Sacral plexus आघात।
4. Cerebral vascular accident—Embolism, Thrombosis आदि।

(ख) जब लक्षण क्रमशः प्रकट हों—

1. शिरोघात (Subdural hematoma)।
2. अर्बुद (Cerebral neoplasm, Spinal tumour)।
3. Motor neuron disease.
4. Paralytic brachial neuritis.
5. विविध—कैंसर, हाज़किन्स डिजीज आदि।

उपरोक्त कारणों में प्रसवकालीन आघातजन्य का विवेचन अध्याय तीन में किया गया है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण पोलियो है, जिसका वर्णन बालग्रहों में स्कन्दग्रह के साथ किया गया है।

उपरोक्त सन्दर्भ में 'Cerebral palsy' नामक व्याधि का उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

Scanned with CamScanner

सेरिब्रल पक्षवध
(Cerebral Palsy)

John Little नामक जिस वैज्ञानिक ने इसे सर्वप्रथम वर्णित किया उनके नाम पर इसे Little disease भी कहते हैं। इस व्याधि को संक्षेप में C.P. भी कहते है।

शरीर के आसन एवं गति में स्थायी विकृति करने वाली यह व्याधि न ही बढ़ने वाली, न ही मारक एवं असाध्य स्वरूप की है। यह व्याधि विकसित होने वाले मस्तिष्क को नष्ट करने के कारण होती है। यह आघात जन्म के पूर्व या जन्म के बाद या जन्म के समय हो सकता है।

इस व्याधि का स्पष्ट कारण अज्ञात है। परन्तु प्राय: अल्प या अधिक मात्रा में Mental retardation के समान ही इसके भी Genetic या Chromosomal संक्रमण आदि कारण होते हैं। जन्म के समय आघात, ओषजन-अल्पता, समयपूर्व प्रसव आदि कारण हो सकते हैं।

यह व्याधि पक्षवध के आधार पर छ: उपवर्गों में विभाजित होती है—

1. अर्धांगवात—यह सबसे सामान्य वर्ग है। इसमें शरीर के एक पार्श्व में हाथ या पैर में विकार होता है।
2. अधराङ्गवात—दोनों पैरों में विकृति होती है।
3. एकाङ्गवात—इसमें एक हाथ या पैर की विकृति होती है।
4. सर्वाङ्गवात—इसमें दोनों हाथ एवं पैरों की विकृति होती है।
5. ट्राइप्लेजिया—इसमें अधराङ्गवात के साथ एकाङ्गवात (एक हाथ) होता है।
6. डाइप्लेजिया—इसमें हाथ की अपेक्षा पैर अधिक विकृत होते हैं।

रोगी के स्तर एवं चिकित्सा व्यवस्था के आधार पर भी इसे वर्गीकृत किया गया है—

- प्रथम वर्ग—किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है।
- द्वितीय वर्ग—अल्प चिकित्सा की आवश्यकता है।
- तृतीय वर्ग—विशिष्ट चिकित्सा की आवश्यकता होती हे।
- चतुर्थ वर्ग—दीर्घकाल तक आतुरालय प्रवेश एवं विशेषज्ञों द्वारा विशिष्ट चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

नवजात शिशु में व्याधि होने पर स्तन न पकड़ना, आक्षेप, लगातार छर्दि, चिड़-चिड़ापन आदि लक्षण होते हैं। शिशु को उठाने पर पैर फैला देता है। जीवन के प्रारम्भिक कुछ मासों में व्याधि उपस्थित होने पर शरीर बहिरायाम (धनुषवत्) मुड़ जाता है, स्तम्भ हो जाता है। तीन माह के बाद भी (Moro's reflex) उपस्थित रहता है। ग्रीवास्तम्भ मिलता है। बाद की वय में रोगी शिशु के शारीरिक व मानसिक विकास की गति रुक जाती है। अँगूठे पर चलना, चलने में डगमगाना आदि लक्षण मिलते हैं। आवाज में विकृति मिलती है। Plantar reflex extension मिलता है।

वस्तुत: यह पक्षवध या पक्षाघात न होकर, पेशियों की गति एवं सामंजस्य में विकृति है। इसके कई प्रकार हैं। यथा—पेशियों का कड़ापन (Spastic), चलने में डगमगाना (Ataxia), पेशीशैथिल्य (Hypotonia) आदि।

चिकित्सा—सर्वप्रथम शिशु के संरक्षकों को आश्वासन देना चाहिए और सहयोग से शिशु में सामाजिक व्यवहार आदि का विकास करना चाहिए। चिकित्सा हेतु सभी सन्धियों का खिचाव वाला व्यायाम कराना चाहिए, जिससे सन्धियों की गति में अवरोध पैदा न हो। अस्थिरोगविशेषज्ञ की सहायता से आवश्यक सहायक उपकरण लगायें। आवश्यकतानुसार शल्यकर्म करें। मानसिक विकास हेतु विशिष्ट प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए।

अर्दित
(Facial Palsy)

आचार्य सुश्रुत के विचार से अर्दित व्याधि मुखमण्डल की विकृति का द्योतक है।

'गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये।
उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादत: कठिनानि च॥
हसतो जृम्भतो भारात् विषमाच्छयनादपि।
शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिग:॥
अर्दयित्वाऽनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यत:।
वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्त्तते॥
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम्।
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन् पार्श्वे तु वेदना'॥ (सु.नि. 1:68-71)

गर्भवती स्त्री, सूतिका, बालक, वृद्ध एवं दुर्बल में रक्त का क्षय होने से; जोर से बोलने से, अति कठिन पदार्थ चबाने से हँसने से; जृम्भा से, बोझा उठाने से, विषमस्थान

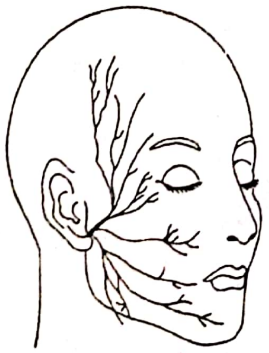

चित्र सं. 50 : मुखनाड़ी (Facial Nerve) तथा उसकी शाखाएँ

Scanned with CamScanner

में सोने से, सिर, नासिका, ओष्ठ, चिबुक, ललाट एवं नेत्रसन्धियों में प्रकुपित वायु स्थिर होकर मुख को पीड़ित करके आर्दित व्याधि पैदा करती है। इसमें मुख का आधा भाग टेढ़ा हो जाता है, ग्रीवा टेढ़ी हो जाती है, सिर काँपता है, बोलने में रुकावट होती है तथा नेत्र, कान, नासादि में भी विकृति होती है। जिस पार्श्व में व्याधि होती है उस ओर की ग्रीवा, चिबुक एव दाँतों में वेदना होती है।

जैसा कि चित्र में 7वीं क्रेनियल नाड़ी अर्थात् मुखनाड़ी की शाखाएँ व उनका क्षेत्र दिखाया गया है। प्राय: यही क्षेत्र अर्दित में पीड़ित होते हैं। अत: अर्दित को आधुनिक दृष्टि से Facial Nerve Paralysis कहा जाता है।

बालकों में अर्दित होने का तथ्य आचार्यों ने स्वीकार किया है। परन्तु बच्चों में विशिष्ट कारणों का उल्लेख नहीं किया है। शिशुओं में कुछ मुख्य कारण निम्नवत् हैं—

(1) मुखनाड़ी पर दबाव—प्राय: Facial palsy लाक्षणिक दृष्टि से Peripheral paralysis होती है। गर्भाशय में, जन्म के समय या Forceps Delivery के मध्य मुखनाड़ी पर दबाव के कारण यह अवस्था आती है।

(2) तीव्र स्वरूप का कर्णशोथ (Otitis media)।

(3) अज्ञात कारणजन्य (Bell's palsy)।

(4) Temporal अस्थिभग्न।

(5) Herpes zoster oticus।

(6) जन्मजात अर्दित—यह प्राय: partial एवं कुछ पेशियों का लकवा होता है। इसमें प्राय: 7वीं नाड़ी के चिबुक शाखा के प्रभावी होने से अधो ओष्ठ एवं मुख के कोने का लकवा होता है।

Bell's palsy—यह व्याधि प्राय: अस्पष्ट कारणजन्य होती है। इसमें रोग का प्रारम्भ एकाएक होता है। तथा एक ओर होता है। रोग किसी भी वय में हो सकता है। इस व्याधि में स्टाइली मैस्टायड छिद्र के अन्दर 7वीं नाड़ी की विकृति होती है। इस व्याधि के अज्ञात कारणजन्य होने पर कुछ प्रमुख कारण निम्न हैं—

1. कण्ठ में संक्रमण।
2. कर्ण शोथ।
3. हर्पिज जोस्टर आदि।

लक्षण—व्याधिपीड़ित पार्श्व में कुछ ही घण्टे के बाद मुखपेशीदौर्बल्य तथा कभी-कभी कर्णशूल प्रारम्भ होता है। मुख स्वस्थ पार्श्व की ओर खिंच जाता है। पीड़ित दिशा की नासिका (Nasolabial fold) बराबर हो जाती है। शिशु नेत्र बन्द नहीं कर पाता है। नेत्र बन्द करने के प्रयास में नेत्र ऊपर को घूम जाते हैं। यही Bell sign हैं। जिह्वा के अग्र 2/3 भाग में रस का ज्ञान नहीं होता।

चिकित्सा

Bell-palsy से पीड़ित शिशु के नेत्र की रक्षा करनी चाहिए। नेत्र को बन्द करने के लिए आवश्यकतानुरूप Tapin करते हैं एवं Conjunctival sac में कृत्रिम आँसू डालते हैं। ACTH एवं Cortisone का प्रयोग नाड़ीशोथ को कम करके लाभ पहुँचाता है।

अन्य प्रकार के कारणों में निदानपरिवर्जन एवं उस अवस्था की चिकित्सा से लाभ पहुँचता है।

वातरोगों का सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त

वातव्याधि में अभ्यङ्ग, स्वेदन, बस्ति, नस्य, स्नेहन तथा विरेचन विचार कर करना चाहिए एवं स्निग्ध, अम्ल, लवणयुक्त पदार्थ; मधुर, वृष्य एवं वातरोगनाशक अन्यान्य पदार्थों का सेवन यथास्थान कराना चाहिए।

'अभ्यङ्गं स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम्।
स्निग्धाम्ललवणं स्वादु वृष्यं वातमयापहम्' ॥

स्वादु, अम्ल, लवण एवं स्निग्ध पदार्थों का सेवन कराकर एवं अभ्यङ्ग, स्नेह कर्म तथा बस्ति कर्म द्वारा वातरोगों का शमन करें।

'स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः।
अभ्यङ्गस्नेहबस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत्' ॥

वातरोगों में यदि वात के साथ पित्त का आवरण (मिश्रित) हो तो शीत एवं उष्ण मिलित औषधि देना चाहिए। यदि कफ का आवरण हो तो रूक्ष एवं उष्ण मिलित पथ्य तथा औषधि दें। वातरोगों में जब शुद्ध वात का ही प्रकोप हो तो उसमें स्निग्ध तथा उष्ण पथ्य एवं औषधि दें।

'पित्तस्याऽऽवरणे वातरोगे शीतोष्णभेषजम्।
कफस्याऽऽवरणे वायौ रूक्षोष्णं भक्ष्यभेषजम्॥
केवले पवनव्याधौ स्निग्धोष्णं भक्ष्यभेषजम्' ॥
(यो.र.वातव्याधि.चि.पृ. 515)

अर्दित व पक्षवध की सामान्य चिकित्सा

'अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं तर्पणमेव च।
नाडीस्वेदोपनाहाश्चाप्यानूपपिशितैर्हिताः॥
स्वेदनं स्नेहसंयुक्तं पक्षाघाते विरेचनम्'। (च.चि. 28:98-99)

अर्दित में तर्पण, तैल का नस्य एवं शिर पर अभ्यङ्ग करना चाहिये। आनूप मांसों में नाड़ीस्वेद एवं उपनाह भी हितकर होते हैं। पक्षाघात में स्नेहयुक्त स्वेदन एवं विरेचन हितकर होता है।

Scanned with CamScanner

अर्दित की चिकित्सा में नस्य एवं कट्फल का स्नेह डालें। बलातैल का अभ्यङ्ग, नाड़ीस्वेद तथा उपनाह, क्षीरबलातैल की बस्ति एवं शिरोबस्ति दें। कर्ण तथा नेत्रों का तर्पण, आनूप मांस का सेवन करायें।

पक्षाघात में बलातैल से अभ्यङ्ग तथा घृतपान करायें। फिर पिण्डस्वेद तथा स्नेहधारा स्वेद कराना चाहिए, विरेचन भी कराना चाहिए। वातशामक तथा बृंहण योग देना चाहिए एवं पीड़ित अङ्ग की व्यायाम-व्यवस्था भी करें।

औषधि

1. क्वाथ—महारास्नादि क्वाथ, महाबलादि क्वाथ, एरण्डादि क्वाथ आदि।
2. चूर्ण—रास्नादि चूर्ण, आभादि चूर्ण (यो.र.)।
3. गुग्गुलु—त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु, योगराज गुग्गुलु, षडशीति गुग्गुलु, रास्नादि गुग्गुलु आदि।
4. तैल—लघुविषगर्भ तैल, महाविषगर्भ तैल, प्रसारणी तैल, नारायण तैल, शतावरी नारायण तैल, शतावरी तैल, बलातैल, दशमूलादि तैल आदि।
5. घृत—पञ्चतिक्त घृत।
6. रसोन कल्क।
7. रस—स्वच्छन्दभैरव रस, समीरपन्नग रस, वातविध्वंसन रस (यो.र.), मल्ल-सिन्दूर (सि.भै.म.), रसराज (भै.र.) तथा वातकुलान्तक रस (र.सा.सं.)।
8. अरिष्ट—बलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, दशमूलारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट आदि।
9. भल्लातकावलेह, माषमोदक, एरण्डपाक आदि।

*

अध्याय - 18

मानसिक विकार

आयुर्वेद-साहित्य में मानसिक रोगों का वर्गीकरण स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं है। यत्र-तत्र उपलब्ध सन्दर्भों को निम्न प्रकार से समायोजित कर प्रस्तुत किया जा सकता है।

(क) निज मानस रोग—इसे दो भागों में बाँट सकते हैं—

(1) मानस दोषजन्य—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, चिन्ता, उद्वेग आदि ये मानस रोग हैं।

(2) शरीरदोषानुबन्धजन्य—कभी-कभी शारीर दोषों के अत्युद्रेक से मानस दोष प्रकुपित होकर इस प्रकार के मानस रोग पैदा करते हैं। प्रधान विकृति मानसिक दोषों में होने के साथ-साथ शारीर दोषों की भी विकृति मिलती है। यथा—उन्माद, अपस्मार आदि।

(ख) आगन्तुज मानस रोग—यह भी दो प्रकार का होता है; यथा—

(1) भूतबाधाजन्य—विशेष अमानुषीय योनियों एवं भूतों का शरीरानुप्रवेश होकर मानसिक दोषों की विकृति होने से या मानसिक दोषों की विकृति के बिना ही मानसिक भावों में विकार उत्पन्न हो जाता है। यथा—भूतोन्माद आदि।

(2) ग्रहबाधाजन्य—यह प्रायः बालकों में होने वाले विकार हैं। इनके साथ शारीरिक विकार भी स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—स्कन्द, स्कन्दापस्मार आदि।

पाठ्यक्रम के अनुरूप आगे उन्माद अपस्मार का वर्णन किया जा रहा है—

उन्माद

पर्याय—उन्माद, समुद्भ्रम,[1] Insanity, Dementia।

निरुक्ति—उद् (ऊर्ध्व) उपसर्गयुक्त मद् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर उन्माद शब्द बना है। ऊर्ध्व आकार या मनोनिग्रह धमनियों का आश्रय कर दोष मद-मनोविभ्रम उत्पन्न करते हैं। अतः इस व्याधि को उन्माद कहा जाता है।[2]

1. समुद्भ्रमं बुद्धिमनःस्मृतीनामुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः। (च.चि. 9:8)
2. मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः। मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥ (सु.उ. 62:3)

Scanned with CamScanner

परिभाषा—आचार्य चरक ने मन, बुद्धि, संज्ञा, ज्ञान, स्मृति, भक्ति, शील, चेष्टा एवं आचार के विभ्रम को उन्माद कहा है ।

'उन्माद पुनर्मनोबुद्धिसंज्ञाज्ञानस्मृतिभक्तिशीलचेष्टाचारविभ्रमं विद्यात्' ।
(च.नि. 7:5)

निदान—तीर्थ आदि में विरुद्ध दुष्ट एवं अपवित्र भोजन, देव, गुरु एवं ब्राह्मणों का निरादर, अतिभय या हर्ष से उत्पन्न मानसिक आघात एवं विषम चेष्टायें उन्माद के हेतु हैं ।

'विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः' ।। (च.चि 9:4)

उपरोक्त प्रायः सभी कारण बालकों में भी सम्भव हैं । परन्तु विशेष रूप से भय एवं हर्ष के द्वारा मानसिक आघात हेतु अधिक सम्भव कारण हैं ।

सम्प्राप्ति—अल्पसत्त्व रोगी के उन हेतुओं से दुष्ट हुए दोष बुद्धि के आश्रयस्थल हृदय को दूषित कर मनोवह स्रोतों का आश्रय करके अर्थात् उन्हें आवृत कर चित्त को मोहयुक्त कर देते हैं अर्थात् उन्माद पैदा करते हैं ।

'तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः' ।।
(च.चि. 9:5)

पूर्वरूप—बुद्धिविभ्रम, मनोविभ्रम या मन का अति चञ्चल होना, दृष्टिव्याकुलता, अधीरता, असम्बद्ध भाषण तथा हृदयशून्यता—ये उन्माद के सामान्य लक्षण हैं । चक्रपाणि इन्हें सामान्य पूर्वरूप लिखते हैं ।

तदुपरान्त उन्माद का विस्तृत वर्गीकरण सभी आचार्यों ने किया है तथा तदनुरूप लक्षण बताये हैं । उस विस्तृत वर्णन में न जाकर यहाँ संक्षेप में वर्गीकरण दिया जा रहा है ।

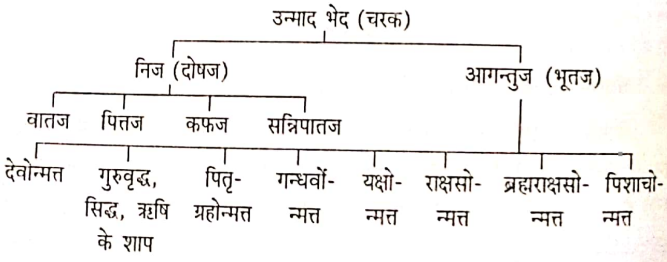

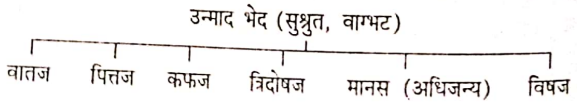

भूतोन्माद का उल्लेख सुश्रुत ने नहीं किया है । देवादिजन्य मानस विकारों का 'अमानुषोपसर्गप्रतिषेध' में पृथक् वर्णन है । वाग्भट ने भी उन्मादप्रतिषेध में भूतोन्माद का वर्णन नहीं किया है । इसके संक्षिप्त लक्षण दिये जा रहे हैं—

(1) वातज—बिना अवसर के हँसना, गाना, रोना, अङ्गविक्षेपण, शरीर में रूक्षता, चेहरा एवं नखादि में श्यावता तथा भोजन पच जाने पर रोग की वृद्धि विशेषतः होती है ।

(2) पित्तज—क्रोध, दूसरों को डराना, छाँह, शीत की इच्छा, नग्न हो जाना, चेहरे एवं नखादि पर पीलापन एवं पच्यमानावस्था में रोग की वृद्धि विशेष होती है ।

(3) अल्प भाषण, अरुचि, लालास्राव, एकान्तप्रियता, नारीप्रियता, भोजनोपरान्त ही रोगी की वृद्धि एवं चेहरा, नख आदि में श्वेतता विशेषतः होती है ।

(4) सन्निपात—इसमें मिश्रित लक्षण होते हैं ।

(5) विषज—इन्द्रिय शक्ति का नष्ट होना, नेत्र का लाल हो जाना, चेहरा-नखादि का श्याव होना एवं मूर्च्छा होना लक्षण है ।

(6) मानस—मनोगत गुप्त एवं चित्र-विचित्र बात बोलना, मूर्च्छा, गाना, रोना, हँसना विशेषतः होता है ।

(7) भूतज—इसमें आवेश करने वाले देवयोनि-विशेष के स्वाभाविक लक्षणों के अनुसार लक्षण होते हैं । सामान्य तथा अलौकिक वाणी बोलना, चलना-फिरना, कार्य करना आदि सामान्य मनुष्य की अपेक्षा अधिक होता है । ऐसा उन्माद अकस्मात् किसी भी क्षण में उत्पन्न हो जाता है ।

साध्यासाध्यता—वातज, पित्तज, कफज उन्माद तथा रतिकामी व अर्चनाकामी उन्माद साध्य है । त्रिदोषज तथा हिंसा के इच्छुक भूतोन्माद असाध्य हैं ।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में इस अवस्था के लिए (Dementia) शब्द प्रयोग होता रहा है । इसका अर्थ हैं "Irreversible organic deterioration of mental faculties" अर्थात् मस्तिष्क के क्रमशः कार्यक्षमता में कमी होना जो असाध्य है । तात्पर्य यह है कि रोगी की मानसिक अवस्था में ऐसा असाध्य परिवर्तन, जिससे वह किसी भी कार्य करने के योग्य न रहे । अब इस शब्द के स्थान पर "Schizophrenia" शब्द का प्रयोग होता है ।

Schizophrenia - It is characterised by a withdrawal from reality, with a tendency towards autistic thinking, that or incongruous emotinal reaction and inconsistent and impulsive behaviour. The patient may show a tendency to maintain false beliefs, which can not be corrected by reasoning or logic. False perception and hallucinations (mostly auditory) may be present.

Scanned with CamScanner

अर्थात् रोगी वास्तविकता से हट कर स्वप्निल वातावरण में रहता है। वह असत्य भावनाएँ बना लेता है। उन भावनाओं को वास्तविकता के आधार पर सत्य नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि रोगी के भाव-विचार वास्तविकता से परे हो जाते हैं।

इसका विस्तृत वर्णन एवं वर्गीकरण आधुनिक चिकित्सा-ग्रन्थों में देखना चाहिए। चिकित्सार्थ कुछ रोगी चिकित्सालय में रखने पड़ते हैं। शामक औषधियों (Largectile, Vesprine, Serpasil, Anatensol, Eskazine आदि) का प्रयोग एवं शाक थेरेपी (विद्युत् द्वारा आघात देना) लाभकर होती है।

चिकित्सा

निज उन्माद में संशोधन एवं संशमन चिकित्सा करें। यथा—वातज में प्रथम स्नेहन, कफज-पित्तज में प्रथम स्नेह फिर स्वेदन करें। फिर कफज में वमन एवं पित्तज में विरेचन करायें। कोष्ठशुद्धि के बाद संसर्जन कर्म करें। फिर दोषानुसार बस्ति का प्रयोग करें।

संशोधन के बाद भी यदि रोगी शान्त न हो तो तीक्ष्ण नस्य, अञ्जन व ताड़ना देना चाहिए। धमकाना व त्रास देना भी लाभ करता है।

लेप उबटन—अभ्यङ्ग, धूम्रपान एवं घृतसेवन भी कराना चाहिये। यह सब मन, बुद्धि, स्मरणशक्ति एवं होश को प्रबुद्ध करते हैं। काम, शोक, क्रोधादि जन्य उन्माद को प्रतिद्वन्द्वी भावों का प्रयोग कर शान्त करना चाहिए। आगन्तुज उन्माद में औषधि सिद्ध घृत या पुराण घृत का सेवन करायें तथा दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करें। दोष, ऋषि आदि जन्य उन्माद मे तीक्ष्ण चिकित्सा न करें।

सामान्य औषधि-प्रयोग

1. स्वरस—ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी, श्वेतकूष्माण्ड एवं दूधिया वच का स्वरस अकेले अथवा मिलाकर देना चाहिए।
2. चूर्ण—सारस्वत चूर्ण, सर्पगन्धामूल चूर्ण आदि।
3. वटी—सर्पगन्धा घनवटी (सी.यो.सं.)।
4. अवलेह—चन्द्रावलेह।
5. घृत—कल्याणक घृत, महापैशाचिक घृत (च.), हिंग्वादि घृत (च.), शिवाघृत (भै.र.), महाकल्याणक घृत (सु.), फलघृत (सु.) आदि।
6. तैल—शिवातैल (भै.र.), लशुनादि घृत या तैल (अ.ह)।
7. अरिष्ट—सारस्वतारिष्ट (भै.र.)।
8. अञ्जन—मरिचाञ्जन, कृष्णाद्यञ्जन, सैन्धवादि।
9. धूप—महाधूप (भै.र.), निम्बपत्र धूप।

10 रस—उन्मादगजकेसरी रस (यो.र.), उन्मादगजांकुश (भै.र.), चतुर्भुज रस, पर्पटीरस (भै.र.)।

मद्य, कटु-तिक्त रस, मिर्चा, मसाला, तैल, राई आदि विदाही पदार्थ; विरुद्ध भोजन तथा निद्रादि वेगों को रोकना हानिकर है।

अपस्मार

व्युत्पत्ति—'अपस्मार' पद 'अप' उपसर्गपूर्वक 'स्मृ-स्मरणे' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगा कर बना है।

'अपशब्दो गमनार्थः, स्मारः स्मरणम्। अपगतः स्मारो यस्मिन् रोगे सोऽप-स्मारः'। (डल्हण)

अप शब्द गमनार्थ का वाचक है, स्मार से तात्पर्य है स्मरण। अर्थात् जिस व्याधि में स्मरण शक्ति नष्ट होती है, वह अपस्मार है।

चरक ने कहा है कि चिकित्सक स्मृति के अपगम (नष्ट हो जाने) को अपस्मार कहते है। बुद्धि एवं मन के विभ्रंश के कारण अन्धकार दर्शन तथा नेत्रविकृति, फेनवमन, अङ्गादिविक्षेप आदि बीभत्स चेष्टाएँ अपस्मार में उपस्थित होती हैं।

'स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषग्विदः।
तमःप्रवेशं बीभत्सचेष्टं धीसत्त्वसम्प्लवात्' ॥ (च.चि. 10:2)

प्रायः ऐसे ही लक्षणों से युक्त एक व्याधि बालग्रहों में वर्णित की गयी है, जिसे स्कन्दापस्मार कहते हैं।

'नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञावानति रोदिति।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम्'॥ (मा.नि. 68:22)

शिशु मूर्च्छित होकर मुख से फेन निकालता है। संज्ञावान् होने पर बहुत रोता है। उसके शरीर से पूय व रक्त की गन्ध आती है। अतः बालकों में अपस्मार की दृष्टि से यह प्रकरण महत्त्वपूर्ण है। इसलिए बालग्रह का स्कन्दापस्मार का वर्णन अवश्य देखना चाहिए। उसी स्थल पर इसके समकक्ष आधुनिक व्याधि Epilepsy का भी वर्णन है।

सामान्य निदान, सम्प्राप्ति एवं लक्षण—चिन्ता-शोकादि कारणों से प्रकुपित दोष हृदय (मस्तिष्क) के स्रोत पर प्रभाव डालते हैं एवं स्मृति का विनाश कर अपस्मार रोग पैदा करते हैं। दोषों के प्रकोप से इसका आक्रमण होने पर नेत्रों के आगे अन्धेरा छा जाता है, रोगी अन्धकार में प्रवेश करता है, नेत्र विकृत हो जाते हैं तथा रोगी हाथ-पैर फेंकता है। इस भयङ्कर अपस्मार व्याधि के निम्न चार भेद हैं—

'चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥
तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः' ॥ (मा.नि. 21:1)

Scanned with CamScanner

भेद व लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	त्रिदोषज
1. फेनोद्गामी 2. रोगी को परुष, लाल-काले वर्ण की आकृति दिखती है । 3. कम्पते 4. प्रदशेत् दन्तान् 5. श्वसन तीव्र 6. — 7. — 8. —	पीतफेन चारों ओर अग्नि दिखती है । पीत व रक्तवर्ण की आकृति दिखती है । सतृष्णोष्णः — — अङ्गवक्त्राक्ष-पीत — वेगकाल के बाद प्यास लगती है ।	शुक्लफेन रोगी को श्वेत आकृति दिखती है । शीतो हृष्टाङ्गजा — — अङ्गवक्त्राक्ष-शुक्ल शरीर-गौरव वेग बहुत समय तक रहता है ।	मिलित लक्षण

अपस्मार के वेग 12 दिन, 15 दिन या 1 मास पर आ सकते हैं । फिर भी वेग की कई निश्चित तिथि नहीं बतायी जा सकती है ।

चिकित्सा

अपस्मार में चिकित्सार्थ दोषजन्य वर्ग के लिए युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा (तीक्ष्ण संशोधन एवं उपशमन) एवं आगन्तुज अपस्मार में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करते हैं ।

दोषों से आवृत हृदयस्रोतस् तथा मन को तीक्ष्ण वमनादि पञ्चकर्म कराके सम्बुद्ध करना चाहिए । वातिक, पैत्तिक एवं कफज अपस्मार में क्रमशः बस्ति, रेचन तथा वमन कराना चाहिए । शोधन के बाद संशमन कर्म करें । पुराना होने पर अपस्मार दुश्चिकित्स्य हो जाता है । सुश्रुत ने उर, अपाङ्ग एवं ललाट प्रदेश की सिरावेध करने को कहा है ।

चिकित्सार्थ प्रयुक्त औषधि—

1. स्वरस—ब्राह्मीस्वरस का मधु डालकर सेवन करायें ।
2. चूर्ण या कल्क—रसोन कल्क, शतावरी चूर्ण या कल्क, वचा चूर्ण, कल्याण चूर्ण (भै.र.) ।
3. कल्प—तैल-लशुन, दूध-शतावरी, ब्राह्मीरस, कुष्ठरस आदि ।
4. क्वाथ—दशमूल क्वाथ ।
5. घृत—पञ्चगव्य घृत (भै.र.), महापञ्चगव्य घृत, ब्राह्मी घृत (भै.र.), वचादि घृत (च.), चैतस घृत (भै.र.), सिद्धार्थक घृत (सु.) ।
6. अरिष्ट—सारस्वतारिष्ट, भार्ग्यादि सुरा (सु.) ।
7. रसौषधि—वातकुलान्तक, स्मृतिसागर रस (यो.र.), भूतभैरव रस ।

8. अभ्यङ्गार्थ तैल—बस्तमूत्र तैल (भै.र.), पलंकषादि तैल (भै.र.), पुराणसर्पि का प्रयोग (सु.) ।
9. अञ्जन—मनोह्वादि अञ्जन, यष्ट्याद्य अञ्जन, मुस्ताद्यवर्ति ।
10. नस्य—त्रिफलादि तैल, गोधादि तैल (अ.ह.), प्रधमन नस्य (यो.र.) ।

उपरोक्त के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के धूपन, स्नान, उत्सादन एवं प्रदेह प्रयोग का विधान है ।

अपस्मार व उन्माद पीड़ित रोगी को कभी भी जल, अग्नि, वृक्ष, पर्वत एवं विषम स्थानों पर जाने से रोकना चाहिए, क्योंकि वेग आने पर वहाँ प्राणनाश का भय रहता है । रोगी को आश्वासन देना चाहिए ।

मद्य, मत्स्य, विरुद्ध अन्न, तीक्ष्ण, उष्ण, गुरु भोजन, विभिन्न पत्रशाक का प्रयोग न करें । चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अति व्यायाम, तृषा, निद्रा व क्षुधा के वेग को रोकना, वृक्ष पर चढ़ना, तैरना आदि अपथ्य हैं ।

मानसिक दौर्बल्य

(Mental Retardation and Deficieney)

मानसिक दौर्बल्य को ही मानसिक दुर्बलता, क्षीणमनस्कता, मानसिक असामान्यता, मानसिक अपूर्णता भी कहा जाता है । एतदर्थ मानसिक प्रक्रिया का संक्षिप्त विवेचन, 'शिशुपरिचर्याध्याय' प्रथम खण्ड में किया गया है ।

इस विषय में आयुर्वेद-ग्रन्थों में विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है । यथा—अल्पबुद्धि, मूढ़, जड़ आदि । गर्भवती स्त्री द्वारा अहितकर आहार-विहार के प्रयोग का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है तथा वह विभिन्न प्रकार की बुद्धि वाला पैदा होता है । इसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं—

'विवृतशायिनी नक्तञ्चारिणी चोन्मत्तं जनयति, अपस्मारिणं पुनः कलिकलहशीला,·····स्वप्ननित्या तन्द्रालुमबुधमल्पाग्निं वा, मद्यनित्या पिपासालुमल्पस्मृतिमनवस्थितचित्तं वा,·····मधुरनित्या प्रमेहिणं मूकमतिस्थूलं वा' । (च.शा.8:21)

'स्वप्नशीला निद्रालुमबुधमल्पाग्निं वा । मद्यनित्या तृष्णालुमल्पस्मृतिमनवस्थितं वा' । (अ.सं.शा. 1:47)

विवृत या अनावृत होकर या अनावृत देश में शयन करने वाली या रात में घूमने वाली स्त्री उन्मत्त या उन्मादयुक्त सन्तान पैदा करती है । कलि (वचन से झगड़ा) या कलह करने वाली स्त्री अपस्मार से पीड़ित सन्तान पैदा करती है । अत्यधिक सोने वाली स्त्री तन्द्रालु, अबुद्धि (अज्ञानी या मूर्ख) तथा अल्पाग्नि सन्तान की, नित्य मद्य सेवन करने वाली स्त्री पिपासालु, अल्पस्मृति एवं अस्थिरचित्त सन्तान को एवं नित्य मधुर खाने वाली प्रमेही, अतिस्थूल एवं मूक सन्तान को जन्म देती है ।

Scanned with CamScanner

आचार्यों ने दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण दौर्हृद-अवमानन माना है। चक्रपाणि ने अपनी टीका में स्पष्ट किया है—

'या तु मातुरिच्छा विहता, सा मातरि वातक्षोभं जनयति समानयोगक्षेमे गर्भेऽपि मनाग्विकृतिजननाद्विकृतिं जनयति'। (च.शा. 4:15 पर चक्रपाणि)

यदि माता की स्वयं की इच्छा का हनन हो तो माता की विकृत वायु माता एवं गर्भ के समान योग (सुख-हेतु योग), क्षेम (प्रत्यवाय-परिहार) होने के कारण गर्भ में मानसिक विकार उत्पन्न कर अन्य विकृति उत्पन्न करता है।

आचार्य सुश्रुत ने दौर्हृद-अवमानन के परिणामस्वरूप शारीरिक विकृति के साथ-साथ जड़ सन्तान की उत्पत्ति कही है।

'दौर्हृदविमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं·····'॥ (सु.शा. 3:18)

आचार्यों ने विभिन्न प्रकार के सत्त्व या प्रकृति के वर्णन में तामस सत्त्व का प्रमुख आधार भी मानसिक विकृति माना है—

'निराकरिष्णुममेधसं जुगुप्सिताचाराहारं मैथुनपरं स्वप्नशीलं पाशवं विद्यात्'॥ (च.शा. 4:39)

पशु सत्त्व वाला अपने पर आयी विपत्तियों को दूर करने में असमर्थ, स्मरणशक्ति से शून्य, निन्दित आचार व आहार वाला, सदा मैथुन-प्रसक्त एवं अधिक शयन करने वाला होता है।

मात्स्य सत्त्व वाला भीरु, मूर्ख, आधून (पेटू), कामी, क्रोधी, हिंसक, सदैव अपने में लगा रहने वाला, अधिक संतान वाला तथा धूर्त होता है।

'भीरुमप्रज्ञमाद्यूनं कामक्रोधवशं गतम्।
हिंस्रमात्मपरं विद्यान्मात्स्यं सुप्रजसंशठम्'॥ (का. 28 पृ. 53)
'भीरुमबुधमाहारलुब्धमनवस्थितमनुष·····'॥ (च.शा. 4:39)

इसके अतिरिक्त चिकित्साक्रम में जहाँ धी, धृति, स्मृतिवर्द्धक योग आदि का वर्णन है, वह भी मानसिक दौर्बल्य का प्रतीक है तथा इस हेतु कुछ विशेष शब्द भी प्रयुक्त किये गये है। यथा—

संवर्धन घृत (का.सू.लेहा.पृ. 6) के प्रयोग से मूक, अश्रुत एवं जड़ बालक शीघ्र उन क्रियाओं को करने लगता है।

'पङ्गुमूलकाश्रुतिजडा युज्यन्ते चाशु कर्मभिः'।

स्वर्णप्राशन से बालक 6 मास में श्रुतधर हो जाता है।

'षड्भिर्मासैः श्रुतधरः सुवर्णप्राशनाद्भवेत्'। (का.सू.पृ. 5)

मानसिक दौर्बल्य के रोगियों में औषधि तभी लाभप्रद होती है जब वे कम वय में चिकित्सा हेतु प्रस्तुत हो जाय। 2-3 वर्ष की पूर्व की अवस्था चिकित्सा की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इस दृष्टि से ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी तथा ज्योतिष्मती तैल का आभ्यन्तर प्रयोग लाभप्रद है। कुछ बड़े बच्चों में मेध्य शिरोधारा का भी प्रयोग कर सकते है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद-संहिताओं में मानसिक दौर्बल्य विषय यत्र-तत्र वर्णित है। परन्तु उसका एक स्थल पर स्पष्ट वर्णन उपलब्ध नहीं है। आधुनिक चिकित्साशास्त्र में भी इस विषय पर श्रेष्ठ प्रयास किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण से Mental Retardation का तात्पर्य यह है कि जब शिशु या बालक अल्प स्मरण शक्ति रखता है, उसका विकास परिपक्व न हो तथा वह सामाजिक जीवन ठीक से न व्यतीत कर सके। यह अवस्था इस वर्ग में आती है।[1]

मानसिक दौर्बल्य की विभिन्न स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए पूर्व में निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं; यथा—

(1) जड़ (Idiot)—जन्म से मिलने वाली इस अवस्था में अत्यधिक मानसिक दौर्बल्य मिलता है। ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक दोनों प्रकार के दोषों से युक्त, मानसिक आयु 3 वर्ष के शिशु से भी कम होती है। आत्मरक्षा में यह पशु से भी पिछड़े रहते हैं।

(2) मूढ़ (Imbecile)—यह बीच की अवस्था है। मानसिक वय 3 से 7 वर्ष के मध्य की होती है। ये शिशु अपनी शारीरिक आवश्यकताओं का कुछ ज्ञान रखते हैं। घर की सफाई आदि जैसे छोटे-छोटे कार्य कर लेते है।

(3) मूर्ख (Moron)—इनकी मानसिक आयु 7 से 12 वर्ष के मध्य होती है तथा शिक्षा में पिछड़े रहते हैं। यह किसी काम को पूरा करने से पहले ही दूसरा कार्य करने लगते है। शरीर बलिष्ठ व प्रायः लम्बा होता है। इनकी वय अधिक होती है।

मानसिक वय ज्ञात करने के लिए विभिन्न प्रकार के मापों का प्रयास किया गया है। परन्तु किसी को भी सर्वमान्य नहीं कहा जा सकता है।

- Stanford-Binet scale.
- Wechsler scale.
- Bhatia scale.

इनमें प्रत्येक वय के शिशु के लिए विशेष प्रकार के प्रश्न होते हैं। जिनका उत्तर देने पर उस मानसिक वय का स्तर माना जाता है। अब उपरोक्त अवस्थाओं की अपेक्षा बौद्धिक स्तर को महत्त्व देकर मानसिक दौर्बल्य का वर्गीकरण किया जाता है।

1. Babies with low learning capacity, poor maturation and inadequate social adjustment are grouped under this term.

Scanned with CamScanner

$$\text{बौद्धिक आयु (I.Q)} = \frac{\text{मानसिक वय (M-A)}}{\text{वास्तविक वय (C-A)}} \times 100$$

मानसिक आयु जब वास्तविक वय के बाराबर होती है, तो बौद्धिक स्तर 100 होता है ।

वर्गीकरण	बौद्धिक स्तर
सामान्य	६८ से ८५
अल्प विकृति (Moron)	५२ से ६७
साधारण विकृति (Imbecile)	३६ से ५१
उग्र विकृति (Idiot)	२० से ३५
गम्भीर विकृति	२० से कम

निदान—बाल्यकाल में इन अवस्थाओं का निदान हो जाने पर इन शिशुओं की कुछ चिकित्सा-व्यवस्था की जा सकती है ।

(क) वातावरणजन्य—सामाजिक कुरीतियाँ, वातावरण, भावनात्मक स्थिति, परिवार की आर्थिक स्थिति आदि ।

(ख) विभिन्न अवस्थाओं या व्याधियों के परिणाम स्वरूप—इसे निम्न दो वर्ग में बाँटते हैं—

• **न बढ़ने वाले कारण**—इसके निम्न भेद हैं—

(1) गर्भकालीन कारण—इसके निम्न दो कारण हैं—

(i) मस्तिष्क का विकास प्रथम 3 माह में ठीक से न हुआ हो—क्रोमोजोमल गर्भाशय में संक्रमण (Torch infection), अपरा का ठीक से क्रियाशील न होना, ऐसे आहार-विहार औषधि का प्रयोग जो गर्भ में विकृति पैदा करें तथा अज्ञात कारण ।

(ii) मस्तिष्क विकास शेष 6 माह में ठीक से न होना—संक्रमण, गर्भ में विकृति करने वाले आहार-विहार, औषधिद्रव्य, मधुमेही माता, माता को विषमयता (Toxemia), माता के मूत्रवह संस्थान का संक्रमण, माता का कुपोषण एवं अपरा का ठीक से क्रियाशील न होना ।

(2) प्रसवकालीन कारण—समय पूर्व प्रसव, नवजात शिशु को श्वासावरोध (Asphyxia neonatorum), जन्मकालीन आघात, मस्तिष्कशोथ (Meningitis) आदि ।

(3) प्रसवोत्तरकालीन कारण—सिर एवं नाड़ीतन्त्र में आघात, मस्तिष्क-आघात (Cerebrovascular accident), नाड़ीतन्त्र पर प्रभावी विष (Neurotoxins—शीशा/lead), मस्तिष्क में संक्रमण, श्वासावरोध (डूबने आदि के कारण) आदि ।

• **बढ़ने वाले कारण**—इसे चयापचयजन्य या संक्रमणजन्य वर्ग में बाँटते हैं ।

(1) चयापचयजन्य—कुपोषणजन्य, शर्करा की जन्मजात विकृति (Galactosemia), प्रोभूजन की जन्मजात विकृति, वसा की जन्मजात विकृति, अङ्गरस-विकृति (Hypothyroid) आदि ।

(2) संक्रमणजन्य—इनसेफलाइटिस आदि ।

व्याधिविनिश्चय में यदि रोगी का ठीक से इतिवृत्त लिया जाय तो काफी कुछ सङ्केत प्राप्त हो जाता है । यथा—

(1) गर्भकालीन सङ्केत-गर्भविषमयता (Toxaemia), प्रसवपूर्व रक्तस्राव (Placenta praevia, Abruptio placentae), गर्भधारण के प्रथम 3 माह में Ionizing radiation, उपदंश, संक्रमण, गर्भ में विकृति पैदा करने वाली औषधि-आहार का प्रयोग, यमल गर्भ (कई गर्भ एक साथ), पूर्व में गर्भपात, पारिवारिक मानसिक विकृति का इतिवृत्त (यथा—वाणी, भाषा सुनने में दोष), माता का कुपोषण, माता की वय 16 वर्ष से कम या 40 वर्ष से अधिक हो आदि ।

(2) जन्मकालीन सङ्केत—समय पूर्व प्रसव, जन्मकालीन श्वासावरोध, आघात, अपगार स्कोर का कम होना, आक्षेप, दूध पीने में कठिनाई, रक्तशर्करा में अल्पता आदि ।

(3) जन्मोपरान्त सङ्केत—वातावरण, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, मस्तिष्क में संक्रमण, आघात, नाड़ीतन्त्र पर प्रभावी विष का प्रयोग, कुपोषण, कार्बनमोनो आक्साइड में श्वसन, पानी में डूबने आदि का इतिवृत्त ।

उपरोक्त बिन्दुओं में एक या एक से अधिक की उपस्थिति में व्याधिविनिश्चय में सहायता मिलती है ।

शारीरिक परीक्षण करते समय कुछ विशिष्ट सङ्केत मिलते हैं, जो विभिन्न प्रकार की मानसिक दौर्बल्य व्याधियों या Syndrome का सङ्केत करते हैं; यथा—शिर का छोटा होना, शिर का सामान्य से बड़ा होना, त्वचा का ठण्डा व सूखा होना, बाल रूखे, चेहरा गोल तथा नाक चपटी होना एवं ओष्ठ मोटे तथा दोनों नेत्र का एक दूसरे से दूर होना, नेत्र का ऊपर तथा बाहर की ओर देखना, कान का न होना या नीचे के भाग का छोटा होना आदि ।

चिकित्सा—मानसिक दौर्बल्य के रोगी की चिकित्सा का प्रथम ध्येय यह है कि उस रोगी की वास्तविक स्थिति का यथाशीघ्र पता चल जाय । शीघ्रातिशीघ्र उसके लिए उचित औषधि आहार-विहार की व्यवस्था हो सके । इस ध्येय की प्राप्ति के लिए यथाशीघ्र निदान आवश्यक है । व्याधिविनिश्चय के बाद रोगी के संरक्षक को उचित सलाह दें । ऐसे रोगियों के लिए खोले गये विशेष केन्द्रों में उनका प्रवेश करायें । अल्प मानसिक दौर्बल्य में तदनुरूप शिक्षा-व्यवसाय की व्यवस्था करें । आधुनिक चिकित्सा के सन्दर्भ

Scanned with CamScanner

में ग्लूमिक एसिड (एनसेफाबाल-मर्क) का प्रयोग लाभ की दृष्टि से सन्देहास्पद है। एतदर्थ 'लेह्याध्याय' में कहे गये धी, धृति, स्मृति एवं मेधावर्धक योगों का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु यह चिकित्सा भी जीवन के प्रथम 18 से 24 माह तक ही सम्भवत: कुछ लाभ कर सकती है, क्योंकि इस वय तक 85% मानसिक विकास हो जाता है। निदान का दूसरा महत्त्व यह है कि कारणों का पता चलने पर उस माता-पिता के भावी सन्तान को इस प्रकार के कष्ट से बचाया जा सकता है यथा उपदंश, मधुमेह आदि;

मङ्गोल बुद्धू
(Mongolism, Down's Syndrome)

मङ्गोल बुद्धू मानसिक दौर्बल्य के विभिन्न प्रकारों मे से सर्वसामान्य प्रकार है। शिशु का चेहरा मङ्गोल जाति (यथा—चीनी, जापानी) जैसा होता है। शिशु देखने में हँसते हुए बुद्धू जैसा दिखता है। यह व्याधि प्राय: क्रोमोसोमजन्य होती है। इसके निम्न तीन भेद हैं—

(1) ट्राइसोमी 21 (Trisomy 21)—यह व्याधि एक अतिरिक्त क्रोमोसोम 21 की उपस्थिति के कारण होती है। यह रोगी में सामान्य 46 क्रोमोसोम के स्थान पर 47 क्रोमोसोम रखते हैं। इसे Trisomy G. भी कहते हैं। माता की अधिक आयु से प्राय: यह व्याधि सम्बन्धित होती है। बच्चों की शृंखला में प्रथम या अन्तिम शिशु प्राय: पीड़ित होता है।

(2) अप्राकृत क्रोमोसोम 15 या 21 (Translocation with Chromosome 15 or 21)—इस वर्ग में क्रोमोसोम की संख्या सामान्य 46 होती है परन्तु उसमें एक क्रोमोसोम बड़ा या असामान्य होता है।

(3) Mosaicism—यह प्रकार कभी-कभी मिलता है। इसमें क्रोमोसोम के Mitotic division के समय क्रोमोसोम अलग नहीं हो पाते हैं।

लक्षण—ऐसे शिशु देखने में चीनी, जापानी या तिब्बती जैसे चेहरे से लगते हैं। मुखाकृति हँसते हुए बुद्धू-सी होती है। उनका व्यवहार मित्रतापूर्ण होता है। शिशु का शारीरिक व मानसिक विकास सामान्य से अधिक पिछड़ा होता है। यह अधिकतम 8 वर्ष की मानसिक आयु का स्तर पाता है। बौद्धिक स्तर लगभग 40 से 50 (I.Q.) होता है। सिर छोटा (Microcephalic) तथा ऊपरी भाग (Occiput) चपटा होता है। नेत्र ऊर्ध्व निरीक्षण करते हैं। दोनों नेत्रों के मध्य का भाग चौड़ा प्रतीत होता है। कृष्ण मण्डल के किनारे पर श्वेत धब्बा (Brush field spots) मिलता है। ऐसे बच्चों में बाद में तिमिर (Cataract) होने की अधिक सम्भावना रहती है। जिह्वा वृषणकोष के समान (Scrotal tongue) दिखती है। मुख छोटा होता है। कान छोटे, विकृत एवं अपने प्राकृतिक स्थान से नीचे लगे होते हैं। कर्णपाली छोटी या गायब होती है। तालु

ऊपर की ओर घूमा होता है। गर्दन छोटी व चौड़ी होती है। सिर सीधे वक्ष से जुड़ा लगता है। सिर के ऊपर बालों की रेखा काफी नीचे से लगती है। हाथ छोटे व चौड़े होते हैं। कनिष्ठिका अँगुली छोटी व अन्दर को मुड़ी होती है, क्योंकि बीच की अस्थि छोटी होती है। हाथ में 3 मुख्य धारियों के स्थान पर प्राय: 1 धारी मिलती है। पैर में अंगूठा पास की अँगुली से दूर होता है तथा पैर में अँगूठे से एड़ी की ओर एक गहरी रेखा मिलती है।

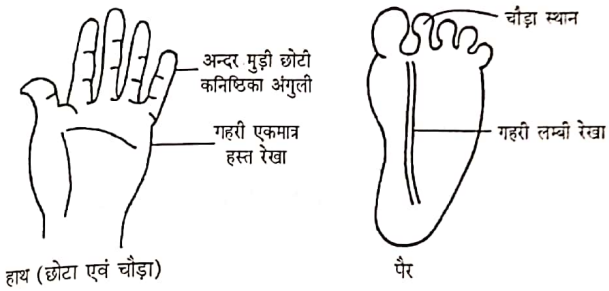

चित्र सं. 51 : Mosaicism में हाथ-पैरों की स्थिति

मङ्गोल शिशुओं में बार-बार श्वसनतन्त्र का संक्रमण होता है। जन्मजात हृदय-रोग; यथा—VSD, AST, Fallot's tetralogy प्राय: इनमें मिलते हैं। ल्यूकीमिया होने की सम्भावना अधिक होती है। आन्त्र-अवरोध आदि होने की सम्भावना भी अधिक रहती है।

एक्सरे परीक्षण में कुछ विशिष्ट लक्षण मिलते हैं; यथा—

1. केवल 11 पर्शुकाओं का होना।
2. चिबुक अस्थि में 2 से 3 Ossification केन्द्र का होना।
3. मुख, सिर एवं कनिष्ठिका अँगुली की मध्य अस्थि का कमजोर (Hypoplasia)।
4. द्वितीय Metacarpal में एक अधिक Epiphysis का होना।
5. Coxa valga.
6. श्रोणि की अस्थि में नितम्बास्थि का चौड़ा प्रतीत होना।

चिकित्सा—व्याधि असाध्य है। अत: ऊपर सामान्य मानसिक दौर्बल्य के उपचारार्थ कहे गये सभी उपाय किये जाने चाहिए।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय - 19

बालग्रह

आयुर्वेद-साहित्य में बालकों की बहुत-सी समस्याओं का कारण दैविक शक्ति माना गया है। यथा—बालग्रह, जातहारिणी (काश्यपसंहिता), मातृकाएँ (रावणकृत कुमारतन्त्र)।

बालग्रह के सन्दर्भ में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि बालग्रह वह व्याधि है जो शिशु को ग्रहण करती है या शिशु पर आक्रमण करती है—

'ग्रह उपादाने धातुः गृह्णाती ग्रहः' ।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने इसका दैविक स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से इङ्गित किया है—

'ग्रहैरपि हि जायन्ते प्रच्छन्नैर्व्याधयः शिशोः ।
कर्मशस्तमतस्तेषु दैवयुक्त्याश्रयं सदा' ।। (उ. 2:98)

अर्थात् बच्चों को छिपे हुए ग्रहों से भी रोग होते हैं। इनमें सदा दैवव्यपाश्रय एवं युक्तिव्यपाश्रय कर्म करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने भी दैवी स्वरूप को प्राधान्य देते हुए कहा है कि वे ग्रह विविध रूप के होते हैं, उन्हें ईश्वर का सामीप्य प्राप्त रहता है। अतः सामान्य जनों के द्वारा उनका शरीर में प्रवेश नहीं देखा जा सकता है। आप्त वाक्य को प्रमाण मानकर उसने उत्पन्न होने वाले शरीरगत लिंग (लक्षण) का वर्णन निम्नवत् है।

'ऐश्वर्यस्थास्ते न शक्या विशन्तो देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः ।
आप्तं वाक्यं तत्समीक्ष्याभिधास्ये लिङ्गान्येषां यानि देहे भवन्ति' ।।
(सु.उ. 27:7)

बालग्रह के अदृश्य स्वरूप का स्पष्टीकरण वाग्भट ने दिया है कि ये ग्रह केवल सूक्ष्म दृष्टि (शास्त्रपूत) से देखे जा सकते हैं।

'आविशन्तश्च लक्ष्यन्ते केवलं शास्त्रचक्षुषा' । (अ.सं.उ. 3:35)

ग्रह

'गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थाऽसहिष्णुता ।
क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन् सग्रहः परिकीर्त्यते' ।। (सु.उ. 60:4)

1. समुद्भ्रमं बुद्धिमनःस्मृतीनामुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः । (च.चि. 9:8)
2. मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः । मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ।। (सु.उ. 62:3)

गुप्त वस्तु या गुप्त तथा अनागत (भविष्य) का ज्ञान जिसमें हो एवं जिसके (रोगों) शरीर और मन की स्थिति अव्यवस्थित हो, असहिष्णु हो तथा जिसमें अमानवीय (शक्ति) क्रिया हो, उसे ग्रहजुष्ट समझना चाहिए।

बालग्रह का पौराणिक स्वरूप

प्रायः सभी आचार्यों ने बालग्रह की उत्पत्ति के कारण का आधार पौराणिक कथा को बनाया है तथा रुद्र (शिव) एवं उनकी पत्नी उमा के द्वारा अपने पुत्र के रक्षार्थ इन ग्रहों की रचना की गयी।

'पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना' । (अ.हृ.उ. 3:1)
(अ.सं.उ. 3:2)

'एते गुहस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः ।
सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्यात्मतेजसा' ।। (सु.उ. 37:4)

इनमें पुरुषवर्गीय तथा स्त्रीवर्गीय दो तरह के ग्रह हैं। स्त्रीवर्गीय ग्रह रज तथा तमोगुण प्रधान हैं।[1] स्कन्द का सृजन शिव ने,[2] स्कन्दापस्मार (विशाख) का अग्नि ने,[3] नैगमेष का सृजन पार्वती ने किया है[4]। जिस स्थान पर कार्तिकेय पवित्र हुए वहाँ पूतना का जन्म हुआ[5]। क्रुद्ध होकर कार्तिकेय ने जिस मुखमण्डल को विकृत किया, वह 'मुखमण्डिका' नामक दारुण ग्रह बना[6]।

सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र अध्याय 37 एवं काश्यपसंहिता-चिकित्सास्थान के बालग्रह-चिकित्साध्याय में इसका विस्तृत वर्णन देखा जा सकता है। इसे यहाँ संक्षेप में तथा परिशिष्ट-1 के अन्तर्गत विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

ग्रहबाधा के कारण

सुश्रुत ने उपरोक्त पौराणिक कथा के अन्त में ही ग्रहबाधा का कारण भी शिव के मुख से कहलवाया है—

(1) **सामाजिक कारण**—जिस कुल में ब्राह्मण, साधु, गुरु एवं अतिथि का सत्कार न हो जिस कुल में बलिदान, भिक्षा एवं दान न किया जाता हो।

(2) **शारीरिक कारण**—जहाँ सदाचार एवं पवित्रता नष्ट हो गयी हो, जो दूसरों

1. स्त्रीविग्रहा ग्रहा ये तु नानारूपा मयेरिताः । गङ्गोमाकृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः ।। (सु.)
2. स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा । (सु.)
3. स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निनाऽग्निसमद्युतिः । (सु.)
4. नैगमेषस्तु पार्वत्या सृष्टो मेषाननो ग्रहः । (का.)
5. यस्मिन् देशे तु भगवान् पूतः स्कन्दो महाबलः । सञ्जज्ञे पूतना तस्मात्·····। (का.)
6. अपविद्धं तु यत् क्रोधात् स्कन्देन मुखमण्डलम् । ततो ग्रहः सा बभूव दारुणा मुखमण्डिका । (का.)

Scanned with CamScanner

के ऊपर जीवित रहते हो, फूटे हुए काँसे के बर्तन में भोजन करते हों—ऐसे कुल के बालकों में ग्रहों को आविष्ट होना चाहिए। ये निम्न दो प्रकार के होते हैं—

(i) धात्री विषयक—बच्चे को दुग्ध का पान कराने वाली स्त्री 'गर्भिणीव्याकरणाध्यायोक्त' (शरीरस्थान अ. 10) अहितकर आहार का सेवन करती हो।

(ii) शिशु विषयक—शौचकर्म, मङ्गल कर्म न करने से, आचार कर्म, पापविरोधी कर्म से हीन होने से, डराने से, अधिक हँसने से, अधिक डाँटने-पीटने से बालक ग्रहजुष्ट होता है।

'धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टापचाराच्छौचभ्रष्टान्मङ्गलाचारहीनान्।
त्रस्तान् हृष्टांस्तर्जितान् ताडितान् वा पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान्' ॥
(सु.उ. 27:6)

(3) **ग्रह विषयक**—हिंसा, रति तथा अर्चना की आकांक्षा से ग्रह ग्रहण करते हैं।

'हिंसारत्यर्चनाकाङ्क्षा ग्रहग्रहणकारणम्'। (अ.ह. 3:32)

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण को यदि देखा जाय तो ग्रह आविष्ट होने के कारणों में अपचार या अनाचार का बहुत ही महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। आचार्य वाग्भट ने स्पष्ट किया है कि आचार के अन्तर्गत जो व्यक्ति स्वस्थ वृत्त के नियमों का पालन करेगा, वह लम्बी स्वस्थ आयु का उपयोग करेगा—

'इत्याचारः समासेन, यं प्राप्नोति समाचरन्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकांश्च शाश्वतान्' ॥ (अ.ह.सू. 2:48)

अतः स्वस्थवृत्त के सिद्धान्तों के प्रतिकूल आहार-विहार का जो भी बालक उपयोग करेगा, वह ग्रहावेश से पीड़ित हो सकता है।

सुश्रुत द्वारा धात्री के अनाचार के वर्णन के सन्दर्भ में काश्यपोक्त ग्रहदुष्ट स्तन्य को भी कारण माना जाना चाहिए। परन्तु प्रकरण पूर्णरूप में उपलब्ध नहीं है।

'..... शकुनीकटुतिक्तके।
स्कन्दषष्ठीग्रहौ ज्ञेयौ व्यापन्ने सान्निपातिके ॥
पूतनास्वादुकटुके शेषाः संसृष्टदोषजाः'। (का.सू. 19 पृ. 6)

दूध का लक्षण	ग्रहबाधा
1. दूध का स्वाद कटु तिक्त हो	शकुनी
2. सर्वदोष लक्षणयुक्त दूध हो	स्कन्द व षष्ठी ग्रह
3. दूध का स्वाद स्वादु तथा कटु हो	पूतना

पूर्वरूप

'तेषां ग्रहीष्यतां रूपं प्रततं रोदनं ज्वरः'।

ग्रहबाधा में बच्चे का सतत रोदन एवं ज्वर का बना रहना पूर्वरूप है।

सामान्य लक्षण

अथ कुमार उद्विजते त्रस्यति रोदिति नष्टसंज्ञो भवति नखदशनैर्धात्रीमात्मानं च परिणुदति दन्तान् खादति कूजति जृम्भते भ्रुवौ विक्षिपत्यूर्ध्वं निरीक्षते फेनमुद्वमति सन्दष्टौष्ठः क्रूरो भिन्नामवर्चा दीनार्तस्वरो निशि जागर्ति दुर्बलो म्लानाङ्गो मत्स्यच्छुछुन्दरिमत्कुणपगन्धो यथा पुरा धात्र्याः स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषतीति सामान्येन ग्रहोपसृष्टलक्षणमुक्तम्'। (सु.शा. 10:51)

'सामान्यं रूपमुत्त्रासजृम्भाभ्रूक्षेपदीनताः।
फेनस्रावोर्ध्वदृष्ट्योष्ठदन्तदंशप्रजागराः ॥
रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम्।
नखैरकस्मात्परितः स्वधात्र्यङ्गविलेखनम्' ॥
(अ.ह.उ. 3:4-5, अ.सं.उ. 3:9)

सामान्य लक्षण का वर्णन ग्रन्थ के आधार पर निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किया गया है—

क्रमाङ्क	लक्षण	सुश्रुतसंहिता	अष्टाङ्गहृदय	माधवनिदान/ योगरत्नाकर
1.	उद्विग्न -	+	—	+ *
2.	त्रास -	+	*उत्रास	+ *
3.	रोदन -	+	+	+ *
4.	नष्ट संज्ञा -	+	—	+
5.	नख से धात्री को, स्वयं को दंश करना	+	+	+ (दाँत से भी)
6.	दाँत चबाना	+	—	+
7.	कूजन	+	+	+
8.	जृम्भा	+	+	+
9.	भ्रूविक्षेप -	+	+	+
10.	ऊर्ध्व निरीक्षते (ऊपर देखना)	+	+	+
11.	फेनोद्वमन -	+	फेनस्राव	+

Scanned with CamScanner

12.	ओष्ठदन्तदशन	+	+	+
13.	क्रूर	+	—	—
14.	भिन्न एवं आमयुक्त मल	+	मल	भिन्न मल
15.	दीनता	+	+	क्षीणता
16.	आर्तस्वर	+	स्वरविकृति	भिन्न स्वर
17.	निशाजागरण	+	—	+
18.	दुर्बल	+	—	+
19.	मलिन अङ्ग	+	—	+
20.	मत्स्य, छुछुन्दर, खटमल जैसी गन्ध	+	—	मांस-शोणित जैसी गन्ध
21.	स्तन्यपान में अरुचि	+	स्तन्यविद्वेष	+
22.	शूनाक्षो (अङ्गों में शोथ)	—	—	+
23.	प्रजागरण	—	+	—

* बालक क्षण भर में उद्विग्न होता है, क्षण भर में त्रास सहित रोने लगता है।

'क्षणादुद्विजते बालः क्षणात् त्रस्यति रोदिति ।
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव वा ।।
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत् कूजति जृम्भते ।
भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ।।
क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनाक्षो भिन्नविट्स्वरः ।
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ।।
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम्' ।।

(मा.नि. बालरोग, 68:17-19)

ग्रहों की साध्यासाध्यता

'विपरीतमतः साध्यं चिकित्सेदचिरार्दितम्' । (सु.उ. 27:18)

'प्रस्तब्धो यः स्तनद्वेषी मुह्यते चाविशन्मुहुः ।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षणः' ।। (सु.सं.उ. 27:17)

'प्रस्तब्धाक्षः स्तनद्वेषो मुह्यते चाविशं मुहुः ।
तं बाल·····लक्षणः' ।। (मा.नि.बा.रो. 30)

'केशशातोऽन्नविद्वेषः स्वरदैन्यं विवर्णता ।
रोदनं गृध्रगन्धत्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ।।

उदरे ग्रन्थयो वृत्ता यस्य नानाविधं शकृत् ।।
जिह्वाया निम्नता मध्ये श्यावं तालु च तं त्यजेत्' ।।

(अ.हृ.उ. 3:29-30)

'स्कान्दार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भवेद् ध्रुवम्' । (अ.सं.उ. 3:10)

स्तब्ध अङ्ग (नेत्र) वाले, स्तनद्वेषी, बार-बार मूर्छित होने वाले तथा ग्रहबाधा के सभी लक्षणयुक्त रोगी को असाध्य समझना चाहिए। इसके विपरीत लक्षण वाले को साध्य समझना चाहिए।

केश गिरना, अन्नद्वेषी, स्वरदीनता, विवर्णता, विभिन्न वर्ण का पुरीष होना, उदर पर ग्रन्थि होना, शिराओं का दिखायी देना, रोदन, गीध जैसी गन्ध का आना, उदर पर गोल ग्रन्थि का उत्पन्न होना, नाना प्रकार का पुरीष होना, जिह्वा भीतर को खिंच जाना, मुख में तालु का भाग काला पड़ जाना आदि सभी लक्षण असाध्यता के हैं। कुछ टीकाकार इसे शुष्करेवती की असाध्यता मानते हैं।

स्कन्दग्रह में शरीर के किसी अङ्ग में विकलता अथवा मृत्यु निश्चित है।

हिंसात्मक ग्रहों से पीड़ित बालकों में बताये लक्षण भी असाध्यता के प्रतीक हैं।

'तत्र हिंसात्मको बालो महान् वा स्रुतनासिकः ।
क्षतजिह्वः कणन् बाढमसुखी साश्रुलोचनः ।।
दुर्वर्णो हीनवचनः पूतिगन्धिश्च जायते ।
क्षामो मूत्रपुरीषं च मृद्नाति न जुगुप्सते ।।
हस्तौ चोद्यम्य संरब्धो हन्त्यात्मानं तथापरम् ।
तद्वच्च शस्त्रकाष्ठाधैरग्निं वा दीप्तमाविशेत् ।।
अप्सु मज्जेत् परेत्कूपे कुर्यादन्यच्च तद्विधम् ।
तृड्-दाह-मोहान् पूयस्य छर्दनं च प्रवर्तयेत् ।।
रक्तं च सर्वः मार्गेभ्योऽरिष्टोत्पत्तिं च तं त्यजेत्' । (अ.सं.उ. 3:25)

नासिका से स्राव, जिह्वा में क्षत, अतिःदुखी होकर कराहना, नेत्र से जलस्राव, विवर्णता, स्वरदीनता, दुर्गन्ध का आना, क्षीण होना, शरीर पर मल-मूत्र का मलना, घृणा न होना, हाथों को उठाकर स्वयं को तथा दूसरों को मारना, शस्त्र या लकड़ी से मारना, दीप्त अग्नि में कूदने का यत्न करना, पानी में डूबने, कूएँ में गिरने आदि द्वारा आत्महत्या का प्रयास करना, प्यास, दाह एवं मूर्च्छा, पूय वमन तथा सभी मार्गों से रक्तस्राव—इन सभी अरिष्ट लक्षणों से युक्त रोगी असाध्य हैं तथा चिकित्सा के लिए त्याज्य हैं।

'रहःस्त्रीरतिसंल्लापगन्धस्रग्भूषणप्रियः ।
हृष्टः शान्तश्च दुःसाध्यो रतिकामेन पीडितः' ।। (अ.सं.उ. 3:43)

रति की आकांक्षा से ग्रसित प्राणी एकान्त, स्त्रीसेवन, स्त्री से बातचीत, सुगन्ध, माला तथा आभूषणों को पसन्द करता है एवं प्रसन्न व शान्त रहता है। यह कष्टसाध्य है।

Scanned with CamScanner

'दीनः परिमृशन् वक्त्रं शुष्कौष्ठगलतालुकः ।
शङ्कितं वीक्षते रौति ध्यायत्यायाति भीतताम् ।।
अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नातिबुभुक्षते ।
गृहीतं बलिकामेन तं विद्यात् सुखसाधनम्' ।। (अ.सं.उ. 3:44-45)

बलि की आकांक्षा से ग्रसित प्राणी के मुख पर दीनता झलकती है। बार-बार मुख का स्पर्श करना, ओष्ठ, गला एवं तालु सूखे हुए रहते हैं, सदैव सशङ्कित रहता है। रोता है, ध्यानावस्थि रहता है एवं डरता है। अन्न की इच्छा रहने पर भी अन्न को बहुत नहीं खाता। यह सुखसाध्य है।

ग्रहों के नाम, भेद तथा संख्या

आयुर्वेद-संहिताओं जैसे नामों का उल्लेख महाभारत में मिलता है, जो 16 वर्ष तक की वय के बच्चों को पीड़ित करते हैं।[1] इनमें स्कन्दापस्मार, शकुनी, पूतना, शीत-पूतना, रेवती, मुखमण्डिका आदि नाम उल्लेखनीय हैं।[2] कुछ स्त्रीग्रह भी होते हैं जिन्हें 'कुमारिका' कहा गया है। यह गर्भ एवं नवजात शिशु को नष्ट करते हैं।[3]

चरकसंहिता में बालग्रहों का वह स्वरूप वर्णित नहीं है जो अन्य संहिताओं में वर्णित हैं। चरकसंहिता-निदानस्थान अध्याय 7 में व्याधि के उत्पादक कारणों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, पितृ, ग्रह आदि का उल्लेख है। चरकसंहिता में ग्रहों की संख्या अपरिसंख्येय बतायी गयी है।

'इति अपरिसंख्येयानां ग्रहाणाम् आविष्कृततमा हि अष्टौ एते व्याख्याताः'।
(च.वि. 9:21)

सुश्रुत एवं वाग्भट ने ग्रहोत्पत्ति के साथ ही ग्रहों की संख्या एवं भेद बताया है।

1. यावत् षोडश वर्षाणि भवन्ति तरुणा प्रजाः। प्रबाधत मनुष्याणां तावद्भूपैः पृथग्विधैः॥ (महाभारत, वनपर्व अ. 230:22)
2. स्कन्दापस्मार इत्याहुः ग्रहं तं द्विजसत्तमाः। विनता तु महारौद्रा कथ्येतं शकुनिग्रहः॥ पूतनां राक्षसीं प्राहुः तं विद्यात् पूतनाग्रहम्। कष्टा दारुणरूपेण घोररूपा निशाचरी॥ पिशाचो दारुणाकारा कथ्यते शीतपूतना। गर्भात् सा मानुषीणां तु हरते घोरदर्शना॥ अदितिं रेवतीं प्राहुर्ग्रहस्तस्यास्तु रैवतः। सोऽपि बालान् महाघोरो बाधते.....॥ दैत्यानां या दितिर्माता तामाहुः मुखमण्डिकाम्। (महाभारत, वनपर्व अ. 230)
3. ये हरन्ति शिशूञ्जातान् गर्भस्थाश्चैव दारुणाः। वज्रप्रहारात् कन्याश्च जज्ञिरेऽस्य महाबलः॥ (महाभारत, वनपर्व अ. 228)
4. स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च। शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना॥ पूतना शीतनामा च तथैव मुखमण्डिका। नवमो नैगमेषश्च यः पितृग्रहसंज्ञितः॥ (सु.सं.उ. 27:4-5)
5. मनुष्यविग्रहाः पञ्च सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः। स्कन्दो विशाखो मेषास्य श्वग्रहः पितृसंज्ञितः॥ शकुनिः पूतना शीतपूतनाऽदृष्टिपूतना। मुखमण्डितिका तद्वद्रेवती शुष्करेवती॥ (अ.सं.उ. 3:2)

ग्रहभेद	सुश्रुत[4]	वाग्भट[5]
1. पुरुष ग्रह	1. स्कन्द ग्रह 2. स्कन्दापस्मार 3. नैगमेष या पितृग्रह	1. स्कन्द ग्रह 2. स्कन्दापस्मार या विशाख 3. मेष या नैगमेष 4. श्वग्रह 5. पितृग्रह
2. स्त्रीग्रह	4. शकुनी 5. पूतना 6. शीतपूतना 7. अन्धपूतना 8. मुखमण्डिका 9. रेवती	6. शकुनी 7. पूतना 8. शीतपूतना 9. अदृष्टपूतना 10. रेवती 11. शुष्क रेवती 12. मुखमण्डिका

काश्यपसंहिता एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ होते हुए भी अपूर्ण है। अतः ग्रहों का पूर्ण विवरण एक स्थान पर उपलब्ध नहीं हो पाता। सन्दर्भों के द्वारा निम्न स्वरूप स्पष्ट होता है—

1. '.....ग्रहस्तु दश कीर्तिताः'।। (का.सं.सूत्र 27:56)

ग्रहरोग दश होते हैं।

2. स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, स्कन्दपिता, पुण्डरीक, रेवती, शुष्करेवती, मुख-मण्डिका, पूतना एवं नैगमेष के अरिष्ट लक्षणों का वर्णन संहिता में 'औषधभेषजेन्द्रिया-ध्याय' में श्लोक क्रम 11 से 12 तक में वर्णित है।

3. चिकित्सास्थान के 'बालग्रहचिकित्सा' अध्याय में रेवती (इसके 20 पर्याय में शुष्का, षष्ठी, मुखमण्डिका, पूतना का भी उल्लेख है), पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना तथा मुखमण्डिका की चिकित्सा का उल्लेख है। मात्र रेवती से होने वाले रोगों का उल्लेख है।

4. वमनसाध्य रोगों में स्कन्द ग्रह, स्कन्दापस्मार, स्कन्दपिता एवं नैगमेष है। रेवती, पुण्डरीक, शकुनी, पूतना एवं मुखमण्डिका में वमन न करायें। रेवती में विरेचन न करायें (सिद्धिस्थान, पञ्चकर्मीयासिद्धि अध्याय)।

5. ग्रहों से दूषित दूध के लक्षण वर्णन के क्रम में शकुनी, स्कन्द, षष्ठी ग्रह एवं पूतना का उल्लेख है। (सू. 19)

उपरोक्त उद्धरणों में 13 ग्रहों के नाम आये हैं। जब कि आचार्य ने 10 ग्रहरोगों की गणना की है। सम्भावित स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है—

कृपया क्रम 4-5. की टिप्पणी पृष्ठ 556 पर देखें।

Scanned with CamScanner

1. स्कन्द ग्रह
2. स्कन्दापस्मार
3. स्कन्दपिता (पितृग्रह ?)
4. पुण्डरीक
5. नैगमेष
6. शकुनी
7. रेवती (पर्याय षष्ठीग्रह)
8. शुष्करेवती
9. मुखमण्डिका
10. पूतना (इसके 3 भेद हैं—)
    - पूतना
    - शीतपूतना
    - अन्धपूतना ।

हारीतसंहिता में स्त्री-बालग्रह 'पूतना' का ही वर्णन प्राप्त होता है । इसके 8 भेद बताये गये है, जो विभिन्न दिनों में आक्रमण करते हैं—

'संक्रामन्ति भिषक् श्रेष्ठ ! बालकस्यापि पूतना ।
लोहिता रेवती ध्वांक्षी कुमारी शकुनी शिवा ।।
ऊर्ध्वकेशी तथा सेना ह्यष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः ।
तथान्यासाञ्च मत्तस्त्वं नामानि शृणु साम्प्रतम् ।।
रोहिणी विजया काली कृत्तिका डाकिनी निशा ।
भूतकेशी कृशाङ्गी च अष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः' ।। (हा.सं. 3:54)

इसके अतिरिक्त वैद्य कल्याण द्वारा लिखित बालतन्त्र में विभिन्न प्रकार के स्त्रीग्रहों का वर्णन है । जो प्रथम दिन से 10वें दिन तक, प्रथम माह से 12वें माह तक तथा प्रथम जन्मवर्ष से 16वें वर्ष की वय तक के मध्य में आक्रमण करते हैं ।

उपरोक्त विवरण के आधार पर निम्न तथ्यों को सार के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

(1) पौराणिक कथा इस तथ्य की ओर इङ्गित करती है कि उस समय के देवासुर संग्राम में कुछ ऐसे प्रयोग हुए अथवा यन्त्र उपयोग में आये जिनका प्रभाव बच्चों पर पड़ता था ।

(2) चरकसंहिता में इनका स्पष्ट स्वरूप वर्णित नहीं है ।

(3) पूर्ण विवरण हमें 12 ग्रहों का ही प्राप्त है, जो सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्गहृदय एवं संग्रह में वर्णित है ।

(4) भावप्रकाश, माधवनिदान तथा योगरत्नाकर में ग्रहों की संख्या 9 सुश्रुत के ही मतों पर कही गयी है ।

(5) हिंसा, रति एवं अर्चना आकांक्षा ग्रह के लक्षणों के वर्णन मानसिक विकृति एवं कुण्ठाओं से सामंजस्य रखते है ।

(6) आचार्यो ने इनका सम्बन्ध शारीरिक दोषों से स्थापित नहीं किया है ।

(7) चिकित्सा-क्रम में वर्णित विभिन्न स्थानों पर स्नान, विभिन्न प्रकार की पताकाओं का प्रयोग इनके संक्रामकता के स्वरूप को इङ्गित करता है ।

(8) चिकित्सा में प्रधानता दैवव्यपाश्रय कर्म को ही दी गयी है ।

(9) उपरोक्त एवं आगे वर्णित विषय के आधार पर इन अदृश्य स्वरूप, अनिश्चित निदान, सम्प्राप्ति एवं लक्षण के आधार पर विभिन्न प्रकार के विषाणुजन्य (Viral) या जीवाणुजन्य (Bacterial) रोग मान सकते हैं ।

(10) बालग्रह शीर्षक के अन्तर्गत किसी एक व्याधि का नहीं वरन् लक्षण-समूहों (Syndrome) का वर्णन है ।

बालग्रह-विवेचन

रूप-विवेचन—आचार्यो ने बालकों में प्रवेश होने वाले इन ग्रहों को यद्यपि अदृष्ट माना है परन्तु शास्त्रपूत विशिष्ट दृष्टि (Microscopic root ??) से ग्रह देखे जाने का उल्लेख किया है ।

'आविशन्तश्च लक्ष्यन्ते केवलं शास्त्रचक्षुषा' । (अ.सं.उ. 3:35)
'शास्त्रचक्षुषैव लक्ष्यन्ते न तु मांसगोलकेन' । (इन्दू-टीका)

सुश्रुतसंहिता में प्रत्येक ग्रह के स्वरूप-आकृति का वर्णन किया गया है । यह वर्णन ग्रह द्वारा उत्पन्न लक्षणों के आधार पर प्रतीत होता है तथा चिकित्सा कर्म में बलि आदि की व्यवस्था में सहायक होता है ।

बालग्रहों की पृथक्-पृथक् आकृति का वर्णन

(1) स्कन्द ग्रह

'तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा ।
निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ।।
ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः ।
देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुहः ।।
देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः ।
गङ्गोमाकृत्तिकानाञ्च स ते शर्म प्रयच्छतु ।।
रक्तमाल्याम्बरः श्रीमान् रेक्तचन्दनभूषितः ।
रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः' ।। (सु.उ. 28:11-14)

जो तपश्चर्या, दिव्य तेज, यश तथा स्वस्थ शरीर के निधान है ऐसे अविनाशी स्कन्द देव तेरे लिए प्रसन्न हो जायें । ग्रहों के सेनापति देवताओं के भी सेनापति है, सर्वत्र

Scanned with CamScanner

व्याप्त रहने वाले देवसेना के शत्रुनाशक भगवान् गुह रक्षा करें। ये महादेव एवं अग्नि के पुत्र कहलाते हैं; गङ्गा, उमा, कृत्तिका के भी पुत्र हैं। वे तुझे शर्म (सुख) प्रदान करें। लाल माला एवं वस्त्र को धारण किये, लाल चन्दन के लेप से सुशोभित, लाल दिव्य शरीरधारी तथा क्रौञ्च पर्वत का नाश करने वाले श्रीमान् स्कन्द तेरी रक्षा करे।

(2) स्कन्दापस्मार ग्रह

'स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा।
विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः' ॥ (सु.उ. 29:9)

स्कन्द का मित्र, विकृत आनन वाला एवं विशाख ऐसा नाम वाला स्कन्दापस्मार ग्रह बच्चे के लिए शिव (शुभ) कारक हो।

(3) नैगमेष ग्रह

'अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः।
बालं बालपिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षतु' ॥ (सु.उ. 36:11)

बकरे के समान मुखवाला, नेत्र तथा भौंहें जिसकी चलायमान हों तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाला, महायशस्वी तथा शिशुओं के पिता नैगमेष देव बालक की रक्षा करें।

(4) शकुनी ग्रह

आकाश में विचरने वाली, सर्व अलङ्कारों से विभूषित, लौह समान वर्णयुक्त मुखवाली या अधो मुखवाली एवं तीक्ष्णमुखी शकुनी देवी तेरे लिए प्रसन्न हों। भयङ्कर दर्शन वाली, लम्बशरीरधारिणी, पिङ्गल नेत्र युक्त एवं शंकुवत् लम्बे तीखे कर्ण वाली देवी तेरे लिए प्रसन्न हों।

'अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता।
अयोमुखी तीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥
दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा।
लम्बोदरी शङ्कुपर्णी शकुनी ते प्रसीदतुः' ॥
(सु.उ. 30:10-11)

(5) रेवती ग्रह

'नानावस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु' ॥ (सु.उ. 31:10)

विविध प्रकार के वस्त्रों को धारण करने वाली, चित्र-विचित्र माला एवं चन्दन धारण करने वाली, कानों में जिसके कुण्डल हिलते हो, ऐसी श्यामवर्णा देवी लिए प्रसन्न हों।

'लम्बा करालाविनता तथैव बहुपुत्रिका।
रेवती शुष्कनामा या सा ते देवी प्रसीदतु' ॥ (सु.उ. 31:11)

जिसके लम्बा, कराला, विनता, बहुपुत्रिका, रेवती तथा शुष्कनामा—ये अनेक नाम हैं, ऐसी देवी प्रसन्न हो जायें।

(6) मुखमण्डिका ग्रह

अनेक आभूषणों से अलंकृत, सुरूपवती, ऐश्वर्यशालिनी, स्वेच्छा से अनेक रूप धारण करने वाली एवं सदा गोशाला में निवास करने वाली मुखमण्डिका देवी तेरी रक्षा करें।

'अलङ्कृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी।
गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका' ॥ (सु.उ. 35:10)

(7) पूतना

'मलिनाऽम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्धजा।
शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना ॥
दुर्दर्शना सुदुर्गन्धा कराला मेघकालिका।
भिन्नगाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना' ॥ (सु.उ. 32:11)

मलिन वस्त्र पहने हुए, मलिन शरीर वाली, रूक्ष केशों से युक्त तथा शून्य मकान में रहने वाली पूतना देवी बच्चे की रक्षा करें। खराब दर्शन वाली, दुर्गन्धयुक्त, विकराल स्वरूप वाली, बादलों के समान कृष्ण वर्ण की एवं फूटे मकान में रहने वाली पूतना देवी तेरे बच्चे की रक्षा करें।

(8) अन्धपूतना

'कराला पिङ्गला मुण्डा कषायाम्बरवासिनी।
देवी बालमिमं प्रीता संरक्षत्वन्धपूतना' ॥ (सु.उ. 33:9)

कराल स्वरूपवाली, पिङ्गल वर्ण की तथा सिर मुण्डित, कषाय वस्त्रों को पहिनी हुई अन्धपूतना देवी प्रसन्न होकर इस बच्चे की रक्षा करें।

(9) शीतपूतना

'मुद्गौदनाशना देवी सुराशोणितपायिनी।
जलाशयालया देवी पातु त्वां शीतपूतना' ॥ (सु.सं.उ. 34:9)

मूँग तथा चावल को खाने वाली, सुरा व रक्त का पान करने वाली तथा जलाशय के पास निवसनशील शीतपूतना देवी तेरी रक्षा करें।

Scanned with CamScanner

बालग्रहों के पृथक्-पृथक् लक्षणों का विवेचन एवं सम्भावनाओं का विवरण

बालग्रहों के पृथक्-पृथक् लक्षणों के आधार पर बीसवीं सदी के कौमारभृत्य के विशेषज्ञों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार पर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है। इसका पूरा विवरण प्रत्येक ग्रह के साथ उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है।

बालग्रहों के लक्षणों में एक विशिष्टता है कि प्रायः सभी ग्रहों में विशिष्ट प्रकार के गन्ध का उल्लेख मिलता है, जो व्याधिविनिश्चय में सहायक होता है। यदि आज निदान की इस पद्धति को विकसित किया जाय तो आयुर्वेद का एक विशिष्ट योगदान कहा जायेगा।

	ग्रह	विशिष्ट गन्ध	सुश्रुत-संहिता	अ.हृ. अ.सं.	यो.र.	अन्य/ मा.नि.
1.	स्कन्द ग्रह	क्षतज-सगन्धिकः वसा की गन्ध रक्त की गन्ध	+ — —	— + +	— — +	— — +
2.	स्कन्दापस्मार	पूयशोणितगन्धित्वं	—	+	+	+
3.	नैगमेष ग्रह	वसा की गन्ध बस्त-आमगन्धता विगन्धिता	+ — —	— + —	— — +	— — +
4.	श्वग्रह	विट्सगन्धत्वं	—	+	—	—
5.	पितृ ग्रह	श्वगन्धता	—	+	—	—
6.	शकुनी ग्रह	विहङ्गगन्धिः शकुनीगन्धत्वं	+ —	— +	+ —	+ —
7.	पूतना ग्रह	काकतुल्यगन्धि काकवत् पूतिगन्धिता	+ —	— +	— —	— —
8.	शीतपूतना	वसावत् विशेष गन्ध विगन्धिता	— —	+ —	— +	— +
9.	अन्धपूतना	अम्लगन्धि मत्स्यगन्धि वसागन्धी	+ — —	+ या + —	— — +	— — +
10.	मुखमण्डिका	मूत्रतुल्यगन्धि	+	+ गोमूत्र	+	+
11.	रेवती ग्रह	बस्तगन्धी पङ्कगन्धी	— —	+ —	— +	— +
12.	शुष्क रेवती	मृदुगन्धत्वं	—	+	—	—

स्कन्द ग्रह

'शूनाक्षः क्षतजसगन्धिकः स्तनद्विट् वक्त्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः।
उद्विग्नः सुलुलितचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिवर्चाः' ॥
(सु.उ. 27:8)

'तत्रैकनयनस्रावी शिरो विक्षिपते मुहुः।
हतैकपक्षः स्तब्याङ्गः सस्वेदो नतकन्धरः ॥
दन्तखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति विस्वरम्।
वक्रवक्त्री वमनलालां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते ॥
वसास्रगन्धिरुद्विग्नो बद्धमुष्टिशकृच्छिशुः।
चलितैकाक्षिगण्डभ्रूः संरक्तोभयलोचनः ॥
स्कन्दार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भेवद्ध्रुवम्' ॥ (अ.सं.उ. 3:10)

'एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्पन्दनकम्पनम्।
ऊर्ध्वं दृष्ट्वा निरीक्षेत वक्त्रास्यो रक्तगन्धिकः ॥
दन्तान् खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति।
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च' ॥ (यो.र.बा.रोग 437)

स्कन्द ग्रह से पीड़ित बालक के नेत्र शोथयुक्त तथा शरीर से रुधिर गन्ध आती है, स्तनद्वेष, मुख-वक्रता रहती है। एक नेत्र की पलक स्तब्ध (हत) रहती है, कभी कम्पन होता है। उद्विग्नता, लाल नेत्र, अल्प रोदन, जोर से हाथों को भींचे हुए (मुष्टिबद्ध) एवं सख्त मल त्याग करता है।

एक नेत्र से बराबर स्राव होना, बार-बार शिर को सम्भालना (हिलाना), शरीर का एक भाग निश्चेष्ट हो जाना, स्तब्ध अङ्ग, स्वेद आना, कन्धों का गिरा होना, दाँत चबाना, स्तनद्वेषी डरना है, विकृत स्वर में रोदन, मुखवक्रता, लालास्राव, ऊपर की ओर देखना, वसा तथा रक्त की गन्ध वाला, उद्विग्न, मुट्ठी बाँधे हुए, एक नेत्र, गाल तथा भ्रू हिलाता है, दोनों नेत्र सुर्ख हो जाते हैं। ऐसे शिशु स्कन्द ग्रह से पीड़ित होते हैं। इसमें किसी-न-किसी अङ्ग में विरूपता या मृत्यु निश्चित है।

एक नेत्र से गात्र पर स्राव होना, शरीर में स्पन्दन व कम्पन का होना, ऊर्ध्व दृष्टि, मुखवक्रता, शरीर से रक्त की गन्ध आना, दाँत चबाना, भयभीत, स्तनद्वेष एवं अल्प-रोदी होता है।

अरिष्ट लक्षण—जब माता या शिशु स्वप्न में गन्ध वाले पदार्थ तथा लाल रङ्ग के पुष्प एवं वस्त्र को धारण करते हैं या बालक स्वप्न में मोर, मुर्गे, बकरे तथा मेढ़ पर सवार होता है तथा रक्त चन्दन द्वारा उसका शरीर अर्चित करता हो या बालक स्वप्न में घण्टे या पताका को जमीन पर विध्वस्त हुआ देखे तथा शय्या को रक्त से मिला देखे, तो उस अवस्था में स्कन्द ग्रह का भय समझें।

Scanned with CamScanner

'गन्धवान् पुष्पाणि वासांसि या रक्तानि निषेवते ।
यदा स्वप्ने शिशुर्वाऽपि तथा स्कन्दग्रहाद्भवम् ।।
मयूरं कुक्कुटं वस्तं मेषं वा योऽधिरोहति ।
रक्तार्चित: सहैतैर्वा तत्रापि स्कन्दतो भयम् ।।
घण्टां पताकां य: स्वप्ने विध्वस्तां भुवि पश्यति ।
शयनं शोणितार्क्तं वा तत्रापि स्कन्दतो भयम्' ।।

(का.सं.इन्द्रियस्थान, औषधभेषजेन्द्रियाध्याय पृ. 90),

उपरोक्त विवेचन में एक नेत्र का हत या चलित होना, ऊर्ध्व दृष्टि, वक्र मुख, गात्र-स्पन्दन, गात्रकम्प, लालास्राव आदि लक्षणों को प्रधानता देते हुए विद्वानों ने अर्दित Facial paralysis की कल्पना की है ।

बार-बार शिरोविक्षेप, हतैकपक्षता, अङ्गस्तब्धता, एक नेत्र, गात्र एवं भ्रू का हिलना आदि लक्षणों को ध्यान में रखकर शैशवीय पक्षाघात (Infantile hemiplagia) अथवा पोलियो मायलाइटिस व्याधि से समकक्षता की गयी है ।

परन्तु एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को उपर्युक्त मान्यताओं में नजरन्दाज किया गया है कि प्रत्येक आचार्य ने प्रथम लक्षण नेत्र से ही प्रारम्भ किया है । एक नेत्र का शोफ या उससे स्राव का होना प्रधान है । अन्य लक्षण उसके बाद हैं । योगरत्नाकर ने तो शारीरिक पक्षाघात की बात कही ही नहीं है । अत: यह व्याधि Cavernous sinus thrombosis के समकक्ष प्रतीत होता है ।

इस प्रकरण में इन व्याधियों का संक्षिप्त परिचय देना उपयुक्त होगा ।

हतैकपक्ष या बालपक्षाघात
(Infantile Hemiplagia)

यह व्याधियों का वह लक्षण है जिसमें शरीर के एक पक्ष के अङ्गों का पक्षाघात (Paralysis) हो जाता है । प्राय: मस्तिष्क के विपरीत पक्ष को आघात पहुँचने पर (Cerebro vascualr accident on the opposite side) ही यह अवस्था विकसित होती है । पक्षाघात के प्रभाव के आधार पर कारणों को निम्न तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

(अ) आकस्मिक कारण

1. मस्तिष्क में आघात
   - Cerebral thrombosis, Embolism, Haemorrhage (रक्त-स्राव), Tumour (अर्बुद)
2. धमनीगत कारण
   - Internal carotid thrombosis or Stenosis.

- Basilar and carotid insufficiency.
- Hypertensive encephalopathy.

3. संक्रमणजन्य तथा अन्य कारण
   - Acute encephalitis
   - Cerebral vascular syphilis
   - Cortical thrombophlebitis.

(ब) अल्पकालिक अथवा बार-बार पक्षाघात होना

1. आक्षेप के बाद (Post epileptic)
2. सूर्यावर्त (Migrain)
3. Cerebral vascular accident neoplasm.
4. Internal carotid artery stenosis.
5. उच्च रक्तचाप, मधुमेहजन्य मूर्च्छा (Coma)
6. Cerebral contusion.
7. Encephalitis.
8. Disseminated sclerosis.

(स) क्रमिक पक्षाघात का होना

1. मस्तिष्कविद्रधि, अर्बुद (Neoplasm)
2. मस्तिष्क-आघात (Chronic subdural haematoma)
3. मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis)

पोलियो मस्तिष्कशोथ
(Polio Encephalitis)

यह एक तीव्र वाइरल संक्रमण है, जो अपना लक्षण संक्रमणोपरान्त 'नहीं से' अर्थात् लक्षणविहीन तथा शीघ्र पक्षाघात एवं मृत्यु के रूप में प्रकट करता है । यह प्राय: बच्चों को ही अपना शिकार बनाता है ।

निदान—यह व्याधि एक प्रकार के वायरस (Entero viruses) के कारण होती है जो अपना प्रभाव एवं संख्या वृद्धि प्रमुख रूप से अन्नवह स्रोतस् में करते हैं । इन वाइरस के भेद, प्रभाव एवं प्रसार का वर्णन निम्नवत् है—

वर्ग	वाइरस का नाम	प्रभाव की तीव्रता	प्रसार
1	Brunhild	+ + +	तीव्र संक्रामक (Sever epidemic)
2	Lansing	+ +	मृदु संक्रामक
3	Leon	+	अव्यापक (Sporadic)

इन तीन वर्गों के अतिरिक्त भी 2 वर्ग हैं, जो संक्रामकता करते हैं, ऐसा अब माना जाता है ।

Scanned with CamScanner

सम्प्राप्ति—मुख के द्वारा इनका संक्रमण होता है तथा आहारनाल में गुणन होता है। सम्बन्धित लसिकाग्रन्थि एवं Reticulo-endothelial system भी संक्रमित हो जाता है। इसके बाद क्षणिक विषाणुरक्तता होती है। यदि इस समय वाइरस के निरोध करने वाले प्रतिद्रव्य नहीं बन पाते हैं तो तन्त्रिकातन्त्र पर प्रभाव पड़ता है। लक्षण इस तथ्य पर निर्भर करते है कि किस स्थान के कितने स्नायुकोश (Neurons) प्रभावित हुए हैं।

अपने देश में Brunhild तथा Leon का प्रभाव अधिक देखा जाता है। गर्मी के मौसम में तथा अगस्त माह से इसके रोगी अधिक मिलते हैं। प्रायः इसके रोगी बच्चे 3 वर्ष तक की वय में ही मिलते है। 3 वर्ष के बाद अप्रत्यक्ष संक्रमण के कारण शिशु सक्रिय प्रतिद्रव्य अर्जित कर लेता है।

लक्षण—लक्षण के दृष्टिकोण से व्याधि को निम्न 4 वर्ग में विभाजित करते है। एक वर्ग का दूसरे वर्ग में प्रत्यावर्तन नहीं हो सकता है, यदि परिस्थितियाँ वाइरस के अनुकूल हों।

(1) **अप्रत्यक्ष संक्रमण** (Asymptomatic or Silent polio)—यह सर्वाधिक सामान्य अवस्था है। प्रत्येक पक्षाघात व्याधित शिशु के साथ 80 से 100 तक अन्य बच्चे भी इस वाइरस से संक्रमित होते है। परन्तु व्याधि के प्रति सहिष्णुता रखने से कोई लक्षण प्रकट नहीं होते। व्याधि-विनिश्चय केवल संक्रमण काल में (Immunologically adequate titer of antibodies) परीक्षण से होता है अथवा मल में वाइरस की प्राप्ति होती है।

(2) **निष्फल संक्रमण** (Abortive polio)—इस अवस्था में वाइरस रक्त में पहुँच कर मृदु विषाणुरक्तता पैदा करते हैं। इन शिशुओं में व्याधि का सन्देह मात्र लक्षणों के आधार पर नहीं किया जा सकता। केवल जब व्याधि फैली हो (Epidemic) तभी शङ्का हो सकती है। रोगी को मृदु ज्वर, सर्वाङ्गशूल, शिरःशूल, उदरशूल एवं प्रतिश्याय हो सकता है। कभी-कभी अतिसार, गले में खराश (Pharyngitis), वमन, हल्लास एवं अरुचि भी हो सकती है। तन्त्रिकातन्त्र के लक्षण प्रकट नही होते। व्याधि-विनिश्चय हेतु उपरोक्त परीक्षण ही सहायक है। व्याधि के सन्देह होने पर शिशु को 7 से 10 दिन तक शय्या पर ही आराम से रखें। परिश्रम, आघात, सूचीवेध, कार्टीजोन औषधि एवं शरीर में जल की अल्पता से बचायें।

(3) **आघातज संक्रमण** (Pre-paralytic or Non-paralytic polio)—इस अवस्था में वाइरस मस्तिष्क की किसी भी कोशिका को बगैर हानि पहुँचाये पहुँच जाते हैं। मृदु विषाणुरक्तता के बाद ज्वर आदि लक्षणों के होने के पश्चात् अल्प मस्तिष्क उत्तेजना के लक्षण यथा—ग्रीवापेशीशूल, ग्रीवाशूल, शिरःशूल, कटिशूल, वमन आदि मिलते हैं। पक्षाघात नहीं होता है। Lumber puncture से इनका निदान हो सकता

है। परन्तु यह परीक्षण करना खतरनाक हो सकता है, अतः बचना चाहिए। ग्रीवास्तम्भ, मन्यास्तम्भ, जानुचुम्बन परीक्षण[1] एवं त्रिपाद लक्षण परीक्षण[2] से निदान कर सकते है।

(4) **पक्षाघात युक्त पोलियो**—उपरोक्त अवस्था अनुकूल परिस्थिति में इस अवस्था में बदल जाती है। क्षत स्नायु कोश के स्थान पर आधारित इसके 4 उपवर्ग हैं। इस पक्षाघात में Deep Tendon jerk अनुपस्थित रहते है। संवेदनातन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक पेशी या सम्पूर्ण पेशी वर्ग अथवा कभी-कभी एक या दोनों ओर की शाखाएँ प्रभावित होती हैं। यह Lower motor neuron type व्याधि है।

पक्षाघातयुक्त पोलियो के भेद

(1) **सुषुम्नावर्ग**—इस वर्ग में शाखाएँ, ग्रीवा, उदर या मध्यच्छद (डायफ्राम), पार्श्विका-मध्य-पेशी प्रभावी होती है। मुख्य लक्षण निम्न हैं—

1. ज्वरादि उपरोक्त लक्षण।
2. प्रायः सभी रोगियों में मांसपेशीशूल एवं स्पर्श-असह्यता होती है।
3. पक्षाघात—पक्षाघात कुछ स्थान-विशेष पर Lower motor neuron type होता है। पैर हाथों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते हैं। बड़ी पेशियाँ भी अधिक प्रभावित होती हैं। दूसरे या तीसरे दिन पक्षाघात हो जाता है। संवेदना नाश नहीं होती।
4. मूत्राशय एवं ग्रहणी भी प्रभावित होती है। जहाँ मूत्राशय पर प्रभाव मात्र 1 से 3 दिन तक रहता है, वहाँ ग्रहणी पर प्रभाव मलबन्ध आदि के रूप में अधिक दिनों तक रहता है।

(2) **बल्बर वर्ग** (Bulber form)—यह कम रोगियों में मिलता है। Cranial nerves के क्षेत्र में प्रभाव पड़ता है। निगलने में कष्ट, नाक से बोलना, कष्टश्वास (Dyspnoea), अर्दित आदि लक्षण हो सकते हैं। मस्तिष्क में श्वसन केन्द्र एवं रक्तसंवहन केन्द्र पर भी प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी अल्प-रक्तचाप वृद्धि भी मिलती है।

(3) **मिश्रवर्ग**—इसमें उपरोक्त दोनों वर्गो के मिश्रित लक्षण होते हैं तथा चतुर्थ वर्ग के 25% रोगी इसी वर्ग में आते हैं।

(4) **मस्तिष्कशोथ वर्ग**—इसके रोगी कम ही मिलते हैं। प्रायः इस वर्ग का आक्रमण मृदु लक्षणों के बाद एकदम से होता है। भ्रान्ति, कम्पन, विभ्रम, गतिविभ्रम (Ataxia), अक्षिचालन (Nystagmus), आक्षेप, तीव्र ज्वर, शाखास्तम्भ के बाद पक्षाघात होता है। इसका अन्य वाइरसजन्य मस्तिष्कशोथ से भेद करना कठिन है।

1. जानुचुम्बन-परीक्षण—बच्चे को सीधे पैर फैला कर नितम्ब पर बैठायें। फिर जानु चूमने को कहें। यदि चूमते समय घुटने मुड़ जाते हैं तो परीक्षण धनात्मक है।
2. त्रिपाद लक्षण—बच्चे को खड़ी अवस्था से बैठने को कहें। धनात्मक परीक्षण में शिशु बैठने पर हाथ का सहारा लेगा।

Scanned with CamScanner

उपद्रव—अन्नवह स्रोतस् में रक्तस्राव, छिद्रण, विस्तार, उच्च-रक्तचाप, तीव्र श्वसन गति, हृदयावरोध, हृदयावरण शोथ, श्वास लेने मे कठिनाई, न्युमोनिया, फुफ्फुस शोथ (Pulmonary oedema), अल्पकालीन मूत्राशय-पक्षाघात, अश्मरी आदि।

प्रयोगशालीय परीक्षण

(1) मल एवं गले के स्राव में वाइरस की उपस्थिति।

(2) Immunologically adquate titer of antigen.

(3) सुषुम्ना द्रव (C.S.F.) का परीक्षण—इसमें Protein की मात्रा में वृद्धि (30 से 200 मि.ग्रा./100 सी.सी.) तथा श्वेत-रक्तकोशिकाओं में वृद्धि (10 से 200 कोशिका/मि.मी.) होती है। कल्चर कराने पर कुछ भी नही मिलता।

चिकित्सा—शिशुओं को इससे बचाव हेतु टीके लगवाना चाहिए (देखिये लेहाध्याय)। इस व्याधि की चिकित्सा प्रायः लाक्षणिक ही होती है।

(1) उपद्रव से बचाव हेतु चिकित्सालय में प्रवेश करा दे।

(2) रोगी को शय्या पर पूर्व आराम करायें।

(3) वेदनाशामक एवं निद्राकारक औषधियों का तथा द्वितीयक संक्रमण से बचाव हेतु मुख से Antibiotics का प्रयोग करें।

(4) जब शिशु वेदना, ज्वर आदि से स्वतन्त्र हो जाय अर्थात् पोलियो का तीव्र स्वरूप समाप्त हो जाय (लगभग 25-30 दिन) तो उष्ण-शुष्क ताप स्वेद, विद्युत् स्वेद (इन्फ्रारेड लैम्प) एवं प्रभावित शरीर के भाग की कसरत करायें। उपरोक्त समय में अभ्यङ्ग तथा सूचीवेध नही करना चाहिए।

(5) कभी-कभी कुछ बच्चों में पक्षाघात विकृति के लिए सहायक (स्प्लिण्ट) पेटी या विशिष्ट प्रकार के जूते या शल्यकर्म का सहारा लेना पड़ता है।

(6) लाक्षणिक चिकित्सा।

(7) औषधि—बृहत् वातचिन्तामणि रस एवं वातगजाङ्कुश (½ से 2 डेसीग्राम आयु के अनुसार) मिलाकर 2 मात्रा मे बाँट कर दिन में 2 बार देना चाहिए।

(8) तीव्र स्वरूप काल समाप्त होने पर महामाष तैल या चन्दनबलादि तैल या लाक्षादि तैल से अभ्यङ्ग करें।

एकनेत्रशोफ के कारण
(Unilateral Exopthalmas)

1. नेत्रगोलक विद्रधि, नयी वृद्धि (अर्बुद), रक्तस्राव, Syphlitic Gamma.
2. Orbital periostitis.
3. Thrombosis—Cavernous orbital vein.
4. Meningocele, Encephalocele.
5. Tuberculous tubercle formation.

6. Arteriovenous aneurism.
7. Distention of acessory sinus of nose.

कैवरनस साइनस थ्राम्बोसिस
(Cavernous Sinus Thrombosis)

नासा में पूयोत्पादक संक्रमण इसका प्रमुख कारण है। नासा, नेत्र एवं चेहरे (Facial) के विवर (Sinuses) में संक्रमण के उपद्रव का परिणाम यह व्याधि है। Ophthalmic vein तथा Facial vein की Anastmosis के द्वारा ही संक्रमण फैलता है, क्योंकि यह सीधे Cavernous sinus में ही खुलती है। इस व्याधि का प्रारम्भ तीव्र ज्वर, अङ्गमर्द (Drowsiness) एवं व्याधिपीड़ित पक्ष के नेत्र की पलक का हत होना (Proptosis) के साथ होता है। 1 से 2 घण्टे में अथवा अधिकतम 1 या 2 दिन में पलकों की शिराओं में विस्तार हो जाता है। उसमें श्लेष्मला शोफ (Chemosis) हो जाता है। नेत्रमांसपेशियों का पक्षाघात हो जाता है। नेत्र-परीक्षण (Funduscopic) में Blurring of disc margin तथा Engorgement of retinal veins दिखायी पड़ता है। यदि समय पर चिकित्सा न हो तो Thrombophlebitis का अतिक्रमण बढ़ता है और परिणामस्वरूप व्याधि का मस्तिष्क में घातक विस्तार होता है तथा विभिन्न Cranial nervers, यथा—3,4,5,6 का पक्षाघात अथवा शरीर के अन्य अङ्गों मे पक्षाघात हो जाता है। मस्तुलुङ्ग परीक्षण में दबाव में वृद्धि, रक्तमिश्रित WBC तथा RBC की संख्या में अतिवृद्धि एवं प्रोभूजन की मात्रा में वृद्धि मिलती है।

चिकित्सा-सिद्धान्त

1. शिरागत एण्टीबायोटिक का प्रयोग।
2. स्थानीय पूयसञ्चय यदि हो तो शल्यकर्म द्वारा उसे निकाल दें।
3. Intra cranial pressure की घातक वृद्धि होने पर Manital या Cartisone के द्वारा उसकी चिकित्सा करें। प्रारम्भ में Manital 20% 5 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में देने के बाद 2 मि.ली./किग्रा. शरीर भार की मात्रा में 6 से 8 घण्टे के अन्तर से 2 दिवस तक देते है।

स्कन्दापस्मार या विशाख बालग्रह

'निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत् ससंज्ञः संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव।
विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः फेनञ्च प्रमृजति तत्सखाभिपन्नः' ॥
(सु.उ. 27:9)

'संज्ञानाशो मुहुः केशलुञ्चनं कन्धराननतिः।
विनम्य जृम्भमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम् ॥
फेनाद्रमनमूर्ध्वेक्षा हस्तधूपादनर्तनम्।

Scanned with CamScanner

स्तनस्वजिह्वासन्दंशसंरम्भज्वरजागराः ॥
पूयशोणितगन्धश्च स्कन्दापस्मारलक्षणम्' ॥ (अ.ह.उ.3:9-11)

'नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञावानतिरोदिति ।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम्' ॥ (मा.नि. 68:22)

इस ग्रह में पीड़ित बालक कभी संज्ञारहित तथा कभी संज्ञायुक्त हो जाता है तथा संरब्ध (हलचल) युक्त होकर हाथ-पैर को नचाता है, विशिष्ट प्रकार का अव्यक्त शब्द करके विष्ठा एवं मूत्र का उत्सर्ग करता है । जृम्भा लेता हुआ मुख से फेन गिराता है ।

वाग्भट ने इसका विस्तृत उल्लेख किया है । बार-बार संज्ञानाश होना, केशलुञ्चन, ग्रीवा झुकाये रखना, अङ्गों को मोड़ कर जृम्भा लेते हुए मल-मूत्र की प्रवृत्ति, फेनवमन, ऊपर को देखना; हाथ, पैर एवं भौंहो को नचाना एवं अपनी जिह्वा को काट लेना, शोफ, ज्वर, निद्रानाश; पूय एवं रक्त की गन्ध आना आदि विशाख या स्कन्दापस्मार के लक्षण हैं ।

माधव ने संक्षेप में कहा है—मूर्च्छा के साथ मुख से फेन आता है, पुनः होश में आने पर अतिरोदन करना, शरीर से पूय एवं रक्त की गन्ध आना लक्षण है ।

काश्यपोक्त अरिष्ट-लक्षण

'रक्तपुष्पाम्बरधरा रक्तचन्दनरूषिता ।
नृत्यते सह भूतैर्वा स्कन्दापस्मारतो भवम्' ॥
(इन्द्रियस्थान, औषधि. पृ. 90)

यदि माता स्वप्न में लाल पुष्प तथा वस्त्र को धारण करके तथा शरीर पर रक्तचन्दन का लेप कर भूतों के साथ नृत्य करे तो उस अवस्था में स्कन्दापस्मार का भय समझें ।

उपरोक्त विवरण के लक्षण यथा—बार-बार संज्ञानाश, विशिष्ट प्रकार का अव्यक्त शब्द करना (Aural cry), जिसके साथ मल-मूत्र का भी त्याग, स्वजिह्वा एवं माता के स्तन काटने के साथ-साथ विशिष्ट अवस्था Clonic phase, अक्ष, हस्त, भ्रू-पाद नर्तन एवं मुख से फेनस्राव इत्यादि शैशवीय आक्षेपजन्य व्याधि जो सम्भवतः अपस्मार (Epilepsy) का स्वरूप है । तीव्र ज्वर का होना यह स्पष्ट करता है कि ज्वर के बाद के आक्षेप बाद में अपस्मार का कारण बनते हैं ।

शैशवीय आक्षेप के कारण

इस अवस्था मे शिशु के हाथ-पैरों में ऐंठन होती है, वह मूर्च्छित हो सकता है। इसका कारण तो अज्ञात है, परन्तु विभिन्न अवस्थाओं में आक्षेप मिलते हैं । इनका विवेचन अध्याय 4 में किया गया है ।

अपस्मार (बालापस्मार)
(Epilepsy)

Epilepsy अथवा बार-बार आक्षेप पैदा करने वाली व्याधि में निःसंज्ञता के साथ-साथ मांसपेशियों में क्रमशः सङ्कोच एवं विस्तार (Tonic or clonic muscular spasms) होता है । यह अज्ञात कारणजन्य अथवा लाक्षणिक दो प्रकार का होता है ।

अज्ञात कारणजन्य अपस्मार—इसे लक्षण के आधार पर निम्न कई वर्गों में बाँटा गया है—

(1) **बृहत रूप** (Grand mal)—इसे Tonic-Clonic Seizures भी कहते हैं । इसके आवेग निश्चित अन्तराल पर आते हैं । इसमें निम्नाङ्कित लक्षण मिलते हैं—

(क) पूर्वरूप—कुछ बच्चे दौरा पड़ने से पूर्व किसी स्थान-विशेष की मांसपेशी में ऐंठन (Twitching or Spasm) बताते हैं । जो दौरा पड़ने का सङ्केत है । 50% रोगी दौरा पड़ने से कुछ घण्टे या 1-2 दिन पूर्व से चिड़चिड़ापन, शिरःशूल, मलत्याग में गड़बड़ी एवं मानसिक व शारीरिक सुस्ती का अनुभव करते हैं ।

(ख) सूचना (Aura)—व्यापक आक्षेप प्रारम्भ होने से अल्पकाल पूर्व ही कुछ विशिष्ट सङ्केत (Aura) मिलना प्रारम्भ हो जाता है । यथा—नेत्र के सामने बिजली कौंधना, कान में घण्टी बजने की आवाज, मांसपेशी खिंचाव (Twitching), दौड़ना, गहरी चिन्ता करना, मतिभ्रम, उदरशूल या हृल्लास आदि ।

(ग) मूर्च्छा—मूर्च्छा आना अपस्मार (अज्ञात कारणजन्य) का विशिष्ट लक्षण है । Aura के बाद इतनी शीघ्रता से मूर्च्छा आती है कि रोगी अपने को सुरक्षित भी नहीं कर पाता है ।

(घ) आक्षेप—प्रायः मूर्च्छा के साथ-साथ आक्षेप भी विशेष प्रकार से बच्चे के चिल्लाने (Epileptic cry) के साथ प्रारम्भ हो जाता है । Grand mal के रोगी शिशु में प्रथम लगभग 40 सेकेण्ड तक शरीर कड़ा हो जाता है (Tonic phase), इसके बाद हाथ-पैर मुड़ने व फैलने लगता है । यह अवस्था 3 से 5 मिनट तक रहती है । इस अवस्था में रोगी अपनी जिह्वा काट लेता है । उसका मल-मूत्र स्वतः निकल आता है ।

(ङ) निद्रावस्था (Drowsiness)—उपरोक्त अवस्था से रोगी क्रमशः गहरी निद्रा में चला जाता है । कभी-कभी तीव्र ज्वर 104^0 से 105^0 फा. तक हो जाता है । शिशु लगभग 30 मिनट तक गहरी निद्रा में सोकर उठ जाता है तथा थका रहता है ।

(2) **लघु रूप** (Petit mal)—इस अवस्था में शिशु अल्पकाल के लिए (लगभग 30 से 60 सेकेण्ड) मूर्च्छित हो जाता है, साथ में कोई आक्षेप नहीं होता । इसमें कभी-कभी सूचना (Aura) भी मिलती है । यह सूचना नेत्र का ऊपर को घूम जाना, नेत्रपलकों का नचाना, कुछ कहने पर नहीं सुनना एवं सामने देखने लगना आदि हैं । अधिक तीव्र स्वरूप के रोग में रोगी जो कुछ हाथ में लिये रहता है उसे गिरा देता है, मूत्र त्याग कर देता है । यह व्याधि प्रायः 3 वर्ष की वय के पूर्व तथा यौवनावस्था (Puberty age) के बाद नहीं होती । इस प्रकार का दौरा दिन में कई बार अथवा सप्ताह में 1 या 2 बार पड़ सकता है ।

Scanned with CamScanner

(3) स्थानीय स्वरूप (Jacksonian or focal eplilepsy)—आक्षेप सदैव शरीर के एक स्थान से प्रारम्भ होते है तथा बराबर एक ही दिशा में बढ़ता है। मस्तिष्क के जिस भाग में उत्तेजना उत्पन्न होती है उसके अनुरूप ही आक्षेप होता है। इस स्वरूप में कोई Organic lesion नहीं होता। मांसपेशियाँ अधिक प्रभावित होती है। हाथ-मुख-सिर-जिह्वा प्राय: Voluntary गति करते है। पैर या वक्ष कम प्रभावित होते है।

(4) मानसिक स्वरूप (Psychomotor)—इस स्वरूप का निदान जितना कठिन है उतना ही कठिन इसके आवेगों को रोकना भी है। सूचना के रूप में (Aura) हल्का चिल्लाना या सहायतार्थ दौड़ना आदि हो सकता है। आक्षेप के बाद क्रमश: शरीर के अङ्ग-विशेष की जो भी अवस्था हो, उसमें परिवर्तन आने लगता है; यथा बच्चा एक हाथ फैलाता है तथा एक दिशा में आधा मोड़ लेता है, धीरे-धीरे फिर हाथ नीचे आता है। इसके बाद 1 से 5 मिनट की मूर्च्छा आ जाती है। फिर रोगी सामान्य हो जाता है।

इनके अतिरिक्त भी कुछ अवस्थाएँ हैं—

(5) एकाइनेटिक (Akinetic)—एकाएक हाथ-पैर शिथिल होना, रोगी का गिर पड़ना आदि लक्षण हैं।

(6) मायोक्लोनिया (Myoclonia)—अनैच्छिक शाखाओं तथा कुछ मांस-पेशियों का तेजी से सिकुड़ना इसके लक्षण हैं। मूर्च्छा आवश्यक नहीं है। एकाएक चिल्लाने के साथ रोगी हाथ फैलाकर पेट पर पैर मोड़ लेता है तथा सिर आगे झुक जाता है।

(7) दारुण स्वरूप (Status epilepticus)—यह अपस्मार का बृहत् स्वरूप है। इसमें Grand mal के आवेग लगातार आने लगते हैं। इस अवस्था में आवेग लगातार 30 मिनट तक आते हैं अथवा क्रम से आते हैं। दो आवेगों के मध्य रोगी मूर्च्छित ही रहता है। ऐसा प्राय: आक्षेपशामक औषधि का एकाएक बन्द कर देने पर या बार-बार मस्तिष्क में संक्रमण से या आकस्मिक होता है। आवेगों के मध्य रोगी की मूर्च्छा लगातार बनी रहती है।

निदान में E.E.G., Roentgenography एवं CT Scan सहायक हैं। कभी-कभी C.S.F. परीक्षण की भी आवश्यकता पड़ती है।

सापेक्ष निदान में योषापस्मार (Hysterical fit) से निदान करना पड़ता है।

अपस्मार (Epilepsy)	योषापस्मार (Hysteria)
1. आवेग प्राय: निश्चित अन्तराल पर आते हैं।	मानसिक उद्वेग पर आवेग निर्भर होते हैं।
2. अनैच्छिक मल-मूत्र त्याग हो जाता है।	नहीं होता है।
3. जिह्वादंश तथा गिरने पर चोट लग सकती है।	आघात नहीं लगता है।

4. Tonic तथा Clonic आक्षेप आते हैं।	आक्षेप में Spasm नहीं होता है।
5. Extensor तथा Planter reflex आवेग के बाद उपस्थित रहता है।	नहीं रहता है।
6. Corneal Reflex अनुपस्थित होता है।	उपस्थित होता है।
7. आवेग का समय कम होता है।	आवेग का समय चिकित्सक या संरक्षक को प्रभावित करने के लिए लम्बा होता है।
8. रोगी धीरे-धीरे ठीक होता है।	एकाएक ठीक हो जाता है।

चिकित्सा—दारुण अवस्था (Status epilepticus) में इंजेक्शन Diagepam 0.3-0.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार से धीमी गति से मांसगत/शिरागत देते हैं। अथवा इंजेक्शन Phenobarbitone 15-20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार प्रारम्भ में शिरागत देने के बाद, 3-8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार Distilled water में मिलाकर धीमी गति से 12-12 घण्टे पर देते हैं। यदि इससे भी आवेग शान्त न हो तो इंजेक्शन Phenytoin 15-20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार, Normal Saline में मिलाकर प्रारम्भ में धीमी गति से शिरागत देते हैं। इसके बाद 5-8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार शिरागत या मुख द्वारा देते हैं।

रोगी की आवस्थानुसार ओषजन एवं सिरागत ग्लूकोज भी देना चाहिए।

उपरोक्त अवस्था शान्त हो जाने पर निम्नलिखित उपचार करना चाहिए, जिससे पुन: आवेगों का आगमन न हो।

Phenobarbital 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन 2 या 3 मात्रा में दें। यदि इसके बाद भी आवेग उपस्थित हो जाय, तो मात्रा 5 मि.ग्रा. तक बढ़ानी चाहिए। यदि इससे भी प्रभाव न पड़े, तो Dilantin (Phenytain) 2 से 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार/दिन 2 भाग में बाँट कर Phenobarbitate के साथ देना चाहिए। इस पर भी लाभ न होने पर Dilantin की मात्रा 7 से 8 मि.ग्रा. तक बढ़ा सकते हैं। परन्तु कुल मात्रा 300 मि.ग्रा./दिन से अधिक न हो। कुछ चिकित्सक Dilantin पहले देते हैं, लाभ न करने पर Phenobarbitate का प्रयोग करते हैं।

लघुरूप (Petitmal) में Phenobar 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन की मात्रा में देना चाहिए। लाभ न होने पर Zarontin 20 से 35 मि.ग्रा. की 1 मात्रा प्रति कि.ग्रा. 1 दिन दी जानी चाहिए। इसकी मात्रा को 500 मि.ग्रा. तक ही बढ़ाया जा सकता है। इसे अकेले या Phenobar के साथ भी प्रयोग कर सकते हैं।

अन्य औषधियाँ

Tridione (Trimethadione) प्रारम्भ में 25 मि.ग्रा. 1/कि.ग्रा./दिन में 2 से 4 मात्रा में बाँट कर देते हैं। बाद में मात्रा 80 मि.ग्रा. तक बढ़ा सकते हैं। Para-

Scanned with CamScanner

dione कम विषैला परन्तु कम प्रभावी औषधि है। मात्रा Tridione के समान है। Zarantin (Ethosuximide) 20 से 40 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन की मात्रा में देते हैं। इनके अतिरिक्त Mysoline, Diagepam तथा Carbamazepine आदि भी प्रयोग किये जाते हैं।

आयुर्वेदोक्त चिकित्सा

अपस्मारचिकित्सा (अ. 19) एवं स्कन्दापस्मार की शास्त्रीय चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। वेग से समय पिप्पली, लवङ्ग, हिङ्गु, काकोली या काकनासा इनमें से किसी एक का धूम्र देना चाहिए।

कुष्ठ चूर्ण का प्रधमन नस्य देना चाहिए।
सर्षप तैल को नेत्रों पर लगाकर संज्ञा प्राप्त कराना चाहिए।

अपस्मार में खरमूत्र भी लाभकर है। दूधिया वच का प्रयोग तथा दूध, चावल व मिश्री का पथ्य भी लाभदायक है। रससिन्दूर या कज्जली के पञ्चगव्य से मात्रानुसार प्रयोग करना चाहिए।

नैगमेष ग्रह

पर्याय—मेषग्रह, नैगमेषग्रह।

'यः फेनं वमति विनम्यते च मध्ये
सोद्वेगं विलपति चोर्ध्वमीक्षमाणः।
ज्वर्येत प्रततमथो वसासगन्धि-
र्निःसञ्ज्ञो भवति हि नैगमेषजुष्टः' ॥ (सु.उ. 27:16)

'आध्मानं पाणिपादस्य स्पन्दनं फेननिर्वमः।
तृण्मुष्टिबन्धातीसारस्वरदैन्यविवर्णताः।
कूजनं स्तननं छर्दिः कासहिध्माप्रजागरा ॥
ओष्ठदंशाङ्गसङ्कोचस्तम्भबस्ताभगन्धताः ॥
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः।
मूर्च्छैकनेत्रशोफश्च नैगमेषग्रहाकृतिः' ॥ (अ.ह.उ. 3:12-14)

छर्दिः स्यन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान् नैगमेषग्रहं वदेत्' ॥ (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 438)

जो बालक मुख से झाग गिराता हो, शरीर के मध्य भाग में मुड़ा हुआ-सा प्रतीत होता है तथा ऊपर को देखता हुआ बेचैन होकर रुदन करता है एवं सदैव ज्वराक्रान्त रहता है, शरीर से सदैव वसा-सी गन्ध आती है, कभी-कभी बेहोश भी हो जाता है—ऐसे लक्षण सुश्रुत ने नैगमेष के कहे हैं।

वाग्भट ने आध्मान, हाथ-पैर का चलाना, झाग का वमन, प्यास, मुट्ठी बाँधना, अतिसार, स्वर की दीनता, विवर्णता, कराहना, चीत्कार करना, वमन, कास, हिक्का,

अनिद्रा, ओष्ठ काटना, अङ्गसङ्कोच, जड़ता, बकरे के समान गन्ध आना, ऊपर देखकर हँसना, बीच में मुड़ना-झुकना, ज्वर, मूर्च्छा, एकनेत्रशोथ आदि लक्षण कहे हैं।

योगरत्नाकरकार तथा माधव ने संक्षेप में वमन, लालास्राव, स्वेद का होना, कण्ठ तथा मुख का सूखना, मूर्च्छा, शरीर से दुर्गन्ध आना, ऊर्ध्वदृष्टि तथा दाँतों का चबाना आदि लक्षण कहे हैं।

अरिष्ट लक्षण—कश्यप ने कहा है कि 'यह सभी पूर्वोक्त लक्षण नैगमेष ग्रह के लिए भी हैं।

'सर्वाण्येतानि रूपाणि नैगमेष्यां प्रपश्यति'।
(का.इन्द्रिय; औषधभे.पृ. 90)

अर्थात् पूर्वोक्त में कहे पूतना के अरिष्ट लक्षण या पूर्वोक्त में कहे गये सभी ग्रहों के अरिष्ट लक्षण हैं, क्योंकि नैगमेष के अरिष्ट लक्षणों का उल्लेख सबसे अन्त में है।

कुछ विद्वान् इसे जलाल्पता के कारण Collapse मानते हैं। यह पूर्व में वर्णित है। इस बालग्रह के महत्त्वपूर्ण लक्षण ज्वर, कास, अतिसार, बार-बार वमन, शरीर का मध्य से मुड़ना है। अन्त में मूर्च्छा जैसा लक्षण नैगमेष ग्रह को Meningitis के समकक्ष प्रस्तुत करता है।

मस्तिष्कावरणशोथ
(Meningitis)

इस व्याधि में मस्तिष्क एवं सुषुम्ना नाड़ी (Meninges) में संक्रमण के कारण शोथ हो जाता है। इसे मुख रूप से 2 भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(1) तीव्र स्वरूप (Acute)—बैक्टीरियाजन्य, वाइरसजन्य

(2) जीर्ण स्वरूप (Subacute or chronic)—राजयक्ष्मा, फंगस, परोपजीवी, कर्कटार्बुद (Neoplastic) या रसायनजन्य (Chemical)

उपर्युक्त दोनों वर्गों में बैक्टीरिया, वाइरस तथा राजयक्ष्मा मुख्य कारक हैं।

बैक्टीरियाजन्य मस्तिष्कावरणशोथ

बाल्यकाल की दारुण व्याधियों में इसकी गणना की जाती है। नवजात शिशु में ई. कोलाई का संक्रमण, क्लेबसेला न्यूमोनाई, लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेनस, इण्टेरोकॉकस तथा सालमोनेला, 4 से 12 सप्ताह के शिशु में एच. इन्फलूएञ्जा, एस. न्यूमोनिया, स्ट्रेप्टोकॉकस (बी), लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेन्स तथा 12 सप्ताह के ऊपर के शिशु में एच. इन्फ्लूएञ्जा, एस. न्यूमोनिया तथा एन. मेनिञ्जाइटीडिस मुख्य कारक हैं। हमारे देश में नीमोकॉकस एवं इन्फ्लूएंजा संक्रमण प्रायः बच्चों में इस व्याधि का कारण बनता है। शरीर के किसी भाग में जब जीवाणुओं का संक्रमण होता है, तब वहाँ से बैक्टीरिया आदि का संक्रमण मस्तिष्क में पहुँच जाता है।

Scanned with CamScanner

लक्षण—व्याधि का एकाएक प्रारम्भ तीव्र ज्वर, वमन, क्लान्ति, चिड़चिड़ापन, अतिरोदन, शिरःशूल एवं आक्षेप से होता है। क्षीरप नवजात शिशुओं में व्याधि क्रमशः भी मिल सकती है। इनमें प्रारम्भ में दूध न पीना, ज्वर एवं उत्तेजना या चिड़चिड़ापन से होता है। कुछ में आक्षप भी मिलता है। इन बच्चों में अग्र-ब्रह्मरन्ध्र फूला मिलता है। बड़े बालकों में ग्रीवास्तम्भ मिलता है।

रोगी-परीक्षण में ग्रीवास्तम्भ (Neck stiffness), कर्निग तथा ब्रूडजिन्सकी साइन (Kerning and Brudzinski's signs) धनात्मक मिलता है। क्रेनियल नाड़ी की विकृति में पक्षाघात एवं नेत्रविकार (Papilledema) मिलता है। जिन रोगियों को शीघ्र चिकित्सा सहायता नहीं मिलती उनमें पक्षाघात (Hemiplegia) मिल सकता है। मेनिगोकोकल मेनिनजाइटिस में शरीर पर कृष्ण वर्ण के दाने निकलते हैं।

कुछ रोगी शिशु शीघ्र मूर्च्छित हो जाते हैं। साथ में विषमयता (Toxemia), शरीर में नीलिमा एवं शरीर पर लाल वर्ण के धब्बे मिलते हैं। यह अवस्था Waterhouse-Friderichsen syndrome कहलाती है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—इसके लिए लम्बर पंक्चर (Lumber puncture) करके मस्तिष्कसुषुम्ना द्रव (C.S.F.) निकाल कर परीक्षण करते हैं।

निकालते समय दबाव बढ़ा हुआ मिलता एवं वर्ण गन्दला अपारदर्शी होता है। कोशिका परीक्षण में संख्या में वृद्धि तथा विशेष रूप में Polymorphs मिलते हैं। C.S.F. में प्रोभूजन की मात्रा बढ़ी मिलती है, परन्तु C.S.F. शर्करा की मात्रा रक्त शर्करा के मात्रा की 50% या उससे भी कम मिलती हैं। C.S.F. का कल्चर बैक्टीरिया एवं उपयुक्त प्रभावी एण्टीबायटिक के पता लगाने हेतु अवश्य करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त N.B.T. (Nitroblue tetrajolium) परीक्षण राजयक्ष्मा जन्य से विभेद हेतु किया जाता है। रक्त-परीक्षण में श्वेतरक्तकण विशेष रूप से Polymorph की संख्या में वृद्धि मिलती है।

चिकित्सा

(1) उपयुक्त एण्टीबायटिक—Ampicillin 200 से 300 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन मांसगत या सूचीवेध द्वारा देते हैं, अल्पमात्रा 7 दिन तक के शिशु के लिए है। इसके साथ Gentamicin 6 मि.ग्रा. या Kanamycin 10 से 15 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन अवश्य देना चाहिए। अथवा इसके स्थान पर Cephatoxime या Cephtriaxone का प्रयोग करें। यदि इनकी सहिष्णुता न हो तो अन्य औषधि यथा—Chloromphenical 50 से 100 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन की मात्रा में देना चाहिए। अथवा इसके स्थान पर Cephotoxime या Cephtriaxone का प्रयोग करें। कुछ चिकित्सक Chloromphenical एवं Ampicillin का योग श्रेष्ठ मानते हैं। नवजात शिशु में एवं रोग के उग्रस्वरूप में Introthecal औषधि दी जानी चाहिए।

(2) मस्तिष्क में C.S.F. का दबाव बढ़ने पर सिरागत Mannital का प्रयोग करना लाभप्रद होता है। इंजेक्शन Manitol 20% 5 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में शिरागत धीरे-धीरे प्रारम्भ में देते हैं। इसका समय 30 से 60 मिनट का होता है। इसके बाद 2 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में शिरागत 6 से 8 घण्टे में देते हैं।

(3) कार्टीसोन—अति गम्भीर अवस्था में शाक, अत्यधिक गाढ़ा स्राव या बढ़े C.S.F. दबाव में इसका विशेष महत्त्व है। इंजेक्शन Dexamethasone 0.15 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में शिरागत 6 से 8 घंण्टे में प्रति मात्रा देते हैं।

(4) आक्षेपशामक—आक्षेप की अवस्था में Phenobarbitone, Diazepam या अन्य आक्षेपशामक औषधि देना चाहिए। आक्षेप की अवस्था में इंजेक्शन Diagepam 0.3-0.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार से सिरागत या मांसगत धीरे-धीरे अथवा इंजेक्शन Phenobarbitone प्रारम्भ में 15-20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार धीरे-धीरे शिरागत तनु करके देते हैं। तत्पश्चात 3 से 8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार 12-12 घण्टे पर धीरे-धीरे शिरागत अथवा इंजेक्शन Phenetion 15-20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीरभार Narmal saline से तनु करके प्रारम्भ में धीरे-धीरे उसके बाद 5-8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में 12-12 घण्टे पर धीरे-धीरे शिरागत देते हैं। साथ-साथ Cardio-respiratory Monitering भी करते हैं।

(5) अन्य लाक्षणिक चिकित्सा—आवश्यक पोषण एवं जल की मात्रा का ध्यान देना चाहिए। शरीर की स्वच्छता पर ध्यान दें। मरीज को करवट अवश्य बदलें। अन्य लाक्षणिक चिकित्सा की जानी चाहिए।

राजयक्ष्माजन्य मस्तिष्कावरण शोथ
(Tubercular Meningitis - T.B.M.)

बाल्यकालीन राजयक्ष्मा का यह गम्भीरतम स्वरूप है। 4-5 वर्ष से कम वय में यह सर्वाधिक मिलता है। इसमें संक्रमण सर्वप्रथम शरीर के अन्य भागों में होता है। अर्थात् प्रायः फुफ्फुस में प्रथम संक्रमण होता है। शरीर के अन्य भाग से रक्त के द्वारा ही जीवाणु (M. tuberculosis) मस्तिष्क में पहुँचते हैं। प्राथमिक संक्रमण प्रायः लक्षण हीन होते हैं तथा उनका निदान भी प्रायः नहीं हो पाता।

लक्षण—टी.बी.एम. व्याधि धीरे-धीरे होती है। परन्तु क्षीरप शिशुओं में तीव्र स्वरूप (Acute onset) प्रायः मिलता है। व्याधि का पूरा समय 3 भाग में बाँटा जा सकता है।

(1) प्रथम अवस्था—साधारण ज्वर, आक्षेप, अरुचि, वमन, कब्ज तथा शिरःशूल सामान्य लक्षण हैं। बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। वातावरण में रुचि नहीं लेता। वातावरण में अरुचि, शिरःशूल एवं वमन प्रधान लक्षण हैं।

(2) द्वितीय अवस्था—इस काल में विशिष्ट लक्षण पैदा होते हैं। मस्तिष्क के अन्दर दबाव बढ़ जाता है। मेनिनजेज में क्षोभ के लक्षण आ जाते हैं। शिशु तन्द्रालु हो जाता है तथा मूर्च्छित भी हो जाता है। शिरःशूल, वमन तथा ज्वर आदि लक्षण तीव्र

Scanned with CamScanner

हो जाते हैं। ग्रीवास्तम्भ, कर्निंग साइन धनात्मक होता है। पैर के तलवे में रगड़ने (Planter reflexes) से अँगूठा ऊपर (Extension) उठता है। उदर-प्रतिक्रिया (Reflexes) गायब हो जाती है। इसमें पेशीशैथिल्य, अग्र-ब्रह्मरन्ध्र का फूलना तथा पीठ का मध्य से मुड़ना मिल सकता है। तन्त्रिका (Cranial nerve) संख्या 3, 4, 6 एवं 7 प्रभावित होती है। नेत्रपक्षाघात, नेत्रगोलक में कम्पन (Nystagmus) तथा Papilledema के कारण अन्धता होती है। आँखों की पुतली सिकुड़ जाती है।

(3) तृतीय अवस्था—यह मूर्च्छा एवं पक्षाघात की अवस्था है। नेत्रपुतली का विस्तार हो जाता है तथा शिशु एक दिशा में देखता है। शाखाओं में ऐंठन, अनियमित श्वसन, अनियमित नाडी, बढ़ता हुआ ज्वर एवं व्यापक पक्षाघात होता है। यदि चिकित्सा में देरी होती है तो जलशीर्ष (Hydrocephalus) हो जाता है।

ऊपर वर्णित तीनों अवस्थाएँ प्राय: 7 दिन की होती हैं तथा एक-दूसरे के काल में प्रविष्ट हो सकती है। शीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ होने पर कोई अवस्था लम्बी या छोटी भी हो सकती है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—रोग के शीघ्र निदान से रोगी के ठीक होने, सुरक्षा एवं उप-द्रव से बचाव में सहायता मिलती है। इसमें प्रयोगशाला का निम्न परीक्षण भी सहायक है।

(1) Mantoux test/BCG test.

(2) C.S.F. परीक्षण—दबाव में वृद्धि, वर्ण स्वच्छ या कभी-कभी हल्का गँदला, इसे 12 घण्टे तक परीक्षण-ट्यूब में रखने पर इसमें जाला (Cob-web) बनता है। कोशिकाओं की संख्या में 10 से 500/क्यू. मि. वृद्धि मिलती है। प्राय: Lymphocytes होते हैं। कुछ रोगियों में रोग के प्रारम्भकाल में Polymorph भी मिलते हैं, प्रोभूजन में वृद्धि 50mg से 300mg/dL से लेकर 1 से 3gm/dL तक, शर्करा (20-40mg/dL) एवं क्लोराइड में कमी मिलती है। एकदम निश्चित परीक्षण हेतु C.S.F. का कल्चर तथा/या मिनीपिग में C.S.F. का सूचीवेध देकर राजयक्ष्मा का प्रभाव देखते हैं।

(3) एक्स-रे वक्ष एवं कपाल का करते हैं।

(4) रक्त-परीक्षण—हीमोग्लोबिन कम होता है, TLC तथा Lymphocyte बढ़े होते हैं।

(5) बलगम या आमाशयिक स्राव का यक्ष्माजीवाणु हेतु परीक्षण।

(6) लसिकाग्रन्थि की Biopsy आदि।

चिकित्सा—राजयक्ष्मा का विस्तृत वर्णन एवं चिकित्सा पहले ही वर्णित किया जा चुका है। उसे आयुर्वेद या आधुनिक दोनों दृष्टि से ध्यान में रखना चाहिए।

(1) विशिष्ट औषधि—

Streptomycin—40 से 50 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन—मांसगत सूचीवेध द्वारा दिया जाना चाहिए।

Isoniazid—5-10 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन—मुख से देते हैं।

Rifampicin—10 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन मुख से देते हैं।

यह तीनों औषधियाँ एक साथ प्रयोग करते हैं। 1 से 3 माह में लक्षण सामान्य होने पर तथा C. S. F. परीक्षण सामान्य होने पर Streptomycin बन्द कर देते हैं। शेष औषधि 18 से 24 माह तक देते हैं। Rifampicin के स्थान पर Ethambutal 20 से 25 मि.ग्रा./दिन की मात्रा में दे सकते हैं। प्राय: अन्य औषधियाँ यथा PAS, Thiacetogene आदि रक्त से मस्तिष्क में नहीं पहुँच पाती हैं।

Streptomycin का Intrathecal प्रयोग बहुत अच्छा नहीं माना जाता है। 2 वर्ष से कम वय में 25 मि. ग्रा. तथा अधिक में 50 मि.ग्रा. औषधि देते हैं, ताकि Cell count 50/Cmm से कम आ जाय। प्रारम्भ में प्राय: 6 सूचीवेध प्रतिदिन, फिर एक दिन के अन्तर पर कम-से-कम 4 सूचीवेध देते हैं।

(2) कार्टीसोन—इसमें Prednisolone 1 से 2 मि.ग्रा/कि.ग्रा./दिन मात्रा में 1 से 3 माह तक देते हैं। बन्द करते समय धीरे-धीर बन्द करते हैं। इससे मस्तिष्कशोथ (Cerebral oedema) एवं दबाव कम होता है तथा C.S.F. का मार्गावरोध नहीं होता है।

(3) शोथनाशक चिकित्सा—Cerebral oedema के लिए निम्न औषधियाँ देते हैं—

Mannital 20%—5 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार से प्रारम्भ में शिरागत, बाद में 2 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार की मात्रा में 6 से 8 घण्टे पर 2 दिन तक देते हैं। या Glycerol 10%—1.5 से 2 ग्रा./कि.ग्रा. मुख से या सिरागत द्वारा देना चाहिए।

(4) अन्य सामान्य उपचार—जैसे बैक्टीरियाजन्य में कहे गये हैं, उनका प्रयोग करना चाहिए।

श्वग्रह

इस बालग्रह का वर्णन मात्र वाग्भट ने किया है—

'कम्पो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम्।
बहिरायामनं जिह्वादंशोऽन्त:कण्ठकूजनम्।
धावनं विट्सगन्धत्वं क्रोशनं च श्ववच्छुनि' ॥ (अ.हृ.उ. 3:15-16)

कम्पन, रोमाञ्चता, स्वेद, नेत्रों का बन्द होना, बहिरायाम, जिह्वा को काट लेना, गले के अन्दर शब्द होना, दौड़ना, मलवत् गन्ध एवं कुत्ते के समान चिल्लाना इस बालग्रह के लक्षण हैं।

उपरोक्त लक्षणों में मांसपेशियों में ऐंठन एवं कम्पन ही प्रमुख है। बहिरायमान (Opisthotonus) होना, कण्ठकूजन एवं कुत्ते के समान चिल्लाना विशिष्ट लक्षण हैं। दौड़ना एवं जिह्वादंश लक्षण भी विचारणीय है। वस्तुत: विभिन्न पेशियों में ऐंठन ही इन

Scanned with CamScanner

सभी लक्षणों का कारण है। यह ऐंठन Tetany या Tetanus में होती अवश्य है, पर कुत्ते के समान चिल्लाना, दौड़ना आदि लक्षण इसे Rabis के समकक्ष सिद्ध करते हैं।

कुछ विद्वानों ने इसे कुक्कुरकास या धनुस्तम्भ भी माना है। इनका वर्णन पीछे के अध्यायों में किया जा चुका है। यहँ पर Rabis का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है।

जलसन्त्रास
(Hydrophobia)

पर्याय—Rabis, जलसन्त्रास (Hydrophobia)।

यह एक तीव्र स्वरूप की विषाणुजन्य (Viral) व्याधि है, जो केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र को प्रभावित करती है तथा रोगी में इसका आगमन प्राय: कुत्ते या चौपाये (यथा—बिल्ली, सियार आदि) के काटने से लालास्राव द्वारा होता है। संक्षेप में इसके विशेष लक्षण इस प्रकार है—अत्यधिक उत्तेजना, भोजन या जल को देख कर गले की पेशियों में तीव्र शूलयुक्त सङ्कोच (Spasm) का होना तथा अन्त में पूर्ण पक्षाघात एवं कुछ ही दिनों में मृत्यु का होना।

निदान—Rhabdovirus वर्ग के Rabies इसके कारण हैं। यह वायरस Peripheral नाड़ियों से केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र को पहुँचते हैं। प्राय: यह विषाणु पागल कुत्ते (जानवर) के काटने से लालास्राव द्वारा पहुँचते हैं।

लक्षण—सामान्य रूप से संचयकाल 4 से 8 सप्ताह का होता है। परन्तु कम-से-कम 9 दिन का तथा अधिकतम 1 या 2 वर्ष का भी देखा गया है। रोग के लक्षण को 3 अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है।

(1) प्रथम अवस्था—काटे हुए स्थान पर जलन, लालिमा, पीड़ा, ठंडक की अनुभूति एवं चींटी रेंगने का अनुभव होता है। इसके साथ-साथ बेचैनी, अल्प उत्तेजना, नेत्र में कृष्णमण्डल-विस्फार, अत्यधिक लालास्राव, अनिद्रा, अवसाद आदि लक्षण भी होते हैं। यह अवस्था 2-3 दिन तक रहती है।

(2) द्वितीय अवस्था—उत्तेजना बढ़ जाती है, ग्रीवास्तम्भ हो जाता है। Delirium, मांसपेशियों में ऐंठन या मृदु आक्षेप आने लगते हैं। भोजन या द्रव लेने के या देखकर इच्छा करने पर भी गले की पेशियों में तीव्र पीडायुक्त संकोच होता है। इस सङ्कोच को हल्का शोर भी बढ़ा देता है। श्वसन में कठिनाई होती है। टोनिक आक्षेप एवं मृत्यु भी हो जाती है। तापक्रम 103 से 106^0 फा. तक चला जाता है। यह अवस्था भी 2-3 दिन की है।

(3) तृतीय अवस्था—इस अवस्था में नाड़ियों का अपजनन (Degeneration) होने लगता है। ऐंठन समाप्त होकर क्रमश: पूर्णपक्षाघात होता है। फिर मूर्च्छा तथा 1-2 दिन में मृत्यु हो जाती है।

साध्यासाध्यता—पागल कुत्ते के काटने पर प्रतिषेधात्मक चिकित्सा न करने पर व्याधि के हो जाने पर यह एकदम असाध्य है।

चिकित्सा—रोग की चिकित्सा से महत्त्वपूर्ण प्रतिषेधात्मक उपाय है। एतदर्थ आगे तालिकाबद्ध विवरण दिया जा रहा है।

प्रतिषेधात्मक चिकित्सा

विषाणु से सम्पर्क की तीव्रता	जानवर की अवस्था		चिकित्सा
	काटने के समय	10 दिन के मध्य	
1. कोई व्रण नहीं किसी अन्य (Indirect) तरह से सम्पर्क	पागल	—	कोई आवश्यक नहीं
2. चाटना (क) व्रणविहीन त्वचा	पागल	—	कोई आवश्यक नहीं
(ख) व्रणयुक्त त्वचा	1. स्वस्थ	स्वस्थ	कोई आवश्यक नहीं
अथवा— श्लैष्मिक कला से	2. स्वस्थ	पागलपन के लक्षण होने लगे	वैक्सीन दें।
अथवा— व्रणविहीन श्लैष्मिक कला से सम्पर्क	3. पागलपन के लक्षण लगे	स्वस्थ	वक्सीन देना प्रारम्भ करें। यदि 5वें दिन तक जानवर स्वस्थ हो तो बन्द कर दें।
	4. पागल या अज्ञात तथा मार दिया जाय।		
3. काटने से व्रण (क) एक या हल्का व्रण हो तो	1. स्वस्थ	स्वस्थ	कोई आवश्यक नहीं,
	2. स्वस्थ	पागलपन के लक्षण होने लगें।	वैक्सीन दें।
	3. पागलपन के लक्षण लगें।	स्वस्थ	वैक्सीन देना प्रारम्भ करें। यदि 5वें दिन तक जानवर स्वस्थ हो तो बन्द कर दें।
	4. पागल एवं मार दिया जाय।	या अज्ञात	वैक्सीन दें।
(ख) गम्भीर व्रण या संख्या में व्रण कई हों तो	1. स्वस्थ	स्वस्थ	Hyperimmune Serum तुरन्त दें, वैक्सीन की आवश्यकता नहीं।

Scanned with CamScanner

	2. स्वस्थ	पागलपन के लक्षण आ जायें ।	वैक्सीन दे ।
	3. पागलपन के लक्षण लगें ।	स्वस्थ	Hyperimmune Serum दे तथा उपरोक्त के समान वैक्सीन दें ।
	4. मार दिया गया हो ।	-	Hyperimmune Serum तथा वैक्सीन दें ।

कुत्ते या जानवर को कम-से-कम 5 दिन तथा अधिक-से-अधिक 15 दिन तक देखना चाहिए ।

(क) रैबीज वैक्सीन (Rabies Vaccine)—

इसके कई प्रकार हैं; यथा—

(1) सामान्य वैक्सीन—इसमें संक्रमित खरगोश का मस्तिष्क (Infected rabbit brain Sterlized in Phenol) होता है ।

(2) कुत्तों के लिए—Multiple possage chick embryo Vaccine (HEP Flury)—यह कुत्तों में प्रभावी है । मानव पर इसका अनियमित प्रभाव है ।

(3) मानव के लिए—Duck Embryo Vaccine—यह सामान्य रूप से लाभकारी है ।

मनुष्यों में प्रयोग के लिए 2 वैक्सीन उपलब्ध हैं—

1. Duck Embryo Vaccine (DEV)
2. Rabbit Nervous Tissue Vaccine (NTV)

प्रयोग—सामान्य व्रण में, एक हल्के व्रण में तथा ऐसे व्रण में जो ग्रीवा या सिर में न हो, उनके लिए वैक्सीन के 14 सूचीवेध उदर या जंघा पर पीछे या बाह्य पार्श्व में देते हैं । सूचीवेध का स्थान बदलते रहना चाहिए ।

तीव्र स्वरूप के व्रण में या जब कई व्रण हों या जब व्रण चेहरे पर, ग्रीवा पर या सिर पर हों तो वैक्सीन की 21 मात्राएँ देना चाहिए, तीव्र स्वरूप के कुछ व्रणों में प्रथम 14 मात्रायें प्रथम 7 दिन में दो बार में देते हैं । फिर शेष 7 मात्राएँ 7 दिन में देते है।

इस प्रारम्भिक प्रतिषेधात्मक चिकित्सा के समाप्त होने के बाद 10वें तथा 20वें दिन वैक्सीन की एक मात्रा (Booster Dose) भी देते हैं ।

(ख) हाइपरइम्यून एण्टीरैबीज सीरम (Hyperimmune antirabies Serum)—

व्रण होने के पश्चात् वैक्सीन के साथ इस सीरम को दे देना श्रेष्ठ प्रतिषेधात्मक उपाय है । इस सीरम को घोड़ों में तैयार कर चूहों पर परीक्षण किया जाता है । यदि व्रण होने के 24 घण्टे के अन्दर प्रयोग कर लिया जाय तो अत्यधिक प्रभावी होता है । प्रयोग से पूर्व सहिष्णुता (Senstivity) अवश्य देखनी चाहिए । इस वैक्सीन की एक वाइल अर्थात् 1000 यूनिट मांसगत सूचीवेध से प्रति 25 कि. ग्रा. शरीर-भार पर देते है । यदि व्रण हुए 72 घण्टे व्यतीत हो गये हों तो मात्रा द्विगुण कर देते है ।

यह सीरम घोड़े में तैयार होता है अत: सहिष्णुता की एक समस्या होती है । अत: इसके स्थान पर नयी बनी सीरम Rabies Immunoglobulin Human (RIGH) का प्रयोग करते हैं । पर यह सामान्य रूप से उपलब्ध नहीं है ।

(ग) रोगी को A.T.S. अवश्य देना चाहिए ।

(घ) व्रणोपचार—व्रण को साबुन आदि से प्रक्षालित कर देना चाहिए । प्राचीन समय में व्रण का रासायनिक दग्ध कर्म Nitric acid से कर देते थे परन्तु यह अति कष्टप्रद उपाय है । व्रणप्रक्षालन के लिए 1% Zephiran chloride का घोल (Benzalkoium chloride) प्रयोग करते हैं ।

विशेष—यदि उपरोक्त प्रतिषेधात्मक उपाय करने के बाद 3 माह के अन्दर पुन: पागल कुत्ता काट ले, तो वैक्सीन की कोई आवश्यकता नहीं है । पर अगले 3 माह में पुन: 2 मात्राएँ (Booster) देनी चाहिए । ये मात्राएँ 7 दिन में दे देते हैं । परन्तु 6 माह व्यतीत होने की अवस्था में सीरम के साथ 7 मात्राएँ वैक्सीन की देते है ।

वैक्सीन का दुष्प्रभाव—कभी-कभी चकत्ते, रक्तवर्ण के दाने, शोथ एवं कभी-कभी Syncope होता है । Polyneuritis, नीचे के अङ्ग के ऊपर को बढ़ता पक्षाघात मस्तिष्कशोथ (Meningoencephalitis) हो जाता है ।

इनके उपचारार्थ लाक्षणिक चिकित्सा करते हैं । वैक्सीन बन्द कर देते है । Anti histaminics तथा कार्टीजोन देते हैं ।

जल-सन्त्रास की चिकित्सा—वस्तुत: इसका कोई उपचार नहीं है अत: लाक्षणिक उपाय करते हैं । अधिक मात्रा में Sedative देते है । रोगी का कक्ष काला एवं शान्त हो । आवश्यकता पड़ने पर संज्ञानाश करते हैं । रोगी के परिचारक को पूर्ण सावधान रहना चाहिए ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—व्रणस्थल को गर्म घृत में जला दें तथा आक का दूध व्रण पर लगा दें ।

चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद-ग्रन्थों में कई प्रकार के योग वर्णित हैं । परन्तु इनका कितना लाभ है यह कह पाना कठिन है । ज्ञानार्थ कुछ योग दिये जा रहे है—

Scanned with CamScanner

(1) शिरीषबीज को थूहर-दुग्ध के साथ पीस कर व्रणस्थान पर लेप करें। इससे कुत्ते का विष नष्ट होता है।[1]

(2) चावलों को पीस कर उसके मध्य मेषलोम रख कर निगल जाने से कुत्ते का विष नष्ट होता है।[2]

(3) धतूरे के पत्र एवं गूलर फल को चावल की धोवन के साथ पीसकर पीने से कुत्ते का विष नष्ट होता है।[3]

(4) धत्तूरे के पत्रस्वरस घृत, गुड़, दुग्ध—इन्हें 1 पल की मात्रा में मिश्रित कर पिलाने से कुत्ते का विष नष्ट होता है।[4]

(5) अपराजितामूल सर्वविषनाशक है। (भै.र.वि.चि. 72:43-45)

(6) भीमरुद्रो रस (भै.र.वि.चि. 72:53-56) विषवज्रपातो रस (भै.र.वि.चि. 72:57-58) आदि का प्रयोग करें।

पितृग्रह

इस बालग्रह का वर्णन भी मात्र वाग्भट ने किया है।

'रोमहर्षो मुहुश्वासः सहसा रोदनं ज्वरः।
कासातिसारवमथुजृम्भातृट्शवगन्धताः।
अङ्गेष्वाक्षेपविक्षेपशोपस्तम्भविवर्णताः।
मुष्टिबन्धः श्रुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे'। (अ.ह.उ. 3:16-17)

रोमांच, बार-बार डरना, सहसा रोना, ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जृम्भा, प्यास, मुर्दे की गन्ध, अङ्गसंकोच एवं विस्फार, शोफ, जड़ता, विवर्णता, मुट्ठी बाँधना एवं नेत्रों से स्राव पितृग्रह के लक्षण हैं।

कुछ विद्वानों ने कास, ज्वर, वमन एवं अतिसार के साथ जलाल्पता के लक्षण तथा अङ्ग संकोच एवं विस्तार आदि लक्षण देखकर इसे अतिसार एवं जलाल्पता (Parenteral diarrhoea with hypertonic dehydration) माना है। इसका विवेचन आगे तालिका में दिया गया है। परन्तु ज्वर एवं कास के साथ विवर्णता, मुट्ठी बाँधना आदि लक्षण न्युमोनिया में मिलते है। तीव्र स्वरूप का वमन, अतिसार एवं अङ्ग संकोच तथा विस्फार भी होता है। अतः इसे न्युमोनिया मानना अधिक उपयुक्त है। न्युमोनिया का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

आचार्य कश्यप ने पितृग्रह का वर्णन तो नहीं किया है परन्तु एक नाम 'स्कन्द-पिता' अवश्य दिया है। ग्रन्थ के खण्डित होने से लक्षण तो उपलब्ध नहीं हैं परन्तु इसके अरिष्ट लक्षण निम्नवत् वर्णित हैं—

1. शिरीषस्य तु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण घर्षितम्। तल्लेपेन महादेवि ! नश्येत् कुक्कुरजं विषम्॥
2. पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेषलोमकम्। कुक्कुरस्य विषं हन्ति नात्र कार्या विचारणा॥
3-4. कनकोदुम्बरफलमिव तण्डुलजलपिष्टं पीतमपहरति।
कनकदलद्रवघृतगुडदुग्धपलैकं शुनो गरलम्॥ (भै.र.वि.चि. 72:35-37)

'रक्तपद्मवनं प्राप्य धात्र्यात्मानं यदार्चति।
बालं वा पद्ममालाभिस्तदा स्कन्दपितुर्भयम्'॥ (का.इ.औ.भै.पृ. 15)

यदि धात्री लाल कमल के वन में पहुँचकर पद्ममालाओं के द्वारा अपनी या बालक की अर्चना करे तो स्कन्दपिता का भय समझना चाहिए।

पूतनाग्रह

आचार्यों ने पूतना बालग्रह से मिलते-जुलते नाम वाले दो और बालग्रहों शीत-पूतना एवं अन्धपूतना का वर्णन भी किया है; जिनमें नामों की ही नहीं वरन् लक्षणों की भी अत्यधिक समानता है। सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य कश्यप ने 10 बालग्रहों का उल्लेख कर पूतना बालग्रह को तीन प्रकार का माना है।

'स्रस्ताङ्गः स्वपिति सुखं दिवा न रात्रौ
विड्भिन्नं सृजति च काकतुल्यगन्धिः।
छर्द्याऽऽर्तो हृषिततनूरुहः कुमार-
स्तृष्णालुर्भवति च पूतनागृहीतः'॥ (सु.उ. 27:12)

'पूतनायां वमिः कम्पस्तन्द्रा रात्रौ प्रजागरः॥
हिध्माऽऽध्मानं शकृद्भेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः।
स्रस्तहृष्टाङ्गरोमत्वं काकवत्पूतिगन्धिता'॥
(अ.ह.उ. 3:20-21, अ.सं.उ. 3:16)

'अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम्।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः'॥
(मा.नि.बा.रो.चि.25, यो.र.बा.रोचि. 438 पृ.)

पूतना ग्रह से पीड़ित बालक के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढीले पड़ जाते हैं तथा वह दिन में सुखपूर्वक सोता है किन्तु रात्रि में नहीं सोता। पतला मल त्याग (अतिसार) होता है। जिससे उसके शरीर से कौवे के समान गन्ध आती है। शरीर के बाल हर्षित होना तथा बार-बार पानी पीना लक्षण सुश्रुत ने कहे हैं।

वाग्भट ने वमन, कम्प, तन्द्रा, रात्रिजागरण, हिक्का, आध्मान, अतिसार, तृषा, मूत्र का अवरोध, अङ्गों में शिथिलता, रोमांच एवं कौवे के समान लक्षण कहे हैं।

माधवनिदान एवं योगरत्नाकरकार में संक्षेप में अतिसार, ज्वर, प्यास, तिरछा देखना, अधिक रोना, निद्रानाश एवं उद्विग्नता लक्षण कहे हैं।

काश्यपोक्त अरिष्ट-लक्षण

'नक्षत्रग्रहचन्द्रार्कतारकाऽक्षिकनीनिकाः।
दृष्ट्वा प्रपतिताः स्वप्ने पूतनाभ्यो भयं भवेत्'॥ (का.इ.औषधभे. 20)

Scanned with CamScanner

यदि स्वप्न में नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, तारे तथा नेत्र की पुतलियाँ नीचे गिरी हुई दिखाई दें तो उसे पूतनाग्रह का भय समझना चाहिए।

काश्यपोक्त पूतनाग्रह के आक्रमण का कारण—

'यस्मिन् देशे तु भगवान् पूतः स्कन्दो महाबलः।
सञ्जज्ञे पूतना तस्मात् सर्वलोकभयङ्करी ॥
तामब्रवीद् गुहः पुण्यां पूतनामग्रतः स्थिताम्।
या त्वं भिन्नमर्यादा(न्) चेत्युक्ताऽऽह तथाऽस्त्विति ॥
मलजा पूतना कौञ्ची (कौञ्ची) वैश्वदेवी च पावनी।
पञ्चनामेति चाप्युक्ता शृणु तस्याश्चिकित्सितम्' ॥ (का.चि.बा.पृ. 101)

जिस देश में महाबली भगवान् स्कन्द पवित्र हुए वह देश सब लोकों में भयङ्कर पूतना नामक ग्रह के रूप में प्रसिद्ध हुआ। तब गुह ने अपने सामने स्थित उस पुण्यकारक पूतना से कहा कि तू भिन्न मर्यादा वाले लोगों के पास जाकर उनमें प्रवेश कर। उसने उत्तर दिया—ऐसा ही होगा। उसके मलजा, पूतना, क्रौञ्ची, वैश्वदेवी एवं पावनी ये पाँच नाम हैं। उपर्युक्त विवरण में वमन एवं अतिसार मुख्य लक्षण हैं जिससे मांसपेशी-शैथिल्य होता है। इस शैथिल्य से उदर की पेशियाँ भी शिथिल हो जाती हैं जिससे आन्त्र-शैथिल्य (Paralytic ileus) एवं मूत्र-निग्रह (Retention) हो जाता है। इसे आधुनिक काल में निम्नाङ्कित व्याधियों से तुलना कर सकते हैं—

1. तीव्रस्वरूप का अतिसार।
2. वमन, अतिसार युक्त पौटेशियम की अल्पता।

तीव्र स्वरूप के अतिसार का वर्णन अध्याय 12 में किया जा चुका है। पोटेशियम अल्पता का वर्णन आगे की तालिका में वर्णित है।

शीतपूतनाग्रह

'उद्विग्नो भृशमतिवेपते प्ररुद्यात्
संलीनः स्वपिति च यस्य चान्त्रकूजः।
विस्राङ्गो भृशमतिसार्यते च यस्तं
जानीयाद्विषगिह शीतपूतनार्त्तम्' ॥ (सु.उ. 27:14)

'शीतपूतनया कम्पो रोदनं तिर्यगीक्षणम्।
तृष्णाऽन्त्रकूजोऽतीसारो वसावद्विस्रगन्धता ॥
पार्श्वस्यैकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च'। (अ.ह.उ. 3:22-23)

'वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः' ॥
(मा.नि. 68:15, यो.र.बा.रो.चि.पृ. 438)

शीतपूतना से ग्रस्त बालक अत्यन्त बेचैन होकर काँपता है तथा रोता है। कुछ देर बाद बिछौने में लिपट कर सो जाता है तथा आन्त्रकूजन होता है। शरीर से सड़ी गन्ध आती है तथा पतला मल त्याग होता है।

वाग्भट ने कम्प, तिरछा देखना, तृष्णा, आन्त्र में शब्द, अतिसार, वसा की भाँति विस्रा गन्ध, एक पार्श्व का ठण्डा होना एवं दूसरे का गर्म होना—ये लक्षण कहे हैं।

कम्पन, कास, क्षीणता, नेत्ररोग, शरीर में विकृति, गन्ध, वमन एवं अतिसार लक्षण माधव ने कहे हैं।

वाग्भट एवं माधव के लक्षणों के आधार पर कुछ विद्वान् अतिसार के साथ कैल्शियम एवं/अथवा मैग्नीशियम की अल्पता मानते हैं।

सुश्रुत के लक्षणों के आधार पर अजीर्णजन्य अतिसार माना जा सकता है। अजीर्ण से बेचैनी, रोदन एवं पेट के बल सोना होता है। आन्त्रकूजन एवं अतिसार भी उसी का परिणाम है।

अन्धपूतना या गन्धपूतना ग्रह

'यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्काच्छर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः।
दुर्वर्णः सततमधःशयोऽम्लगन्धिस्तं ब्रूयुर्भिषज इहान्धपूतनार्त्तम्' ॥
(सु.उ. 27:13)

'अन्धपूतनया छर्दिर्ज्वरः कासोऽल्पनिद्रता।
वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यान्यङ्गशोषणम् ॥
दृष्टेः सादातिरुक्कण्डूपौथकीजन्मशूनताः।
हिध्मोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्यस्वरतीक्ष्णताः ॥
वेपथुर्मत्स्यगन्धत्वमथवा साम्लगन्धता' ॥
(अ.ह.उ. 3:23-25, अ.सं.उ. 3:18)

'छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसा गन्धोऽतिरोदनम्।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत्' ॥
(मा.नि. 68:26, यो.र.बा.रो.चि.पृ. 438)

स्तनद्वेष, अतिसार, कास, हिक्का, वमन एवं ज्वर से शिशु पीड़ित होता है। शरीर विवर्ण होता है, शिशु सदैव पेट के बल सोता है एवं उसके शरीर से खट्टी गन्ध आती है। इसे सुश्रुत ने अन्धपूतना ग्रहजुष्ट बालक के लक्षण माने हैं।

वमन, ज्वर कास, अनिद्रा, अतिसार, विवर्णता एवं दुर्गन्धता, अङ्गों की शुष्कता, दृष्टि का अल्प होना, नेत्रों में अतिवेदना एवं कण्डू, पोथकी, शोथ, हिक्का, उद्वेग,

Scanned with CamScanner

स्तनद्वेष, विवर्णता, स्वर में तीक्ष्णता, कम्पन एवं मत्स्यवत् या खट्टी गन्ध का आना लक्षण वाग्भट ने कहे हैं।

माधवनिदान एवं योगरत्नाकर में वमन, कास, ज्वर, शरीर से चर्बीवत् गन्ध होना, दूध न पीना एवं अतिसार लक्षण कहे हैं।

उपरोक्त विवेचना में स्पष्ट रूप से जीर्ण चिरकालीन अतिसार का वर्णन है जिसके परिणामस्वरूप नेत्ररोग भी हो जाते हैं, क्योंकि इस प्रकार के अतिसार में आन्त्र में शोषण नहीं होता। शिशु कुपोषण का शिकार हो जाता है एवं विटामिन ए की कमी से नेत्ररोग होता है। इसका वर्णन अध्याय 10 में किया जा चुका है।

रेवतीग्रह

रेवती बालग्रह का वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। आचार्य कश्यप ने इसके 20 पर्याय कहे हैं—

'नामभिर्बहुभिश्चैव त्वां वक्ष्यन्ति जना भुवि।
वारुणी, रेवती, ब्राह्मी, कुमारी, बहुपुत्रिका॥
शुष्का, षष्ठी च यमिका, धरणी, मुखमण्डिका।
माता, शीतवती, कण्डूः पूतनाऽथ निरुञ्जिका॥
रोदनी, भूतमाता च लोकमाता, महीति च।
शरण्या, पुण्यकीर्तिश्च नामानि तव विंशतिः'॥ (का.चि.बाल.पृ. 99)

इसके पश्चात् रेवती ग्रह के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों की भी गणना की गयी है। ज्वर, अतिसार, विसर्प, पीड़ा, इन्द्रियों का दूषित होना, आनाह, शूल, अरुचि, श्वास, कास, तृषा, निद्रानाश, अतिनिद्रा, मुखपाक, व्रणोत्पत्ति, एकाङ्गवात, पक्षाघात, क्षीरालसक, विसूचिका, हिक्का, मूर्च्छा, मद, मोह, रोदन, नेत्रस्तब्धता, स्वरभेद, वर्णभेद, अग्निभेद, पाण्डु, कामला, अरति, क्षीरदोष, क्षीरनाश, शिरोरुजा, हृदयद्रव, नासारोग, अक्षिरोग, कर्णरोग, त्रास, कुञ्चन एवं रोदन—ये तथा अन्य भी बहुत-से रोग जो नहीं कहे गये हैं उन्हें रेवती के क्रोध से उत्पन्न समझना चाहिए।[1] ऐसा प्रतीत होता है चिरकालीन रोगी शिशु में होने वाली विभिन्न व्याधि-समूहों को रेवती में कश्यप ने संग्रहीत कर दिया है।

अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित रेवती ग्रह के लक्षण इससे एकदम अलग हैं।

1. ज्वरातिसारो वैसर्पः पीडनेन्द्रियदूषणम्। आनाहः शूलमरुचिर्मि·····नं श्वासकासतृट्॥
निद्रानाशोऽतिनिद्रा च मुखपाको व्रणोद्भवः। एकाङ्गकः पक्षवधः क्षीरालसविसूचिकाः॥
हिक्का मूर्च्छा मदो मोहो रोदनं स्तब्धनेत्रता। स्वरवर्णाग्निभेदश्च पाण्डुत्वं कामलाऽरतिः॥
क्षीरदूषणनाशौ च शिरोरुग्धृतयद्रवः। नासाक्षिकर्णरोगाश्च त्रासकुञ्चनरोदनम्॥
ये चान्ये चैव विविधा ये रोगाननुकीर्तिताः। रेवतीरोषसम्भूतभूयिष्ठं त उदाहृताः॥
(का.चि.बालग्रह. पृ. 100)

'रक्तास्यो हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः श्यावो वा ज्वरमुखपाकवेदनाऽर्त्तः।
रेवत्या व्यथिततनुश्च कर्णनासां मृद्नाति ध्रुवमभिपीडितः कुमारः'॥
(सु.उ. 27:11)

रेवत्यां श्यावनीलत्वं कर्णनासाक्षिमर्दनम्॥
कासहिध्माक्षिविक्षेपवक्रवक्त्रत्वरक्तताः।
बस्तगन्धो ज्वरः शोषः पुरीषं हरितं द्रवम्'॥
(अ.ह.उ. 3:27-28, अ.सं.उ. 3:20)

'व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक्॥
भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम्'॥
(यो.र.बा.रो.पृ. 438, मा.नि. 68:24)

सुश्रुत ने रेवतीग्रहजुष्ट बालक के लक्षणों में मुख का लाल होना, हरे वर्ण का मल होना, शरीर का वर्ण पाण्डु होना या श्याम होना, ज्वर, मुखपाक, वेदना तथा निरन्तर अपने कर्ण व नासा को मलते रहना आदि कहा है।

वाग्भट ने वर्ण काला या नीला होना, कान, नाक व नेत्र को बराबर मलना, कास हिक्का, नेत्रों का चलाना, मुख का टेढ़ापन एवं लाल होना, बकरे जैसी गन्ध, ज्वर, शोष तथा मल हरा व पतला होना आदि कहा है।

माधव तथा योगरत्नाकरकार ने शिशु के शरीर का व्रणों से भर जाना, स्फोटों से शरीर का भर जाना, शरीर से कीचड़ जैसी गन्ध आना; दुर्गन्धयुक्त स्राव, अतिसार, ज्वर तथा दाह का होना कहा है।

अरिष्ट-लक्षण—स्वप्न में यदि बालक समुद्र आदि में अथवा अन्य जलों में डूबे तो रेवती का भय समझना चाहिए।

'समुद्रादिषु तोयेषु निमग्ने रेवतीभयम्'। (का.इ.औषधिभे.पृ. 90)

उपरोक्त वर्णन स्पष्ट करता है कि रेवती के लक्षणों के विषय में कश्यप, माधव एवं सुश्रुत के भिन्न-भिन्न विचार रहे। माधव का समर्थन योगरत्नकरकार ने तथा सुश्रुत का समर्थन सम्भवतः वाग्भट ने किया है।

सभी के लक्षणों को एक साथ विचार करने पर पाण्डु, अतिसार एवं शोष का मिश्रण स्वरूप प्रतीत होता है। मुखपाक एवं शरीर पर व्रण, स्फोट, शरीर में जीवतिक्तिय की विशेष रूप से Nicotinic acid एवं Riboflavin की अल्पता दर्शाते है। इन सभी अवस्थाओं का वर्णन पहले अध्यायों में किया जा चुका है।

कुछ विद्वानों ने इसे 'Pernicious anaemia' भी कहा है।

Prenicious Anaemia

आमाशय के मध्य भाग (Fundus) से निकलने वाला Intrinsic factor (Glycoprotein) भोजन के जीवतिक्तिय B_{12} से मिल कर एक योग (Complex)

Scanned with CamScanner

बनाता है। यह क्षुद्रान्त्र में जाकर विशिष्ट स्थल पर Ionic calcium की उपस्थिति में शोषित होकर आन्त्र से रक्त में पहुँचता है। जीवतिक्तिय B_{12} की अल्पता के निम्न चार कारण हो सकते है—

1. उचित मात्रा का ग्रहण न करना।
2. आमाशय द्वारा Intrinsic factor का कम या न उत्पादन करना।
3. Complex का उपयोग बढ़ जाना।
4. क्षुद्रान्त्र के विशिष्ट स्थल पर किसी प्रकार की विकृति का होना।

इनमें से प्राय: संख्या 2 और 4 ही Pernicious anaemia के कारण बनते है। इसी का एक प्रकार Juvenile pernicious anaemia है। इसमें लक्षण 9 माह की वय से 5 वर्ष के मध्य मिलते हैं। यह 9 माह का समय भी गर्भकाल में संग्रहीत B_{12} की मात्रा पर निर्भर है। तीव्र पाण्डु, चिड़चिड़ापन, अरुचि, वातावरण से उदासीनता रहती है। जिह्वा चिकनी, रक्त वर्ण की एवं वेदनायुक्त होती है। नाडीतन्त्र भी प्रभावित होता है। Ataxia, Paresthesia, Reflexes में कमी एवं मूर्च्छा होती है।

रक्त-परीक्षण में Macrocytic पाण्डु मिलता है। पालीमॉर्फ बड़े तथा सेगमेण्ट की संख्या अधिक मिलती है। चिरकालीन रोगी में Neutropenia तथा Thrombocytopenia मिलता है।

चिकित्सा—जीवतिक्तिय B_{12} का सूचीवेध देते ही लाभ होता है। इसकी सामान्य दैनिक मात्रा 1 से 5 माइक्रो ग्राम/दिन की है। इतनी मात्रा देने पर भी रक्त में परिवर्तन दिखने लगता है। नाडीतन्त्र के प्रभावित होने पर 2 मि.ग्रा. की मात्रा में सूचीवेध 14 दिन तक देते हैं। विशेष अवस्था में रोगी को आजीवन 1 मि.ग्रा./माह की मात्रा पर रखना पड़ता है।

शुष्करेवती ग्रह

इसका वर्णन मात्र वाग्भट ने किया है। अष्टांगहृदय एवं अष्टांगसंग्रह में लक्षणों में अल्प अन्तर मिलता है—

'जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वाङ्गसंक्षय:।
भुञ्जानोऽन्नं बहुविधं यो बाल: परिहीयते ।।
तृष्णागृहीत: क्षामाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती' ।।
(अ.हृ.उ. 3:29, 31-32)

'.....पुरीषं हरितद्रवम्।
जायते शुष्करेवत्यां क्रमात् सर्वाङ्गसङ्क्षय:।
केशशातोऽन्नविद्वेष: स्वरदैन्यं विवर्णता ।।
नानावर्णपुरीषत्वमुदरे ग्रन्थय: सिरा:।
रोदनं गृद्ध्रगन्धित्वं दीर्घकालानुवर्तनम्' ।। (अ.सं.उ. 3:21)

इस ग्रह से आक्रान्त बालक हरा-पीला आदि वर्ण का मल त्याग करता है। धीरे-धीरे सभी अंगों का क्षय होने लगता है। केश का गिरना, अरुचि, स्वरदीनता, शरीर का विवर्ण होना, उदर पर ग्रन्थि एवं सिराजाल दिखायी पड़ना, सेना तथा शरीर से लम्बे समय तक गिद्ध की गन्ध आना आदि लक्षण है।

अष्टांगहृदयकार ने कहा है कि बहुत प्रकार के अन्न खाने पर भी जो बालक कमजोर हो जाता है, तृषा से पीडित एवं निर्बल नेत्र वाला होता है उसे शुष्क रेवती मार देती है।

अरिष्ट-लक्षण—यदि स्वप्न में सूखे हुए कूएँ तथा नदी के दर्शन हो तो वह बालक शुष्करेवती के आक्रान्त होकर मर जाता है।

'शुष्ककूपनदीदर्श निहन्याच्छुष्करेवती'। (का.इ.औष.पृ. 90)

उपरोक्त लक्षणों हो देखकर उदर पर ग्रन्थि व सिराजाल, विभिन्न वर्ण का मल त्याग तथा शुष्कता (क्षय) को देखकर उदर-राजयक्ष्मा का भान होता है। जीर्ण व्याधि में बाल भी गिरते हैं।

उदरयक्ष्मा
(Intra-abdominal Tuberculosis)

अन्नवह स्रोतस् का यक्ष्मा प्राय: Mycobacteria के निगलने से होता है। यह जीवाणु-संक्रमित दुग्धपान या फुप्फुस-संक्रमण में उत्पन्न बलगम के निगलने से आन्त्र में पहुँचते हैं। इससे प्राय: अतिसार, कभी-कभी मलबन्ध, फिर अतिसार, क्रमश: उदरशूल एवं शरीर-भार में अल्पता होती है। बाद में पाण्डु भी होता है। परन्तु यह व्याधि बच्चों में कम होती है।

उदरस्थ लसिकाग्रन्थि भी कभी-कभी संक्रमित हो जाती है। यह संक्रमण स्थानीय आन्त्र-राजयक्ष्मा द्वारा या रक्तमार्ग द्वारा पहुँचता है। इस अवस्था में उपरोक्त लक्षणों के साथ-साथ ग्रन्थि के दबाव से उत्पन्न लक्षण आन्त्रावरोध आदि हो सकते है।

कभी-कभी यह ग्रन्थियाँ उदरगुहा में फट जाती हैं जिससे परिणामस्वरूप उदरावरणकलाशोथ (Peritonitis with effusion) पैदा होता है। यह अवस्था अपवाद स्वरूप गर्भाशय की आर्तवप्रवेशिनी की राजयक्ष्मा (Tuberculosis salpingitis) से रक्तमार्ग से संक्रमण से भी हो सकती है। इसका निदान उदरावरणकला में एकत्र द्रव के परीक्षण से सरलता से होता है। इसके परिणामस्वरूप उदर-अंगों का एक-दूसरे से जुड़ना (Adhesions) होता है। इससे बृहत् रूप में आन्त्र अवरोध एवं मृत्यु सम्भव है।

चिकित्सा—राजयक्ष्मा प्रकरण में देखिए।

मुखमण्डिका ग्रह

पर्याय—वक्त्रमण्डिका, मुखमण्डित, मुखमण्डनिका, मुखमण्डिका।

Scanned with CamScanner

'म्लानाङ्गः सुरुचिरपाणिपादवक्त्रो बह्वाशी कलुषसिरावृतोदरो यः ।
सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगन्धिः स ज्ञेयः शिशुरिह वक्त्रमण्डिकाऽऽर्त्तः'।
(सु.उ. 28:15)

'मुखमण्डितया पाणिपादास्यरमणीयता ।
सिराभिरसिताभाभिराचितोदरता ज्वरः ।।
अरोचकोऽङ्गग्लपनं गोमूत्रसमगन्धता' ।
(अ.ह.उ. 3:26-27, अ.सं.उ. 3:19)

'प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभिसंवृतः ।
मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डनिकाग्रहे' ।। (यो.र.बा.रो.पृ. 438)

'प्रसन्नवर्णवदनः सिराभिरभिसंवृतः ।
मूत्रगन्धी च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत्' ।। (मा.नि. 68:28)

इस ग्रह से ग्रस्त बालक का शरीर म्लान रहता है । उसके हाथ-पैर एवं मुख सुन्दर दिखायी देते हैं । वह बहुत खाता है । उसका उदर काले या नीले वर्ण की सिराओं से भरा रहता है । वह सदैव बेचैन रहता है । इसके शरीर से मूत्र जैसी गन्ध आती है । वाग्भट ने ज्वर, अरुचि एवं अंगों में ग्लानि लक्षण भी कहा है । संक्षेप में इन्हीं लक्षणों को अन्य आचार्यों ने कहा है ।

अरिष्ट-लक्षण—यदि बालक स्वप्न में किसी पक्षी द्वारा काटा जाता है तो उसकी शीघ्र मृत्यु होती है । स्वप्न में हरिताल आदि के रंगों से यदि आकाश को पीला रंगा हुआ देखता है तथा मांस का सेवन व अलंकारों को धारण करता है तो उसे मुखमण्डिका नामक ग्रह मार देता है ।

'अवडीनाभिदष्टस्तु सद्यो मरणमृच्छति ।
हरितालादिभी रङ्गैर्मण्डितः पीतकाम्बरः ।।
मांसलोऽलङ्कृतः स्वप्ने तं हन्ति मुखमण्डिका' । (का.इ.औ.पृ. 90)

उपरोक्त विवरण में क्षुधा की बदली हुई प्रवृत्ति, ज्वर एवं उदर पर फैला हुआ सिरा जाल, साथ में उद्विग्नता तथा सर्वाङ्गशोथ होता है । शोथ से मुख एवं शाखाओं पर चमक जैसी आ जाती है । ये लक्षण प्रायः Indian childhood cirrhosis में मिलते हैं। मूत्र-गन्ध अस्वच्छता से सम्बन्ध रखता है । इस व्याधि का वर्णन भी पूर्व के अध्याय में किया जा चुका है ।

शकुनिग्रह

'स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः संस्रावित्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या' ।।
(सु.उ. 27:10)

'स्रस्ताङ्गत्वमतीसारो जिह्वातालुगले व्रणाः ।
स्फोटाः सदाहरुक्पाकाः सन्धिषु स्युः पुनः पुनः ।।
निश्यह्नि प्रविलीयन्ते पाको वक्त्रे गुदेऽपि वा ।
भयं शकुनिगन्धत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे' ।। (अ.ह.उ. 3:18-19)

शिशुओं के अङ्गों का शिथिल होना, साधारण भय से चकित (घबड़ाना) होना, बच्चे के शरीर से पक्षियों के मांस की-सी गन्ध आना, चारों ओर से बच्चे के शरीर का स्रावयुक्त व्रणों से पीड़ित रहना तथा दाह-पाकयुक्त स्फोटों से शरीर का व्याप्त रहना शकुनी ग्रह के मुख्य लक्षण हैं ।

वाग्भट ने इसका विस्तृत वर्णन किया है कि अंगों का ढीला होना, अतिसार, जिह्वा- तालु-गले में व्रण, स्फोट, दाह, वेदना तथा पाक होता है । रात को सन्धियों में छाले होते हैं जो दिन में छिप जाते हैं । मुख या गुदा पाक, भय, शकुनी के समान गन्ध एवं ज्वर आदि लक्षण होते हैं ।

अरिष्ट—यदि स्वप्न में मांसभक्षी पक्षी दिखायी दें तो वह शकुनी द्वारा मार दिया जायेगा ।

'मांसादान् पक्षिणो दृष्ट्वा शकुन्या ब(व)ध्यते शिशुः' ।
(का.इ.औष.पृ. ९०)

ऊपर के वर्णन में वेदनायुक्त स्फोटों का प्रतिदिन निकलना, व्रण का बनना, ज्वर एवं अतिसार आदि लक्षण Impetigo (Pemphigus) के लक्षणों से मिलते हैं । कुछ विद्वानों ने इसे Eruptive ज्वर भी माना है ।

इम्पेटाइगो
(Impetigo)

त्वचा के सर्व सामान्य संक्रमण में Group A Beta Hemolytic Streptococci द्वारा उत्पन्न पूययुक्त फफोले (Pyoderma impetigo) है । यह फफोले हाथ, पैर, मुख, नेत्र एवं शिर पर बनते व फूटते हैं । यह बाद में पूययुक्त हो जाते हैं तथा सूख कर मोटी पपड़ी बनाते हैं । रोगी कण्डु की शिकायत करता है । वेदना व सांस्थानिक लक्षण कभी-कभी होते हैं । कभी-कभी स्थानीय लसिकाग्रन्थि की भी वृद्धि हो जाती है । Bacteremia भी कभी-कभी होता है ।

चिकित्सा—

उचित एण्टीबायोटिक का स्थानीय एवं मुख द्वारा या सूचीवेध से प्रयोग करें । प्रायः पेनिसिलीन का उपयोग ठीक रहता है ।

पेम्फीगस नीओनेटोरम (Pemphigus neonatorum)—यह इम्पेटाइगो का ही एक प्रकार है जो नवजात शिशु में मिलता है । रोग का कारण Staphylococcus

Scanned with CamScanner

है। यह अत्यन्त संक्रामक रोग है तथा इससे मृत्यु भी सम्भव है। इसमें शरीर के विभिन्न भागों में बड़े-बड़े फफोले निकलते है। विशेष कर जहाँ त्वचा मुड़ी हुई तथा पसीने से भीगी रहती है (सन्धिषु स्युः पुनः पुनः)। फफोले के अन्दर सफेद रंग का पतला पूय रहता है।

चिकित्सा—उपरोक्त के समान ही करें।

बालग्रह के विशिष्ट लक्षण

ग्रह	विशिष्ट लक्षण	गन्ध
1. स्कन्द ग्रह	1. एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः 2. हतचलित एकपक्ष्मनेत्रः 3. हतैकपक्षः 4. वैकल्यं मरणं वा भवेद् ध्रुवम् 5. गाढ़मुष्टि वर्चा	1. शरीर से रुधिर गन्ध (सुश्रुत) 2. वसा एवं रक्त गन्ध (अ.सं.) 3. पूय एवं रक्त गन्ध
2. स्कन्दापस्मार	1. निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत् ससंज्ञः 2. हस्तभ्रूपादनर्तनम् 3. नष्टसंज्ञावमेत् फेनम् 4. शकृन्मूत्रप्रवर्तनम् (स्वतः मूर्च्छा में)	
3. श्वग्रह	1. बहिरायाम 2. जिह्वादंश 3. अन्तःकण्ठकूजनम् 4. धावनम् 5. क्रोशनम्	1. मलवत् गन्ध
4. पितृग्रह	1. ज्वर, कास के साथ विवर्णता 2. अङ्गेष्वाक्षेप-विक्षेप	1. शवगन्धी
5. नैगमेष ग्रह	1. विनम्यते च मध्ये 2. एकनेत्रशोफ 3. मूर्च्छा	1. वसा गन्ध (सुश्रुत) 2. अजागन्धि (अ.सं.) 3. विगन्धिता (योगरत्नाकर)
6. पूतना ग्रह	1. अतिसार 2. वमन 3. तृष्णालु 4. अङ्गशैथिल्य	1. काकतुल्य गन्धि 2. काकवत् पूतिगन्ध
7. शीत पूतना	1. अतिसार 2. आन्त्रकूजन 3. पार्श्वस्यैकस्य शीतत्वमुष्णत्वम-परस्य च।	1. वसावद् विस्रगन्धता

8. अन्धपूतना	1. अतिसार 2. विवर्णता 3. नेत्र विकार - दृष्टिसाद, अतिरुक्, कण्डू, पोथकी, शोथ	1. अम्ल गन्ध (सुश्रुत, अ.ह.) 2. मत्स्य गन्ध (अ.ह.) 3. वसा गन्ध (मा.नि.)
9. रेवती ग्रह	1. रक्ताक्ष्यो 2. पाण्डु, अतिसार, शोथ 3. मुखपाक 4. व्रणस्फोट	1. वस्त गन्ध (अ.ह.) 2. पद्म गन्ध (मा.नि.)
10. शुष्करेवती	1. क्रमात् सर्वाङ्गसंक्षयः। 2. नानावर्णपुरीषत्वम् 3. उदरे ग्रन्थयः शिरा	1. गृध्र गन्ध
11. मुखमण्डिका	1. सुरुचिरपाणिपादवक्त्रो 2. कलुषशिरावृतोदरो 3. मुखमण्डितया 4. पाणिपादस्य रमणीयता 5. शिराभिरभिसंवृतः	1. मूत्र गन्ध 2. गोमूत्र गन्ध
12. शकुनी ग्रह	1. संस्रविव्रणपरिपीडितः 2. जिह्वातालुगले व्रणः 3. स्फोटा सदाहरुक्पाकः सन्धिषु स्यु पुनः पुनः।	1. विहङ्ग गन्धि 2. शकुनी गन्धि

बालग्रह-चिकित्सा
(शास्त्रीय पक्ष)

सिद्धान्त—

'ग्रहैरपि हि जायन्ते प्रच्छन्नैर्व्याधयः शिशोः।
कर्म शस्तमतस्तेषु दैवयुक्त्याश्रयं सदा'॥ (अ.सं.उ. 2:98)

बच्चों को छिपे हुए ग्रहों से भी रोग होते हैं। इनमें सदैव दैवव्यपाश्रय चिकित्सा (मन्त्र, औषधि, मणि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, बलि आदि) तथा युक्ति-व्यपाश्रय चिकित्सा (आहार एवं औषधि व्यवस्था) करनी चाहिए।

'हन्तुकामं जयेद्धोमैः सिद्धमन्त्रप्रवर्तितैः।
इतरौ तु यथाकामं रतिबल्यादिदानतः'॥ (अ.सं.उ. 3:28)

हिंसा की इच्छा से ग्रसने वाले ग्रह की सिद्ध मन्त्रों से प्रवर्तित हवन द्वारा चिकित्सा करें। रति तथा पूजा-अर्चना की इच्छा से ग्रसित ग्रहों की उनकी इच्छानुसार रति, बलि आदि द्वारा चिकित्सा करें।

Scanned with CamScanner

'घृतानि भूविद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानि च ।
युञ्ज्यात्तथा बलिं होमं स्नपनं मन्त्रतन्त्रवित् ।।
अनुबन्धान् यथाकृच्छ्रं ग्रहापायेऽप्युपद्रवान् ।
बालामयनिषेधोक्तभेषजैः समुपाचरेत्' ।। (अ.हृ.उ. 3:58, 60)

भूतविद्या में जो घृत कहे जायेंगे, उनको तथा मन्त्र और तन्त्र को जानने वाला वैद्य बलि, होम एवं स्नान करायें। ग्रहावेश के समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं, उन उपद्रवों की ग्रह के हट जाने पर भी बने रहने पर बालरोगप्रतिषेध (अ.हृ.उ. के प्रथम 3 अध्याय) में कही गयी औषधियों से भलीभाँति चिकित्सा करें।

'.....स्कन्दग्रहस्कन्दापस्मारस्कन्दपितृनैगमेष.....वमनसाध्या इति ।।३।।

....रेवतीपौण्डरीकशकुनीपूतनामुखमण्डिकार्ताश्च न वाम्याः ।...रेवती केवल-वातार्ताश्च न विरेच्याः' । (का.सं.चि. 7)

वमन-साध्य ग्रह—स्कन्द, स्कन्दापस्मार, स्कन्दपितृ, नैगमेष ।
वमन-निषेध—रेवती, पौण्डरीक, शकुनी, पूतना, मुखमण्डिका ।
विरेचन-निषेध—रेवती[1] ।

पथ्य—

'आगन्तून्मादवातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम् ।
औचित्याद्यो जयेत्तत्र बालेषु ग्रहरोगिषु' ।। (यो.र.बा.रो.चि. 457 पृ.)

आगन्तुक उन्माद तथा वातरोगों में जो पथ्यापथ्य कहे गये हैं, वही यथोचित विचार कर बालकों के ग्रहरोगों में देना चाहिए।

सामान्य चिकित्सा—

सर्वप्रथम वैद्य स्नान-सन्ध्यादि कर्म से पवित्र होकर पवित्र गृह में बच्चे को ले जाकर पुराणघृत से उसके शरीर पर अभ्यङ्ग करके उसके चारों ओर सर्षप बिखेर दें एवं सर्षप तैल का दीपक जला दें। इसके बाद उसी के पास बैठकर अग्नि में सर्वगन्धौषधियों (दालचीनी, एला, तेजपत्र, नागकेशर, कर्पूर, कक्कोल, अगुरु, केशर एवं लवङ्ग), औषधिबीज (तिल, गेहूँ, उड़द आदि) एवं सुगन्ध (चन्दन, राल आदि) से हवन करें। हवन कराने से पूर्व बच्चे को स्नान करा कर सुगन्ध का लेप देह पर लगा कर माला तथा अच्छे वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत कर देना चाहिए। फिर अग्नि एवं कृत्तिका के लिए 'अग्नये स्वाहा, कृत्तिकाभ्यः स्वाहा' ऐसा मन्त्रोच्चारण करते हुए अग्नि में आहुति दें। ग्रहों के स्वामी स्कन्ददेव को मेरा नमस्कार है। हे देव ! मैं आपको सिर झुका कर

1. काश्यपसंहिता में उपरोक्त प्रकरण अपूर्ण (खण्डित) है। अन्यथा अन्य उपयोगी विवरण भी उपलब्ध हो सकता था।

नमस्कार करता हूँ। आप मेरे द्वारा दी जाने वाली बलि को स्वीकार करें तथा उक्त हवन एवं बलिदान के प्रभाव से शीघ्र ही मेरा शिशु वेदना तथा रोग रहित हो जाय।[1]

काश्यपोक्त सामान्य उपक्रम

अग्निमन्थ, कुरबक, वरुण, पारिभद्र, निशा. चित्रक, पोटगल (नल), पूतिका (चिरबिल्व) तथा रोहिष—इनके क्वाथ से परिषेक करें। फिर निम्नाङ्कित तैल से अभ्यङ्ग करें। प्रियङ्गु, रोचना, शतपुष्पा, कुटन्नट (तगर), तालीसपत्र, नलद, जटामांसी, चन्दन, सारिवा, मधूक, अङ्कोठ, मञ्जिष्ठा, पृथ्वीका (बड़ी एला) एवं भूनिम्ब साधित तैल में मूँग तथा कांजी डाल कर अभ्यङ्ग करने से पितृग्रह बालक को शीघ्र छोड़ देते हैं।[2]

बिम्बी, गम्भारी, मधुक, कुलत्थी, बदरी, यव एवं लघुपञ्चमूल का क्वाथ देना चाहिए एवं खजूर, मुस्तक, नारिकेल फल, कमलनाल का अङ्कुर, मुनक्का, महुआ तथा मधुयष्टी का शुष्क चूर्ण देना चाहिए।[3]

वाग्भटोक्त परिषेक तथा धूपन कर्म

मंगलाचार करके साध्य ग्रह वाले बालक को पवित्र, निर्भय एवं एकान्त गृह में रखें। दिन में 3 बार जल एवं झाड़ू से सफाई करें, सदा अग्नि को पास रखें। राख, धूल, पत्र, बीज, अन्न एवं सर्षप को चारों ओर बिखेर दें। सर्षप के तैल का दीपक जलाकर पाप रूपी अन्धकार नष्ट करें। परिचारक, मैथुन, मांस एवं मद्य से दूर रहे। बच्चे का पुराने घृत से अभ्यङ्ग, बला, निम्ब, वैजयन्ती, अमलतास, पारिभद्र, श्योनाक, जम्बू, वरुण, कतृण, सुवर्चला, चिरचिटा, पाटला, मधुशिग्रु, काकजङ्घा, महाश्वेता, कपित्थ, क्षीरीवृक्षत्वक्, कदम्ब तथा करञ्ज से सिद्ध जल से स्नान करायें। पूतिकरञ्ज, क्षीरीवृक्षत्वक् एवं पत्र, बावरी, तुम्बी, इन्द्रायण, श्योनाक, शमी, बिम्ब, कपित्थ पत्र एवं त्वक् के क्वाथ से बच्चे को रात्रि में स्नान करायें।

1. गृहे पुराणहविषाऽभ्यज्य बालं शुचौ शुचिः । सर्षपान् प्रकिरेत्तेषां तैलैर्दीपञ्च कारयेत् ।।
सदा सन्निहितञ्चापि जुहुयाद्धव्यवाहनम् । सर्वगन्धौषधीबीजैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृतम् ।।
अग्नये कृत्तिकाभ्यश्च स्वाहा स्वाहेति सन्नतम् । नमः स्कन्दाय देवाय ग्रहाधिपतये नमः ।।
शिरसा त्वाऽभिवन्देऽहं प्रतिगृह्णीष्व मे बलिम् । नीरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मे जायतां ध्रुवम् ।।
(सु.उ. 27:18-21)

2. अत ऊर्ध्वं तु सर्वेषां शृणु सामान्यभेषजम् । अग्निमन्थः कुरबको वरुणः पारिभद्रकः ।।
निशाऽनलः पोटगलः पूतिका रोहिषस्तथा । एतेन परिषिक्तस्य तैलमभ्यङ्गनं शृणु ।।
प्रियङ्गू रोचना चैव शतपुष्पा कुटन्नटम् । तालीसपत्रं नलदं तथा चन्दनसारिवे ।।
मधूकाङ्कोठमञ्जिष्ठापृथ्वीकाभूतिकानि च । एतैस्तैलसमं सिद्धं मुद्गाम्लोदकसंयुतम् ।।
एतेन बालमभ्यक्तं मुञ्चत्याशु पितृग्रहः ।। (का.सं.चिकि.बा.वि.पृ. 104)

3. बिम्बीकाश्मर्यमधुकं कुलत्था बदरा यवाः । खड्डाकपञ्चमूलस्य निष्क्वाथं चात्र दापयेत् ।।
खर्जूरं मुस्तकं चैव नारिकेलफलानि च । नालिकाङ्कुरमृद्वीका मधूकं मधुकं तथा ।।
एतानि शुष्कचूर्णानि..... (अपूर्ण) । (का.सं.चिकि.बा.वि.पृ. 104-105)

Scanned with CamScanner

इसके बाद चीता, व्याघ्र, सर्प, सिंह एवं भालू इनकी त्वचा को घी में डालकर धूपन करे या करञ्ज, दशाङ्ग, सर्षप, वच, भल्लातक, गवानी तथा कुष्ठ को घृत में डालकर धूपन करें। सर्षप, निम्बपत्र, पिप्पलीमूल, अश्वखुर, वच, भोजपत्र एवं घृत का धूपन सर्पग्रहशामक है। गोशृङ्ग, चर्म एवं बाल, सर्पकेचुल, बिल्ली की विष्ठा, निम्बपत्र, घृत, कुटकी, मदनफल, कटेरीद्वय, बिनौला, यव, बकरे के रोम, देवदारुसर्षप,[1] मयूरपिच्छ, राल, तुष, बाल और हींग—इनको मिट्टी के पात्र में बकरे के मूत्र से भावित कर बारीक चूर्ण बनाकर धूपन करें। यह धूप भूतों में तथा विषम ज्वर में उत्तम है।

इसके अतिरिक्त काश्यपसंहिता-कल्पस्थान एवं धूपकल्पाध्याय में बहुत-से धूप बताये गये है। यथा—माहेश्वर धूप, आग्नेय धूप, दशाङ्ग धूप, चतुरङ्गिक धूप, कर्णधूप, ग्रहघ्न धूप, शिशुक धूप, गृहधूप। इनका विस्तृत विवरण परिशिष्ट-2 में देखिये।

मुद्गपर्णी, मुण्डी एवं सुगन्धबाला के क्वाथ से स्नान तथा सप्तच्छद, हरीतकी, निशा एवं चन्दन का लेप देने से बालकों में सर्पग्रहबाधा दूर होती है।[2]

घृत—अनन्ता, आम्रास्थि, तगर, मरीच एवं मधुर गणौषधियाँ, पृश्निपर्णी एवं मुस्ता के कल्क से दशमूल के क्वाथ एवं दूध के साथ घृत सिद्ध करें। यह ग्रहनाशक घृत है।[3]

रास्ना, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहत् पञ्चमूल, बला एवं मुस्ता के क्वाथ में सारिवा, व्योष, चित्रक, पाठा, विडङ्ग, मधुक, पयस्या, हिङ्गु, देवदारु, ग्रन्थिक तथा

1. अथ साध्यग्रहं बालं विविक्ते शरणे स्थितम्। त्रिरह्नः सिक्तसंमृष्टे सदा सन्निहितानले॥
विकीर्णभूतिकुसुमपत्रबीजान्नसर्षपे। रक्षोघ्नतैलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि॥
व्यवायमद्यपिशितनिवृत्तपरिचारके। पुराणसर्पिषाऽभ्यक्तं परिषिक्तं सुखाम्बुना॥
साधितेन बलानिम्बवैजयन्तीनृपद्रुमैः। पारिभद्रककट्वङ्गजम्बूवरुणकट्तृणैः॥
कपोतवङ्काऽपामार्गपाटलामधुशिग्रुभिः। काकजङ्घामहाश्वेताकपित्थक्षीरिपादपैः॥
सकदम्बकरञ्जैश्च, धूपं स्नातस्य चाचरेत्। द्वीपिव्याघ्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्धृतमिश्रितैः॥
पूतीदशाङ्गसिद्धार्थवचाभल्लातदीप्यकैः। सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः॥
सर्षपा निम्बपत्राणि मूलमश्वखुरा वचा। भूर्जपत्रं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारणः॥
गोशृङ्गचर्मवालाहिनिर्मोकं वृषदंशविट्। निम्बपत्राज्यकटुकामदनं बृहतीद्वयम्॥
कार्पासास्थियवच्छागरोमदेवाह्वसर्षपम्। मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम्॥
मृद्भाण्डे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णचूर्णितम्। धूपनं चाहितं सर्वभूतेषु विषमज्वरे॥
(अ.ह.उ. 3:41-48, 55-57 तथा अ.सं.उ. 4:2-3)
पूतीकरञ्जत्वक्पत्रं क्षीरीभ्यो बर्बरादपि। तुम्बीविशालारलुकशमीबिल्वकपित्थतः॥
उत्क्वाथ्य तोयं तद्रात्रौ बालानां स्नपनं शिवम्॥ (अ.ह.उ. 3:59-60)
2. सहामुण्डीनिकोदीच्य क्वाथस्नानां ग्रहापहम्। सप्तच्छदाभयनिशा चन्दनैश्चानुलेपनम्॥
(यो.र.बा.रो.चि.पृ 447)
3. अनन्ताम्रास्थितगरं मारिचं मधुरो गणः। शृगालविन्ना मुस्ता च कल्कितैस्तैर्घृतं पचेत्॥
दशमूलरसक्षीरयुक्तं तद ग्रहजित्परम्॥ (अ.सं.उ. 4:4, अ.ह.उ. 3:49-50)

इन्द्रयव के कल्क से घृत सिद्ध करें। यह बच्चों में उपयोगी, सर्वरोगग्रहबाधानाशक, अग्निदीपक, बल एवं वर्णवर्धक है।[1]

सारिवा, शल्लकी, ब्राह्मी, शंखिनी, कुष्ठ, सर्षप, वच, अश्वगन्धा एवं तुलसी से घृत सिद्ध करें। इस घृत के पान व अभ्यङ्ग से सभी ग्रह नष्ट होते हैं।[2]

अष्टमङ्गल घृत—त्वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी, श्वेतसर्षप, सारिवा, सैन्धव एवं पिप्पली को समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर घृत को सिद्ध कर लेना चाहिए। यह मेधावर्धक, स्मरणशक्तिवर्धक तथा बुद्धिदायक होता है। इसके पान से बालकों का पिशाच, राक्षस, भूत, मातृकाएँ आदि का प्रभाव नहीं सताता है[3]।

[अष्टांगहृदय (उ. 1:42) में शिशुकल्याणक घृत, अष्टांगसंग्रह (उ. 1:69) में ब्राह्मी घृत एवं काश्यपसंहिता (सूत्रस्थान, लेहाध्याय पृ. 5) में अभया घृत का वर्णन है जिनके नाम ही मात्र अलग-अलग हैं, घटक तथा प्रयोग एक ही वर्णित है।]

अष्टांगसंग्रहकार ने दैवव्यपाश्रय चिकित्सा, बलि, होम एवं स्नान का विस्तृत वर्णन किया है। विस्तारणभय से मूलपाठ मात्र ही दिया जा रहा है।

दैवव्यपाश्रय चिकित्सा—

'हस्तमात्रं शुचौ देशे गोमयेनोपलेपयेत्।
तत्राक्षतानां चोक्षाणां स्थाप्यं पात्रं सदक्षिणम्॥
निर्धूमश्चानलस्तोयं गुल्गुलुः सर्पिराहुतिः।
शुक्लं पुष्पं बलिर्धूपो दूर्वा श्वेताश्च सर्षपाः॥
प्राङ्मुखोऽथ शुचिर्वैद्यस्त्रिवर्णामथ वासिताम्।
उपविष्टः प्रतिसरां गृहीत्वा वेष्टयेत्तया॥
भूर्जे रोचनया विद्यां लिखितामपराजिताम्।
विधिना साधितां भूतैः सर्वैरप्यपराजिताम्॥
लक्ष्मणादिपरीवारां नित्यानु स्मृतिसेवितां।
लक्ष्मणा सहदेवाख्यानागदन्तीकटम्भरा॥

1. रास्नाद्वयंशुमतीवृद्धाञ्चमूलबलाधनात्। क्वाथे सर्पिः पचेत्पिष्टैः सारिवाव्योषचित्रकैः॥
पाठाविडङ्गमधुकपयस्याहिङ्गुदारुभिः। सग्रन्थिकैः सेन्द्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम्॥
सर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम्॥ (अ.सं.उ. 4:5, अ.ह.उ. 3:51-52)
2. सारिवासुरभिब्राह्मीशङ्खिनीकुष्ठसर्षपैः। वचाऽश्वगन्धासुरसयुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत्॥
तन्नाशयेद् ग्रहान् सर्वान् पानेनाभ्यञ्जनेन च॥(अ.सं. 4:6, अ.ह.उ. 3:53-54)
3. वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथोपि च। सारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम्॥
सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत् प्रातर्दिने दिने। दृढां स्मृतिः क्षिप्रमेधा कुमारो बुद्धिमान् भवेत्॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः। प्रभवन्ति कुमाराणां पिवतमष्टमंगलम्॥
(रावण,कु.तन्त्र 83)

Scanned with CamScanner

मर्कटी कर्कटी लम्बा बृहती कण्टकारिका ।
खरनासा मृगोर्वारुर्महाश्वेता शतावरी ।।
उदङ्मुखस्य बालस्य बाध्नीयात्तां ततो गले ।
तदभावे दृढं क्षौमसूत्रं मन्त्रमिदं जपन्' ।। (अ.सं.उ. 4:7-8)

बलिचिकित्सा—

'अपूयपूपसं यावस्वास्तिकालोपिकादयः ।
पायसो मिश्रकः सिद्धो गुडपूरो हरिद्रकः ।।
कृसरो यावकः क्षौद्रं पललं लवणं हविः ।
दधिकुल्माषनिष्पावो रक्तो भूतोदनः पयः ।।
पक्वाममांसरुधिरमत्स्यसक्तुसुरासवाः ।
गन्धं माल्यं फलं हेम धूपः सपुरकुन्दुरुः ।।
सुरसार्जकनिर्गुण्डीकुसुमं च सपल्लवम् ।
बलिः सुशस्तैर्देयः स्याद् भवनस्य चतुर्दिशम् ।।
चतुष्कचैत्यत्रिपथदेवायतनगोपुरे ।
रेखावृक्षोदपाने च सन्ध्ययोर्दीपवान् निशि ।।
अथापतितगोवर्चः प्रलिप्ते दर्भसंस्तृते ।
वृत्ते वा चतुरश्रे वा मण्डले कुसुमोज्ज्वले ।।
नानाग्रहपरीवारं भिषग्भूतपतिं लिखेत् ।
तं प्रतिप्राङ्मुखो विद्यां पठन्नुपहरेत् बलिम्' ।।

इसके बाद बलिमन्त्र, ग्रहों के पास पहुँचने का मन्त्र, कुलविद्यामन्त्र (उ. 4:10-12) दिया गया है ।

अग्निपूजा-होम—

'बलेरनन्तरं कुर्याद्धोममभ्यर्च्य पावकम् ।
पुष्पैर्भक्ष्यैश्च विविधैश्चारुणालोहितैस्तथा ।।
गन्धैर्गुग्गुलुधूपैश्च समिधः खदिरादथ ।
शतमष्टोत्तरं हव्यमथवा चन्दनद्रुताम्' ।।

—मन्त्र (अ.सं.उ. 4:13-15)

स्नानविधि—

'सरित्सङ्गमगोतीर्थगजेन्द्रस्कन्धगोकुले ।
चतुष्पथे च स्नपयेद् बालं सस्तन्यमातरम् ।।
श्मशाने दीर्घरोगार्तं मृतापत्यां च योषितम् ।
दूर्वाक्षीरि द्रुमवती प्रागुदक् प्रवणामही ।
स्निग्धनीरुजपुष्पाढ्यपादपा स्नपने शुभा ।।

रेवतीश्रवणस्वातीप्राजापत्योत्तरैन्दवे ।
पुष्ये मूले च बालस्य स्नानं पर्वदिनेषु च' ।।

(मण्डलचित्रण, दैवचित्रण, राक्षसीचित्रण, षट्कील गाड़ना, घड़ा रखना, विभिन्न वस्तुओं के संकलन का विवरण—उत्तर. 5:5 से 12 तक तथा मन्त्र कहने की विधि, वैद्य की तैयारी एवं मन्त्र—उत्तर. 5:13 से 20 तक में द्रष्टव्य है ।)

'स्नातो द्विजभिषग्भृत्यान्यथाविभवमर्चयेत् ।
मांसव्यवायाहःस्वप्नान् पञ्चरात्रं विवर्जयेत् ।।
स्नपनं पाप्मजित् पुण्यं नीरुजामपि पृष्टिकृत् ।
रोगिणां सर्वरोगघ्नं वन्ध्यानामपि पुत्रदम् ।।
विधिना विधिहीनन्तु सवैद्यं हन्ति बालकम् ।
नैतदश्रद्दधानाय योज्यं नानुपसीदते' ।। (अ.सं.उ. 5:51-52)

उपर्युक्त सामान्य चिकित्सा का प्रकरण देखने पर स्पष्ट होता है कि चिकित्सा में निम्नाङ्कित तथ्यों का विशिष्ट उल्लेख है—

1. शिशु को एकान्त में अलग एवं शान्त रखना ।
2. शिशु की स्वच्छता, स्नान ।
3. स्थान की स्वच्छता ।
4. वातावरण की स्वच्छता (धूपन कर्म) ।
5. मानसिक चिकित्सा—दैवव्यपाश्रय चिकित्सा, मन्त्र, पूजा, बलि, होम आदि ।

संक्रामक रोगों में तथा आक्षेप पैदा करने वाले रोगों में शिशु को अलग रखना (Isolation) तथा शान्त वातावरण में रखना आज भी महत्त्व रखता है । स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना भी संक्रामकता को कम करेगा । व्याधि की असाध्यता इसी से इंगित है कि व्याधि के उपद्रवों की एवं लाक्षणिक चिकित्सा तदनुरूप करने का कहते हुए, विशेष रूप से मानसिक सन्तोष हेतु दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का ही उल्लेख है ।

चिकित्सा प्रकरण में यहाँ तथा आगे भी विशेष स्थान पर स्नान आदि कराने का उल्लेख किया गया है, जो मेरी राय में संक्रामक व्याधि से उस ग्राम या क्षेत्र के पीड़ित होने का उल्लेख करता है । जैसा कि आज हम दूरदर्शन, आकाशवाणी, समाचारपत्र या ध्वनिविस्तारक यन्त्रों से करते हैं । प्राचीन काल में यह कार्य विशिष्ट स्थान पर स्नान, बलि, होम या विभिन्न प्रकार की पताकाओं के प्रयोग से होता था ।

इनका तुलनात्मक विवरण आगे बालग्रह विशेष के चिकित्सा प्रकरण में वर्णित है ।

विशिष्ट ग्रह-चिकित्सा

जैसा कि ऊपर सामान्य चिकित्सा क्रम में परिषेक, अभ्यङ्ग, धूपन, घृत-प्रयोग बलि तथा हवन का विधान वर्णित है, वही क्रम विशिष्ट चिकित्सा में भी लिया गया है ।

Scanned with CamScanner

स्कन्दग्रह-चिकित्सा

(1) परिषेक—स्कन्दग्रहोपसृष्ट शिशु को वातनाशक द्रुमपत्र क्वाथ के द्वारा स्नान करायें[1] ।

(2) अभ्यङ्ग—उन्हीं वातनाशक औषधि के मूल के क्वाथ में सर्वगन्ध (एला-दिगण या चातुर्जातकादि) द्रव्यों के कल्क तथा सुरा, मण्ड एवं महानिम्ब का कल्क या क्वाथ मिला सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें ।[2]

दोनों बृहती, दोनों पुनर्नवा, रेणुका, पिप्पली, मुस्ता, खदिर, वच, शङ्खनाभि, सरल, सर्पसुगन्धा तथा देवदारु कल्क-सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें ।[3]

(3) घृत एवं दुग्धपान—देवदारु, रास्ना, मधुर वृक्ष एवं मधुयष्टी कल्क तथा क्वाथ में सिद्ध घृत या क्षीरपाक बच्चे को पिलायें ।[4]

क्षीरिवृक्ष कषाय, सारिवा, काकोलीद्वय, बलाद्वय, शालपर्णी एवं पृश्निपर्णी तथा हस्तिकर्ण कल्क या क्वाथ से सिद्ध घृत या दूध पिलायें ।[5]

(4) धूपन—वचा, काकादनी, सर्पकेचुल, सर्षप, ऊँट, बकरी, भेड़, घोड़ा एवं गोलोम का घृत मिलाकर धूपन करें । अथवा श्वेत सर्षप, राल, कुष्ठ, हिङ्गु एवं गुग्गुल से धूपन करें ।[6]

---

1. (क) स्कन्दग्रहोपसृष्टानां कुमाराणां प्रशस्यते । वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्क्वाथः परिषेचने ॥ (सु.उ. 28:3, यो.र.बाल.चि.पृ. 448)
   (ख) वातहरवृक्षपत्रक्वाथेन कवोष्णेन परिषेक ·····। (अ.सं.उ. 6:2)
2. (क) तेषां मूलेषु सिद्धञ्च तैलमभ्यङ्गने हितम् । सर्वगन्धसुरामण्डकैडर्यावापमिष्यते ॥ (सु.उ. 28:4)
   (ख) ·····तेषामेव च मूलक्वाथे सर्वगन्धसुरामण्डकैडर्यावापतैलं विपक्वमभ्यङ्गः । (अं.सं.उ. 6:2)
3. बृहतीद्वयद्विपुनर्नवरेणुकोपकुल्यामुस्तखदिरवचाशङ्खनाभिसरलसर्पसुगन्धासुराहकल्कं विपक्वं वा । (अ.सं.उ. ६:३)
4. (क) देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु द्रुमेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥ (सु.उ. 28:5)
   (ख) रास्नादेवदार्वन्यतरकल्केन वा सक्षीरं साधितं सर्पिः ॥ (अ.सं.उ. 6:4-5)
5. क्षीरीवृक्षकषायेण क्षीरेण च सिद्धमर्धपलिकैश्च पिष्टैः ।
   शारिवाद्विकाकोली द्विपलांशुमती द्वयहस्तिकर्णपर्णीर्धृतप्रस्थं पानम् ॥ (अ.सं.उ. 6:4)
6. (क) वचाकाकादनीसर्पकञ्चुकसर्षपैरुष्ट्राजाव्यश्वगोरोमभिश्च सघृतैर्धूपः ।
   सिद्धार्थकसर्जरसकुष्ठहिङ्गुगुग्गुलुभिर्वा ॥ (अ.सं.उ. 6:6)
   (ख) सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ।
   उष्ट्राजाविगवाञ्चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥ (सु.उ. 28:6)

(5) औषधि-धारण—गुडूची, श्वेत दूर्वा, शमी, बिल्वकण्टक एवं इन्द्रायणमूल को सूत के धागे में बाँधकर बच्चे के गले में पहना दें ।[1]

(6) बलिकर्म—लाल पुष्पमाला, लाल वस्त्र की पताका, गुलाल, कुंकुम, केसर आदि लाल सुगन्ध द्रव्य एवं अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ तथा घण्टा एवं मुर्गे का मांस एक बड़े दोने में रख कर शिशु के हित में स्कन्द ग्रह को मन्त्र के साथ बलि देना चाहिए ।[2]

(7) बलिस्नान—रात्रि के समय दो बजे तीन दिन तक चौराहे के ऊपर बच्चे को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित किये जल से स्नान करायें तथा नवीन शालि, चावल एवं यव तथा गुग्गुलु के द्वारा अग्नि में हवन कर उसे प्रज्वलित करें तथा रक्षासूत्र का पाठ करें ।[3] रक्षासूत्र का उल्लेख बालग्रह आकृति वर्णन प्रकरण में है ।

(सु.उ. 28:11-14 तथा यो.र.बा.रो.चि.)

विशेष—वातघ्न द्रव्यों का प्रयोग, लाल वर्ण की विशेषता, लाल पताका एवं रात्रि में 3 दिन तक चौराहे पर स्नान ।

स्कन्दापस्मार चिकित्सा

(सु.उ. 29; अ.सं.उ. 6 तथा यो.रत्ना.बा.चि.प्र.)

(1) परिषेक—बिल्व, शिरीषत्वक्, श्वेत दूर्वा या वच तथा सुरसादि गण[3] की औषधियों का क्वाथ बनाकर मन्दोष्ण कर बच्चे का सिंचन करें ।[4]

---

1. (क) सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कण्टकान् ।
   मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ (सु.उ. 28:7)
   (ख) सोमवल्लीन्द्रवल्लीशमीबिल्ववन्दाकमृगादिनीमूलानि सूत्रेण ग्रथितानि कण्ठेन शिरसा वा धारयेत् । (अ.सं.उ. 6:7)
   (ग) सोमवल्लीमिन्द्रवृक्षं बृहतीं बिल्वजां शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानिग्रथितानि विधारयेत् ॥ (यो.र.बा.रो.चि.)
2. रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्ताश्च गन्धा विविधाश्च भक्ष्याः ।
   घण्टा च देवाय बलिर्निवेद्यः सकुक्कुटः स्कन्दग्रहे हिताय ॥ (सु.उ. 28:8)
   (ख) रक्तमाल्यानुलेपवस्त्रपताकामणिबीजैर्विविधैश्च भक्ष्यैः सदधिघृतमधुलाजकुल्माष-मांसमत्स्यसुरासवं समयूरकुक्कुटं सघण्टकाम् सशूर्पव्यञ्जनं च कुमारग्रहे रक्तौदनेन बलिमुपोषितो निवेदयेत् । (अ.सं.उ. 6:8-9)
3. सुरसादि गण—सुरसा, श्वेत सुरसा, पाठा, सौगन्धिक, भूस्तृणक, राजिका, कट्फल, कासमर्द आदि औषधियों का वर्ग जो कफ-कृमिहर होता है ।
4. (क) बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः ।
   परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ (सु.उ. 29:3)
   (ख) गोलोमीबिल्वशिरीषमुस्तसुरसादिक्वाथेन परिषेकः । (अ.सं.उ. 6:13)

Scanned with CamScanner

(2) अभ्यङ्ग—सर्वगन्ध द्रव्यों के कल्क एवं क्वाथ से पकाये तैल का अभ्यङ्ग करना चाहिए।[1] सर्पसुगन्धा, देवदारु, कुष्ठ एवं मुस्ता तथा गाय या बकरे के मूत्र से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें।[2]

(3) घृतपान—क्षीरीवृक्ष कषाय, काकोल्यादि गण की औषधि से साधित कल्क में घृत का पाक कर दूध या जल के साथ मिला कर दें[3] अथवा—जीवक, ऋषभक, क्षीरिणी, बृहती, हरिद्रा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मधुक इनके कल्क से गोमूत्र और अजामूत्र में दूध के साथ घी सिद्ध कर दें अथवा—विदारीद्वय, मुनक्का, मधुक, रास्ना, नीलकमल की जड़, वचा एवं व्योष सिद्ध घृत का पान करायें।[4]

(4) लेप-उबटन—वचा तथा हिङ्गु को पानी के साथ पीस कर उबटन लगायें या वचा व कुष्ठ कल्क का लेप करें।[5]

(5) धूपन—गीध एवं उल्लू की विष्ठा, भेड़, बकरी एवं बिल्ली के लोम, हस्ति-नख, घृत एवं बैल के बालों से अग्नि में धूपन करें।[6]

(6) औषधि-धारण—अनन्ता, शाल्मली, बिम्बी एवं कपिकच्छू का मूल, लता-पत्रादि को लाल डोरे में बाँधकर गले में धारण करायें।[7]

(7) बलिविधान, स्नान व रक्षासूत्र—पक्व-अपक्व मांस, सुरा, रक्त, दुग्ध एवं भूतौदन तथा उबला उड़द इन्हें मिट्टी के पात्र या दोने में भर कर मध्याह्न, सन्ध्या या अर्धरात्रि के समय चौराहे पर या श्मशान में गड्ढा बना कर या वटवृक्ष मूल में बलि दें। बालक को चौराहे पर स्नान करायें तथा रक्षासूत्र का पाठ करें।[8] (रक्षासूत्र के लिए देखें—'बालग्रह-आकृति' वर्णन)

1. सर्वगन्धविपक्वन्तु तैलमभ्यञ्जने हितम्। (सु.उ. 29:4)
2. सर्पसुगन्धादेवदारुकुष्ठमुस्ताकल्केन सगोमूत्रबस्तमूत्रे सिद्धं तेलाभ्यङ्गः। (अ.सं. 13)
3. क्षीरवृक्षकषाये च काकोल्यादौ गणे तथा। विपक्तव्यं घृतं चापि पानीयं पयसा सह॥ (सु.उ. 29:5)
4. क्षीरीवृक्षकषायेण जीवनीयगर्भं सवयस्कं सर्पिः सिद्धं पानम्। जीवकर्षभकक्षीरिणीबृहती-हरिद्राशुंमतीद्वयमधुकैर्वा विदारीद्वयतवक्षीरीमृद्वीकामधुकरास्नानीलोत्पलकन्दवचाव्योषैर्वा। (अ.सं.उ. 6:14)
5. (क) उत्सादनं वचाहिङ्गुयुक्तं स्कन्दग्रहे हितम्। (सु.उ. 29:6)
   (ख) विशाखे स्कन्दग्रहोक्तो वचाकुष्ठान्वितः प्रदेहो। (अ.सं. 6:13)
6. (क) गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखा घृतम्।
   वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च॥ (सु. 29:7)
   (ख) गृद्ध्रोलूकपुरीषवृषभरोमकेशहस्तिनखैर्घृतात्तैर्धूपः। (अ.सं. 15)
7. (क) अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत्। (सु.उ. 29:8)
   (ख) अनन्ताकुक्कुटीमर्कटीबिम्बीसमङ्गाश्वेतगिरिकर्णिकाः पूर्वोक्तानि च पूर्ववद्धारयेत्। (अ.सं. 6:15)
8. (क) पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः।
   (ख) भूतौदनो निवेद्यश्च स्कन्दापस्मारिणेऽवटे। चतुष्पथे च कर्त्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना॥ (सु.उ. 29:10)

कापहर औषधि का प्रयोग वटवृक्ष मूल में या चौराहे या श्मशान में बलि एवं चौराहे पर स्नान। पताका का उल्लेख नहीं है।

नैगमेष चिकित्सा

(1) परिषेक—बिल्वत्वक्, अरणीत्वक्, करञ्जत्वक् के क्वाथ से अथवा सुरा, सौवीर एवं कांजी के द्वारा सिञ्चन करें। अग्निमन्थ, वरुण, नल, रोहिष, छोटा करञ्ज तथा पारिभद्र से स्नान करायें।[1]

(2) अभ्यङ्ग—प्रियङ्गु, सरला, अनन्तमूल, शतपुष्पा एवं कुटन्नट का कल्क तथा गोमूत्र, दधि, दधि-जल तथा कांजी लेकर यथाविधि तैलपाक कर तैल से अभ्यङ्ग करें। कांजी, किण्व, गुग्गुल, अश्वगन्धा, सर्षप, उशीर, वच, कुष्ठ एवं शतपुष्पा सिद्ध तैलाभ्यङ्ग करें।[2]

(3) घृत आदि का पान—लघु एवं बृहत् पञ्चमूल के क्वाथ से क्षीर, मधुरकादि गणौषधि के कल्क को दुग्ध में मिलाकर घृत सिद्ध कर लें या खजूर के पानी में घृत सिद्ध करें तथा इसे पान करायें या दशमूल क्वाथ, मधुरस्कन्धगणौषधि से साधित क्षीर एवं घृत का पान करायें।[3]

(4) लेप-उबटन—स्कन्दापस्मार के समान ही लेप-उबटन करें।[4]

(5) औषधि-धारण—वचा, वयःस्था, गोलोमी (दूर्वा) एवं जटामांसी को धागे में बाँधकर गले में पहनायें। सर्पगन्धा, बस्तगन्धा, तुम्बी, शतावरी, सहदेवा एवं पुनर्नवा आदि धारण करायें।[5]

(ख) पक्वाममांसरुधिरदधिवारुणीयुक्तो वटवृक्षे बलिश्चतुष्पथे स्नानम्। (अ.सं.उ. 6:16)
1. (क) बिल्वाग्निमन्थपूतीकाः कार्याः स्युः परिषेचने। सुरा सबीजं धान्याम्लं परिषेके च शस्यते। (सु.उ. 36:3, यो र. बाल. चि.)
   (ख) अग्निमन्थवरुणनलरोहिषपूतीकपारिभद्रकैः परिषेको ·····। (अ.सं.उ. 6:17)
2. (क) प्रियङ्गुसरलाऽनन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः। पचेत्तैलं सगोमूत्रैर्दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः। (सु.उ. 36:4 यो.र.बा.रो.चि.)
   (ख) धान्याम्लेन सबीजेन गुग्गुल्वश्वगन्धासर्षपोशीरश्वेताकुष्ठशताह्वाविपक्वं तैलमभ्यङ्गः। (अ.सं.उ. 6:17)
3. (क) पञ्चमूलद्वयक्वाथे क्षीरे मधुरकेषु च। पचेद् घृतञ्च मेधावी खर्जूरीमस्तकेऽपि वा। (सु.उ. 36:5)
   (ख) दशमूलक्वाथे मधुरस्कन्धगर्भं सक्षीरं सर्पिःपानम्। (अ.सं.उ. 6:18)
4. (क) उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम्। (सु.उ. 36:6)
   (ख) नैगमेषे विशाखोक्तः प्रदेहो। (अ.सं.उ. 6:17)
5. (क) वचां वयःस्थां गोलोमीं जटिलां चापि धारयेत्। (सु.उ. 36:5½)
   (ख) सर्पगन्धावस्तगन्धातुम्बीमृगोर्वारुशतावरीसहदेवापुनर्नवबीजानि धारयेत्। (अ.सं.उ. 6:18)

Scanned with CamScanner

(6) धूपन—श्वेत सर्षप, वचा, हिङ्गु, कूठ, अक्षत, भल्लातक एवं अजमोदा चूर्ण से अथवा सर्पगन्धा, बकरे का नख एवं रोम से अथवा मर्कट, उल्लू एवं गीध की विष्ठा लेकर रात्रि में सो जाने पर नवग्रह कोप में धूपन करें ।[1]

(7) बलि-स्नान—एक सकोरे या दोने में तिल, चावल, माला तथा अनेक प्रकार के लड्डू लेकर भक्ष्य पदार्थ से वृक्षमूल में बलि दें या षष्ठी तिथि को न्योग्रधवृक्षमूल पर बलि दें । शिशु को वटवृक्ष के नीचे स्नान करायें या नदीतट पर स्नान करायें । रक्षा-सूत्र (बालग्रह-आकृति वर्णन में वर्णित) पढ़ें ।[2]

चिकित्सा में स्कन्दापस्मार में प्रलेप—उबटन में समानता, दशमूल प्रयोग, वट-वृक्ष-न्यग्रोध मूल पर बलि, स्नान या नदी तीर पर स्नान ।

श्वग्रह-चिकित्सा

(अ.सं.उ. 6:20-23)

(1) परिषेक—(बिल्वादिपत्रक्वाथ: परिषेकः) बिल्वादि पत्रक्वाथ से परिषेक करें। बिल्व, एरण्ड, नक्तमाल एवं श्योनाक के क्वाथ से स्नान करायें ।[3]

(2) अभ्यङ्ग—वय:स्था, शतावरी, सारिवा, दूधी, एरण्ड, सहदेवा एवं त्रिकटु का कल्क तथा दूध के साथ सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करें ।[4]

(3) लेप—गवाक्षी, ब्राह्मी, बृहतीद्वय, सारिवा, ह्रीबेर, कुष्ठ, भूमिकदम्ब, तुलसी-मंजरी, कनेरपुष्प, मयूर, उलूक, अश्व, महिषी के पुरीष एवं रोम से लेप करें ।[5]

(4) घृतपान—अभ्यङ्गार्थ बतायी गयी औषधियों से सिद्ध घृत का पान करें।

---

1. (क) सिद्धार्थकवचाहिंङ्गुकुष्ठश्चैवाक्षतैः सह । भल्लातकाजमोदाश्च हितमुद्धूपनं शिशोः । मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि नवग्रहे । धूपः सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता । (सु.उ. 36:7-8)
   (ख) सर्पगन्धाबस्तनखरोमभिर्धूपः । (अ.सं.उ. 6:18)
   (ग) कमठालूकगृध्राणां पुरीषाणि पितृग्रहे । धूपं सुप्ते जने काया बालस्य हितमिच्छता ॥ (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 456)
2. (क) तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि । कुमारपितृमेषाय वृक्षमूले निवेदयेत् । अधस्ताद्वटवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते । बलिं न्यग्रोधवृक्षेषु तिथौ षष्ठ्यां निवेदयत् ॥ (सु.उ. 36:9-10)
   (ख) विचित्रमाल्यफलशुक्लविलेपनोदनदधिघृतगुणक्षीरैर्महापथे क्षीरिद्रुमे वा बलिः नदी-तीने स्नानम् मन्त्रश्च । (अ.सं.उ. 6:19)
3. बिल्वैरण्डनक्तमालारलुकपत्रक्वाथः परिषेकः । (अ.सं.उ. 6:20)
4. वयःस्थाशतावरीशारिवापयस्यैरण्डसहदेवात्रिकटुकल्कक्षीरसिद्धं तैलमभ्यङ्गः । तथैव च घृतं पानम् । (अ.सं.उ. 6:21)
5. श्वग्रहे गवाक्षीब्रह्मादत्ताबृहतीद्वयशारिवाह्रीबेरकुष्ठभूमिकदम्बसुरसमञ्जरीकरवीरपुष्पैः प्रदेहः । मयूरोलूकाश्वमहिषीपुरीषरोमभिश्च । (अ.सं.उ. 6:21)

(5) धूपन—गाय एवं बकरी के मूत्र से भावित सूखी मछली के चूर्ण से धूपन करें ।[1]

(6) औषधि-धारण—वचा, वय:स्था, ब्राह्मी, जटामांसी, दूर्वा, कटुतुम्बी, हरीतकी, भूतकेशी, सहदेवी आदि को धारण करायें ।[2]

(7) बलि-स्नान—घृत, मांस, सुरा, दही, रक्त एवं तिलकल्क से चतुष्पथ पर बलि दें । कूड़े के ढेर पर स्नान करायें ।[3] रक्षासूत्र का पाठ करें ।

रक्षासूत्र—

"रक्षार्थं कार्तिकेयस्य कृत्तिको याग्निशूलिभिः ।
योऽसौ श्वविग्रहः सृष्टः स देवस्त्वाभिरक्षतु" ।।

तैल एवं घृत में एक ही प्रकार की औषधि का प्रयोग, चतुष्पथ पर बलि तथा कूड़े के ढेर पर स्नान ।

पितृग्रह-चिकित्सा

(अ.सं.उ. 6:24-29)

(1) परिषेक—बिल्व, कपित्थ, करञ्ज, तक्कारी, तुलसी, पाटला, पारिभद्र, पारिजात तथा मातुलुङ्गपत्र क्वाथ से रात्रि में परिषेक करें ।[4]

(2) अभ्यङ्ग—वचादि (प्रलेपोक्त) औषधि-सिद्ध तैल से या बिल्वादि (परिषेक में कही औषधि) औषधि, सुरा, बकरी के मूत्र से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें ।[5]

(3) प्रलेप—श्वग्रह चिकित्सा में कहा गया लेप अथवा वचा, वय:स्था, आमलकी, जीवन्ती, धातकी, प्रियङ्गु, गुग्गुलु, रास्ना, मन:शिला एवं हरताल से प्रलेप करें । नस्य औषधियों का सुरा में पीस कर लेप करें ।[6]

---

1. गोबस्तमूत्रभावितशुष्कमत्स्यचूर्णो निशीथे धूपः । (अ.सं.उ. 6:21)
2. वचावयःस्थाब्राह्मीजटिलागोलोमीलम्बापूतनाकेशीगिरिकदम्बकेकैषिकासहदेवाः धारयेत् । (अ.सं.उ. 6:22)
3. सघृतसुरामांसदधिरुधिरपललचत्वरे बलिः । सङ्करकूटे स्नानम् । (अ.सं.उ. 6:23)
4. बिल्वकपित्थकरञ्जतक्कारीसुरसपाटलीवरणपारिभद्रकपारिजातमातुलुङ्गपत्रक्वाथेन रात्रौ परिषेको । (अ.सं.उ. 6:25)
5. वचादिभिरेव सिद्धं तैलमभ्यङ्ग । ···बिल्वादिभिरेव च तैलं सुराबस्तमूत्रयुक्तं साधितमभ्यङ्गः ॥ (अ.सं.उ. 6:24-25)
6. पितृग्रहे पूर्वोक्तप्रदेहो वचावयःस्थाजीवन्तीधातकीप्रियङ्गुगुग्गुलुरास्नामनःशिलालैर्वा । ·····एभिरेव च सुरापिष्टैर्लेपः । (अ.सं.उ. 6:24, 27)

Scanned with CamScanner

(4) घृतपान—त्रिफला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, पयस्या तथा मधुक का कल्क दशमूल क्वाथ एवं दुग्ध में घृत सिद्ध कर पान करायें। देवदारु, भार्ङ्गी, विडङ्ग, चन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सिद्धक्षीर का पान करायें।[1]

(5) नस्य—शमी, गुग्गुलु, कुष्ठ, दूर्वा, जटामांसी तथा वचा से सिद्ध तैल का नस्य देना चाहिए।[2]

(6) धूपन—गीध, उलूक, वानर के लोम या पुरीष तथा घृत से रात्रि में धूपन करें।[3]

(7) औषधि-धारण—प्रलेपोक्त वचादि औषधियों को धारण करायें।[4]

(8) बलि-स्नान—सुरा, आसव, गुड, पूप, तिलकल्क आदि की वृक्षमूल में बलि दें। क्षीरीवृक्षमूल में स्नान करायें।[5] रक्षासूत्र पढें।

रक्षासूत्र—

"यः पिता सर्वबालानां ग्रहाणां पूजितो वरः।
वृक्षमूले कृतावासः सरत्वां पातु पिता सदा" ॥

श्वग्रह-चिकित्सा में कहे गये लेप का प्रयोग, वृक्षमूल में बलि तथा क्षीरीवृक्षमूल में स्नान।

शकुनीग्रह-चिकित्सा

(सु.उ. 30 एवं अ.सं.उ. 6)

(1) परिषेक—शिशु को वेतस, आम्रपत्र एवं कपित्थपत्र क्वाथ से परिषेक करायें या क्षीरीवृक्ष कषाय से परिषेक करें।[6]

(2) अभ्यङ्ग—न्यग्रोधादिक कषाय रस-प्रधान द्रव्यों के क्वाथ एवं काकोल्यादि मधुर रस-प्रधान द्रव्यों के कल्क से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें या भृङ्गराज, मूली, आम-लकी, तेजपत्र, प्रियङ्गु, मैनसिल, एलाद्वय, मधुयष्टी, सुपारी, लोध्र, धातकी,

1. त्रिफलांशुमतीद्वयपयस्यामधुककल्केन दशमूलनिर्यूहे सक्षीरं सर्पिः पक्वं पानम्। देवदारु-भार्ङ्गीविडङ्गचन्दनकाकोलीद्वयजीवकर्षभकैर्वा सक्षीरैः। (अ.सं.उ. 6:26)
2. लक्ष्मीपुरकुष्ठगोलोमीजटिलोग्रगन्धाभिः सिद्धं तैलं नावनम्। (अ.सं.उ. 6:27)
3. गृद्ध्रोलूकवानररोमाणि सघृतानि तत्पुरीषं वा सुप्तजने धूपो। (अ.सं.उ. 6:28)
4. वचादिभिर्वा प्रदेहोक्तैः, पूर्वोक्तो वा। पूर्वोक्ता एव च धारयेत्। (अ.सं.उ. 6:28)
5. सुरासवगुडापूपपिष्टतिलकृतभक्षोपवृक्षमूले स वृषभः काञ्चनाक्षियुगयुक्तः स्वयं पित्रा कुमारस्य निर्वापणीयो बलिः। क्षीरीवृक्षसमीपे स्नानम्। (अ.सं.उ. 6:20)
6. (क) शकुन्याभिपरीतस्य कार्य्यो वैद्येन जानता। वेतसाम्रकपित्थानां निष्क्वाथः परिषेचने। (सु.उ. 30:3)
(ख) क्षीरितरुभिः परिषेको ·····। (अ.सं.उ. 6:31)

सारिवा, अञ्जन, नीला कमल, पतङ्ग, मञ्जिष्ठा, हरिद्राद्वय, जटामांसी, चन्दन, पद्मक, स्वर्ण-गैरिक कल्क एवं दूध से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें। यह ग्रहनाशक एवं व्रण-रोपक है।[1]

(3) लेप—मधुयष्टी, उशीर, ह्रीबेर, सारिवा, कमल, पद्मक, लोध्र, प्रियङ्गु, मञ्जिष्ठा एवं स्वर्णगैरिक चूर्ण पानी में पीसकर लेप करें या व्रणरोपणार्थ लोध्र, यष्टीमधु, मञ्जिष्ठा, हरीतकी एवं देवदारु को सुरा-मूत्र में पीस कर लेप करें या वेतस, जम्बीरी नींबू, कपित्थ एवं पञ्चमूल या शुक्ति, शङ्ख, शम्बूक भस्म, मञ्जिष्ठा, अभया एवं मधुक को तैल में पकाकर व्रणरोपणार्थ प्रयोग करें। व्रणरोपणार्थ पूर्व में कहे गये चूर्ण-पथ्यादि का प्रयोग करें।[2]

(4) मुखपाक में—अर्जुन फल, लोध्र, मधुयष्टी, उदुम्बर तथा वचा चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर मुख में घर्षण करें।[3]

(5) घृतपान—स्कन्दापस्मार में कहे गये घृतों का पान करायें।[4]

(6) धूपन—स्कन्दग्रह के समान करें। काकपङ्ख, गोबाल, उग्रगन्धा, रक्षोघ्न घृत, मयूरपुच्छचन्द्र के द्वारा धूपन करें।[5]

1. (क) कषायमधुरैस्तैलं कार्यमभ्यञ्जने शिशोः। (सु.उ. 31:4)
(ख) माकवमूलकामलकीत्वक्पत्रप्रियङ्गुमनश्शिलालैलाद्वययष्टीक्रमुकलोद्ध्रधातकीशारिवाञ्जननीलोत्पलपद्मकसमङ्गद्विहरिद्रामांसीगजिष्ठाचन्दनपद्मकसुवर्णगैरिकस्तैलं सपयस्कं सक्वथमभ्यङ्गो ग्रहव्रणरोपणाश्च। (अ.सं.उ. 6:31)
2. (क) मधुकोशीरह्रीवेरसारिवोत्पलपद्मकैः। रोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम्॥ (सु.उ. 30:5)
(ख) शकुन्यां मधुकह्रीवेरोशीरशारिवापद्मकोत्पलमञ्जिष्ठालोध्रप्रियङ्गुगैरिकैः प्रदेहः सुरामूत्रपिष्टैर्वा लोध्रयष्टीमधुकमञ्जिष्ठाहरीतकीदेवदारुभिर्व्रणोक्ताश्च प्रदेहाः। वेतसाम्लकपित्थैः सपञ्चमूलैर्वा। शुक्तिशङ्खशम्बूकभस्ममञ्जिष्ठाभयामधुकैस्तैलं पक्वं व्रणरोपणम्। (अ.सं.उ. 6:30)
(ग) व्रणेभ्युक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च। (सु.उ. 30:5)
3. अर्जुनफललोध्रमधुकोदुम्बरवचाचूर्णः क्षौद्रयुक्तो मुखपाके मुखोद्धर्षः। (अ.सं.उ. 9:30)
4. (क) विशाखोक्तं सर्पिःपानम्। (अ.सं.उ. 6:32)
(ख) स्कन्दापस्मारशमनं घृतमात्रापि पूजितम्। (यो.र.बा.रो.चि.)
5. (क) स्कन्दग्रहे धूपनानि तानीहापि प्रयोजयेत्। (सु.उ. 30:6)
(ख) स्कन्दोक्तधूपः। काकपिच्छेन वा गोबालोग्रगन्धारक्षोघ्नघृतमयूरचन्द्रकैर्वा। (अ.सं.उ. 6:32)
(ग) स्कन्दग्रहोक्तधूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि। (यो.र.बा.रो.चि.)

Scanned with CamScanner

(7) औषधि-धारण—शतावरी, मृगैर्वारु, नागदन्ती, कण्टकारी, लक्ष्मणा, सहदेवा तथा बृहती को धारण करायें। उपरोक्त तथा कटम्भरा, कुक्कुटी, मर्कटी, सहदेवा, हीबेर एवं उशीर को भी धारण करना चाहिए।[1]

(8) बलि-स्नान—रात्रि के समय स्नानादिक से पवित्र होकर दोनी में तिल, पक्व चावल, माला, हरताल, मैनशिल, रक्तकरञ्ज वृक्षमूल में बलि दें। गृहोपवन में शिशु को निकुम्भोक्त विधि से स्नान करायें।[2] रक्षासूत्र ('बालग्रह आकृति' वर्णन में वर्णित) का पाठ करें।

कषाय रस प्रधान द्रव्य का प्रयोग, व्रणरोपण चिकित्सा पर विशेष ध्यान, करञ्जवृक्ष मूल पर बलि, गृहोपवन में स्नान।

पूतनाग्रह-चिकित्सा

(1) परिषेक—ब्राह्मी या ब्रह्मसुवर्चला, श्योनाक, वरुण, पारिभद्र एवं सारिवा क्वाथ से या कपित्थ, शिरीष, न्यग्रोध, बिल्व, एरण्ड, बकुल-धव, बाँस एवं अग्निमन्थ के पत्र तथा सर्पगन्धोदक क्वाथ से परिषेक करें। काश्यप ने करञ्ज, शोभाञ्जन, बाँस, सप्तपर्ण, निम्ब एवं भारंगी से परिषेक कहा है।[3]

(2) अभ्यङ्ग—वचा, ब्राह्मी, श्वेत दूर्वा, हरताल, मैनशिल, कुष्ठ एवं राल के कल्क से साधित तैल से या उपरोक्त द्रव्य में से ब्राह्मी एवं हरताल के स्थान पर आमलकी लेकर उसके कल्क से या सुरा, काञ्जी, हरताल, मैनशिल, कुष्ठ एवं राल कल्क से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें।[4]

---

1. (क) शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाः। लक्ष्मणां सहदेवाञ्च बृहतीञ्चापि धारयेत्॥ (सु.उ. 30:6)
   (ख) कटम्भराकुक्कुटीमर्कटीलम्बासहदेवाह्रीबेरोशीराणि धारयेत्। नागदन्तीलक्ष्मणा-बृहतीद्वयमृगैर्वारुशतावरी सहदेवी वा। (अ.सं.उ. 6:33)
2. (क) तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला। बलिरेष करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना॥ निष्कुटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि॥ (सु.उ. 30:7-8)
   (ख) तिलतण्डुलमत्स्यमनश्शिलाहरितालसम्पृक्तस्तिलपिष्टकृतशकुनिकैः करञ्जे बलिर्निष्कुटे स्नानम्। (अ.सं.उ. 6:34)
   (ग) निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत्तु ततः पठेत्॥ (यो.र.बा.रो.चि.)
3. (क) कपोतवङ्काऽरलुको वरुणः पारिभद्रकः।
   आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने॥ (सु.उ. 32:3)
   (ख) कपित्थशिरीषन्यग्रोधबिल्वैरण्डबकुलधववंशाग्निमन्थपत्रक्वाथः सर्वगन्धोदकयुक्तः परिषेको। (अ.सं.उ. 6:35)
   (ग) करञ्जशोभाञ्जनका वा स्फोटा ह्याटरूषकः। सप्तपर्णश्च निम्बश्च भार्गी च परिषेचनम्॥ (का.सं. बालग्रहचि.)
4. (क) वचा वयःस्था गोलोमी हरितालं मनःशिला। कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते॥ (सु.उ. 32:4)

(3) प्रलेप—हिंगु, वचा, कदम्ब, कुष्ठ, एलाद्वय एवं देवदारु का लेप करें।[1]

(4) घृतपान—वंशलोचन, काकोल्यादि मधुर गण (या मात्र अकेले गण), कुष्ठ, राल, तालीसपत्र, खदिर, श्वेत चन्दन एवं अर्जुन कल्क से साधित घृत दें। पिप्पली, पिप्पलीमूल, बृहती, कटेरी, शालपर्णी एवं पृश्निपर्णी, महुआ एवं मुलेठी तथा क्षीर से सिद्ध घृत देना चाहिए।[2]

(5) धूपन—देवदारु, वचा, हिङ्गु, कुष्ठ, गिरिकर्णिका, कदम्ब पुष्प, छोटी एला एवं हरेणुका चूर्ण को घृत में मिलाकर धूपन करें। एलाद्वय, कुष्ठ, वचा, हिङ्गु, देवदारु तथा कदम्ब चूर्ण से अभ्यङ्ग करें।[3] कुक्कुटबीट, केश, चर्म, भिक्षुओं का पुराना जीर्ण वस्त्र एवं सर्पकेंचुल से सायंकाल घृत से धूपन करें।[4]

(6) औषधि-धारण—श्वेतगुञ्जा, इन्द्रायणमूल या कण्टकारी तथा गुञ्जा की माला को धारण करें। अनन्ता, कुक्कुटी, बिम्बी, नीम तथा काकड़ाशृङ्गी को बाँधकर हाथ या पैर में पहनायें।[5]

(ख) कुष्ठसर्जरसवचागोलोमीवयःस्थामनःशिलालैस्तैलं साधितमभ्यङ्गम्। (अ.सं.उ. 6:36)
(ग) सुरासौवीरकाभ्यां च हरितालं मनःशिला। कुष्ठं सर्जरसं चैव तैलमभ्यञ्जनं पचेत्॥ (का.सं. बालग्रहचि.)
(घ) न वा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला।
कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थं कल्क इष्यते॥ (यो.र.बा.रो.चि)

1. पूतनायां हिङ्गुवचागिरिकदम्बकुष्ठैलाद्वयसुराहैः प्रदेहः। (अ.सं.उ. 6:35)
2. (क) मधुरौषधैः साधितं सर्पिः पानम्। (अ.सं.उ. 6:36)
   (ख) हितं घृतं तुगाक्षीर्य्यां सिद्धं मधुरकेषु च। कुष्ठतालीसखदिरचन्दनस्यन्दने तथा॥ (सु.उ. 32:5)
   (ग) पिप्पली पिप्पलीमूलं बृहती कण्टकारिका। शालपर्णी पृश्निपर्णी मधूकं मधुकस्तथा।
   एवं सम्भृत्य सम्भारं क्षीरे सर्पिर्विपाचयेत्॥ (का.सं. बालग्रहचि.)
3. (क) देवदारुवचाहिङ्गुकुष्ठं गिरिकदम्बकः। एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा॥ (सु.उ. 32:6)
   (ख) एलाद्वयकुष्ठवचाहिङ्गुदेवदारुगिरिकदम्बकैर्धूपः। (अ.सं.उ. 6:36)
4. कुक्कुटस्य पुरीषं च केशाश्चर्म पुराणकम्। जीर्णां च भिक्षुसङ्घाटीं सर्पनिर्मोचनं घृतम्॥
   धूपमेतुं प्रयुञ्जीत सन्ध्याकाले सुखङ्करम्॥ (का.सं.चि. बालग्रहचि.पृ. 102)
5. (क) गन्धनाकुलिकुम्भीके मज्जानो बदरस्य च। कर्कटास्थि घृतञ्चापि धूपनं सर्षपैः सह॥
   काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जाश्च धारयेत्। (सु.उ. 32:7-8)
   (ख) अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीमरिष्टामथ कर्कटीम्।
   सूत्रेण ग्रथिता एता धारयेत् पाणिपादयोः॥ (का.चि.बालग्रहचि.)

Scanned with CamScanner

(7) सामान्य चिकित्सा—व्याधिवत् चिकित्सा करें।[1]

(8) बलिस्नान—एक सकोरे में मछली, भात, खिचड़ी एवं मांस की शून्य खण्डहर में बलि दें। किसी देवता का अभिषेक कराये जल से बच्चे को स्नान करायें। बालरक्षा मन्त्र का पाठ करें। मन्त्र 'बालग्रह-आकृति' में वर्णित है।[2]

काकोल्यादि एवं मधुरगणौषधि का प्रयोग, अभ्यङ्गार्थ हरिताल तथा मैनशिल के प्रयोग को प्रधानता, शून्य खण्डहर में बलि, स्नान के लिए विशिष्ट स्थल नहीं।

शीतपूतनाग्रह-चिकित्सा

(1) सिद्धान्त—शीतकारक चिकित्सा द्वारा शीतपूतना की चिकित्सा करें।[3]

(2) परिषेक—कपित्थत्वक्, रास्ना, बिम्बीफल, बिल्व फल या त्वक्, प्रचीबल, नन्दी वृक्ष एवं भल्लातकमूल क्वाथ के द्वारा परिषेक करें। काश्यप ने नादेयी, सुरसा, बिम्बी, कपित्थ, जीवक, नन्दी, भल्लातक, श्यामा, बिल्व एवं शीतशिव के क्वाथ से परिषेक के लिए कहा है। वाग्भट ने वरुण, कपित्थ, तुलसी, वंश, बिल्व, पाटला, नन्दी तथा भल्लातक-पत्र के क्वाथ से स्नान बतलाया है।[4]

(3) तैलाभ्यङ्ग—बकरी तथा गोमूत्र या तैल से एवं नागरमोथा, देवदारु, कुष्ठ, चतुर्जातक, कर्पूरादि सर्वगन्ध द्रव्य के कल्क से तैल सिद्ध कर तैल का अभ्यङ्ग करें। प्रायः इसी का उपयोग सभी ने बतलाया है।[5]

1. यो यशाभिषवेद्व्याधिस्तं च तं विनिवर्तयेत्॥ (का.सं.चि. बालग्रहचि.पृ. 102)
2. (क) मत्स्यौदनश्च कुर्वीत कृशरां पललं तथा। शरावसम्पुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे हरेत्॥
उच्छिष्टेनाभिषेकेण शिशोः स्नपनमिष्यते। पूज्या च पूतना देवी बलिभिः सोपहारकैः॥ (सु.उ. 32:9-10)
(ख) विचित्रमाल्यमत्स्यौदनकृसरपबलवान् बलिं सङ्करकूटे। तद्वच्छरावसम्पुटस्थः शून्यगृहे चतुर्दिशं प्रक्षेप्यः। तत्र चोच्छिष्टेन स्नपनम्। (अ.सं.उ. 6:37)
3. शीतङ्कारचिकित्साभिः शमयेच्छीतपूतनाम्। (का.सं.बालग्रहचि.पृ. 102)
4. (क) कपित्थं सुवहां बिम्बीं तथा बिल्वं प्रचीबलम्।
नदीं भल्लातकञ्चापि परिषेके प्रयोजयेत्॥ (सु.उ. 34:3)
(ख) अतश्चोर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शीतपूतनयाऽर्दिते। नादेयी सुरसा बिम्बी कपित्थं जीवकस्तथा। नदीभल्लातकं श्यामा बिल्वं शीतशीवं तथा। एतं कषायं निष्क्वाथ्य परिषिञ्चेत् सुखाम्बुना॥ (का.सं. बालग्रहणचि.)
(ग) वरुणकपित्थतुलसीपाशिकावंशीबिल्वपाटलीनन्दीभल्लातकपत्रनिर्यूहेण परिषेकः। (सु.उ. 6:38)
5. (क) बस्तमूत्रं गवां मूत्रं मुस्तञ्च सुरदारु च। कुष्ठञ्च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवचारयेत्॥ (सु.उ. 34:4)
(ख) गोमूत्रः बस्तमूत्रं च मुस्तकं देवदारु च। कुष्ठं च सर्वगन्धाश्च तैलमभ्यञ्जनं पचेत्॥ (का.सं.चि.बाल.चि.)
(ग) मुस्तामरदारुकुष्ठसर्पगन्धैर्गोबस्तमूत्रयुक्तं तैलं विपक्वमभ्यङ्गः। (अ.सं.उ. 6:39)

(4) प्रलेप या उबटन—पूतना ग्रह में कहा गया प्रलेप प्रयोग करना चाहिए।[1]

(5) घृतपान—रोहिणी, सर्ज, खदिर, पलाश एवं अर्जुनत्वक् क्वाथ एवं क्षीर सिद्ध घृत का पान करायें। वाग्भट ने शीतपूतना, छर्दि, हिक्का, श्वास, कास के शमनार्थ काश्मरी, पृश्निपर्णी, लोध्र, मधुक, मधुरवर्गौषधि एवं क्षीर सिद्ध घृत का पान कराने को कहा है। शीतपूतना एवं अतिसार में प्रथमोक्त घृत का पान कहा है।[2] काश्यप ने अनेक घृतयोग कहे हैं;[3] यथा—

1. पञ्चकोल, लघुपञ्चमूल तथा सैंधव सिद्ध घृत को दीपनीय कहा गया है। इसे मधु व शर्करा के साथ देने से शीतपूतना शान्त होती है।

2. रास्ना, पुनर्नवा, कुष्ठ, तगर, देवदारु, तेजपत्र, अगर, हरेणु, गिलोय, त्रिफला, सिता एवं दशमूल तथा दूध से घृत को सिद्ध करें।[4]

3. खदिर, कट्फलसार, पलाश तथा अर्जुनत्वक् का क्वाथ बनाकर दूध सहित घृत को सिद्ध करें। इससे सिद्ध घृत में शर्करा तथा मधु मिलाकर उचित काल में सेवन करने से तथा पथ्य का सेवन करने से बालक शीतपूतना ग्रह से मुक्त हो जाता है।[5]

(6) धूपन कर्म—गीध एवं उल्लू की विष्ठा, वस्तगन्धा, सर्पकेंचुल, निम्बपत्र एवं मधुयष्टी से धूपन करें अथवा—गीध, उल्लू एवं तेंदुवा की विष्ठा, चित्रक, बकरे के बाल तथा पिचुमन्द का धूपन दें अथवा जीर्ण गोचर्म, सर्षप, भिक्षुवस्त्र एवं सर्पकेंचुल से धूपन करें।[6]

1. शीतपूतनायां पूतनोक्तः प्रदेहो धारणीयश्च। (अ.सं.उ. 6:38)
2. (क) रोहणीसर्जखदिरपलाशककुभत्वचः।
निष्क्वाथ्य तस्मिन्निष्क्वथे सक्षीरं विपचेद् घृतम्॥ (सु.उ. 34:5; यो.र.वा.चि.)
(ख) काश्मर्यपृश्निपर्णीलोद्ध्रमधुकैर्मधुरवर्गेण च समशृक्षीरं सर्पिः श्रुतं प्राश्यमानं शीतपूतनां छर्दिहिध्माकासश्वासांश्च शमयति। (अ.सं.उ. 6.39)
(ग) सातिसारायां तु खदिरपलाशसर्जार्जुनरोहिणीत्वक्क्वाथेन तुल्यपयः सर्पिः॥ (अ.सं.उ. 6:40)
3. पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। पचेद् घृतं पञ्चमूल्या सैन्धवे न च पण्डितः।
दीपनीयमिति प्रोक्तं सर्पिरेतन्महात्मना। सक्षौद्रशर्करं लेह्यं शमयेच्छीतपूतनाम्॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि.पृ. 102)
4. रास्ना पुनर्नवा कुष्ठं तगरं देवदारु च। पत्रागुरुहरेण्वश्च गुडूची त्रिफला सिता॥
दशमूलं च तैः सर्पिः पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे। विशुद्धं लेहयेद्बालं शाम्यते कटपूतना॥
5. खदिरं रोहिणीसारं पलाशं ककुभत्वचम्। एतं सम्भृत्य सम्भारं क्षीरे सर्पिर्विपाचयेत्।
तत् सिद्धं लेहयेत् काले शर्करा क्षौद्रमात्रया। शीतपूतनया ग्रस्तो मुच्यते पथ्यभोजनः॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि.)
6. (क) गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तगन्धामहेस्त्वचः। निम्बपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत्॥ (सु.उ. 34:6)
(ख) गृध्रोलूकतरक्षूणां पुरीषाणि समानयेत्। अग्निको बस्तलोमानि पिचुमन्दश्च धूपनम्॥ (का.सं.चि.बालचि.)

Scanned with CamScanner

(7) औषधि-धारण—कड़वी तुम्बी, गुञ्जा एवं काकादनी की माला धारण करायें।[1]

(8) बलिस्थान—मूँग को पकाकर दोने में भरकर नदी के किनारे या मध्य में बलि देना चाहिए। इसी प्रकार इस देवी के लिए वारुणी एवं रक्त का उपहार दे। बालक को स्नान भी जलाशय के किनारे करायें। रक्षासूत्र का पाठ करें। (देखिये 'बालग्रह-आकृति' विवेचन)[2]।

शीतकारक चिकित्सा—अनेक घृतयोगों का वर्णन (पञ्चकोल, लघुपञ्चमूल, सैन्धव घृत) एवं नदी के किनारे बलि व स्नान।

अन्धपूतना(गन्धपूतना)ग्रह-चिकित्सा

(योगरत्नाकर में 'गन्धपूतना' नाम अन्धपूतना बालग्रह के लिए आया है)

(1) सिद्धान्त—नेत्ररोगों की चिकित्सा से अन्धपूतना ग्रह की शान्ति करें।

'अक्षिरोगचिकित्साभिः शमयेदन्धपूतनाम्'।

(का.सं.चि.स्थान, बालग्रहचि. पृ. 2)

(2) परिषेक—तिक्तकद्रुमपत्र के क्वाथ से सेचन करें या वरुण, अर्क, निम्ब, गुडूची, नागबला, गैरिक तथा शतावरी सिद्ध जल से स्नान करायें।[3]

(3) अभ्यङ्ग—सुरा, सौवीरक, कुष्ठ, हरताल, मैनशिल तथा राल कल्क से सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें।[4] काश्यप ने बिल्व, अङ्कोठ, कपित्थ, आक, कपास, बाँसा उरुबुक, बाँस एवं अश्मन्तकपत्र, पुण्डरीक, मधुयष्टी, शतपुष्पा एवं पुनर्नवा से सिद्ध तैल का प्रयोग कहा है।†

(4) लेप—सर्वप्रकार के सुगन्ध द्रव्यों का लेप सिर, नेत्र तथा मुँह पर करें।[5]

(ग) गृद्ध्रोलूकविड्वस्तगन्धा हि निर्मोकनिम्बपत्रधूपैः। जीर्णगोचर्मसर्षपभिक्षुसङ्घाटी-सर्पकञ्चुकैर्वा। (अ.सं.उ. 6:40)

1. धारयेदपि लम्बाञ्च गुञ्जां काकादनीं तथा। (सु.उ. 34:6)
2. (क) नद्यां मृद्गकृतैश्चात्रैस्तर्पयेच्छीतपूतनाम्। देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते। (सु.उ. 34:78)
   (ख) मुद्गौदनप्रायो जलाशयसमीपे बलिस्तत्रैव च स्नानम्। मन्त्रश्च····· ॥ (अ.सं.उ. 6:41)
3. (क) तिक्तकद्रुमपत्राणां कार्यः क्वाथोऽवसेचने। (सु.उ. 33:3, यो.र.बा.रो.चि.पृ.)
   (ख) वरुणास्फोतपारिभद्रकवृक्षादनीनागबलागैरिकशतावरीभिः परिषेकः। (अ.सं.उ. 6:42)
4. सुरा सौवीरकं कुष्ठं हरितालं मनःशिला। तथा सर्जरसश्चैव तैलार्थमुपदिश्यते॥ (सु.उ. 33:4)

†. इस चिह्न से अंकित टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें।

5. (क) सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रेष्वक्ष्णोश्च शीतलैः। (सु.उ. 33:5)
   (ख) अन्धपूतनायां सर्वगन्धैः सशिरोवक्त्रस्य प्रदेहः। (अ.सं.उ. 6:42)

(5) घृतपान—पिप्पली, पिप्पलीमूल, मधुरवर्गौषधि, शहद, शालपर्णी एवं बृहतीद्वय का घृतपाक पिलायें अथवा—काश्यप ने तैलाभ्यङ्ग में वर्णित औषधिसिद्ध घृतपान का विधान किया है†। वाग्भट ने स्यन्दन, श्योनाक, काश्मर्य, खदिरकुष्ठ तथा मधुरवर्ग कल्क, क्षीरीवृक्षकषाय एवं दूध से सिद्ध घृत को देने का विधान किया है।[1]

(6) औषधिपान—मुनक्का, पयस्या, श्रीपर्णी, सारिवा, मधूक, नागपुष्प, गुञ्जा तथा शर्करा व मधु मिलाकर सेवन करायें[2] तथा काश्यपोक्त अभ्यङ्गार्थ वर्णित तैल की औषधियों† को क्षार में मिलाकर पिलाना चाहिए।

(7) धूपन—मुर्गे की विष्ठा, केश एवं चर्म तथा सर्पकेंचुल एवं भिक्षु का जीर्ण वस्त्र लेकर निर्धूम अग्नि पर धूपन करें। श्वेतदूर्वा, सर्पकेंचुल, वचा, श्वेत सर्षप एवं घृत से धूपन करें। या सर्षप, भल्लातक, राल एवं मधु से धूपन करें।[3]

(8) औषधि-धारण—मुर्गे के अण्डे के समान श्वेत कन्द वाली लता, सेमलमूल, शिम्बी तथा अनन्ता को धारण करें अथवा—तुम्बी, इन्द्रायण, काकादनी आदि को धारण करें।[4]

(9) बलिस्नान—कच्चा तथा पकाया मांस व रक्त को एक पात्र में भरकर बालक

---

†. बिल्वाङ्कोठौ कपित्थार्कौ कार्पासमटरूषकम्। उरुबूकस्य पत्राणि वंशस्याश्मन्तकस्य च॥ प्रपौण्डरीकं मधुकं शतपुष्पा पुनर्नवा। एतैस्तैलं घृतं वाऽथ पयसा योजितं पचेत्॥ एतेन गात्रमभ्यज्य सक्षारं पाययेदिदम्॥ (का.चि.बालग्रह चि.पृ. 103)

1. (क) पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरको मधु। शालपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थमुपदिश्यते॥ (सु.उ. 33:4)
   (ख) स्यन्दनस्योनाककाश्मर्यखदिरकुष्ठैर्मधुरवर्गेण च क्षीरीवृक्षकषाये। सक्षीरं शृतं मधुयुक्तं घृतं चक्षुः कामोपसृष्टानां प्राशः। (सु.सं.उ. 6:43)
2. मृद्वीकां च पयस्यां च श्रीपर्णीं सारिवा तथा। मधूकं नागपुष्पं च शीतपाकीयुतं पिबेत्॥ शर्करामधुसंयुक्तं तदा सम्पद्यते सुखी। (का.सं.चि.स्थान.बालग्रहचि.पृ. 103)
3. (क) पुरीषं कौक्कुटं केशांश्चर्म सर्पत्वचन्तथा। जीर्णाञ्च भिक्षुसङ्घाटीं धूमनायोपकल्पयेत्॥ (सु.उ. 33:6)
   (ख) अथास्य धूपनं दद्यात् सायं प्रातरतन्द्रितः। गोलोमी सर्पनिर्मोकं वचां सिद्धार्थकौस्तथा॥ संसृज्य सर्पिषा तेन धूपयेत् सन्ध्ययोर्भिषक्॥ (का.सं.चि.स्थान.बालग्रहचि.)
   (ग) रक्षोघ्नोरुष्करः सर्जरसमधुभिर्धूपः। जीर्णभिक्षुसङ्घाटीकृकवापुरीषाहित्वक्केशचर्मभिर्वा। (अ.सं.उ. 6:44)
4. (क) कुक्कुटीं मर्कटीं शिम्बीमनन्ताञ्चापि धारयेत्। (सु.सं.उ. 33:7)
   (ख) अनन्ता कुक्कुटी मर्कटी बिम्बीधार्यते। तुम्बी चित्रफला मृगोर्वारुजालिनी काकादनीर्वा। (अ.सं.उ. 6:45)

Scanned with CamScanner

के हितार्थ किसी चौराहे पर या टूटे मकान मे रखे। सर्वगन्ध युक्त जल से बच्चे व धात्री को स्नान कराये तथा रक्षामन्त्र का पाठ करें।[1]

(तिक्तरस का स्नानार्थ प्रयोग—काश्यप द्वारा औषधि-वर्णन, चौराहे पर बलि एवं धात्री तथा शिशु दोनों का टूटे घर में स्नान)

मुखमण्डिकाग्रह-चिकित्सा

(1) परिषेक—कपित्थ, बिल्व, अरणी, वंशलोचन, एरण्डमूल एवं कुबेराक्ष क्वाथ से बालक को सिञ्चन करें।[2, †]

(2) अभ्यङ्ग—वातनाशक बिल्व, श्योनाक आदि वृक्षों के पत्रस्वरस, अजगन्धा एवं अश्वगन्धा क्वाथ, तैल एवं वसा मिलाकर तैलपाक कर अभ्यङ्ग करें।[‡]

परिषेकार्थ निर्धारित द्रव्य, मधुक एवं अश्वगन्ध कल्क से सिद्ध तैल-वसा का प्रयोग करें।[†] या कपित्थ, बिल्व, तर्कारी, बिम्बी एवं एरण्ड सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें।[‡]

(3) लेपन—सर्वगन्ध द्रव्यों को मधु में पीसकर लेप करें।[3]

(4) घृतपान—.....मधूलिका (आदिगण) के स्वरस या क्वाथ में, दुग्ध में, वंशलोचन के साथ एवं काकोल्यादि वर्ग की औषधियों के स्वरस या क्वाथ में तथा लघुपञ्चमूल की औषधि के क्वाथ में घृत सिद्ध करके दें। देवदारुभस्म, मूर्वा, त्रिकटु, मुस्ता, रास्ना, कदम्ब, अश्वगन्ध का चूर्ण या अशोक एवं कुटकी का चूर्ण बकरी के घृत में मधु के साथ सेवन करायें या लघुपञ्चमूल, श्योनाक, मधूलिका, महुआ, क्षीरीवृक्षत्वक् एवं पिप्पली से गोघृत का उसमें गोदुग्ध डाल कर पाक करें। इसमें शर्करा एवं मधु मिला कर बालक को दें।[4]

1. (क) मांसमामं तथा पक्वं शोणितञ्च चतुष्पथे। निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशो रक्षानिमित्ततः॥ शिशोश्च स्नपनं कुर्य्यात् सर्वगन्धोदकैः शुभैः॥ (सु.उ. 33:8-9 थोर. बालचि.)
(ख) पक्वाममांसशोणितैश्चतुष्पथे बलिर्गृहे स्नानम्। (अ.सं.उ. 6:46)
2. कपित्थबिल्वतर्कारीवांशीगन्धर्वहस्तकाः। कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने॥ (सु.उ. 35:3 थोर.बा.चि.)
†. बिल्वैरण्डकपित्थाग्निमन्थवंशीकुबेराक्षीपत्रक्वाथेन परिषेकस्तेषामेव च स्वरसेन मधुक-वाजिगन्धागर्भमैकध्यं तैलं वसां च पक्वमभ्यङ्गः। (अ.सं.उ. 6:57)
‡. (क) स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथाऽजहरिगन्धयोः। तैलं वसाञ्च संयोज्य पचेदभ्यञ्जने शिशोः॥ (सु.उ. 35:4)
(ख) कपित्थबिल्वतर्कारीबिम्बीगन्धर्वहस्तकाः। तैलमेतैस्तु संयुक्तं हितमभ्यञ्जनं शिशोः॥ (का.स.चि. बालग्रहचि.)
3. मुखमण्डितिकायां वारुण्या श्लक्ष्णपिष्टैः सर्वगन्धैर्लेपः। (अ.सं.उ. 6:57)
4. (क) मधूलिकायां पयसि तुगाक्षीर्यां गणे तथा। मधुरे पञ्चमूले च कनीयसि घृतं पचेत्॥ (सु.उ. 35:5)

(5) धूपन—वचा, गल, कुष्ठ एवं घृत इन्हे मिलाकर धूपन करें। काश्यप ने वचा के स्थान पर यव कहा है।[1]

(6) औषधि-धारण—पर्पीहा, चील एवं सर्प जिह्वा को धागे में डाल कर धारण करें।[2]

(7) विशेष—प्रथम भोजन के जीर्ण होने पर ही पुनः भोजन दे।[3]

(8) बलि-स्नान—वर्णक, चूर्णक, माला, अञ्जन, पात्र एवं मैनशिल को एक दोने में रखकर गोशाला के मध्य में बलि दें। इसके अतिरिक्त पायस एवं पुरोडाश की भी बलि दें। गायत्री-मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से गोशाला में स्नान करायें तथा रक्षामन्त्र का पाठ करें।[4] (रक्षामन्त्र 'बालग्रह-आकृति' के वर्णन के साथ दिया गया है)।

(वातनाशक द्रव्यों का प्रयोग, गोशाला मध्य बलि एवं स्नान, प्रथम भोजन जीर्ण होने पर पुनः भोजन)

रेवतीग्रह-चिकित्सा

(1) परिषेक—अश्वगन्धा, काकडाशृंगी, सारिवा, पुनर्नवा, द्विसहा एवं विदारी के कषाय से सिंचन करें। काश्यप ने इसमें छोटी कटेरी का विधान किया है।[5]

(ख) देवदारुभस्मयुक्तो मूर्वाव्योषमुस्तारास्नागिरिकदम्बकाश्वगन्धाचूर्णो वाऽशोकरोहिणीः चूर्णो वा। एभिरेव च विपक्वमाजं घृतं पयो वा पिबेत्। (अ.सं.उ. 6:48)
(ग) खुड्डाकं पञ्चमूलं च श्योनाकोऽथ मधूलिका।
मधूकानि त्वचः क्षीरी पिप्पल्यस्तैर्घृतं पचेत्॥
गव्यं क्षीरं गवां पक्वं शर्करामधुसंयुतम्।
पिबेत् कोलमितं बालस्ततः सम्पद्यते सुखी॥ (का.सं. बालग्रहचि.पृ. 104)
1. (क) वचा सर्जरसः कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपनं हितम्। (सु.उ. 35:6)
(ख) यवकुष्ठसर्जरसैर्धूपः। (सु.उ. 49)
(ग) कुष्ठं सर्जरसं चैव यवाः सर्पिश्च धूपनम्। (का.सं.चि. बालग्रहचि.पृ. 104)
2. (क) धारयेदपि जिह्वाश्च चाषचीरल्लिसर्पजाः। (सु.उ. 35:6)
(ख) सर्पवीरल्लचाषाणां जिह्वानां धारणं मणेः। (का.सं.चि.बालग्रहचि.पृ. 104)
3. जीर्णे भोजनमप्यस्य ततः शस्तं प्रदापयेत्। (का.सं.चि.बालग्रहचि.पृ. 104)
4. (क) वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा। मनःशिलाञ्चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं तथा॥ पायसं सपुरोडाशं बल्यर्थमुपसंहरेत्। मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम्॥ (सु.उ. 35:7-8)
(ख) विविधगन्धधूपमाल्याञ्जनपारदमनश्शिलायुक्तो गोष्ठमध्ये बलिर्गवां मध्ये स्नानम् .....मन्त्रश्च.....॥ (अ.सं.उ. 6:50)
5. (क) अश्वगन्धा च शृङ्गी च सारिवा सपुनर्नवा। सहे तथा विदारी च कषायाः सेचने हिताः॥ (सु.उ. 31:3)
(ख) अश्वगन्धाजशृङ्गीभारिवाद्विपुनर्नवद्विसहाविदारीभिः परिषेकः। (अ.सं.उ. 6:51)
(ग) अश्वगन्धाऽजशृङ्गी च सारिवे द्वे पुनर्नवे। क्षुद्रा सहा विदारी च कषायः परिषेचने॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि.पृ. 104)

Scanned with CamScanner

(2) अभ्यङ्ग—कुष्ठ एवं राल के कल्क व क्वाथ मे सिद्ध तैल से अभ्यङ्ग करें। गुग्गुलु, राल, कुष्ठ, गिरिकदम्ब, देवदारु, मञ्जिष्ठा, सुरा, तिलतैल, सुवर्चिका, नलद तथा तुम्बुरु त्वक् समभाग लेकर तैलपाक कर अभ्यङ्ग करें।[1]

(3) लेपन—सर्वगन्धौषध में कुलत्थ एवं शङ्खचूर्ण मिलाकर कल्क बना कर लेप करें। वाग्भट ने शंख के स्थान पर माष कहा है।[2]

घृतपाक तथा दुग्धपाक—लाख, उशीर, गिरिकर्णिका, कदम्ब पुष्प, धव, शाल, अर्जुनत्वक्, धातकी पुष्प, तेन्दुत्वक्, काकोल्यादि गण औषधि के कल्क एवं क्वाथ से सिद्ध करें। इसको मन्दोष्ण दुग्ध के साथ पिलाना चाहिए।[3]

विशिष्ट लक्षण—उपद्रव चि., अतिसार, अरुचि, तृषा एवं वमननाशक घृत (कश्यप); गोशाला में बलि, सङ्गम पर धात्री व शिशु स्नान, क्षीरीवृक्षमूल पर शिशु-स्नान।

अथवा धव, अश्वकर्ण, धातकी, ककुभ, तिन्दुक एवं जीवनीयगण कल्क से साधित घृत का पान करायें।[4] काश्यप ने अनेक घृतयोग कहे हैं—

(क) अश्वकर्ण पुष्प, धातकी पुष्प, तिन्दुक, ककुभ, अनार तथा धव पुष्प, त्वक्क्षीरी मधुक का दूध में पाक करें तथा यथोचित मात्रा में पान करायें। इन्हीं औषधियों का घृतपाक देने से अतिसार एवं अरुचि नष्ट होती है। शर्करा तथा मधु से देने पर तृष्णा, अरुचि एवं वमन नष्ट होते है।[5]

(ख) उल्लू एवं गीध रोम, कड़वी लौकी, अजटी एवं सफेद यव को गोघृत में मिला कर पिलायें।[6]

1. (क) तैलमभ्यङ्गने कार्यं कुष्ठे सर्जरसेऽपि च। (सु.उ. 31:4)
   (ख) कुष्ठसर्जरससाधितं तैलमभ्यङ्गः। (अ.सं.उ. 6:52)
   (ग) पलङ्कषा सर्जरसाः कुष्ठं गिरिकदम्बकः। देवदारु समञ्जिष्ठं सुरा तैलं सुवर्चिका॥ नलदं तुम्बुरु त्वक् च समभागानि कारयेत्। एतेन गात्रमभ्यज्य ततः सम्पद्यते सुखी॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि. पृ. 101)
2. (क) कुलत्थाः शङ्खचूर्णश्च प्रदेहः सार्वगन्धिकः। (सु.उ. 31:6)
   (ख) रेवत्यां सर्वगन्धैः कुलत्थमाषचूर्णेन च प्रदेहः। (अ.सं.उ. 6:51)
3. पलङ्कषायां नलदे तथा गिरिकदम्बके। धवाश्वकर्णककुभधातकीतिन्दुकीषु च॥ काकोल्यादिगणे चैव पानीयं सर्पिरिष्यते॥ (सु.उ. 31:4-5)
4. धवाश्वकर्णधातकीककुभतिन्दुकैर्जीवनीयैश्च पिष्टैर्घृतं श्रृतं प्राशः। (अ.सं.उ. 6:42)
5. अश्वकर्णस्य पुष्पाणि धातक्यास्तिन्दुकस्य च। ककुभस्य च पुष्पाणि दाडिमस्य धवस्य च॥ त्वक्क्षीरी मधुकं चैव क्षीरेण सहपाचयेत्। ततो मात्रां पिबेद्बालस्ततः सम्पद्यते सुखी॥ एतेष्वेव घृतं पक्वमतीसारमरोचकम्। हन्ति तृष्णाऽरुचिच्छर्दिः शर्करामधुसंयुतम्॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि.)
6. उलूकगृध्ररोमाणि कट्वलाबूस्तथाऽजटी। यवाः श्वेता घृतं गव्यं पेयोऽयं रेवतीनुदे॥ (का.सं.चि.बालग्रहचि. पृ. 101)

(5) धूपन-कर्म—गीध एवं उल्लू की विष्ठा, यव, बाँसत्वक् तथा घृत से सायं धूपन करें। यव, जटामांसी, गृध्र एवं उल्लू विष्ठा से धूपन करें।[1]

(6) औषधि-धारण—वरुण, निम्ब, सिन्दुवार या पुत्रजीवी की लकड़ी को धारण करें। काश्यप ने उपरोक्त तथा महानिम्ब, चिरकत्वक् को बालक एवं धात्री दोनों को धारण करने के लिए कहा है।[2]

(7) बलिकर्म-स्नान—श्वेत पुष्प, लाजा, दुग्ध एवं साठी भात दोने में रखकर पवित्र होकर गोशाला में बलि दें। सङ्गम पर स्नान बच्चे व धात्री को करायें या क्षीरी वृक्ष के पास करायें, रक्षामन्त्र का पाठ करें। ('बालग्रह-आकृति' वर्णन के साथ वर्णित है।[3])

(8) विशेष—उपद्रवों की स्व चिकित्सा करें। इसके अतिरिक्त रेवती लक्षण में पुष्टिकर्म करें।[4]

शुष्करेवतीग्रह-चिकित्सा
(अ.सं.उ. 6:54)

(1) स्कन्दग्रहोक्त समस्त चिकित्सा करें धूपन कर्म छोड़ कर शेष कर्म करें।[5]

(2) उद्वर्तन—वचा, अश्वगन्धा, हिङ्गु, लाजा एवं सर्षप चूर्ण के कल्क से उद्वर्तन करें।[6]

(3) नेत्रपूरण—वचा से सिद्ध सर्षप तैल से करें।[7]

(4) लेपन—काक, गिद्ध एवं गर्दभ विष्ठा का लेप करें।[8]

1. गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम्। सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुदधूपनं शिशोः॥ (सु.उ. 31:7)
   यवयवफलोलूकगृध्रशकृद्भिः सघृतैर्धूपः। (अ.सं.उ. 6:52)
2. (क) वरुणारिष्टकमयं रुचकं सैन्दुकं तथा। सततं धारयेच्चापि कृतं वा पौत्रजीविकम्॥ (सु.उ. 31:8)
   (ख) वरुणारिष्टकौ चोभौ पुत्रञ्जीवकचि(त्र)कौ। एतेषां तु त्वचं बालो माता धात्री च धारयेत्॥ (का.सं.चि.बालचि.)
   (ग) वरुणारिष्टसिन्दुकान्वितश्चाविकमूत्रेण कण्डको लेपः। (अ.सं.उ. 6:52)
3. (क) शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं तथा। बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना॥ सङ्गमे च भिषक् स्नानं कुर्याद् धात्रीकुमारयोः। (सु.उ. 31:9)
   (ख) शुक्लमाल्यविलेपनलाजौदनपायसैर्गोतीर्थे बलिः। नदीसङ्गमे क्षीरिवृक्षसमीपे वा स्नपनम्। मन्त्रश्च····· । (अ.सं.उ. 6:53)
4. उपद्रवैश्च शयते दृष्ट्वा स्वैः स्वैश्चिकित्सितैः। नक्षत्रे चास्य रेवत्यां पुष्टिकर्माणि कारयेत्॥ (का.सं.बालचि.पृ. 101:5)
5. शुष्करेवत्यां धूपवर्ज्यः स्कन्दग्रहोक्तो विधिः। (अ.सं.उ. 6:54)
6. वचाश्वगन्धाहिङ्गुलाजसिद्धार्थकैरुद्वर्तनम्। (अ.सं.उ. 6:54)
7. सर्षपतैलं वचासिद्धं नेत्रपूरणम्। (अ.सं.उ. 6:54)
8. काकगृध्रगर्दभशकृद्भिर्लेपः। (अ.सं.उ. 6:55)

Scanned with CamScanner

(5) धूपन—कुलीर-कपाल, शल्यक, शुक्ति, मेषशृङ्गी, गर्दभ, बकरी एवं हस्तिनख-रोम आदि से धूपन करें।[1]

(6) बलि-स्नान—माष, मद्य, शुष्क मांस से शुष्क वृक्ष के नीचे बलि दें और वहीं स्नान करायें। रेवती ग्रह में कहा गया मन्त्र का पाठ करें।[2]

स्कन्दग्रहोक्त चिकित्सा—शुष्क वृक्ष के नीचे बलि-स्नान, नेत्रपूरण विशेष है।

बलि, स्नान एवं स्नानद्रव्यों का तुलनात्मक विवरण

ग्रह	बलिस्थान	स्नान-स्थान	स्नान-जल
स्कन्द ग्रह	चतुष्पथ पर	चतुष्पथ पर स्नान एवं होम	गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल
स्कन्दापस्मार	चतुष्पथ पर या श्मशान में गड्ढा कर या वटवृक्षमूल पर	चतुष्पथ पर	-
नैगमेष	वृक्षमूल या न्यग्रोध वृक्षमूल पर	वटवृक्षमूल में या नदीतट पर	-
शकुनीग्रह	चतुष्पथ पर	कूड़े के ढेर पर	-
पितृग्रह	वृक्षमूल पर	क्षीरीवृक्षमूल पर	-
शकुनीग्रह	करञ्जवृक्षमूल पर	गृहोपवन में	निकुम्भोक्त विधि से
पूतनाग्रह	निर्जन खण्डहर में	निर्जन खण्डहर में	देव-अभिषिक्त जल से
शीतपूतना	नदी के किनारे या नदी के मध्य	जलाशय के किनारे	-
अन्धपूतना	चतुष्पथ में या टूटे मकान में	-	सर्वगन्धोदक से धात्री एवं शिशु दोनों को
मुखमण्डिका	गोशाला के मध्य	गोशाला में	गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल
रेवतीग्रह	गोशाला में	सङ्गम पर या क्षीरीवृक्ष के पास	स्नान धात्री व शिशु दोनों को
शुष्क रेवती	शुष्क वृक्ष के नीचे	शुष्क वृक्ष के नीचे	-

उपरोक्त तालिका विशिष्ट स्थान पर बलि एवं स्नान उस क्षेत्र या ग्राम में इस प्रकार की व्याधि का प्रादुर्भाव हो गया है, का संकेत देने हेतु बनायी गयी प्रणाली है।

*

1. कुलीरकपालशल्यकशुक्तिमेषशृङ्गहयखरजाहकहस्तिनखकुलरोमभिर्धूपः सर्वग्रहघ्नः। (अ.सं.उ. 6:55)
2. कुल्माषैर्घेन शुष्कमांसेन च शुष्कवृक्षे बलिः। तत्रैव च स्नानम्। मन्त्रश्च। (अ.सं.उ. 6:56)

अध्याय - 20

विविध व्याधि

इस प्रकरण में उन व्याधियों का संग्रह सूत्र रूप में किया गया है, जिनका विवेचन पूर्व में नहीं किया गया है, अथवा जो पाठ्यक्रम में उल्लिखित नहीं है, परन्तु बालचिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। ऐसी स्थिति में पाठक को उनके परिचय एवं सन्दर्भ का ज्ञान हो सके—यही इस अध्याय का उद्देश्य है।

शैशवीय क्षुद्ररोग

आचार्यों ने विविध प्रकार के क्षुद्ररोगों का वर्णन किया है; यथा—आचार्य सुश्रुत ने 40, वाग्भट ने 36 (अ.ह. में) इत्यादि। इन क्षुद्ररोगों का अर्थ होता है—

'मन्दवेगा महावेगा व्याधयोऽल्परुजोऽरुजः।
ये महान्तोऽल्पकाश्चैव क्षुद्ररोगास्तु ते स्मृताः'॥ (अ.ह.उ. 31)

क्षुद्र का अर्थ छोटा, अधम एवं क्रूर होता है। इन गुणों में से किसी भी अर्थ से युक्त रोग क्षुद्ररोग है।

'क्षुद्राणां बालानां रोगाः'।

'क्षुद्ररोग बालकों के रोग हैं' ऐसा भी विचार व्यक्त किया गया है, क्योंकि इसमें बहुत-सी व्याधियाँ बच्चों से सम्बन्धित या जन्मजात हैं। उदाहरणार्थ हम उनके नाम दे रहे हैं—

जन्मजात क्षुद्ररोग—जतुमणि, मषक, तिलकालक, न्यच्छ, लांछन आदि।

शैशवीय क्षुद्ररोग—अजगल्लिका, परिवर्तिका, निरुद्धप्रकश, सन्निरुद्धगुद, अहिपूतना, वृषणकच्छू, गुदभ्रंश, मुखदूषिका आदि।

अजगल्लिका

'स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा ग्रन्थिसन्निभा।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका'॥ (सु.नि. 13:4)

स्निग्ध, त्वचा के समान वर्णवाली, गाँठयुक्त, वेदनारहित, मूँग के प्रमाण की, कफ एवं वात से उत्पन्न होने वाली बालकों की पिडका को अजगल्लिका कहते हैं। ऐसा ही

Scanned with CamScanner

वाग्भट ने भी कहा है (अ.ह.उ. 1:31)। इस आधार पर इसे Scrofuloderma* कह सकते है।

चिकित्सा—रक्तमोक्षण सर्वप्रथम उपाय है।

'विस्रावयेज्जलौकोभिरपक्वामजगल्लिकाम्'। (अ.ह.उ. 32:1)
'तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्।
शुक्तिश्चुघ्नीयवक्षारकल्कैश्चालेपयेद्भिषक्॥
श्यामालाङ्गलकीपाठाकल्कैर्वाऽपि विचक्षणः।
पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत्'॥ (सु.चि. 20:3-4)

1. जलौका द्वारा रक्तमोक्षण करें।

2. शुक्ति, श्वुघ्नी (सज्जीखार) एवं यवक्षार कल्क का लेप करें। भैषज्यरत्नावली में श्वुघ्नी के स्थान पर सौराष्ट्री कहा है।[1]

3. श्यामा, कलिहारी एवं पाठा कल्क का लेप करें।

4. नवीन छोटी कण्टकारी के काँटों से विद्ध करने पर अजगल्लिका स्वयं ठीक हो जाती है।[2]

5. वासा एवं इन्द्रायणमूल जल में पीस कर लेप लगायें।[3]

6. कठिन अजगल्लिका के ऊपर घण्टापाटल्यादि प्रतिसारणीय क्षारों से प्रतिसारण करें।[4]

7. पक्व का उपचार व्रणचिकित्सा-विधान से करें।

परिवर्तिका

'मर्दनात् पीडनाच्चापि तथैवाप्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरः॥
तदा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रतिनिवर्त्तते।
मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते॥
सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित्।
मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्त्तिकाम्'॥ (सु.नि. 13:47-49)

हस्तादि द्वारा मर्दन करने से, अधिक दबाने से तथा मैथुन के समय झगड़ा होने के कारण अधिक चोट लगने से सर्व शरीर-सञ्चारी व्यानवायु जब लिङ्ग के चर्म में प्रविष्ट

* Scrofuloderma - An exudative and crusted skin lesion, often with sinuses, resulting from a tuberculous lesion underneath, as in bone or lymph glands.

1. शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः।

2-4. नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः। किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः॥
वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम्। कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम्॥ (भै.र. 60:1-4)

हो जाती है, तब वायु से आक्रान्त हुआ वह चर्म ऊपर को चढ़ जाता है तथा मणि के नीचे ग्रन्थि रूप में लटकता है। कभी-कभी उसमें पीडा, दाह एवं पाक होता है। इस प्रकार यह वात, अभिघात आदि से उत्पन्न रोग है। यदि इसमें कण्डू, चलना तथा कठिनता प्रतीत हो तो कफजन्य परिवर्तिका समझना चाहिए।

इस व्याधि को Paraphymosis कहते हैं। बच्चे में इसका प्रमुख कारण शिश्नमुख के द्वार का अत्यधिक संकीर्ण होना है। शिश्नचर्म जब शिश्नमणि से संयुक्त रहता है, उस अवस्था में बलपूर्वक हाथ के दबाव से उसे पीछे हटाने से शिश्नचर्म मणि के पीछे चला जाता है तथा शोथ युक्त होकर गाँठ का रूप धारण कर लेता है।

चिकित्सा—शल्यकर्म इसकी प्रधान चिकित्सा है। परिवर्तिका में घृत लगाकर भलीभाँति स्वेदन कर पुलटिस बाँधें। फिर अभ्यंग कर शिश्नमुण्ड को दबाते हुए चर्म को धीरे-धीरे नीचे उतारना चाहिए। मणि के अन्दर प्रविष्ट होने पर चर्म को साल्वण आदि वातघ्न उपनाहों के द्वारा 3 या 5 दिन स्वेदन करें। वातनाशक बस्ति एवं स्निग्ध भोजन का प्रयोग करें।[1]

निरुद्धप्रकश/निरुद्धमणि

'वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते मणिम्।
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम्।
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्न च विदीर्यते।
निरुद्धप्रकशं विद्यात् सरुजं वातसम्भवम्'॥ (सु. नि. 13:52-54)

यदि वातदूषित शिश्नचर्म मणि को पूर्ण रूप से ढक लेता है तो चर्म से ढकी वह मणि मूत्र निकलने के मार्ग को अवरुद्ध कर देती है, जिससे मूत्रमार्ग निरुद्ध होने से पीड़ा के बिना मूत्र मन्द धार के रूप में आता है किन्तु मणि खुलती नहीं है। इस तरह वात-प्रकोप से उत्पन्न अल्परुजाकर व्याधि निरुद्धप्रकश रोग है। वाग्भट ने इसे निरुद्धमणि कहा है, क्योंकि इसमें शिश्नमणि चर्म से अवरुद्ध हो जाती है। इसे Phimosis कहते हैं। बालकों में यह सहज होता है। छिद्र यदि बहुत छोटा न हो तो बच्चों में इससे कोई लक्षण नहीं होते। यह प्राकृतिक रूप से मिल सकता है। जब इसके कारण-लक्षण उत्पन्न होते हैं तो यह वैकारिक स्वरूप का हो जाता है। लक्षणों में विशेष रूप से मूत्रत्याग में कठिनाई, दाह अथवा Balanoposthitis उल्लेखनीय है। Balanoposthitis में शिश्न मणि में शोथ हो जाता है। युवा काल में शिश्नोत्थान एवं मैथुन के समय कष्ट होता है।

1. परिवृत्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत्। ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म चानयेत् पीडयेन्मणिम्॥
प्रविष्टे च मणौ चर्म स्वेदयेदुपनाहनैः। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः साल्वणादिभिः॥
दद्याद्वातहरान् बस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत्। (सु. चि.20:40-42)

Scanned with CamScanner

चिकित्सा—निरुद्धप्रकश में दोनों ओर छिद्र वाली लोहे, लकड़ी या लाख की बनी नली पर घृत लगाकर शिश्नमार्ग में प्रवेश करायें। शिश्नमुण्ड परिषेक के लिए मगर व सूकर की चर्बी, मज्जा एवं वातनाशक द्रव्यों से युक्त चक्रतैल का प्रयोग करें। इस प्रकार 3-3 दिन के बाद क्रमशः मोटी नली भलीभाँति प्रवेश कराकर मार्ग को बढ़ायें। सेवनी को बचाते हुए शस्त्रक्रिया कर सद्यःक्षत विधि के अनुसार उपचार करें। आहार में स्निग्ध अन्न खिलायें। आज भी Dilation शल्यकर्म करते है।[1] आजकल शस्त्रकर्म में Circumcision किया जाता है। जैसा कि कुछ धर्मो में धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है।

वृषणकच्छू

'स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः ।
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात् कण्डूं सञ्जनयेत्तदा ।
तत्र कण्डूयनात् क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणेकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रदोषजाम्' ।। (सु.नि. 13:59-60)

स्नान तथा उबटन नहीं करने वाले बच्चे के वृषण-प्रान्त में जमा हुआ मल जब पसीने से गीला होता है तो कण्डू उत्पन्न करता है। उस स्थल पर कण्डू के कारण शीघ्र ही स्फोट निकल आते है एवं उनसे स्राव भी होता है। इस प्रकार कफ व रक्त के प्रकोप से उत्पन्न हुए इस रोग को वृषणकच्छू कहते हैं।

चिकित्सा—वृषणकच्छू की चिकित्सा अहिपूतना एवं पामा की भाँति करना चाहिए।[2] अहिपूतना की चिकित्सा पूर्व में कही जा चुकी है। पामा की चिकित्सा सु.चि. 20:17-18 में देखिए। उस स्थल पर निर्देश है कि पामा की चिकित्सा कुष्ठ रोग की भाँति करें।

मुखदूषिका

पर्याय—युवानपिडिका, मुहासा, Acne vulgaris.

'शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः ।
जायन्ते पिडका यूनां वक्त्रे या मुखदूषिकाः' ।। (सु. नि. 13:39)

1. निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दारवीं वा जतुकृतां घृताभ्यक्तां प्रवेशयेत् ॥ परिषेके वसामज्जाशिशुमारवराहयोः । चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ त्र्यहात् त्र्यहात् स्थूलतरां सम्यङ्नाडीं प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ॥ भित्त्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ (सु. नि. 20:43-46)
2. चिकित्सेन्मुष्ककच्छूं चाप्यहिपूतनपामवत् । (सु.चि. 20:60)

कफ, वात एवं रक्त के कारण युवा मनुष्यों के मुख पर मेमल के काँटे के समान पिडकाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें मुखदूषिका कहते है। प्रायः इसी प्रकार के लक्षण वाग्भट ने कहे है।[1] माधव ने इसे युवानपिडका नाम दिया है तथा रक्त को भी कारण माना है—

'शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ।
युवानपिडका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः' ।। (मा.नि. 55:33)

Acne vulgaris तरुणाई में होने वाली त्वक् व्याधि है। इनका कारण Sebaceous glands से Sebum का अत्यधिक स्राव है। Pilosebaceous follicles के मुख का अतिकिरेटिनता (Hyper keratotic plugging) से द्वार अवरुद्ध हो जाता है।

निदान—इसका वास्तविक कारण अब भी अज्ञात है। कुछ विद्वान् इसे अन्तःस्रावी ग्रन्थिजनित विकार मानते हैं। ऐसा विचार है कि Sebum का स्राव Androgen पर निर्भर है। यह विश्वास किया जाता है कि Androgen की ग्रन्थि में चयापचय में भिन्नता आ जाती है। Sebum की मात्रा में वृद्धि एवं गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है, जिससे Pilosebaceous apparatus का मार्गावरोध एवं Corynbacterium acne एवं Staphylococcus संक्रमण इस व्याधि को पैदा करते हैं। कुछ विद्वान् आनुवंशिक (Genetic) प्रभाव भी मानते हैं। मानसिक तनाव भी इसका एक कारण है। इसके कारणों में भोजन एवं लिङ्ग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है।

Acne प्रायः चेहरे, ग्रीवा, वक्ष एवं पीठ पर होती है। निकलने वाले दानों के सिरे पर एक काला दाग (Comedones, Black sheads) होता है। यह Black shead प्रायः बिना शोथ के ठीक हो जाता है परन्तु अपने पीछे एक दाग छोड़ देता है। शोथ होने पर पूय पड़ जाता है। संक्रमण के कारण विद्रधि बन सकती है। इस अवस्था को Acne Conglobata कहते हैं।

Acne vulgaris गाँठ के रूप में (Popules) या पाक होकर (Pustules) या सिस्ट या विद्रधि का रूप धारण करता है। यह मात्र चिह्न Scar अथवा Keloids के रूप मे भी हो सकता है। चेहरा सदैव तैलीय रहता है। सिर पर रूसी Seborrhoeic scaling होती है।

चिकित्सा—शोधन की दृष्टि से वमन कराना श्रेयस्कर है।

'यौवने पिडकास्वेष विशेषाच्छर्दनं हितम्' । (सु.चि. 20:37)

1. शाल्मलीकण्टकाकाराः पिटिकाः सरुजो घनाः । मेदोगर्भा मुखे यूनां ताभ्यां च मुखदूषिकाः ॥ (अ.हृ. 31:5)

Scanned with CamScanner

युवानपिडका हेतु ललाट पर शिरावेध एवं नस्य भी बताया गया है।[1] इन शोधन कर्मों के साथ बहुत-से योग भी वर्णित हैं।

लेपार्थ योगसंग्रह—

1. वच, लोध्र, सैन्धव एवं सर्षप[2]।
2. धनिया, वच, लोध्र एवं कुष्ठ[3] या कुठ को छोड़ अन्य औषधि लेप[4]।
3. नारियल मज्जरी एवं बरगदपत्र[5]।
4. गोरोचन एवं काली मिर्च[6]।
5. बिजौरानीबृमूल, घृत, मैनशिल एवं गोवर[7]।

अन्य योगों का संग्रह—कुंकुमादि तैल (अ.ह.उ. 32:27-30), सहचरघृत, कुंकुमादिघृत एवं मञ्जिष्ठाद्य तैल का वर्णन है (भै.र. 60:100-105, 110-112)। सेमल के कण्टकों को घिस कर पिडका पर लगाने से लाभ होता है।

चेहरे को बराबर गर्म जल एवं सावुन से धोयें, मुलायम तौलिये से पोछें। फिर गन्धक एवं Resorcin का घोल, मलहम या क्रीम लगायें। आधुनिक सौन्दर्य, प्रसाधनों से चेहरे को बचायें। पिडिकाओं को दबायें अथवा नोचें नहीं।

Zink sulfatis - 4 भाग
Potasii sulfuratis - 4 भाग
जल (Aqa) - 100 भाग

उपरोक्त घोल अति लाभदायक है। जीवतिक्तिय 'ए' अम्ल का स्थानीय प्रयोग करायें। कार्टीजान टैबलेट का स्थानीय प्रयोग लाभप्रद है। Ultraviolet Rays, X-ray therapy भी विशिष्ट रोगियों में प्रयोज्य है।

मुख से जीवतिक्तिय 'ए' का प्रयोग, Tetracyclin जैसे Broad Spectrum antibiotic का प्रयोग कराये। अङ्गरस का प्रयोग कम ही करना चाहिए। Stilbocsterol .5 मि.ग्रा. 3 माह तक दी जा सकती है।

व्यङ्ग और नीलिका

'क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
सहसा मुखमागत्य मण्डलं विसृजत्यतः॥

1,4-5. रोध्रकुम्भबरुवचाः प्रलेपो मुखदूषिके। वटपल्लवयुक्ता वा नारिकेलोत्थशुक्तयः। अशान्तौ वमनं नस्यं ललाटे च सिराव्यधः॥ (अ.ह.उ. 32:3-4)

2-3. लेपनं च वचारोध्रसैन्धवैः सर्षपान्वितैः। कुस्तुम्बुरुवचालोध्रकुष्ठैर्वा लेपनं हितम्॥ (सु.चि. 20:38)

6. तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम्। (भै.र. 60:39)

7. मातुलुङ्गजटासर्षैः शिलागोशकृतो रसः। मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित्॥ (भै.र. 60:45)

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्'। (सु.नि. 13:45-46)

क्रोध तथा परिश्रम से प्रकुपित वात पित्त के साथ संयुक्त होकर मुखप्रदेश में आकर अकस्मात् मण्डल उत्पन्न करता है। जो पीडारहित, अल्प तथा श्याव वर्ण का होती है, उसे व्यङ्ग कहते हैं। वाग्भट ने इसका कुछ विस्तृत वर्णन दिया है—

'शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुखे तनु।
श्यामलं मण्डलं व्यङ्गं वक्त्रादन्यत्र नीलिका॥
परुषं परुषस्पर्शं व्यङ्गं श्यावं च मारुतात्।
पित्तात्ताम्रान्तमानीलं श्वेतान्तं कण्डुमत्कफात्॥
रक्ताद्रक्तान्तमाताम्रं सौषं चिमिचिमायते'॥ (अ.ह.उ. 31:28-29)

शोक-क्रोधादि से कुपित वात एवं पित्त मुख में पतला एवं श्यामवर्ण का मण्डल पैदा करते हैं। इसे व्यङ्ग कहते हैं। यही मुख से अन्यत्र होने पर नीलिका कहलाता है। यह निम्न 4 प्रकार का होता है—

1. वातज—कठोर, स्पर्श में कठिन एवं श्याम वर्ण का होता है।
2. पित्तज—किनारों पर ताम्र वर्ण एवं कुछ नीला होता है।
3. कफज—किनारों पर श्वेत एवं कण्डूयुक्त होता है।
4. रक्तज—किनारों पर लाल वर्ण, ताम्रवर्ण, दाह एवं चिमचिमाहटयुक्त होता है।

उपरोक्त समस्त विवेचन त्वग्गत वर्ण-परिवर्तन का प्रतीक है। यह वातावरण का प्रभाव भी हो सकता है या कुछ विशिष्ट व्याधियों का। इसको कोई निश्चित नाम देना कठिन है।

चिकित्सा—संशोधन कर्म में ललाट आदि की सिराओं का वेध किया जाता है। रोगाक्रान्त स्थल पर घिसकर लेप लगायें।[1]

1. क्षीरीवृक्ष के दूध में उसकी छाल को पीस कर लेप करें।[2]
2. खरैटी, कड़ी, मुलेठी एवं हल्दी का लेप करें।[3]
3. पयस्या, अगर, कालीय (कृष्ण चन्दन) एवं गेरु का लेप करें।[4]
4. मधु, घृत युक्त शूकर के दाँत का लेप करें।[5]
5. कपित्थ एवं खिरनी के कल्क का लेप करें।[6]
6. रक्त चन्दन, मंजिष्ठा, कुष्ठ, लोध्र, प्रियङ्गु, वटाङ्कुर एवं मसूर का लेप करें।[7]

1-3. न्यच्छे व्यङ्गे सिरामोक्षो नीलिकायां च शस्यते। यथान्यायं यथाभ्यासं ललाट्यादिसिराव्यधः॥ घृष्ट्वा दिह्यात्त्वचं पिष्ट्वा क्षीरिणां क्षीरसंयुताम्। बलातिबलयष्ट्याह्वरजनीर्वा प्रलेपनम्॥ (सु.चि. 20:33-34)

4-6. पयस्यागुरुकालीयलेपनं वा सगैरिकम्। क्षौद्राज्ययुक्तया लिम्पेद्दंष्ट्रया शूकरस्य च। कपित्थराजादनयोः कल्कं वा हितमुच्यते॥ (सु.चि. 20:35-36)

7. रक्तचन्दनमञ्जिष्ठकुष्ठरोध्रप्रियङ्गवः। वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः॥ (अ.ह.उ. 37:17)

Scanned with CamScanner

7. जीरकद्वय, कृष्णातिल एवं सर्षप का लेप करें[1] ।
8. मसूर को भुन कर निस्तुष कर दूध में पीस कर घृत एवं मधु से लगायें ।[2]
9. सेमर के काँटे दूध में पीस कर लगायें ।[3]
10. खट्टे बेर की मज्जा को शशक-रक्त एवं मधु में पीस कर लगायें ।[4]
11. कुष्ठ को सात दिन बिजौरा नीबू में रख कर मधु के साथ लगायें ।[5]
12. सेमल की मूली को अजादुग्ध में पीस कर मधु के साथ लेप करें ।[6]
13. तालपत्रीमूल को गोअस्थि के साथ घृत व मधु से लेप करें ।[7]
14. अर्जुनत्वक् चूर्ण और शहद का लेप करें ।[8]
15. मंजिष्ठा चूर्ण एवं शहद लेप करें ।[9]
16. श्वेत घोड़े की खुरों के भस्म को मक्खन के साथ पीस कर लेप करें ।[10]
17. शशक-रक्त का लेप करें ।[11]
18. जातीफल चूर्ण को दूध या जल में पीस कर मुख पर लेप करें । सायंकाल सर्षप तैल मुख पर लगायें ।[12]
19. द्विहरिद्रादि तैल, मञ्जिष्ठाद्य तैल, कनक तैल, कुङ्कुमाद्य तैल, सप्तच्छदादि तैल (भै.र. 60:107-120, 155-157) का प्रयोग हितकारी है ।

अहिपूतना, सन्निरुद्धगुद एवं गुदभ्रंश का विवेचन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है ।

अरिकीलक

यदा पक्वेष्टका चूर्णैरभीक्ष्णं गुण्डयते शिशुः।
त्रपुसैर्वारुबीजं वा खादतोऽङ्गेषु शुष्यति ।।
मेदाऽभिवर्धनं चान्नं दिवास्वप्नं च सेवते ।
तस्य मेदः प्रकुपितं वायुना त्वचमाहृतम् ।।
मेदः पूर्णत्वचानद्धा जनयत्यरकीलिकाः ।
लवकर्तम(तश्चैता) दृश्यन्ते च क्वचित्क्वचित् ।।
कर्कन्धुगोस्तनप्रख्या वर्धमाना भवन्ति ।। (का. चि. द्विव्रणी. पृ. 128)

1-7. द्वे जीरके कृष्णातिलाः सर्षपाः पयसा सह । पिष्टाः कुर्वन्ति वक्रेन्दुमपास्तव्यङ्गलाञ्छनम् ।।
क्षीरपिष्टाघृतक्षौद्रयुक्ता वा भृष्टनिस्तुषा । मसूराः क्षीरपिष्टा वा तीक्ष्णाः शाल्मलिकण्टकाः ।।
सगुडः कोलमज्जा वा शशासृक्क्षौद्रकल्किताः ।
सप्ताहं मातुलुङ्गस्थं कुष्ठं वा मधुनाऽन्वितम् ।।
पिष्टा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौशली जटा । गोरस्थि मूशलीमूलयुक्तं वा साज्यमाक्षिकम् ।।
(अ.हृ.उ. 32:17-21)
8-10. व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका । लेपः सनवनीता बा श्वेताश्वखुरजा मसी ।।
11. व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ।
12. जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशनः । सायङ्ग कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्तुप्रसाधनः ।।
(भै.र. 60:51)

अरिकीलक का निदान व सम्प्राप्ति—जब बालक के शरीर पर निरन्तर पकी हुई ईंट का चूर्ण लगता रहे (सम्भवतः घुटनों से चलने पर ईंट की जो रगड़ पड़ती है),खीरे या ककड़ी के बीज खाने से जिसके अवयव सूख जायें, जो मेदोवर्धक अन्न का सेवन करता हो, दिन में सोता हो,उसका मेद प्रकुपित होकर वात के द्वारा त्वचा में पहुँचता है तथा त्वचा के मेद से युक्त हो जाने पर अरिकीलक उत्पन्न होता है । प्रारम्भ में ये छोटे-छोटे उभार-से कहीं-कहीं दिखायी देते हैं तथा बाद में धीरे-धीरे बढ़कर करौंदे तथा मुनक्के के समान हो जाते हैं ।

अन्य आचार्यों ने सम्भवतः इसे चर्मकील कहा है । (सु.नि. 2:20-22)

परन्तु यह शिशुओं में होता है—ऐसा स्पष्ट वर्णन नहीं है । यह सम्भवतः Neurofibromatosis या Melonoma का वर्णन है ।

चिकित्सा—सर्वप्रथम उष्णस्नेह या गुड़ के द्वारा इनका दहन करें या एक-एक कीलिका को काटकर उन पर क्षार का प्रतिसारण करना चाहिए अथवा क्षार-सूत्र के द्वारा इन्हें बाँध देना चाहिए तथा उसके बाद व्रणोपयोगी कर्म करें ।

'तासां दहनमेवाग्रे तप्तैः स्नेहैर्गुडेन वा ।
एकैकशो हितं जन्तोश्छित्वा वा क्षारसारणम् ।
बन्धनं क्षारसूत्रैर्वा व्रणकर्म ततः परम्' ।। (का.चि.द्विव्रण.पृ. 128)

महापद्म

पर्याय—शिशुविसर्प ।

'विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ।
पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः ।
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत्' ।। (मा.नि. 68:14)

बस्तिप्रदेश एवं सिर में होने वाला बालकों का विसर्प प्राणनाशक है । लाल कमल के वर्ण का होने के कारण इस त्रिदोषज विकार को महापद्म भी कहते हैं । यह शङ्खप्रदेश से हृदयप्रदेश या हृदयप्रदेश से गुदा तक जाता है ।

'विविधं सर्पणाद्देहे वैसर्पस्तु निरुच्यते' । (का.खि. 14:9)

शरीर में नाना प्रकार से सर्पण करने के कारण यह विसर्प कहलाता है । काश्यप-संहिता में इसका विशेष विस्तृत विवरण बालक के सम्बन्ध में है, क्योंकि उनके मत से सुकुमारों में यह व्याधि विशेष होती है ।

'दुःसहः सुकुमाराणां कुमाराणां विशेषतः' । (का.खि. 14:5)

कारण—क्षत, अस्थिभग्न, पिच्चित घात आदि, वेगविधारण, विरुद्ध भोजन, गुरु, अभिष्यन्दि एवं पूति भोजन तथा विष से दूषित वातादि सामग्री के प्रयोग से—इन सभी कारणों से तथा दूसरे कारणों से दूषित वातादि दोष शरीर में रक्त आदि को दूषित कर बालक में विसर्प रोग उत्पन्न कर देते हैं । (का.खि 14:10-13)

Scanned with CamScanner

इसी प्रकार जब शिशु प्रकुपित हुए दोषों से दूषित दूध का सेवन करता है तो भी उस दूध के दोष के कारण विसर्प हो जाता है ।

'एवमेव प्रकुपितैर्दोषैर्दुष्टं यदा पयः ।
सेवते तस्य तद्दोषाद्विसर्पः सम्प्रजायते' ।। (का.खि. 14:1)

काश्यप ने सात भेद दोषानुसार कहे हैं ।—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज एवं त्रिदोषज । चरकसंहिता में द्वन्द्वज के स्थान पर आग्नेय, ग्रन्थि एवं कर्दमविसर्प का वर्णन किया है । अध्याय खण्डित होने से पूर्ण विवरण, लक्षण आदि उपलब्ध नहीं है ।

उपरोक्त उपलब्ध विवरण के आधार पर त्वक्गत संक्रमण की दृष्टि से विचार करना चाहिए ।

शिशुओं में सामान्य त्वग्गत संक्रमण

(1) पायोडरमा (Pyodermas)—यह पूयोत्पादक जीवाणुओं यथा Staphylococcus aureus और Streptococcus pyogenes के कारण होता है । यह दो तरह से होता है—

(क) सीधा संक्रमण त्वचा पर होना (Primary pyoderma)

(ख) पहले त्वचा पर व्रण का होना, त्वचा का छिलना, कण्डू, कीट के काटने से, दद्रु आदि, तदुपरान्त संक्रमण का होना (Secondary pyoderma)

(2) इम्पेटीगो (Impetigo)—यह बच्चों की सर्वाधिक सामान्य समस्या है । प्रारम्भ में त्वचा पर Vesiculo-pustules बनते हैं । यह फफोले फट जाते है; जिस पर क्रमशः मधुवर्ण का खुरण्ड बनता है तथा बाद में उसका दाग (Scar) रह जाता है । शैशवकाल में जो फफोले बनते हैं वह फूटने पर तेजी से बढ़ते हैं । फफोले बनने का सामान्य स्थान शिर एवं एड़ी (heal) है ।

(3) एक्थीमा (Ecthyma)—इम्पेटीगो त्वचा के ऊपरी स्तर की व्याधि है । जब कि एक्थीमा त्वचा के गहरे स्तर पर होती है जो विशेषकर श्रोणि प्रदेश, पृष्ठ भाग, ऊरु एवं पैर में होती है । लक्षण उपरोक्तवत् ही होते हैं ।

(4) विद्रधि (Furuncles)—इसमें लाल एवं शूलयुक्त गाँठें बनती हैं । संक्रमण के कारण पूय बनता है, जो गाँठ के फटने पर बाहर निकलता है ।

(5) एरिसिपेलस (Erysipelas)—इस अवस्था में त्वचा में त्वचा के नीचे का स्तर (Subcutaneous tissue) एवं लसिका ग्रन्थियों का संक्रमण होकर शोथ होता है । लसिका ग्रन्थिशोथ एवं विद्रधि (Cellulitis) सामान्य लक्षण है ।

उपरोक्त सभी अवस्थाओं में उपयुक्त जीवाणुरोधी (Antibiotics) का स्थानीय एवं सांस्थानिक प्रयोग करते हैं । यदि बार-बार समस्या उत्पन्न हो तो जीवाणुरोधी के प्रयोग के साथ-साथ रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का भी उपाय करते हैं ।

चिकित्सा—काश्यपसंहिता (खि. 14) में इसका विस्तृत उल्लेख है । उसे वहीं देखना चाहिए । यहाँ सूत्र रूप में वर्णन दिया जा रहा है ।

'ऊर्ध्वाधः शुद्धदेहानां बहिर्मार्गाश्रिते मले ।
आदितश्चाल्पदोषाणां क्रियां कुर्यादिमां भिषक् ।।
लङ्घयित्वा यथाकालं कषायैः समुपक्रमेत् ।
प्रदेहैः परिषेकैश्च स्नेहैरभ्यङ्गनैरपि ।।
रक्तावसेकैः पथ्यैश्च पानान्नौषधसेवनैः' ।। (का.खि. 14, पृ. 326)

दोषों के बहिर्मार्गाश्रित होने पर तथा प्रारम्भ में दोषों के अल्प होने पर रोगी के शरीर का ऊर्ध्व एवं अधः शोधन करके निम्न उपाय करें । रोगी को उचित काल में लङ्घन कराने के बाद कषाय, प्रदेह (लेप), परिषेक, स्नेह, अभ्यङ्ग, रक्तमोक्षण तथा पथ्यकारक पान, अन्न एवं औषधि के द्वारा चिकित्सा करें ।

1. वातज विसर्प में पुराण, प्रपुराण एवं कुम्भ सर्पि का प्रयोग करें ।[1]
2. काँजी, सुरा या बला डालकर पकाये गये तैल का अभ्यङ्ग करायें ।[2]
3. पैत्तिक विसर्प में तिक्तक घृत का प्रयोग करें ।[3]
4. निम्ब, पटोल, दारुहरिद्रा, कुटकी गिलोय, मुलेठी एवं रक्तचन्दन का क्वाथ पिलायें ।[4]
5. दाह, राग तथा पाक होने पर अन्तः शोधन कर जलौका लगायें । दूषित रक्त निकल जाने पर शीतल क्षीरीवृक्षत्वक् कल्क में घृत मिलाकर रक्त-प्रसादन करें ।[5]
6. कफज विसर्प में प्रारम्भ में वमन या अल्प दोष में लङ्घन करायें ।[6]
7. विसर्प ज्वर में गिलोय, शुण्ठी, पित्तपापड़ा एवं दुरालभा कषाय में मधु मिलाकर पिलायें ।[7]

---

1. वातवैसर्पिणं पूर्वमनुबन्धविशेषतः । पुराणं प्रपुराणं वा कौम्भं वा पाययेद् घृतम् ।। (का.खिल. 14)
2. तैलं सलवणं चास्य क्षिप्रमभ्यङ्गने हितम् । आरनालेन सुरया बलया वा विपाचितम् ।। (का.खिल. 14)
3. पैत्तिके तिक्तकं सर्पिरुक्तं ज्वरचिकित्सिते । (का.खिल. 14)
4. पिचुमन्दं पटोलं च दार्वीं कटुकरोहिणीम् । गुडूचीं मधुकं चैव चन्दनं चेति तत् पिबेत् ।। (का.खिल. 14)
5. सदाहराम(ग)पाके तु श्वयथौ विप्रसर्पति । अन्तर्विशुद्धदेहानां जलौकाभिहरेदसृक् ।। निःस्राव्य दुष्टं रुधिरं कुर्याद्रक्तप्रसादनम् । सघृतैः क्षीरिणां कल्कैर्यथोक्तैः शीतलैरपि ।। (का.खिल. 14)
6. आदितः श्लेष्मवैसर्पे वमनं सम्प्रकल्पयेत् । लङ्घनं वाऽल्पदोषाणां ततः कुर्यादिमां क्रियाम् ।। (का.खिल. 14)
7. शृतं वाऽप्यमृताशुण्ठीपर्पटैः सदुरालभैः । पिबेत् कषायं मधुना वैसर्पज्वरपीडितः ।। (का.खिल. 14)

Scanned with CamScanner

8. सहिजनमूल एवं अहिंसा के कल्क से घृतपाक करें । इस घृत या कुष्ठ तैल का अभ्यङ्ग करें ।[1]

9. अमृतादि क्वाथ, दशाङ्ग लेप, नवकषाय गुग्गुलु, कालाग्निरुद्रो रस, वृषाद्य घृत एवं करञ्जतैल का सेवन करें । (भै.र. 57:18-20,22-26)

चर्मदल

'चर्मदल' का वर्णन प्रायः सभी आचार्यों ने किया है । परन्तु शिशुओं के सन्दर्भ में वर्णन आचार्य कश्यप ने ही किया है । उनके विचार से यह व्याधि क्षीरप एवं क्षीरान्नाद शिशुओं में ही होती है, अन्नाद में नहीं होती है । क्षीरप एवं क्षीरान्नाद बालकों में क्षीर या क्षीर एवं अन्न के दोष से यह व्याधि होती है । जिनकी शारीरिक धातुएँ मृदु हों, शरीर गर्भशय्या के योग्य मृदु हो तथा जो सुकुमार हों उन्हें ही यह व्याधि होती है । अन्नाद या बड़ों में यह व्याधि नहीं होती, क्योंकि इनकी त्वचा, अस्थि व शारीरिक धातुएँ दृढ़, स्थिर एवं कठोर हो जाती हैं । शरीर पुष्ट एवं क्लेश सहने के योग्य हो जाता है ।[2]

इस रोग में वात की प्रधानता होने से यह वातात्मक व्याधि है । चर्म का अवदारण करने से इसे चर्मदल कहते हैं ।

'वायुभूयिष्ठत्वाद्वाय्वात्मकमेवोदाहरन्ति । चर्मदलमिति चर्मावदारणात्' ॥
(का.खि. 15:6)

यह चर्मदल वातिक, पैत्तिक, कफज एवं त्रिदोषज चार प्रकार का होता है । उनके संक्षेप में लक्षण निम्न प्रकार से हैं—

(1) **वातज**—शरीर में कण्डू, स्फोटयुक्त कठोर कृष्णमण्डल दिखते हैं । शरीर में चिमचिमाहट एवं फेनयुक्त विसर्प हो जाता है । उसमें विप्लुत, पतला एवं रंग-बिरंगा मल आता है । कम्प, रोमहर्ष एवं मुखशोष होता है ।

(2) **पित्तज**—शरीर पर लाल, नीला, काला एवं पीत वर्ण का शुष्क छवियुक्त, उष्ण, दुर्गन्धित दोषपूर्ण मण्डल होते हैं । त्वचा, मांस का दारण करनेवाला विसर्प, निरन्तर हरे-पीले वर्ण का अतिसार तथा गुदपाक होता है । दाह, मुखशोष, छर्दि एवं मुख पर पीलापन हो जाता है ।

(3) **कफज**—कफज पर शीत, स्तिमित, स्निग्ध एवं सान्द्र मण्डल होना, श्वेतवर्ण के अल्पसंख्यक, अल्पवेदनायुक्त, सर्षप के समान, देर में पकने वाले, कण्डू,

1. शिग्रुमूलमहिंस्रां च पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् । तेनास्याभ्यञ्जने योज्यं कण्डूकोठारुनाशनम् ॥
(का.खिल. 14)

2. खलु क्षीरपाणां कुमाराणां स्तन्यदोषेण, क्षीरान्नादानां स्तन्यदोषेणाहारदोषेण च, सुकुमाराणामस्थिरधातूनां बालानां गर्भशय्योचितमृदुशरीराणां·····न चान्यादवयःस्थानामिति किं कारणं ? स्थिरकठिनसंहतत्वगस्थिधातूनां तथा नित्यव्यायामोपचितगात्राणां क्लेशं सहतां न भवत्येष व्याधिरिति । (का.खि. 15:4-5)

तोदयुक्त, पिडकायें होना, फिर प्रतिश्याय, अरुचि, अङ्गगौरव, कास तथा पाक होता है । संख्या में अधिक, पिच्छिल तथा ढीला मल आता है । श्वासकाठिन्य, श्लेष्मा-वमन, तन्द्रायुक्त, ओष्ठ एवं तालु श्वेत होना आदि लक्षण है ।

(4) **त्रिदोषज**—शरीर पर कृष्ण एवं लाल वर्ण के, जले गुड़ के समान तीनों दोषों के गुणों से युक्त, शीघ्र पाकी, दुर्गन्धित, विदीर्ण, पूति एवं कुणप स्रावयुक्त मण्डल निकलते हैं । कष्टयुक्त श्वसन, रोने में भी कष्ट होना, दूध न पीना, कृष्ण एवं अरुण वर्ण का अतिसार होता है ।

जिस चर्मदल में वमन, तृष्णा, ज्वर, आध्मान, शोथ, हिक्का, श्वास एवं स्वरभेद आदि उपद्रव हों, वह असाध्य होता है । इस प्रकार चर्मदल का संक्षिप्त विवेचन किया गया है । पूर्ण विवरण काश्यपसंहिता के खिलस्थान अध्याय 15 में द्रष्टव्य है ।

चिकित्सा—

(1) **वातिक**—धात्री को स्नेहन व स्वेदन कराकर त्रिवृत् चूर्णयुक्त घृत पिलायें । फिर अनारदाना एवं नमक मिश्रित यूष के साथ चावल दें, स्तन्यशोधन करें । फिर नागरमोथा तथा अगुरु कल्क या पुराण घृत में मिला तिलकल्क का लेप स्तन पर करें । रास्ना क्वाथ या ईषत् उष्ण जल से परिषेक, बला, अतिबला, बिल्वमूल, देवदारु तथा आम की गुठली की मज्जा से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करें ।

(2) **पैत्तिक**—धात्री को स्नेह का अभ्यङ्ग कराकर वमन तथा विरेचन करायें । फिर संसर्जन कर्म करें । स्तन्यशोधन करें । पुण्डरीक, सारिवा, खस एवं चन्दन कल्क का या मुलैठी, रक्त चन्दन, मोथा, मञ्जिष्ठा एवं रसौत कल्क का लेप करें । फिर अभ्यङ्ग करें । शरीर पर लोध्र, मधुयष्टी, दारुहरिद्रा, आँवला, दालचीनी एवं तेजपत्र का अवचूर्णन करें ।

(3) **कफज**—धात्री को पैत्तिक के समान वमन करायें । फिर शिरोविरेचन करायें । संसर्जन कर्म करें । फिर पाठा एवं आर्द्रक कल्क या इन्द्रयव एवं पाठा कल्क जल से पिलायें । नागरमाथा एवं चमेलीपत्र कल्क का स्तन पर लेप करें ।

(4) **त्रिदोषज**—इसमें दोष के बलाबलानुसार चिकित्सा करें ।

तृष्णा

'ह्रीबेरशर्कराक्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम्' । (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 443)

चिकित्सा—हाऊबेर (सुगंधबाला) चूर्ण, शर्करा एवं मधु मिलाकर चटाने से बालकों की तृषा शान्त होती है ।

आनाह एवं शूल

'घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्गीरजो लिहन् ।
आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः' ॥
(यो.र.बा.रो.चि.पृ. 443)

Scanned with CamScanner

सैन्धव, शुण्ठी, छोटी एला, हिङ्गु एवं भार्ङ्गी के समभाग चूर्ण को गोघृत के अनुपान एवं जल के अनुपान से देने से बालकों के आनाह एवं वातिक शूल नष्ट हो जाता है।

मूत्राघात (मूत्रग्रह)

'कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृताः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः' ।। (यो.र.बा.रो.चि.पृ. 444)

पिप्पली, मरिच, छोटी एला, सैन्धव, शर्करा एवं मधु का लेह प्रयोग करने से मूत्र ग्रह (मूत्रघात) ठीक होता है।

शय्यामूत्र

शय्या पर सोते समय अनैच्छिक रूप से स्वयं मूत्र का त्याग हो जाना शिशु में एक सामान्य समस्या से लेकर गम्भीर समस्या है।

बालक जब कुछ भी बता पाने की स्थिति में नहीं रहता अर्थात् जीवन के प्रथम वर्ष में, उस समय भी मल-मूत्र त्याग के पूर्व ध्यानाकर्षण के लिए कुछ क्रियाएँ करता है; यथा रोना-चीखना, शय्या से नीचे उतरना आदि। यदि माता समझदार है तो बच्चे को नीचे करके मूत्र त्याग करा देती है, परन्तु माता द्वारा संकेत को न समझ पाना—धीरे-धीरे बच्चे को संकेत देने की परम्परा समाप्त कर देती है। बिस्तर पर ही वह बालक आदतन मूत्र त्याग कर देता है। यह एक त्रुटिपूर्ण पालन-पोषण का परिणाम है, जिसे रात में बच्चे को एक-दो बार उठाकर मूत्र त्याग कराके सुलझाया जा सकता है। इसे सामान्य समस्या कहा जा सकता है।

प्रायः बालक 2 वर्ष के उपरान्त दिन में और 5 वर्ष के उपरान्त रात्रि में बिस्तर आदि पर मूत्र त्याग करना बन्द कर देते हैं। लगभग एक चौथाई बालकों में यह समस्या मिलती है तथा लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक पीड़ित होते हैं। 5 वर्ष की वय तक के बालकों में 7%, बालिकाओं में 3% तथा 10 वर्ष की अवस्था तक बालकों में 3% एवं बालिकाओं में 2% तक यह समस्या मिलती है। इस समस्या के कारणों को 3 भागों में बाँट सकते हैं—

(1) मानसिक कारण—इस वर्ग में पारिवारिक तनाव या संरक्षक तथा शिशु के सम्बन्धों में तनाव जैसे कारण आते हैं। शिशु पर अत्यधिक नियन्त्रण रखना, असुरक्षा की भावना, प्रतिस्पर्द्धा, अनाथावस्था तथा आन्त्रसङ्कोच आदि कारण होते हैं।

(2) त्रुटिपूर्ण पालन-पोषण—अभिभावकों में पर्याप्त शिक्षा, बालक के पालन-पोषण विधि का उचित ज्ञान न होने के कारण, शिशुओं को समय पर मल-मूत्र त्याग का अभ्यास नहीं करा पाते। परिणामस्वरूप असमय में शिशु सोते समय मूत्र त्याग कर देते हैं।

(3) शारीरिक कारण—प्रायः 'Theadworm' इसका कारण होता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण मूत्रवह संस्थान एवं जननेन्द्रिय का संक्रमण है। इसके अतिरिक्त प्रगाढ़ निद्रा, कोष्ठबद्धता, भगशोथ, मूत्राशय-अश्मरी, निरुद्धप्रकाश, आन्त्रकृमि, नाड़ी-विकार आदि भी कारण हो सकते हैं।

व्याधि-निदान—इस व्याधि के निदान में निम्नाङ्कित बिन्दु सहायक होते हैं—

(1) रोगग्रसित शिशु एवं संरक्षक से विस्तृत इतिवृत्त का ग्रहण करना एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

(2) विस्तृत शारीरिक परीक्षण करना चाहिए।

(3) आवश्यकतानुरूप आवश्यक नैदानकीय परीक्षण कराना चाहिए। यथा—मल-परीक्षण, मूत्र कल्चर, एक्सरे परीक्षण, Intravenous urogram आदि।

चिकित्सा—इस व्याधि की चिकित्सा निदान के अनुसार तुरन्त प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

(1) मानसिक चिकित्सा—अशिक्षा, मानसिक कारणों एवं त्रुटिपूर्ण पालन-पोषण में लाभकर है। इसके अन्तर्गत शिशु एवं संरक्षक को ठीक होने के लिए साध्यता के लिए आश्वस्त करना चाहिए। बच्चे को सोने से पूर्व मूत्र त्याग कराना, मध्य निद्रा में एक-दो बार उठाकर मूत्र त्याग कराना, किसी रात्रि में मूत्र त्याग शय्या पर न करने पर पुरस्कृत करना लाभप्रद विधि है। सायंकाल के बाद द्रव आहार, पेय एवं जल कम दिया जाय। बड़े बच्चों को रात में अलार्म के प्रयोग से जग कर मूत्र त्याग कराने का अभ्यास कराया जाय।

(2) औषधि-चिकित्सा—अन्य कारणों की उपस्थिति में उनके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए। यथा—आन्त्रकृमि एवं मलाशयकृमि में कृमिनाशक चिकित्सा, मूत्रवह संस्थान संक्रमण में वरुणशियू क्वाथ, दशमूल क्वाथ या चन्द्रप्रभावटी का प्रयोग तथा विबन्ध में मृदु रेचन करायें।

आवश्यकतानुरूप वङ्गभस्म, त्रिवङ्गभस्म, बहुमूत्रान्तक रस का प्रयोग करा सकते हैं।

आधुनिक औषधियों में Imipramine hydrochloride 25 से 75 मि.ग्रा. की मात्रा सोने से पूर्व देना लाभकर है। आवश्यकतानुरूप इसके साथ निद्राकारक औषधि भी अल्पमात्रा में देकर लाभ की प्रतिशतता बढ़ायी जा सकती है। Amitryptaline एवं Nitroxazepine HCl भी लाभप्रद हैं। कुछ पाश्चात्य देशों में Desmopressin acetate का Nasal spray भी देते हैं। यह औषधियाँ मात्र तात्कालिक लाभ देती हैं।

Scanned with CamScanner

शोथ

शोथ स्वयं में एक विस्तृत विषय है। एतदर्थ कायचिकित्सा के ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिए। यहाँ पर शोथ के महत्त्वपूर्ण कारणों का उल्लेख करते हुए शैशवीय दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण व्याधि का विवेचन किया जायेगा, जिसके कारण शोथ की उत्पत्ति होती हो।

शोथ व्याधि रूप न होकर एक लक्षण है। संहिताओं में शोथ, श्वयथु एवं शोफ शब्द इसके लिए प्रयुक्त हुए हैं। इनको दो अर्थों में प्रयोग किया गया है; यथा—जिसमें प्राय: पाक की प्रवृत्ति न हो वह Oedema और जिसमें प्राय: पाक की प्रवृत्ति हो वह Inflamation। प्रस्तुत सन्दर्भ Oedema का है।

सम्प्राप्ति—दूषित वात तथा कुपित पित्त रक्त एवं कफ को शरीर की बाह्य सिराओं में ले जाकर इन्हीं पित्त आदि से अवरुद्ध होकर त्वक् एवं मांस में आश्रित ठोस उत्सेध उत्पन्न करता है, उसको शोथ कहते हैं; यथा—

'पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहि:सिरा: ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ।।
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादत:' ।। (अ.ह.नि. 13:21-22)

शोथ का विस्तृत एवं आधुनिकतम विवेचन आचार्य चरक ने किया है।[1] इसे वहीं देखना चाहिए। चरक ने जहाँ दोषानुसार शोथ का वर्गीकरण किया है, वहीं शोथ को शरीर पर उपस्थिति को भी आधार मान कर विभाजित किया है।

'त्रिविधो निजश्च सर्वार्धगात्रावयवाश्रितत्वात्' । (च.चि. 12:6)

निज शोथ 3 प्रकार का होता है—

1. सर्वाङ्ग शोथ
2. अर्धाङ्ग शोथ
3. एकांग शोथ

इसके अतिरिक्त निज व आगन्तुज भेद से या दोषादि आधार पर 9 भेद भी वर्णित है; यथा—वातज, पित्तज, कफज, 3 द्वन्द्वज, त्रिदोषज, अभिघातज एवं विषज (अ.ह.नि. 13:22)। अन्य वर्गीकरण में पृथु, उन्नत एवं ग्रथित भी भेद हैं।

कारण—संहिताओं ने बहुत कारणों का उल्लेख किया है। उसमें किसी विशेष शैशवीय कारण का उल्लेख नहीं किया गया है। वे सामान्य कारण है जो सभी में शोथ पैदा कर सकते हैं। यथा—विशिष्ट रोग (पाण्डु के उपद्रव में शोथ), उपवास (कुपोषण जन्य); पंचकर्म आदि से क्षीण शरीर वाला यदि सहसा या अति मात्रा में गुरु, अम्ल, स्निग्ध व शीतल भोजन करें; मिट्टी-सेवन, अजीर्ण अवस्था में श्रम, श्वास, कास,

1. चरकसंहिता-चिकित्सास्थान, अध्याय 12।

अतिसार, अर्श, उदररोग (यकृत्-वृद्धि आदि), ज्वर, विसूचिका, अलसक, वमन, विसर्प, गर्भ, पाण्डु आदि। अभिघात एवं विष महत्त्वपूर्ण आगन्तुज कारण है।[1]

शोथ (Oedema) के कारणों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

(क) सर्वाङ्ग शोथ—

1. हृदयरोगजन्य।
2. वृक्करोगजन्य—नेफ्रोसिस, नेफ्रोटिक सिण्ड्रोम, नेफ्राइटिस आदि।
3. कुपोषणजन्य—जीवतिक्तिय अल्पता (Beriberi), उपवास, अरुचि, प्रोभूजन अल्पता (Kwashiorkor) आदि।
4. यकृत् रोगजन्य-सिरोसिस आदि।
5. अन्य कारण—पाण्डु, जीर्णस्वरूप का राजयक्ष्मा, Epidemic dropsy, Myxoedema आदि।

(ख) एकाङ्ग शोथ—

1. शोथ—विद्रधि, कीटदंश आदि।
2. आघात—अस्थिभग्न, मोच आदि।
3. लसिकावहजन्य—फाइलेरिया, शल्य कर्म के पश्चात् आदि।
4. अन्य कारण—Angioneurotic Oedema, शिरा अवरोध, Milroy's disease, जलने से, द्रव्यों से आदि।

उपरोक्त कारणों में बच्चों में होने वाले सामान्य कारण कुपोषण, यकृत् रोगजन्य एवं वृक्करोगजन्य शोथ प्रमुख हैं। इसमें वृक्करोगजन्य के अतिरिक्त सभी का वर्णन पहले ही में किया जा चुका है।

वृक्करोगजन्य Oedema के बालकों में 2 प्रमुख कारण हैं—Nephritis एवं Nephrotic syndrome। इनका अति संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

वृक्कशोथ
(Nephritis)

तीव्र वृक्कशोथ (Acute nephritis) व्याधि में एकाएक मूत्र में रक्त का आना, शोथ एवं उच्च रक्तचाप प्रमुख लक्षण हैं। प्राय: दो वर्ष की वय के बाद वाले लड़कों में अधिक होता है। यह व्याधि प्राय: श्वसनमार्ग, कण्ठ एवं त्वचा आदि में संक्रमण के उपरान्त ही होती है। इसका मुख्य कारण Streptococcal (beta-hemolytieus type 12) संक्रमण है।

लक्षण—प्राय: गले में खराश या अन्यत्र संक्रमण के 7 से 14 दिन के उपरान्त तीव्र ज्वर, मुख पर शोथ (विशेष रूप से नेत्रों के किनारे) एवं धूम्रवत् या रक्तमिश्रित

1. विस्तृत विवरण च.चि. 12, अ.ह.नि. 13, का.खि. 17 में देखिये।

Scanned with CamScanner

मूत्र त्याग (Hematuria) होता है तथा मूत्र-प्रवृति कम होती है। बच्चे को वमन, शिरःशूल, अङ्गमर्द एवं मूत्र में कमी भी हो सकती है। रक्तचाप में वृद्धि मिलती है। इसके कारण बालक में मस्तिष्कशोथ (Encephalopathy) के लक्षण मिलते हैं। इसके स्वरूप मूत्र का न बनना एवं हृदयाघात (C.H.F.) हो जाता है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—

1. मूत्र-परीक्षा—मूत्र में प्रोभूजन 2+ से 3+, अल्प से अधिक संख्या में लाल रक्तकण तथा Red cell casts, कुछ पूयसेल एवं Granular cast मिलता है। मात्रा कम हो जाती है।

2. रक्त-परीक्षा—A.S.O. Titer एवं E.S.R. की वृद्धि मिलती है। रक्त में पाण्डु (Narmocytic narmochromic) का प्रमाण मिलता है। रक्त में यूरिया तथा क्रीटेनीन की मात्रा में वृद्धि मिलती है, जो 2 से 3 सप्ताह में सामान्य हो जाती है।

3. कण्ठस्राव के परीक्षण में Streptococi मिल सकते हैं।

उपद्रव—1. मस्तिष्कशोथ (Hypertensive encephalopathy)।

2. हृदयाघात (C.H.F.)।

3. वृक्क का कार्य न करना।

चिकित्सा—व्याधि के तीव्र स्वरूप में रोगी को आराम, प्रोभूजन एवं लवण विहीन भोजन एवं द्रव की मात्रा कम देते हैं। अल्प प्रोटीन (0.6 ग्रा./कि.ग्रा.) की मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं। मूत्र-अल्पता में विशेष ध्यान देते हैं। चिकित्सा से सुधार हो जाने पर सामान्य क्रम एवं भोजन दिया जाता है। चिकित्सा में उचित एण्टीबायटिक प्रायः Penicillin का प्रयोग लाभकर है। उपद्रवों की यथावत् चिकित्सा करें। यथा—उच्च-रक्तचाप में Nifedipine, Atenolol या Enalapril आदि, आक्षेप में Diazepam आदि। वृक्क के कार्य न करने की अवस्था में Peritoneal dialysis की जाती है।

नेफ्रोटिक सिण्ड्रोम
(Nephrotic Syndrome)

यहाँ बालकों की विशिष्ट समस्या है। इसमें प्रमुख लक्षण सर्वाङ्गशोथ, मूत्र में अति प्रोभूजन एवं Hypercholesterolemia मिलता है। रक्तचाप एवं रक्त में यूरिया सामान्य होता है।

निदान—कारणों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) अज्ञात कारणजन्य—प्रायः 70% रोगी इस वर्ग में आते हैं। रोगी के पूर्व संक्रमण का इतिहास नहीं मिलता। यह Autoimmune phenomenan प्रक्रियाजन्य व्याधि है।

(ख) द्वितीयक कारण—यह प्रायः युवा वर्ग में मिलता है। प्रायः बालक इससे कम ही पीड़ित होते हैं। यथा—तीव्र वा जीर्ण ग्लोमेरुलोनेफ्राइटिस, मधुमेह, रीनल वेन थ्राम्बोसिस, घातक उच्च-रक्तचाप, घातक मलेरिया (P. Malaria) अमीलायड रोग एवं औषधि-विषाक्तता (स्वर्ण, सीसा, पारद, यूरेनियम, पेन्सलीन एवं पेनसिलामीन आदि)।

इसके अतिरिक्त जन्मजात विकृतियाँ (वृक्क की रचना में विकृति) भी इसका कारण है। परन्तु बहुत ही विरल अवस्था है। जीवन के प्रथम वर्ष में ही मृत्यु हो जाती है।

महत्त्व की दृष्टि से प्रथम कारण को ही आगे विस्तृत विवेचनार्थ ग्रहण किया गया है।

लक्षण—प्रायः 1 से 5 वर्ष की वय के मध्य होने वाली यह व्याधि अधिकांशतः 2 से 4 वर्ष वय के मध्य होती है।

व्याधि प्रायः क्रमशः होती है। पर कभी-कभी एकाएक भी हो सकती है। बालक का भार एकाएक बढ़ना प्रारम्भ होता है। नेत्रगोलक पर शोथ होता है। प्रायः सम्पूर्ण शरीर में शोथ होने के पूर्व संरक्षक इसे स्वास्थ्य का प्रतीक मान लेते हैं। सर्वाङ्गशोथ, (विशेष रूप से मुख पर, शाखाओं पर, वक्षोदर, लिङ्ग एवं वृषण), Hydrothorax, जलोदर एवं श्वसन में कठिनाई होती है। यकृत्-वृद्धि भी मिल सकती है, मूत्र कम, पाण्डु, रक्तचाप प्रायः सामान्य मिलता है। श्वसन तन्त्र, त्वचा या उदरावरण कला का संक्रमण भी मिलता है।

प्रयोगशालीय परीक्षण—

1. मूत्र में 2 से 20 ग्राम (+++ से 4+) प्रोटीन प्रतिदिन की दर से जाता है।

2. रक्त में प्रोभूजन-अल्पता की विशेष रूप से Albumin की अल्पता 2.5g/dl से नीचे मिलती है। Serum globulin सामान्य या कुछ बढ़ा मिलता है। रक्त में Cholesterol बढ़ा (250mg/dl से अधिक) तथा Urea सामान्य मिलता है। अत्यधिक शोथ एवं मूत्राल्पता (Oliguria) में यूरिया बढ़ा मिल सकता है।

3. Renal biopsy, Precutaneous kidney biopsy सही निदान एवं व्याधि-प्रगति परीक्षण हेतु सहायक है।

सर्वशरीर शोथ (Anasarca) में निम्नवत् परीक्षण मिलते हैं—

सीरम एल्ब्यूमिन	- 1.5g/dl से भी कम
कोलेस्ट्राल	- 500mg/dl से भी कम
IgG	- Low
IgM	- Raised

चिकित्सा—

(1) भोजन में नमक रहित भोजन दें। द्रव की मात्रा शोथ में कम करनी चाहिए। सामान्य भोजन एवं प्रोभूजन देना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(2) संक्रमण को दूर करने के लिए उचित Antibiotics का प्रयोग करना चाहिए।

(3) मूत्रल औषधि का प्रयोग शोथ, जलोदर आदि अवस्था में करें। इसके साथ पोटेशियम अवश्य दें।

(4) इसकी मुख्य चिकित्सा Cortisone का प्रयोग है।

कॉर्टीसोन (Cortisone) चिकित्सा निम्नवत् करनी चाहिए—

(1) सर्वप्रथम अत्यधिक शारीरिक शोथ को कम करें।

(2) संक्रमण-रोधी चिकित्सा करें।

(3) इसके बाद कॉर्टीसोन का प्रयोग करें।

• प्रथम उत्पन्न व्याधि में—

औषधि	मात्रा	दिवस
Prednisolone	2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार प्रतिदिन/2 से 3 मात्रा में बाँटकर।	4 से 6 सप्ताह
तदुपरान्त (4 से 6 सप्ताह के बाद)	1.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार पर 1-1 दिन के अन्तराल पर केवल दिन में एक बार	4 से 6 सप्ताह

सावधानियाँ—

(1) कॉर्टीसोन औषधि एकदम से बन्द न करें।

(2) नमक एवं वसा का प्रयोग रोकें/या कम करें।

(3) रक्तचाप सामान्य रहना चाहिए। अत: बराबर परीक्षण करते रहना चाहिए।

बहुत कम रोगी इससे ठीक हो पाते हैं। प्राय: व्याधि के पुन: होने की सम्भावना रहती है। 30% रोगियों में और कभी-कभी 40% रोगियों में बार-बार व्याधि होती है। अवशेष रोगी कॉर्टीसोन चिकित्सा पर बराबर बने रहते हैं।

• व्याधि के पुन: होने पर—

Prednisolone	2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. उपरोक्तवत्	जब तक मूत्र प्रोभूजन का आना समाप्त न हो जाय। क्रमश: 3 दिन तक
तदुपरान्त	1.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार, उपरोक्तवत्	4 सप्ताह

• व्याधि के बारम्बार होने पर—

जिन बच्चों में बार-बार नेफ्रोटिक सिण्ड्रोम होता है उन्हें बार-बार कार्टीसोन देने से उसके उपद्रव होने लगते है यथा—चन्द्रमा के समान शोथयुक्त मुख, शोथ, उच्च

रक्तचाप, दाड़ी-मूँछ के बाल निकलना (Hairsutism), नेत्र में कैटरेक्ट, वृद्धि एवं विकास का प्रभावित होना। ऐसी अवस्था में अन्य औषधियाँ दी जाती हैं। इसमें विशेषज्ञ की सलाह या चिकित्सा होनी चाहिए। यथा—

(1) Prednisolone—0.5-0.75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार, एक मात्रा प्रात: काल, एक-एक दिन के अन्तराल से लम्बे समय तक। इस व्यवस्था से पुन: पुन: व्याधि होने की सम्भावना कम होती है साथ ही उपद्रव भी कम होते है।

(2) Levamisol—2.0-25 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार, एक-एक दिन के अन्तराल पर 1 या 2 वर्ष या इससे भी अधिक समय तक।

(3) Cytotoxic औषधि (Chlorambucil, Cyclophosphamide etc.), यथा—

Cyclophosphamide 2 से 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन तथा एक-एक दिन के अन्तराल पर Prednisolone 1 से 1.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार।

(4) Cyclosporine—3 से 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन (अधिकतम 100 से 150 मि.ग्रा./मी^{2}/दिन) इसके साथ ही प्रारम्भ में 4 से 8 सप्ताह तक Prednisolone भी देते हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि इन औषधियों के उपद्रव अधिक होने की सम्भावना रहती है।

गण्डमाला एवं अपची

गण्डमाला एवं अपची दोनों ही चिरकालीन स्वरूप की शैशवकालीन, लसिका-ग्रन्थियों की व्याधियाँ हैं। अपची शब्द 'ची चयने' धातु से बना है, अप उपसर्ग है। 'ची चयने' का अर्थ है—एकत्र करना—'चयप्रकर्षात् अपची'।

इन दोनों व्याधियों के लक्षण ऐसा प्रकट करते हैं कि इनमें लसिकासंस्थान और/या लसिकाग्रन्थियाँ ही प्रभावित होती हैं। आयुर्वेद-ग्रन्थों में वर्णित रसवाहिनी और रस या लस को कुछ विद्वान् लसिकावाहिनी या लसिका मानते हैं। कुछ विद्वान् कफ के वर्णन के आधार पर रस को लसिका मानते हैं।

आचार्यों के मत वैभिन्य में न जाकर इतना कहा जा सकता है कि गले पर, बगल में एवं जोड़ों पर दोषप्रकोप से यह व्याधि होती है—

'हन्वस्थिकक्षाक्षकबाहुसन्धिमन्यागलेषूपचितं तु मेद:।
ग्रन्थिं स्थिरं वृत्तमथायतं वा स्निग्धं कफश्चाल्परुजं करोति॥
तं ग्रन्थिभिस्त्वामलकास्थिमात्रैर्मर्त्स्याण्डजालप्रतिमैस्तथाऽन्यै:॥
अनन्यवर्णैपचीयमानं चयप्रकर्षादपचीं वदन्ति॥'

(सु.नि. 11:10-11)

Scanned with CamScanner

त्वक् वर्ण की अनेक ग्रन्थियों के उपचित होने से तथा चय (संचय) के प्रकर्ष (आधिक्य) के कारण इन्हें अपची कहते हैं। इसके पकने की भी सम्भावना रहती है। पर यह क्रिया धीरे-धीरे होती है। जब यह ग्रन्थियाँ पकने लगती हैं एवं स्रावयुक्त हो जाती हैं तो इन्हें गलु या गलगण्डु (गण्डमाला) कहते हैं। सायणाचार्य के इस मत से स्पष्ट है कि (गण्डमाला) अपची के बाद की अवस्था है। परन्तु आयुर्वेद के संहिताकारों ने गण्डमाला के बाद की अवस्था को अपची कहा है। सुश्रुतसंहिता के टीकाकार डल्हण ने अपनी टीका में गण्डमाला एवं अपची को स्थान-भेद से एक ही व्याधि माना है।

'तां तु मालाकृतिं विद्यात् कण्ठहृद्धनुसन्धिषु।
गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम्' ॥
(सु. नि. डल्हणटीका 11:10-12)

आचार्य चरक ने मेद व कफ से दूषित रक्त संचय से गले के मध्य में एक गण्ड का बनना कहा है, यह गलगण्ड है। इसी प्रकार के अनेकों गण्डों को मिलाकर गण्डमाला बन जाती है।

'गलस्य पार्श्वे गलगण्ड एकः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गण्डैः'।
(च.चि. 12:79)

आचार्य वाग्भट ने दोनों को पर्याय माना है। माधवनिदान में गण्डमाला की प्रारम्भिक अवस्था को अपची कहा गया है (मा.नि. 38:3)। यह मतवैभिन्न्य एक ही व्याधि की बहुत-सी अवस्थाओं के विवेचन के कारण है। गण्डमाला को प्रायः विद्वानों ने गले के ऊपर की गण्ड (Cervical lymphadenitis) माना है। परन्तु माधव का कहना है कि यह माला कहीं भी बन सकती है (मा.नि. 38:8)। फिर भी डल्हण ने स्थान गले के ऊपर ही माना है।

आचार्यों के मत से त्वक्, मांस व मेद के दूषित होने से गण्डमाला होती है। दिवास्वप्न, मेदस्वी आहार कृतान्न सवन एवं दुष्टाम्बुपान प्रमुख कारण है। दिवास्वप्न एवं मेदस्वी आहार, शरीर के चयापचय के विकार के द्योतक हैं। कृतान्नसेवन से सम्भवतः शरीर की व्याधिप्रतिरोधक क्षमता कम होती है। दुष्टाम्बुपान का सीधा अर्थ संक्रमित जल हो सकता है। शरीर का व्याधिक्षमत्व कम होने पर दोषों के चलायमान हो जाने पर ही संक्रमण होता है। अतः Tubercular bacilli का संक्रमण ही इस व्याधि में कारणभूत है। प्रारम्भिक संक्रमण गलशुण्डी, कृमिदन्त आदि से होता है। प्रथम एक स्थान की लसिकाग्रन्थि बड़ी होती है। रक्त के द्वारा संक्रमण में बहुत-सी ग्रन्थियाँ ग्रीवा के दोनों पार्श्व पर संक्रमित होकर बढ़ती हैं। इसके अतिरिक्त शोथजन्य, कैसरजन्य Lymphatic leukaemia आदि भी असामान्य कारण है। बच्चों में श्वसनतन्त्र का संक्रमण बहुत ही सामान्य कारण है। यह चिरकालीन व्याधि है। एक ग्रन्थि पकने के बाद फूट कर ठीक होती है तो दूसरी में शोथ, फिर पाक आदि का क्रम चलता रहता है।

गण्डमाला एवं अपची के लक्षण तथा दोष-दूष्य

लक्षण	चरक	सुश्रुत	वाग्भट	माधव
स्वरूप	-	वृत्त, आमलकी, अस्थि या फलवत् या मत्स्याण्ड-जालवत्।	वर्तक्र, आमलकी।	झरबेर, बड़ी बेर या आमलक के आकार की।
स्थान	ग्रीवा, पार्श्व	कक्षा, मन्या, हन्वस्थि, गला, कक्षकास्थि, बाहु-सन्धि।	कक्षा, मन्या, गला, वंक्षण एवं अक्ष।	कक्षा, मन्या गला, वंक्षण।
ग्रन्थि संख्या	बहुभिः	-	बहु	बहुभिः
काल	दीर्घकाला-नुबन्धि	वर्षगणानुबन्धि	चिरपाकी	चिरम्न्दपाकी कालानुबन्धी।
दोष	कफ	कफ	वात, पित्त, कफ	कफ
दूष्य	मेद, रक्त	मेद	मेद	मेद

चिकित्सा—चिरकालीन एवं वर्षगणानुबन्धि व्याधि होने के कारण इसकी चिकित्सा भी लम्बे समय तक होती है। वाग्भट ने एक चिकित्सासूत्र में सभी का मत देने का प्रयास किया है—

'ऊर्ध्वाधःशोधनं पेयमपच्यां साधितं घृतम्।
दन्तीद्रवन्तीत्रिवृताजालिनीदेवदालिभिः ॥
शीलयेत्कफमेदोघ्नं धूमगण्डूषनावनम्।
सिरयाऽपहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेण तार्क्ष्यजम्' ॥ (अ.ह.उ. 30:13-14)

अपची में वमन-विरेचनार्थ दन्ती, द्रवन्ती, निशोथ, कटुतुम्बी तथा देवदाली से सिद्ध घृत का पान करायें। कफ तथा मेद नाशक धूम, गण्डूष एवं नस्य का प्रयोग करायें। रक्तमोक्षण सिरा से तथा गोमूत्र एवं रसौत का पान करायें। काञ्चनार इसकी विशिष्ट औषधि है।

'पलमर्द्धपलं वाऽपि कर्षं वाऽप्युष्णवारिणा।
काञ्चनारत्वचञ्च पीत्वा गण्डमालां व्यपोहति' ॥ (अ.ह.उ. 30:14-15)

काञ्चनार गुग्गुलु, गण्डमालाकण्डनरस एवं कटुतुम्बीस्वरस का आभ्यन्तर प्रयोग, भल्लातकादि लेप या गन्धकादि लेप का स्थानीय प्रयोग करना चाहिए। च्यवनप्राश, अमृतप्राश आदि बल्य औषधि का प्रयोग हितकर है।

आधुनिक दृष्टि से राजयक्ष्मारोधी चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। इससे व्याधि शीघ्र ठीक हो जाती है (देखिये राजयक्ष्मा चिकित्सा)। क्षयरोधी टीका के प्रयोग से इस व्याधि के उत्पन्न होने से बचा जा सकता है।

Scanned with CamScanner

ज्वर

'ज्वर' अर्थात् शरीर के तापक्रम में वृद्धि होना। शरीर का सामान्य तापक्रम 98.4 डिग्री फारेनहाइट होता है। इससे शरीर का तापक्रम कम होना Hypopyrexia तथा अधिक होना Hyperpyrexia कहलाता है। यह वर्गीकरण आधुनिक चिकित्सा-ग्रन्थों में विस्तृत रूप में उपलब्ध है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी ज्वर को सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझते हुए सर्वप्रथम एवं अतिविस्तृत रूप में वर्णित किया गया है। यह ज्वर व्याधि रूप भी है एवं लक्षण रूप भी। इसका विस्तृत विवरण सम्बन्धित ग्रन्थों में देखना चाहिए।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में शैशवीय ज्वर हेतु कुछ विशिष्ट औषधियों का उल्लेख है। उनका संग्रह यहाँ किया जा रहा है।

'एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे।
स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ।।
न च तृष्णाभयादत्र पाययेत शिशुं स्तनौ'। (सु.शा. 10:45)

स्तन्यपान करने वाले शिशु को वातज पित्तज एवं कफज ज्वरों में क्रम से एक-दो या तीन दिन तक घृत न पिलायें, किन्तु क्षीरान्नाद एवं अन्नाद को उचित जान पड़े तो घृत दें। प्यास लगेगी ऐसा समझकर दुग्धपान करायें।

'मधुनाऽतिविषाशृङ्गीपिप्पलीर्लेहयेच्छिशुम्।
एकां वाऽतिविषां कासज्वरच्छर्दिरुपद्रुतम्' ।। (अ.हृ.उ. 2:57)

योगरत्नाकरकार ने बालकों में ज्वर में प्रयोगार्थ कुछ विशेष योग कहे हैं। (बा.रो.चि. पृ. 440-441)

भद्रमुस्तादि क्वाथ, एलादि चूर्ण, घनादि चूर्ण, पलंकषादि धूप तथा मूर्वादि उद्वर्तन।

अन्य ग्रन्थों में वर्णित योगों का संग्रह नीचे दिया जा रहा है—

रसौषधि—बालरोगान्तक रस, बालरस (भै.र.), बालार्क रस (सि.यो.सं.), आनन्द-भैरवरस, चन्द्रशेखर रस (भै.र.)।

वटी—संजीवनी वटी (शा.सं.), हिंगुलादि वटी (सि.भै.म. मात्रा)।
अरिष्ट—अमृतारिष्ट (भै.र.)।
लेह—धातक्यादि लेह (शा.सं.), अष्टाङ्गावलेह (वृ.मा.)।
तैल—लाक्षादि तैल, चन्दनादि तैल (भै.र.)।

बालकों को तीव्र ज्वर से बचाना चाहिए। अन्यथा मस्तिष्क पर आघात होने से आक्षेप होने लगते हैं। ठण्डे जल से शरीर का प्रक्षालन, ठण्डी पट्टी सिर पर रख कर शरीर का ताप 102 डिग्री फा. (गुदा में) से कम ही रखना चाहिए। कमरा हवादार रखा

जाय। शरीर से हुए जल के क्षय को पूर्ण किया जाना चाहिए। इसके लिए 1/6 से 1/4 सैलाइन या 5% ग्लूकोज सैलाइन का प्रयोग करें। आवश्यकतानुरूप निद्राकारक आक्षेपशामक औषधि का प्रयोग भी करें। तापक्रम कम हो जाने पर उचित निदान एवं आवश्यक एण्टी-बायोटिक का प्रयोग करें।

हृदय व्याधि

आयुर्वेद के ग्रन्थों में हृदयरोग का अति संक्षिप्त वर्णन मिलता है। आधुनिकता के विकास क्रम में हृदयरोगों की वृद्धि के साथ-साथ उसके परीक्षण-निदान एवं चिकित्सा का भी विस्तृत विवेचन हुआ। एतदर्थ हमें आधुनिक हृदयव्याधि-चिकित्सा के ग्रन्थों का मन्थन करना चाहिए। यहाँ पर जन्मजात हृदयव्याधियों का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जा रहा है।

लक्षण—ज्वर, हृदयविकार, सन्धिशूल एवं शोथ, त्वचा में गाँठें एवं कोरिया इसके मुख्य लक्षण हैं। कण्ठ शोथ एवं शूल का इतिवृत्त होता है। इसका तात्पर्य मात्र इतना है कि इन अवस्थाओं से भी पाठक अवगत हो जायें।

कंजेस्टिव कार्डियक फेल्योर
(Congestive Cardiac Failure)

यह बच्चों की सामान्य आपातकालीन समस्या है। युवा की अपेक्षा शैशव काल में इसके भिन्न-भिन्न कारण हैं तथा इसी प्रकार लक्षण एवं चिकित्सा भी भिन्न हैं।

शैशवकालीन C.C.F. के कारण—

(1) नवजात शिशु में—टी.जी.वी., एओरटिक एट्रेजिया, करेक्शन आफ एओरटा, पी.डी.ए., पल्मोनरी स्टेनोसिस/एट्रेजिया, हाइपोप्लास्टिक, वाम-हृदयरोग समूह।

(2) 1 से 2 माह वय में—टी.जी.वी., वी.एस.डी., पी.डी.ए., इण्डोकार्डियल कुशन डिफेक्ट, एओरटिक स्टेनोसिस, कोरेक्शन आफ एओरटा।

(3) 3 से 6 माह वय में—टी.जी.वी., वी.एस.डी., करेक्शन आफ एओरटा, इण्डोकार्डियल फाइब्रोलास्टोसिस।

(संक्षिप्त नाम का विस्तृत विवरण इसी प्रकरण में आगे देखिये)

(4) 6 से 12 माह की वय में—इण्डोकार्डियक फाइब्रोलास्टोसिस, वी.एस.डी.।

(5) 1 से 4 वर्ष—कार्डाइटिस, पाण्डु, नेफ्रोटिक सिण्ड्रोम, एक्यूट वृक्कशोथ, ए.एस.डी., बी.एस.डी.।

Scanned with CamScanner

उपरोक्त के अतिरिक्त वक्ष में तीव्र संक्रमण एवं रक्तपरिभ्रमण में अत्यधिक जल का पहुँचना (Overhydration) किसी भी वय में C.C.F. का कारण हो सकता है।

लक्षण—1. श्वास लेने में कठिनाई (Dyspnoea)।
2. तीव्र हृदयगति (Tachycardia)।
3. जुगुलर शिरा के दबाव में वृद्धि (J. V. P.)।
4. यकृत् वृद्धि।
5. शोथ।
6. अँगुली, ओष्ठ आदि पर नीलिमा।
7. फुप्फुस में (Basal creptations)।

चिकित्सा व्यवस्था—

(1) शय्या पर पूर्ण आराम देना चाहिए। 45 डिग्री के कोण में रखने पर अधिक सुखानुभूति होती है। आवश्यकतानुरूप ओषजन का भी प्रयोग करें।

(2) निद्राकारक औषधियों का प्रयोग करें। यथा—फिनोबारघीटोन, डाइजीपाम, प्रोमेथाजीन, पैथीडीन आदि।

(3) संक्रमण की अवस्था में उचित एण्टीबायटिक का प्रयोग करें।
(4) पथ्य-लवण का कम प्रयोग करें।
(5) हृत्पत्री योग—Digitalis का प्रयोग ही मुख्य औषधि है—

नवजात पूर्णकालिक शिशु में 0.05; 1 से 12 माह के शिशु में 0.08 तथा 1 वर्ष के ऊपर के वय में 0.06 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन की मात्रा मे Digoxin का प्रयोग करें। प्रतिदिन की पूर्ण मात्रा की 1/2 मात्रा देकर चिकित्सा प्रारम्भ करें। शेष मात्रा को दो बार में 8-8 घंटे पर रोगी को दीजिए। व्याधि का तीव्र स्वरूप समाप्त होने पर औषधि की प्रतिदिन की मात्रा का 1/4 या 1/3 भाग मात्र प्रतिदिन 1 या 2 भाग में बाँट कर प्रयोग करें। उपरोक्त मात्रा मुखमार्ग के लिए है। मांसगत सूचीवेध में उपरोक्त मात्रा का 2/3 प्रयोग करना चाहिए।

(6) मूत्रल औषधियों का प्रयोग शोथशमनार्थ करें।
(7) हृत्पत्री का प्रयोग करते समय पोटैशियम शिशु को अवश्य देना चाहिए।
(8) C.C.F. के कारण का निदान तथा उपचार करना चाहिए।

जन्मजात हृदयरोग

प्रायः जन्मजात हृदयरोगों के परिणामस्वरूप C.C.F. का प्रादुर्भाव होता है। अतः उसका वर्णन ऊपर दिया गया है। जन्मजात हृदयरोगों के कारण सामान्यतः रचनात्मक

विकृति होती है। एतदर्थ जन्मपूर्व रक्तपरिभ्रमण पथ का ज्ञान भी आवश्यक है। उसे चित्र में दर्शाया गया है।

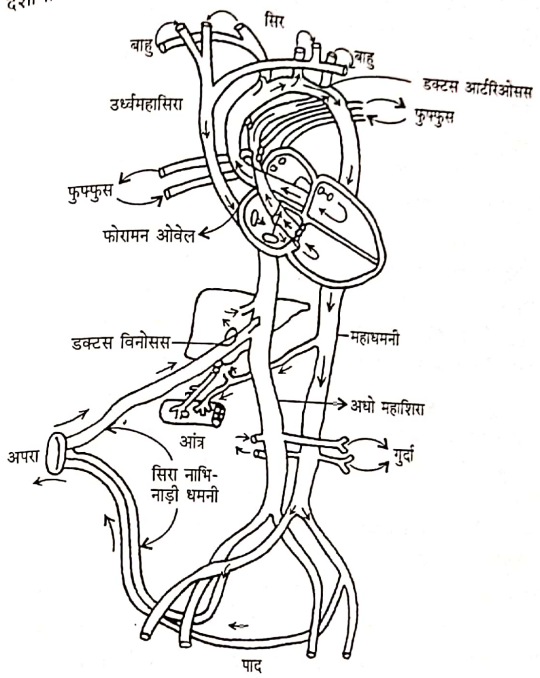

चित्र सं. 52 : गर्भस्थ शिशु में रक्त-परिभ्रमण

जन्मजात हृदयरोगों का प्रमुख कारण गर्भावस्था के प्रथम 3 माह में खसरा (Rubella), विषाणु (Viral) संक्रमण यथा—Herpes simplex या जन्मजात रचनात्मक विकार पैदा करने वाले द्रव्यों का प्रयोग इस अवस्था में अनुचित विहार का प्रयोग है।

जन्मजात हृदय रोगों के क्रम में निम्नलिखित तीन अवस्थाओं का विशेष महत्त्व है—

(1) हृदय रोगजन्य नीलिमा (Cardiac cynosis)
(2) हृदयाघात (Cardiac failure)
(3) रक्त प्रवाह में बाधा के लक्षण (Tight out flow tract obstruction)

Scanned with CamScanner

यदि शिशु के नख, ओष्ठ, जिह्वा आदि पर नीलिमा उपस्थित है तथा वक्ष की श्रवण परीक्षा में फुफ्फुस सामान्य है परन्तु हृदय में विकृति मिलती है तो हृदय रोग जन्य नीलिमा समझना चाहिए।

यदि शिशु के जंघा प्रदेश की नाडी (Femoral pulse) क्षीण हो या अनुपस्थित हो तथा निलय (Ventricle) विस्फार के लक्षण मिले तो रक्तप्रवाह में बाधाजन्य कारण का निदान करें।

हृदयाघात के सन्दर्भ में विवरण आगे दिया जा रहा है। शिशुओं का ध्यानपूर्वक परीक्षण करने पर हमें निम्न महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती है—

(1) प्राकृत/विकृत सिस्टोलिक मरमर (murmur)—जीवन के प्रारम्भिक 7 से 10 दिन तक के काल में कभी-कभी प्राकृत सिस्टोलिक मरमर मिलती है। यह गर्भावस्था के सामान्य परिभ्रमण की प्रक्रिया के कारण तथा नवजात काल में अधिक Cardiac output के कारण होता है। परन्तु यदि प्रारम्भिक नवजात शिशु काल (7 से 10 दिन) के बाद भी यह मरमर उपस्थित रहता है तो विकृतिजन्य हो सकता है।

(2) हृदयाघात—शैशवकाल (Infant period) में हृदयाघात होने पर शिशु में वृद्धि एवं विकास का रुकना, स्तनपान में कठिनाई, तीव्र श्वासगति, श्वासकृच्छ्रता, कास एवं यकृतोदर हो जाता है। कभी-कभी शोथ (Oedema) मिल सकता है। वक्ष के एक्स-रे परीक्षण में हृदयाकृति में वृद्धि मिलती है। हृदयाघात शैशवकाल (Infant period) में ही होता है। बड़े बच्चों में बहुत कम होता है। यदि होता है तो युवावस्था के हृदयाघात के समान लक्षण होते हैं। यदि शिशुओं में नीलिमा या हृदयाघात के लक्षण मिल रहे हों तो तुरन्त हृदयरोग विशेषज्ञ की सलाह लेना चाहिए।

(3) बड़े बालकों में मरमर—यदि बड़े बच्चों में मरमर की ध्वनि के अतिरिक्त अन्य कोई लक्षण न हों तो इन बच्चों में यह मरमर अकारण भी होती है। फिर भी समय-समय पर बच्चों का परीक्षण तथा आवश्यक नैदानकीय परीक्षण करा लेना चाहिए।

लक्षणरहित बालक में मरमर

(1) डायस्टोलिक मरमर (Diastolic murmur)—Rheumatic carditis.

(2) सिस्टोलिक मरमर (Sytolic murmur)—मरमर की तीव्रता का स्तर तथा काल निदान में सहायक होता है। अत: इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

- पूर्ण कालिक एवं 3 से 6 स्तर की सिस्टोलिक मरमर-जन्मजात हृदय रोग में मिलती है।
- अल्पकालिक 1-2 स्तर (soft) सिस्टोलिक मरमर-अन्य कारणों पर ध्यान आकर्षित करती है।

हृदयगत मरमर ध्वनि के स्तर का निर्धारण

श्रेणी	श्रवण परीक्षा
एक	Soft, Just audible (कठिनता से सुनाई दे)
दो	Easily heard (सुगमता से सुनाई दे)
तीन	तीव्र (Loud) एवं स्पष्ट कम्पन (thrill) के बिना
चार	तीव्र, स्पष्ट कम्पन (thrill) के साथ
पाँच	4 एवं 6 के मध्य की अवस्था
छः	Stethoscope के बिना ही सुनाई दे

लक्षणों एवं हृदय ध्वनि के आधार पर सम्भावित निदानार्थ यहाँ रेखा चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे समझने में सहायता मिलेगी।

स्तर

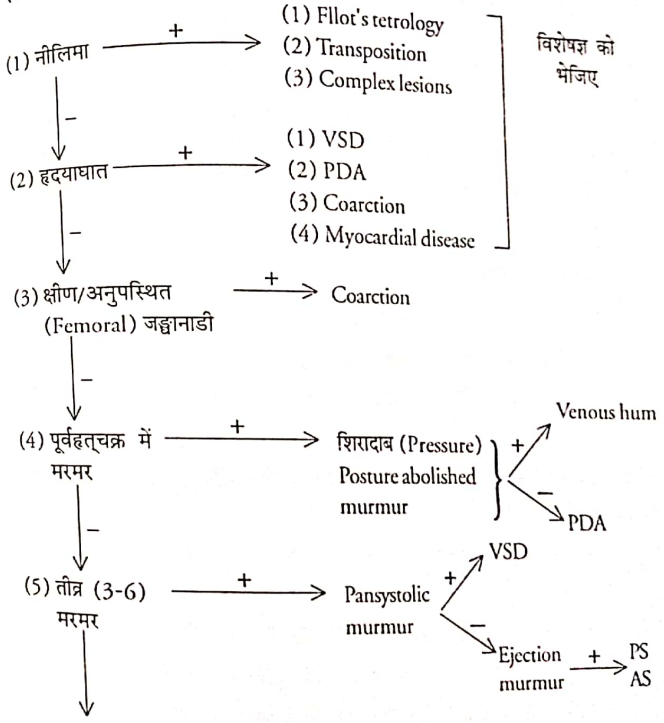

Scanned with CamScanner

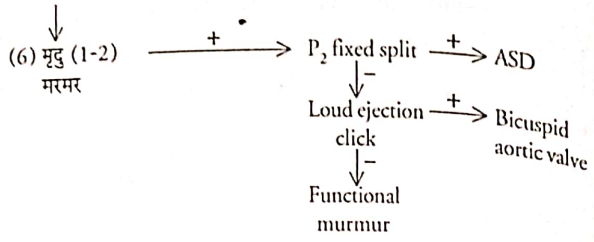

पूर्ण हृत् चक्र में मरमर

यह प्राय: दो अवस्थाओं में मिलता है—

(1) शिरागत गुंजन (Hum)

(2) पेटेण्ट डक्टस आरटिरियोसस (PDA)

(1) शिरागत गुंजन—यदि बालक का शिर पार्श्व में घुमा दें अथवा जुगुलर शिरा (Jugular vien) के मूल में दबाव डालकर रक्तप्रवाह को रोका जाय एवं मरमर शान्त हो जाय तो यह शिरागत गुंजन है ।

(2) P.D.A—इस अवस्था की मरमर को मशीनरी (Machinery) मरमर भी कहते हैं । यह वाम पार्श्व में अक्षकास्थि (Clavicle) के नीचे सर्वाधिक तीव्र सुनाई देती है । स्पष्ट Peripheral pulses तथा Wide pulse दबाव भी इसी व्याधि को इंगित करता है ।

तीव्र सिस्टोलिक मरमर

प्राय: तीन अवस्थाओं में मिलती है—

(1) वेण्ट्रीकुलर सेप्टल डिफेक्ट (VSD)

(2) एऑरटिक स्टीनोसिस (AS)

(3) पल्मोनरी स्टीनोसिस (PS)

(1) VSD—इसमें मरमर सम्पूर्ण सिस्टोल में ऊर्वस्थि (Sternum) के वाम किनारे पर नीचे अर्धभाग में सर्वाधिक स्पष्ट होती है ।

⊕ उपस्थित ⊖ अनुपस्थित

VSD - Ventricular septal defects.
PDA - Patent ductus arteriosus.
PS - Pulmonary stenosis
AS - Aortic stenosis
ASD - Atrial septal defect

(2) AS तथा PS—इस अवस्था में सिस्टोल के प्रारम्भ में इंजेक्शन क्लिक होती है । सम्बन्धित निलय की वृद्धि भी मिलती है ।

AS की अवस्था में मरमर ऊर्वस्थि के उर्ध्व दक्षिण पार्श्व या मध्य वाम भाग पर ग्रीवा की तरफ जाती सुनाई देती है । मन्द पेरिफेरल नाडी तथा Narrow pulse दाब निदान में सहायक है ।

PS की अवस्था में मरमर ऊर्वस्थि के ऊर्ध्व-वाम पार्श्व पर सुनायी देती है तथा उर्ध्व-वाम पृष्ठ भाग को जाती सुनायी देती है ।

मृदु सिस्टोलिक मरमर

इसके दो प्रमुख कारण हैं—

(1) Atrial septal defect (ASD)

(2) Bicuspid aortic valve defect

ASD में द्वितीय हृत् शब्द में विभाजन स्पष्ट रहता है, जो श्वसन से प्रभावित नहीं होता है जबकि वाल्व डिफेक्ट में Aortic ejection click मिलती है ।

इन सभी अवस्थाओं को निम्न चित्र में समझाने का प्रयास किया गया है ।

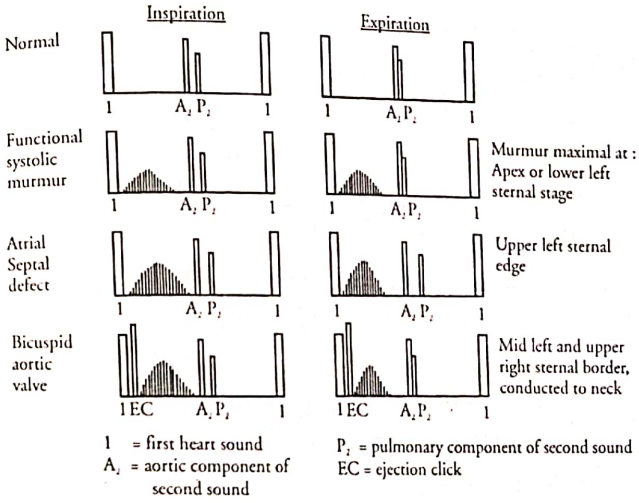

चित्र सं. 53 : श्रवण परीक्षा (Soft cystolic murmur)

अत: जन्मजात शिशु हृदयरोग में हाथ एवं पैर की नाडी-परीक्षा, हृदयध्वनि, मरमर तथा श्वसन से सम्बन्ध का ज्ञान विशेष रूप से सहायक होता है ।

Scanned with CamScanner

जन्मजात हृदयरोगों में कुछ अवस्थाएँ ऐसी हैं जिसमें शरीर में नीलिमा मिलती है, कुछ में नहीं। इस आधार पर इन्हें वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण तथा अवस्था की परिभाषा नीचे दी जा रही है—

(1) नीलिमाविहीन अवस्था—इस अवस्था में रक्त हृदय के वाम भाग से दक्षिण भाग की ओर चला जाता है। यथा—

1. वेण्ट्रिकिल्स के मध्य सेप्टा में विकार (Ventriculur Septal Defect)।
2. औरिकिल्स के मध्य सेप्टा में विकार (A.S.D.) यथा—Foramen Ovale का बन्द न होना।
3. डक्टल आर्टिरियोसस का बन्द न होना (P. D.A.)।
4. महाधमनी के छिद्र का छोटा होना (C.A.)।

(2) नीलिमायुक्त अवस्था—इस अवस्था में रक्त हृदय के दक्षिण भाग से वाम भाग को जाता है; यथा—

1. फैलाटस टेट्रालोजी।
2. महाधमनी के छिद्र का छोटा होना (Aortic atresia)।
3. ट्राइकस्पिड वाल्व का कार्य न करना (Tricuspid atresia)।
4. आइसेन मेंगर सिण्ड्रोम (E.M.S.)।
5. रक्तवाहिनियों के स्थान में परिवर्तन।
6. ट्रंकस आर्टिरियोसस।

उपरोक्त सभी अवस्थायें विशिष्ट चिकित्सा के साथ ही शल्यकर्म मुखापेक्षी हैं। इनका विस्तृत विवरण आधुनिक चिकित्सा की पुस्तकों में देखा जा सकता है।

फैलॉट टेट्रालोजी (Fallot's tetralogy)—यह व्याधि अतिसामान्य है। नीलिमा इसका लक्षण है। इसमें 4 प्रमुख विकृति होती है—

1. V.S.D.।
2. पल्मोनरी स्टेनोसिस (Pulmonary stenosis)।
3. दक्षिण वेण्ट्रिकल की हाइपरट्राफी।
4. Malposition of aorta.

आइसेनमेंगर सिण्ड्रोम (Eisenmenger's syndrome)—इस व्याधि में फुफ्फुस में रक्त का दाब (pH) बढ़ने के साथ-साथ रक्त का मार्ग (V.S.D., P. D.A.) बदल जाता है।

रियुमैटिक ज्वर
(Rheumatic Fever)

यह बालकों में होने वाली सर्वसामान्य व्याधि है जिसमें व्याधि के कारण प्रधान विकृति हृदय में तथा गौड़ विकृति सन्धियों में होती है। साथ-साथ रक्तवाहिनी तथा अन्य संयोजक धातु में भी विकार होता है। हृदय के तीनों स्तरों में विकार उत्पन्न होता है।

कारण—स्पष्ट कारण अज्ञात है। निर्धन वर्ग, शीत ऋतु में तथा 3 से 15 वर्ष के वय के मध्य अधिक होता है। एक बार व्याधि हो जाने पर पुनः होने की भी सम्भावना रहती है। कण्ठ में संक्रमण का इतिवृत्त मिलता है तथा स्ट्रेप्टोकाकल हिमोलिटिक्स से इस व्याधि का सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

रक्त में W.B.C. तथा E.S.R. की वृद्धि मिलती है। इ.सी.जी. में प्रमाण मिलता है। पूर्व काल में ज्वर का इतिवृत्त मिलता है।

निदान को दृष्टिगत रखते हुए इसके लक्षणों का महत्त्वपूर्ण (Major) तथा साधारण (Minor) दो वर्गों में इस आशय से बाँटा गया है कि 2 महत्त्वपूर्ण या 1 महत्त्वपूर्ण एवं 2 सामान्य लक्षण कम-से-कम मिलने पर ही निश्चयात्मक निदान किया जाय।

महत्त्वपूर्ण लक्षण (Major symptoms)—

1. हृदय-विकृति—यथा हृदय के आकार में वृद्धि, मर-मर का मिलना, Friction rub का मिलना एवं E.C.G. में परिवर्तन आदि।
2. अनेक सन्धियों में शूल, शोथ।
3. त्वचा के नीचे गाँठें।
4. त्वचा पर लाल दाने (Erythema morginatum)।
5. कोरिया।

साधारण लक्षण (Minor symptoms)—

1. ज्वर।
2. सन्धिशूल।
3. पूर्व इतिवृत्त।
4. रक्त में परिवर्तन—E.S.R. की वृद्धि, W.B.C. विशेष रूप से पालीमार्फ की वृद्धि एवं C-Reactive Protein का बढ़ना।
5. इ.सी.जी. में परिवर्तन।
6. बीटाहिमोलिटिक स्ट्रेप्टोकोकस के संक्रमण का इतिवृत्त।
7. अन्य लक्षण—पारिवारिक इतिवृत्त, शरीर-भार में कमी, ज्वर की अपेक्षा नाड़ी का तीव्र होना, नासारक्तस्राव, शिरःशूल, उदरशूल आदि।

Scanned with CamScanner

उपद्रव—Mitral regurgitation, Mitral stenosis, Aortic regurgitation, Subacute bacterial endocarditis आदि ।

चिकित्सा—इस व्याधि में शय्या पर आराम देना अति आवश्यक है । ज्वर एवं नाड़ीगति ठीक होने पर भी कम-से-कम 3 दिन तक शय्या से बालक को न उठने दें । कम-से-कम 3 माह तक विश्राम की सलाह देना चाहिए । E.S.R. 14 दिन तक सामान्य रहने पर ही शय्या का त्याग करें । चिकित्सार्थ निम्न औषधि का प्रयोग करना चाहिए—

(1) सैलिसिलेट—एस्प्रीन 100 से 120 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर-भार से दिन भर मे 4 से 6 मात्रा में बाँट कर दी जानी चाहिए । साथ में Antacid का प्रयोग भी करना चाहिए । इससे तुरन्त आराम मिलता है । सैलीसिलेट से असहिष्णुता में फिनायल बूटाजोन एवं ब्रूफेन का प्रयोग करें ।

(2) कार्टीजोन—प्रेडनीसोलोन 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. भार प्रतिदिन 2-4 सप्ताह तक 4-4 मात्रा में बाँट कर दें । बाद में मात्रा 1 मि.ग्रा. की कर दें । मात्रा क्रमशः घटायें । साथ में पोटेशियम क्लोराइड भी दें ।

(3) पेन्सिलीन—प्रारम्भ में प्रोकेन पेनिसिलीन तथा बाद में लम्बे समय तक प्रभावी पेनिसिलीन का प्रयोग करें । असहिष्णुता की अवस्था में एरिथ्रोमाइसिन का प्रयोग करना चाहिए ।

विभिन्न उपद्रवों की लक्षणानुसार चिकित्सा करें, यथा—C.C.E. में डिजीटैलिस का प्रयोग ।

सुरक्षात्मक उपाय—कम-से-कम 5 वर्ष या 25 वर्ष तक की वय तक लम्बे समय तक प्रभावी पेन्सिलीन का प्रयोग करायें ।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से आमवात की चिकित्सा इस व्याधि में करनी चाहिए । सैद्धान्तिक रूप में लंघन, स्वेदन, कटु एवं तिक्त रस के पदार्थ, दीपन, विरेचन, एरण्ड तैल पान एवं शोधन बस्ति का प्रयोग करें । रूक्ष स्वेदन हितकर है ।

औषधिद्रव्यों में रसायन योगराज गुग्गुलु, योगराज या बृहत् योगराज, आमवातारि रस, शु. कुपीलु, रससिन्दूर, अग्नितुण्डी वटी, मल्लसिन्दूर, रास्नापंचक या सप्तक क्वाथ तथा दशमूल क्वाथ का प्रयोग लाभकारी है । ज्वर रहने की अवस्था में हिङ्गुलेश्वर रस या सौभाग्यवटी दी जा सकती है ।

*

अध्याय - 21

शैशवीय पञ्चकर्म

आयुर्वेद चिकित्सा पञ्चकर्म-विज्ञान के ज्ञान के बिना अपूर्ण है । पञ्चकर्म के विषय में विस्तृत अध्ययन कायचिकित्सा एवं चरकसंहिता में देखा जा सकता है । यहाँ पर मात्र शैशवीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का संकलन किया गया है ।

पञ्चकर्म शब्द का प्रयोग मात्र चरक ने किया है । पञ्चकर्म में वमन, विरेचन, निरूह, अनुवासन एवं आस्थापन बस्ति की गणना चरक, भावप्रकाश तथा शार्ङ्गधर ने की है । सुश्रुत ने संशोधन चिकित्सा के 3 अङ्ग बताये है । वाग्भट ने अति विस्तार किया है; संक्षिप्त प्रारूप निम्नवत् है—

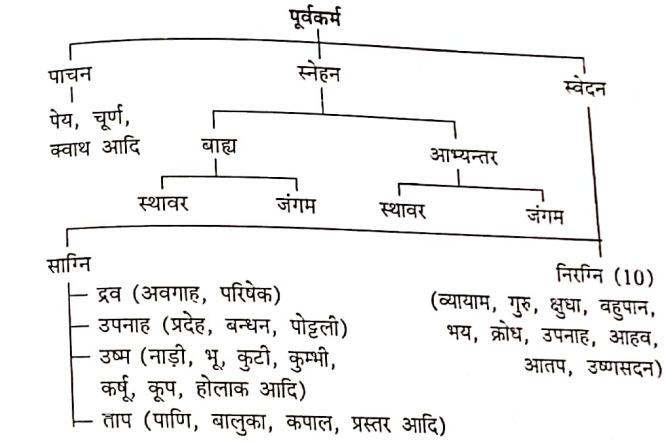

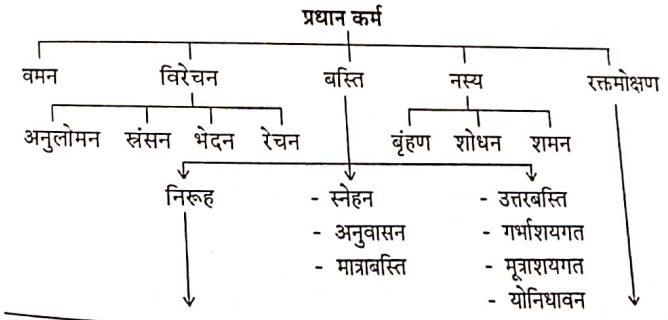

सौजन्य से—डॉ. भगवान सहाय शर्मा

Scanned with CamScanner

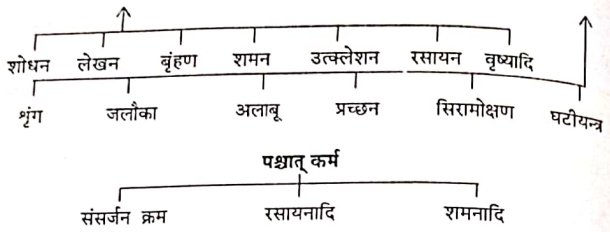

ग्रन्थों के आधार पर पञ्चकर्म के प्रयोग को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

1. स्वस्थ में—दिनचर्या, ऋतुचर्या एवं वेगावरोध से उत्पन्न स्थिति ।
2. रसायन एवं वाजीकरण के पूर्ण लाभ लेने के लिए ।
3. व्याधि-चिकित्सार्थ ।

चरक ने पञ्चकर्म के प्रयोग का फल इस प्रकार कहा है—

1. कोष्ठशुद्धि
2. कायाग्निवृद्धि
3. व्याधिशमन
4. प्रकृति ठीक होना
5. इन्द्रियप्रसन्नता
6. वर्णप्रसाधन
7. बलवृद्धि
8. शरीरपुष्टि
9. मन-बुद्धि की निर्मलता
10. सन्तानोत्पत्ति
11. वृष्य
12. जरानाश
13. आयुष्य

उपरोक्त पञ्चकर्म में शैशवीय दृष्टि से महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नवत् है—

'न त्वेव बालस्य विशोषणं हितं नैवातिसंशोधने रक्तमोक्षणे ।
स्निग्धैः सुशीतैर्मधुरैरदाहिभिस्तत्रोपचारोऽशनलेपसेचनैः' ।।

(का.सू. 27/66)

बालक का (चिकित्सा में) अधिक शोषण, अति संशोधन, अति रक्तमोक्षण हितकर नहीं हैं । उसका स्निग्ध, शीतल, मधुर, दाह न करनेवाले अन्नपान, लेप एवं परिषेक द्वारा उपचार करें ।

बालकों में स्नेहन का उपयोग प्रायः सभी आचार्यों ने बतलाया है । ग्रहपीड़ित एवं तालुशोष में चरक ने तथा क्षीरपायी शिशु में कश्यप ने निषिद्ध किया है । बालकों में स्नेह की ह्रस्व मात्रा का प्रयोग करें (का.सू. 22:22) । शिशुओं के लिए घृत हितकर है जो वर्ण, बल, आयु एवं मेधा की वृद्धि करता है (का.सू. 22:25) ।

पूर्वकर्म

'स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदमनन्तरम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथेतरत्' ।। (च.सू. 13/99)

संशोधन से पहले पूर्वकर्म के रूप में स्नेहन एवं स्वेदन आवश्यक है । आवश्यकतानुसार रूक्षण एवं दीपन-पाचन द्रव्यों का प्रयोग भी पूर्वकर्म के रूप में स्वीकार किया गया है ।

(1) रूक्षण कर्म—

उद्घर्षण एवं उद्वर्तन रूक्षण कर्म के ही प्रकार हैं । उद्वर्तन कोशिकीय स्तर (Cellular level) एवं स्रोतस् स्तर पर रक्तसंचार में वृद्धि कर तरल एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ा देता है साथ ही दोषोत्क्लेश करके रोगोत्पादक तत्वों (Toxins) की निष्कासन प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देता है । यथा—मेदस्वी बालक में उद्वर्तन तथा शोषपीड़ित बालक में बृंहण उत्सादन देना अभिप्रेत है जोकि नियंत्रित रूक्षण ही है । 'सस्नेहकल्केन उद्घर्षणं उत्सादनम्' ।

(2) पाचन कर्म—

स्नेहन से पूर्व अग्निदीपन द्रव्यों का प्रयोग करने से कोष्ठ में लघुता आ जाती है, जिससे दोषोत्कलेश सम्यक् प्रकार से होता है । शरीर का गुरुत्व एवं स्निग्धत्व कम हो जाने से प्रयुक्त औषध का पाचन ठीक प्रकार से होता है । जिससे स्नेहव्यापद् की सम्भावनाए कम हो जाती हैं ।

(3) स्नेहन—

'स्नेहनं स्नेहविष्यन्दमार्दवं क्लेदकारकम्' ।

उपयुक्त मात्रा में विविध प्रकार से प्रयुक्त स्नेह द्रव्यों द्वारा मृदुता एवं स्निग्धता लाना ही स्नेहन कर्म है । स्नेहन पूर्वकर्म ही नहीं अपितु वर्तमान में यह विधा अनेक रोगों में प्रधान चिकित्सा के रूप में व्यवहृत हो रही है जो क्षीण पुरुषों के बृंहण एवं स्वस्थ पुरुषों के स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए आवश्यक है । बालकों में सम्यक् धातुवर्धन (Growth & development) के लिए स्नेह अत्यावश्यक है । जिसकी पुष्टि काश्यपसंहिता के लेहाध्याय तथा नवजात परिचर्या में प्रयुक्त मधु-घृत प्रयोग से होती है ।

Scanned with CamScanner

घृत-तैल-वसा-मज्जा—ये स्नेहन द्रव्य माने गये हैं। आचार्य कश्यप ने स्नेहन हेतु गोघृत को सर्वश्रेष्ठ माना है। प्रयोग-भेद से स्नेहन के दो प्रकार माने जाते है—(क) आभ्यन्तर स्नेहन (ख) बाह्य स्नेहन।

(क) आभ्यन्तर स्नेहन—

यद्यपि अच्छ स्नेहपान श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु कई बार छोटे बालकों में प्रयोग संभव नहीं होने के कारण स्नेहप्रविचारणा के रूप में दिया जाता है। आचार्य वाग्भट द्वारा निर्दिष्ट सद्यःस्नेह प्रविचारणा का ही स्वरूप है, जो बालक के लिए सुखकर है।

'बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु।
योगानिमाननुद्वेगान् सद्यःस्नेहान् प्रयोजयेत्' ।। (अ.ह.सू. 16/39)

सद्यःस्नेह कारण योग—

1. घृत से बनाया मांसरस (प्रज्या मांसरस)
2. स्नेह भर्जित पेया
3. घृत आदि स्नेहों से निर्मित तिल चूर्ण (कल्क) तथा फाणित
4. प्रचुर घृत युक्त कृशरा (खिचड़ी) तथा दूध में बनाई उष्ण पेया (खीर)
5. गुड़ के साथ दही की मलाई
6. पञ्चप्रासृत पेया—घृत-तैल-वसा-मज्जा तथा चावल प्रत्येक एक प्रसृत मिलाकर बनाई गई पेया।

शमन स्नेह—

'शमनः क्षुद्वतोऽनन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते।' (अ.ह.सू. 16/19)

शमन चिकित्सा हेतु अच्छ स्नेहन की मध्यम मात्रा का प्रयोग भूख लगने पर ही बताया गया है। इसे अन्न के साथ प्रयोग नहीं करते हैं। स्नेह के पाचन होने के बाद भोजन किया जा सकता है। प्रयोग विधि सरल होने एवं स्नेहव्यापद् की अल्प संभावना होने के कारण यह बालकों के लिए अधिक उपयुक्त है।

बृंहण स्नेह—

'बृंहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः .....।' (अ.ह.सू. 16/20)

यह मांसरस, मद्य तथा भोजन के साथ अल्पमात्रा में प्रयोग किया जाने वाला स्नेह प्रयोग है जो सभी के लिए हितकारी है। यह स्नेहपान रोगशमन के साथ-साथ शरीर का बृंहण भी करता है।

प्राग्भक्त—शरीर के अधः प्रदेश के रोगों का शमन करता है।
मध्यभक्त—शरीर के मध्य भाग के रोगों का शमन करता है।
भक्तस्योपरि—ऊर्ध्व प्रदेश में होने वाली व्याधियों को ठीक करता है।

'प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदेहजान्।
व्याधीञ्जयेद् बलं कुर्यादङ्गानां च यथाक्रमम्' ।। (अ.ह.सू. 16/22)

'परिहारे सुखा चैषा मात्रा स्नेहनबृंहणी।
वृष्या बल्या निराबाधा चिरं चाप्यनुवर्तते' ।। (च.सू. 13/40)

बृंहण स्नेह के नित्र लाभ है—

1. सेवन हेतु विशेष नियमों के पालन की आवश्यकता नहीं।
2. एक समय शमन एवं बृंहण दोनों प्रभाव उत्पन्न करती है।
3. वृष्य एवं बलय भी है।
4. स्नेहव्यापद् की संभावना नहीं होती।
5. दीर्घकाल पर्यन्त प्रभाव रहता है।

स्नेहन हेतु सिद्ध घृत—

1. अश्वगंधाघृत (भै.र.बा.रो.चि. 71/132)
2. कुमारकल्याणघृत (भै.र., बा.रो.चि 71/138-142)
3. संवर्धनघृत (का.सू. लेहाध्याय, पृष्ठ 6)
4. अभयघृत (का.सू., लेहाध्याय, पृष्ठ)
5. पंचगव्यघृत (च.चि. 10/17)
6. अष्टाङ्गघृत (अ.ह.उ. 1/42)
7. शिशुकल्याणकघृत (अ.ह.उ. 1/43-44)
8. ब्राह्मीघृत (अ.सं.उ. 1/69)
9. शोधनघृत (अ.सं.उ. 1)
10. अष्टमङ्गलघृत (यो.र.बार.रो, पृ. 448)

(ख) बाह्य स्नेहन—

अभ्यङ्ग, पादाभ्यङ्ग, सेंक, संवाहन, मधु, तैल-शिरोभ्यङ्ग, पिचु, कर्णपूरण, अक्षितर्पण, शिरोबस्ति, शिरोधारा आदि बाह्य स्नेहन की ही विधाएँ है। प्राणप्रत्यागमन (Resuciatation) प्रक्रिया में आचार्य वाग्भट ने बला तैल से अभ्यङ्ग का विधान करके अभ्यङ्ग का नवजात परिचर्या में महत्त्व प्रतिपादित किया है।

अभ्यङ्ग हेतु प्रयुक्त शास्त्रीय तैल—

1. नारायण तैल (शा.सं., म.ख. 9/11)
2. महानारायण तैल (च.द., वातव्याधि)
3. महामाष तैल (च.द., वातव्याधि)
4. बलातैल (शा.सं., म.ख. 9/118)

Scanned with CamScanner

5. माषादि तैल (शा.सं., म.ख. 9/132)
6. लाक्षादि तैल (अं.सं.उ. 2/54-56)

(4) स्वेदन—

कृश एवं मध्यबल वाले बालक को आवस्थिक (रोग एवं बल की अवस्था के अनुसार) स्वेदन करें। स्वेदन के समय शीत, व्याधि एवं शरीर का ध्यान रखें (का.सू. 23:8)।

स्वेदन-विधान—कुमुद, उत्पल एवं कमल के पत्रों या नरम कपड़े से बालक के नेत्रों को अच्छी प्रकार ढक कर स्वेद देना चाहिए तथा स्वेदन करते समय मोतियों की मालाओं, चन्द्रकान्तमणि तथा शीतल जल से भरे हुए पात्रों से बालक के हृदय को निरन्तर स्पर्श करायें। (का.सू. 23:10-11)

अन्य व्याधियों के साथ-साथ 'विनाम' में स्वेदन का प्रयोग करने के लिए कहा गया है (का.सू. 23:23)।

बालकों में 8 प्रकार के स्वेदन का उल्लेख कश्यप ने किया है—

'जन्मप्रभृति बालानां स्वेदमष्टविधं भिषक्।
प्रयुञ्जीत यथाकालं रोगदेहव्यपेक्षया॥
हस्तस्वेदः प्रदेहश्च नाडीप्रस्तरसङ्करः।
उपनाहोऽवगाहश्च परिषेकस्तथाऽष्टमः'॥ (का.सू. 23:25-26)

आठ प्रकार के स्वेदन—हस्तस्वेद, प्रदेह, नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद, सङ्करस्वेद, उपनाह, अवगाह तथा परिषेक।

हस्तस्वेद—उत्पन्न हुए बालक को चार मास तक प्रमाद रहित होकर निवात-स्थान में बैठाकर धूम रहित अग्नि की ऊष्मा के द्वारा धीरे-धीरे हस्तस्वेद का प्रयोग करें (का.सू. 23:27)।

धीरे-धीरे बालक की सुकुमारता हटकर शरीर में कठोरता आने पर उनका स्वेदन बढ़ाना चाहिए (का.सू. 23:28)।

'बालानां कृशमध्यानां स्वेद आवस्थिकोहितः।
शीतव्याधिशरीराणां बालानां च विशेषतः'॥ (का.सं.सू. 23:8)

कृश एवं मध्य बल वाले बालकों को आवस्थिक (रोग एवं बल के अनुसार) स्वेद देना चाहिए। बालकों को स्वेद देते समय विशेषकर शीत, व्याधि एवं शरीर का ध्यान रखना चाहिए।

देश, काल, अवस्था, मात्रा तथा सब प्रकार के रोगों की गुरुता या लघुता की दृष्टि से अतिस्वेद तथा हीनस्वेद विष के समान बालक को मार देता है। अतः यश, धर्म तथा

धन प्राप्ति के लिए चिकित्सक को चाहिए कि वह देश, काल, अवस्था आदि तथा कठोरता एवं सुकुमारता को दृष्टि में रखते हुए बालक का स्वेदन करें (का.सू. 23:32-33)।

प्रस्तरस्वेद—गर्म किये हुए पुवाल या तुष, पायस या कृशरा को बिछाकर उस पर श्वेत एरण्ड, लाल एरण्ड तथा आक के पत्र पर स्नेह लगाकर उन्हें गर्म कर बिछा दें। उस पर अच्छी प्रकार अभ्यङ्ग किये हुए बालक को वस्त्रों से ढककर सुखपूर्वक लिटा दें (का.सू. 23:39-40)।

शालिषष्टिकपिण्ड स्वेद संकर स्वेद का ही एक प्रकार है, जो सभी प्रकार के Neuromuscular व्याधियों में यथा Flopy baby syndrome, D.M.D. आदि में प्रभावी है।

स्वेदन मुख्य रूप से कफ-वातज विकारों में किया जाता है। बालकों में निरग्नि स्वेद के रूप में कम्बल से ढककर, उष्ण कक्ष में रखकर अथवा सूर्यस्नान के रूप में भी स्वेदन किया जा सकता है।

प्रधान कर्म

वमनकर्म

'उर्ध्वभागदोषहरणं वमनम्'।
'अपक्वं पित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यम्।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा'॥ (शा.प्र. 4/7)

अपक्व कफ एवं पित्त (दोष) को उर्ध्व भाग से बाहर निकालना वमन कहलाता है।

- बालकों में वमन 6 वर्ष की अवस्था के बाद ही कराये[1], अति छोटा बालक अशक्त होने के कारण वमन के प्रयोग से चक्षु रोग से पीड़ित हो जाता है।
- 'न शुद्धिरूनदशमे च चातिकान्तसप्ततौ'। (अ.ह.सू. 20/31)
  वाग्भट ने 10 वर्ष से कम तथा 60 वर्ष से अधिक आयु में वमन-विरेचन का निषेध किया है।

उपरोक्त संकेत के बाद भी विशिष्ट अवस्था में बाल्यावस्था कफ प्रधान होने से श्लैष्मिक व्याधियाँ अधिक होती हैं। अतः बालकों में वमनकर्म प्रशस्त है।

---

1. 'षड्वर्षादीनामार्थे तदुपदेक्ष्यामोऽतिबालो ह्यशक्तं एनं विधिमनुष्ठानहिते चक्षुराख्याति न...' (का.सं.सि. 3, पृष्ठ 153)

Scanned with CamScanner

- 'गर्भाम्भः सैंधववता सर्पिषा वामयेत्ततः' । (अ.ह.उ. 1/10)
  गर्भोदक को सैंधव मिश्रित घृत पिलाकर बालक को वमन करायें ।
- 'वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते' । (शा.प्र. 6/17)
  वमन कर्म, प्रतिमर्श आदि कर्म बालकों के लिए जन्म से ही प्रशस्त हैं ।
- 'सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं च वामयेत् ।
  पीत्वाः यवागूमाकण्ठं क्षीरतक्रदधीनि च ।। (शा.उ. 3/10)
  सुकुमार, कृश बालक, वृद्ध, भीरु बालक को यवागू या दूध मट्ठा या दही यथादोष कण्ठ तक पिलाकर वमन करायें ।
- 'सौकुमार्याल्पकायत्वात् सर्वान्नानुपसेवनात् ।
  स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात् ।।
  सद्यस्तान् वमनं तस्मात् पाययेन्मतिमान् मृदु ।
  स्तन्यस्य तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीरान्नसेविनम् ।।
  पीतवन्तं तनुं पेयामन्नादं घृतसंयुताम्' ।

(अ.ह.उ. 2/31-32 अ.सं.उ. 2/29)

सुकुमारता से, स्वल्पशरीर होने से, सभी प्रकार का अन्नों का सेवन न करने से, घृत एवं दुग्ध का सेवन करने से बालक सदैव स्निग्ध रहते हैं । (अतः स्नेहन-पूर्वकर्म कराये बिना ही) बुद्धिमान चिकित्सक इन्हें तुरन्त मृदु वमन पिलाये । क्षीराद् एवं क्षीरान्नाद को दूध से तृप्त कर अन्नाद को घृत साधित पतली पेया से वमन कराये ।

- 'उभयोस्तु यदा सम्यक् शोधनं कुरुते भिषक् ।
  तदाऽऽरोग्यं भवत्याशु शिशोलेखा यथाऽश्मनि ।
  स्वयं छर्दयते यस्तु पीतं पीतं पयः शिशुः ।
  न तं कदाचिद्व्याधन्ते व्याधयो देवमानुषाः' । (का.सं.सि. 3)

काश्यप का कथन है कि जब चिकित्सक धात्री एवं बालक दोनों का अच्छी प्रकार शोधन करता है तो शिशु को शीघ्र ही आरोग्य लाभ होता है । यह तथ्य पत्थर की लकीर की भाँति सत्य है । जो बालक बार-बार दुग्ध पान कर स्वयं वमन कर देता है उसे दैवी (बालग्रह ??) एवं मानुषी व्याधियाँ कभी कष्ट नहीं देती ।

- काश्यप ने रेवती, पुण्डरीक, शकुनी, पूतना तथा मुखमण्डिका बालग्रह में वमन का निषेध किया है ।
- स्तन्यदुष्टि, गलशुण्डिका, अधिजिह्विका, उपजिह्वका में वमन कर्म कराने का विधान विभिन्न संहिताओं में उल्लिखित है ।

'शिशोर्व्याधौ समुत्पन्ने धात्रीणामेव शोधनम् ।
अलं बालसुखायेति को लोके नावबुद्ध्यते ।।
यस्तु कायगतस्तस्य दोषाणां पूर्वसञ्चयः ।
अनुद्धृते कथं तस्मिन् ..... ।।
.....(व्याधिस्तस्य) प्रशाम्यति ।
अनागतविघातस्तु न वर्धयति वाऽऽशयम् ।।
उभयोस्तु यदा सम्यक् शोधनं कुरुते भिषक् ।
तदाऽऽरोग्यं भवत्याशु शिशोर्लेखा यथाऽऽश्मनि ।।

(का.सि. 3 पृ. 154)

बालक को रोग होने पर धात्री का शोधन करने से ही बालक स्वस्थ हो जाता है । परन्तु बालक के शरीर में जो दोषों का पूर्वसंचय होता है उसे हटाये बिना बालक का रोग जिस प्रकार शान्त हो सकता है, उससे बालक के भविष्य का नाश होता है तथा उसके आशय की वृद्धि नहीं होती है । अर्थात् स्वयं बालक का शोधन भी इसलिए आवश्यक है । जब चिकित्सक इन दोनों का अच्छी प्रकार शोधन करता है तो शिशु को शीघ्र ही आरोग्य लाभ हो जाता है ।

वमन विधि—

(1) क्षीराद अवस्था—वामक द्रव्यों जैसे मदनफल, पिप्पली, सैंधव तथा मधु का स्तन पर लेपन करके सूखने पर स्तन का प्रक्षालन कराकर बालक को स्तनपान करायें ।

(2) क्षीरान्नाद अवस्था—मातृस्तन्य के साथ मदनफल, वचा आदि का प्रयोग करायें ।

(3) अन्नाद अवस्था—मदनफल, वचा, सैंधव, कट्फल, सर्षप का क्वाथ-वमन द्रव्यों की मात्रा रोग की तीव्रता पर निर्भर करती है जो कि 120 मि.ग्रा. से 4 ग्राम तक हो सकती है ।

(4) पश्चात् कर्म—उपवास, संसर्जनक्रम तथा धूम्रपान निषिद्ध है ।

आचार्य कश्यप के अनुसार बड़े बच्चों में वमन का विधान

(1) वमन द्रव्य—वचा, सैंधव, पिप्पली, इन्द्रजौ, खीरा बीज, मदन फल बीज कल्क ।

(2) विधि—उक्त द्रव्यों का आकण्ठ प्रयोग विधिवत् करायें ।

(3) पश्चात् कर्म—1. अपामार्ग-पिप्पली-शिरीष इनमें से किसी एक का चावल के साथ सेवन करायें ।

Scanned with CamScanner

2. उदरवेदना होने पर—1. हस्तस्वेद, 2. अभ्यङ्ग, 3. अग्निप्रदीपक पेया का प्रयोग करायें ।

3. अयोग होने पर—कायफल, यवासा, कमल, मोचरस, केशर, खस, मंजिष्ठा आदि द्रव्यों का क्वाथ एवं इससे आधा अजादुग्ध से सिद्ध शालिचावल की पेया दें ।

4. अतियोग होने पर—

- उक्त औषधियों का शीतल जल के साथ लेहन
- सम्पूर्ण शरीर पर घृत अभ्यङ्ग
- शीतल जल से परिषेक

विरेचनकर्म

'अधोभागदोष हरणं विरेचनम् ।'

बालक एवं वृद्ध में धातु अपरिपक्व एवं क्षीयमाण होते हैं । इसलिए इस प्रक्रिया से उत्पन्न व्यापद् को सहन नहीं कर पाने के कारण विरेचन कष्टकारक हो जाता है । अत: शार्ङ्गधर ने 16 वर्ष की वय के बाद विरेचन का विधान किया है—

'विरेक: शोडशाद्वर्षा..... ।' (शा.प्र. 6/19)

यहाँ मृदु रेचन का निषेध नहीं किया है ।

'अविरेच्यौ शिशुवृद्धौ तावप्राप्तप्रहीनधातुबलौ ।' (च.सि. 10/7)

परन्तु कुछ सन्दर्भ ऐसे मिलते हैं जहाँ आचार्यो ने 16 वर्ष से पूर्व भी विरेचन का निर्देश किया है यथा—

फक्क चिकित्सा के सन्दर्भ में—

'त्रिवृत् क्षीरेण विरेचयेत्' । (का./फक्क चि.)

'द्राक्षारसेनं तं दद्यात् दाहोदावर्तपीडिते ।
चतुर्वर्षे सुखं बाले यावद् द्वोदशवार्षिके' ।। (अ.ह.कल्प 2/35)

अमलतास गूदे को द्राक्षारस के साथ 4 वर्ष से 12 वर्ष तक के बालक में प्रयोग करायें । इससे स्पष्ट है कि आवश्यकता के अनुसार युक्तिपूर्वक योजना बनाकर बालक में विरेचन कराया जा सकता है ।

चिकित्सकीय अनुभव में देखा गया है कि विरेचन द्रव्य स्निग्ध द्रव्यों के साथ दिये जाने पर अल्प व्यापदयुक्त होते हैं ।

- वैवर्ण्य दोषयुक्त दुग्धवाली धात्री में तथा कृमिकोष्ठ में विरेचन कराने का विधान है ।
- सुकुमार, पक्षाघात एवं रेवती बालग्रह में विरेचन का निषेध है ।

बस्तिकर्म

गुदा मार्ग या अपत्य मार्ग से औषधि, क्वाथ, स्नेह, मांसरस एवं रक्तादि द्रव्य प्रयोग करना बस्ति कर्म (चिकित्सा) कहलाता है । यह चिकित्सा विशेषकर वातदोषजन्य विकारों में प्रयोज्य है । आचार्य काश्यप ने बालकों में इस विधा (बस्ति) का प्रयोग अमृत के समान फलदायी बताया है । क्योंकि इससे संशोधन-संशमन-संग्रहण-वाजीकरण-बृंहण-चक्षुप्रीणन-वली-पलितनाशन-वय:स्थापन आदि कर्म एक साथ होते हैं ।

बस्ति देने योग्य आयु— (का.सि. 1/11-13)

आचार्य	आयु
गार्ग्य	जन्म से
आथर्व	4 मास से
पराशर	3 वर्ष से
भेल	6 वर्ष से
कश्यप	जब बालक अन्न खाने लगे तथा घुटनों के बल चलने लगे; अर्थात् 8-10 माह से ।

बस्तिनेत्र का आकार—

वय (वर्ष में)	चरक	सुश्रुत	वाग्भट
1 से 6	6 अंगुल	6 अंगुल	5 अंगुल (1वर्ष से कम)
7	$6^1/_2$	6 अंगुल	6 अंगुल (1वर्ष से कम)
8	$7^3/_4$	8 अंगुल	7 अंगुल (1वर्ष से कम)
9	7 अंगुल	-	-
10-11	$7^1/_2$-$8^3/_4$ अंगुल	-	-
12	8 अंगुल	-	8 अंगुल
13-15	$8^1/_2$-$9^1/_2$ अंगुल	-	-
16	10 अंगुल	10 अंगुल	9 अंगुल

आचार्य सुश्रुत ने वयानुसार बस्तिनेत्र के मूल भाग एवं अग्रभाग के छिद्र का आकार भी सुनिश्चित किया है—

वय	मूलभाग छिद्र	अग्रभाग छिद्र
1 वर्ष	जिसमें काक पक्षी की नाड़ी जा सके ।	मूँगाकार
8 वर्ष	जिसमें श्यामा पक्षी की नाड़ी जा सके ।	माष का आकार
16	जिसमें मयूर पक्षी की नाड़ी जा सके ।	शुष्क कलाय का आकार

Scanned with CamScanner

इसी प्रकार बस्तिनेत्र परिणाह एवं कर्णिका का आकार भी बताया है—

वय (वर्ष में)	नेत्रमान (अंगुल)	परिणाह	कार्णिक
1	6	कनिष्ठिकावत्	अग्रभाग में 1½ अंगुल के बाद
8	8	अनामिकावत्	अग्रभाग में 2 अंगुल के बाद
16	10	मध्यमा अंगुलिवत्	अग्रभाग में 3½ अंगुल के बाद

आचार्य चरक ने निरूह बस्ति की मात्रा प्रथम वर्ष में ½ प्रसृत कही है तथा प्रतिवर्ष ½ प्रसृत की वृद्धि 12 वर्ष की वय तक फिर 16 वर्ष तक की वय में 1 प्रसृत भी वृद्धि की है।

बस्ति के प्रकार

1. निरूह बस्ति या आस्थापन बस्ति
2. अनुवासन बस्ति
3. उत्तर बस्ति

(1) निरूह बस्ति—जिसमें क्वाथ का बाहुल्य होता है तथा जो शरीर से दोषों एवं व्याधियों को बाहर निकालने में समथ हो। दोष-धातु-मल एवं आयु को स्थापित करने के कारण इसे आस्थापन बस्ति भी कहते हैं। 'बस्तिसाध्यं विरेकेण'—बालकों में विरेचन साध्य रोगों में विरेचन के स्थान पर इस बस्ति का प्रयोग किया जाता है। यह दोषों का निष्कासन विरेचन के समान करते हुए बल-वर्ण-मार्दव उत्पन्न करती है।

अविरेच्यौ शिशुवृद्धौ तावप्राप्तप्रहीनधातुबलौ।
आस्थापनमेव तयोः सर्वार्थकृदुत्तमं कर्म।
बलवर्णहर्षमार्दवगात्रस्नेहान्नृणां ददात्याशु ।। (च.सि. 10/7-8)

निरूहबस्ति की वयानुसार मात्रा—

1 वर्ष	4 तोला (12 वर्ष तक 4 तोला प्रति वर्ष बढ़ाते हैं)
12 वर्ष	48 तोला
13 वर्ष	56 तोला
14 वर्ष	64 तोला
15 वर्ष	72 तोला
16 वर्ष	80 तोला

17 वर्ष	88 तोला
18 वर्ष	96 तोला (70 वर्ष तक 96 तोला की मात्रा का प्रयोग करते हैं)

प्रयोग-विधि—

मृदुर्बस्तिः प्रयोक्तव्यो विशेषात् बालवृद्धयोः।
तयोः तीक्ष्णप्रयुक्तस्तु बस्हिर्तन्याद् बलायुषी ।। (सु.चि. 35/10)

1. "निरूहं यदि वा बस्तिमल्पमल्पं महर्षयः।" निरूहण या अनुवासन बस्ति थोड़ी मात्रा से प्रारम्भ करनी चाहिए।

2. बस्ति एक-एक दिन छोड़कर दें।

3. अनुवासन-निरूहण क्रमशः देने हेतु योग बस्ति का अनुसरण करना श्रेष्ठ है।

4. (प्रथम दिन एवं अंतिम दिन)—स्नेह बस्ति
मध्य में 3-3 स्नेह-निरूहण

5. पूर्व कर्म—अभ्यंग-स्वेदन एवं रात्री का भोजन जीर्ण हो गया हो तो तथा प्रातःकाल पेट खाली हो।

6. सम्यक् निरूह के लक्षण—विषमावस्था में स्थित वात-मूत्र-पुरीष का शीघ्र अनुलोमन।

7. निरूहण के योग्य रोग—हृद्रोग, पार्श्वशूल, कुष्ठ, कृमिरोग, प्रमेह, उदररोग, गुल्म, वातशूल।

(2) अनुवासन बस्ति—अनुवासन का अर्थ होता है जो शरीर में कुछ समय रहे तथा कोई उपद्रव नहीं हो। यह भोजन के बाद दी जाती है अथवा यह प्रतिदिन दी जा सकती है। इसमें मुख्य द्रव्य स्नेह होता है। मात्रा के आधर पर इसके निम्न तीन भेद किये गये हैं—

(1) स्नेह बस्ति	- निरूह से चतुर्थांश मात्रा
(2) अनुवासन बस्ति	- स्नेह बस्ति की आधी मात्रा
(3) मात्राबस्ति	- अनुवासन बस्ति की आधी मात्रा

बस्तिमात्रा - (का.खि. 08/04-105)

ह्रस्व मात्रा	- एक प्रकुञ्च
मध्यम मात्रा	- डेढ़ प्रकुञ्च
उत्तम मात्रा	- 2 पल तथा क्षीरप के लिए ½ पल

Scanned with CamScanner

आयु के अनुसार स्नेह बस्तिमात्रा (काश्यप के अनुसार)—

3 वर्ष तक	- 3 कर्ष	(30 ग्राम)
4 वर्ष तक	- 1 पल	(40 ग्राम)
6 वर्ष तक	- 1 प्रसृत	(80 ग्राम)
12 वर्ष तक	- 2 प्रसृत	(160 ग्राम)
16 वर्ष तक	- 4 प्रसृत	(320 ग्राम)

निरूहबस्ति में यही मात्रा तीन गुणा होती है। जैसा आचार्य कश्यप का निर्देश है कि बस्ति में स्नेह की मात्रा रोग-रोगी तथा बल के अनुसार करनी चाहिए (का.खि. 8/111-112)। इस प्रकार चिकित्सक अवस्थानुसार मात्रा का स्वयं युक्तियुक्त निर्धारण करे तो समीचीन होगा।

व्यवहार में बालकों में प्रयोग की जाने वाली मात्रा

आयु	स्नेह बस्ति मात्रा	मात्रा बस्ति मात्रा
1 वर्ष	10 मि.ली.	2.5 मि.ली.
2 वर्ष	20 मि.ली.	5 मि.ली.
3 वर्ष	30 मि.ली.	7.5 मि.ली.
4 वर्ष	40 मि.ली.	10 मि.ली.
6 वर्ष	80 मि.ली.	20 मि.ली.
12 वर्ष	160 मि.ली.	40 मि.ली.

मात्रा बस्ति

1. बालकों के लिए उपद्रव रहित होने से श्रेष्ठ है।
2. इसे अल्प मात्रा में प्रारम्भ करके क्रमशः बढ़ायें।
3. मात्रा बस्ति सदैव बल्य, मलनिस्सारक एवं सुखकारक मानी गयी है।

प्रयोग विधि—

पूर्वकर्म—उष्णजल परिषेक, स्नेहमालिश, उष्ण भोजन, उबटन।

1. एक-एक दिन छोड़कर प्रयोग करें।
2. अतियोग होने पर आमदोषज रोग (रसज व्याधि) चिकित्सा करनी चाहिए।
3. स्नेहबस्ति योग्य रोग—उदावर्त, कृशता, बालशोष (PeM), Hemiplegia, C. Flopybaby syndrome and Musculsr dystrophies.
4. बस्ति के अयोग होने पर त्रिवृत या हरीतकी गोमूत्र का प्रयोग।

- माधुतैलिक बस्ति—यह भी बालकों में उपयोगी बस्ति है जो सभी रोगों एवं सभी वय में प्रयोग की जा सकती है। इसमें मधु-तैल सम मात्रा में होते है।
- कटुबस्ति—कृमि रोगों में प्रयुक्त होती है।
- अन्य उपयोगी बस्तियाँ—शिशु स्नेह बस्ति, मुस्तादि यापना बस्ति आदि वातिक रोगों में प्रयुक्त होती है।

शिरोविरेचन

'नासायां प्रणीय मानमौषधं नस्यम्'।

'नस्तःकर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित्।
द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद् व्याप्य हन्ति तान्' ॥ (च.सि.9/8)

'अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत्।
अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते' ॥ (शा.उ. 8/6)

'वमनं प्रतिमर्शश्च जन्म प्रभृति शस्यते'। (शा.प्र. 6/18)

'नस्य कर्माणि बालानां स्तनपानां विशेषतः।
कटुतैलप्रयुञ्जीत घृतं वा सैंधवान्वितम्' ॥ (का.सि. 4)

उक्त संदर्भों से ज्ञात होता है कि—

1. नासा मार्ग से शिर में औषध-प्रयोग करना 'नस्य' कहलाता है जो उर्ध्वजत्रुगत रोगों के लिए लाभप्रद है।
2. मर्श नस्य का प्रयोग बालकों में 8 वर्ष के बाद किया जाना चाहिए।
3. प्रतिमर्श नस्य जन्म से प्रयोग की जा सकती है।
4. स्तनपान करने वाले बालकों में कटुतैल अथवा सैंधवघृत मिश्रित नस्य 2-3 बूँद की मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
5. मर्श साध्य रोगों में प्रतिमर्श नस्य का ही प्रयोग करना चाहिए। यह नित्य सेवन करने योग्य है।
6. नस्य के लिए तैल का प्रयोग ही श्रेष्ठ है क्योंकि शिर कफ का स्थान है।

नस्य के प्रकार—

काश्यप के अनुसार—

1. शोधन-मरिच्यादि तीक्ष्ण पदार्थों से शिरोविरेचन
2. पूरण-बृंहण

Scanned with CamScanner

चरक के अनुसार—

1. रेचन	नावन
2. तर्पण	अवपीड़
3. शमन	ध्मापन
	धूम
	प्रतिमर्श

स्नेहन नस्य मात्रा के अनुसार भेद—

मर्श - 6, 8, 10 बूँद

प्रतिमर्श - 2 बूँद

नस्य के योग्य—दन्तचाल, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, शिरोग्रह, बाधिर्य, कर्णशूल, अर्धावभेदक, सूर्यावर्त्त, अपतानक, स्वरभेद, वाक्ग्रह, ओष्ठस्फुरण, मुखनाक से दुर्गन्ध आना, पालित्य, खालित्य तथा वातरोगों में स्नेह नस्य। उर्ध्वजत्रुगतरोग यदि वातिक हो तो स्नेहन नस्य और कफज हो तो विरेचन नस्य का प्रयोग करना चाहिए।

मर्श नस्य विधि—पूर्वकर्म—अभ्यंग एवं स्वेदन

- द्रव्य—लहसुन बीज, अपामार्ग, सैंधव, दालचीनी, ज्योतिष्मती, सोंठ—उक्त में से किसी 2-3 द्रव्य को आर्द्रक स्वरस+मधु+मुनक्का मिलाकर गरम करके नस्य पात्र से दे।
- उक्त औषधियों को कटुतैल, मज्जा, गौमूत्र से सिद्ध करके सम्यक् रीति से प्रयोग करें।

प्रतिमर्श नस्य का विधान

काल—सदैव दुर्दिन में भी कोई प्रतिबन्ध नहीं।

निषेध—दुष्टपीनस, शिर में कृमि, वृद्धदोष, चलायमान दोष

मात्रा—2 बूँद

सेवन काल (14 काल)—भोजन के बाद, वमनोपरान्त, दिवाशयन के बाद, शिरो-अभ्यंग, गण्डूष के बाद, मूत्रत्याग के बाद, अंजन, दातुन, मलत्याग के बाद।

औषधियाँ—अणुतैल, नारायण तैल, माषादि तैल, दोषानुसार सिद्ध विभिन्न घृत।

सम्यक् लक्षण—औषध द्रव्य गले में आ जाये।

धारणावधि—100 गिनने तक।

बालकों में प्रतिमर्श नस्य की श्रेष्ठता

(1) प्रतिमर्श नस्य दोषों को उत्क्लिष्ट नहीं करती अपितु दीर्घकालानुवर्त्तन से लाभप्रद होती है।

(2) यह प्रातः सायम् दो बार प्रयोग की जा सकती है।

(3) सभी ऋतुओं में प्रयोग की जा सकती है।

इस प्रकार बालकों में निरापद होने से स्नेह नस्य (प्रतिमर्श) का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु दोष-प्राबल्य की स्थिति में शोधन आवश्यक हो तो कुछ बड़े बालकों में दोष एवं रोगानुसार (नावन, अवपीड़, ध्मापन, धूम) किसी भी प्रकार की नस्य दी जा सकती है।

तीक्ष्ण वैरेचनिक नस्य

बालकों में स्नेह नस्य ही दे परन्तु आत्ययिक अवस्था में वैरेचनिक भी दी जा सकती है।

(1) तीक्ष्ण तैल जैसे—सरसों तैल। ह्रस्वमात्रा 4 बिन्दु

(2) हारीत ने आत्ययिक अवस्था (Status epilepticus) में निम्न वैरेचनिक नस्य का निर्देश किया है—

1. वचा-सैंधव-पिप्पली-सौंठ-गुड़ निर्मित नस्य।
2. अगति पत्र स्वरस, काली मिर्च चूर्ण।

रक्तमोक्षण

सम्भावित उपद्रवों एवं व्यावहारिक रूप से प्रयोग में कठिनाई होने के कारण बालकों में इस कर्म का चिकित्सकीय प्रयोग अल्प किया जाता है। आचार्यों ने 16 वर्ष की आयु तक सिरावेध का प्रयोग वर्जित बताया है। परन्तु कुछ रोग जैसे अहिपूतना, कुकूणक आदि व्याधियों में जलौकावचारण का उल्लेख प्राप्त होता है।

जलौका प्रयोग विधि

विहित स्थान पर जलौका लगा दी जाती है। उस स्थान पर आतुर को वेदना प्रतीत होने लगे तो जलौका को हटा लिया जाता है। वेदना एवं कण्डू शमन के लिये उस स्थान पर शतधौत घृत, मधुयष्टि, चंदन, उशीर आदि द्रव्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

जलौकावचारण के बाद अनुष्णाशीत लघु एवं दीपन-पाचन आहार द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

सारांश एवं निष्कर्ष

(1) पंचकर्म आयुर्वेद की अद्वितीय पद्धति है। यह रोगप्रतिषेध एवं रोगनिवारण दोनों ही लक्ष्यों की प्राप्ति में सक्षम हैं।

(2) किसी भी आचार्य ने बालकों में पंचकर्म का पूर्णतः निषेध नहीं किया है। परन्तु असम्यक् प्रयोग से होने वाले परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए अधिक सावधानी-पूर्वक प्रयोग करने का निर्देश किया है।

Scanned with CamScanner

(3) वमन कर्म बालकों को जन्मतः सात्म्य है अतः अवस्थानुसार क्षीरप-क्षीराद्याद में बिना पूर्व कर्मों के एवं अन्नाद अवस्था में अल्प वीर्य वाले द्रव्यों का अल्प मात्रा में प्रयोग करते हुए वमन कराना अभिप्रेत है ।

(4) बालकों में विरेचन यथासंभव नहीं दें । विरेचन साध्य रोगों में अस्थापन बस्ति का प्रयोग करें । आत्ययिक स्थिति में मृदु विरेचन द्रव्यों का स्निग्ध द्रव्यों के साथ प्रयोग करते हुए विरेचन कराया जा सकता है । आचार्य काश्यप ने एरण्डस्नेह से विरेचन को रसायन के समान फलदायक माना है ।

(5) बस्ति कर्म में मात्रा बस्ति का उपयोग निरापद एवं उपयोगी है ।

(6) नस्य कर्म हेतु प्रतिमर्श नस्य का प्रयोग निर्भयता पूर्वक कराया जा सकता है ।

(7) शालिषष्टिक पिण्डस्वेद, क्षीरबस्ति, बृंहणबस्ति, बृंहण नस्य तथा शिरोधारा बालकों में लाभदायक सिद्ध हुई है ।

*

तृतीय

परिशिष्ट खण्ड

Scanned with CamScanner

परिशिष्ट - 1

बालग्रह

(सुश्रुतसंहिता-उत्तरतन्त्र अध्याय 37 तथा काश्यपसंहिता-चिकित्सा-स्थान, बालग्रह-चिकित्साध्याय से उद्धृत)

'नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां य इमे ग्रहाः ।
श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुषविग्रहाः' ।। (सु.उ. 37/3)

बालकों के स्कन्द आदि ग्रह (जिनकी संख्या सुश्रुतसंहिता में 9 कही गयी है) ऐश्वर्य युक्त, दिव्य शरीर वाले (अदृश्य) तथा स्त्री एवं पुरुष शरीरधारी हैं ।

पुरुष ग्रह—स्कन्द ग्रह, स्कन्दापस्मार एवं नैगमेष

स्त्री ग्रह—शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना तथा मुखमण्डिका ।

ग्रहोत्पत्ति के हेतु—

'एते गुहस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाऽग्निशूलिभिः ।
सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्यात्मतेजसा' ।। (सु.उ. 37/4)

शर (दर्भ या कास) युक्त वन में अपने तेज से रक्षित कार्तिकेय की रक्षा के लिए कृत्तिका, उमा (पार्वती), अग्नि एवं शिव ने इन ग्रहों की संरचना (उत्पत्ति) की ।

'स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा ।
बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति स ग्रहः' ।। (सु.उ. 37/8)

स्कन्द ग्रह की उत्पत्ति शिव के द्वारा की गयी ।

'स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निनाऽग्निसमद्युतिः ।
स च स्कन्दसखा नाम विशाख इति चोच्यते' ।। (सु.उ. 37/7)

स्कन्दापस्मार ग्रह की उत्पत्ति अग्नि के द्वारा की गयी । यह विशाख के नाम से भी जाना जाता है । अग्नि के समान तेजस्वी (शीघ्रगामी) एवं स्कन्द का मित्र है ।

'नैगमेषस्तु पार्वत्या सृष्टो मेषाननो ग्रहः ।
कुमारधारी देवस्य गुहस्यात्मसमः सखा' ।। (सु.उ. 37/6)

नैगमेष की उत्पत्ति पार्वती के द्वारा की गयी । इसकी मुखाकृति मेष के समान है । यह भी स्कन्द का मित्र है तथा स्कन्द को धारण करने वाला है ।

Scanned with CamScanner

गृह नाम	पर्याय	उत्पन्न करने वाले
१. स्कन्दग्रह	कुमार, कार्तिकेय एवं गुह	शिव
२. स्कन्दापस्मार	विशाख	अग्नि
३. नैगमेष	मेष	पार्वती

'बाललीलाधरो योऽयं देवो रुद्राग्निसम्भवः ।
मिथ्याऽऽचारेषु भगवान् स्वयं नैष प्रवर्त्तते' ।। (सु.उ. 37/9)

रूद्र (शिव) एवं अग्नि से उत्पन्न, बालकों की लीला करने वाले कार्तिकेय स्वयं बालवेशात्मक पापाचार में प्रवृत्त नहीं होते है ।

'स्त्रीविग्रहा ग्रहा ये तु नानारूपा मयेरिताः ।
गङ्गोमाकृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः' ।। (सु.उ. 37/5)

स्त्री शरीर वाले अनेक रूपधारी ग्रह जो गंगा, पार्वती एवं कृत्तिका के अंश है तथा वे राजस एवं तामस गुणयुक्त हैं ।

इन स्त्री ग्रहों की उत्पत्ति का विशिष्ट विवरण सुश्रुतसंहिता में नहीं है । काश्यप-संहिता, चिकित्सास्थान का बालग्रह चिकित्साध्याय खण्डित है; उसमें कुछ स्त्रीग्रहों की उत्पत्ति मिलती; है यथा—

'आसीद्वर्णपरिभ्रष्टस्तं समेत्य सुरासुराः ।
दिशः समुद्राः सरितो महाभूतानि तोयदाः ।।
पूत्यर्थं धूपयामासुस्ततः पूतोऽभवद् गुहः ।
यस्मिन् देशे तु भगवान् पूतः स्कन्दो महाबलः ।।
संजज्ञे पूतना तस्मात् सर्वलोकभयङ्करी ।
तामब्रवीद् गुहः पुण्यां पूतनामग्रतः स्थिताम् ।।
याहि त्वं भिन्नमर्यादा(न्) चेत्युक्ताऽऽह तथाऽस्त्विति ।
मलजा पूतना कौञ्ची (क्रौञ्ची) वैश्वदेवी च पावनी ।।
पञ्चनामेति चाप्युक्ता शृणु तस्याश्चिकित्सितम्' ।।

(का.चि. बालग्रहचिकित्सा)

पौराणिक कथानुसार दुन्दुभी से युद्ध करने में कार्तिकेय का वर्ण नष्ट हो गया । पुनः वर्ण प्राप्त करने हेतु सुर, असुर, दिशायें, समुद्र एवं सरिताओं, महाभूत एवं बादलों ने उनके पास धूपन किया । इससे कार्तिकेय का वर्ण वापस आ गया । वह स्थान (विवर्णता) पूतना के नाम से विख्यात हुआ । कार्तिकेय ने पूतना से कहा कि तुम भिन्न मर्यादा[1] वाले लोगों में प्रवेश करो ।

1. भिन्न मर्यादा अर्थात् विपरीत आहार, विहार, आचरण आदि ।

'जातमात्रं पुरा स्कन्दमुमाशङ्करसन्निधौ ।
गन्धालङ्कारपुष्पाद्यैर्मण्डयामास षण्मुखम् ।।
इषुकं चित्रकं चास्य ललाटचक्षुषि (व्यधात्) ।
नासिकागण्डचिबुकवक्त्रे चित्रविशेषकान् ।।
गन्धर्वाप्सरसश्चैनं रमयन्ति गणास्तथा ।
ततोऽब्रवीद्बालभावान्मातरं भगवान् गुहः ।।
एतमेव महादेवजटाभारं विभूषणम् ।
देहीति न च लेभे तं पुनः पुनरपि ध्रुवम् ।।
गुहस्त्वलभमानस्तं रुषितो ललित; सदा ।
अपविद्ध्य क्षितौ सर्वं निर्मृज्य मुखमण्डलम् ।।
ततः क्षुब्धास्त्रयो लोका नष्टज्ञाना विचेतसः ।
दम्पती चापि संविग्नौ ददतुश्चामृतोद्भवम् ।।
ततः प्रभृति सप्तानां चन्द्रः शिरसि दृश्यते ।
रूद्रस्कन्दादिनन्दीनां रेवत्याश्च महात्मनः ।।
अपविद्धं तु यत् क्रोधात् स्कन्देन मुखमण्डलम् ।
ततो ग्रहः सा बभूव दारुणा मुखमण्डिका ।।
निर्दहिष्यन्निव क्रोधात्ततस्तामब्रवीद् गुहः ।।
अलं कुरु महाभागे सङ्कीर्णाकारकर्मणाम् ।।
तथाऽस्त्विति च सा प्राह स्कन्दस्य परिचारिका ।
एवं मुखार्चि(का) जज्ञे शृणु तस्याश्चिकित्सितम्' ।।

(का.चि.बलग्रहचिकित्सा)

किसी समय उत्पन्न हुए छः मुखों वाले स्कन्द को पार्वती तथा महादेव के समीप गन्धवाली वस्तुओं, अलंकार तथा पुष्प आदि के द्वारा अलंकृत किया गया था । उसके ललाट तथा चक्षुओं पर बाण का निशान तथा अन्य चित्र आदि बनाये गये । इसी प्रकार नासिका, गाल, ठोडी तथा मुख पर भी विशेष प्रकार के चिह्न बना दिये गये तथा गन्धर्व, अप्सरायें एवं गण लोग इसके साथ क्रीडा करने लगे । उस समय भगवान् गुह बालस्वभाव से माता से कहने लगे—महादेवजी की जटाओं में यह जो (चन्द्रमारूपी) आभूषण है वह मुझे लाकर दो । बार-बार मांगने पर भी जब कुमार कार्तिकेय को वह नहीं मिला तब सदा प्रसन्न रहने वाले कार्तिकेय ने क्रोधित होकर उस अलंकृत किये हुए मुखमण्डल को विकृत एवं मलिन करके भूमि पर फेंक दिया । इससे तीनों लोकों में विक्षोभ उत्पन्न हो गया । उनका ज्ञान नष्ट हो गया तथा चित्तविभ्रम हो गया । इससे पार्वती तथा महादेवजी भी उदास हो गये तथा उन्होंने उसे अमृत से उत्पन्न हुआ चन्द्रमा दे दिया । तब से लेकर रुद्र (महादेव), स्कन्द (कुमार कार्तिकेय), नन्दी तथा रेवती आदि सातों के

Scanned with CamScanner

सिर पर चन्द्रमा दीखता है। क्रुद्ध होकर कार्तिकेय ने जिस मुखमण्डल को विकृत कर दिया था वह मुखमण्डिका नाम का दारुण (भयंकर) ग्रह बन गया। तब क्रोध से मानो जलाते हुए गुह (कुमार कार्तिकेय) ने उससे कहा कि हे महाभागे ! तू उन लोगों को अपना भोजन बना जिनके आकार एवं कर्म (बलि-हवन आदि) संकीर्ण हैं। तब स्कन्द की उस परिचारिका अर्थात् मुखमण्डिका ने कहा—ऐसा ही होगा। इस प्रकार मुखार्चिका (मुखमण्डिका) उत्पन्न हुई ॥

मुखमण्डिका ग्रह की उत्पति कार्तिकेय के द्वारा हुई। यह ग्रह उन पर आक्रमण करता है जिनका आहार-विहार, आकृति एवं कर्म विकृति है।

उपरोक्त सम्पूर्ण कथानक पौराणिक है। वस्तुतः इससे ग्रहोत्पत्ति एवं उनके कारणों के विषय में संकेत मात्र प्राप्त होता है।

*

परिशिष्ट - 2

धूपनकर्म

(काश्यपसंहिता-कल्पस्थान, धूमकल्पाध्याय पर आधारित)

काश्यपसंहिता के कल्पस्थान का प्रारम्भ इसी अध्याय से हुआ है तथा यह अध्याय आरम्भ से ही खण्डित है। इसके पूर्व के 4 अध्याय अनुपलब्ध हैं।

इस अध्याय में धूपन कर्म पर अत्यधिक प्रकाश डाला गया है।

धूप की उत्पत्ति—

'जाता जाता ऋषिसुता ह्रियन्ते राक्षसैर्यदा।
तदा महर्षयः सर्वे वह्निं शरणमन्वियुः ॥
होमजापतपोयुक्तास्ततस्तुष्टोऽग्निरब्रवीत्।
इमान् धूपान् प्रयच्छध्वं प्रयुङ्ध्वं च मदर्पितान् ॥
रक्षोभूतपिशाचेभ्यो न भयं वो भविष्यति।
जातेषु वर्धमाने च रोगे धात्र्यां च युङ्क्त ह' ॥

जब उत्पन्न हुए ऋषियों के पुत्रों को राक्षसों ने सताना प्रारम्भ किया तब होम, जाप एवं तप से युक्त हुए सब महर्षि अग्नि देवता की शरण में पहुँचे। इससे प्रसन्न होकर अग्नि ने कहा—मेरे द्वारा अर्पित किये गये इन धूपों को तुम ग्रहण करो तथा प्रयोग करो। इससे तुम्हें राक्षस, भूत, पिशाच आदि किसी का भय नहीं रहेगा। उत्पन्न हुए बालकों में बढ़ते हुए रोगों में धात्री को इन धूपों का प्रयोग कराना चाहिए।

'ततस्ते मुनयस्तुष्टाः कश्यपं लोकवर्धनम्।
ऋषिलोकहितं ज्ञात्वा युयुजुस्तत्र कर्मणि ॥
अग्नेः सकाशाद्धूपान् स संलब्ध्वा चाधिकोऽभवत्।
अधृष्याः सर्वभूतानां कुमारास्ते च रक्षिताः' ॥

तब प्रसन्न हुए उन मुनियों ने लोकों की वृद्धि करने वाले महर्षि कश्यप को ऋषियों का हित करने वाला समझकर उसे इस कार्य के लिए नियुक्त किया। अर्थात् उपर्युक्त धूप को ग्रहण करने के लिए उसे अपना प्रतिनिधि बना दिया। इस प्रकार अग्नि देवता से धूपों को प्राप्त करके उसने इन्हें और बढ़ाया तथा सम्पूर्ण भूतों द्वारा अधृष्य बालकों की रक्षा की।

Scanned with CamScanner

धूप के भेद—

आश्रय भेद से—1. स्थावर
2. जङ्गम

कर्म भेद से— 1. धूप
2. अनुधूप
3. प्रतिधूप

'निविष्टाश्चाग्निदैवत्या जङ्गमस्थावराश्रयाः' ।।

'त्रिविधो धूप उद्दिष्टः कर्मभेदाच्चिकित्सकैः' ।।

धूपन-विधि—सर्वप्रथम वैद्य को चाहिए कि वह भली प्रकार से उपवास कर स्नान से पवित्र होकर मैत्र, आग्नेय तथा उत्तर दिशा में से पुण्य नक्षत्र में धूप के द्रव्यों को उखाड़ कर लाये तथा स्वस्तिवाचन एवं बलिकर्म करके एवं मन के अनुकूल शब्दों को सुनकर पवित्र हुई 4 कन्याएं प्रमाद रहित होकर·····उस धूप को कूटकर नवीन पात्र में डाल कर अच्छी प्रकार ढक कर सुरक्षित स्थान पर रख दे तथा आवश्यकता होने पर इसका प्रयोग करें। यदि उसी समय प्रयोग करना हो तो भी अच्छी तरह सँभाल कर उसका शीघ्र ही प्रयोग किया जा सकता है। इस पूर्वकल्पित धूप से निश्चित रूप से सिद्धि होती है। एक बार धूप देने के बाद उसका प्रतिधूपन (पुनः धूपन) न किया जाय तो उसे शीघ्र ही पुनः रोग हो जाते है।

'पूर्वमेव भिषग्धूपं पुण्ययोगेन संहरेत् ।
उपोषितः शुचिः स्नातो मैत्राग्नेयोत्तरासु वा ।।
वाचयित्वा बलिं कृत्वा श्रुत्वा शब्दान्मनोऽनुगान् ।
चतस्रः शुचयः कन्याः कुट्टयेयुर(तन्द्रिताः) ।।
·····तं धूपं निदध्याद्भाजने नवे ।
गोपयेच्च सुपिहितं काले चैनं प्रयोजयेत् ।।
तत्कालमपि चापन्नः सम्भृत्याशु प्रयोजयेत् ।
ननु तस्मिन् धुवा सिद्धिर्यथा पूर्वोपकल्पिते ।।
आघ्रातपरधूपस्तु यदि न प्रतिधूप्यते ।
आशु तं रोगमाप्नोति तदर्थं धूप्यते पुनः' ।।

धूप को जलाने के पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र का जाप करना चाहिए—

अग्निस्त्वा धूपयतु, ब्रह्मा त्वा धूपयतु, शिवस्त्वा धूपयतु, वसवस्त्वा धूपयन्तु, रुद्रास्त्वा धूपयतु, आदित्यस्त्वा धूपयतु, मरुतस्त्वा धूपयन्तु, साध्यस्त्वा धूपयतु, देवा ऋभवस्त्वा धूपयन्तु, विश्वे त्वा देवा धूपयन्तु, सर्वे त्वा देवा धूपयन्तु,···छन्दांसि त्वा धूपयन्तु, पृथवी त्वा धूपयतु, अन्तरिक्षं त्वा धूपयतु, द्यौस्त्वा धूपयतु, दिशस्त्वा

धूपयन्तु, दिशां त्वा पतयो धूपयन्तु, देवीरापस्त्वा धूपयन्तु, शिवस्त्वा पवमानो धूपयतु, मित्रस्त्वा सविता सूर्यो धूपयतु, चन्द्रस्त्वा सोमो धूपयतु, नक्षत्राणि त्वा सुप्रजात्वाय धूपयन्तु, नक्षत्राणां त्वा देवताः समनसे धूपयन्तु, अहोरात्राणि त्वा शान्तये धूपयन्तु, ऋभवस्त्वा पुण्याय कर्मणे धूपयन्तु, संवत्सरास्त्वाऽऽयुषे ब्रह्मवर्चसे बलाय धूपयन्तु, प्रजापतिस्त्वा सुप्रजात्वाय धूपयतु, अश्विनौ त्वाऽऽरोग्याय दीर्घायुष्ट्वाय सहसे शेव-(श्रेय)से धूपयताम्, मातरस्त्वा स्निहा धूपयन्तु, पितरस्त्वा तनोरच्छेदाय स्वधायै धूपयन्तु, कुमारस्त्वा कौमाराय वसवे धूपयतु, शाखस्त्वा यौवनाय धूपयतु, विशाखस्त्वा मध्याय वयसे धूपयतु, नैगमेपस्त्वा जरसे धूपयतु, सर्वे त्वा देवा दिव्याय धाम्ने धूपयन्तु, सर्वे त्वा ऋषयो ब्रह्मवर्चसाय धूपयन्तु, सर्वास्त्वा नद्यः सुपीताय धूपयन्तु, सर्वे त्वा पर्वताः स्थैर्याय धूपयन्तु, सर्वास्त्वा ओषधोऽन्नाद्याय धूपयन्तु, सर्वे त्वा वनस्पतयः सुव्रतानां श्रैष्ठ्याय धूपयन्तु, सर्वे त्वा पशवः शक्त्यै शान्त्यै धूपयन्तु, सत्येन त्वा धूपयाभ्यृतेन त्वा धूपयाभ्यृतसत्याभ्यां त्वा धूपयामि, नमो देवेभ्य इति जपेत्, इति ह स्माह भगवान् कश्यपः'।

इस अध्याय में 40 धूपयोगों का वर्णन है।

नामानुसार धूपों का वर्णन—

(1) अरिष्ट धूप—घृत, निम्बपत्र-मूल, पुष्प, फल एवं त्वक्।

प्रभाव—रोग-रहित करता है।

'घृतं निम्बस्य पत्राणि मूलं पुष्पं फलं त्वचम् ।
अरिष्टो नाम धूपोऽयमरिष्टं कुरुते क्षणात्' ।।

(2) आग्नेय धूप—गौ के बाल को घृत में मिला कर जलाते है।

प्रभाव—सर्वरोगों में प्रशस्त है।

'आग्नेयस्तु स्मृतो धूपो गोबाला घृतसंयुताः ।
ब्राह्मणानां विशेषेण सर्वरोगेषु शस्यते' ।।

(3) उत्तम धूप—घृत, श्वेत सर्षप, मधु, मेषशृङ्गी, अजादुग्ध, गर्दभमूत्र, बाल तथा सोम।

प्रभाव—प्रेतनिवारक, पूतनागृह में प्रशस्त।

'घृतं सिद्धार्थकाः क्षौद्रं मेषशृङ्गमजापयः ।
खरस्य मूत्रं बालांश्च सोमं चैवात्र योजयेत् ।।
एष धूपोत्तमो नाम्ना परः प्रेतनिवारणः ।
परः प्रेताभिभूतेषु पूतनायां च शस्यते' ।।

Scanned with CamScanner

(4) कर्णधूप—घृत, पिप्पली, चावलतुष, बन्दर के बाल-त्वचा, वच, सर्षप, कुष्ठ तथा एला ।

प्रभाव—ग्रहरोगनाशक ।

घृतं कणा व्रीहितुषाः कपिलोमत्वचं वचा ।
सर्षपाः कुष्ठमेला च कर्णधूपो ग्रहापहः' ।।

(5) कुमारधूप—घृत, राल, कृष्ण, भल्लातक, शिलारस, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, लाक्षा, खस, सर्षप, अर्जकपुष्प, विडङ्ग, तगर, तेजपत्र, वचा, हिंगु तथा नेत्रबाला ।

प्रभाव—बालकों की वृद्धि ।

'घृतं सर्जरसः कृष्णो भल्लातकशिलेयके ।
द्वे हरिद्रे जतूशीरसर्षपाः, पुष्पमार्जकम् ।।
विडङ्गतगरं पत्रं वचा हिङ्गु सबालकम् ।
कौमारो नाम धूपोऽयं युक्तो वर्धयति प्रजाः' ।।

(6) गणधूप—घृत, चावल, जातिपुष्प, मधु, श्वेतसर्षप तथा वचा ।

प्रभाव—भूतरुजानाशक ।

'घृताक्षतं जातिपुष्पं मधु सिद्धार्थका वचा ।
गणधूप इति ख्यातः सर्वभूतरुजापहः' ।।

(7) ग्रहघ्न धूप—कुत्ते की विष्ठा, मूत्र, मोर के बाल, वच, घृत तथा सर्षप ।

प्रभाव—ग्रहों को नष्ट करने वाला ।

'श्वविण्मूत्रं मयूराणां लोमान्यथ वचा घृतम् ।
सर्षपाश्चेति धूपोऽयं ग्रहघ्न इति विश्रुतः' ।।

(8) गृहधूप—

'घृतं गुग्गुलुसंयुक्तं, देवदारु घृतान्वितम् ।
कालागुरु च सर्पिश्च, सर्षपाश्चापि सर्पिषा ।।
तृणमूलस्य पत्राणि सारं पुष्पफलं त्वचम् ।
पञ्च धूपाः समाख्याताः सघृता ग्रहनाशनाः ।।
गुग्गुल्वादीनि चैतानि दशाङ्गं च समापयेत् ।
गृहधूप इति ख्यातो न क्वचित् प्रतिहन्यते' ।।

घृतयुक्त गुग्गुलु, घृतयुक्त देवदारु, कालागुरु एवं घृत, घृतयुक्त सर्षप एवं पंचतृण-मूल पत्र, सार, पुष्प, फल एवं त्वचा । घृत के साथ ग्रहों को नष्ट करने वाले उपर्युक्त 5 धूप कहे गये हैं । उपर्युक्त गुग्गुलु आदि तथा दशाङ्गधूप को मिलाने से गृह-धूप कहलाता है जो कभी नष्ट नहीं होता ।

(9) चतुरङ्गिक धूप—घृत, मज्जा, वसा, लाक्षा—इस चतुरदिक धूप का अल्प-दोष वाले व्यक्ति, कुश, बालक तथा ग्रहों के विकारों में प्रयोग करना चाहिए ।

'घृतं मज्जा वसा लाक्षा धूपोऽयं चतुरङ्गिकः ।
अल्पदोषे कृशे बाले प्रयोज्यो ग्रहवैकृते' ।।

(10) दशांग धूप—घृत, श्वेतसर्षप, कुष्ठ, भिलावा, वच, बकरे के लोम, तगर, भोजपत्र एवं गुग्गुलु—दशांग नामक धूप सब रोगों में विशेष कर ग्रह-उपग्रह रोगों में प्रयुक्त करना चाहिए ।

'घृतं सिद्धार्थकाः श्वेताः कुष्ठं भल्लातकं वचा ।
बस्तलोमानि तगरं भूर्जावर्तं सगुग्गुलु ।।
दशाङ्गो नाम धूपोऽयं प्रयोज्यः सर्वरोगिषु ।
अपस्मारे विशेषेण ग्रहेषूपग्रहेषु च' ।।

(11) नन्दक धूप—घृत, वच, भालू की विष्ठा, लोम एवं चर्म तथा प्रसह पक्षियों का पुरीष नन्दक धूप कहलाता है ।

'घृतं वचा तरक्षोश्च विष्ठा लोमानि चर्म च ।
प्रसहानां पुरीषं च धूपो नन्दक उच्यते' ।।

(12) पुण्यकारक धूप—घृत, हाथीदाँत, बकरी तथा भेड़ के बाल एवं गौ के सींग—यह पुण्यकारक धूप पुण्यजनों के लिए प्रयुक्त करें ।

'घृतं कुञ्जरदन्तं च तनुजान्यजमेषयोः ।
गोशृङ्गमिति धूपोऽयं पुण्यः पुण्यजनावहः' ।।

(13) ब्राह्म धूप—घृत, श्वेत सर्षप, लाजा, कुश तथा सह·····एवं इनके समान ब्राह्मी लेकर धूपन करें । यह ब्राह्मधूप है । वैद्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में सब रोगों में इनका निरन्तर प्रयोग करना चाहिए । यह सर्वरोगनाशक है ।

'घृतं सिद्धार्थका लाजाः कुशाः सह····· ।
सर्वतुल्या भवेद् ब्राह्मी धूपोऽयं ब्राह्म उच्यते ।।
ब्राह्मणक्षत्रवैश्येषु प्रयोज्यो भिषजा भवेत् ।
सर्वरोगेषु सततं क्षिप्रं रोगान्निरस्यति' ।।

(14) भद्रङ्कर धूप—घृत, घोड़े, गदहे तथा ऊँट के बाल एवं रोम, मातृका तथा चतुष्पादों के जिनके भी मिले उनके नख, धूप—यह भद्रंकर कहलाता है । पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, भूत, स्कन्द तथा कफरोगों से पीड़ित व्यक्तियों में इस धूप का प्रयोग करने से रोगी शीघ्र रोगमुक्त हो जाता है ।

'घृतं हयखरोष्ट्राणां बालाः केशाश्च मातृकाः ।
नखाश्चतुष्पदां लाभाद् धूपो भद्रङ्करः स्मृतः ।।

Scanned with CamScanner

पिशाचयक्षगन्धर्वभूतस्कन्दकफार्दिते ।
धूपमेतं प्रयुञ्जीत यमिच्छेदगदं क्षणात्' ।।

(15) माहेश्वर धूप—घृत, गुग्गुलु, बिल्व, देवदारु, नमेरु तथा यव—यह माहेश्वर धूप कहलाता है । यह ग्रहरोगनाशक है ।

'घृतं गुग्गुलु बिल्वं च देवदारु नमेरु च ।
एष माहेश्वरो धूपो यवयुक्तो ग्रहापहः' ।।

(16) मोहित धूप—घृत, श्वेतसर्षप, चौरक, गुग्गुलु, शूकरी एवं जटिला (जटामांसी)—यह धूप मोहित धूप कहलाता है ।

'घृतं सिद्धार्थकाः श्वेताश्चोरकं सपलङ्कषम् ।
शूकरी जटिला चेति धूपो मोह इति स्मृतः ।।

(17) रक्षोघ्न—घृत, श्वेत सर्षप, हिंगु, देवनिर्माल्य, अक्षत, साँप की त्वचा तथा भिक्षुसंघाटी—इनका धूप रक्षोघ्न कहलाता है ।

'घृतं सिद्धार्थको हिङ्गु देवनिर्माल्यमक्षताः ।
सर्पत्वग्भिक्षुसङ्घाटी धूपो रक्षोघ्न उच्यते' ।।

(18) वारुणी—श्रीवेष्टक·····लाक्षा, पद्मक, चन्दन, देवदारु, तुलसी तथा शाल—इस वारुण नामक धूप का शकुनी, पुण्डरीक, रेवती एवं कफज रोगों में ग्रीष्म काल में प्रयोग करना चाहिए ।

'स्मृतं श्रीवेष्टका·····रलाक्षापद्मकचन्दनम् ।
स देवदारुसरसं शालजं चेति योजयेत् ।।
धूपोऽयं वारुणो नाम ग्रीष्मकाले प्रशस्यते ।
शकुन्यां पौण्डरीके च रेवत्यां च कफाधिके' ।।

(19) शिशुक धूप—घृत, स्थौणेयक, जटामांसी, तगर, परिपेलव, ह्रीबेर, सौंफ, हरताल, मनःशिला, नागरमोथा, हरेणुबीज तथा छोटी एला—इनको धूप के लिए प्रयुक्त करें । यह शिशुक नाम का धूप सब रोगों तथा ग्रहों को नष्ट करता है । इसका धूप, अनुधूप, प्रतिधूप के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

'घृतं स्थौणेयकं मांसी तगरं परिपेलवम् ।
ह्रीबेरं शतपुष्पां च हरितालं मनःशिलाम् ।।
मुस्तं हरेणुकामेलां धूपार्थमुपकल्पयेत् ।
शिशुको नाम धूपोऽयं सर्वरोगग्रहापहः ।।
धूपने चानुधूपे च प्रतिधूपे च भार्गव' ।।

(20) श्रीधूप—घृत, सर्पत्वचा, बिल्व, सर, श्वेत सर्षप तथा लाक्षा—यह श्रीधूप कहलाता है । ऐश्वर्य को चाहने वालों में इसका प्रयोग करें ।

'घृतं सर्पत्वचं बिल्वं सरः सिद्धार्थका जतु ।
श्रीधूप इति निर्दिष्टः श्रीकामैर्धूपयोजयेत्' ।।

(21) स्वास्तिक धूप—घृत, शल्लकी, चमेली, शिरीषपुष्प एवं नमेरु से युक्त स्वास्तिक धूप कहलाता है ।

'घृतं शल्लकिधूपश्च पुष्पं जातिशिरीषयोः ।
नमेरुणा समायुक्तौ धूपः स्वास्तिक उच्यते' ।।

(22)·····कुष्ठ, पूतिक, अम्बर, वच, सर्षप एवं बकरे के बाल तथा हींग इनका धूपन देना चाहिए ।

'·····कुष्ठं पूतिकमठरं वचा ।
सर्षपा बस्तलोमानि धूपः स्याद्धिङ्गुसंयुतः' ।।

(23) घृत, भेड़ की सींग, घोड़े तथा हाथी के खुर, बन्दर, शल्यक तथा बभ्रू के लोमों का धूप उत्तम माना जाता है ।

'घृतं मेषविषाणं च वाजिकुञ्जरयोः खुरौ ।
कपिशल्यकबभ्रूणां लोमभिर्धूप उत्तमः' ।।

(24) घृत, सर्प केचुल, गिद्ध तथा उल्लू की विष्ठा, वच, हिंगु—इनका धूप अपस्मार तथा ग्रह रोगों को दूर करता है ।

'घृतं सर्पस्य निर्मोको गृध्रकौशिकयाश्च विट् ।
वचा हिङ्गु च धूपः स्यादपस्मारग्रहापहः' ।।

(25) घृत, निम्बपत्र, गर्दभमूत्र, वच, लाक्षा तथा सर्षप—इनका धूप एवं प्रतिधूप के रूप में प्रयोग प्रशस्त है ।

'घृतं निम्बस्य पत्राणि खरमूत्रं वचा जातु ।
सर्षपाश्चात्र धूपोऽयं प्रतिधूपश्च शस्यते' ।।

(26) घृत, गोक्षुर, वसुक, हरिद्रा, दारुहरिहा, परिपेलव, वच तथा भार्ङ्गी—यह प्रतिधूप के रूप में सुखकर है ।

'घृतं श्वदंष्ट्रा वसुका हरिद्रे परिपेलवम् ।
वचा भार्ङ्गी च धूपोऽयं प्रतिधूपः सुखावहः' ।।

(27) घृत, पद्मक, खस, बालक, नागकेसर तथा रस—यह प्रतिधूप सभी रोगों में प्रशस्त है ।

'घृतं च पद्मकोशीरं बालकं केसरं रसम् ।
प्रतिधूप इति ख्यातः सर्वरोगेषु शस्यते' ।।

Scanned with CamScanner

(28) घृत, बन्दर के बाल, कुक्कुटाण्ड, वच यव, श्वेत सर्षप—महान् उदय वाला यह धूप प्रतिधूप के रूप में प्रशस्त है ।

'घृतं वानरलोमानि कुक्कुटाण्ड़ं वचा यवाः ।
सिद्धार्थकाश्च धूपोऽयं प्रतिधूपमहोदयः' ।।

(29) घृत, निम्बपत्र, लाक्षा, सर्जरस, अक्षत, भास तथा उल्लू की विष्ठा—यह धूप अपस्मारनाशक है ।

'घृत निम्बस्य पत्राणि जतुसर्जरसाक्षताः ।
भासोलूकशकृच्चेति धूपोऽपस्मारनाशनः ।।

(30) घृत, निम्ब, तुलसी, कनेरपत्र, गौ, भेड़ तथा बकरी के बाल—यह धूप सर्वरोगनाशक है ।

'घृतं निम्बस्य पत्राणि सुरसाश्वघ्नयोस्तथा ।
गोमेषबस्तबालाश्च धूपोऽयं सर्वरोगहा' ।।

*

परिशिष्ट - 3

Normal Investigation Values*

BLOOD EXAMINATION

(रक्त-परीक्षण)

1. **Total WBC count**

Birth	9.0-30.0 x 10^9cells/L
24 hrs.	9.4-34.0 x 10^9 cells/L
1 month	5.0-19.5 x 10^9 cells/L
1-3 years	6.0-17.5 x 10^9 cells/L
4-7 years	5.5-15.5 x 10^9 cells/L
8-13 years	4.5-13.5 x 10^9 cells/L

2. **Differential Leukocyte Count : Mean percentage**

	Neutrophils	Lymphocyte	Eosinophils	Monocytes
Cord blood	61	31	2	6
2 weeks	40	48	3	9
3 months	30	63	2	5
6 months to 6 years	45	48	2	5
7-12 years	55	38	2	7

3. **Reticulocyte count**

1-7 days	0.4-6% of Erythrocytes
Children	0.5-1.5% of Erythrocytes

4. **Platelet count**

<7days	84-478 x 10^9 cells/L
>7days	150-400 x 10^9 cells/L

1. संकलनकर्ता - डॉ. प्रेमशंकर उपाध्याय

Scanned with CamScanner

5. Hematocrit

1-3 days	45-75%
2 months	28-42%
6-12 years	35-45%
Adolescent male	37-49%
Adolescent female	36-46%

6. Hemoglobin

1-3 days	14.5-22.5g/dL
2 months	9.0-14. g/dL
6-12 years	11.5-15.5 g/dL
Adolescent male	13.0-16.0 g/dL
Adolescent female	12.0-16.0 g/dL

7. Fetal hemoglobin

Newborn	60-90% of total hemoglobin
3 months	2-59% of total hemoglobin
6 months	2-9% of total hemoglobin
> 1 years	<2% of total hemoglobin

8. Mean corpuscular hemoglobin (MCH)

0-3 days	31-37 pg
1 month	28-40 pg
3 months	25-35 pg
1 year	23-31 pg
2-6 years	24-30 pg
6-12 years	25-33 pg

9. Mean corpuscular hemoglobin concentration (MCHC)

All ages	30-37

10. Mean corpuscular volume (MCV)

0-3 days	95-121 fL
6 months	70-86 fL
6-12 years	77-95 fL
Adolescent	80-100 fL

11. Erythrocyte semidentation rate (ESR)

Westergreen	0-10 mm/hr
Wintrobe	0-13 mm/hr

12. Measures of Coagulation

Clotting time

5-8 min in glass tube

Bleeding time

2-7 min	Normal
7-11 min	Borderline

Prothrombin time (PT)

Newborn	13-18 s
Older children	11-15 s

Partial thromboplastin time (PTT)

Nonactivate	60-85 s
Activated (APTT)	25-35 s
Infant	<90 s

Thrombin time (TT)

Control time	±2 s (Normal control 9-13 s)

13. Plasma albumin

Preterm	1.8-3.0 g/dL
Term newborn	2.5-3.4 g/dL
<5-19 year	3.9-5.0 g/dL
5-19 year	4.0-5.3 g/dL

14. Serum bilirubin (mg/dL)

	Term	Preterm
Cord blood	<2.0	<2.0
0-1 days	<6.0	<8.0
l-2 days	<8.0	<12.0
2-7 days	<12.0	<16.
>7 days	0.2-1.0	<2.0
Conjugated bilirubin	0-0.2 mg/dL	

Scanned with CamScanner

15. Serum creatinine

Cord blood	0.6-1.2 mg/dL
Neonate	0.3-1.0 mg/dL
<1 year	0.2-0.4 mg/dL
2-12 years	0.3-0.7 mg/dL

16. Serum glucose

Cord blood	45-96 mg/dL
Newborn	40-90 mg/dL
Children	60-100 mg/dL

17. Serum cholesterol

1-3 year	45-182 mg/dL
4-6 year	109-189 mg/dL
6-9 year	122-209 mg/dL
10-14 year	124-217 mg/dL

18. Metals and binding proteins

Serum Iron

Newborn		100-250 µg/dL
Infant		40-100 µg/dL
Child		50-120 µg/dL
Older age	male	50-160 µg/dL
	female	40-150 µg/dL

Total Iron binding capacity (TIBC)

<1 year	100-400 µg/dL
>1 year	250-400 µg/dL

Serum transferrin

1-3 years	218-347 mg/dL
4-9 years	208-378 mg/dL
10-19 years	224-444 mg/dL

Serum ferritin

Newborn	25-200 ng/mL
1 month	200-600 ng/mL

2-5 months	50-200 ng/mL
6 months-15 years	7-14 ng/mL

Serum magnesium

0-6 days	1.2-2.6 mg/dL
7 days-2year	1.6-2.6 mg/dL
2-14 years	1.5-2.3 mg/dL

19. Serum enzyme levels

Serum amylase

35-127 u/L

Serum alkaline phosphatase

1-9 years	145-200 U/L
10-11 years	130-560 U/L

	Male	Female
12-13 years	200-495 U/L	150-420 U/L
14-15 years	130-525 U/L	70-230 U/L
16-19 years	65-260 U/L	50-130 U/L

Serum asparatate aminotransferase (AST,SGOT)

0-5 days	35-140 U/L
1-9 years	1-55 U/L
10-19 years	5-45 U/L

Seru. : alanine minotrasnferase (ALT, SGPT)

0-5 days	6-50 U/L
1-19 years	5-45 U/L

20. Oxygen saturation (arterial SaO_2)

Newborn	85-90%
Thereafter	95-99%

21. Serum bicarbonate (HCO_3) mol/L

Arterial	21-88 mmol/L
Venous	22-29mmol/L

22. pH-Blood

Birth	7.1-7.36

Scanned with CamScanner

30 minutes	7.2-7.38
1 day	7.3-7.45
Older children	7.35-7.45

23. Serum osmolality

275-295 mOsm/kgH_2O

24. Serum sodium

Newborn	134-146 mmol/L
< 1 year	139-146 mmol/L
Children	138-145 mmol/L

25. Serum potassium

< 2 years	3.0-6.0 mmol/L
2-12 years	3.0-6.0 mmol/L
>12 years	3.5-5.0 mmol/L

26. Serum calcium

Newborn	9.0-12.0 mg/dL
Child	8.8-10.8 mg/dL

27. Serum chloride

Newborn	96-110 mmol/L
Child	98-106 mmol/L

28. Total tri-iodothyronine (T_3)

Cord blood	30-70 ng/dL
Newborn	75-260 ng/dL
1-5 years	100-260 ng/dL
5-10 years	90-240 ng/dL
10-15 years	80-210 ng/dL

29. Total Thyroxine (T_4)

Newborn	8.2-19.9 µg/dL
Infant	6-15.0 µg/dL
1-3 years	6.8-13.6µg/dl
3-10 years	5.5-12.8µg/dl

30. Thyroid stimulating hormone (TSH)

Cord blood	3-12µU/ml
Newborn	3-18µU/ml
Thereafter	2-10µU/ml

CEREBROSPINAL FLUID

(मस्तुलुङ्ग-परीक्षण)

Volume

Adult	100-160 ml
Child	60-100 ml

Pressure 70-180 mm

Cell count (in cu mm)

	Preterm	term	neonate	thereafter
Lymphocyte	0-25	0-20	0-5	0-5
Polymorphs	0-10	0-10	0-10	nil
R.B.C	0-1000	0-800	0-50	nil
Protein(in mg/dl)	40-300	45-120	40-120	10-20

Glucose (in mg/dl)

50-70% of corresponding blood sugar

Chloride

118-132 mmol/L

NORMAL URINE ANALYSIS

(मूत्र-परीक्षण)

Normal Urine output (ml/kg/hr)	2.5 - Newborn 3.5 - 2 months 2.0 - 1 year 1.7 - 2-7 years 1.4 - 11-14 years 0.8 - Adult
Specific gravity	1.015-1.025
Osmolality	50-1400mosm/kg water
pH	
Neonatal period	5-7
Children	4.5-8(mean 6.0)

Scanned with CamScanner

Cell count	
RBC	0-2/hpf
WBC	0-5/hpf
Epithelial cell	Few
Bacteria	0-20 organism in centrifuged specimen
Cast	
Hyaline cast	0-1 /hpf
RBC, WBC, Epithelial cast	Absent
Protein total	50-80mg/day.

NORMAL STOOL ANALYSIS

(मल-परीक्षण)

Fecal pH	7.0-7.5
Fecal fat (measured over 72 hour)	
Breast feed infants	<1gm/day
0-6 years	<2gm/day
Fecal bile acids	120-225mg/day
Occult blood	Negative
Ova cyst	Nil

*

परिशिष्ट - 4

DRUG DOSES IN CHILDREN*

ANTIBIOTICS

Aminoglycosides

Amikacin - Neonates : Postnatal age< 7 days; 1,200 to 2,000 gm B.wt. 7.5mg/kg 12hr IV or IM; > 2000gm B.wt. 10 mg/kg/ 12hr IV or IM;

Children : 15 to 20mg/kg/day divided q 12 hr IV or IM; Adults: 15 mg/kg/day divided q8 to 12 hr IV or IM;

Gentamicin sulphate - Neonates : Single daily dosing; Term week Ist of life: 3 mg/kg/dose 24 hrly; Week 2 to 4 of life: 7.5 mg/kg/dose 24 hrly;

Infants and children to 10 years : Single daily dosing; IV/IM; 7.5 mg/kg/dose 24 hrly;

Streptomycin sulfate - 20 to 40 mg/kg/day IM as a single dose

Tobramycin - 4 to 6 mg/kg/day IM in divided dose

Netilmicin - 5 to 7.5 mg/kg/day IM/IV in 2 or 3 divided doses

Neomycin - 50 to 100 mg/kg/day oral in divided doses.100 mg/ kg/24 hr in Hepatic coma.

Penicillins

Benzyl Penicillin (Penicillin G) - 100,000 to 200,000 units/kg/day IV in 2 to 3divided doses for neonates (for serious infections).

1. संकलनकर्ता - डॉ. प्रेमशंकर उपाध्याय

Scanned with CamScanner

250,000 to 400,000 units/kg/day IV in 4 to 6 divided doses for infants and children in pyogenic meningitis. 200,000 to 250,000 units/kg /day IV in 4 divided doses for 7 days in leptospirosis is essential.

Penicillin G Procaine - 25,000 to 50,000 units/kg/day single dose IM Penicillin G

Benzathine - 6 yrs and <27 kg: 0.6 mega unit/dose IM x 1 dose; >6 yrs > 27 kg and adults 1.2 mega unit/dose IM x 1 dose; Rheumatic Fever secondary prophylaxis every 3 wks.

Betalactamase-resistant Penicillin:

Cloxacilin - 50 to l00mg/ kg/day IV/IM/oral, in 4 divided doses (oral-1 to 2 hr before meals). 25mg / kg / day in newborn.

Oxacillin - 50 to 100 mg/kg/day IM in infants over 1 to 2 weeks of age. 150 to 200 mg/kg/day in older infants and children.

Modified Penicillins

Ampicillin - 50 to 100 mg/kg/day in 4 divided doses IM/IV/oral in moderate infection. 150 to 200 mg/kg/day in 4 divided doses IM/IV in severe infections. 100 to 200 mg/kg/day IV in neonatal meningitis

Ampicillin with Sulbactam - 50 to 100 mg/kg/day of a mpicillin in 3 divided doses preferrably as IV infusion over 20 to 30 mm. Use injectables within an hour of reconstitution.

Amoxicillin - 25 to 40 mg/kg/day oral in 2 divided doses. 40 to 50 mg/kg/day in 3 divided doses for older children (20 kg and more). 50mg/kg/day IV every 4 hours.

Amoxicillin with Clavulanic acid - 20 to 40mg/kg/day of amoxicillin + 5 to 10 mg/kg of clavulanic acid (oral) in 3 divided doses, twice daily in neonates under 7 days (useful in otitis media and sinusitis).

- 25 mg/kg of Amox + 5 mg of Cl acid/kg/day IV in 3 divided doses.

Piperacillin - 50 to 100 mg/kg/day IV/IM in 3 to 4 divided doses. 200 to 300 mg/kg/day IV for serious infection.

Azlocillin - 150 to 300 mg/kg/day IV every 8 hr for neonates. 300 to 450 mg/kg/day IV every 4 hr for infants and children.

Cephalosporins

First Generation

Cephalexin - 25 to 30mg/kg/day in 4 divided doses (Oral)
Cephadroxil - 30mg/kg/day in 2 divided doses
Cefazolin - 40mg/kg/day in 2 divided doses IV/IM.

Second Generation

Cefaclor - 20 to 40mg/kg/day in 3 divided doses (oral)
Cefuroxime - 20 to 30mg/kg /day (oral)

Third Generation

Cefixim - 8mg/kg/day oral single or 2 divided doses,

Cefoperazone - 50 to 200mg/kg/day in 2 divided doses (IM/IV).

Cefotaxime - 100mg/kg/day in 2 divided doses IV (0-1 week).

- 150mg/kg/day IV in 3 divided doses (1-4 weeks).
- 100 to 150mg/kg/day IM/IV in 4 divided doses in infants and children.
- 200 mg/kg/day IV 4 divided doses in bacterial meningitis

Scanned with CamScanner

Ceftazidime - 50 to 100mg/kg/day IV in 2 divided doses (under 2 kg).
- 100 mg/kg/day 3 divided doses (over 2 kg).
- 100 to 150mg/kg/day IV/IM in 3 divided doses in infants and children (Pseudomonas infection).

Cefpodoxime - 10 mg/kg/day in 2 divided - Oral

Ceftibuten - 9mg/kg/day in a single dose - Oral

Ceftizoxime - 30 to 60mg/kg/day in 2 or 3 divided doses (infants over 3 months).
- 100 to 150mg/kg/day in 2 or 3 divided dose in life-threatening infection (Max up to 200 mg/kg).

Ceftriaxome - 50 to 75mg/kg/day in 2 divided doses - IV
100 mg/kg/day for meningitis.

Fourth Generation

Cefpirome - 25 to 40mg/kg/day 12 hrs IV.

Cefipime - 100mg/kg/day q-12hr IV/IM
Meningitis 150 mg/kg/day q-8 hr IV/IM.

Macrolides and Related Drugs

Spiramicin - 0.15 to 0.3 mIU/kg/day oral in 2 divided doses - Oral

Roxithromycin - 5 to 8 mg/kg/day oral in 2 divided doses.

Erythromycin - 30mg/kg/day 3-4 divided doses - Oral

Azithromycin - 10mg/kg/day - OD - Oral

Clarithromycin - 15mg/kg/day - BD - Oral

Tetracyclines

Avoid in children under 8 yr of age

Tetracycline - 20 to 40 mg/kg/day in 4 divided doses - Oral

Doxycycline - 4.4 mg/kg initially, then 2.2 mg/kg oral subsequent days as a single dose - Oral

Minocycline - 4 mg/kg/day in 2 divided doses - Oral

Demeclocycline - 6 to 12mg/kg/day in 2 divided doses - Oral

Vancomycin - 30 mg/kg/day in 2 divided doses IV given over a period of one hour (in neonates under 7 day). 40 mg/kg/day in 3 divided doses IV.

Fluoroquinolones (Preferably avoided under 12 years)

Norfloxacin - 10 to 15mg/kg/day in 2 divided doses

Ciprofloxacin - 20 to 30mg/kg/day oral in 2 divided doses-Oral
- 5 to 10mg/kg/day IV in 2 divided doses given over 30 min.

Ofloxacin - 15 mg/kg/day in 2 divided doses-Oral
- 5 to 10 mg/kg/day IV in 2 divided doses.

Pefloxacin - 12mg/kg/day in 2 divided doses.
5 to 10mg/kg/day IV in 2 divided doses.

Antitubercular Drugs

Drugs - Single daily doses given in an empty stomach

Isoniazid (H) - 5 mg/kg/day Oral (max 300 mg/day)

Rifampicin (R) - 10 mg/kg/day (Oral)

Streptomycin (S) - 20 to 40 mg/kg/day IM

Pyrazinamide(Z) - 25 to 30 mg/kg/day (Oral)

Ethambutol (E) - 25 mg/kg/day (Oral) for 6 to 8 weeks.
15 mg/kg/day thereafter.

Chemotherapeutics

Furazolidine - 5 to 6 mg/kg/day (Oral) in 4 divided doses.

Nalidixic Acid - 50 to 60 mg/kg/day (Oral) in 4 divided doses for suppressive therapy in UTI.

Nitrofurantoin - 5 to 7 mg/kg/ day oral in 4 divided doses for 10 to 14 days. Half dose—beyond 10 to 14 days. Quarter dose—after another 10 to 14 days.

Scanned with CamScanner

Antimalarials

Chloroquine	- 10mg/kg oral loading dose followed by 5mg/kg, later on 6hr, 24hr, 48hr.
Primaquine	- 0.3 to 0.4mg/kg oral as a single dose daily for 14 to 21 days.
Quinine Sulfate	- 25 to 30mg/kg/day oral in 3 divided doses for 7 days.
Mefloquine	- 15mg/kg single dose.
Artesunate	- 4mg/kg/day IM/IV/oral dose followed by 2mg/kg/day stat 2-7 days.
Artemether	- 3.2mg/kg IM stat. followed by 1.6mg/kg/day 5 days.

Antiamoebic Drugs

Metronidazole	- 30 to 50 mg/kg/day in 3 divided doses for 7 to 10 days oral.
(for anaerobic infections)	- 15 mg/kg IV as loading dose in CNS infection and NEC (Necrotising Entero-colotis) then 7.5 mg/kg IV every 12-hours in neonates, avoid during the first four days of life.
Tinidazole	- 20 to 30 mg/kg/day oral in 2 divided doses for 5 days.
Diloxanide furoate	- 20 mg/kg/day oral in 3 divided doses for 10 days.
Secnidazole	- 30 mg/kg single or divided doses (single day therapy).

Antigiardiasis Drugs

Metronidazole	- 15 to 20 mg/kg/day oral in 3 divided doses for 10 days.
Furazolidone	- 6 mg/kg/day oral in 3 divided doses for 7 days.
Tinidazole	- 15 to 25 mg/kg/day oral in 3 divided doses for 5 to 7 days.

Anthelmintics

Mebendazole	- 100 mg twice daily for 3 days, for ascariasis, ankylostomiasis, trichuriasis and strongyloidosis. 100 mg as a single dose is adequate for enterobiasios. Repeat after 3 weeks.
Albendazole	- 400 mg single dose, 200 mg for children between 1 to 2 years oral. 15 mg/kg/day, oral 28 day for NCC (Neurocysticercosis) oral.
Praziquentel	- 50 mg/kg/day in 3 divided doses for 14 days for cysticercosis oral.

Cardiovascular Drugs

Digoxin	- 1. 0.02 to 0.04 mg/kg oral as total digitalizing dose in preterm.
	- 2. 0.03 to 0.05 mg/kg day oral as digitalizing dose and 0.01 to 0.15 mg/kg as maintenance in term neonates and children.
	- Half the digitalizing dose is given initially as stat dose and the other half in 2 divided doses after 8 and 16 hours. Parenteral digitalizing dose - 2/3rd of oral given as IV.
Dopamine	- 5 to 10 ug/kg/min (useful in presence of low arterial pressure and cardiac output).
Atropine sulfate	- 0.02mg/kg (max 0.6 mg) IV or IM then 0.01mg/kg/dose 4 to 6hrly.

Antihypertensive Durgs

Nifedipine	- 0.2 to 0.5 mg/kg/dose sublingual for hypertensive emergency.
Captopril	- 5-6 mg/kg/day q8-12hrly.

Bronchodilators

Deriphyllin	- 3 to 4 mg/kg/dose oral IM/IV.

Scanned with CamScanner

Aminophylline - 3 to 4 mg/kg/dose IV every 6 hr, 15-20 mg/kg/day - 8 hrly - oral.

Salbutamol - 0.1 to 0.4 mg/kg/dose oral every 6 hr, Nebulization 0.15 mg/kg/dose.

Terbutaline - 0.1 to 0.15 mg/kg/dose every 6 hr oral .

Prednisolone - 1mg/kg/day in 3 divided doses (4 to 5 days).

Antifungal Drugs

Amphotericin B - 0.25 mg/kg IV initially, infuse. Dose increased in, daily increments of 0.1 to 0.25 mg/kg during a 4-day period until a total dose of 0.5 to 1.0 mg/kg is reached.

Griseofulvin Microsize - 10 to 12 mg/kg/oral in 2 divided doses.

Ultramicrosize - 5.0mg/kg single dose.

Miconazole - 20 to 40/day IV in 3 divided doses infused over 30 to 60 minutes.

Ketoconazole - 3.5 mg/kg/day oral - as a single dose, then 2 mg/kg/day (7-14 days).

Fluconazole - 3 to 5mg/kg/day - OD - Oral.

Antiviral Drugs

Acyclovir - Genital herpes simplex virus (HSV) infection - 200mg, 5 times daily oral for 10 days or 1.5 mg/kg/day IV in 3 divided doses for 5 to 7 days. 20 mg/kg/oral 8 hrly

Ribavirin - In RSV infection-an aeorsol in a solution containing 20 mg/ml for 12 to 18 hr/day for 3 to 7 days (limited usefulness). In chronic hepatitis C- 10 mg/kg/day oral for 5 to 10 days.

Analgesics & Antipyretics

Paracetamol - 40 to 65mg/kg/day oral in 4 divided doses (lower dose in hepatic disease) or 15mg/kg/dose - 4 to 6 times -oral.

Mefenamic acid - 20 mg/kg/day oral in 3 divided doses.

Nimesulide - 5 mg/kg/day oral in 2 divided doses.

Nonsteroidal Anti-Inflammatory Drugs (NSAIDs) (Avoid in asthmatic children)

Aspirin - 70 to 100 mg/kg/day oral in 4 to 6 doses.

Ibuprofen - 10 to 15 mg/kg oral at intervals of 4 to 6hr. 30 to 70 mg/kg/day in rheumatoid arthritis in 4-6 divided doses.

Naproxen - 10 mg/kg/day oral in 2 to 3 divided doses.

Ketoprofen - 2 mg/kg/day in 3 divided doses.

Piroxicam - 1 to 2mg/kg/day in 2 divided doses.

Indomethacin - 1 to 3mg/kg/day oral Max up to 100 mg in 2-3 divided doses. Single dose of 1mg/kg at night for early morning stiffness.

Antihistaminics

Chlorpheniramine maleate - 0.35 mg/kg/day oral in 4 divided doses.

Cyproheptadine HCl - 0.25 mg/kg/day oral in 4 to 6 divided doses.

Pheniramine maleate - 1.5 mg/kg/day Oral or IM.

Promethazine HCl - 0.5mg/kg/dose.

Cetirizine - 2.5 to 5 mg/day for children 2 to 6 years. 5 to 10 mg for children 6 to 12 years (not recommended routinely for,children under 2 years).

Tranquilizers

Diazepam - 0.2 to 0.3mg/kg/day oral in 3 to 4 divided doses.

Imipramine HCl - 1.5mg/kg/day in 3 divided doses (may increase up to 500 mg an hour before bedtime).

Scanned with CamScanner

Enuresis (>6yr) initial 10-25 mg oral at betime.

Promethazine HCl - 0.5mg/kg/dose oral or IM (avoid in children under 2 years).

Anticonvulsants

Carbamazepine - 10 mg/kg/day oral to begin with increase up to 20mg/kg/day gradually.

Clonazepam - 0.05mg/kg/day to begin with 0.05mg/kg/wk increase, up to a max of 0.2mg/kg/day.

Nitrazepam - 0.2mg/kg/day increase slowly to 1.Omg/kg/day.

Paraldehyde - 0.1 to 0.2ml/kg/dose IM with glass syringe.

Phenobarbitone - Maintenance dose 3 to 8mg/kg/day oral, IV, 15 to 20mg/kg IV stat as a loading dose.

Phenytoin - 15 to 20mg/kg as loading dose IV stat given very slowly followed by 5-8mg/kg/day b.i.d. oral/IV.

Pyridoxine - 5mg twice daily (up to l00mg) oral.

Sodium valproate - 10mg/kg/day oral to begin with increase by 5mg/kg/every week to reach the max of 30 to 40mg/kg/day.

Vigabatrin - 50 to 100mg/kg/day.

Sedatives & Hypnotics

Triclofos - 20mg/kg/day oral (sedative) 50 to 75mg/kg/dose (hypnotic).

Benzadiazepines - Diazepam inj. 0.3 to 0.5mg/kg IV.

Lorazepam - 0.5mg/kg/ IV

Pentazocin - (Fortwin 30mg/ml) 1mg/kg/IM or SC per dose.

Ketamine - 1 to 2mg/kg IV 5 to l0mg/kg IM.

Antiemetics

Promethazine - 0.25mg to 0.5mg/kg/dose - repeat 6hr later.

Metoclopramide - 0.1 to 0.5mg/kg/day for infants under 1 year. 0.5 to l.0mg/kg/day for older children in 3 divided doses.

Domperidone 0.3 to 0.6mg/kg/day in 3 divided doses.

Cisapride 0.15 to 0.3mg/kg/day in 3 divided doses.

Antiulcer/Reflux Esophagitis

Omeprazole - 0.4 to 0.8mg/kg/day oral in 1 to 2 divided doses (max 20mg/day).

Vitamins & Mineral - Daily Requirements:

Vitamin A	1500 to 5000 IU
Thiamine	0.5 to 1.5mg
Riboflavin	0.6 to 2mg
Niacin	20mg
Vitamin C	30 to 50mg
Vitamin B_{12}	1 to 5 microgram.

*

DOWNLOADED FROM WWW.AYUTECH.NET
AyuTech™
WHATSAPP - 9420697079

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner